प्राक्कथन

सस्कृत के अनेक काव्य हिन्दी कलेवर धारण कर चुके है, पर विशाल सस्कृत काव्यभडार को सुपरिचित करानेवाला कोई एक ग्रथ नही है। यह खटकनेवाली बात थी। दो दशको पहिले यह विचार मेरे मन में आया था। मैंने अधिकारी मित्रो से करने केलिये कहा। किसी-किसी ने करने की बात भी कही, पर वह पूरी नही हो सकी। अतमें निराश हो मुझे ही यह अनधिकार चेष्टा करनी पडी। यही इस पुस्तक का इतिहास है। मैने अपने दो मित्रो से "पालि काव्यधारा" और "प्राकृत काव्यधारा" लिखने के लिये साग्रह प्रार्थना की है। देखें वह अपना वचन पूरा करते हैं। अपभ्रशकाव्यधारा को मैं "हिंदीकाव्यधारा" के नाम से लिख चुका हूँ। यदि मेरे रहते उसके दूसरे सस्करण की नौवत आई, तो उसका नाम "अपभ्रशकाव्यधारा" रखना होगा। मैं चाहता हूँ, भारत की और विश्व की अन्य भाषाओ की भी ऐसी द्विभाषीय काव्यधारायें बननी चाहिये। हिन्दी को मान्यभाषा बनाने केलिये इनकी अवश्यकता है।

इस ग्रथ में यह ध्यान रक्खा गया है, कि हरेक कवि की इतनी सामग्री दी जाये, जिससे हम कवि का मूल्याकन कर सकें, उसकी कृतिका आस्वाद ले सकें, साथ ही ग्रथका वहुत विस्तार भी न होने पाये। मै इसमें कितना सफल हुआ, इसे विज्ञ पाठक ही वतला सकते हैं। मै नही कह सकता, कि सस्कृत की सभी काव्यकलानिधियो को मै यहाँ ला सका हूँ, या जिनकी कवितायें यहाँ उद्धृत हुई हैं, उनसे उत्कृष्ट कोई कवि छूटा नही है। कालमें मै ईसाकी सत्रहवी सदीके मध्यमें रुक गया हूँ, पर सस्कृत में कवि-कर्म अव भी होता है। पिछली तीन सदियोमें कितने ही सूरियो ने सस्कृत

अनुवाद में मैंने मूल के समीप रहते हुये उसे सुगम बनाने की भरसक कोशिश की है। जल्दी, अल्पज्ञता और दूसरे कारणो से त्रुटि होने की भी सभावना है, जिसके प्रतीकारका मेरे पास कोई उपाय नही है।

काल के अनुसार देखने पर मालूम होगा, कि वैदिक काल में वैसी कविताओ का अभाव सा है, जिसे आजकल काव्य कहा जाता है। पालिकाल के अतिम भागमें वाल्मीकि रामायण का प्रादुर्भाव हुआ जिसे वस्तुत काव्य या महाकाव्य कह सकते हैं। सर्व पुरातन होने से इसका "आदिकाव्य" नाम सार्थक है। "महाभारत" में भी काव्यमय स्थल हैं, पर कम ही। प्राकृतकाल (१–५५० ई०) सस्कृत कविता का स्वर्णयुग है। कविता ही नही कला, दर्शन, पुराने विज्ञान का भी यह स्वर्णयुग है। अपभ्रश (५५०–१२०० ई०) कविता के ह्रास का समय है।

सारे ग्रथ की एक विस्तृत भूमिका लिखना चाहता था, पर ग्रथ का कलेवर इतना बढ गया है कि उसे और बढाना अनुचित होगा। भिन्न-भिन्न कालो के ऊपर जो सक्षिप्त प्रस्तावनायें लिखी गई हैं, उन्हींसे पाठको को सतोष करना चाहिये।

प्रयाग
१९–१–५८

राहुल साकृत्यायन

समर्पण

जया और जेताको, जो कभी
अपने पिताकी इस कृतिको पढ़ेंगे

समर्पण

जया और जेताको, जो कभी
अपने पिताकी इस कृतिको पढ़ेंगे

विषय-सूची

१. वैदिक काल

(१२००—१००० ई० पू०)

१. वैदिक काल

सस्कृत की सवमे प्राचीन कविता का नमूना हमें ऋग्वेद मे मिलता है। इसमे सदेह है, कि ऋग्वेद के ऋपियो की भापा ऋचाओ के सग्रह में पूरी तौर से सुरक्षित है। आखिर, उन्हे लिपिवद्ध करने मे वहुत शताब्दिया वीती, और इस वीच लोगो की भापा वदलती रही। यद्यपि, मूलभापा और उच्चारण को सुरक्षित रखने की पूरी कोशिश की गई, तो भी कुछ परिवर्तन तो स्पष्ट दिखाई देते है। ऋग्वेदिक आर्य हिन्दू-यूरोपीय वश की जिस शतम्शाखा के अन्तर्गत थे, उसमे ट वर्ग का उच्चारण विल्कुल नही होता, यह उनके आधुनिक वशजो स्लावो (रूसी, चेक आदि) और ईरानियो के उच्चारण मे देखा जा सकता है। तो भी वह भाषा और उच्चारण में ऋग्वेद के समय वोली जानेवाली भाषा के वहुत नजदीक है।

यद्यपि उषा, नदी-स्तुति जैसे सूक्त काव्य की दृष्टि से भी सुन्दर हैं, किन्तु ऋग्वेद के ऋपियो को कवि होने का अभिमान होते भी आज के अर्थो में काव्य करने की इच्छा नही थी। वह अपनी ऋचाओ (स्तुतियो)-पद्यो द्वारा अपने देवताओ को रिझाना चाहते थे। विश्वामित्र, भरद्वाज या वसिष्ठ मे सरस कविता करने की क्षमता नही थी, यह नही कहा जा सकता। ऋग्वेद काल में क्या, हरेक काल में कविता होती रही, लेकिन दूसरी तरह की कविताओ के सग्रह करने के लिये ऋग्वेद के सग्राहक तैयार नही हुए। पुरूरवा-उर्वशी और यम-यमी जैसे प्रेम-काव्य वतलाते हैं, कि उस काल मे प्रेम की कविताओ की कमी नही थी। लेकिन, इस तरह के काव्य लोक-काव्य रहे होगे, जिन्हें अपने भीतर जीर्ण होने के लिये छोड दिया गया। वहुत कम ऐसे लोक-काव्य है, जिनको आल्हा आदि की तरह शताब्दियों तक भाषा-भाव में परिवर्तन करते मुख्य कथानक को अक्षुण्ण रखते जीवित

रखा गया। हिमालय के लोकगीतो के देखने से पता लगता है, कि वहा सौ वर्ष की आयु भी वहुत कम ही को मिलती है। ऋग्वेदकालीन आर्य वहुत कुछ उसी तरह का जीवन विताते थे, जैसा कि हिमालय की कितनी ही जातिया।

ऋग्वेद से जो कवितायें यहा उद्धृत की गई है, उनमे सवका कविता के तौर पर अधिक मूल्य नही है, तो भी उनसे उस समय के जीवन को जानने मे सहायता मिलती है, जव कि ताम्र-युग में अर्ध-घुमन्तू गो-अश्व-अजा-अवि-पाल आर्य जमुना से खैवर, हिमालय की तराई से राजस्थान की मरु-भूमि तक फैले देश (सप्तसिन्धु) के अपने ग्रामो और अरण्यो में रहते थे।

१. भरद्वाज (१२०० ई० पू०)

ऋग्वेदिक कालके सबसे पुराने और प्रभावमें सबसे बडे ऋषि थे। ऋषि उस समय उसी अर्थमें प्रयुक्त होता था, जिसमें सिद्धोंके कालमें सिद्ध शब्दका प्रयोग होता था। ऋषि और कवि पर्यायवाची शब्द समझे जाते थे, और साथ ही ऋषि कोरे कवि नहीं होते थे। वह देवता का साक्षात्कार करनेवाले तथा कितनी ही बार देवता भी उनके ऊपर आविष्ट होता था। ऋषियोमें सबसे पहले भरद्वाज का नाम हमारे सामने आता है। इनके पिता बृहस्पति, पितामह लोक और प्रपितामह अंगिरा थे। आगिरस और बार्हस्पत्य होते भी यह अपने नामसे गोत्रके संस्थापक हैं। वह सप्तसिन्धु (जमुनासे पश्चिम खैबर तककी) भूमिके

छंद—गायत्री, (१-४५), त्रिष्टुप् (४६), अनुष्टुप् (४७-४८)

१ देवता—अग्नि

१ त्वमग्ने यज्ञाना होता विश्वेषा हित।
देवेभिर्मानुषे जने॥१॥

२ स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजामह।
आ देवान्वक्षि यक्षि च॥२॥

३ वेत्था हि वेधो अध्वन पथ च देवाजसा।
अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो॥३॥

४ त्वामीळे अध द्विता **भरतो** वाजिभि शुन।
ईजे यज्ञेषु यज्ञिय॥४॥

५ त्वमिमा वार्या पुरु **दिवोदासाय** सुन्वते।
भरद्वाजाय दाशुषे॥५॥

६. त्व दूतो अमर्त्य आ वहा दैव्य जन।
शृण्वन्विप्रस्य सुष्टुति॥६॥

७. त्वामग्ने स्वाध्यो मर्तासो देववीतये।
यज्ञेषु देवमीळते॥७॥

१. भरद्वाज (१२०० ई० पू०)

रहनेवाले थे, जिन्हें जबर्दस्ती पीछे प्रयागमें लाकर बैठानेकी कोशिश की गई। इनके पुत्र गर्ग भी प्रतापी और एक गोत्रके प्रवर्तक ऋषि हैं। भरद्वाज सप्तसिन्धुके महान् विजेता भरतजन के नायक दिवोदासके पुरोहित (गुरु और प्रधान-मन्त्री) थे। शंबर आदि पहाड़ी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करनेमें भरद्वाजका बड़ा हाथ था। ऋग्वेदका छठा मंडल भरद्वाजका मंडल कहा जाता है, जिसके ५७ सूक्त (१-१४, १६-३०, ३७-४३ और ५३-७४) इनके रचे हैं। दसवें और नवें मंडलमें भी इनकी रचित आधा दर्जन ऋचायें सगृहीत हैं।

१. अग्निकी प्रशंसा—

१ हे अग्नि, तुम यज्ञोंके होता,[1] सबके हित हो,
देवोंके साथ मानुष लोकमें ॥१॥

२ सो तुम हमारे यज्ञमें अपनी मादक ज्वालाओ द्वारा यजन करो।
देवताओको लाओ और हव्य दो ॥२॥

३ हे विधाता, तुम कालको और शीघ्रताके पथको जानते हो।
यज्ञोमे सुकर्मा हो हे अग्नि ॥३॥

४ सुखदायक तुम्हें भरत (जन) (और) मैं दो बार स्तुति करता हूं।
यज्ञोमे यज्ञीय (तुम्हें) मैं पूजता हू ॥४॥

५ तुम बहुत (सोम) छाननेवाले दिवोदास के
इन श्रेष्ठ धनोको भरद्वाजके लिये दो ॥५॥

६ तुम अमर दूत (हो) दिव्य जनको लाओ,
विप्र भरद्वाजकी सुदर स्तुतियोको सुनते ॥६॥

७ हे अग्निदेव, देवताओकी तृप्तिके लिये यज्ञोमे सुचिन्तक
(मनुष्य) तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥७॥

---

[1] आह्वानकर्त्ता

८. तव प्र यक्षि सदृशमुत क्रतु सुदानव·
विश्वे जुपन्त कामिन ॥८॥

९ त्व होता मनुर्हितो वह् निरासा विदुष्टरः।
अग्ने यक्षि दिवो विश ॥९॥

१० अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि वर्हिपि ॥१०॥

११. त त्वा समिद्भिरगिरो घृतेन वर्द्धयामसि।
वृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥११॥

१२ स न पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि।
वृहदग्ने सुवीर्यं ॥१२॥

१३ त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमथत।
मूर्द्ध्नो विश्वस्य वाघत ॥१३॥

१४ तमु त्वा दध्यड् ऋषि पुत्र ईधे अथर्वण ।
वृत्रहण पुरन्दर ॥१४॥

१५ तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तम ।
धनजय रणे रणे ॥१५॥

१६ एह्यूषु ब्रवाणि ते ग्न इत्थेतरा गिर ।
एभिर्वर्धास इन्दुभि ॥१६॥

१७ यत्र क्व च ते मनो दक्ष दधस उत्तर।
तत्रा सद कृणवसे ॥१७॥

१८ नहि ते पूर्तमक्षिपद् भुवन्नेमाना वसो।
अथा दुवो वनवसे ॥१८॥

१९ आग्निरगामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतन ।
दिवोदासस्य सत्पति ॥१९॥

८ तुम्हारे सुदर्शन और कार्य के लिए सुदर दानवाले सारे कामनावाले
(तुम्हारी) सेवा करते है ॥८॥

९ हे अग्नि, तुम होता मननकर्ता हितू वाहक अत्यत ज्ञानवान् (हो)।
द्यौ लोककी प्रजाओका यजन करो ॥९॥

१० हे अग्नि, स्तुति किये जाते हव्यदान (और) प्रीतिके लिये आओ।
हे होता, तुम यज्ञमें बैठो ॥१०॥

११ हे अगार, तुम्हें उस घृत समिधासे हम बढाते है ।
हे अतितरुण बडी ज्वालावाले ॥११॥

१२ हे देव अग्नि, सो हमें बडे प्रशसनीय अच्छे धनको,
वृहत् सुदर पराक्रम को (प्रदान करो) ॥१२॥

१३ हे अग्नि, सबके शिर पुष्करसे अरनी द्वारा,
तुम्हें अथर्वाने मथा ॥१३॥

१४ वृत्रमारक पुरध्वसक उस तुम्हें अथर्वाके पुत्र
दधीचि ऋषिने बढाया ॥१४॥

१५ उस भारी दस्युहन्ता हरेक रणमे धन जीतनेवाले तुम्हें
पथ-पन्तान वृषाने अच्छी तरह बढाया ॥१५॥

१६ हे अग्नि, आओ सुनो, तुम्हारे लिये ऐसी अन्य वाणिया मै कहता हूं।
इन सोमरसों द्वारा बढो ॥१६॥

१७ और जहा-कही तुम्हारा मन रहे, यजमानको उत्तम बनाते हो ।
वहा स्थान बनाते हो ॥१७॥

१८ हे वमानेवाले, तुम्हारा तेज मानवकी भूमिको न फेंके,
और सेवाको स्वीकार करो ॥१८॥

१९ वृत्रहन्ता बहुत चेतनावान् भरतोका अग्नि आ पहुचा
(जो कि) दिवोदासका सच्चा स्वामी है ॥१९॥

२०. स हि विश्वाति पार्थिवा रयि दाशन्महित्वना।
वन्वन्नवातो अस्तृत ॥२०॥

२१. स प्रत्नवन्नवीसाग्ने द्युम्नेन सयता।
वृहत्ततथ भानुना ॥२१॥

२२. प्र व सखायो अग्नये स्तोम यज्ञ च घृष्णुया।
अर्च गाय च वेधसे ॥२२॥

२३. स हि यो मानुपा युगा सीदद्धोता कविक्रतु.।
दूतश्च हव्यवाहन ॥२३॥

२४. ता राजाना शुचिव्रतादित्यान् मारुत गण।
वसो यक्षीह रोदसी ॥२४॥

२५. वस्वी ते अग्ने सन्दृष्टिरिपयते मर्त्याय।
ऊर्जो नपादमृतस्य ॥२५॥

२६. कृत्वा दा अस्तु श्रेष्ठोद्य त्वा वन्वन्त्सुरेक्णाः।
मर्त आनाश सुवृक्ति ॥२६॥

२७. ते ते अग्ने त्वोता इषयन्तो विश्वमायु ।
तरन्तो अर्यो अरातीर्वन्वन्तो अर्यो अराती ॥२७॥

२८. अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्व न्यत्रिण।
अग्निर्नो वनते रयि ॥२८॥

२९. सुवीर रयिमा भर जातवेदो विचर्षणे।
जहि रक्षासि सुक्रतो ॥२९॥

३० त्वं न पाह् यहसो जातवेदो अघायत ।
रक्षाणो ब्रह् मणस्कवे ॥३०॥

३१. यो नो अग्ने दुरेव आ मर्त्तो बधाय दाशति।
तस्मान्न पाह् यहस. ॥३१॥

२० वह (अपनी) महिमासे सारी पार्थिव बडी संपत्तिको देवे,
अबाधित अहिंसित, (शत्रुओंका) नाश करते ॥२०॥

२१ हे अग्नि, पहिले समान नवीन तेजसे तैयार,
प्रकाशसे बृहत् विस्तारित ॥२१॥

२२ हे सखाओ, तुम खूब स्तुति और यज्ञको करो,
विधाताके लिये अर्चन गायन करो ॥२२॥

२३ वह जो कि मनुष्य युगमें होता कवि-कर्ता होकर बैठता है,
और जो हव्य वहन करनेवाला दूत है ॥२३॥

२४ हे बसनेवाले, शुद्ध व्रतवाले उन आदित्य राजाओंको मरुतोंके गणको
द्यौ-पृथिवी के लिये यहा यजन करो ॥२४॥

२५ हे अग्नि, तुम्हारी वसुवाली सम्यक् दृष्टि मनुष्यको अन्न देती है,
(और) न गिरनेवाले अमृतके तेजको (भी) ॥२५॥

२६ क्रिया दानसे श्रेष्ठ हो जो आज तुम्हें मुदाता चाहते हैं, वह
मर्द सदा सुन्दर स्तुति (करे) ॥२६॥

२७ हे अग्नि, तुम्हें सारी आयु इच्छा करते वे-वे रक्षित हैं।
अर्य[1] हो शत्रुओंसे पार पाते, अर्य हो शत्रुओंको मारते ॥२७॥

२८ अग्नि तीक्ष्ण तेजसे सारे शत्रुओंको भक्षण करता है।
अग्नि हमें धन देता है ॥२८॥

२९ हे जातवेद,[2] विचरणशील, सुन्दर वीरोंयुक्त धन लाओ।
हे सुकर्मा, राक्षसोंको मारो ॥२९॥

३० हे जातवेद, अघवाले अपराधोंसे हमें बचाओ। हे मंत्रके कवि, हमारी
रक्षा करो ॥३०॥

३१ हे अग्नि, जो मनुष्य हमारे वधके लिये हथियार चलाता है।
उन पापसे हमें बचाओ ॥३१॥

---

[1] स्वामी, [2] धनवान्,

३२　त्वं तं देव जिह्वया परि बाधस्व दुष्कृतं।
मर्तो यो नो जिघांसति ॥३२॥

३३　**भरद्वाजाय** सप्रथः शर्म यच्छ सहन्त्य।
अग्ने वरेण्य वसु ॥३३॥

३४　अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया।
समिद्धः शुक्र आहुतः ॥३४॥

३५.　गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥३५॥

३६　ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे।
अग्ने यद् दीदयद्दिवि ॥३६॥

३७　उप त्वा रण्वसन्दृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत।
अग्ने ससृज्महे गिरः ॥३७॥

३८　उप छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयं।
अग्ने हिरण्यसन्दृशः ॥३८॥

३९　य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः।
अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥३९॥

४०　आ यं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न बिभ्रति।
विशामग्निं स्वध्वरं ॥४०॥

४१　प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तमं।
आ स्वे योनौ निषीदतु ॥४१॥

४२　आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीतातिथिं।
स्योन आ गृहपतिं ॥४२॥

४३　अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः।
अरं वहन्ति मन्यवे ॥४३॥

३२ हे देव, तुम उस दुष्कर्मा मनुष्य को (अपनी) ज्वालासे बाधित करो ।
जो हमें मारना चाहता है ।।३२।।

३३ हे दमनकर्त्ता अग्नि, भरद्वाजको विपुल सुख
श्रेष्ठ धन दो ।।३३।।

३४ प्रज्वलित आहुत धनेच्छुक, स्तुति द्वारा उज्वल समृद्ध अग्नि,
शत्रुओ को मारे ।।३४।।

३५ (अग्नि) माता[1] के गर्भ मे पिता[2] के अक्षय स्थानमें चमकते हुए
सत्यके मूल-स्थानमें आ वैठे ।।३५।।

३६ हे विश्वदर्शक, जातवेद अग्नि प्रजा-सहित धनको लाओ,
जो (अग्नि) द्युलोकको प्रकाशित करता है ।।३६।।

३७ हे अग्नि, वलकारी रमणीय-दर्शन तुम्हें सेवन करते,
हम स्तुतिया सृजन करते है ।।३७।।

३८ हे अग्नि, धूपसे मानो छायामें हम तुम्हारी शरणमे आये ।
तुम सुवर्ण सदृश हो ।।३८।।

३९ हे अग्नि, वाणोंसे मारनेवाले योद्धाकी तरह, तीखे सींगवाले
साडकी तरह, तुमने दुर्गोको भग्न किया ।।३९।।

४० हाथमें ककणकी तरह, उत्पन्न शिशुकी तरह, सुन्दर यज्ञवाले
प्रजाओकी अग्निको (ऋत्विक्) धारण करते है ।।४०।।

४१ देवोकी तृप्तिके लिये अत्यत धनज्ञ देव अग्निको खूव धारण करो ।
वह अपने स्थानमे आकर वैठे ।।४१।।

४२ यज्ञमे प्रादुर्भूत प्रिय अतिथि अग्निको ला वैठाओ ।
वह गृहके स्वामीको सुख (दे) ।।४२।।

४३ हे देव अग्नि, जो तुम्हारे अच्छे अश्व है, उन्हे जोडो,
(जो कि) क्रोध के लिये वहन करते है ।।४३।।

---

[1] पृथिवी, [2] द्यौलोक

४४ अच्छा नो याह्या वहामि प्रयासि वीतये।
आ देवान्त्सोमपीतये ॥४४॥

४५. उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत्।
शोचा वि भाहृय जर॥४५॥

४६ वीती यो देव मर्तो दुवस्येदग्निमीळीताध्वरे हविष्मान्।
होतार सत्ययज रोदस्योरुत्तानहस्तो नमसा विवासेत्॥४६॥
(त्रिष्टुप्)

४७. आ ते अग्न ऋचा हविर्हृदा तप्ट भरामसि।
ते ते भवन्तूक्षण ऋषभासो वशा उत॥४७॥ (अनुष्टुप्)

४८ अग्नि देवासो अग्रियमिन्धते वृत्रहन्तम।
येना वसून्याभृता तृह्ळा रक्षासि वाजिना॥४८॥त्रि.
—ऋक् ६।१६

त्रिष्टुप् छन्द

२. देवता—उषा

४९ उदु श्रिय उषसो रोचमाना अस्थुरपा नोर्मयो रुशत।
कृणोति विश्वा सुपथा सुगान्यभूदु वस्वी दक्षिणा मघोनो॥१॥

५० भद्रा ददृक्ष उर्विया वि भास्युत्ते शोचिर्भानवो द्यामपप्तन्।
आविर्वक्ष कृणुषे शुम्भमानोषो देवि रोचमाना महोभि॥२॥

५१ वहन्ति सीमरुणासो रुशन्तो गाव सुभगामुर्विया प्रथाना।
अपेजते शूरो अस्तेव शत्रून्बाधते तमो अजिरो नवो-
ह्ळा॥३॥

५२ सुगोत ते सुपथा पर्वतेष्ववाते अपस्तरसि स्वभानो।
सा न आ वह पृथुयामन्नृष्वे रयि दिवो दुहितरिषयध्यै॥४॥

५३. सा वह योक्षभिरवातोषो वर वहसि जोषमनु।
त्व दिवो दुहितर्या ह देवी पूर्वहूतौ महना दर्शता भू॥५॥

४४ हमारे पास अच्छी तरह आओ, तृप्तिके लिये अभीष्ट वस्तुओको लाओ। सोम-पानके लिये देवताओको लाओ ।।४४।।

४५ हे भारतोंके अग्नि, तुम निरन्तर द्युतिमान् हो प्रकाशित हो । हे अजर, अपने तेजसे प्रकाशित होओ ।।४५।।

४६. हविवाला यज्ञमे स्तुति करता तृप्तिकारक जो मर्द अग्निदेवकी सेवा करे। (उस) सत्यपूजक होता (अग्नि) को द्यौलोक और पृथिवी उत्तान हाथ हो नमस्कारसे सेवें ।।४६।।

४७ हे अग्नि, तुम्हारे लिये ऋचाके साथ हृदयसे बनाये हवि हम ला रहे है। वे जैसे गौको साड (वैसे) तुम्हे तृप्तिकारक हो ।।४७।।

४८ शत्रुके अत्यत हन्ता जिस अग्रणी अग्निको देवलोग प्रज्वलित करते है, जो बलसे राक्षसोको वध कर धन ला ।।४८।।

—ऋक् ६।१६

२. उषाका वर्णन

४९ शोभासे रोचमान उषायें पानीकी लहरोकी तरह चमकती, चतुर, वसु और धनवाली सबके लिये सुपथ सुगम करती वर्तमान है ।।१।

५० कल्याणी दिखाई देती विस्तृत भासती, तुम्हारी चमकनेवाली किरणे आकाश में प्राप्त है । हे उषादेवी, तेजसे चमकती शोभित रूपको प्रकाशित करती हो ।।२।।

५१ फैलती सुभगा (उषा)को चमकती अरुण किरणें वहन करती है। जैसे फेंके शस्त्रसे शूर शत्रुओको पीडित करता है, वैसे नवागत उषा अधकार को नाश करती है ।।३।।

५२ पर्वत और निर्वातमें तुम्हारा सुपथ सुगम है, स्वय तेजस्वी, तुम लोक को पार कर जाती हो। बडी रथवाली हे द्योलोककी कन्या, तुम हमें इच्छित धन दो ।।४।।

५३ हे उषा, सो तुम जो अनिरुद्ध हो अश्वो द्वारा चुपचाप वर (धन) वहन करती हो। हे द्युलोककी दुहिता, देवी तुम प्रथम आह्वानमे पूजनीय दर्शनीय हो ।।५।।

५४ उत्ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ।
अमा सते विहसि भूरि वाममुपो देवि दाशुपे मर्त्याय ॥६॥

—ऋक् ६।६४

त्रिष्टुप् छन्द

देवता—उषा,

५५. एषा स्या नो दुहिता दिवोजा. क्षितीरुच्छती मानुपी-
रजीग ॥
या भानुना रुशता राम्यास्वज्ञायि तिरस्तमसश्चि-
दक्तून् ॥१॥

५६. वितद्ययुररुणयुग्भिरश्वैश्चित्र भात्युपसश्चद्ररथा ।
अग्र यज्ञस्य बृहतो नयतीर्वि ता बाधते तम ऊर्म्यायाः ॥२॥

५७. श्रवो वाजमिषमूर्ज वहती नि दाशुष उषसो मर्त्याय।
मघोनोर्वीरवत्पत्यमाना अवो धात विधते रत्नमद्य ॥३॥

५८. इदाहि वो विधते रत्नमस्तीदा वीराय दाशुष उषास
इदा विप्राय जरते यदुक्था निष्म मावते वहथा पुरा
चित् ॥४॥

५९. इदा हि त उषो अद्रिसानो गोत्रा गवामगिरसो गृणति।
व्यर्कोणबिभिदुर्ब्रह्मणा च सत्या नृणामभवद् देवहूति ॥५॥

६०. उच्छा दिवो दुहित प्रत्नवन्नो भरद्वाजवद्विधते मघोनि।
सुवीर रयिं गृणते रिरीह्युरुगायमधि धेहि श्रवो न ॥६॥

—ऋक् ६।६५

५४ तुम्हारे उठने पर पक्षी घोंसलोंसे निकलते, जो अन्न-इच्छुक नर (वे) जाग उठते हैं। हे देवि, दाता मर्दको तुम बहुत कमनीय धन देती हो ॥६॥

—ऋक् ६।६४

२. उषा का वर्णन,

५५ सो हमारी द्यौमे उत्पन्न पुत्री इस उषाने अन्धकारको हटाते मानुषी (जनता) को जगाया। (वह) जो कि चमकती किरणो द्वारा रातमे अंधकार को दूर कर दीप्तिमानोको बतलाती है ॥१॥

५६ लाल घोडो के साथ उषाके विस्तृत, अद्भुत सुवर्ण-रथ आ गये। वह बृहत् यज्ञको आगे ले जाती रातके तमको हटाती है ॥२॥

५७ हे उषाओ, तुम दाता मनुष्यके लिये यश, बल, अन्न, रस लाती हो। धनवती यात्रिणी, तुम आज दाता वीरको संतान और रत्न दो ॥३॥

५८ हे उषाओ, अब तुम्हारे सेवकको, अब वीर दाताको रत्न है। अब मुझ स्तुतिकारक विप्रके लिये—जिसके पास उक्थ है—पहलेकी तरह धन लाओ॥४॥

५९ हे अद्रि-शिखरोवाली उषा, अब अंगिरा[1] गायोंके गोष्ठमे तुम्हारी स्तुति करते है। तेजस्वी मंत्रोने तुमको स्फुटित किया और मनुष्योंका यज्ञ सत्य हुआ ॥५॥

६० हे द्यौकी दुहिता, प्राचीनोकी तरह धनवती भरद्वाज जैसे स्तोताका अन्धकार हटाओ। सुंदर वीरो युक्त धन (उस) स्तुतिकर्ताको दो, हमें बहु व्यापक यश दो ॥६॥

—ऋक् ६।६५

---

[1] पुरोहित, ब्राह्मण

२. वसिष्ठ (१२०० ई० पू०)

यह भरद्वाज के तरुण-समकालीन तथा दिवोदास-पुत्र सुदास
के पुरोहित थे। इनके पिता मित्रावरुण और माता उर्वशी अप्सरा
वतलाई जाती हैं, जिनका अर्थ यही है, कि इनके पूर्वजों के नाम आदि
के सुरक्षित रखने की कोशिश नहीं की गई। इनके पुत्र शक्ति और पौत्र
पराशर थे। शक्ति वहुत गरम-मिजाजके थे। वसिष्ठका सुदास के
अभ्युदय में सवसे वडा हाथ था। दाशराज्ञयुद्धमें इनके वंशजों और इनकी
वुद्धि ने वहुत भारी काम किया था। सुदास इतने अधिक प्रभावशाली व्यक्ति
को सहन नहीं कर सकता था, क्योंकि वसिष्ठ के प्रताप के सामने वह
धूमिल पड जाता था, इसीलिए उस समय के दूसरे प्रभावशाली ऋषि

१. दाशराज्ञ—

१. श्वित्यचो मा दक्षिणतस्कपर्दा धिय जिन्वासो अभि हि प्रमदु।
उत्तिष्ठन्वोचे परि बर्हिषो नृन्न मे दूरादवितवे **वसिष्ठाः** ॥१॥

२. दूरादिद्रमनयन्नासुतेन तिरो वैशतमतिपातमुग्र।
पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात् सुतादिद्रा वृणीता **वसिष्ठान्** ॥२॥

३. एवेन्नु क सिन्धुमेभिस्ततारेवेन्नु क भेदमेभिर्ज्जघान
एवेन्नु क **दाशराज्ञे सुदासं** प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा व
वसिष्ठाः ॥३

४. जुष्टी नरो ब्रह्मणा व पिपृणामक्षमव्यय न कि
रिषा
यच्छक्वरीषु बृहता रवेणेंद्रे शुष्ममदधाता **वसिष्ठाः** ॥

२. वसिष्ठ (१२०० ई० पू०)

विश्वामित्र को उसने अपना पुरोहित बनाया, जिनके प्रधान मंत्रित्व में सुदास ने दिग्विजय और अश्वमेध-यज्ञ करके अपने प्रभाव को यमुना के पूर्ववाले अनार्य राजाओं पर बढ़ाया। सुदास के इस कार्य से वसिष्ठ और विश्वामित्र के घरों में वैमनस्य हो गया। शक्ति ने खुलकर विरोध करना चाहा, जिसके कारण सुदास के हाथों अपने प्राणों को खोने के सिवा और कोई लाभ उसे नहीं हुआ। शक्ति के पुत्र पराशर का व्यास के पिता पराशर से कोई सम्बन्ध नहीं है। वसिष्ठ ने सबसे अधिक अर्थात् १०४ सूक्त रचे हैं, जिनसे ऋग्वेद का सातवां मंडल बना है, इसीलिए इस मंडल को वसिष्ठ-मंडल भी कहते हैं। नवें मंडल में एक दर्जन से ऊपर और दसवें मंडल में भी आधा दर्जन इनकी ऋचायें *संगृहीत हैं। (ऋग्वेद में दस मंडल हैं, हरेक मंडल में बहुत से सूक्त और हरेक सूक्त में बहुत सी ऋचायें हैं।)

१. दाशराज्ञयुद्ध—

१ वृद्धि जीतनेवाले दाहिने जूड़ा रखनेवाले मेरी वसिष्ठ-सन्तानें प्रसन्न हैं। यज्ञसे उठते मैं मनुष्योंको कहता हूं, मेरी वसिष्ठ-सन्तानें दूर न जायें ॥१॥

२ वायत-संतान पाशद्युम्नसे अलगकर, चमसमें स्थित बहुतसा सोम पिये उग्र इन्द्रको छाने (सोम) से दूर ले गये, इन्द्रने वसिष्ठोंको वरण किया ॥२॥

३ इस प्रकार इनके द्वारा इन्द्रने सिन्धुको पार कराया, ऐसे ही इनके द्वारा भेदको मारा। ऐसे ही वसिष्ठो, तुम्हारे मंत्र द्वारा दाशराज्ञ-युद्धमें इन्द्रने सुदासकी रक्षा की ॥३॥

४ हे नरो, तुम्हारे मंत्रसे पितरोंकी तृप्ति होती है, अक्षीण धुरीको तुम नष्ट नहीं करते। हे वसिष्ठो, जो कि तुमने शक्वरी ऋचाओंमें बृहत् शब्द द्वारा इन्द्रके बलको धारा ॥४॥

५ उद्द्ययामिवेत्तृष्णजो नाथितासो दीधयुर्दाशराज्ञे वृतास ।
वसिष्ठस्य स्तुवत इन्द्रो अश्रोदुरु तृत्सुभ्यो अकृणोदु
लोक ॥५॥

६ दण्डा इवेद् गो अजनास आसन् परिच्छिन्ना भरता
अर्भकास ।
अभवच्च पुर एता वसिष्ठ आदित् तृत्सूना विशो
अप्रथत ॥६॥

७ त्रय कृण्वन्ति भुवनेषु रेतस्तिस्र प्रजा आर्या ज्योतिरग्रा ।
त्रयो घर्मास उपस सचन्ते सर्वां इत्ता अनु
विदुर्वसिष्ठाः ॥७॥

८ सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषा समुद्रस्येव महिमा गभीर ।
वातस्येव प्रजवो नान्येन स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवे व ॥८॥

९ त इन्निण्य हृदयस्य प्रकेतै सहस्रवल्शमभि सचरति।
यमेन तत परिधि वयतोऽप्सरस उपसेदुर्वसिष्ठाः ॥९॥

१० विद्युतो ज्योति परि सजिहान मित्रावरुणा यदपश्यता त्वा।
तत्ते जन्मोतैक वसिष्ठागस्त्यो यत्त्वा विश आजभार ॥१०॥

११ उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोधि जात ।
द्रप्स स्कन्न ब्रह्मणा दैव्येन विश्वेदेवा' पुष्करे
त्वाददत ॥११॥

१२ स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान्त्सहस्रदान उत वा सदान ।
यमेन तत परिधि वयिष्यन्नप्सरस परिजज्ञे वसिष्ठः॥१२॥

१३. सत्रे ह जाता विषिता नमोभि कुम्भे रेत सिषिचतु समान।
ततो ह मान उदियाय मध्यात्ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठ ॥१३

१४. उक्थभृत सामभृत बिभर्ति ग्रावाण बिभ्रत् प्रवदात्यग्र
उपैनमाध्व सुमनस्यमाना आ वो गच्छाति प्रतृदो
वसिष्ठः ॥१४॥

—ऋक् ७।३३

५ दाशराज्ञ युद्धमें घिरे हुए (उन्हें), वृष्टि चाहनेवाले उगते (सूर्य) की तरह ऊपर उठाया। स्तुति करते वसिष्ठकी (बात) इन्द्रने सुनी और तृत्सुओंके लिये विशाल लोक बनाया ॥५॥

६. दडकी (मारी) गौकी तरह भरत छिन्न-भिन्न अल्पजन (तथा) बच्चे (से) थे। वसिष्ठ (जैसे ही) इनको अगुवा हुए, तृत्सुओकी प्रजायें विशाल हो गईं ॥६॥

७ तीन (अग्नि-वायु-सूर्य) भुवनमें जल बनाते है, आर्य प्रजा तीन अग्र-ज्योति है। तीन प्रकाशमान उषाका सेवन करते हैं, उन सबको वसिष्ठ-सतान जानती हैं ॥७॥

८. हे वसिष्ठो, इनकी ज्योति सूर्य के समान, महिमा समुद्रके समान गभीर है, वेग वायुकी तरह। तुम्हारे स्तोमोके पास दूसरा नही आ सकता ॥८॥

९. उन्होने तो हृदयके ज्ञान द्वारा छिपे सहस्र शाखाओवाले (लोक) में सचार किया। यम द्वारा फैलाये परिधिको बुनते वसिष्ठ लोग अप्सराओंके पास पहुचे ॥९॥

१०. हे वसिष्ठ, मित्र और वरुणने ज्योति जगाते जो तुम्हें देखा था, सो तुम्हारा एक जन्म है, अगस्त्यने जो प्रजायें तुम्हे ला दी ॥१०॥

११. हे ब्रह्मन् वसिष्ठ, तुम मित्र और वरुणके हो,तुम उर्वशीके मनसे जन्मे। जो विन्दु गिरा, उस तुम्हें विश्वदेवोने दिव्य मत्र द्वारा पुष्करमें धारण किया ॥११॥

१२. वह प्राज्ञ दोनोंके महाविद्वान् सहस्र दान अथवा दानसहित, यम द्वारा विस्तृत परिधि बुननेके इच्छुक वसिष्ठ अप्सरासे उत्पन्न हुये ॥१२॥

१३ सत्रमें विद्यमान नमस्कारो द्वारा प्रार्थित मित्र-वरुणने एक साथ कुभमें वीर्य सिंचन किया। उसीके मध्यसे मान उत्पन्न हुआ, वसिष्ठ ऋषिको उसीसे जन्मा कहते हैं ॥१३॥

१४. उक्थ-धारक सोम-धारक सिलवट्टा लिये (वह) अच्छा उपदेश देते हैं। तृत्सुओ, वसिष्ठ तुम्हारे पास आ रहे हैं, प्रसन्नचित्तसे इनकी पूजा करो ॥१४॥

—ऋक् ७।३३

२. देवतागृह—

१५ अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन्।
सखा सुशेव एधि न. ॥१॥

१६. यदर्जुनसारमेय दत यच्छसे।
वीव भ्राजत ऋष्टय उप स्रक्वेषु वप्सतो नि षु स्वप ॥२॥

१७. स्तेनं राय सारमेय तस्कर वा पुन सर।
स्तोतॄनिंद्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे निषु स्वप॥३॥

१८. त्वं सूकरस्य दर्दृहि तव दर्दर्तु सूकर।
स्तोतॄनिंद्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे निषु स्वप ॥४॥

१९. सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्वति:।
ससन्तु सर्वे ज्ञातय सस्त्वयमभितो जन ॥५॥

२०. य आस्ते यश्च चरति यश्च पश्यति नो जनः।
तेषा स हन्मो अक्षाणि यथेद हर्म्यं तथा ॥६॥

२१. सहस्रशृगो वृषभो य समुद्रादुदाचरत्।
तेना सहस्येना वय नि जनान्त्स्वापयामसि ॥७॥

२२. प्रोष्ठेशया वह्ये शया नारीर्यास्तल्पशीवरी।
स्त्रियो या पुण्यगधास्ता सर्वा स्वापयामसी ॥८॥

—ऋक् ७।५५

३. उषा—

२३ व्युषा आवो दिविजा ऋतेनाविष्कृण्वाना महिमानमागात्
अप द्रुहस्तम आवरजुष्टमगिरस्तमा पथ्या अजीग ॥१

२४. महे नो अद्य सुविताय बोध्युषा महे सौभगाय प्रयन्धि
चित्र रयि यशस धेह्यास्मेदवि मर्तेषुमानुषि श्रवस्यु ॥२

२. गृहदेवता—

(गृह-देवता और इन्द्र का वर्णन, छन्द गायत्री. अनुष्टुप्, वृहती)

१५. हे रोगनाशक गृहरक्षक, सारे रूपोंमें प्रविष्ठ सखा, हमारे सुखको वढाओ ॥१॥

१६ हे श्वेत सरमा-पुत्र, जव तुम भूरे दातोको दिखलाते हो, तब वह भोजनके समय ओठके पास अस्त्रसे चमकते हैं। सुखसे सो जाओ ॥२॥

१७ हे सारमेय, चोर या डकैतके पास घूम जाओ। इन्द्रके स्तोता हमें क्यो वाधते हो? सुखसे सो जाओ ॥३॥

१८ तुम सूअरको दर्दराओ और सूकर तुझे दर्दराये। इन्द्रके स्तोता हमें क्यो वाधते हो? सुखसे सो जाओ ॥४॥

१९ माता सोवे, पिता सोवे, श्वान सोवे, विश्वति सोवे। सारे जातिवाले सोवें। यह जन (भी) चारो ओर सोवे ॥५॥

२०. जो स्थित है और जो चलता है और जो जन हमें देखता है। उनकी आखोको हम हनन करते है, जैसे यह हर्म्य वैसे वह ॥६॥

२१. सहस्र शृगो (किरणो) वाला वृपभ जो समुद्रसे उठा। उस वलिष्ठ द्वारा हम जनोको सुला देंगे ॥७॥

२२. आगनमें सोनेवाले वाहर सोनेवाले जो शय्यापर सोनेवाली नारियाँ हैं, जो पुण्य गधवाली स्त्रिया है, उन सवको हम सुला देंगे ॥८॥

—ऋक् ७।५५

३. उषाका वर्णन—

२३ द्योलोकमें उत्पन्न उपायें प्रादुर्भूत हुई, सत्य द्वारा महिमा प्रकट करती आई। अगिरस्तमाने अप्रिय अन्धकारको हटाया पथोको प्रकाशित किया ॥१॥

२४. हे उपा, आज हमारे सुखके उत्पादनके लिये जागो, महासौभाग्य दो। हे मानुपि देवि, हम मर्त्यों को अद्भुत धन यश पुत्र दो ॥२॥

२५ एते त्ये भानवो दर्शतायाश्चित्रा उषसो अमृतास आगु ।
जनयतो दैव्या ने व्रतान्या पृणतो अतरिक्षा व्यस्थु ॥३॥

२६ एषा स्या युजाना पराकात् पच क्षिती परि सद्यो जिगाति ।
अभिपश्यति वयुना जनाना दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ॥४॥

२७ वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रामघा राय ईशे वसूना ।
ऋषिष्टुता जरयन्ति मघोन्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना ॥५॥

२८ प्रति द्युतानामरुषासो अश्वाश्चित्रा अदृश्रन्नुषस वहत ।
याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्न विधते जनाय ॥६॥

२९ *सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रै ।*
रुजद्दृह्ळानि ददुस्त्रियाणाप्रति गाव उषस वावशत॥७॥

३० नू नो गोमद्वी रवद्धेहि रत्नमुषो अश्वावत् पुरुभोजो अस्मे ।
मा नो बर्हि पुरुषता निदे कर्यूय पात स्वस्तिभि सदा न ॥८॥

—ऋक् ७।७५

४. **इन्द्र-वरुण—**

३१ युवा नरा पश्यमानास आप्य प्राचा गव्यत **पृथुपर्शवो** ययु ।
दासा च वृत्रा हतमार्याणि च **सुदासमिन्द्रावरुणावसा**-वत ॥१॥

३२ यत्रा नर समयते कृतध्वजो यस्मिन्नाजा भवति कि चन प्रिय ।
यत्रा भयते भुवना स्वर्दृशस्तत्रा न इन्द्रावरुणाधि वोचतम् ॥२॥

२५ दर्शनीय उषाकी वे ये अद्भुत अमृत किरणें आईं। दिव्य व्रतोको जन्माती अतरिक्षको भरती फैली ॥३॥

२६ वह यह उद्योगपरायणा दूरसे तुरन्त पाचो जनोंके पास आती है। द्यौकी दुहिता भुवनकी रक्षिका ज्ञान द्वारा जनोको देखती ॥४॥

२७ अन्नवाली अद्भुत धनवाली हे वसुओंके धनकी स्वामिनी, ऋषियो द्वारा स्तुत जरा करनेवाली धनी यजमानो द्वारा प्रशसित उषा उगती है ॥५॥

२८ अरुण अद्भुत घोडे चमकती उषाको वहन करते दिखाई देते हैं। सेवकजनको रत्न देती वह शुभ्र नाना वर्णके रथ द्वारा जाती है ॥६॥

२९ सत्या महती पूज्य देवी सत्य बडे पूजनीय देवोंके साथ तमको भेदन करती गोचर प्रदान करती है। गायें उषाकी चाहना करती है ॥७॥

३० हे उषा, गायो और वीरो से युक्त रत्न-अश्वसहित बहुत भोग हमें दो। पुरुषोमें हमारे यज्ञकी निंदा न करो। तुम हमारी सदा स्वस्तिके साथ रक्षा करो ॥८॥

—ऋक् ७।७५

४. इन्द्र और वरुणका वर्णन—

३१ हे नेताओ, प्राप्य तुम दोनोको देखते गौ-उच्छुक पृथु और पर्शु पूर्वको ओर गये। दास शत्रुओ और आर्योको तुमने मारा और इन्द्र-वरुणने सुदासको रक्षासे रक्षित किया ॥१॥

३२ जहा नर ध्वज उठाये मिलते हैं, जिस युद्धमें कुछ भी प्रिय नही होता। जहा लोग स्वर्गदर्शी होते हैं। वहा हे इन्द्र-वरुण, हमारी वार्ते करना ॥२॥

३३ स भूम्या अता ध्वसिरा अदृक्षतेंद्रावरुणा दिवि घोष आरुहत् ।
अस्थुर्जनानामुप मामरातयो वार्गवसा हवनश्रुता गत ।।३।।

छन्द—जगती-त्रिष्टुप्

३४. इन्द्रावरुणा वधनाभिरप्रति भेदं वन्वंता प्र सुदासमावत ।
ब्रह्माण्येषा शृणुत हवीमनि सत्या तृत्सूनामभवत्पुरोहित ।।४।।

३५ इन्द्रावरुणावभ्यातपति माघान्यर्यो वनुषामरातय ।
युव हि वस्व उभयस्य राजथो ध स्मा नोवत पार्ये दिवि ।।५।।

३६. युवा हवन्त उभयास आजिष्विन्द्र च वस्वो वरुण च सातये ।
यत्र राजभिर्दशभिर्निबाधितप्र सुदासमावत तृत्सुभिः सह।।६।।

३७ दश राजान समिता अयज्यव सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधु. ।
सत्या नृणामद्म सदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन्देवहूतिषु।।७।।

३८. दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वत सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षत ।
श्वित्यचो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवतो असपत तृत्सवः ।।८।।

३९. वृत्राण्यन्य समिथेषु जिघ्नते व्रतान्यन्यो अभि रक्षते सदा ।
हवामहे वा वृषणा सुवृक्तिभिरस्मे इन्द्रावरुणा शर्म यच्छत ।।९।।

४० अस्मे इन्द्रा वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्न यच्छन्तु महि शर्म सप्रथ ।
अवध्रज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोक सवितुर्मनामहे।।१०।।

—ऋक् ७।८३

३३. हे इन्द्र-वरुण, भूमिके अन्त ध्वस्त दिखाई देते हैं, द्योलोकमें कोलाहल उठा है। जनोंके शत्रु मेरे पास खड़े हैं, (मेरी) पुकार सुनकर तुम रक्षा के साथ पास आओ ।।३।।

३४. हे इन्द्र-वरुण, हथियारो द्वारा शत्रु भेद को मारते तुमने सुदासकी रक्षा की। इनके मन्त्र सुने, युद्धमें तृत्सुओका पुरोहित होना (हमारा) सत्य हुआ ।।४।।

३५. हे इन्द्रवरुण, चारो ओरसे मुझे हिंसक शत्रुओके हथियार सता रहे है। तुम दोनो प्रकारके धनोंके स्वामी हो, हमारी युद्धके दिनोमे रक्षा करो ।।५।।

३६ युद्धमें इन्द्र और वरुण तुम दोनोको धनकी प्राप्तिके लिये पुकारते है। जहा दस राजाओ द्वारा पीडित सुदासको तृत्सुओके साथ तुमने रक्षा की ।।६।।

३७. हे इन्द्र-वरुण, एकत्रित हुये अभक्त दस राजा सुदाससे नही लड सके। अन्नवासी मनुष्योकी स्तुति सत्य हुई, इनके यज्ञोमें देव लोग आये ।।७।।

३८ इन्द्र और वरुण, तुमने दाशराज्ञमें चारो ओरसे घिरे सुदासको बल दिया। जहा श्वेतवर्ण जूडाधारी तृत्सु लोग नमस्कार और स्तुति-से सेवा करते थे ।।८।।

३९ हे इन्द्र-वरुण, एक (इन्द्र) युद्धमें वृत्रको मारते हो, दूसरा (वरुण) सदा व्रतकी रक्षा करता है। हम तुम अभीष्टदाताओकी सुन्दर स्तुति करते है, हमे सुख प्रदान करो ।।९।।

४० इन्द्र-वरुण, मित्र, अर्यमा हमें महाधन, विस्तृत सुख प्रदान करें। सत्यवर्धक अदितिकी ज्योति (अहानिकर) हो, हम सविता देवताका श्लोक गा रहे हैं ।।१०।।

—८।७३

३. विश्वामित्र (१२०० ई० पू०)

यह वसिष्ठ के समवयस्क, और भरद्वाज के तरुण-समकालीन थे। इनके समय में भरद्वाज राजकाज से अवसर-प्राप्त कर चुके थे। वसिष्ठ के प्रताप से जलकर सुदासने विश्वामित्र को अपना पुरोहित बनाया था। दाशराज्ञयुद्ध में भी इनका कुछ हाथ था, पर उतना नहीं, जितना कि बतलाये जाने की कोशिश की जाती है। उदाहरणार्थ दुस्तर नदियों के पार करने की घटना दाशराज्ञयुद्ध में हुई, और इस सफलता का श्रेय वसिष्ठ लेना चाहते हैं, जो ठीक भी है। पर, विश्वामित्र ने व्यास और सतलुजकी जो सुन्दर काव्यमय स्तुति की है, इसका यह अर्थ लगाया जाता है, कि नदियो के पार कराने का काम विश्वामित्र ने किया था। इसमें सन्देह नहीं, इन तीनो प्राचीन

१. नदी स्तुति—

१ प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वे इव विषिते हासमाने।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे **विपाट्छुतुद्री** पयसा जवेते ॥१॥

२ "इन्द्रेषिते प्रसव भिक्षमाणे अच्छा समुद्र रथ्येव याथ ।
समाराणे उर्मिभि पिन्वमाने अन्यावामन्यामप्येति
शुभ्रे ॥२॥

३ अच्छा सिन्धु मातृतमामयास विपाशमुर्वी सुभगामगन्म।
वत्समिव मातरा सरिहाणेसमान योनिमनु सचरति"॥३॥

४ "एना वय पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृत चरति।
न वर्तते प्रसव सर्गतक्त किंयुविप्रो नद्यो जोहवीति"॥४॥

५ "रमध्व मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहुर्तमेवै।
प्रसिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे **कुशिकस्य** सूनु"॥५॥

३. विश्वामित्र (१२०० ई० पू०)

महान् ऋषियों में सबसे अधिक काव्य-प्रतिभा विश्वामित्र को मिली थी।

विश्वामित्र के पिता गाथी, पितामह कुशिक और प्रपितामह इषीरथ थे। इनके पुत्र अष्टक यद्यपि ऋग्वेद में अधिक प्रसिद्ध नहीं है, लेकिन बुद्ध ने इन्हें महान् ऋषियो में गिना है। विश्वामित्र के दूसरे पुत्र मधुच्छन्दा बड़े प्रतापी थे, जिनके पुत्र जेताकी भी ऋचायें मिलती है। यह कहने की आवश्यकता नहीं, कि भरद्वाज, वसिष्ठ की तरह विश्वामित्र भी जमुना से पश्चिम सप्तसिन्धु के निवासी थे। सप्तसिन्धु में उनके लोग सबसे पूर्व सरस्वती की उपत्यका अर्थात् आजकल के हरियाना प्रदेश में रहते थे।

ऋग्वेद का तीसरा मडल इनका है, जिसमें ४७ सूक्त (१–१२, २४–३०, ३२–५३, ५७–६२) इनके रचे है। नवें और दसवें मंडलों में में भी एक दर्जन के करीब इनकी ऋचायें सगृहीत है।

व्यास और सतलुजकी प्रार्थना—

१ कामना करती मुक्त घोडियोकी तरह हिनहिनाती, चाटनेकी इच्छावाली दो शुभ्र माताओ (गौओ) सी पर्वतोकी गोदसे व्यास और सतलुज पय (जल) के साथ दौड रही हैं॥१॥

२ इन्द्र द्वारा प्रेरित, प्रार्थना सुनती तुम दोनो भले रथियोकी तरह समुद्रको जा रही हो। साथ वहती लहरोंसे भरी हे शुभ्रो, तुम परस्पर साथ जा रही हो॥२॥

३ मै मातृतमा सिन्धु (सतलुज) के पास आया, सुभगा विशाल व्यासके पास पहुचा। वछडेको माताओंकी तरह चाटती जो एक स्थानमें सचार करती है॥३॥

४ "हम ये दोनो पय (जल) भरी देव-निर्मित स्थानमें अनुचरण कर रही है। सृष्टिसे चली आज्ञा वन्द होनेकी नही, विप्र, किसलिये तू नदियोको पुकारता है?" ॥४॥

६. "इन्द्रो अस्मा अरदद्वज्रबाहुरपाहन् वृत्र परिधि नदीना।
देवो नयत् सविता सुपाणिस्तस्य वय प्रसवे याम उर्वी ॥६॥

७. प्रवाच्य शश्वधा वीर्यं तदिन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत्।
वि वज्रेण परिषदो जघानायन्नापोयनमिच्छमाना "॥७॥

८. "एतद्वचो जरितर्मापि मृष्ठा आयत्ते घोषानुत्तरा युगानि।
उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि क पुरुषत्रा
नमस्ते" ॥८॥

९ "ओषु स्वसार कारवे श्रृणोत वो दूरादनसा रथेन।
निषू नमध्व भवता सुपारा अधो अक्षा सिन्धव
स्रोत्याभि " ॥९॥

१० "आ ते कारो श्रृणवामा वचासि ययाथ दूरादनसा रथेन।
नि ते नसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचैते"॥१०॥

छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्

११ "यदग त्वा **भरता** सतरेयुर्गव्यन् ग्राम इषित इन्द्रजूत ।
अर्षादह प्रसव सर्गतक्त आ वो वृणे सुमति यज्ञियाना ॥११॥

१२ अतारिषुर्भरता गव्यव समभक्त विप्र सुमतिं नदीना।
प्र पिन्वध्वमिषयन्ती सुराधा आ वक्षणा पृणध्व यात
शीभ ॥१२॥

१३. उद्व ऊर्मि शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुचत।
मादुष्कृन्तौ व्येनसाघ्न्यौ शूनमारता ॥१३॥

—ऋक् ३।३३

५ "हे सत्यवतियो, मेरे सोम्य वचनके लिए क्षण भर गमनसे रुक जाओ। रक्षाका इच्छुक मैं कुशिकका पुत्र बडी स्तुतिसे सिन्धुको बुलाता हूं" ॥५॥

६ "वज्रबाहु इन्द्रने वृत्रको मारा और हमारे लिये नदियोकी परिधि खोदी। सुपाणि सविता देव हमें ले जाता है, उसकी आज्ञामें हम फूली जा रही है ॥६॥

७ सदा उस पराक्रमका बखान करना चाहिए, इन्द्रका कर्म अहि (मेघ) को मारना है। उसने वज्रसे (शत्रु-) परिषदोको मारा, तब स्थान की इच्छा करते जल आये ॥७॥

८ हे स्तुतिकारक, इस वचनको न भूलना। आगे युगोमे तुम्हारा उत्तम घोष (होगा)। हे कवि, उक्थो (स्तुतियो) से हमारी सेवा करो, हमें पुरुष (-अधीन)का न करना, तुम्हें नमस्कार" ॥८॥

९ "हे बहिनो, कविकी सुनो, वह बैलके रथसे तुम्हारे पास दूरसे आया है। नदियो, नीची हो धाराओंसे धुरेके नीचे हो सुपारा हो जाओ" ॥९॥

१०. "हे कवि, तेरे वचनोको हम सुनती हैं, तू दूरसे बैलके रथसे आया है। दूध पिलानेकी इच्छुक स्त्री (या) पुरुषके लिए युवतीकी तरह हम तेरे लिये नीची हो जाती हैं" ॥१०॥

११. "हे प्रियो, जो गो-इच्छुक इन्द्र-प्रेरित ग्राम इच्छित भारत लोग तुम्हें पार कर जायें, (तो) सृष्टिसे चली आज्ञा पानेसे मैं तुम पूजनीयो की स्तुति करूंगा" ॥११॥

१२ गौ-इच्छुक भरत पार हो गये, विप्रने नदियोकी सुदर स्तुति की। "अन्न देती सुधनवाली तुम बढती पूरी करती जल्दी जाओ" ॥१२॥

१३. "हे नदियो, तुम्हारी शान्त लहरें बहें, पानी जूयेकी रस्सीको छोड दे। निष्पाप निष्कलुष अनिदनीय (तुम) दोनो मोटी न होओ" ॥१३॥

—३।३३

२. उषा—

१४ उषो वाजेन वाजिनि प्रचेता स्तोम जुषस्व गृणतो मघोनि।
पुराणी देवि युवति पुरन्धिरनुव्रत चरसि विश्ववारे ॥१॥

१५ उषो देवमर्त्या विभाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णा पृथुपाजसो
ये ॥२॥

१६ उष प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतु ।
समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्याववृत्स्व ॥३॥

१७ अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी।
स्वर्जनन्ती सुभगा सुदसा आन्ताद्दिव पप्रथ आ पृथिव्या
॥४॥

१, अच्छा वो देवीमुषस विभाती प्र वो भरध्व नमसा सुवृक्ति
ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत् प्र रोचना रुरुचे
रण्वसन्दृक् ॥५॥

१९. ऋतावरी दिवो अर्कैरवोध्या रेवति रोदसि चित्रमस्थात्।
आयतीमग्न उषस विभाती वाममेषि द्रविण भिक्षमाण.
॥६॥

२० ऋतस्य वुध्न उषसाभिषण्यन् वृषा मही रोदसी आविवेश।
मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानु विदधे पुरुत्रा ॥७॥

—ऋक् ३।६१

छन्द—त्रिष्टुप

२. उषाका वर्णन--

१४ अन्नसे अन्नवाली, धनवाली प्रचेतनावाली हे उषा, गायकके स्तोत्रको ग्रहण करो। विश्वको पसन्द युवती महिला हे पुरानी देवी, तुम व्रत-अनुसार प्रिय चलती हो ॥१॥

१५ अमर सुभाषित को प्रेरणा करती सुवर्ण-रथवाली हे देवि उषा, चमको। सुनियन्त्रित सुनहले रंगके बड़े शक्तिशाली जो घोड़े हैं, (वह) तुम्हें वहन करें ॥२॥

१६ हे उषा, तुम भुवनोंके सामने, विश्वके ऊपर अमृतके ध्वजके समान रहती हो। एक ही अर्थके लिए विचरण करती (सूर्यके) चक्र सी हे अतिनवीना, तुम चलो ॥३॥

१७ सूर्यकी पत्नी धनवन्ती उषा अंधकारको नष्ट करती हुई सी जा रही है। वह सुभगा सुदर्शना द्योलोकके अंतसे पृथिवी तक प्रकाश उत्पादन करती फैली ॥४॥

१८ "हे (स्तोताओ), अपने सामने चमकती उषाको नमस्कार द्वारा सुन्दर स्तुति अर्पित करो। ऊपर द्यौमें मधुधारिणी तेजको स्थापित करती, रोचना, रमणीय-दर्शना वह (उषा) दीप्त हो रही है ॥५॥

१९ सत्यवती द्योलोककी किरणोंसे जाती, वह धनवती द्योलोक और पृथिवीमें विचित्र रूपसे स्थित है। हे अग्नि, चमकती आती उषासे प्रार्थना करते तुम प्रिय धन पाते हो ॥६॥

२० उषाको प्रेरणा करते सत्य शरीर वृषा (सूर्य) महान् द्यौ-पृथिवीमें प्रवेश करते हैं। मित्र (स्वरूप) वरुणकी माया उषाने (अपनी) सोने सी किरणोंको सर्वत्र फैलाया ॥७॥

—३।६१

४. वामदेव (१२०० ई० पू०)

यह गौतम के पुत्र और रहूगण के पौत्र थे। वामदेव यद्यपि आदिम तीन ऋषियों के समान राजनीतिक प्रभाव नहीं रखते थे, लेकिन शुद्ध ऋषि के तौर पर इनका भारी महत्व है। ऋग्वेदका चौथा मंडल प्रायः सारा इन्हींकी कृति है, जिसके ५८ सूक्तों में तीन (४२-४४) छोड़कर सभी इनके है। यदि राजनीतिक प्रभाव में ये औरों से पिछड़े हुये थे, तो

१. उषा—

१ इदमु त्यत् पुरुतम पुरस्ताज्ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात्।
नून दिवो दुहितरो विभातीर्गातु कृणवन्नुपसो जनाय ॥१॥

२ अस्थुरु चित्रा उषस पुरस्तान्मिता इव स्वरवोऽध्वरेषु।
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारोच्छन्तीरव्रञ्छुचय. पावका ॥२॥

३. उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान्राधो देयायोषसो मघोनी.।
अचित्रे अन्त **पणय** ससन्त्ववुध्यमानास्तमसो विमध्ये॥३॥

४. कुवित् स देवी. सनयो नवो वा यामो बभूयादुषसो वो अद्य।
येना नवग्वे अंगिरे दशग्वे सप्तास्ये रेवती रेवदूष ॥४॥

५. यूय हि देवी ऋतयुग्भिरश्वै परिप्रायाथ भुवनानि सद्य.।
प्रबोधयन्तीरुषस ससन्त द्विपाच्चतुष्पाच्च रथाय जीव ॥५॥

६. क्व स्विदासा कतमा पुराणी यया विधाना विदधुर्ऋभूणा।
शुभ यच्छुभ्रा उषसश्चरन्ति न वि ज्ञायन्ते सदृशीरजुर्या ॥६॥

छन्द—त्रिष्टुप्

७ ता घा ता भद्रा उषस. पुरासुरभिष्टिद्युम्ना ऋतजातसत्या।
यास्वीजान शशमान उक्थै स्तुवञ्छसन्द्रविण सद्य आप ॥७॥

४. वामदेव

देवता के साक्षात्कार और देवता का आवेश लेने में यह आगे थे। कितनी ही ऋचाओं में देवताओं ने इनके मुख से "मै" कहकर बुलवाया है। इस प्रकार की स्तुति रचने वाले यही सर्वप्रथम (और शायद अन्तिम भी) ऋषि थे। अपना गोत्र इन्होंने नहीं चलाया। इनके पिता के नाम से यह और इनकी संतानें गौतम प्रसिद्ध हुईं। यह तीनों ऋषियों के समकालीन, किन्तु सबसे तरुण थे।

१. उषा—

१ अन्धकारको नष्ट करती पूर्वमें यह वह अति विशाल ज्योति उठी। निश्चय द्यौकी दुहिता उषायें जनोको गमनशील करती भासित होती है ॥१॥

२ यज्ञमें निर्मित यूपो सी विचित्र उषाये पूर्वमे अवस्थित हुई। वह अन्धकारके द्वारको खोलती पवित्र किरणोको प्रकाशित करती हैं ॥ २ ॥

३ आज धनवन्ती उषाये अन्न देनेके लिये भोजोको चेताती उग रही हैं। अधकार के बीच न जाग, भीतरसे अविचित्र पणि सो जायें ॥ ३ ॥

४ हे उषा देवियो, जिस रथके द्वारा सप्त मुखवाले नवग्व और दशग्व अंगिराओको तुमने धनवान् किया, हे धनवंती, वही तुम्हारा नया या पुरातन रथ आज यहा बहुवार आवे ॥ ४ ॥

५ हे देवियो, तुम सत्य से जुडे घोड़ो द्वारा तुरत भुवनोमें व्याप्त हो जाती हो। सोते हुये दो पायो और चौपायोको जगाती तुम गमनके लिये जीवोको चलाती हो ॥ ५ ॥

६. इनमें कौन पुरानी हुकां है, जिसके लिये ऋभुओ के पात्र बने। जो कि शुभ्र उषायें विचरण करती है, (इससे कभी) न पुरानी होनेवाली सुदरी उषायें नहीं पहचानी जाती ॥ ६ ॥

७ वही सत्या भद्र उषायें प्राचीनकालसे ऋतुसे उत्पन्न इच्छित धन दें, जिनको यज्ञकर्ता उक्थो द्वारा प्रशसा करते स्तुति करने तुरन्त अच्छे धनको पाते है ॥७॥

८ ता आचरन्ति समना पुरस्तात् समानत समना पप्रथाना ।
ऋतस्य देवी सदसो वुधाना गवा न सर्गा उपसो
जरन्ते ॥८॥

९ ता इन्नेव समना समानीरमीतवर्णा उपसश्चरन्ति ।
गूहन्ती रभ्वमसित रुशद्भि शुक्रास्तनूभि शुचयो
रुचाना ॥९॥

१० रयि दिवो दुहितरो विभाती प्रजावन्त यच्छतास्मासु देवी ।
स्योनादाव प्रतिवुध्यमाना सुवीर्यस्य पतय
स्याम ॥१०॥

११ तद्वो दिवो दुहितरो विभातिरुपब्रुव उपसो यज्ञकेतु ।
वय स्याम यशसो जनेषु तद्द्यौश्च धत्ता पृथिवी च
देवी ॥११॥

—ऋक् ४।५१

२. क्षेत्रपति—

१२ क्षेत्रस्य पतिना वय हितेनेव जयामसि ।
गामश्व पोषयित्वा स नो मृळातीदृशे ॥१॥

१३ क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिँ धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व ।
मधुश्चुत घृतमिव सुपूतमृतस्य न पतयो मृळयन्तु ॥२॥

१४ मधुमती रोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्ष ।
क्षेत्रस्य पतिर्म्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेन चरेम ॥३॥

१५ शुन वाहा शुन नर शुन कृषतु लागल ।
शुन वरत्रा बध्यन्ता शुनमष्टामुदिगय ॥४॥

१६ शुनाषीराविमा वाच जुषथा यद्दिवि चक्रथु पय ।
तेनेमामुपसिचत ॥५॥

८ वह (उषायें) पूर्वसे एक समान सर्वत्र फैलती सर्वत्र विचरण करती है। ऋत की देवियाँ उषायें वुधोकी सभामें गायो सी मुक्ति से प्रार्थित होती है ।।८।।

९. वह उषायें सुन्दर वर्णोवाली नवीना सी विचरती है। (वह) चमकते शुक्ल शरीरो से अन्धकार को हटाती पवित्र रोचमान है ।।९।।

१० प्रकाश करती द्यौ लोक की पुत्री देवियाँ, उषायें हमें प्रजा-सहित धन प्रदान करें। सुखके लिए जागरूक हम सुवीर्यके पति हो ।।१०।।

११ हे द्यौलोककी पुत्रियो, प्रकाशमान उषाओ, यज्ञ याजक।'
हम जनोमे यशस्वी होवें, द्यौ और पृथिवी देवी उसे धारण करें ।।११।।

— ४।५१

२. क्षेत्रपति—

१२ हितैपीकी तरह क्षेत्रपतिके साथ हम जय करें।
वह देवता इस प्रकार गौ और अश्वोका पोपण करता हमें सुखी वनावे ।।१।।

१३. हे क्षेत्रके पति, धेनु जैसे हो वैसे मधुमान् विपुल दूधको हमें दो। अमृत के पति हमें घृतकी तरह तृप्तिकारक मधु स्रावी कर सुखी वनायें ।।२।।

१४ हमारे लिये औपधि, द्यौ और जल मधुर हो, आकाश मधुमान् हो। क्षेत्रपति हमारे लिए मधुमान् हो, हम अपीडित हो उसका अनुसरण करें ।।३।।

१५ हे शुनासीर देवता, वहनेवाले (वैल) मगलकारी हो, नर मगल-कारी हो, हल मगल जोतें। रस्सी मगलयुक्त, वधे कोडा मगल-युक्त प्रेरणा करे ।।४।।

१६ हे शना और सीर, इस मेरे वचनको सेवन करो, द्यौ-लोकमें जो जल वना, उससे मुझे सिंचित करो ।।५।।

१७ अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा।
यथा न सुभगासमि यथा न सुफलासमि ॥६॥
१८ इन्द्र सीता निगृह्णातु ता पूषानुयच्छतु।
सा न पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरा समा ॥७॥
१९ शुन न फाला वि कृपन्तु भूमिं शुन कीनाशा अभियन्तु वाहै. ।
शुन पर्जन्यो मधुना पयोभि शुनासीरा शुनमस्मासु धत्त ॥८॥

—ऋक् ४।५७

५. सुदास (११७५ ई० पू०)

वध्र्यश्व का पौत्र और दिवोदास का पुत्र सुदास सप्तसिन्धु का सबसे बड़ा प्रतापी राजा था, जिसके महान् विजयो में वसिष्ठ और

१. इन्द्र—

१. प्रोष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत।
अभीके चिदु लोककृत् सगे समत्सु वृत्रहास्माक बोधि चोदिता।
नभन्तामन्यकेषा ज्याका अधि धन्वसु ॥१॥
२ त्व सिन्धुरवासृजो धराचो अहन्नहिं।
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्व पुष्यसि वार्य त त्वा परिष्वजामहे।
नभतामन्यकेषा ज्याका अधि धन्वसु ॥२॥
३ विषु विश्वा अरातयो नशन्त नो धिय ।
अस्तासि शत्रवे वध यो न इन्द्र जिघासति या ते रातिर्ददिर्वसु।
नभन्तामन्यकेषा ज्याका अधि धन्वसु ॥३॥

१७ हे सुभगा (हलवाली) सीता, तुम्हें हम वन्दना करते हैं, तुम हो।
जैसे हमारे लिए तुम सुभगा हो, जैसे हमारे लिए सुफला हो ।।६।।

१८ इन्द्र सीत (हराई) को धारण करें, उषा उसका नियमन करें।
वह जलवाली आगे-आगे आनेवाले वर्षोंमें हमें तृप्त करे ।।७।।

१९ हमारे लिए फाल भूमिको मगलपूर्वक जोतें, रक्षक बैलोके साथ मगलपूर्वक चलें। मेघ मधु जलोके साथ मगल करें, शुनासीर (कृषि देवता) हमारा मगल करे ।।८।।

— ४।५७

५. सुदास (११७५ ई० पू०)

विश्वामित्र ने हाथ बटाया था। इसे ऋषि बनने की जरूरत नहीं थी, तो भी इसके नाम से एक सूक्त ऋग्वेद के दसवें मंडल में (१३३) संगृहीत है, जिसमें हथियार की महिमा बतलाती है, कि यह उन्हीं का धनी था।

१. इन्द्रका वर्णन—

१ जिसकी सेना रथके सामने है, उस इन्द्रकी सुअर्चना करो।
युद्धमे (जो) लोककर्ता सगमें रहता है, वह प्रेरक वृत्र-हन्ता हमारा ख्याल रक्खे। दूसरोकी प्रत्यचाये रेगिस्तानोमें टूट जायें ।।१।।

२ अहिको तुमने मारा और नीचे जानेवाली नदीको मुक्त किया।
हे इन्द्र, तुम शत्रुहीन पैदा हुए, विश्वको पालते हो। उस तुम श्रेष्ठको हम आलिगन करते हैं। दूसरोकी प्रत्यचायें रेगिस्तानोमें टूट जायें ।।२।।

३ सारे अदाता हमारी बुद्धिसे हट जायें।
हे इन्द्र, जो हमें मारना चाहता है, उम शत्रुका वध करो। जोकि तेरा धनका देना है। दूसरोकी प्रत्यचाये रेगिस्तानोमें टूट जायें ।।३।।

४. यो न इन्द्राभितो जनो वृकायुरादिदेशति।
अधस्पद तमी कृधि विबाधो असि सासहि ।
नभतामन्यकेषा ज्याका अधि धन्वसु ॥४॥

५ यो न इन्द्राभिदासति सनाभिर्यश्च निप्टय ।
अव तस्य वल तिर महीव द्यौरध त्मना ।
नभतामन्यकेषा ज्याका अधि धन्वसु ॥५॥

६ वयमिन्द्र त्वायव सखित्वमारभामहे।
ऋतस्य न पथा नयाति विश्वानि दुरिता।
नभतामन्यकेषा ज्याका अधि धन्वसु ॥६॥

७. अस्मभ्य सु त्वमिन्द्र ता शिक्ष या दोहते प्रति वर जरित्रे। ।
अच्छिद्रोघ्नी पीपयद्यथा न सहस्रधारा पयसा मही गौ ॥७।

—ऋक् १०।१३३

६. गर्ग भारद्वाज (११७५ ई० पू०)

भरद्वाज के यह पुत्र और अपने पिता के कार्मों में सहायक थे। ऋग्वेद के छठे मडल में इनका सिर्फ एक सूक्त (४७) सुरक्षित है, जिसके अशों को हमने यहां उद्धृत किया है। दिवोदास और साञ्जंय के यह

छन्द-शक्वरी

१. सोमादि देवता—

१ स्वादुष्किलाय मधुमा उताय तीव्र किलाय रसवा उताय।
उता न्वस्य पपिवासमिन्द्र न कश्चन सहत आहवेषु ॥१॥

२ अय स्वादुरिह मदिष्ट आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद।
पुरूणि यश्चोत्ना शबरस्य वि ‘नवर्ति नव च देह्यो हन् ॥२॥

४ हे इन्द्र, भेड़ियेकी तरह जो जन हमारे चारो तरफ घूमते हैं, उन्हें नीचे स्थान पर करो। तुम बाधक और अत्यन्त पराक्रमी हो। दूसरोकी प्रत्यचायें रेगिस्तानोमें टूट जायें ॥४॥

५ हे इन्द्र, अपनी जातिका और पराया जो (भी) हमें दास बनाना चाहता। उसके बलको महान् द्योकी तरह नीचा करो। दूसरोकी प्रत्यचायें रेगिस्तानोमें टूट जायें ॥५॥

६ हे इन्द्र, हम तुम्हारे अनुगामी (तुमसे) मित्रता करते हैं। हमें सारी बुराइयोंसे (हटा) सत्यके पथ पर ले चलो। दूसरोकी प्रत्यचायें रेगिस्तानोमें टूट जायें ॥६॥

७ हे इन्द्र, तुम हमें उसे सिखाओ, जो कि स्तुतिकर्ताके मनोरथको पूरा करते हो। महीरूपी गौ सहस्रधार वाले पयसे निश्छिद्र हो हमारे लिये दुहाये ॥७॥

६. गर्ग भारद्वाज (१२७५ ई० पू०)

विशेष कृपापात्र थे। दिवोदास के मरने के बाद भरद्वाज-वंश की प्रभुता खतम हो गई, लेकिन गर्गने इसके लिये शक्ति की तरह कोई विरोध प्रदर्शित नहीं किया। हां, सुदास का नाम न लेकर मौन द्वारा अपने असंतोषको प्रकट जरूर किया। यह गर्ग-गोत्र के प्रवर्तक है।

१. सोम, रथ, दुन्दुभी, इन्द्रका वर्णन—

१ यह सोम स्वादु और यह मधुर है, यह तीखा और यह रसवान् है। हे इन्द्र, जिसने इसे पिया, उसके सामने युद्धमे कोई नही ठहर सकता ॥

२ यह (सोम) यहां स्वादु बहुत मादक है, जिसे (पी) वृत्र-युद्धके समय इन्द्र मस्त हुआ। जिस इन्द्रने बहुत प्रसन्न हो शंबर के ९९ पुरो (गढो) को नष्ट किया ॥२॥

३ अय मे पीत उदियर्ती वाचमय मनीषामुशतीमजीग ।
अय पळुर्वीरमिमीत धीरा न याभ्यो भुवन कच्चनारे॥३॥

४ अय स यो वरिमाण पृथिव्या वर्ष्माण दिवो अकृणोदय स ।
अय पीयूप तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाधारोर्वन्तरिक्ष ॥४॥

५. अय विदच्चित्रदृशीकमर्ण शुक्रसद्मनामुषसामनीके।
अय महान्महता स्कम्भनेनोद्यामस्तभ्नाद् वृषभो
मरुत्वान् ॥५॥

६ रूप रूप प्रतिरूपो वभूव तदस्य रूप प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभि पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरय
शता दश ॥१८॥

७ युजानो हरिता रथे भूरि त्वष्टेह राजति।
को विश्वाहा द्विषत. पक्ष आसत उतासीनेषु सूरिषु ॥१९॥

८. अगव्यूति क्षेत्रमागन्म देवा उर्वी सती भूमिरहूरणाहूत्।
बृहस्पते प्र चिकित्सा गविष्टावित्था सते जरित्र इन्द्र
पन्था ॥२०॥

९. दिवे दिवे सदृशीरन्यमर्घं कृष्णा असेधदप सद्मनो जा ।
अहन्दासा वृपभोव वस्नयन्तोदव्रजे **वर्चिना शम्बर** च ॥२१

१०. **प्रस्तोक** इन्नु राधसस्त इन्द्र दशकोशयीर्दश वाजिनो दात्।
दिवोदासादतिथिग्वस्य राध शावर वसु प्रत्यग्रभीष्म।२२।

११ दशाश्वान्दशकोशान्दश वस्त्राधिभोजना।
दशो हिरण्यपिण्डा**न्दिवोदासा**दसानिष ॥२३॥

१२ दश रथान्प्रष्टिमत. शत गा अथर्वभ्य ।
अश्वत्थः पायवे दात ॥२४॥

३ पीनेपर यह (सोम) मेरी वाणीको उठाता है, यह अभीप्ट वुद्धिको जगाता है। इस धीरने छओ पृथवियोको वनाया, (इसके) पास भुवनमें कोई नही रह सकता ॥३॥

४ यही वह है, जिसने कि पृथिवीकी श्रेष्ठता (वनाई), और द्योलोक के विस्तारको वनाया, वह यही है । इस सोमने तीनो आधारोमें विस्तृत अन्तरिक्षमें अमृतको धारण किया ॥४॥

५ इसने श्वेत गृहवाली उपाओंके पास अद्भुत दर्शनवाले सूर्यको प्रकट किया। इस शक्तिशाली इच्छावर्पो ने महा स्तम्भ द्वारा स्वर्गको स्थिर किया ॥५॥

६ सो इस (यजमान)को रूप दिखलानेके लिए एक-एक रूपमें वह प्रतिरूप हुआ। मायाओ द्वारा इन्द्र अनेक रूप धारण करता है। इसके दस सौ घोडे जुडे होते हैं॥१८॥

७ रथमें घोडोको जोडे, त्वप्टा यहाँ सुविराजते है।
वैठे स्तुतिकर्ताओंके वीच कौन सव दिन जाकर शत्रुओके विरुद्ध पक्ष लेता है॥१९॥

८ देवो, हम ऐसे विना गायवाले क्षेत्रमें आ गये, विस्तृत होते (भी जो) भूमि दस्युओकी है। हे वृहस्पति, गौ-कूट में हमें संचालित करो, इस तरह हे इन्द्र, स्तुतिकर्ताको पथ प्रदान करो ॥२०॥

९ दिन-दिन समान दूसरे आये (दिन)को प्रकाशित किया और रातको स्थानसे हटाया। उस वृपभने उदव्रजमें वसते दासोको वर्चिके साथ शम्वरको नष्ट किया॥२१॥

१० हे इन्द्र, तेरे स्तुतिकर्ताओंको प्रस्तोकने दस कोशोके साथ दस घोडे दिये। शम्वर के धनको अतिथिग्व दिवोदाससे प्राप्त कर हमने ग्रहण किया॥२२॥

११ दस घोडे दस कोश दस वस्त्रो सहित भोजन,
दस सोनेके डले दिवोदाससे हमने पाये॥२३॥

१२ अश्वत्थने घोडो सहति दस रथ और सौ गायें अथर्वोके लिए पायुको दी ॥२४॥

१३ महि राधो विश्वजन्य दधानान्भरद्वाजान् ।
सार्ञ्जयो अभ्ययष्ट ॥२५॥

१४ वनस्पते वीळ्वगो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरण सुवीर ।
गोभि सन्नद्धो असि वीळ्यस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥२६॥

१५ दिवस्पृथिव्या पर्योज उद्भृत वनस्पतिभ्य पर्याभृत सह ।
अपामोज्मान परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्र हविषा रथ यज ॥२७॥

१६ इद्रस्य वज्रो मरुतामनीक मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभि. ।
सेमा नो हव्यदाति जुषाणो देवरथ प्रति हव्या गृभाय ॥२८॥

१७ उप श्वासय पृथिवीमुत द्या पुरुत्रा ते मनुता विष्ठित जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीया अपसेध शत्रून्॥२९॥

१८ आ क्रदय वलमोजो न आ धा नि ष्टनि हि दुरिता बाधमान ।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीळयस्व ॥३०

१९ आमूरज प्रत्यावर्तयेमा केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णा श्चरति नरो स्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥३१॥

—ऋक् ६।४७

छन्द—त्रिष्टुप, अनुष्टुप्, गायत्री और जगती

१३ विश्वजनीन बड़े धनको ग्रहण करते भरद्वाजोको संजयपुत्रने पूजा ॥२५॥

१४ हे वनस्पति (रथ), दृढ अगोवाले होओ, हमारे मित्र रक्षक सुवीर होवें। गोचर्मसे तुम वधे दृढ हो। तुमपर वैठनेवाला शत्रुओ को जीतें ॥२६॥

१५ द्यौ और पृथिवीके ओजसे वना वनस्पतियोंके वलसे परिधारित। पानीकी तरह् वेगवान् गोचर्मसे आच्छादित इन्द्रके वज्र जैसे (इस) रथको हविसे पूजो ॥२७॥

१६ हे रथदेव, तुम इन्द्रके वज्र (हो) मरुतोंके अग्रगामी मित्र (सूर्य)के गर्भ (हो) और वरुणकी नाभि हो। इस हमारे हव्यदान को सेवन करते हवि ग्रहण करो ॥२८॥

१७ हे दुन्दुभि, पृथिवी और द्यौमें सर्वत्र वजो, स्थावर-जगम तुझे जाने। इन्द्र और देवताओंके साथ (हो) तुम शत्रुओको दूरसे दूर हटादो ॥२९॥

१८ हे दुन्दुभि, दुष्ट शत्रुओको पीड़ित करते चिल्लाओ, हमारेमें वल और ओज धारण कराओ। दुष्टोको यहांसे दूर करो। तुम इन्द्रकी मुष्टि हो, हमें दृढ करो ॥३०॥

१९ हे इन्द्र, इन हमारी गायोको लौटाओ, ध्वजा-सहित दुन्दुभी खूव वजती रहे। हमारे नेता घोडोपर सचार करे हमारे रथी विजयी हो ॥३१॥

—६।४७

७. पायु भारद्वाज (११७५ ई० पू०)

यह भरद्वाज के पुत्र और शायद गर्ग के छोटे भाई थे। इनका छठे मडल में सिर्फ एक सूक्त (७५) और दसवें मडलमें एक (८७) कुल

१. वर्म, धनु आदि—

१ जीमूतस्येव भवति प्रतीक यद्वर्मी याति समदामुपस्थे।
अनाविद्धया तन्वा जय त्व स त्वा वर्मणो महिमा
पिपर्तु॥१॥

२ धन्वना गा धन्वनाजि जयेम धन्वना तीव्रा समदो जयेम।
धनु शत्रोरपकाम कृणोति धन्वना सर्वा॑ प्रदिशो
जयेम ॥२॥

३ वक्ष्यन्ती वेदा गनीगन्ति कर्णं प्रिय सखाय परिषस्वजाना।
योषेव शिक्ते वितताधि धन्वन् ज्या इय समने
पारयती ॥३॥

४ ते आचरयती समनेव योषा मातेव पुत्र विभृतामुपस्थे।
अप शत्रून्विध्यता सविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती
अमित्रान् ॥४॥

५ वह्वीना पिता वहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य।
इषुधि सका पृतनाश्च सर्वा पृष्ठे निनद्धो जयति
प्रसूत ॥५॥

६ रथे तिष्ठन्नयति वाजिन पुरो यत्र यत्र कामयते सुषारथि ।
अभीशूना महिमान पनायत मन पश्चादनु यच्छन्ति
रश्मय ॥६॥

७. पायु

सूक्त मिलते हैं। अतिथिग्व (दिवोदास) के दानकी प्रशंसा इन्होने
ी हैं।

वर्म, २ धनुष, ३ ज्या, ४ आर्त्नी, ५ तूणीर, ६ सारथी, लगाम, ७ घोडा,
रथ, ९ रथ-रक्षक, १० स्तोता, ११,१२ वाण, १३ चाबुक, १४ हस्तत्राण,
५,१६ वाण, १७ युद्धभूमि, १८ कवच, १९ देवगणका वर्णन

१ मेघका प्रतीक होता है, जब वर्मधारी युद्ध-क्षेत्रमें जाता है। तुम अक्षत शरीरसे विजयी होओ, वर्मकी वह महिमा तुम्हारी रक्षा करे ॥१॥

२ धनुपसे गौओको, धनुषसे युद्धको हम जीतें, धनुपसे तीव्र सेनाओको जीतें। धनुष शत्रुकी कामनाओको वेकार करता है। हम धनुषसे सारी दिशायें जीतें ॥२॥

३ प्रिय सखाको आलिंगन करती स्त्रीसी यह ज्या कानमें मधुर बोलती-सी पास आती, युद्ध पार करती है। यह ज्या फैले धनुषमें वाणको आलिंगन करती है ॥३॥

४ यह दोनो आर्त्नियाँ (चापके छोर), शत्रुके प्रति विरक्त स्त्रीकी तरह आचरण करती, पुत्रको माताकी तरह युद्धमें रक्षा करें। जानती हिलती शत्रुओको छिन्न करे ॥४॥

५ तूणीर वहुतोका पिता, इसके वहुत-से (वाण) पुत्र है। युद्धमें पहुँचकर, यह शब्द करता है। पीठपर वधा (वाण) प्रसव करता सारी सेनाको जीतता है ॥५॥

६ अच्छा सारथी रथपर बैठा जहाँ-जहाँ चाहता है, (वहाँ वहाँ) घोडोको आगे ले जाता है। लगामोकी महिमा वखानो। लगाम इच्छानुसार पीछे से नियन्त्रण करती है ॥६॥

७ तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयोश्वा रथेभि सह
वाजयन्त ।
अवक्रामत प्रपदैरमित्रान् क्षिणति शत्रूँरनपव्ययत ॥७॥

८. रथवाहन हविरस्य नाम यत्रायुध निहितमस्य वर्म।
तत्रा रथमुप शग्म सदेम विश्वाहा वय सुमनस्यमाना ॥८॥

९ स्वादुषसद पितरो वयोधा कृच्छ्रेश्रित शक्तिवतो गभीरा
चित्रसेना इषुवला अमृध्रा सतो वीरा उरसो
व्रातसाहा ॥९॥

१० ब्राह्मणास पितर सोम्यास शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा
पूषा न पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशस
ईशत ॥१०॥

११ सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभि सन्नद्धा पतति प्रसूता।
यत्रा नरः स च वि च द्रवति तत्रास्मभ्यमिषव
शर्म यसन् ॥११॥

१२ ऋजीते परि वृग्धि नो'श्मा भवतु नस्तनू ।
सोमो अधिब्रवीतु नो' दिति शर्म यच्छतु ॥१२॥

१३ आ जघति सान्वेषा जघनाँ उप जिघ्नते।
अश्वाजनि प्रचेतसो' श्वान्समत्सु चोदय ॥१३॥

१४. अहिरिव भोगै पर्येति बाहु ज्याया हेतिं परिबाधमान ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान्पुमास परि-
पातु विश्वत ॥१४॥

१५ आलाक्ता या रुरुशीर्ष्ण्यथो यस्या अयोमुख।
इद पर्जन्यरेतस इष्वै देव्यै बृहन्नम ॥१५॥

१६ अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्मसशिते।
गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व मामीषा कचनोच्छिष ॥१६॥

७ धूल उडानेवाले वेग करते रथोके साथ दौडते घोडे तीव्र घोप करते हैं। (स्वय) न भागते पैरोसे शत्रुओको रौंदते (उन्हे) नष्ट करते हैं ॥७॥

८ जहां इसका आयुध और वर्म रक्खा है, सो रथपर चलती इसका हवि है। हम सव दिन प्रसन्न हो सुखद रथके पास वहाँ जाते है ॥८॥

९ स्वादु अन्नवान् आयुष्मान् कठिनाईमें आश्रित शक्तिमान् गम्भीर विचित्र सेनावाले वाणवलवाले अनाशक शत्रु विजेता महान् वीर पितर (हैं) ॥९॥

१० हे सौम्य पितर, ब्राह्मण, द्यौ और पृथिवी पाप-रहित हो हमारे कल्याणके लिए हो। सत्य वढाते पूपन् पापसे हमारी रक्षा करे, पापी हमारे ऊपर शासन न करें ॥१०॥

११ (वाण) सुन्दर पख धारता है, इसका मृगका दांत (फल) गोचर्मसे वधा फेंकनेपर गिरता है। जहां नेता साथ या अलग-अलग दौड़ते हैं, वहा सयत वाण हमें सुख दे ॥११॥

१२ हे वाण, हमें वढाओ, हमारा शरीर पत्थर-सा हो।
सोम हमारी ओर वोले, अदिति हमे सुख दे ॥१२॥

१३ तुमसे समझदार घोडोंके पीठपर मारते है, जघनपर मारते है।
हे चावुक, अश्वोको युद्धमे प्रेरित करो ॥१३॥

१४ सर्पकी तरह फणो द्वारा वाहुको लपेटते ज्यासे आघातको रोकते सारे ज्ञेयोको जानते पुरुपरूपी हस्तघ्न चारो ओरसे पुरुपकी रक्षा करे ॥१४॥

१५ जो विपाक्त और तीखी छोरवाली है, जिसका मुख तावेका है। पर्जन्यमे उत्पन्न (उस) इपु (वाण) देवीको यह (हमारा) वडा नमस्कार है ॥१५॥

१६ छोडनेपर मन्त्र-द्वारा तीव्र किये हे वाण, तुम दूर गिरो।
जाओ अमियोको प्राप्त होओ, उनमें किसीको न छोडो ॥१६॥

५. दक्षिणावान् प्रथमो हूत एधि दक्षिणावान् ग्रामणी-
रग्रमेति ।
तमेव मन्ये नृपतिं जनानां यः प्रथमो दक्षिणामा-
विवाय ॥५॥

६ तमेव ऋपि तमु ब्रह्माणमाहुर्यज्ञन्यं सामगामुक्थशासं ।
स शुक्रस्य तन्वो वेद तिस्रो यः प्रथमो दक्षिणया रराध ॥६॥

७ दक्षिणाश्वं दक्षिणा गां ददाति दक्षिणा चन्द्रमुत
यद्धिरण्यं ॥७॥
दक्षिणान्नं वनुते यो न आत्मा दक्षिणां वर्म कृणुते
विजानन् ॥७॥

८ न भोजा ममुर्न न्यर्थमीयुर्न रिष्यति न व्यथते ह भोजा ।
इदं यद्विश्वं भुवनं स्वश्चैतत् सर्वं दक्षिणैभ्यो ददाति ॥८॥

९ भोजा जिग्युः सुरभिं योनिमग्रे भोजा जिग्युर्वध्वं या सुवासाः ।
भोजा जिग्युरन्तः पेयं सुराया भोजा जिग्युर्ये अहूताः ।
प्रयन्ति ॥९॥

१० भोजायाश्वं समृजन्त्याशुं भोजायास्ते कन्या शुम्भमाना ।
भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्म परिष्कृतं देवमानेव
चित्रं ॥१०॥

११ भोजमश्वाः सुष्ठुवाहो वहन्ति सुवृद्रथो वर्तते दक्षिणायाः ।
भोजं देवासो वता भरेषु भोजः शत्रून्त्समनीकेषु
जेता ॥११॥

—ऋक् १०।१०७

५. दक्षिणा देनेवाला प्रथम निमन्त्रित होता है। दक्षिणावान् ग्रामणी मुखिया बनता है। जो पहले दक्षिणाको देते है, उसे ही मै जनोका नृपति मानता हूँ ॥५॥

६ उसे ही ऋषि उसीको ब्रह्मा यज्ञपति सामगायक उक्थके वक्ता कहते है। वह शुक्र (अग्नि) के तीनो तनुओको जानता, जिसने कि पहले दक्षिणासे आराधना की ॥६॥

७ दक्षिणा गायको देती है, दक्षिणा मनोहर-सोनेको देती है। जो हमारी आत्मा है, उस अन्नको दक्षिणा देती है, जानते हुए दक्षिणा वर्म बनती है ॥७॥

८ भोज (देनेवाले) नही मरते न अर्थहीन होते, न हानि उठाते और न भोज लोग पीडित होते। यह जो सारा भुवन और यह सब स्वर्ग है, (इन) सबको दक्षिणा इन्हें देती है ॥८॥

९ भोज लोग सुरभिके मूल (गाय) को पहले पाते हैं। भोज सुन्दर वस्त्र-वाली वधूको पाते है। भोज सुराके आन्तरिक पेयको पाते है। भोज विना बुलाये आक्रान्ताओको जीतते है ॥९॥

१० भोजको (लोग) शीघ्रगामी अश्व प्रदान करते है, भोजके लिए सुन्दरी कन्या है। भोजका यह घर पुष्करणी-सा परिष्कृत और देव-विमान-सा विचित्र है ॥१०॥

११ भोजको सुन्दर वाहक अश्व वहन करते है। दक्षिणामे सुघड रथ वर्तमान है। युद्धमें देवगण भोजकी रक्षा करते है। भोज युद्धोमे शत्रुओका जेता है ॥११॥

—१०।१०७

९. भिक्षु आँगिरस (१००० ई० पू०)

यह भी पीछे के ऋषियों में से हैं, जिनका एक सूक्त (११७) दसवें मण्डल में संगृहीत है। भिक्षु नाम आर्यों के लिये उस समय विचित्र लगा

१. छन्द जगति, त्रिष्टुप्—

१ न वा उ देवा क्षुधमिद्वध ददुरुताशितमुपगच्छन्ति मृत्यव ।
उतो रयि पृणतो नोपदस्यत्युतापृणन्मर्डितार न विंदते ॥१॥

२ य आध्राय चकमानाय पित्वोन्नवान्त्सन्नफितायोपजग्मुषे।
स्थिर मन कृणुते सेवते पुरोतो चित् स मर्डितार न विंदते ॥२।

३ स इद् भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय।
अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखाय ॥३॥

४ न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्व ।
अपास्मात् प्रेयान्न तदोको अस्ति पृणतमन्य मरण चिदिच्छेत् ॥४॥

५ पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान् द्राघीयासमनु पश्येत पन्था।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रान्यमन्युमुप तिष्ठन्ति राय ॥५॥

६ मोघमन्न विन्दते अप्रचेता सत्य ब्रवीमि वध इत् स तस्य।
नार्यमण पुष्यति नो सखाय केवलाघो भवति केवलादी ॥६॥

७ कृषिन्नित् फाल आशति कृणोति यन्नध्वानमपवृक्ते चरित्रै ।
वदन् ब्रह्मावदतो वनीयान् पृणन्नापिरपृणतमभिष्यात् ॥७॥

९. भिक्षु आँगिरस (१००० ई० पू०)

होगा, यद्यपि पीछे यह बहुत सम्मानित परिव्राजकों के लिये प्रयुक्त होने लगा।

१. दानकी महिमा—

१ क्षुधाको देवोने वध (बनाकर) नही दिया, खायेके पास भी मृत्यु जाते है। दाताका धन क्षीण नही होता और अदाताको सुखी नहीं पाता ॥१॥

२ जो खाता-पीता हो भूखे कामना लिये पास आये याचक के लिए, मन कडा करता है, (और) उसके सामने भोजन करता है, वह सुखी नही हो सकता ॥२॥

३. वही भोज (दाता) है, जो अन्न-इच्छुक, कृश, विचरण करते घर आयेको देता है। उसे पूरे यज्ञफल होते है, और परायोमें भी वह मित्र बनाता है ॥३॥

४ वह सखा नही जो खा-पीकर भी साथ होते सखाको नही देता। उससे दूर हट जाये, वह घर नही है, दूसरे अच्छे पूर्तिकर्तासे इच्छा करे ॥४॥

५ माँगनेवाले की पूर्ति करनी चाहिए, अत्यन्त लम्बे मार्गोको देखना चाहिए। रथके चक्र जैसे ऊपर-नीचे होते है, धन भी वैसे ही रहते है ॥५॥

६ उन नासमझने व्यर्थ ही अन्न को पाया। सच कहता हूँ, वह उसका वध है। जो न अर्यमा (देवता) को, न सखाको तृप्त करता है, अकेले भोजन करनेवाला केवल पापी है ॥६॥

७ जोतता फाल अन्न बनाता है, जो आचरणोसे मार्गको बनाता है। जैसे ब्रह्म बोलता न बोलनेवालेसे बढकर है, वैसे ही पूर्तिकर्ता अ-पूर्तिकर्तासे बढकर है ॥७॥

८ एकपाद् भूयो द्विपदो विचक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात्।
चतुष्पादेति द्विपदामभिस्वरे सपश्यन् पक्तीरुपतिष्ठमान ।८।

९. समौ चिद्धस्तौ न सम विविष्ट समातरा चिन्न सम दुहाते।
यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि ज्ञाती चित् सन्तौ न सम पृणीत ।।९।।

—ऋक् १०।११७

१०. वसुक्र ऐन्द्र (१००० ई० पू०)

इन्द्र के पुत्र बतलाये जाते है, शायद इन्द्र किसी व्यक्ति का नाम हो, या इन्द्र का भक्त होने के कारण इनका यह नाम पड़ा हो। ऋग्वेद के नवें

१. छन्दः त्रिष्टुप्—

१ असत् सु मे जरित साभिवेगो यत् सुन्वते यजमानाय शिक्ष।
अनाशीर्दामहमस्मि प्रहता सत्यध्वृत वृजिनायतमाभु ।।१।।

२ यदीदह युधये सनयान्यदेवयन् तन्वा शूशुजानान्।
अमा ते तुम्र वृषभ पचानि तीव्र सुत पचदश निषिच ।।२।।

३ नाह त वेद य इति ब्रवीत्यदेवयून्त्समरणे जघन्वान्।
यदावाख्यत् समरणमृघावदादिद्ध मे वृषभा प्र ब्रुवन्ति ।।३।।

४ यदज्ञातेषु वृजनेष्वास विश्वे सता मघवानो म आसन्।
जिनामि वेत् क्षेम आ सन्तमाभु प्र त क्षिणा पर्वते पाद-गृह्य ।।४।।

८ एक अंशवाला पुन दो अशवाला होता है। दो अशवाला पीछे तीन अशवाला हो जाता है। चार अशवाला दो अशवालोंसे आगेके पास जाता है, इन क्रमोको देखते सेवन करता है ॥८॥

९ समान भी दोनो हाथ एक समान शक्तिवाले नही है, (गाय) एक मॉवाली भी एक समान दूधनही देती। जुड़वाँके भी एक समान पराक्रम नही। एक कुल होते हुए भी एक समान दाता नही होते ॥९॥

१०. वसुक्र ऐन्द्र (१००० ई० पू०)

मंडल में इनकी तीन ऋचायें है (९७। २८-३०) और दसवें मडल में दो सूक्त (२७, २९) इनके रचे है। इनकी पत्नी भी ऋषि थीं, जिन्होने उसी मंडल के २८वें सूक्त को रचा।

१. इन्द्रकी महिमा—

१ "हे स्तोता, मेरा स्वभाव है, जो (सोम) छानते यजमानको अभीष्ट अप्राप्य फल देता हूँ। सत्य नाशक चारो ओर पाप करते अर्चना करनेवालेका मै प्रहन्ता हूँ" ॥१॥

२ "जब मै देवताओंके न पूजनेवालो स्वार्थियोंके साथ लडनेके लिए शरीरसे ले जाता हूँ। तो तुम्हारे लिए मै मोटे बैलको पकाता हूँ और छाने हुए तीव्र पन्द्रहवें (सोम) को तैयार करता हूँ" ॥२॥

३. "मै ऐसे (आदमी) को नही जानता, जो कहता है, कि देव-अपूजकोको रणमें मैने मारा। जब युद्धमें उनका सहार करता हूँ, तो वे प्रशसा करते मुझे सॉड कहते है ॥३॥

४ अज्ञात युद्धोमें जब मै होता, तब सारे मुझ मघवाको घेर लेते है। चारो ओर क्षेमके लिए मै जीतता हूँ, पैर पकडकर उसे पर्वतपर फेंक देता हूँ ॥४॥

५. न वा उ मा वृजने वारयते न पर्वतासो यदह मनस्ये।
मम स्वनात् कृधुकर्णो भयात एवेदनु द्यून् किरण समे-
जात् ॥५॥

६. दर्शन्न्वत्र शृतपाँ अनिद्रान् बाहुक्षद शरवे पत्यमानान्।
घृषु वार्ये निनिदु सखायमध्यू न्वेपु पवयो ववृत्यु ॥६॥

७ अभूर्वोक्षीर्व्यु आयुरानड् दर्षन्नु पूर्वो अपरो नु दर्षत्।
द्वे पवस्ते परि त न भूतो यो अस्य पारे रजसा विवेष ॥७॥

८ गावो यव प्रयुता अर्यो अक्षन् ता अपश्य सहगोपाश्चरती ।
हवा इदर्यो अभित समायन् कियदासु स्वपतिश्छदयाते ॥८

९ स यद्वय यवसादो जनानामह यवाद उर्वज्रे अत ।
अत्रा युक्तो वसातारमिच्छादथो अयुक्त युन जद्ववन्वान्।९।

१० अत्रेदु मे मससे सत्यमुक्त द्विपाच्च यच्चतुष्पात् ससृजानि ।
स्त्रीभिर्यो अत्र वृषण पृतन्यादयुद्धो अस्य वि भजानि
वेद ॥१०॥

११ यस्यानक्षा दुहिता जात्वास कस्ता विद्वा अभि मन्याते
अघा ।
कतरो मेनिं प्रति त मुचायते य ई वहाते य ई वा वरेयात्
॥११॥

१२ कियती योषा मर्यतो वधूयो परिप्रीत पत्यसा-
वार्येण ।
भद्रा वधूर्भवति यत् सुपेशा स्वय सा मित्र वनुते जने
चित् ॥१२॥

१३ पत्तो जगार प्रत्यचमत्ति शीर्ष्णा शिर प्रति दधौ वरूथ।
आसीन ऊर्ध्वामुपसि क्षिणाति न्यङ्ङु त्तानामन्वेति
भूमिं ॥१३॥

५. यदि मैं चाहूँ तो, मुझे युद्धमे कोई निवारित नही कर सकता, पर्वत भी नही। मेरी आवाजसे वहरे कानवाले भी भयभीत होते है, द्युलोक तक भी किरणें कॉंपती हैं ॥५॥

६. यहाँ देखते हुए मैं इन्द्र को न माननेवालो छाने सोमको पीनेवालो, वाँह भाजनेवालो, हिंसाके लिए आक्रमण करनेवालो, और मुझ जो महान् सखाकी निन्दा करते, उनके ऊपर मैं वज्र गिराता हूँ" ॥६॥

७ "तुमने दर्शन दिया, वर्षा भी की, दीर्घायु प्राप्त कराई। पहले भी शत्रुका नाश किया, पीछे भी। विश्वके परे तक वह नही, जो इस लोकके पार को नाप सके" ?॥७॥

८. "गायें जौ खा रही हैं, स्वामीके पास गोपोके साथ चरती उन्हें मैं देखता हूँ, वुलाते ही स्वामीके चारो ओर वह आ जाती हैं, कितना निज स्वामीने उनसे प्राप्त किया ॥८॥"

९ मो जो कि यह जनोंके जौ का खानेवाला विस्तृत आकाशके भीतर जौ भक्षक मैं हूँ। युक्त (इन्द्र) यहाँ रक्षा चाहते है और अयुक्त पुरपको मार वतलाते है ॥९॥"

१० "निश्चय जानो कि यहाँ मैंने सच कहा दोपायो और चौपायो को मैं सृजन करता हूँ। यहाँ स्त्रियोंके साथ जो पुरुपको लडाता है, उसके घनको विना युद्ध ही मैं वाँट देता हूँ ॥१०॥

११. जिसकी विना आँखकी दुहिता है, कौन जानते हुये उस अन्धीको अपनाता है। जो उसे विवाहता है या जो चुनता है, कौन उसको पीडा देगा ?॥११॥

१२ कितनी स्त्रियाँ केवल धनसे प्रसन्न हो पुरुपोकी वहुयें होती हैं। भद्रा वहू वह है, जो कि सुन्दर मुखवाली स्वत जनमेंसे (अपने) मित्रको स्वीकार करती है ॥१२॥

१३ सूर्य किरण उगलते हैं, स्थित हो सामने भक्षण करते हैं, सिरपर किरणो को धारण करते हैं। ऊपर आसीन हो पासमें फेंकते हैं, नीचे उतान भूमिका अनुगमन करते है ॥१३॥

१४ वृहन्नच्छायो अपलाशो अर्वा तस्थौ माता विषितो अत्ति
गर्भं ।
अन्यस्या वत्स रिहती मिमाय कया भुवा निदधे धेनु-
रूध ॥१४॥

१५. सप्त वीरासो अधरादुदायन्नष्टोत्तरात्तात् सम-
जग्मिरन्ते ।
नव पश्चातात् स्थिविमन्त आयन्दश प्राक् सानु वि
तिरत्यश्न ॥१५॥

१६ दशानामेक कपिल समान त हिन्वति क्रतवे पार्याय।
गर्भं माता सुधित वक्षणास्ववेनन्त तुषयती विभर्ति ॥१६॥

१७ पीवान मेषमपचत वीरा न्युप्ता अक्षा अनु दीव आसन्।
द्वा धनु वृहतीमप्स्वत पवित्रवता चरत पुनता ॥१७॥

१८ वि क्रोशनासो विष्वच आयन् पचाति नेमो नहि पक्षदर्ध ।
अय मे देव सविता तदाह द्रवन्न इद्वनवत् सर्पिरन्न ॥१८॥

१९ अपश्य ग्राम वहमानमारादचक्रया स्वधया वर्तमान।
सिषक्त्यर्य प्र युगा जनाना सद्य शिश्ना प्रमिनानो
नवीयान् ॥१९॥

२० एतौ मे गावौ प्रमरस्य युक्तौ मा षु प्र सेधीमुहुरिन्ममधि।
आपश्चिदस्य विनशत्यर्थं सूरश्च मर्क उपरो बभूवान् ॥२०॥

२१ अय यो वज्र पुरुधा विवृत्तौ व सूर्यस्य वृहत पुरीषात्।
श्रव इदेना परो अन्यदस्ति तदव्यथी जरिमाणस्त-
रन्ति ॥२१॥

२२ वृक्षे वृक्षे नियता मीमयद् गोस्ततो वय प्र पतान् पूरु-
षाद ।
अथेद विश्व भुवन भयात इद्राय सुन्वदृषये च शिक्षत् ॥२२॥

१४. विना छायाका विना पत्तेका वडा वृक्ष स्थित है। द्यौमाता बधी गर्भ भक्षण करती है। दूसरे वछडे को चाटती स्थित इस घेनुके किस स्थानमे स्तन पाया ॥१४॥

१५. उसके निचले शरीरसे सात वीर उत्पन्न हुए, उपरलेसे अन्तमें आठ जन्मे, पिछलेसे नौ स्थिरतावाले आये, आगे दस भक्षण करनेवाले ऊँचे वढते हैं ॥१५॥

१६. दसोमें कपिल वर्णवाले एकको यज्ञ पूरा करनेके लिए प्रेरित करते हैं। द्यौमाता सन्तुष्ट हो अच्छी तरह रक्खे इस गर्भको धारण करे ॥१६॥

१७. वीरोने मोटे मेढको पकाया, जूयेके स्थानमें पासे फेंके थे। वह पवित्रवान् दो वडे धनुषोंसे जलके भीतर पवित्र करते विचरते हैं ॥१७॥

१८. वे कोलाहल करते नाना प्रकारसे आये, आवोने पकाया और आवोने नहीं पकाया। 'मुझे इस सवितादेवने उसे कहा ईंधन' घी और भोजनकी कामनावाला ॥१८॥

१९ मैंने दूरसे विना चक्रके अन्नसे वर्तमान वहनकर्ता ग्रामको देखा। स्वामी जनोमें दो-दोको जोडता है, शत्रुओको तुरन्त हनन करता नवीन वनाता है ॥१९॥

२० मुझ प्रभरके यह दो वैल जुडे हैं, इन्हें मत मारो, मुहूर्त भर सन्तुष्ट करो। इसके जल अर्थको नष्ट करते है, शोधक वीर ऊपर होता है ॥२०॥

२१ यह जो वज्र सूर्यके वडे लोकसे वहुत वेगसे नीचे गिरता है। इससे परे और भी यश है, उसे स्तुतिकर्ता विना व्यथा पार हो जाते हैं ॥२१॥

२२ धनुपरूपी वृक्षपर गोचर्मरूपी ज्या शब्द करती है। उससे पक्षी-समान पुरुषभक्षी वाण गिरते है, और यह सारा भुवन डरता है। इन्द्रके लिए (सोम) छानता और ऋषिके लिए प्रदान करता ॥२२॥

५ अवसृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभि ।
आयुर्वसान उपवेतु शेप सगच्छता तन्वा जातवेद ॥५॥

६. यत्ते कृष्ण शकुन आतुतोद पिपील सर्प उत वा श्वापद ।
अग्निष्टद्विश्वादगद कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणा आवि-
वेश ॥६॥

७ अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व स प्रोर्णुष्व पीवसा मदसा च।
न त्वा घृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग्विधक्ष्यन् पर्यखयाते॥७॥

८. इममग्ने चमस मा वि जिह्वर प्रियो देवानामुत सोम्याना
एष यश्चमसो देवपानस्तस्मिन्देवा अमृता मादयते ॥८॥

९ क्रव्यादमग्नि प्र हिणोमि दूर यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाह ।
इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्य वहतु प्रजानन् ॥९॥

१० यो अग्नि क्रव्यात् प्रविवेश वो गृहमिम पश्यन्नितर जात-
वेदस ।
त हरामि पितृयज्ञाय देव स घर्ममिन्वात् परमे सधस्थे ॥१०।

११ यो अग्नि क्रव्यवाहन पितृन्यक्षदृतावृध ।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥११॥

१२ उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्त समिधीमहि।
उशन्नुशत आवह पितृन् हविषे अत्तवे ॥१२॥

१३ य त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुन ।
कियाम्ब्वत्र रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा ॥१३॥

˜ के शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति।
सु सगम इम स्वग्नि हर्षय ॥१४॥

—ऋक् १०।१६

५. हे अग्नि, तेरे लिए आहुति दी, जो स्वधाओंके साथ भोजन करता है, उसे पुन बनाओ। शेष (भाग) जीवन पाकर उठ जाये, हे जातवेद, शरीरके साथ सयुक्त हो जाये ॥५॥

६ तेरे जिस अगको काले पक्षीने, चीटी, साँप या श्वापदने छेदन किया, उसे अग्नि और ब्राह्मणोमें आविष्ट सोम सबसे निरोग करे ॥६॥

७ हे अग्नि, गोचर्मसे बने (वर्म) को पहनो, मोटाई और चर्बीसे आच्छादित होओ। बलसे अत्यन्त हर्षित दर्शन करनेके लिए तैयार दुर्धर्ष अग्नि तुम्हें चारो ओरसे नही पकडेगा ॥७॥

८. हे अग्नि, इस चमसको मत तोडना, यह सोमपायी देवोको प्रिय है। यह जो चमस (पात्र) देवोका पानपात्र है, उसमें अमरदेव आनन्दित होते है ॥८॥

९ मानुष-भक्षक अग्निको मै दूर भेजता हूँ, वह अप्रिय-वाहक यमराजके पास जाये। यही यह दूसरा अग्नि जानते हुए देवोके लिए हव्य ले जाये ॥९॥

१० जो अग्नि (श्मशानके) माससे तुम्हारे घरमें घुसा, इससे दूसरे अग्निको देखता। उस देवको पितृ-यज्ञके लिए लाता हूँ, यह परम लोकमें ले जायेगा ॥१०॥

११ जो क्रव्यवाहक अग्नि सत्यसे बढता पितरोका यजन करता है। पितरो और देवोके लिए वह हव्योको ले जाये ॥११॥

१२ हे अग्नि, कामना करते तुम्हें स्थापित करते है, कामना करते तुम्हें प्रज्वलित करते है। कामना करते तुम कामना करनेवाले पितरोंके पास खानेके लिए हविष ले जाओ ॥१२॥

१३ हे अग्नि, जिसे तुमने जलाया, (उसे) फिर बुझाओ।
यहाँ पकी दूब शाखावाली होकर उगे ॥१३॥

१४ हे ठण्ढी, ठण्ढीवाली, हे आह्लादिके, आह्लादवाली,
मेंढकियोंके सुन्दर सगमवाली इस सु-अग्निको प्रसन्न करो ॥१४॥

—१०।१६

११ ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावित ।
श्रोत्र ते चक्रे आस्ता दिवि पथाश्चराचर ॥११॥

१२ शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहत ।
अनो मनस्मय सूर्यारोहत् प्रयती पति ॥१२॥

१३. सूर्याया वहतु प्रागात् सविता यमवासृजत् ।
अघासु हन्यते गावोर्जुन्यो. पर्युह्यते ॥१३॥

१४. यदश्विना पृच्छमानावयात त्रिचक्रेण वहतु सूर्याया ।
विश्वे देवा अनु तद्वामजानन् पुत्र पितराववृणीत पूषा ॥१४॥

१५. यदयात शुभस्पती वरेय सूर्यामुप ।
क्वैक चक्र वामासीत् क्व देष्ट्राय तस्थथु ॥१५॥

१६. द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदु ।
अथैक चक्र यद्गुहा तदद्धा तया इद्विदु ॥१६॥

१७ सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च ।
ये भूतस्य प्रचेतस इद तेभ्यो कर नम ॥१७॥

१८ पूर्वापर चरतो माययैतो शिशू क्रीळन्तौ परियातो अध्वर ।
विश्वान्यन्या भुवनाभिचष्ट ऋतूरन्यो विदधज्जायते पुन ॥१८॥

१९. नवो नवो भवति जायमानो ह्ना केतुरुषसामेत्यग्र ।
भाग देवेभ्यो वि दधात्यायन् प्र चद्रमास्तिरते दीर्घ-मायु ॥१९॥

२० सुकिशुक शल्मलि विश्वरूप हिरण्यवर्ण सुवृत सुचक्र ।
आरोह सूर्ये अमृतस्य लोक स्योन पत्ये वहतु कृणुष्व ॥२०॥

११ ऋग् और साम द्वारा कथित दोनो बैल (रवि-शशि) तुझे यहाँ से ले जानेवाले थे। तेरे कान दो चक्के थे, आने-जानेका पथ द्योलोक में था ॥११॥

१२. चक्के तेरे जाते समय शुचि खुले, अक्षमें लगे थे।
पतिके पास जाती सूर्या मनोमय शकटपर चढी।'१२॥

१३ सूर्याको वह ले चला, जिसे सविता (सूर्य) ने सृजन किया था।
मघा नक्षत्रमें सफेद गायें हाँकी गईं, (उसे) ले गये ॥१३॥

१४. हे अश्विनो, जब त्रिचक्र रथ द्वारा सूर्याके विवाहके लिए पुछार करने तुम आये। तब सारे देवोने तुम्हारा अनुमोदन किया, तुम्हारे पुत्र पूषन् (सूर्य) ने दोनो पिताओको वरण किया ॥१४॥

१५. जब शुभपति तुम वर हो सूर्याके पास गये।
तो तुम्हारा एक चक्का कहाँ था, कहाँ (मार्ग) पूछनेके लिए तुम खड़े हुए ॥१५॥

१६. हे सूर्या, ब्राह्मण तेरे चक्कोको ऋतुके तौरपर जानते है।
और एक चक्का जो गुप्त है, उसे विद्वान् ही जानते हैं ॥१६॥

१७. सूर्याके लिये, देवताओंके लिये, मित्रके लिये और वरुणके लिये, जो प्राणियोका ख्याल रखते है, उनके लिये मैं यह नमस्कार करता हू ॥१७॥

१८ यह दोनो शिशु (रवि-शशि) पूर्व-पश्चिम चलते क्रीडा करते यज्ञमें आते हैं। इनमेंसे एक (चन्द्र) सारे भुवनोको बतलाता है, दूसरा (सूर्य) ऋतुओको बनाता फिर प्रकट होता है ॥१८॥

१९ उत्पन्न हो दिनको बतलानेवाला (सूर्य) नया-नया होता, उषाओंके आगे आता है। आकर देवोंके लिये भाग देता है, चन्द्रमा दीर्घ आयु देता है ॥१९॥

२०. हे सूर्ये, सुदर पलाश पुष्पसे, सेमलसे नाना रूप सुवर्ण वर्णसे ढके सुदर चक्रवाले रथपर चढ। अमर सुखमय लोकमें पति से व्याह कर ॥२०॥

२१ उदीर्ष्वात पतिवती ह्येपा विश्वावसु नमसा गीर्भिरीळे।
अन्यमिच्छ पितृषद व्यक्ता सते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥२१॥

२३. अनृक्षरा ऋजव सन्तु पन्था येभि सखायो यन्ति नो वरेय।
समर्यमा स भगो नो निनीयात् स जास्पत्य सुयममस्तु देवा ॥२३॥

२४. प्र त्वा मुंचामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वावध्नात् सविता सुगेव ।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके रिप्टा त्वा सह पत्या दधामि ॥२४॥

२५ प्रेतो मुचामि नामुत सुवद्धाममुतस्कर।
यथेयमिन्द्र मीढ्व सुपुत्रा सुभगा सति ॥२५॥

२६ पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्रवहता रथेन ।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्व विदथमा-वदासि ॥२६॥

२७. इह प्रिय प्रजया ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।
एना पत्या तन्व ससृजस्वाधा जिव्री विदथमा-वदाथ ॥२७॥

२८. नीललोहित भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते ।
एधन्ते अस्या ज्ञातय पतिर्बंधेषु बध्यते ॥२८॥

२९ परा देहि शामुल्य ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।
कृत्यैषा पद्वती भूत्व्या जाया विशते पति ॥२९॥

२१. यहासे उठो, यह पतिवाली है, मै नम वाली वाणीसे विश्वावसुको स्तुति करता हू। पिताके यहा रहनेवाली दूसरी व्यक्त कन्याको चाहो, वह तुम्हारे भाग्यमें जन्मी है, उसका पता लगाओ ॥२१॥

२३. सरस अकटक हो वह मार्ग, जिनसे सखा हमारे वरातमें जाते है। अर्यमा, भग अच्छी तरह हमें ले चले। देव, पति-पत्नी मिलकर रहें ॥२३॥

२४. तुझे वरुणके पाशसे वाधता हू, जिससे कि तुझे सविताने अच्छी तरह वाधा। सत्यके स्थानमें, सुकृतके लोकमें तुझे पतिके साथ निर्विघ्न रखता हू ॥२४॥

२५. यहासे मै छुडाता हू, वहासे नही। वहा (पतिकुलमें) सुवद्ध करता हू। हे वर्षक इन्द्र, (वैसे) वरसो जैसे यह सुपुत्रा सुभगा होवे ॥२५॥

२६. पूषा यहासे तुझे हाथ पकडकर ले जाये, दोनो अश्विनीकुमार तुझे रथ द्वारा वहन करें। गृहपत्नी हो घर जा, तू घरको ऐसे रख, जिसमें (सवको) वश करनेवाली हो ॥२६॥

२७ यहा सतानके साथ तेरी प्रसन्नता वढे। इस घरमें गार्हपत्य (अग्नि) की सेवा कर। यह पतिके साथ शरीरसे एक रह वृद्धा हो घरमें स्वामिनी रहे ॥२७॥

२८. नीलारुण होता है, (वह) कृत्या (भूत) की आसक्तिको प्रकट करता है। इसके वन्वु वढते है, पति वन्धनमें वधता है ॥२८॥

२९. मलिन वस्त्रको दूर हटा, ब्राह्मणोमें धन वांट। यह कृत्या चली गई, पत्नी पतिसे मिली ॥२९॥

३० अश्रीरा तनूभवति रुशती पापयामुया ।
पतिर्यद्वध्वा वाससा स्वमगमभिधित्सते ॥३०॥

३१ ये वध्वश्चन्द्र वहतु यक्ष्मा यन्ति जनादनु ।
पुनस्तान्यज्ञिया देवा नयतु यत आगता. ॥३१॥

३२ मा विदन् परिपथिनो य आसीदति दम्पती ।
सुगेभिर्दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातय ॥३२॥

३३. सुमगलीरिय वधूरिमाॅ समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्वायाथास्त वि परेतन ॥३३॥

३४ तृष्टमेतत् कटुकमेदतपाष्ठवद्विषवन्नैतदत्तवे ।
सूर्यां यो ब्रह्मा विद्यात् स इद्वाधूयमर्हति ॥३४॥

३५ आशसन विशसनमथो अधिविकर्तन ।
सूर्याया पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मा तु शुधति ॥३५॥

३६ गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्त मया पत्या जरदष्टिर्यथास ।
भगो अर्यमा सविता पुरधिर्मह्य त्वादुर्गार्हपत्याय
देवा ॥३६॥

३७ ता पूषन् छिवतमामेरयस्व यस्या बीज मनुष्या वपति ।
या न ऊरू उशती बिश्रयाते यस्यामुशन्त प्रहराम
शेप ॥३७॥

३८. तुभ्यमग्र पर्यवहन्सूर्यां वहतुना सह ।
पुन पतिभ्यो जाया दा अग्ने प्रजया सह ॥३८॥

३९ पुन पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा ।
दीर्घायुरस्या य पतिर्जीवाति शरद शत ॥३९॥

३० शरीर अशोभन हो जाता है, वह पापिनी (कृत्या) उसपर आक्रमण करती है। जब कि पति वधूके वस्त्रोंसे अपने अगको ढाकता है ॥३०॥

३१. वधूकी चादर लेनेको जनोंके पीछे जो यक्ष्मा आयें। उन्हें यज्ञीय देवता जहासे आये वहा फिर ले जाये ॥३१॥

३२ जो शत्रु दपतीके पास आते है, वह न आवें। (ये) सुविधासे दुर्गमको पार करें, शत्रु भाग जायें ॥३२॥

३३ यह वधू सुमगली है, आओ इसे देखो। इसको सौभाग्य देकर जहासे आये वहा जाओ ॥३३॥

३४ यह दूषित है, यह कटुक है, यह न ग्रहण योग्य है, विषवाला यह खाने लायक नही है। जो ब्राह्मण सूर्याको जानता है, वही वधूके वस्त्रके पाने लायक है ॥३४॥

३५ कटे, फटे और बीचसे चिरे सूर्याके रूपोको देख, उन्हें ब्रह्मा शोधित करता है ॥३५॥

३६ सौभाग्यके लिए तेरे हाथको मैं ग्रहण करता हू, मुझ पतिके साथ बुढापे तक रह। भग, अर्यमा, सविता देवोने तुझे गृहस्थीके लिए मुझे दिया ॥३६॥

३७ हे पूषा, उसे तुम अत्यत कल्याणी बनाओ, जिसमें मनुष्य बीज बोते है। जो कामना करती हमारे लिये उरुओको फैलाती, जिसमें कामना करते हम शेपका प्रहार करते हैं ॥३७॥

३८ हे अग्नि, वहतुके साथ सूर्याको पहले तुम्हारे लिये ले जाते हैं। फिर हे अग्नि, प्रजाके साथ जाया तुम पतियोको देते हो ॥३८॥

३९ अग्नि, आयु और वर्चस्के साथ पत्नीको फिर देता है। इसका जो पति है, वह दीर्घायु (हो), सौ शरदो तक जीवे ॥३९॥

४० सोम प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तर ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजा ॥४०॥

४१. सोमो ददद् गधर्वाय गधर्वो दददग्नये ।
रयिं च पुत्राश्चादादग्निर्मह्यमथो इमा ॥४१॥

४२. इहैव स्त मा वियौष्ट विश्वमायुर्व्यश्नुत ।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥४२॥

४३. आ न प्रजा जनयतु त्प्रजापतिराजरसायससमनक्त्वर्यमा ।
अदुर्मङ्गली पतिलोकमा विशश नो भव द्विपदे श चतुष्पदे ॥४३॥

४४. अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्य सुमना. सुवर्चा ।
वीरसूर्देवकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे श चतुष्पदे ॥४४॥

४५. इमा त्वमिन्द्र मीढ्व सुपुत्रा सुभगा कृणु ।
दशास्या पुत्रानाधेहि पतिमेकादश कृधि ॥४५॥

४६. सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वा भव ।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृपु ॥४६॥

४७ समजन्तु विश्वे देवा समापो हृदयानि नौ ।
स मातरिश्वा सधाता समु देष्ट्री दधातु नौ ॥४७।

—ऋक् १०।८५

४० सोमने पहले प्राप्त किया, वादमें गन्धर्वने प्राप्त किया। तीसरा तेरा पति अग्नि है, चौथा (पति) तेरा मनुष्योमें उत्पन्न है ॥४०॥

४१ सोमने गन्धर्वको दिया, गन्धर्वने अग्निको दिया। अग्निने धन और पुत्रको दिया फिर इस पत्नीको (भी) ॥४१॥

४२ तुम दोनो (पति-पत्नी) यही रहो, मत वियुक्त होओ, सारे आयुको प्राप्त होओ। पुत्रो-नातियोंके साथ खेलते आनद करते अपने घरमें रहो ॥४२॥

४३ प्रजापति हमारी प्रजा पैदा करे, अर्यमा बुढापे तक हमें साथ रक्खे। मगलमयीको प्रदत्त, पति लोकमें प्रवेश करो, हमारे दोपायो और चौपायोमें शातिदायिनी होओ ॥४३॥

४४. अघोर-नेत्रा पतिको न हानि करनेवाली होओ, पशुओंके लिए सुमना सुवर्चा, शिवा वनो। वीर-प्रसवनी देवभक्त शुभकारिणी हो, हमारे दोपायो और चौपायोमें शातिदायिनी होओ ॥४४॥

४५ हे वर्षक इन्द्र, इसे तुम सुपुत्रा और सुभगा करो। इसमें दस पुत्रोको दो, पतिको ग्यारहवा करो ॥४५॥

४६. (वधू), तू श्वशुरपर सम्राज्ञी होओ, सासपर सम्राज्ञी होओ। ननदपर सम्राज्ञी होओ, देवरोपर सम्राज्ञी होओ ॥४६॥

४७ हमारे हृदयोको सारे देवता, जल देवता (भी) एक करें। वायु एक करे, धाता एक करे और उपदेशक हम दोनोको एक करें ॥४७॥

—ऋक् १०।८५

१३. अथर्वा आँगिरस (१००० ई० पू०)

अथर्वा (अथर्वण) का नाम ऋग्वेद के लिये भी अपरिचित नहीं है। उसके प्रथम मडल में (८०। १६, ८३। ५) और दूसरी जगहों पर भी अथर्वा नाम आया है, लेकिन इनकी रची कोई ऋचा देखने में नहीं आती। शायद उस समय अथर्वण अधिकतर पुरोहित को कहा जाता हो, जैसा कि पारसी जंदावस्था में भी इसे देखा जाता है। यदि इस नामका कोई व्यक्ति ऋग्वेदिक काल में रहा हो, तो उसका कोई महत्व नहीं था। अथर्वा अंगिरा के पुत्र या सतान थे। अगिरा सबसे पुराने ऋषियोंमें थे, लेकिन भरद्वाज-वसिष्ठ-विश्वामित्र के प्रताप के सामने वह विस्मृत हो गये, तो भी ऋग्वेद

छन्द —त्रिष्टुप्, भूरिक

१ सत्य बृहदृतमुग्र दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञ पृथिवी धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरु लोक पृथिवी न
कृणोतु ॥१॥

२ असवाध मध्यतो मानवाना यस्या उद्वत प्रवत सम बहु।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी न प्रथता
राध्यता न ॥२॥

३ यस्या समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्न कृष्टय सबभूवु ।
यस्यामिद जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमि पूर्वपेये
दधातु ॥३॥

४ यस्याश्चतस्र प्रदिश पृथिव्या यस्यामन्न कृष्टय सबभूवु ।
या बिभर्ति वहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने
दधातु ॥४॥

५ विश्वभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।
वैश्वानर विभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो
दधातु ॥६॥

१३. अथर्वा आँगिरस (१००० ई० पू०)

के प्रथम मडल में अंगिराके वंशजो के बहुत से सूक्त मिलते है। उनमें कुत्स एक सम्माननोय ऋषि थे। लेकिन, अथर्वा को विशेषता यह है, कि सारे अथर्व-वेद को इन्हींको रचना माना जाता है। अथर्ववेद चारों वेदो में सबसे पिछला वेद है। बुद्धकाल में अभी इसे वेद में नहीं गिना जाता था। इसमें मंत्र-तंत्र, टोने-टोटके तथा दूसरी कितनी ही बातें है, जो आर्य-भिन्न जातियो के प्रभाव को बतलाती है। आर्य और आर्यभिन्न के बीच प्रथम समन्वय का प्रयास इसके द्वारा किया गया। ऋषि अथर्वा की वाणियो में पृथिवी सूक्त जैसे सूक्त भी है, जो भाव और भाषा में बहुत सुन्दर है।

१. पृथिवी-महिमा—

१. वृहद् और उग्र सत्य, दीक्षा, तप, ब्रह्म, यज्ञ पृथिवीको धारण करते है। वह भूत और भविष्यकी रक्षिका हमारी पृथिवी, हमारे लिये विस्तृत प्रदेश बनावे ॥१॥

२ मध्यमें जो मानवोकी भीडवाली नही है। जिसके साथ ही बहुतसे उद्‌गमन और प्रगमन करते है। नाना शक्तिवाली औषधियोको जो धारण करती है, वह पृथिवी हमे बढाये और तृप्त करे ॥२॥

३ जिसपर समुद्र , नदिया और जल है, जिसमे अन्न और प्रजायें उत्पन्न हुईं। जिनपर यह सास लेता कापता जग रहता है, वह भूमि हमें पूर्व पेय दे ॥३॥

४ जिस पृथिवीकी चार दिशायें हैं। जिसमें अन्न और प्रजायें उत्पन्न हुईं। जिसपर यह सास लेता कापता जग रहता है, वह पृथिवी हमें हमारे लिये गौ और अन्न धारण करे ॥४॥

५ विश्वभरा, धनधारिणी, स्थिर, सुवर्ण वक्षवाली जगत्‌को अपने भीतर रखनेवाली। वैश्वानर अग्निको धारण करती भूमि, हमें अग्नि, इन्द्र, वृषभ और धनको दे ॥६॥

१३. अथर्वा आँगिरस (१००० ई० पू०)

अथर्वा (अथर्वण) का नाम ऋग्वेद के लिये भी अपरिचित नहीं है। उसके प्रथम मडल में (८०।१६, ८३।५) और दूसरी जगहों पर भी अथर्वा नाम आया है, लेकिन इनकी रची कोई ऋचा देखने में नहीं आती। शायद उस समय अथर्वण अधिकतर पुरोहित को कहा जाता हो, जैसा कि पारसी जदावस्था में भी इसे देखा जाता है। यदि इस नामका कोई व्यक्ति ऋग्वेदिक काल में रहा हो, तो उसका कोई महत्व नहीं था। अथर्वा अंगिरा के पुत्र या सतान थे। अगिरा सबसे पुराने ऋषियोंमें थे, लेकिन भरद्वाज-वसिष्ठ-विश्वामित्र के प्रताप के सामने वह विस्मृत हो गये, तो भी ऋग्वेद

छन्द —त्रिष्टुप्, भूरिक

१ सत्य बृहदृतमुग्र दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञ पृथिवी धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरु लोक पृथिवी न
कृणोतु ॥१॥

२ असवाध मध्यतो मानवाना यस्या उद्वत प्रवत सम बहु।
नानावीर्या ओषधीर्या विभर्ति पृथिवी न प्रथता
राध्यता न ॥२॥

३ यस्या समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्न कृष्टय सबभूवु ।
यस्यामिद जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमि पूर्वपेये
दधातु ॥३॥

४ यस्याश्चतस्र प्रदिश पृथिव्या यस्यामन्न कृष्टय सबभूवु ।
या विभर्ति वहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने
दधातु ॥४॥

५ विश्वभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।
वैश्वानर विभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो
दधातु ॥६॥

१३. अथर्वा आँगिरस (१००० ई० पू०)

के प्रथम मंडल में अंगिराके वंशजों के बहुत से सूक्त मिलते हैं। उनमें कुत्स एक सम्माननीय ऋषि थे। लेकिन, अथर्वा की विशेषता यह है, कि सारे अथर्ववेद को इन्हींको रचना माना जाता है। अथर्ववेद चारों वेदो में सबसे पिछला वेद है। बुद्धकाल में अभी इसे वेद में नहीं गिना जाता था। इसमें मंत्र-तंत्र, टोने-टोटके तथा दूसरी कितनी ही बातें हैं, जो आर्य-भिन्न जातियो के प्रभाव को बतलाती हैं। आर्य और आर्यभिन्न के बीच प्रथम समन्वय का प्रयास इसके द्वारा किया गया। ऋषि अथर्वा की वाणियों में पृथिवी सूक्त जैसे सूक्त भी हैं, जो भाव और भाषा में बहुत सुन्दर है।

१. पृथिवी-महिमा—

१. वृहद् और उग्र सत्य, दीक्षा, तप, ब्रह्म, यज्ञ पृथिवीको धारण करते हैं। वह भूत और भविष्यकी रक्षिका हमारी पृथिवी, हमारे लिये विस्तृत प्रदेश बनावे ॥१॥

२ मध्यमें जो मानवोकी भीडवाली नही है। जिसके साथ ही बहुतसे उद्गमन और प्रगमन करते हैं। नाना शक्तिवाली औषधियोको जो धारण करती है, वह पृथिवी हमे बढाये और तृप्त करे ॥२॥

३ जिसपर समुद्र , नदिया और जल है, जिसमें अन्न और प्रजाये उत्पन्न हुईं। जिनपर यह सास लेता कापता जग रहता है, वह भूमि हमें पूर्व पेय दे ॥३॥

४ जिस पृथिवीकी चार दिशायें है। जिसमें अन्न और प्रजायें उत्पन्न हुईं। जिसपर यह सास लेता कापता जग रहता है, वह पृथिवी हमें हमारे लिये गौ और अन्न धारण करे ॥४॥

५ विश्वभरा, धनधारिणी, स्थिर, सुवर्ण वक्षवाली जगत्को अपने भीतर रखनेवाली। वैश्वानर अग्निको धारण करती भूमि, हमें अग्नि, इन्द्र, वृषभ और धनको दे ॥६॥

६ गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्य ते पृथिवि स्योनमस्तु।
वभ्र कृष्णा रोहिणी विश्वरूपा ध्रुवा भूमि पृथिवी-
मिन्द्रगुप्ता।
अजीतो हतो अक्षतो' ध्यष्ठा पृथिवीमह ॥११॥

७ यत् ते मध्य पृथिवि यच्च नभ्य यास्त ऊर्जस्तन्व
सबभूवु ।
तासु नो घेह्यभि न पवस्व माता भूमि पुत्रो अह पृथिव्या ।
पर्जन्य पिता स उ न पिपर्तु ॥१२॥

८ त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्व बिभर्षि द्विपदस्त्व
चतुष्पद ।
तवेमे पृथिवि पच मानवा येभ्यो ज्योतिरमृत मर्त्येभ्य
उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥१५॥

९ भूम्या देवेभ्यो ददति यज्ञ हव्यमरकृत ।
भूम्या मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्या ।
सा नो भूमि प्राणमायुर्दधातु जरदष्टि मा पृथिवी
कृणोतु ॥२२॥

१० यस्ते गन्ध पुरुषेषु स्त्रीषु पुसु भर्गो रुचि ।
यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु। कन्याया वर्चो यद्
भूमे तेनास्मा अपि ससृज, मा नो द्विक्षत कश्चन ॥२५॥

११ शिला भूमिरश्मा पासु सा भूमि सघृता धृता।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकर नम ॥२६॥

१२. यस्या वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।
पृथिवी विश्वघायस घृतामच्छान्वदामसि ॥२७॥

६. हे पृथिवि, तेरे गिरि हिमवान् पर्वत, अरण्य सुखमय हो। भूरी, काली, लाल नाना रूपकी ध्रुव फैली वढी इन्द्र द्वारा रक्षित भूमिको विना पराजित, अहत, अक्षत हो मैं अधिष्ठित करू ॥११॥

७. हे पृथिवी, जो तेरा मध्य स्थान है, जो नाभिका है, जो तेरे वे तेजस्वी शरीर हुये। उन्हे हमें सामने दो, हमारे लिये पवित्र करो। भूमि माता है, मैं पृथिवीका पुत्र हू। पर्जन्य (मेघ) पिता है, और वह हमें तृप्त करे॥१२॥

८. मर्त्य (मर्द) तेरे में उत्पन्न हो, तेरे ही ऊपर विचरण करते है। तुम दोपायो और चौपायोको पालती हो। हे पृथिवी, तेरे लिये पाचो जन है, जिन मर्दोंके लिए अमृत-ज्योति उगता सूर्य रश्मियोंसे विस्तार करता है॥१५॥

९. (जिस) भूमिपर देवोंके लिये लोग यज्ञ और सजी हवि देते हैं। भूमिपर मनुष्य मर्त्य स्वधा और अन्नसे जीते है। वह भूमि हमें प्राण और आयु दे, मुझे पृथिवी जरदष्टि करे॥२२॥

१० जो तेरा गध पुरुषोमें, स्त्रियोमें, नरोमें तेज और काति है। जो अश्वो, वीरो, मृगो और हाथियोमें। कायामे जो तेज है, हे भूमि उनके साथ हमें भी युक्त करो, कोई हमसे द्वेष न करे॥२५॥

११. शिला, भूमि, पत्थर, धूलि वह अच्छी तरह धारण की हुई भूमि है। उस सुनहले वक्षवाली पृथिवीको हम नमस्कार करते है॥२६॥

१२. जिसपर वनस्पतिवाले नाना प्रकारके ध्रुव वृक्ष स्थित है। उस विश्वको धारण करनेवाली सुदृढ पृथिवीकी हम प्रशसा करते है॥२७॥

१३ यास्ते प्राची प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद्
याश्च पश्चात्।
स्योनास्ता मह्य चरते भवन्तु मा नि पप्त भुवने
शिश्रियाण ॥३१॥

१४ मा न पश्चान्मा पुरस्तान्नुद्दिष्ठा मोत्तरादधरादुत।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो वरीयो यावया
वध ॥३२॥

१५ ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्त शिशिरो वसन्त।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो
दुहाता ॥३६॥

१६. सा नो भूमिरा दिशतु यद्धन कामयामहे।
भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगव ॥४०॥

१७. यस्या गायन्ति नृत्यन्ति भूम्या मर्त्या व्यैलबा।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्या वदति दुन्दुभि।
सा नो भूमि प्रणुदता सपत्नानसपत्न मा पृथिवी
कृणोतु ॥४१॥

१८ यस्यामन्न व्रीहियवौ यस्या इमा पच कृष्टय।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमो'स्तु वर्षमेदसे ॥४२॥

१९ निधि विभ्रती बहुधा गुहा वसु मणि हिरण्य पृथिवी
ददातु मे।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्य-
माना ॥४४॥

२० यस्या कृष्णमरुण च सहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि।
वर्षेण भूमि पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये
धामनि धामनि ॥५२॥

१३ हे भूमि, जो तेरी पूर्व दिशा है, जो उत्तर दिशा है, जो निचली और जो पश्चिम दिशा है। विचरण करते मेरे लिए वह मगलमय हो, भवनमें आश्रय लेते मुझपर न गिरे ॥३१॥

१४. न मुझे पीछेसे, न मुझे आगेसे, न उत्तरसे, न नीचेसे पीडित करे। हे भूमि, हमारे लिये स्वस्ति हो, शत्रु वडे वेगसे वध न कर सके ॥३२॥

१५. हे भूमि, तेरे ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर, वसत हैं। तेरे विहित ऋतु, वर्ष, रात-दिन हे पृथिवी, हमारी कामना पूरी करे ॥३६॥

१६ जिस धनको हम चाहते है, उसके वारेमें वह भूमि आदेश दे। भगवान् इन्द्र गौओको सामने किये आवें ॥४०॥

१७ जिस भूमिसे ऐलव मर्द गाते नाचते हैं। जहा चिल्लाते लडते हैं, जिसमें दुदभि वोलती है। वह भूमि हमारे शत्रुओको हटावे, हमें पृथिवी शत्रुहीन वनाये ॥४१॥

१८ जिसमें अन्न, धान, जौ होते हैं, जिसमें ये पाचो जन हैं। उस मेघ-रक्षिता वर्षासे मोटी हुई भूमिके लिये नमस्कार ॥४२॥

१९ वहुत गुप्त निधिको धारण करती पृथिवी धन, मणि, सोनेको मुझे दे। धन देनेवाली सुप्रसन्न दाता देवी, हमें धन दे ॥४४॥

२० जिस भूमिके ऊपर काले, लाल और एक दूसरेसे मिले रात दिन वनाये गये। विस्तृत भूमि जो वर्षासे आच्छादित अनाच्छादित है, वह हमें प्रिय धाम-धाममें मगलके साथ धारण करे ॥५२॥

२१ अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्या ।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशा विषासहि ॥५४॥

२२ ये ग्रामा यदरण्य या सभा अधि भूम्या।
ये सग्रामा समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥५६॥

२३ यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा ।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधत ॥५७॥

२४. त्वमस्यावपनी जनानामदिति कामदुघा पप्रथाना।
यत् त ऊन तत् त आ पूरयति प्रजापति प्रथमजा
ऋतस्य ॥६१॥

२५. उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्य सन्तु पृथिविप्रसूताः।
दीर्घं न आयु प्रतिबुध्यमाना वय तुभ्य बलिहृत स्याम ६२

२६. भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठित।
सविदाना दिवा कवे श्रिया मा धेहि भूत्या ॥६३॥

—अथर्ववेद का० १२, सू० १

२१. भूमिमें मै उत्तर नामक तेजस्वी हो दमन करनेवाला हूँ। मैं दबानेवाला हू सबको दबानेवाला दिशा-दिशामें विशेष दबानेवाला ॥५४॥

२२. भूमि पर जो गाव हैं, जो अरण्य हैं, जो सभायें है, जो संग्राम है, जो समितिया हैं, उनमें हम तेरे लिये सुन्दर वात करेंगे ॥५६॥

२३ जो बोलूगा, उसे मधुर बोलूगा, जो देखूगा, सो मुझे पसन्द करते हैं। मै तेजवाला हूं, वेगवाला हू, द्रोह लोभ करनेवाले दूसरोको मारता हूं ॥५८॥

२४ तू जनोंके लिए बोनेवाली विस्तृत कामधेनु है। जो तेरा कम है, उसको सत्य के प्रथम उत्पन्न प्रजापति पूरा करे ॥६१॥

२५ हे पृथिवि, तेरे स्थल निरोग यक्ष्मा-रहित प्रसवयुक्त हो। हमारी आयु दीर्घ हो, जगकर हम तेरे लिये वलि लानेवाले हो ॥६२॥

२६ हे माता भूमि, मुझे भद्र वस्तुओंके साथ सुप्रतिष्ठित रख। हे कवि, दिनको जानते हुए मुझे श्री और वैभव दे ॥६३॥

—अथर्ववेद १२।१

भाग २

पालिकाल

(६००—१ ई० पू०)

ऋग्वेद की प्राचीनतम ऋचाओं की रचना आर्यों के सप्तसिन्धु में आने के तीन सौ वर्ष बाद हुई। उसके दो सौ वर्ष बाद तक ऋचायें बनती रहीं। फिर तीन शताब्दियों का वह काल है, जब कि शतपथ, ऐतरेय, तैत्तिरीय आदि ब्राह्मण रचे गये। इस समय के गद्य और कुछ गाथायें (श्लोक) भी सुरक्षित हैं, किन्तु वह काव्य की दृष्टि से विशेष महत्व नहीं रखतीं, यद्यपि दर्शन के सम्बन्ध में उनके भीतर आई उपनिषदों का भारी महत्व है। उपनिषद्-काल के समाप्त होने के बाद ही नई भाषायें अस्तित्व में आईं, जिनका सामूहिक नाम पालि कहा जा सकता है। यद्यपि, पालि नाम मुख्यत- बुद्ध के मुंह से निकली पालियों (पंक्तियों) के लिये ही उपयुक्त हुआ है, लेकिन आधुनिक विद्वानो ने भाषा का नाम पालि रख दिया है, जिसमें स्थविरवाद के त्रिपिटक ही नहीं, बल्कि अशोक और खार्वेल के शिलालेख लिखे गये हैं। हमें यहां पालि-भाषा से कुछ नहीं लेना है। इस काल में संस्कृत की जो कवितायें हुईं, उनको समझने के लिए इस काल का जानना जरूरी है। अशोक के समय की ब्राह्मी लिपि ही हमारी सबसे पुरानी लिपि है, और वह इतनी पुष्ट और सुव्यवस्थित है, कि उसके विकसित होने में शताब्दियां लगी होंगी। किन्तु, उस समय भी वैदिक-कालकी तरह ही लिपि और लेखन-सामग्रीका बहुत कम प्रयोग किया जाता था, और जो प्रयोग हुआ भी, उसके लिये तालपत्र जैसे भंगुर साधन इस्तेमाल किये जाते थे, जिसके कारण ही उस समय के अभिलेख हमारे पास तक नहीं पहुंच सके।

इस समय की कवितायें पालि में सुरक्षित हैं। संस्कृत में उनके नमूने महभारत और रामायण में मिलते हैं, जो कि शताब्दियों तक मौखिक दोहराये जाते मौर्य-वंश के उच्छेदके बाद शुंग-काल में स्थायी रूप लेने लगे। हम महाभारत और रामायण ग्रथों पर विचार करते समय उनके भीतर आये कथानकों के काल पर निर्णय नहीं देना चाहते। कथानक शताब्दियो पहले के हो सकते हैं। रामायण की मूल कथा "दशरथ" जातक के रूप में हमारे सामने मौजूद है। दशरथ जातकमें दक्षिणापथके भूगोलका

कोई उल्लेख नहीं है। निर्वासित राम-सीता-लक्ष्मणने हिमालय में जाकर अपना निर्वासित जीवन विताया। रामायण और महाभारतमें शुंग-कालके वाद भी क्षेपक होते रहे। पर, उनके सवसे पुराने अंश उसी कालके हैं, जव कि महाभाष्यकार पतंजलि शुंग-वंशके संस्थापक पुष्यमित्रसे यज्ञ करा रहे थे।

वेद-ब्राह्मण-कालके वाद लोगोंकी मातृभाषा संस्कृत नहीं रह गई। अव भिन्न-भिन्न स्थानीय पालियां बोली जाती थीं। लेकिन, ब्राह्मण अपने धर्म-ग्रंथोंको वेद और ब्राह्मणकी भाषामें पढ़ते थे। अपने कर्म-काण्डके लिये श्रौतसूत्र, धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र वना रहे थे। इन ग्रंथोंको वह लोक-भाषामें नहीं बना सकते थे, क्योंकि तव उनका उपयोग कुछ थोड़े ही क्षेत्रोंमें हो सकता था। इसके अध्ययन-अध्यापनके लिये उन्होंने कुछ नियमोंको स्थिर करके एक भाषा संस्कृत (निर्मित) की, जिसे आज "संस्कृत" कहा जाता है। यद्यपि वुद्धसे एक शताब्दी वाद पैदा हुए पाणिनि उसे "भाषा" कहते थे, जिसका अर्थ यही है, कि वह संस्कृत उच्चारणोंके अनुरूप वनाई गई लोक-भाषा थी।

इस संस्कृत भाषामें रचित महाभारत और रामायणमें भाषा, और शैलीके विकासकी दृष्टि से देखनेपर महाभारत पुराना मालूम होता है। रामायणमें वह गुण विद्यमान है, जिन्हें हम आज भी कविताके लिये अनिवार्य मानते हैं।

१४. व्यास (२०० ई० पू०)

महाभारतके रूप में हमें उस समयकी संस्कृतकी विशाल सूक्तियोंका संग्रह मिलता है, जब कि संस्कृत मातृभाषा, नहीं रह गई थी। व्यास या पराशर-पुत्र कृष्णद्वैपायनको महाभारत या भारतका कर्ता माना जाता है। वसिष्ठके पौत्र पराशर की सन्तान होनेके लिये व्यासको ईसा-पूर्व ग्यारहवीं शताब्दीमें होना चाहिये, जिसकी भाषा ऋग्वेदमें मिलती है। उसके बादकी शताब्दियोंमें शतपथ, ऐतरेय आदि ब्राह्मणोंकी भाषा आती है। उससे भी महाभारत की भाषा की कोई एकता नहीं है। महाभारतकी कथा पुरानी हो सकती है। इसके अनेक आख्यान बुद्धके समय (ई० पू० ६–५वीं सदी) में भी प्रचलित थे। लेकिन, जिस रूपमें महाभारत आज

१. पति-वरा—

१ स तर्पयित्वा ज्वलन ब्राह्मणान् स्वस्तिवाच्य च,
वादयामास सर्वाणि वादित्राणि समन्तत ॥२५॥

२ नि शब्दे तु कृते तस्मिन्, धृष्टद्युम्नो, विशापते,
कृष्णा आदाय विधिवद्, मेघ-दुन्दुभि-नि स्वन॰ ॥२६।

३. रग-मध्ये गतस्, तत्र मेघ-गम्भीरया गिरा
वाक्यमुच्चैर् जगादेद, श्लक्ष्णमर्थवदुत्तमम् ॥२७॥

४ "इद धनुर् लक्ष्यम्, इमे च बाणा,
श्रृण्वन्तु मे भू-पतय समेता ।
छिद्रेण यन्त्रस्य समर्पयध्व
लक्ष्ये शितैर् व्योम-चरैर् दशार्धै ।

५ एतद् महत् कर्म करोति यो वै,
कुलेन रूपेण बलेन युक्त ।
तस्याद्य भार्या भगिनी ममेय
कृष्णा भवित्री, न मृषा ब्रवीमि ।"

१४. व्यास (२०० ई० पू०)

हमें मिलता है, उसका सबसे प्राचीन अंश ईसा-पूर्व दूसरी शताब्दीसे पहले नहीं जा सकता। इस प्रकार यह उस कालकी रचना है, जब कि अशोकके शिलालेखोंकी भाषा तत्कालीन अनेक पालियोंमेंसे एक थी। पालि संस्कृतके समीपतम भाषा है, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। महाभारतमें बहुत पीछे तक क्षेपक डाले जाते रहे, किन्तु साथ ही उसमें बहुत से महत्वपूर्ण प्राचीन अंश भी हैं। द्रौपदी को जबरदस्ती दुःशासन द्वारा खींच कर सभामें लानेका वर्णन यद्यपि बड़ा ही प्रभावपूर्ण है, लेकिन वह असंभव है। सामन्त भला उसे कैसे बर्दाश्त कर सकते थे, जब कि आजकी सबसे पिछड़ी जनजातियोंके लोग भी स्त्रीपर ऐसे अत्याचारको आंखोंके सामने देख नहीं सकते। आज हमारा सारा देश एक गणराज्य है। गणोंके बारेमें महाभारत में जो बातें कही गई हैं, वह आज भी हमारे लिये शिक्षाप्रद हैं।

१. द्रौपदीका स्वयंवर—

१. उसने अग्निमें हवन और ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर,
चारो ओर सारे बाजोंको बजवाया।

२ हे प्रजाओंके स्वामी, उसके चुप कर देनेपर,
द्रौपदीको लेकर विधिपूर्वक मेघ-दुंदुभि जैसे स्वरवाले धृष्टद्युम्नने,

३ रंग (मंच) के बीचमें जा वहां मेघ जैसी गंभीर वाणी से,
सुन्दर अर्थयुक्त यह उत्तम वाक्य ऊंचे स्वरसे कहा—

४ "यह धनुष, यह लक्ष्य और यह बाण हैं।
आये हुये भूपति मेरी सुनें—
यन्त्रके छिद्र द्वारा लक्ष्यपर
आकाशचारी पांच बाण समर्पित करो।

५ यह महान् कर्म जो,
कुल, रूप और बलसे युक्त (पुरुष) करेगा।
आज उसकी भार्या यह मेरी बहिन।
कृष्णा होगी, मैं झूठ नहीं बोलता।"

६ तान् एनमुक्त्वा, द्रुपदस्य पुत्रः
पश्चाद् इद ता भगिनीमुवाच ।
नाम्ना च गोत्रेण च कर्मणा च
सङ्कीर्तयन् भूमि-पतीन् समेतान्,—
७. "त्वदर्थमागता, भद्रे, क्षत्रिया, प्रथिता भुवि ।
विध्येत य इद लक्ष्य, वरयेथा, शुभेऽद्य तम् ।" ॥३१॥
—आदि-पर्व (एकत्रिंशोऽध्याय)

२. लक्ष्यवेध—

८. ते ऽलंकृता. कुण्डलिनो युवान,
परस्पर स्पर्धमाना नरेन्द्रा ।
अस्त्रं बल चात्मनि मन्यमाना,
सर्वे समुत्पेतुरुदायुधास्ते ॥१॥
९ ते क्षत्रिया रग-गता समेता,
जिगीषमाणा द्रुपदात्मजा ताम् ।
चकाशिरे, पर्वत-राज-कन्याम्,
उमा यथा देव-गणा समेता ।
१०. अथाययुर् देव-गणा विमाने—
रुद्रादित्या वसवोऽथाश्विनौ च ।
साध्याश्च सर्वे मरुतस् तथैव,
यम पुरस्कृत्य धनेश्वर च ॥३॥
११. दैत्या सुपर्णाश्च महोरगाश्च,
देवर्षयो गुह्यकाश्चारणाश्च ।
विश्वावसुर् नारद-पर्वतौ च,
गन्धर्व-मुख्या सह चाप्सरोभि ॥४॥

६. उन्हें यह कहकर द्रुपदके पुत्रने
पीछे नाम,
गोत्र और कर्मके साथ,
एकत्रित भूपतियोका बखान करते उस भगिनी से यह कहा—

७. "भद्रे, तेरे लिये ससारके प्रसिद्ध क्षत्रि आये हैं।
जो इस लक्ष्यको वेध दे, हे शुभे, आज तू उसे वरण करना।"
—आदिपर्व, अध्याय३१

२. लक्ष्य-वेध—

८. वे अलकृत कुडलधारी सारे तरुण,
नरेन्द्र परस्पर स्पर्धा करते,
अपनेमें अस्त्र और बलका अभिमान करते,
हथियार उठाये आ पडे।

९. रगमें पहुचकर एकत्रित हुये
द्रुपद-कन्याके जीतनेके इच्छुक वे क्षत्रिय
वैसे प्रकाशित हुये, जैसे एकत्रित हुये देवगण,
पर्वतराज-कन्या उमाके (वरणके) लिये।

१०. तब रुद्र, आदित्य, वसु और दोनो अश्विनीकुमार,
देवगण विमानोसे
और सारे साध्य तथा मरुत देवता भी,
यम और कुबेरको सामने करके आये।

११ दैत्य, सुपर्ण और महानाग,
देवर्षि गुह्यक और चारण,
विश्वावसु, नारद और पर्वत,
गधर्वो और गधर्वोके मुखिया अप्सराओंके साथ (आये)।

१८ विक्षिप्यमाणा धनुषा नरेन्द्रा,
गतोत्तम स्रस्त-किरीट-हारा,
विनिश्वसन्त शमया बभूवु ।
राजा तदा मण्डलमार्तमासीत् ॥११॥

१९ यदा निवृत्ता राजानो धनुष सज्य-कर्मण ।
अथोदतिष्ठद् विप्राणा मध्याज् जिष्णुर् उदार-धी ॥१२॥

२० उदक्रोशन् विप्र-मुख्या विधुन्वन्तोऽजिनानि च ।
केचिद् आसन् वि-मनस , केचिद् आसन् मुदान्विता ॥१३॥

२१ आहु. परस्पर केचिद्, निपुणा बुद्धि-जीविन ,—
"यत् कर्ण-शल्य-प्रमुखै क्षत्रियैर् लोक-विश्रुतै. ।
नानत बलवद्भिर् हि धनुर्वेद-परायणै ॥१४॥

२२ तत् कथ त्व-कृतास्त्रेण प्राणतो दुर्बलीयसा ।
वटुमात्रेण शक्यं हि सज्य कर्तु धनुर् द्विजा. ॥१५॥

२३. यद्येप दर्पाद् धर्पाद् वाप्यथ ब्राह्मण-चापलात् ।
प्रस्थितो धनुरायन्तु, वीर्यता नाथु मा गमत् ।" ॥१६॥

२४. केचिद्-आहुर्, "युवा श्रीमान् नाग-राज-करोपम ।
पीन-स्कन्धोर-बाहुश्च, धैर्येण हिमवान् इव ॥१७॥

२५. सिंह-खेल-गति श्रीमान् मत्त-नागेन्द्र-विक्रम ,
सम्भाव्यमस्मिन् कर्मेदम्, उत्साहाच्चानुमीयते ।" ॥१८॥

२६. एव तेषा वि-लपता विप्राणा विविधा गिर ।
अर्जुनो धनुषो ऽभ्यासे तस्थौ, गिरिरिवाचल ॥१९॥

२७ अर्जुन. पाण्डव-श्रेष्ठो धृष्टद्युम्नमभाब्रवीत्,-
"एतद् धनुर् ब्राह्मणाना सज्य कर्तुमल नु किम् ?"

२८. तस्य तद् वचन श्रुत्वा, धृष्टद्युम्नोऽब्रवीद् वच —
"ब्राह्मणो वाथ राजेन्द्रो वैश्यो वा शूद्र एव वा ॥२१॥

१८. धनुषसे विक्षिप्त होते
तेज-रहित मुकुटहार-अस्त-व्यस्त हुये,
लम्बी सास लेते वे राजा शान्त हो गये।
तब राजमडल अभिमत था।

१९ धनुष तैयार करनेके कर्मसे जब राजा निवृत्त हो गये,
तब ब्राह्मणोंके बीचसे उदार बुद्धिवाले अर्जुन खडे हुये।

२० मृगछालोको धुनते ब्राह्मणोंके मुखिया चिल्ला उठे।
कोई उनमें अप्रसन्न थे, कोई प्रसन्नतायुक्त थे।

२१. कुछ निपुण बुद्धिजीवियोने एक दूसरेसे कहा—
कर्ण शल्य आदि लोक-प्रसिद्ध क्षत्रियो द्वारा,

२२. धनुर्वेद-परायण बलवानो द्वारा भी जो नही झुका।
कैसे बिना अस्त्रपर अधिकार किये शरीरसे भी अति दुर्बल,
(इस) ब्राह्मण-पुत्र मात्र द्वारा हे ब्राह्मणो, वह धनुष लगाया जा सकता है ?

२३. यदि यह दर्पसे, ढिठाईसे अथवा ब्राह्मण होनेकी चचलतासे,
धनुष ताननेके लिये चला है, तो रोकें, अच्छा है (जो) न जाये।

२४. कुछने कहा—"तरुण है श्रीमान्, नागराजके शुडके सदृश,
स्थूल कन्धा, जघा और बाहुवाला, और धैर्यमें हिमालय जैसा,

२५. सिहकी खेलनेकी गतिवाला, श्रीयुक्त मत्त-गजेन्द्रके सा परिक्रमवाला है
इससे यह कर्म सभव है, और उत्साहसे भी अनुमान होता है।"

२६. इस प्रकार उन ब्राह्मणोंके नाना प्रकारकी बात करते समय,
अर्जुन धनुषके पास जा अचल पर्वतकी तरह खड़े हुये।

२७ पाडवोमें श्रेष्ठ अर्जुनने तब धृष्टद्युम्नसे कहा—
"यह धनुष ब्राह्मण खीच सकते है या नही ?"

२८. उनके उस वचनको सुनकर धृष्टद्युम्नने यह बात कही—
"ब्राह्मण हो अथवा राजेन्द्र, वैश्य हो या शूद्र,

२९ एतेषां यो धनु-श्रेष्ठं सज्यं कुर्याद्, द्विजोत्तम ।
तस्मै प्रदेया भगिनी, सत्यमुक्तं मया वचः ।" ॥२२॥
३० ततः पश्चाद् महातेजाः पाण्डवो रण-दुर्जयः ।
स तद् धनुः परिक्रम्य, प्र-दक्षिणमथाकरोत् ॥२३॥
३१ प्रणम्य शिरसा देवमीशानं वरदं प्रभुम् ।
कृष्णं च मनसा कृत्वा, जगृहे चार्जुनो धनुः ॥२४॥
३२ यत् पार्थिवै रुक्म-सुनीथ-वक्रै—
राधेय-दुर्योधन-शल्य-साल्वैः ।
तथा धनुर्वेद-परैर् नृ-सिंहैः,
कृतं न सज्यं ,महतोऽपि यत्नात् ॥२५॥
३३ तद् अर्जुनो वीर्यवतां सदर्पस्,
तद् ऐन्द्रिर्‌रिन्द्रावरज-प्रभावः ।
सज्यं च चक्रे निमिषान्तरेण,
शराश् च जग्राह, दशार्ध-संख्यान् ॥२६॥
३४ विव्याध लक्ष्यं निपपात तच्च,
छिद्रेण भूमौ सहसाति-विद्धम् ।
ततोऽन्तरिक्षे च बभूव नादः,
समाज-मध्ये च महान् नि-नादः ॥२७॥
३५ चैलानि विव्यधुस् तत्र ब्राह्मणाश् च सहस्रशः ।
न्यपतंश्चात्र नभसः समन्तात् पुष्प-वृष्टयः ॥२८॥
३६ शताङ्गानि च तूर्याणि वादकाः समवादयन् ।
सूत-मागध-संघाश् चाप्यस्तुवंस्तत्र सु-स्वराः ॥२९॥

३. राज-समागमः—

३७. ततो युधिष्ठिरो राजा प्रेषयामास पाण्डवम् ।
नकुलं हास्तिनपुरं भीष्माय पुरुषर्षभ,

२९　इनमेंसे जो इस श्रेष्ठ धनुषको चढा दे, हे ब्राह्मणोत्तम,
　उसे वहिन दी जायेगी, मैंने सत्य वचन कहा।"

३०　उसके बाद महातेजस्वी रणमें दुर्जय उस पाडवने,
　उस धनुषकी परिक्रमा करके तव प्रदक्षिणा की।

३१. सिरसे वरद प्रभु देव शकरको,
　और मनसे कृष्णको प्रणाम कर, अर्जुनने धनुषको पकड़ा।

३२. रुक्म, सुनीथ, वक्र,
　कर्ण, दुर्योधन, शल्य, साल्व जैसे,
　धनुर्वेद पारगत नरसिह राजाओने,
　जो नही किया, वड़े यत्नसे भी नहीं प्रत्यचायुक्त नही किया।

३३　वीर अर्जुन जवानोमें इन्द्र-पुत्र,
　विष्णुके समान प्रतापवाले अर्जुनने दर्पके साथ उसे,
　पलक मारते ज्यासे युक्त कर दिया, और
　गिनतीमें पाच वाणोको हाथमें पकड़,

३४　वेध दिया और वह अत्यत वेधा हुआ, लक्ष्य
　छिद्रके द्वारा तुरन्त धरतीपर गिर पड़ा।
　तव आकाशमें नाद हुआ, और
　समाजके मध्यमें महानिनाद हुआ।

३५　वहा सहस्रो ब्राह्मणोने वस्त्रोको टागकर फहराया,
　और यहा आकाशसे चारो ओर पुष्पकी वृष्टि हुई।

३६. और वाजे वालोने सैंकड़ो प्रकारके वाजे वजाये,
　और सूत तथा मागध लोगोने भी सस्वरसे, वहा स्तुति की।

—आदिपर्व, अध्याय ३२

३. राजाओका समागम—

३७. तव पुरुषश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिरने,
　पाडव नकुलको हस्तिनापुर भेजा, भीष्म,

३७ द्रोणाय धृतराष्ट्राय विदुराय कृपाय च।
भ्रातृणा चैव सर्वेषा, येऽनु-रक्ता युधिष्ठिर ॥

३९. स गत्वा हास्तिनपुर, नकुलः समितिजयः
भीष्ममामन्त्रयाञ्चक्रे धृतराष्ट्र च पाण्डव. ।

४०. सत्-कृत्यामन्त्रितास् तेन आचार्य-प्रमुखास् तत.
प्रत्ययुः प्रीत-मनसो, यज्ञ, ब्रह्म-पुर सरा ॥

४१ धृतराष्ट्रश्च भीष्मश्च विदुरश्च महामति ।
दुर्योधन-पुरोगाश् च भ्रातर. सर्व एव ते ॥

४२ गान्धार-राज. सुवल, शकुनिश् च महा-वल. ।
अचलो वृषकश्चैव, कर्णश्च रथिना वर ॥

४३ तथा शल्यश्च वलवान्, वाह्लिकश्च महा-वल ।
सोमदत्तोऽथ कौरव्यो भूरिर् भूरिश्रवा. शल. ॥

४४ अश्वत्थामा कृपो द्रोण सैन्धवश्च जयद्रथ. ।
यज्ञसेन. स-पुत्रश्च, साल्वश्च वसुधाधिप ॥

४५ प्राग्ज्योतिषश्च भूपतिर् भगदत्तो महारथ ।
स तु सर्वै. सह म्लेच्छै सागरानूपवासिभि. ॥

४६ पर्वतीयाश्च राजानो राजा चैव वृहद्वल. ।
पौण्ड्रको वासुदेवश्च, वग. कालिगकस्तथा ॥

४७ आकर्षा. कुन्तलाश्चैव मालवाश्चान्ध्रकास्तथा ।
द्राविडा· सिहलाश्चैव राजा काश्मीरकस्तथा ॥

४८. कुन्तिभोजो महा-तेजा, पार्थिवो गौर-वाहन.,
विराटः सह पुत्राभ्या आवल्लश्च महावलः ॥

४९ शिशुपालो महावीर्य. सह पुत्रेण भारत ।
आगच्छत् पाण्डवेयस्य यज्ञ समर-दुर्मद. ॥

३८ द्रोण, धृतराष्ट्र, विदुर और कृपके लिये,
और सभी भ्राताओंके पास जो कि युधिष्ठिरके अनुरक्त थे।

३९ युद्ध-विजेता उस नकुल पाडवने हस्तिनापुरमें जाकर,
भीष्म और धृतराष्ट्रसे मत्रणा की।

४० सत्कारपूर्वक नकुल द्वारा आमत्रित आचार्य आदि तब,
प्रसन्न मनसे ब्राह्मणोंके साथ यज्ञमें गये।

४१ धृतराष्ट्र और भीष्म और महामति विदुर,
दुर्योधन आदि सारे ही वे भाई,

४२ गधारके राजा सवल और महावली शकुनि,
अचल और वृषक और रथियोमें श्रेष्ठ कर्ण,

४३ तथा वलवान् शल्य और महावली वाह्लीक (वलखवाले)
सोम और कुरुवशी सोमदत्त, भृरि, भूरिश्रवा, शल्य,

४४ अश्वत्थामा, कृप, द्रोण और सिन्धुराज जयद्रथ,
पुत्र-सहित यज्ञसेन और वसुधाधिप साल्व,

४५. आसामके भूपति महारथी भगदत्त,
—वह तो सागरके किनारे वसनेवाले सारे म्लेच्छोंके साथ,

४६ और पहाडी राजा, तथा राजा वृहद्वल,
पुड्रराज वासुदेव और वग और कलिंगवाले,

४७ आकर, कुतल और मालव तथा आन्ध्रवाले,
द्राविड, सिंहलवाला और कश्मीरवाला राजा

४८. महा तेजस्वी कुतिभोज और राजा गौरवाहन,
दोनो पुत्रोंके साथ विराट् और महावली आवल्ल,

४९ हे भारत, पुत्र-सहित महापराक्रमी समरमें दुर्मद,
शिशुपाल पाडवोंके यज्ञमें आया।

५०. रामश्चैवानिरुद्धश्च कङ्कश्च सह-सारणः ।
वृष्णयो निखिलाश्चान्ये समाजग्मुर् महारथा ॥

५१ एते चान्ये च वहवो राजानो मध्यदेशजा ।
आजग्मु पाण्डु-पुत्रस्य राजसूय महाक्रतुम् ॥

५२. ददुस् तेषाम् आवसथान् धर्मराजस्य शासनात् ।
वहु-भक्ष्यान्वितान्, राजन् दीर्घिका-वृक्ष-शोभितान् ॥

५३ तथा धर्मात्मज पूजा चक्रे तेषा महात्मनाम् ।
सत्कृताश्च, यथोद्दिष्टान् जग्मुरावसथान् नृपा ॥

५४. कैलास-शिखर-प्रख्यान् मनोज्ञान् द्रव्य-भूषितान् ।
सर्वत सवृतान् उच्चै प्राकारै सुकृतै सितै ।

५५. सुवर्ण-जाल-सवीतान्, मणि-कुट्टिम-भूषितान्,
सुखारोहण-सोपानान्, महासन-परिच्छदान् ॥

५६. स्रग्-दाम-समवच्छन्नान्, उत्तमागुरु-गन्धिन ।
हसेन्दु-वर्ण-सदृशान्, आयोजन-सुदर्शनान् ॥

५७ अ-सबाधान् सम-द्वारान् युक्तान् उच्चावचैर् गुणै ।
बहुधातु-निबद्धागान् हिमवच्-छिखरान् इव ॥

५८ विश्रान्तास् ते ततोऽपश्यन् भूमिपा भूरि-दक्षिणम् ।
वृत सदस्यैर् बहुभिर्, धर्मराज युधिष्ठिरम् ॥

५९ तत् सद पार्थिवै कीर्णं ब्राह्मणैश्च महर्षिभि ।
भ्राजते स्म तदा राजन्, नाक-पृष्ठ यथामरै ॥

४. देवनम्—

वैशम्पायन उवाच—

६० उपोह्यमाने द्यूते तु, राजान सर्व एव ते ।
धृतराष्ट्र पुरस्कृत्य, विविशुस्ता सभा तत ॥

५० वलराम और अनुरुद्ध और सारणके सहित कक,
और दूसरे सारे महारथी वृष्णि आये।
५१ ये और दूसरे वहुत से मध्यदेशवाले राज्ञा,
पाड्ु-पत्रके राजसूय महायज्ञमें आये।
५२ हे राजन्, युधिष्ठिरकी आज्ञासे उन्हें वहुत प्रकारके
भोजनोंसे युक्त पुष्करिणी और वृक्षसे शोभित निवास दिये गये।
५३ तथा युधिष्ठिरने उन महात्माओकी पूजा की,
सत्कार किये जानेके वाद वे राजा अपने निर्दिष्ट आवासोमें गये,
५४. जो कि (थे) द्रव्योंसे भूषित मनोज्ञ कैलाश शिखरके समान,
चारो तरफ सुन्दर वनाये सफेद ऊचे प्राकारोसे घिरे,
५५. सोनेके जाल से घिरे, मणिके चौतरोसे भूषित,
सुखसे चढने लायक सीढियोवाले, महाआसन और वस्त्रवाले,
५६ फूलमालासे ढके उत्तम अगरकी गधवाले,
हस और चन्द्रमाके रगसे, योजनो तक देखनेमें सुन्दर,
५७. विना भीडवाले, समान द्वारवाले, नाना प्रकारके गुणोंसे युक्त
वहुत प्रकारके धातुओंसे वधे अगोवाले हिमालयके शिखरो जैसे।
५८ विश्राम करके उन राजाओने वहुत दक्षिणावाले,
वहुत सदस्योंसे घिरे धर्मराज युधिष्ठिरका दर्शन किया।
५९. राजाओ, ब्राह्मणो और महर्षियोंसे आकीर्ण वह सभा,
हे राजन्, तव ऐसी शोभती थी, जैसे अमरोंसे स्वर्ग।

—सभापर्व, अध्याय ७

४. जूआ खेलना—

वैशम्पायनने कहा—

६०. जूयेके उपस्थापित होनेपर वे सभी राजा,
धृतराष्ट्रको आगे करके उस सभामें प्रविष्ट हुये।

६१ भीष्मो द्रोण कृपश्चैव, विदुरश्च महामति ।
नीति-प्रीतेन मनसा तेऽन्ववर्तन्त भारत ॥

६२ ते द्वन्द्वश पृथक् चैव सिह-ग्रीवा महौजस ।
सिहासनानि भूरीणि विचित्राणि च भेजिरे ॥

६३ शुशुभे सा सभा राजन्, राजभिस्तै समागतै ।
देवैर् इव महाभागै समवतैस् त्रिविष्टम् ॥

६४ सर्वे वेद-विद शूरा, सर्वे भास्वर-मूर्तय ।
प्रावर्तत महाराज सुहृद्-द्यूतमनन्तरम् ॥

युधिष्ठिर उवाच—

६५ अय वहु-धनो, राजन् सागरावर्त-सम्भव ।
मणिर् हारोत्तर श्रीमान् कनकोत्तम-भूषण ॥

६६ एतद्, राजन् मम धन, प्रति-पणोऽस्ति कस्तव ।
येन मा त्व महाराज, धनेन प्रति-दीव्यसे ॥

दुर्योधन उवाच—

६७ सन्ति मे मणयश्चैव, धनानि सुबहुनि च ।
मत्सरश्च न मेऽर्थेषु, जयस्वैन दुरोदर ॥

वैशम्पायन उवाच—

६८ ततो जग्राह शकुनिस्तान् अक्षान् अक्ष-तत्त्व-वित् ।
"जितम्" इत्येव शकुनिर् युधिष्ठिरमभाषत ॥

युधिष्ठिर उवाच—

६९. मत्तकैतवकेनैव यज् जितोऽस्मि दुरोदरे ।
शकुने, हन्त दीव्यामो, ग्लहमाना परस्परम् ॥

७० सन्ति निष्क-सहस्रस्य भाण्डिन्यो भरिता शुभा
कोषो हिरण्यमक्षय्य जातरूपम नेकश ॥
एतद् राजन्, मम धन तेन दीव्यामह त्वया ॥

६१ भीष्म, द्रोण, कृप और महामति विदुरने
हे भारत, बे-मनसे (उनका) अनुगमन किया।

६२ सिंह सी गर्दनवाले महापराक्रमियोने दो-दो और अलग-अलग,
विचित्र बहुतसे सिहासनोको शोभित किया।

६३. हे राजन्, आये हुए उन राजाओंमे वह सभा ऐसी शोभित हुई,
जैसे एकत्रित हुये महाभाग देवो द्वारा स्वर्ग।

६४. सभी वेद जाननेवाले, शूर, सभी प्रकाशमान मूर्तिवाले थे,
हे महाराज, फिर मित्रोका जूआ आरभ हुआ।

युधिष्ठिरने कहा—

६५ हे राजन्, यह बहुत मूल्यका सागरकी धारामेंसे उत्पन्न,
श्रीयुक्त सुवर्णका उत्तम भूषण हारयुक्त-मणि है।

६६. हे राजन्, यह मेरा धन है। तुम्हारा मुकाबिलेका दाव क्या है, जिस धनसे कि तुम, हे महाराज, मुकाबिलेमें खेल रहे हो?

दुर्योधन बोला—

६७ मेरे पास मणिया हैं, और बहुत अधिक धन है,
धनके सम्बन्धमें मुझे कजूसी नही है, इस दावको जीतो।

वैशम्पायनने कहा—

६८ तब जयके तत्ववेत्ता शकुनिने उन पाशोको हाथमें लिया,
"जीत लिया" यह शकुनिने युधिष्ठिरसे कहा।

युधिष्ठिर बोले—

६९ हे मतवाले शकुनि, धोखेसे ही मैं जूयेमें जीता गया हू, हन्त,
दाव लगाकर (आओ) आपसमे हम खेलें।

७० हजार अशर्फियोंके भाडवाली सुन्दर मेरी पेटिकायें हैं,
कोश, अक्षय अनेक प्रकारका सोना,
हे राजन्, यह मेरा धन है, उससे मैं तुम्हारे साथ खेलता हू।

वैशम्पायन उवाच—

७२ कौरवाणां कुल-करं ज्येष्ठं पाण्डवमच्युतम् ।
इत्युक्तः शकुनिः प्राह "जितं" इत्येव तं नृपम् ॥

युधिष्ठिर उवाच—

७३ अयं सहस्रसमितो- वैयाघ्रः सु-प्रतिष्ठितः ।
सु-चक्रोपस्करः श्रीमान् किंकिणी-जाल-मण्डितः ॥

७४ संह्लादनो राज-रथो य इहास्मान् उपावहत् ।
अष्टौ यं कुरर-च्छाया सदश्वा राष्ट्र-सम्मता ॥

७५. वहन्ति नैषां मुच्येत पदाद् भूमिं उपस्पृशन् ।
एतद् राजन् धनं मह्यं, तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥

वैशम्पायन उवाच—

७६ एवं श्रुत्वा व्यवसितो, निकृतिं समुपाश्रितः ।
"जितं" इत्येव शकुनिर् युधिष्ठिरं अभाषत ॥

युधिष्ठिर उवाच—

७७ शतं दासी-सहस्राणि--तरुण्यो हेम-भद्रिकाः ।
कम्बु-केयूर-धारिण्यो निष्क-कण्ठ्यः स्वलंकृताः ॥

७८ महार्हमाल्याभरणाः सुवस्त्राश्चन्दनोक्षिताः ।
मणीन् हेम च बिभ्रत्यश्चतुःषष्टिविशारदाः ।
एतद् राजन्, मम धनं, तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥

वैशम्पायन उवाच—

७९ एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो, निकृतिं समुपाश्रितः ।
"जितं" इत्येव शकुनिर् युधिष्ठिरं अभाषत ॥

युधिष्ठिर उवाच—

८० एतावन्ति च दासानां सहस्राण्युत सन्ति मे ।
प्रदक्षिणानुलोमाश्च प्रावार-वसनाः सदा ॥

वैशम्पायन बोले—

७२. कौरवोंके वशकर न चित्त होनेवाले पाडवको,
ऐसा कहनेपर शकुनिने "जीत लिया", उस राजासे कहा।

युधिष्ठिर बोले—

७३ यह हजार मूल्यका बाघम्बरयुक्त सुप्रतिष्ठित,
सुन्दर चक्कोंसे युक्त श्रीसहित किंकिणीके जालोंसे मडित,
७४ नाद करनेवाला राजरथ है, जो हमें यहा लाया।
जिसको राष्ट्रमें सम्मानीय श्रेष्ठ कुरर जैसे आठ घोडे,
७५ वहन करते हैं, इनके चरणोंसे भूमि स्पर्श करते नही छूटती,
हे राजन्, यह मेरा धन है, उसके साथ मैं तुमसे खेलता हू।

वैशम्पायन बोले—

७६ यो सुनकर धोखेका अवलम्ब ले प्रयत्नशील,
शकुनिने "जीत लिया" यही युधिष्ठिरसे कहा।

युधिष्ठिर बोले—

७७ सुवर्ण-भूषित कम्बु-केयूर-धारिणी तरुणिया,
कठमें मोहरवाली सुअलकृत एक सौ हजार दासिया;
७८ (जो) महार्घ माला-आभरणवाली सुवस्त्रा, चन्दन-लिप्त, मणि
और सोनेको धारण करती चौमठ (कलाओ) में विशारद (है)।
हे राजन्, यह मेरा धन है, उसके साथ मैं तुमसे खेलता हू।

वैशम्पायन बोले—

७९ यह सुनकर धोखेका अवलम्ब ले प्रयत्नशील,
शकुनिने "जीत लिया" यही युधिष्ठिरसे कहा।

युधिष्ठिर बोले—

८० चतुर अनुगामी और सदा प्रावार पहननेवाले,
मेरे ये सौ-दस-हजार दास (है)।

८१ प्राज्ञा मेधाविनो दान्ता, युवानो मृष्ट-कुण्डला ।
एतद्, राजन्, मम धन, तेन दीव्याम्यह त्वया ॥

वैशम्पायन उवाच—

८२ एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो, निकृति समुपाश्रित ।
"जित" इत्येव शकुनिर् युधिष्ठिर अभाषत ॥

युधिष्ठिर उवाच—

८३ सहस्र-सख्या नागा मे मत्तास् तिष्ठन्ति सौबल
हेम-कक्षा कृतापीडा, पद्मिनो हेम-मालिन ॥

८४ सुदान्ता राज-वहना, सर्व-शब्द-क्षमा युधि ।
ईषदन्ता महाकाया सर्वे चाष्टकरेणव ॥

८५. सर्वे च पुर-भेत्तारो नव-मेघ-निभा गजा ।
एतद् राजन्, मम धन, तेन दीव्याम्यह त्वया ॥

वैशम्पायन उवाच—

८६. इत्येव वादिन पार्थं, प्रहसिन्नव सौबल ।
"जित" इत्येव शकुनिर् युधिष्ठिरमभाषत ॥

युधिष्ठिर उवाच—

८७ रथास् तावन्त एव मे, हेम-दण्डा पताकिन ।
हयैर् विनीते सम्पन्ना रथिभिश् चित्र-योधिभिः

८८. एकैको यत्र लभते सहस्रपरमा भृतिम् ।
युध्यतोऽयुध्यतो वापि वेतन मास-कालिकम् ॥
एतद् राजन्, मम धन, तेन दीव्याम्यह त्वया ॥

वैशम्पायन उवाच—

८९. इत्येव उक्ते वचने, कृत-वैरो दुरात्मवान् ।
"जित" इत्येव शकुनिर् युधिष्ठिरमभाषत ॥

८१　(जो) प्राज्ञ, मेधावी, आज्ञाकारी, तरुण, चमकते कुडलवाले हैं,
हे राजन्, यह मेरा धन है, उसके साथ मैं तुमसे खेलता हू।

वैशम्पायन बोले—

८२　यह सुनकर धोखेका अवलम्ब ले प्रयत्नशील,
शकुनिने "जीत लिया" यही युधिष्ठिरसे कहा।

युधिष्ठिर बोले—

८३　हे सुवल-पुत्र, मेरे हजार मस्त गज है, (जो कि) सुवर्णके कमरबन्द
शिरोभूषण-सहित सुवर्ण-मालाधारी पद्मलक्षणवाले,
८४　सुशिक्षित, राजाओंके वहन करने योग्य, युद्धमें सव तरहके शब्दो
को सहनेवाले, हरिण दात महाकाय और सभी आठ हथिनियोवाले,
८५　और सभी नगर तोडनेवाले नवीन मेघ जैसे है।
हे राजन्, यह मेरा धन है, उसके साथ मै तुमसे खेलता हू।

वैशम्पायन बोले—

८६　ऐसा कहते हुए पृथा-पुत्रपर हसते से
"जीत लिया" यही शकुनिने युधिष्ठिरसे कहा।

युधिष्ठिर बोले—

८७　उतने ही यह रथ है, जो कि सुवर्ण-दड-पताकावाले,
प्रशिक्षित घोडोंसे जुते विचित्र युद्ध करनेवाले रथियोंसे युक्त,
८८　जिन (रथियो) मेंसे एक-एक सहस्र तक वेतन पाता है,
युद्ध करते या न युद्ध करते भी (उतना) मासिक वेतन।
हे राजन्, यह मेरा धन है, उसके साथ मै तुमसे खेलता हू।

वैशम्पायन बोले—

८९　एसा वचन कहनेपर वैरवद्ध दुरात्मा शकुनिने,
"जीत लिया", यही युधिष्ठिरसे कहा।

युधिष्ठिर उवाच—

९० अश्वास् तित्तिरि-कल्मापान्, गान्धर्वान् हेम-मालिन ।
दर्दौ चित्ररथस् तुष्टो यास्तान् गाण्डीव-धन्वने ॥

९१ युद्धे जित पराभूत, प्रीति-पूर्व अरिन्दम ।
एतद् राजन्, मम धन, तेन दीव्याम्यह त्वया ॥

वैशम्पायन उवाच—

९२ एतच्छ्रुत्वा, व्यवसितो, निकृति समुपाश्रित ।
"जित" इत्येव शकुनिर् युधिष्ठिरमभाषत ॥

युधिष्ठिर उवाच—

९३ रथाना शकटाना च श्रेष्ठाना चायुतानि मे ।
युक्तान्येव हि तिष्ठन्ति वहिर् उच्चावचैस् तथा ॥

९४ स्व वर्णस्य वर्णस्य समुच्चीय सहस्रश ।
यथा समुदिता वीरा, सर्वे वीर-पराक्रमा ॥

९५. षष्ठिस् तानि सहस्राणि, सर्वे विपुल-वक्षस ।
एतद् राजन्, मम धन, तेन दीव्याम्यह त्वया ॥

वैशम्पायन उवाच—

९६ एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो, निकृति समुपाश्रित ।
"जित" इत्येव शकुनिर् युधिष्ठिरमभाषत ॥

युधिष्ठिर उवाच—

९७ ताम्र-लोहै परिवृता निधयो ये चतु शता ।
पच-द्रौणिक एकैक सुवर्णस्याहतस्य वै ।

९८ जातरूपस्य मुख्यस्य अनर्घेयस्य भारत ।
एतद् राजन्, मम धन, तेन दीव्याम्यह त्वया ॥

युधिष्ठिर बोले—

९० तुष्ट होकर तीतरकी तरह कवरे सुवर्ण-मालावाले
जो गंधर्वीय घोडे चित्ररथने अर्जुनको दिये।

९१ युद्धमें पराजित और पराभूत होकर शत्रुमर्दनने, प्रीतिपूर्वक दिया,
हे राजन्, यह मेरा धन है, उसके साथ मैं तुमसे खेलता हू।

वैशम्पायन बोले—

९२. यह सुनकर धोखेका अवलम्ब ले प्रयत्नशील शकुनिने,
"जीत लिया" यही युधिष्ठिरसे कहा।

युधिष्ठिर बोले—

९३. मेरे एक हजार श्रेष्ठ रथ और शकट,
नाना प्रकारसे जुते हुये ही बाहर अवस्थित है।

९४ इस प्रकार एक-एक वर्णके चुनकर हजारो,
इकट्ठा हुये सभी पराक्रमवाले, वीर

९५. वे साठ हजार, जो कि सभी विपुल छातीवाले है,
हे राजन्, यह मेरा धन है, उसके साथ मैं तुमसे खेलता हू।

वैशम्पायन बोले—

९६ यह सुनकर धोखेका अवलम्ब लिये प्रयत्नशील शकुनिने,
"जीत लिया" यही युधिष्ठिरसे कहा।

युधिष्ठिर बोले—

९७. तांबेसे घिरी ढकी जो चारसौ निधिया है,
जिनमें एक-एक शुद्ध सुवर्णके पाच द्रोणोवाली है,

९८. जो मुख्य अनर्घ सुवर्णोंकी है, हे भारत,
हे राजन्, यह मेरा धन है, उसके साथ मैं तुमसे खेलता हू।

वैशम्पायन उवाच—

९९ एतच्छ्रुत्वा व्यवसितो, निकृति समुपाश्रित ।
"जित" इत्येव शकुनिर् युधिष्ठिरमभाषत ॥

—सभापर्व, १८

५. बलात्कारः—

वैशम्पायन उवाच—

१०० तत समुत्थाय स राजपुत्र,
श्रुत्वा भ्रातु शासन रक्त-दृष्टि ।
प्रविश्य तद् वेश्म महारथाना,
इत्यब्रवीद् द्रौपदी राज-पुत्रीम् ॥

१०१ "एह्येहि पाचालि, जितासि कृष्णे,
दुर्योधन पश्य विमुक्त-लज्जा,
कुरून् भजस्वायत्-पद्म-नेत्रे,
धर्मेण लब्धासिसभा परैहि" ॥

१०२ तत समुत्थाय सुदुर्मना सा,
विवर्ण आमृज्य मुख करेण ।
आर्ता प्रदुद्राव यत स्त्रियस्ताः,
वृद्धस्य राज्ञ कुरुपुगवस्य ॥

१०३ ततो जवेनाभिससार रोषाद्,
दु शानस्ता अभिगर्जमान ।
दीर्घेषु नीलेष्वथ चोर्मिमत्सु,
जग्राह केशेषु नरेन्द्र-पत्नीम् ॥

१०४. ये राजसूयावभृथे जलेन, महाक्रतौ मन्त्र-पूतेन सिक्ता ।
ते पाण्डवाना परिभूय वीर्यं, बलात् प्रमृष्टा धृतराष्ट्रजेन ॥

वैशम्पायन बोले—

९९　यह सुनकर धोखेका अवलम्ब ले प्रयत्नशील शकुनिने,
　"जीत लिया" यही युधिष्ठिरसे कहा।

—सभा-पर्व १८

५. द्रौपदीका लज्जाहरण—

वैशम्पायन बोले—

१००. तब उठकर लाल आखोवाले राजपुत्र दु शासनने,
　भाईकी आज्ञा सुनकर
　महारथियोंके उस गृहमें प्रवेश करके
　राजपुत्री द्रौपदीसे यह कहा—

१०१　"आ, आ पाचालि कृष्णा, तुझे जीत लिया गया है।
　लज्जा छोडकर दुर्योधनको देख।
　पद्म जैसी बडी आखोवाली, तू कुरुओकी सेवा कर,
　धर्मसे तुझे प्राप्त किया गया है, सभामें चल।"

१०२　उठकर दु खी हो वह अपने
　मुरझाये मुखको हाथसे मलकर
　आर्त हो वहा दौडी, जहा कि वृद्ध
　राजा कुरु-पुगवकी स्त्रिया थी।

१०३　तब रोषयुक्त दु शासनने, वेगसे
　गरजते हुए उसका अनुसरण किया।
　और घुघराले नीले लम्बे
　केशोंसे नरेन्द्र-पत्नीको पकड लिया,

१०४　जो केश राजसूयके महायज्ञमें
　अवभृथ-मत्र द्वारा पवित्र जलसे अभिषिक्त हुये थे,
　उन्हें पाडवोंके पराक्रमको तिरस्कृत कर,
　धृतराष्ट्र-पुत्रने जबर्दस्ती पकड लिया।

१०५　स ता पराकृष्य सभा-समीपम्,
आनीय कृष्णा अति-दीर्घ-केशीम् ।
दु शासनो नाथवती अ-नाथवच्,
चकर्ष वायु कदलीमिवार्ताम् ।।

१०६. सा कृष्यमाणा नमिताग-यष्टि,
शनैरुवाचाथ—"रजस्वलास्मि,
एक च वासो मम मन्दवुद्धे,
नेतु सभा नार्हसि मा अनार्य ।।"

१०७　ततोऽब्रवीत् ता प्रसभ निगृह्य,
केशेषु कृष्णेषु तदा स कृष्णाम्—
"रजस्वला वा भव याज्ञसेनि,
एकाम्वरा वाऽप्यथवा विवस्त्रा ।।

१०८　द्यूते जिता चासि कृतासि दासी,
दासीषु वासश्च यथोपयोगम् ।"
प्रकीर्णकेशी पतितार्ध-वस्त्रा,
दु शासनेन व्यव-धूयमाना ।।

१०९. ह्रीमत्य-मर्षेण च दह्यमाना,
शनैरिद वाक्यमुवाच कृष्णा—
"इमे सभायामुपनीतशास्त्रा,
क्रियावन्तः सर्व एवेन्द्रकल्पा. ।।

११०. गुरु-स्थाना गुरवश्चैव सर्वे,
तेषामग्रे नोत्सहे स्थातुमेवम् ।
नृशस-कर्मस्त्वमनार्य-वृत्त,
मा मा विवस्त्रा कुरु मा विकार्षी ।

१०५ वह अतिदीर्घ केशवाली द्रौपदीको
खीचकर सभाके समीप लाया,
नाथवालीको अनाथाकी तरह,
वायुसे केलेकी तरह आर्तको दु शासनने घसीटा।

१०६ शरीर झुकाये घसीटी जाती उसने
धीरेसे कहा—"मै रजस्वला हू,
हे मन्दबुद्धि, मै एकवस्त्रा हू,
अनार्य, मुझे सभामें मत ले चल।"

१०७ काले केशोंके साथ जबर्दस्ती उसे
पकडकर तब उसने द्रौपदीसे कहा—
"हे यज्ञसेन-पुत्रि, चाहे रजस्वला,
एकवस्त्रा या बेवस्त्रवाली हो।

१०८. जूयेमें तू जीती, दासी बनाई गई है,
दासियोका वस्त्र उपयोगके अनुसार होता है।"
बिखरे केशोवाली आधे हटे वस्त्रवाली,
दु शासनसे घसीटी जाती,

१०९ अमर्षसे जलती लज्जावती
कृष्णाने धीरेसे यह बात कही—
"सभामें शास्त्र जाननेवाले
कर्मनिष्ठ यह सभी इन्द्र-समान,

११० और गुरु-स्थानीय सभी गुरुजन है,
उनके सामने इस प्रकार मैं खडी नही हो सकती।
तू नृशस अनार्य आचरणवाला है,
मुझे नगी मत कर, मुझे मत घसीट।

१११ न मर्पयेयुस् तव राजपुत्रा,
सेन्द्रापि देवा यदि ते सहाया ॥
धर्मे स्थितो धर्म-सुतो महात्मा,
धर्मश्च सूक्ष्मो निपुणोपलक्ष्यः।

११२ वाचापि भर्तुं परमाणुमात्र,
इच्छामि दोष न गुणान् विसृज्य।
इद त्व-कार्यं कुरु-वीर-मध्ये,
रजस्वला यत् परिकर्षसे माम् ॥

११३ न चापि कश्चित् कुरुतेऽत्र कुत्साम्
ध्रुव तवेद मतम् अभ्युपेत ।
धिगस्तु, नष्ट खलु भारताना,
धर्मस्तथा क्षत्र-विदा च वृत्तम् ॥

११४ यत्र ह्यतीता कुरु-धर्म-वेला,
प्रेक्षन्ति सर्वे कुरव सभायाम्।
द्रोणस्य भीष्मस्य च नास्ति सत्त्व,
क्षत्तुस्तथैवास्य महात्मनोऽपि ॥

११५. राज्ञस् तथाहीममधर्ममुग्र,
न लक्षयन्ते कुरु-वृद्ध-मुख्या ।"
तथा ब्रुवन्ती करुण सुमध्यमा,
भर्तॄन् कटाक्षै कुपितान् अपश्यत् ॥

११६. सा पाण्डवान् कोप-परीत-देहान्,
हृतेन राज्येन तथा धनेन ।
रत्नैश्च मुख्यैर्न तथा वभूव,
यथा त्रपा-कोप-समीरितेन ॥

११ यदि इन्द्र-सहित देवता भी तेरे सहायक हो,
तो भी राजपुत्र तुझे क्षमा नही करेंगे।
महात्मा धर्म-पुत्र धर्ममें स्थित है,
धर्म सूक्ष्म है, जिसे चतुर ही जान सकते है।

११२ वाणीसे भी, गुणोको छोडकर भी,
पतिका अणु मात्रदोष मै नही देखती,
यह तो अयुक्त कार्य है, जो कि कुरु-वीरोके मध्यमे
मुझ रजस्वलाको तू घसीट रहा है।

११३ यहा (सभामें) कोई निंदा नही कर रहा है,
निश्चय वह तेरी रायको मानते है।
धिक्कार है, भारतोका धर्म और क्षत्रियो के धर्मके
जाननेवालोका आचार भी नष्ट हो गया,

११४ जहा कुरु-धर्मकी मर्यादा उल्लघित होते
सभामें सारे कुरु देख रहे है।
द्रोण और भीष्ममें सत् नही है,
उसी तरह महात्मा राजाके इस क्षत्ता (विदुर) में भी।

११५ उसी तरह इस उग्र अधर्मको
कुरुओंके वृद्ध मुखिया नही लखते।"
उस तरह करुण बोलती सुन्दर कटिवाली द्रौपदीने,
अपने कुपित पतियोको कटाक्षोंसे देखा।

११६ पाडवोको उसने कोपसे व्याप्त देहवाले
(देखा), वैसा राज्य और धनके
और मुख्य रत्नोंके हारनेसे नही हुआ था
दु:ख, जैसा कि लज्जा और कोपसे प्रेरित

११७ कृष्णा कटाक्षेण वभूव दु खम्,
दु शासनश्चापि समीक्ष्य कृष्णाम्।
अवेक्षमाणा कृपणान् पतीस्तान्,
आधूय वेगेन विसञ्ज्ञकल्पाम् ॥

११८ उवाच तद् वाक्यमतीव हृष्ट,
सम्पूजयामास हसन् स-शब्दम्।
गान्धार-राज सुवलस्य पुत्रस्,
तथैव दु शासनमभ्यनन्दत्।

११९ सभ्यास्तु ये तत्र वभूवुरन्ये,
ताभ्या ऋते धार्तराष्ट्रेण चैव।
तेषा अभूद् दु खमतीव, कृष्णा
दृष्ट्वा सभाया परिकृष्यमाणाम् ॥

भीष्म उवाच—

१२०. "न धर्म-सौक्ष्म्यात् सुभगे विवेक्तु,
शक्नोमि ते प्रश्नमिम यथावत्।
अ-स्वाम्य-शक्त पणितु पर-स्व,
स्त्रियाश् च भर्तुर् वशता समीक्ष्य।

१२१. त्यजेत सर्वां पृथिवी समृद्धा,
युधिष्ठिरो धर्ममथो न जह्यात्।
उक्त जितोऽस्मीति च पाण्डवेन,
तस्माद् न शक्नोमि विवेक्तुमेतत् ॥

११७ कृष्णाके कटाक्षसे उन्हें हुआ।
दु शासन भी, दीन पतियोकी ओर देखती कृष्णाको
वेगसे झकझोर कर बेहोश हुई सी

११८ अत्यत हर्षित होकर यह वाक्य बोला (था),
मानो शब्दके साथ हसते हुए (उसकी) पूजा की।
सुबलके पुत्र गधारराज शकुनिने भी,
वैसे ही दु शासनका अभिनन्दन किया।

११९. इन दोनोको और दुर्योधनको छोडकर
जो वहा दूसरे सभ्य थे, उन्हें
सभामें कृष्णाको घसीटी जाती
देखकर अत्यत दुःख हुआ।

भीष्म बोले—

१२०. "हे सुभगे, धर्मकी सूक्ष्मताके कारण
तेरे इस प्रश्नका ठीकसे मैं निर्णय नही कर सकता,
दास दूसरे धनको दाव पर नही रख सकता,
और स्त्री पतिके वश होती है, इसे भी देखना है।

१२१ युधिष्ठिर, समृद्ध सारी पृथिवीको भी
छोड देंगे, पर धर्मको नही छोडेंग,
युधिष्ठिरने कह दिया है कि मैं "जीत लिया गया"
इसलिये इसका मैं विवेक नही कर सकता।

१२२ द्यूतेऽद्वितीय शकुनिर् नरेषु,
कुन्ती-सुतस्तेन निसृष्ट-काम ।
न मन्यते ता निकृतिं युधिष्ठिर,
तस्माद् न ते प्रश्नमिम ब्रवीमि" ।।

द्रौपदी उवाच—

१२३. "आहूय राजा कुशलैर् अनार्यं,
दुष्टात्मभिर् नैकृतिकै. सभायाम् ।
द्यूत-प्रियै नाति-कृत-प्रयत्न,
कस्माद् अय नाम निसृष्ट-काम ।।

१२४ अ-शुद्ध-भावै निकृति-प्रवृत्तैर्,
अ-बुध्यमाना कुरु-पाण्डवाग्र्य,
सभूय सर्वैश्च जितोऽपि यस्मात्
पश्चादय कैतवमभ्युपेत ।।

१२५ तिष्ठन्ति चेमे कुरव सभाया,
ईशा सुताना च तथा स्नुषाणाम् ।
समीक्ष्य सर्वं मम चापि वाक्य,
विब्रूत मे प्रश्नमिम यथावत् ।।

१२६. न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा,
न ते वृद्धा. ये न वदन्ति धर्मम् ।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति,
न तत् सत्य यच्छलेनानुविद्धम् ।।"

१२२. जूयेके वारेमें आदमियोमें शकुनि अद्वितीय है,
उसके साथ खेलनेकी इच्छा कुन्ती-पुत्र ने प्रकट की।
युधिष्ठिर उसे धोखा नही मानते,
इसलिये तेरे इस प्रश्नके वारेमें मै नही कह (सक)ता।

द्रौपदी वोली—

१२३ राजा अनार्यों, चालाको,
दुष्टो, धोखेवाजो, जूआ-प्रेमियो द्वारा
सभामें वुलाकर नातिप्रयत्न कर (हार) गये
राजा, कैसे सम्मति देनके इच्छुक हैं?

१२४. अशुद्ध-भाववाले वचनामें प्रवृत्त सबने
विना जाने कुरु-पाडवोमें श्रेष्ठ (युधिष्ठिर) को
एक होकर जीता, इसलिये
उन्होने यह धोखा खाया?

१२५. सभामें पुत्रो और वहुओंके स्वामी
ये कुरु लोग वैठ हैं,
(आप) सभी मेरे वचनपर विचार करके
मेरे इस प्रश्नका ठीकसे जवाव दें।

१२६. वह सभा नही, जहा वृद्ध नही हैं,
वह वृद्ध नही, जो धर्मकी वात नही करते,
वह धर्म नही, जिसमें सत्य नही,
वह सत्य नही, जो छललिप्त है।

वैशम्पायन उवाच—

१२७. तथा ब्रुवन्ती करुण रुदन्ती,
अवेक्षमाणां कृपणान् पतीस्तान् ।
दु.शासन. परुषाण्यप्रियाणि,
वाक्यान्युवाचामधुराणि चैव ।।

१२८. तां कृष्यमाणा च रजस्वला च
स्रस्तोत्तरीयाम तदर्हमाणाम्,
वृकोदर. प्रेक्ष्य युधिष्ठिर च,
चकार कोप परमार्त-रूप' ।

भीम उवाच—

१२९ "भवन्ति गेहे बन्धक्य कितवाना युधिष्ठिर ।
न ताभिरुत दीव्यन्ति दया चैवास्ति तास्वपि ।।

१३०. वाहनानि धन चैव कवचान्यायुधानि च ।
राज्यमात्मा वयं चैव कैतवेन हृत परै ।

१३१ न च मे तत्र कोपोऽभूत् सर्वस्येशो हि नो भवान् ।
इम व्यतिक्रम मन्ये द्रौपदी यत्र पण्यते ।।

१३२ एषा ह्यनर्हती बाला पाण्डवान् प्राप्य कौरवै ।
त्वत्-कृते क्लिश्यते क्षुद्रैर्, नृशसैर्-कृतात्मभि ।।

१३३ अस्या कृते मन्युरय त्वयि राजन् निपात्यते ।
बाहू तेऽह प्रधक्ष्यामि सहदेवाग्निमानय" ।।

अर्जुन उवाच—

१३४. "न पुरा, भीम-सेन, त्वमीदृशी वदिता गिर ।
परैस्ते नाशित नून नृ-शसै धर्म-गौरवम् ।।

१३५ न सकामा परे कार्या धर्ममेवाचरोत्तमम् ।
भ्रातर धार्मिक ज्येष्ठ कोऽति-वर्तितुमर्हति ।।

वैशम्पायन बोले—

१२७ उस तरह कहती सकरुण रोती,
दीन पतियोकी ओर देखती द्रौपदीको
दुःशासन कठोर अप्रिय
अमधुर वाक्यो में बोला।

१२८. और उस रजस्वलाको घसीटी जाती,
खिसकी चादरवाली उसके अयोग्य इस (वर्त्ताव) को
और युधिष्ठिरको देखकर
परम व्याकुल हो भीमने कोप किया।

भीम बोले—

१२९ हे युधिष्ठिर, जुआरियोंके घरमें वंधकिया होती हैं,
उनपर भी जूआ नही खेलते, उनपर भी दया होती है।

१३० वाहन, धन, कवच और आयुध
राज्य और स्वय हमें भी दूसरोने धोखेसे हर लिया;

१३१ पर उसके विषयमें मुझे कोप नही हुआ, आप हम सबके स्वामी हैं।
पर, इसे मैं अनुचित मानता हू, कि जो द्रौपदी दावपर रक्खी गई।

१३२ इस (वर्त्ताव) की अपात्र वह वाला पाडवोको पाकर तुम्हारे कारण,
क्षुद्र नृशस अकृतज्ञ कौरवो द्वारा क्लेशित की जा रही है।

१३३ राजन्, इसके लिए यह मेरा क्रोध तेरे ऊपर गिरेगा,
मैं तेरी वाहुओको जला दूगा। सहदेव, आग ले आओ।

अर्जुन बोले—

१३४. भीमसेन, तूने ऐसी वात पहले कभी नही कही,
जान पडता है, नृशस शत्रुओने धर्मके प्रति तेरे गौरवको नष्ट कर दिया।

१३५ शत्रुओको सफल मत वना, उत्तम धर्म ही का आचरण कर,
धार्मिक जेठे भाईकी आज्ञा कौन उल्लघन कर सकता है?

१३६ आहूता हि परै राजा क्षात्र व्रतमनुस्मरन् ।
दीव्यते पर-कामेण तद् न कीर्ति-कर महत्" ।

भीम उवाच—

१३७ "एवमस्मिन् कृत विद्या यदि नाह धनजय ।
दीप्तेऽग्नौ सहितौ वाहू निर्दहेय वलाद् इव" ॥

—सभापर्व

६. मध्यस्थ—

१३८ अथ दुर्योधन कृष्ण शकुनिश्चापि सौवल ।
सन्ध्या तिष्ठन्तमभ्येत्य दाशार्हम-पराजितम् ॥

१३९ आचक्षेता तु कृष्णस्य धृतराष्ट्र सभागतम् ।
कुरूंश्च भीष्म-प्रमुखान् राज्ञ सर्वांश्च पार्थिवान् ॥

१४० तत सभा समासाद्य केशवस्यानुयायिन ।
स-शखै वेणु-निर्घोषै दिश सर्वा व्यनादयन् ॥

१४१ तत सा समिति सर्वा राज्ञाममित-तेजसाम् ।
सम्प्राकम्पत हर्षेण कृष्णागमनकाक्षया ॥

१४२ अवतीर्य रथाच् छौरि कैलास-शिखरोपमात् ।
महेन्द्र-भवन-प्रख्या प्रविवेश सभा तत ॥

१४३ उत्तिष्ठति महा-राजे धृतराष्ट्रे जनेश्वरे ।
तानि राज-सहस्राणि समुत्तस्थु समन्तत ॥

१४४ तत्र केशवमानर्चु सम्यगभ्यागत सभाम् ।
राजान पार्थिवा सर्वे कुरवश्च जनार्दनम् ॥

१४५ ततस्तूष्णी सर्वमासीद् गोविन्द-गत-मानसम् ।
न तत्र कश्चित् किंचिद् वा व्याजहार पुमान् क्वचित् ।

१३६. क्षत्रियोंके व्रतका ख्याल करके दूसरो द्वारा बुलाये गये राजाने,
परायेकी कामनासे जूआ खेला, वह हमारे लिये महाकीर्तिकारी है।

भीमसेन बोले—

१३७ हे अर्जुन, इस विषयमें ऐसे कियेको यदि मैं न जानता,
तो प्रज्ज्वलित अग्निमें जबर्दस्ती (इनकी) दोनो बाहो को जला डालता।

—सभा-पर्व अध्याय २३

६. समझौतेकी बातचीत—

१३८ तब दुर्योधन और सुबल-पुत्र शकुनिने भी
अजेय पूजनीय कृष्णके सध्या करते समय पास आकर,

१३९. कृष्णसे सभामें मौजूद धृतराष्ट्रके बारेमें
भीष्म आदि कुरुओ, राजाओ और सभी पार्थिवोंके बारेमें कहा।

१४० तब केशवके अनुयायियोने सभामें पहुचकर,
शख-सहित बशीके शब्दोंसे सारी दिशाओको व्याप्त कर दिया।

१४१ तब अनत तेजवाले राजाओकी वह सारी समिति,
कृष्णके आगमनकी इच्छासे हर्षित हो कपित हुई।

१४२ तब कैलाशके शिखर जैसे ऊचे रथसे कृष्ण
उतरकर, इन्द्र-भवनके समान सभामें प्रविष्ट हुये।

१४३. जनोंके ईश्वर महाराज धृतराष्ट्रके उठनेपर,
चारो ओर हजारो राजा खडे हो गये।

१४४ सभामें आये केशवकी उन्होने अच्छी तरह पूजा की।
तब राजा पार्थिव और सारे कुरु जनार्दन

१४५ गोविन्दकी ओर मन लगाये सब चुप रहे,
कोई पुरुष कही कुछ भी नही बोला।

१४६. तेष्वासीनेषु सर्वेषु तूष्णीभूतेषु राजसु।
वृतराष्ट्रमभिप्रेक्ष्य समभाषत माधव --

१४७ "कुरूणा पाण्डवाना च शम स्यादिति भारत।
अ-प्रणाशेन वीराणा, एतद् याचितुमागत ॥

१४८ इद ह्यद्य कुल श्रेष्ठ सर्व-राजसु पार्थिव।
श्रुत-वृत्तोपसम्पन्न सर्वै समुदित गुणै ॥

१४९ कृपानुकम्पा-कारुण्यमानृशस्य च भारत।
तथार्जव क्षमा सत्य कुरुष्वेतद् विशिष्यते ॥

१५० तस्मिन्नेवविधे राजन् कुले महति तिष्ठति।
त्वन्-निमित्त विशेषेण नेह युक्तम-साम्प्रतम् ॥

१५१ त्व हि धारयिता श्रेष्ठ कुरूणा कुरु-सत्तम ॥
मिथ्या प्रचरता तात, बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च।

१५२ ते पुत्रा तव कौरव्य, दुर्योधनपुरोगमा।
धर्मार्थौ पृष्ठत कृत्वा प्रचरन्ति नृशसवत् ॥

१५३ अ-शिष्टा गत-मर्यादा, लोभेन हृत-चेतस।
स्वेषु आपद् महा-धोरा, कुरुष्वेव समुत्थिता ॥

१५४ उपेक्ष्यमाणा कौरव्य, पृथिवी घातयिष्यति।
शक्या चेय शमयितु त्व चेद् इच्छसि भारत ॥

१५५ पुत्रान् स्थापय कौरव्य स्थापयिष्याम्ह परान्।
आज्ञा तव हि, राजेन्द्र कार्या पुत्रै सहान्वयै ॥

१५६. हित बलवदप्येषा तिष्ठता तव शासने।
तव चैव हित, राजन् पाण्डवाना अथो हितम् ॥

१५७ शमे प्रयतमानस्य तव शासन-काक्षिण।
सहाय-भूता भरतास् तवैव स्युर्जनेश्वर ॥

१४६. उन सभी राजाओंके चुप होकर बैठनेपर,
धृतराष्ट्रकी ओर देखकर माधवने कहा—

१४७. "हे भारत, कुरुओ और पाडवोंमें
वीरोंके नाशके विना शान्ति हो, यह मागनेके लिये मैं आया हू।

१४८. हे पार्थिव, यह (कुरु) कुल आज सभी राजाओंमें श्रेष्ठ है,
विद्या और आचारसे सम्पन्न सभी गुणोंसे युक्त है।

१४९. हे भारत, कृपा, अनुकम्पा, करुणा और उदारता,
तथा ऋजुता, क्षमा, सत्य, यह (गुण) कुरुओंमें विशेष कर हैं।

१५०. हे राजन्, इस प्रकारके उस महाकुलके रहनेपर,
विशेपकर तुम्हारे कारण यहा अनुचित (होना) ठीक नही है।

१५१. हे कुरुओ में अत्यन्त सत्पुरुप, तुम कुरुओंके श्रेष्ठ धारक हो,
हे तात, हे कौरव्य, वाह्य और आभ्यन्तर मिथ्याकारी

१५२. तुम्हारे दुर्योधन आदि पुत्र, धर्म की ओरसे
पीठ फेरकर कमीनेकी तरह आचरण करते,

१५३. अशिष्ट, मर्यादा-रहित, लोभसे वुद्धि-भ्रष्ट हैं, (जिससे)
अपने कुरुओ पर महाघोर विपद् उठ खडी हुई है।

१५४ जिसकी उपेक्षा करनेपर हे कौरव्य, वह पृथिवीको नष्ट कर देगी।
हे भारत, यदि तुम चाहो, तो शान्ति (स्थापित) की जा सकती है।

१५५ हे कौरव्य, अपने पुत्रोंको तुम रोको, मैं दूसरोंको रोकूगा।
हे राजेन्द्र, तुम्हारे पुत्र अपने वशके साथ आज्ञाके अनुसार चलें।

१५६ तुम्हारी आज्ञामें रहनेपर उनकी भारी भलाई है,
हे राजन् (इसीमें) तुम्हारा और पाडवोंका भी हित हैं।

१५७ तुम्हारी आज्ञा (पाने) के इच्छुक शान्तिके लिये प्रयत्न-शील,
सहायक जैसे भरत लोग तुम्हारे ही होंगे, हे जनेश्वर।

१५८ धर्मार्थयो तिष्ठ राजन् पाण्डवै अभिरक्षित ।
न हि त्वा पाण्डवै जेतु रक्ष्यमाण महात्मभि ॥

१५९ इन्द्रोऽपि देवै. सहित प्रसहेत कुतो नृपा ।
लोकेस्येश्वरता भूय शत्रुभि चाप्यधृष्यताम् ॥

१६० प्राप्स्यसि त्वममित्रघ्न सहित कुरु-पाण्डवै ।
तस्य ते पृथिवी-पालास् त्वत्-समा पृथिवी-पते ॥

१६१ श्रेयासश्चैव राजान सधास्यते परन्तप ।
स त्व पुत्रैश्च पौत्रैश्च पितृभि भ्रातृभिस्तथा ॥

१६२ सुहृद्भि सर्वतो गुप्त सुख शक्ष्यसि जीवितुम् ।
एतैर्हि सहित सर्वै पाण्डवै स्वैश्च भारत ।

१६३ अन्यान् विजेष्यसे शत्रून् एष स्वार्थ तवाखिल ।
तैरेवोपार्जिता भूमि भोक्ष्यसे च परन्तप ॥

१६४ यदि सम्पत्स्यसे पुत्रै सहामात्यै नराधिप ।
सयुगे वै महाराज दृश्यसे सु-महान् क्षय ।

१६५ क्षये चोभयतो राजन् क धर्ममनुपश्यसि ।
पाण्डवै निहतै सख्ये पुत्रैर्वापि महाबलै ॥

१६६ यद् विन्देथा सुख राजस्तद् ब्रूहि, भरतर्षभ ।
शूराश्चापि कृतास्त्राश्च सर्वै युद्धाभिकाक्षिण ॥

१६७ पाण्डवास् तावकाश् चैव तान् रक्ष महतो भयात् ।
न पश्येम कुरून् सर्वान् पाण्डवाश् चैव सयुगे ॥

१६८ क्षीणान् उभयत शूरान् रथिनो रथिभि हतात् ।
समवेता पृथिव्या हि राजानो राज-सत्तम ॥

१६९. अमर्ष-वशमापन्ना नाशयेयुरिमा प्रजा ।
त्राहि राजन्निम लोक न नश्येयु इमा प्रजा ॥

१५८ हे राजन्, पाडवोंसे रक्षित धर्म और अर्थमें तुम स्थित रहो,
महात्मा पाडवो द्वारा रक्षित हुए तुम्हें कोई नही जीत सकता।

१५९. देवताओ सहित इन्द्र भी (तुम्हें) दवा नही सकता, राजा (की)
तो (वात ही) क्या, शत्रुओ से अजेयत्व को,
लोक के स्वामित्व को तुम और भी अधिक पाओगे।

१६० हे शत्रुहन्ता, कुरु-पाडवोके साथ (और)
हे पृथिवीपति, तुम्हारे साथ वे भूपाल,

१६१ हे परतप, वे वडे राजा भी तुमसे सन्धि करेंगे,
सो तुम पुत्रो और पौत्रो, पिताओ तथा भाइयो,

१६२ और मित्रो द्वारा चारो ओरसे रक्षित सुखसे रह सकोगे।
हे भारत, इन सवके तथा अपने पाडवोंके साथ (मिल कर),

१६३ तुम दूसरे शत्रुओको जीतोगे, यह सारा तुम्हारा स्वार्थ है।
हे परतपी, उनके द्वारा उपार्जित भूमिका तुम भोग करोगे।

१६४ हे नराधिप, यदि अमात्यो सहित पुत्रोंके साथ युद्धमें,
शामिल होगे, तो महाराज, (इसमें) अति महानाश दीखता है।

१६५ हे राजन्, युद्धमें महावली पुत्रो या निहत पाडवो,
दोनो ओरसे नाश होनेमें तुम कौन धर्म देखते हो ?

१६६ हे भरतोमें श्रेष्ठ राजन्, जो सुख पाओगे, उसे कहो।
शूर और हथियार में चतुर सारे पाडव और तुम्हारे लोग

१६७ युद्ध-इच्छुक हैं, उन्हें महाभयसे वचाओ।
युद्धमें दोनो ओरसे सारे कुरुओ और पाडवोका,

१६८ नष्ट शूरो, रथियो द्वारा रथियोका मरना हम न देखें।
हे राजश्रेष्ठ, पृथिवीके राजा एकत्रित हुये,

१६९ अमर्षके वशमें पड़ इस प्रजाको नाश कर देंगे।
हे राजन्, इस लोककी रक्षा करो, जिसमें यह प्रजायें नष्ट न हो।

१७० त्वयि हि प्रकृतिमापन्ने शेप स्यात् कुरु-नन्दन ।
शुक्ला वदान्या ह्रीमन्त आर्या पुण्याभिजातय ॥

१७१. अन्योन्य-सचिवा राजन् तान् पाहि महतो भयात् ।
शिवेनेमे भूमि-पाला समागम्य परस्परम् ॥

१७२. सह भुक्त्वा च पीत्वा च प्रतियान्तु यथा-गृहम् ।
सु-वासस स्रग्विणश् च सत्कृता, भरतर्षभ ॥

१७३ अ-मर्ष च निराकृत्य वैराणि च परन्तप ।
हार्द यत् पाण्डवेष्वासीत् प्राप्तेऽस्मिन् आयुष क्षये ॥

१७४. तदेव ते भवत्वद्य सन्धत्स्व भरतर्षभ ।
बाला विहीना पित्रा ते त्वयैव परिवर्धिता ।

१७५. तान् पालय यथा-न्याय पुत्राश्च मनुजेश्वर ।
भवतैव हि रक्ष्यास् ते व्यसनेषु विशेषत ॥

१७६ मा ते धर्मस्तथैवार्थो नश्येत भरतर्षभ ।
आहुस् त्वा पाण्डवा राजन्नभिवाद्य प्रसाद्य च ।—

१७७ भवत शासनाद् दु खम् अनुभूत सहानुगै ।
द्वादशेमानि वर्षाणि वने निर्व्युषितानि न ॥

१७८ त्रयोदश तथाज्ञातै स-जने परि-वत्सरम् ।
स्थाता न समये तस्मिन् पितेति कृत-निश्चया ॥

१७९. नाहास्म समय तात तच्च नाब्राह्मणा विदु ।
तस्मिन् न समये तिष्ठ स्थिताना भरतर्षभ ॥

१८० नित्य सक्लेशिता राजन् स्व-राज्याश लभेमहि ॥
पित्रा स्थापयितव्या हि वयमुत्पथमास्थिता ॥

१७० तुम यदि ठीक रहो, तो हे कुरु-पुत्र, शेष भी (ठीक) हो जायेगा।
स्वच्छ, उदार, लज्जालू, पवित्र कुलवाले आर्य लोग,

१७१. एक दूसरेके सचिव हैं, हे राजन् उन्हें महान् भय से बचाओ।
(एकत्रित) यह भूपाल शान्तिसे एक दूसरेसे मिलकर,

१७२ साथ खान-पान करके सुन्दर वस्त्र माला पहने सत्कारपूर्वक
अपने-अपने घरोको जायें, हे भरत-श्रेष्ठ,

१७३ अमर्ष और वैरको छोड कर हे परतपी,
प्राणोका क्षयकारी इस युद्धके होनेपर। जो पांडवोंके हृदयकी बात है,

१७४ वही आज तुम्हारी भी हो, हे भरत-श्रेष्ठ, सन्धि कर लो।
वे (पाडव) पिताविहीन बालक थे, तुम्हीने उन्हें पाला-पोसा,

१७५ हे मनुजेश्वर, न्यायपूर्वक उनका और पुत्रोका पालन करो।
तुम्हें ही, खास कर आफत पडनेपर उनकी रक्षा करनी है।

१७६ हे भरतश्रेष्ठ, तुम्हारा धर्म और अर्थ नष्ट न हो,
हे राजन्, अभिवादन करके और विनती करके पाडवोने तुमसे कहा है—

१७७ "अपने अनुयायियोके साथ हमने आपकी आज्ञासे दु ख भोगा,
ये बारह वर्ष हमारे वनमें बीते।

१७८ तेरहवें वर्ष जनोमें अज्ञात रहे,
'उस समय पिता नही' यह निश्चय किया।

१७९ हे तात, शर्त नही कही थी, और उसे अब्राह्मण नही जाने,
हमारी उस शर्तपर हे भरतश्रेष्ठ, कायम रहो।

१८०. हे राजन्, नित्य क्लेश पाते हमें अपने राज्यका अश मिले।
बुरे पथपर स्थित हमें (आप) पिता ठीक करें।

१८१ संस्थापय पथिष्वस्मास् तिष्ठ धर्मे स्व-वर्त्मनि।
आहुश् चेमा परिषद पुत्रास् ते भरतर्षभ—

१८२ धर्म-ज्ञेषु सभा-सत्सु नेह युक्तम-साम्प्रतम्।
यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्य यत्रानृतेन च ॥

१८३ हन्यते प्रेक्षमाणाना, हतास् तत्र सभा-सद ।
ये धर्ममनुपश्यन्तस् तूष्णी ध्यायन्त आसते ॥

१८४ ते सत्यमाहुर् धर्म्यं च न्याय च भरतर्षभ।
शक्य किमन्यद् वक्तु ते दानाद् अन्यज् जनेश्वर॥

१८५ ब्रुवन्तु वा मही-पाला. सभाया ये समासते।
धर्मार्थौ सम्प्रधार्येव यदि सत्य ब्रवीम्यहम् ॥

१८६ प्रमुचेमान् मृत्यु-पाशात् क्षत्रियान् पुरुषर्षभ।
पित्र्य तेभ्य. प्रदायाश पाण्डवेभ्यो यथोचितम् ।

१८७ तत. स-पुत्र सिद्धार्थो भुक्ष्व भोगान् परन्तप।
अ-जात-शत्रु जानीषे स्थित धर्मे सता सदा॥

१८८ स पुत्रे त्वयि वृत्ति च वर्तते या नराधिप।
दाहितश्च निरस्तश्च त्वाम् एवोपाश्रित पुन ।

१८९ इन्द्रप्रस्थ त्वयैवासौ स-पुत्रेण विवासितः।
स तत्र निवसन् सर्वान् वशमानीय पार्थिवान् ॥

१९० त्वन्-मुखादकरोद् राजन्, न च त्वामत्यवर्तत।
तस्यैव वर्तमानस्य सौबलेन जिहीर्षता ॥

१९१ राष्ट्राणि धन-धान्य च प्रयुक्त परमोपधि ।
स तामवस्था सप्राप्य कृष्णा प्रेक्ष्य सभा गताम् ॥

१९२ क्षत्र-धर्मादमेयात्मा नाकम्पत युधिष्ठिर ॥
अह तु तव तेषा च श्रेय इच्छामि भारत॥

१८१ हमें रास्तेपर स्थापित कर अपने धर्मपर तुम रहो।
और हे भरतश्रेष्ठ, तुम्हारे पुत्रोने इस परिपद्से कहा है,

१८२. "धर्मज्ञ सभासदोमें अनुचित (वात) ठीक नही है।
जहा अधर्मसे धर्म और जहा झूठसे सत्य

१८३ देखनेवालोके सामने मारा जाता है, वहा (वह) सभासद् मारे गये, जो धर्मको देखते चुपचाप सोचते हैं।

१८४ हे भरतश्रेष्ठ, वे सत्य, धर्मयुक्त और न्याययुक्त वातोको कहते हैं।
हे जनेश्वर, दान छोड तुम्हारे सामने दूसरा क्या कहा जा सकता है?

१८५. सभामें बैठे जो भूपाल हैं, वे धर्म और अर्थको
समझकर वतावें, कि मैं सच कहता हू।

१८६ हे पुरुषश्रेष्ठ, इन क्षत्रियोको
पाडवोको यथोचित पैतृक अश देकर मौतके फदेसे छुडाओ।

१८७ हे परतपी, फिर पुत्र-सहित सफल मनोरथ हो भोगोको भोगो।
सत्पुरुपोके धर्ममें सदा स्थित अजातशत्रु (युधिष्ठिर) को तुम जानते हो।

१८८. हे नराधिप, पुत्रसहित तुम्हारे ऊपर वह जो भाव रखते है, उसे भी (जानते हो)। जलाये गये, निर्वासित हुए वह फिर तुम्हारे ही आश्रयमें (आये) हैं।

१८९ तुमने ही पुत्र-सहित उन्हें इन्द्रप्रस्थमें वसाया,
वहा वसते सारे राजाओको अपने वशमें करके उन्होने,

१९० हे राजन्, तुम्हारी आज्ञा वजाई, तुम्हारी वातका उल्लघन नही किया।
उनके इस तरहसे रहते सुवल-पुत्रने हरण करनेकी इच्छासे,

१९१ राष्ट्र और धनधान्यकी कामनासे परम छल किया।
सभामें आई उस अवस्थामें कृष्णाको देखकर (भी),

१९२ अमित हिम्मतवाले युधिष्ठिर क्षत्रियोके धर्मसे चलायमान नही हुये।
हे भरत-सन्तान, मैं तुम्हारी और उनकी भलाई चाहता हू।

१९३ लाभेऽतिप्रसृतान् पुत्रान् निगृह्णीष्व विशा पते।
स्थिता शुश्रूषित पार्था स्थिता योद्धुमरिन्दमा ॥
यत् ते पथ्यतम राजस् तस्मिस् तिष्ठ परन्तप ॥

—उद्योगपर्व १३

७. विदुला-सवाद.—

१९४ अत्राप्युदाहरन्तीममितिहास पुरातनम् ।
विदुलायाश् च सवाद पुत्रस्य च परन्तप ॥
१९५ क्षत्र-धर्म-रता दान्ता विदुला दीर्घ-दर्शिनी ।
विश्रुता राज-ससत्सु, श्रुत-वाक्या बहु-श्रुता ॥
१९६ विदुला नाम राजन्या जगर्हे पुत्रमौरसम् ॥
निर्जित सिन्धुराजेन शयान दीन-चेतसम् ॥

विदुला उवाच—

१९७ "अ-नन्दन मम जात द्विषता हर्ष-वर्धन,
न मया त्व न पित्रा च जात क्वाभ्यागतोह्यसि ॥

१९८ उत्तिष्ठ हे का-पुरुष, मा शेष्वैव पराजित ।
अ-मित्रान् नन्दयन् सर्वान् निर्मानो बन्धु-शोक-द ॥

१९९ अप्यहेरा-रुजन् दष्ट्रा मा श्वेव निधन व्रज।
अपि वा सशय प्राप्य जीवितेऽपि पराक्रमे ॥
२०० अप्यरे. श्येनवच् छिद्र पश्येस् त्व वि-परिक्रमन्।
विवदन् वाथ वा तूष्णी व्योम्नि वा परिशङ्कित ॥
२०१ त्वमेव प्रेतवच्छेषे कस्मान् वज्र-हतो यथा।
उत्तिष्ठ हे कापुरुष, मा स्वाप्सी शत्रु-निर्जित ॥

१९३. हे प्रजाओंके स्वामी, लोभमें अत्यन्त वढे पुत्रोपर अनुशासन करो। पृथाके पुत्र शुश्रूषा करनेके लिये तैयार है, वे शत्रुदमन युद्ध करनेके लिये तैयार है। हे राजन्, हे परतपी, जो तुम्हें सवसे अधिक हितकर जान पडे, उसमें स्थित हो।

—उद्योग-पर्व अध्याय १३

७. विदुला-संवाद—

१९४ यहा (इस) पुरातन इतिहासको कहते हैं।
हे परतपी, (यह) विदुला और उसके पुत्रका सवाद (है)।

१९५ विदुला क्षत्रियोके धर्ममें निरत, सयमी, दीर्घदर्शिनी,
राजसभाओमें प्रसिद्ध वहुश्रुत थी, लोग उसका वचन सुनते थे।

१९६. विदुला नामकी राजकन्याने सिन्धुराजसे पराजित,
दीन चित्त हो लेटे अपने औरस पुत्रको धिक्कारा।

विदुला वोली—

१९७ हे अ-नन्दन, मेरी सतान, शत्रुओके हर्षको वढानेवाले,
मैंने और न पिताने तुझे जना, तू अपने मनसे आ गया।

१९८ हे कायर, उठ, इस तरह पराजित होकर मत लेट,
सारे शत्रुओको आनदितकर्ता मान-रहित, वन्धुओका क्षोभक वन,

१९९. सापकी दाढ पर चोट करते कुत्तेकी तरह तू मत मर जा।
अथवा जीवनमें भी सशय जानकर, पराक्रम कर।

२०० क्या तूने शत्रुके छिद्रको वाजकी तरह आकाशमें घूमते देखा ?
विवाद करते या चुपचाप परिशकित होकर,

२०१ तू इस तरह वज्रसे मारासा क्यो मुर्देकी तरह सो रहा है ?
उठ हे कायर, शत्रुसे पराजित होकर मत सो।

२०२ मास्त गमस् त्व कृपणो विश्रयस्व स्व-कर्मणा।
मा मध्ये, मा जघन्ये त्व माधो भूस् तिष्ठ गर्जित."

२०३ अलात तिन्दुकस्यैव मुहूर्तमपि हि ज्वल।
मा तुषाग्निरिवानर्चिर् धूमायस्व जिजीविषु।

२०४ मुहूर्तं ज्वलित श्रेयो न च धूमायित चिरम्।
मा ह स्म कस्यचिद् गेहे जनि राज्ञ खरो मृदु॥

२०५ कृत्वा मानुष्यक कर्म सृत्वाजि यावदुत्तमम्।
धर्मस्यानृण्यमाप्नोतिन च ात्मान विगर्हते।

२०६ अलब्ध्वा यदि वा लब्ध्वा नानुशोचति पण्डित।
आनन्तर्यमारभते न प्राणाना धनायते॥

२०७ इष्ठापूर्तं हि ते क्लीव कीर्तिश् च सकला हता।
विच्छिन्न भोग-मूल ते किं निमित्त हि जीवसि॥

२०८ शत्रुर् निमज्जता ग्राह्यो जघाया प्रपतिष्यता।
विपरिच्छन्न-मूलोऽपि न विषीदेत् कथचन॥

२०९. उद्यम्य धुरमुत्कर्षेद् आजानेय-कृत स्मरन्।
उद्भावय कुल मग्न त्वत्-कृते स्वयमेव हि॥

२१०. आयस हृदय कृत्वा मृगयस्व पुन स्वकम्।
पर विषहते यस्मात् तस्मात् पुरुष उच्यते॥

२११. य आत्मन प्रिय-सुखे हित्वा मृगयते श्रियम्।
अमात्यानामथ हर्षमादधात्यचिरेण स"॥

पुत्र उवाच—

२१२. "किं नु ते मामपश्यन्त्या पृथिव्या अपि सर्वया।
किमाभरण-कृत्य ते किम् भोगैर् जीवितेन वा॥

२०२　तू दीन होकर मत अस्त हो, अपने कर्मों द्वारा प्रसिद्ध हो।
　　मत बीचमें, मत जघन्यमें, मत नीचे तू गरजता हुआ रह।

२०३　फुसकी लुकारीकी तरह क्षण भर भी तू जल,
　　भुसकी आगकी तरह जीनेकी इच्छासे विना ज्वाला मत धुधुआ।

२०४　क्षण भर जलना अच्छा है, देर तक धुआ देना नही।
　　किसी राजाके घरमें कोमल गदहा (वन) न पैदा हो।

२०५　मनुष्योचित कर्म करके उत्तम युद्धमें जाकर,
　　आदमी धर्मसे उऋण होता है और अपनेको निदित नही करता।

२०६　पडितजन लाभ या अलाभ की चिन्ता नही करता, (वह)
　　प्राणो पर आफत का काम करता है, धनकी इच्छा नही करता।

२०७　हे नपुसक, तेरे इष्ट और पूर्त,[1] सारी कीर्ति नष्ट हो गई।
　　तेरे भोगकी जड कट गई, तू किसलिये जीता है?

२०८　डूवते हुए कूदकर शत्रुको जघासे पकडना चाहिये,
　　छिन्नमूल होनेपर भी कभी विषाद नही करना चाहिए।

२०९. उत्तम घोडेके कामका स्मरण कर धुरेको उठाकर खीचें,
　　अपने कारण डूवे कुलको स्वय ही ऊपर उठा।

२१०. लोहेका हृदय करके फिर अपनी वस्तुको ढूढ,
　　चूकि परको दवाता है, इसीलिये (वह) पुरुष कहा जाता है।

२११. जो अपने प्रिय सुखको छोडकर श्रीकी खोज करता है,
　　वह अमात्योंमें जल्दी ही हर्ष लाता है।

पुत्र वोला—

२१२　मर जानेपर मुझे न देख, सारी पृथिवीसे भी तुझे क्या लेना है?
　　आभूपणसे भूपित होनेसे भोग और जीवनसे (तुझे) क्या?

---

[1] यज्ञ आदि इष्ट है, और कूयें तालाव आदि का वनाना पूर्त कर्म

माता उवाच—

२१३. "किमद्यकाना ये लोका द्विषन्तस् तान् अवाप्नुयु ।
ये त्वादृतात्मान लोका सुहृदस् तान् व्रजन्तु न ॥

२१४ भृत्यैर् विहीयमानाना परपिण्डोपजीविनाम् ।
कृपणानाम सत्वाना मा वृत्तिमनुवतथा ॥

२१५ यदा मा चैव भार्यां च द्रष्टासि भृश-दुर्बलाम् ।
न तदा जीवितेनार्थो भविता तव सजय ॥

२१६ दास-कर्मकरान् भृत्यान् आचार्यृत्विक्-पुरोहितान् ।
अ-वृत्त्यास्मान् प्रजहता दृष्ट्वा किं जीवितेन ते ॥

२१७ यदि कृत्य न पश्यामि तवाद्याह यथा पुरा ।
श्लाघनीय यशस्य च का शान्तिर् हृदयस्य मे ॥

२१८ "वयमाश्रयणीया स्म न श्रेतार परस्य च ।"
सान्यमाश्रित्य जीवन्ती परित्यक्षामि जीवितम् ॥

२१९ अ-पारे भव न पारम् अ-प्लवे भव न प्लव ।
कुरुष्व स्थानमास्थाने मृतान् सजीवयस्व न ॥

२२० एक-शत्रु-बधेनैव शूरो गच्छति विश्रुतिम् ।
इन्द्रो वृत्र-बधेनैव महेन्द्र समपद्यत ॥

२२१ यदेव लभते वीर सु-युद्धेन महद् यश ।
तदैव प्रव्यथन्तेऽस्य शत्रवो विनमन्ति च ॥

२२२ नास्मिन् जातु कुले जातो गच्छेद् योऽन्यस्य पृष्ठत ।
न त्व परस्यानुचरस् तात जीवितु अर्हसि ॥

२२३ यो वै कश्चिदिहाजात क्षत्रिय क्षत्र-कर्म-वित् ।
भयाद् वृत्ति समीक्ष्यैव न नमेदिह कस्यचित् ॥

माता बोली—

२१३ क्या खाद्यके जो लोग द्वेषी है, उन्हें वह प्राप्त करेंगे,
जो कि आदरप्राप्त लोग है, हमारे (वह) मित्र वहा जायें।

२१४ नौकरोंसे परित्यक्त दूसरेके दिये पिंडपर जीनेवाले,
दीनो और पस्त-हिम्मतोकी वृत्तिका तू अनुसरण न कर।

२१५ जब मुझे और अपनी पत्नीको तू अत्यन्त दुर्बल देखेगा,
तब हे सजय, तुझे जीवनसे कोई प्रयोजन नही रह जायेगा।

२१६. दास-कर्मकर-भृत्यो, आचार्य-ऋत्विक्-पुरोहितोको
वृत्ति न होनेसे हमें छोडते देख तेरे जीनेसे क्या?

२१७ यदि आज मै पहले जैसे तेरे कृत्यको श्लाघनीय और यशस्कर
नही देखू, तो मेरे हृदयको क्या शान्ति होगी?

२१८ "हम दूसरोंके आश्रित है, और दूसरोको आश्रय देनेवाले नही हैं,"
ऐसा सोच दूसरेका आश्रय लेकर जीनेपर मै प्राण छोड दूगी।

२१९ तू अपार (सागर) में हमारे लिये पार उतारनेवाला बन,
अनावमें हमारे लिये नाव बन,
बिना स्थानमें स्थान बन हम मृतोको सजीवित कर।

२२० शूर पुरुष एक शत्रुके मारनेसे ही प्रसिद्ध हो जाता है।
इन्द्र वृत्रके वधसे ही महाइन्द्र हो गया।

२२१ जब वीर सुन्दर युद्ध द्वारा महायशको प्राप्त करता है,
तब उसके शत्रु व्यथित और विनम्र होते हैं।

२२२, इस कुलमें उत्पन्न कोई (ऐसा) नही हुआ, जो कि दूसरेके पीछे-पीछे
चले हे तात, दूसरेका अनुचर हो तुझे नही जीना चाहिए।

२२३ जो कोई इस कुलमें क्षत्रिय (-कर्मका) जाननेवाला क्षत्रिय पैदा हुआ,
वह वृत्तिका ख्याल करके भयसे किसीके सामने नही झुका।

२२४ उद्-यच्छेद् एव न नमेद्, उद्यमो ह्येव पौरुषम्।
अप्यपर्वाणि भज्येत न नमेतेह कस्यचित्"॥

पुत्र उवाच—

२२५ कृष्णायसस्येव च ते संहत्य हृदयं कृतम्।
अहो क्षत्र-समाचारो यत्र मामितरं यथा॥

२२६ नियोजयसि युद्धाय पर-मातेव मां तथा।
ईदृशं वचनं ब्रूयाद् भवती पुत्रमेक-जम्॥

माता उवाच—

२२७ सर्वारम्भा हि विदुषां तात धर्मार्थ-कारणात्
तावेवाभिसमीक्ष्याहं संजय त्वामचूचुदम्॥

२२८ अस्मिंश् चेदागते काले कार्यं न प्रतिपद्यसे।
असम्भावित-रूपस् त्वमानृशंस्यं करिष्यसि॥

२२९ तं त्वाम-यशसा स्पृष्टं न ब्रूयां यदि संजय।
खरी-वात्सल्यमाहुस् तद् निःसामर्थ्यमहेतुकम्।

२३० युद्धाय क्षत्रियः सृष्टः संजयेह जयाय च।
जयन् वा बध्यमानो वा प्राप्नोतीन्द्र सलोकताम्॥

२३१ न शक्र-भवने पुण्ये दिवि तद् विद्यते सुखम्।
यद-मित्रान् रणे हत्वा क्षत्रियः सुखमेधते॥

२३२ आत्मा वापि परित्याज्यो निपात्या शत्रवोऽपि वा।
अतोन्येन प्रकारेण शान्तिरस्य कुतो भवेत्॥

२३३. अथ त्वां पूजयिष्यामि हत्वा वै सर्व-सैन्धवान्।
अहं पश्यामि विजयं कृच्छ्र-भावितमेव ते॥

२२४. (पुरुष)उद्यम करे, झुके नही, उद्यम ही पौरुष है।
चाहे असमय टूट जाय, पर ससार मे किसीके सामने न झुके।

पुत्र बोला—

२२५. जोड कर लोहेसा तेरा हृदय बना है
अहो, जहा क्षत्रियोका आचार मुझ जैसा दूसरेको (हो)।

२२६. जैसे दूसरेकी मा वैसे तू मुझे युद्धमें भेज रही है,
स्वय (अपने) इकलौते पुत्रको ऐसा वचन बोल रही है।

माता बोली—

२२७ तात, विद्वानोंकि सारे कार्य धर्म और अर्थके लिये होते हैं,
हे सजय, उन्हींको अच्छी तरह देखकर, मैंने तुझे प्रेरित किया।

२२८ ऐसा अवसर प्राप्त होनेपर यदि काम नही करेगा,
तो तू अनादर-पात्र नीच हो दया की भीख मागेगा।

२२९ हे सजय, अपयशसे कलकित तुझे यदि मैं न कहू, तो वह गदहीकी
वत्सलता है, जो कि अकारण और विना सामर्थ्यकी होती है।

२३० हे सजय, इस ससारमें क्षत्रिय युद्धके लिये और जयके लिये बनाया
गया है। विजयी होते या मारे जाते वह इन्द्रलोकको प्राप्त होता है।

२३१ स्वर्गमें पवित्र इन्द्र-भवनमें वह सुख मौजूद नही है,
जो सुख कि रणमें शत्रुओंको मार कर क्षत्रिय पाता है।

२३२. अपनेको नष्ट कर देना चाहिए, अथवा शत्रुओंको मार डालना
चाहिये, इससे भिन्न उसको शान्ति कहां ?

२३३. सारे सिन्धवालोको मार डालने पर मैं तुझे पूजूगी,
कठिनाईसे प्राप्त किये तेरे विजयको ही देखूगी।

'पुत्र उवाच—

२३४ अ-कोपस्या-सहायस्य कुत सिद्धिर् जयो मम ।
इत्यवस्था विदित्वेमामात्मनात्मनि दारुणाम् ।।

२३५ राज्याद् भावो निवृत्तो मे विद्रवाद् इव दुष्कृत ।
ईदृश भवती कच्चित् उपायमनुपश्यति ।।

२३६ त मे परिणतप्रज्ञे। सम्यग् प्र-ब्रूहि पृच्छते।
करिष्यामि च तत् सर्व यथावत् अनुशासनम् ।।

माता उवाच—

२३७ पुत्र, नात्मावमन्तव्य पूर्वाभिरसमृद्धिभि ।
अ-भूत्वा हि भवन्त्यर्था भूत्वा नश्यन्ति चापरे ।।

२३८ क्रुद्धान् लुब्धान् परिक्षीणान् अवलिप्तान् विमानितान् ।
स्पर्धिनश् चैव ये केचित् तान् युक्त उपधारय ।।

२३९ एतेन त्व प्रकारेण महतो भेत्स्यसे गणान् ।
महा-वेग इवोद्धतो मातरिश्वा बलाहकान् ।।

२४० तेषामग्र-प्रदायी स्या कल्योत्थायी प्रिय-वद ।
ते त्वा प्रिय करिष्यन्ति पुरो-धास्यन्ति च ध्रुवम् ।।

२४१ यदैव शत्रुर् जानीयात् सपत्न त्यक्त-जीवितम् ।
तदैवास्माद् उद्विजेत सर्पाद् वेश्म-गताद् इव ।।

२४२ त विदित्वा पराक्रान्त वशे न कुरुते यदि।
निर्वादैर् निर्वदेदेनम्, अन्ततस् तद् भविष्यति ।।

२४३ निर्वादाद् आस्पद लब्ध्वा धन-वृद्धिर् भविष्यति।
धनवन्त हि मित्राणि भजन्ते चाश्रयन्ति च ।।

पुत्र बोला—

२३४ विना कोश और विना सहायकोंके जय और सिद्धि मुझे कहासे मिलेगी? अपने विषयमें इस दारुण अवस्थाको जानकर,

२३५ राज्यसे मेरा भाव हट गया है, पापसे पलायनकी तरह इसके वारेमें क्या आप कोई उपाय देखती है?

२३६ हे परिपक्वप्रज्ञावाली, उसे पूछनेपर मेरे लिये अच्छी तरह बतलाओ। (तुम्हारे) अनुशासनके अनुसार मैं सव करूगा।

माता वोली—

२३७. हे पुत्र, पूर्वके अभावोंके कारण आत्म-अपमान नही करना चाहिए। अर्थ न होकर होते है, और दूसरे (पदार्थ) होकर नष्ट हो जाते है।

२३८. जो कोई क्रुद्ध, लोभी, क्षीण, अभिमानी, अपमानित, और स्पर्धा करनेवाले (पुरुष) हैं, उन्हें तत्परतासे साथ ले कर।

२३९. इस प्रकारसे तू भारी (शत्रु-) समूहको छिन्न-भिन्न कर देगा। जैसे मेघोको वडे वेगवाला हलचल करता वायु ।

२४० उन्हें तू आगे देनेवाला वन, और समयके अनुसार (सम्मानार्थ) उत्थान करनेवाला प्रियवादी वन। वह तेरा प्रिय करेंगे, और निश्चय (तुझे अपना) मुखिया वनायेंगे।

२४१ जभी प्रतिद्वद्वी अपने शत्रुको मरा जानें, तभी वह घरमें स्थित साँप की तरह उद्विग्न होते है।

२४२ उसे पराक्रम करते जानकर यदि वशमें नही करता, तो निर्वादो[1] से उसे निर्वादित करे, अन्तमें वही होगा।

२४३ निर्वाद से स्थान प्राप्त कर धनकी वृद्धि होगी, धनवान् मित्र की लोग सेवा करते और आश्रय लेते है।

---

[1]साम दाम आदि।

८ सुभद्रा-विलापः—

२५५. सुभद्रा शोकदुःखार्ता विललाप सु-दुःखिता, ।
"हा पुत्र मम मन्दाया कथं संयुगमेत्य हि ॥

२५६ निधनं प्राप्तवास् तात, पितुस् तुल्य-पराक्रमः ।
कथमिन्दीवर-श्यामं सु-दंष्ट्रं चारु-लोचनम् ॥

२५७ मुखं ते दृश्यते वत्स, गुण्ठितं रण-रेणुना ।
शयनीयं पुराध्युष्य स्पर्ध्यास्तरण-संवृतम् ॥

२५८ भूमावद्य कथं शेषे विप्रविद्धः सुखोचितः ।
योऽन्वास्यत पुरा वीरो वर-स्त्रीभिर् महा-भुजः ॥

२५९ कथमन्वास्यते सोऽद्य शिवाभिः पतितो मृधे ।
अ-तृप्त-दर्शना पुत्र, दर्शनस्य तवानघ ॥

२६० मन्द-भाग्या गमिष्यामि व्यक्तमद्य यम-क्षयम् ।
धिग् बलं भीमसेनस्य धिक् पार्थस्य धनुष्मताम् ॥

२६१ धिग् वीर्यं वृष्णि-वीराणां, पाञ्चालानां च धिग् बलम् ।
धिक् कैकयास् तथा चेदीन् मत्स्याश् चैवाथ संजयान् ॥

२६२ ये त्वा रण-गतं वीरं न शेकुरभिवीक्षितुम् ।
अद्य पश्यामि पृथिवीं शून्यामिव हत-श्रियम् ॥

२६३ अभिमन्युमपश्यन्ती शोक-व्याकुल-चेतना ।
इमां ते तरुणीं भार्यां त्वदाधिभिरभिप्लुताम् ॥

२६४ कथं सन्धारयिष्यामि वि-वत्सामिव धेनुकाम् ।
या गतिर् युध्यमानानां शूराणाम-निवर्तिनाम् ॥

२६५ हत्वारीन् निहतानां च संग्रामे तां गतिं व्रज ।
ह्रीमन्तः सर्वशास्त्रज्ञा ज्ञान-तृप्ता जितेन्द्रियाः ।
या गतिं साधवो यान्ति तां गतिं व्रज पुत्रक ॥"

—द्रोण-पर्व, ८

८. सुभद्रा का विलाप—

२५५ सुभद्रा शोक और दुःखसे आर्त अत्यन्त दुःखित हो विलाप करने
लगी। "हाय, मुझ मन्दभागिनीका पुत्र, युद्धमें पहुँचकर कैसे,
२५६ मृत्युको प्राप्त हुआ। हे तात, पराक्रममें तू पिता तुल्य था।
नीलकमल जैसा श्यामल, सुन्दर दाँत, सुन्दर लोचनवाला,
२५७ तेरा मुह हे वत्स, रणकी धूलिसे धूसरित दिखाई दे रहा है?
पहले दुर्लभ बिछौनेसे ढके पलगपर सोता,
२५८ आज सुखमें पला हत हो तू कैसे भूमिपर सो रहा है?
जिस महाबाहु वीरकी श्रेष्ठ स्त्रियाँ सेवा करती थी।
२५९ आज युद्धमें गिरे उसे सियार कैसे सेवित कर रहा है?
हे निष्पाप पुत्र, तेरे दर्शनसे मैं अतृप्त-दर्शना हूँ।
२६० निश्चय आज मैं मन्दभागिनी मृत्युको प्राप्त होऊँगी।
भीमसेनके बलको धिक्कार है, अर्जुन और धनुर्धारियो को
धिक्कार है।
२६१ वृष्णि वीरोंके पराक्रमको धिक्कार, पाचालोंके बलको धिक्कार,
कैकेयो और चेदियो, मत्स्यो और सजयोको भी धिक्कार है,
२६२ जो कि रणमें आये तुझ वीरकी देखभाल नही कर सके।
आज पृथिवीको मैं नष्टश्री सूनी-सी देख रही हूँ।
२६३ शोकसे व्याकुल चेतनावाली मैं अभिमन्युको न देख,
सतापसे सतप्त इस तेरी तरुणी भार्या (उत्तरा) को,
२६४ बछडे बिना धेनुकी तरह कैसे धीरज धराऊँगी?
युद्ध करते हुए पीठ न दिखलानेवाले शूरोकी जो गति है,
२६५ सग्राममें दुश्मनोको मारकर उन निहतोकी गतिको तू प्राप्त हो।
लज्जावान् सर्वशास्त्र-ज्ञ ज्ञान-तृप्त जितेन्द्रिय,
साधु लोग जिस गतिको प्राप्त होते है, हे पुत्र, तू उस गतिको प्राप्त
हो।

—द्रोण-पर्व अध्याय ८

९. रणाजिर-परिदर्शनम्—

२६६ समासाद्य कुरु-क्षेत्र, ता स्त्रियो निहतेश्वरा ।
अपश्यन्त हतास् तत्र पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄन् पतीन् ॥

२६७ क्रव्यादैर् भक्ष्यमाणाश् च गोमायु-बल-वायसै ।
भूतै पिशाचै रक्षोभिर् विविधैश् च निशा-चरै ॥

२६८ रुद्राक्रीड-निभ दृष्ट्वा तदा विशसन स्त्रिय ।
कुरर्य इव शोकार्ता विक्रोशन्त्यो निपेतिरे ॥

२६९ दु खोपहत-चित्ताभि समन्तादनुनादितम् ।
दृष्ट्वायोधनमत्युग्र धर्मज्ञा सुबलात्मजा ॥

२७० तत सा पुण्डरीकाक्षमामन्त्र्य पुरुषोत्तमम् ।
कुरूणा वैशस दृष्ट्वा, इद वचनमब्रवीत्—

२७१ "पश्यैता. पुण्डरीकाक्ष, स्नुषा मे निहतेश्वराः ।
प्रकीर्ण-केशा क्रोशन्ती कुररीरिव माधव ॥

२७२ अमूस् त्वभिसमागम्य स्मरन्त्यो भरतर्षभान् ।
पृथगेवानुपद्यन्ते पुत्रान् भ्रातॄन् पितॄन् पतीन् ॥

२७३ वीर-सूभिर् महा-बाहो हत-पुत्राभिरावृतम् ।
क्वचित् च वीर-पत्नीभिर् हत-वीराभिरावृतम् ॥

२७४. शोभित पुरुष-व्याघ्रैर् भीष्म-कर्णाभिमन्युभि ।
द्रोण-द्रुपद-शल्यैश् च ज्वलद्भिरिव पावकै ॥

२७५ काचनै कवचैर् दिव्यैर् मणिभिश् च महात्मनाम् ।
अगदैर् हस्त-केयूरै स्रग्भिश् च समलकृतम् ॥

२७६ वीर-बाहु-विसृष्टाभि शक्तिभि परिघैरपि ।
खड्गैश् च विविधैस् तीक्ष्णै स-शरैश् च शरासनै ॥

९. रणक्षेत्रका परिदर्शन—

२६६ मृतपतिका उन स्त्रियोने कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर,
वहाँ अपने पुत्रो, भाइयो, वापो और पतियोको निहत देखा।

२६७ मासभक्षी सियार, गिद्ध और कौओ द्वारा खाये जाते,
भूतो-पिशाचो-राक्षसो और विविध निशाचरो द्वारा खाये जाते।

२६८ रुद्रके अखाडेकी तरह वहाँ के काटने-छेदनेको देखकर कुररियोकी
तरह चिल्लाती शोकार्त (वह) स्त्रियाँ गिर पडी।

२६९ दु खसे नष्ट चेतनावाली उन स्त्रियो द्वारा चारो ओर निनादित,
अति उग्र युद्धक्षेत्रको देखकर धर्मज्ञा सुवल-पुत्री (गान्धारी) वोली,

२७० तव पुरुषोत्तम कमलनयन कृष्णको सवोधित करती,
कुरुओंके हननको देखकर वह यह वचन वोली—

२७१ हे कमलनयन, मृत-पतिका विखरे केशोवाली,
कुररीकी तरह क्रन्दन करती मेरी इन वहुओको देखो। हे माधव,

२७२. यह पास आकर भरतश्रेष्ठोका स्मरण करती,
पुत्रो, भाइयो, पिताओ और पतियोको पृथक् (पृथक्) पा रही है।

२७३ हे महावाहु, (यह) युद्धक्षेत्र, वीर-माताओ, निहत-पुत्राओ द्वारा
घिरा और कही निहत-वीरोवाली वीर-पत्नियो द्वारा घिरा,

२७४ भीष्म, कर्ण, अभिमन्यु (जैसे) पुरुषसिंहो द्वारा शोभित,
प्रज्ज्वलित अग्नि समान द्रोण, द्रुपद और शल्यसे,

२७५ महात्माओंके सोनेके कवचो, दिव्य-मणियोंके साथ,
अगद और हायके ककणो और मालाओसे

२७६ वीर वाहुओंसे छोडी शक्तियो, परिघोंमे भी,
विविध तीक्ष्ण खड्गो, वाण-सहित धनुषोंसे अलकृत है।

२७७ क्रव्याद-सघै सहितैस् तिष्ठद्भिर् विविधै क्वचित्।
क्वचिदाक्रीडमानैश् च शयानैरपरै क्वचित् ॥

२७८. एतदेव-विध वीर सपश्यायोधन विभो।
पश्यमाना हि दह्यामि शोकेनाह जनार्दन ॥

२७९ पचालाना कुरूणा च विनाशे मधु-सूदन।
पचानामिव भूतानामह वधमचिन्तयम् ॥

२८० तान् सु-पर्णाश् च गृध्राश् च विकर्षन्त्यसृगुक्षितान्।
प्रगृह्य चरणैर् गृध्रा भक्षयन्ति सहस्रश ॥

२८१ शयनान्युचिता सर्वे मृदूनि विमलानि च।
विपन्नास् तेऽद्य वसुधा विवृतामधिशेरते ॥

२८२ तेषामाभरणान्येते गृध्र-गोमायु-वायसा ।
आक्षिपन्त्य-शिवा घोरा विनदन्त पुन पुन ॥

२८३ सुरूप-वर्णा बहव क्रव्यादैरवघट्टिता ।
ऋषभ-प्रतिरूपाक्षा शेरते च सहस्रश ॥

२८४ अपरे पुनरालिग्य गदा परिघ-बाहव ।
शेरतेऽभि-मुखा शूरा दयिता इव योषित ॥

२८५. बिभ्रत कवचान्यन्ये विमलान्यायुधानि च।
न धर्षयन्ति क्रव्यादा जीवन्तीति जनार्दन ॥

२८६. एते गोमायवो भीमा निहताना महात्मनाम्।
कण्ठान्तर-गतान् हारान् आक्षिपन्ति सहस्रश ॥

२८७ सर्वेष्वपर-रात्रेषु यान् अवन्दन्त वन्दिन ।
तान् इमा परिदेवन्ति दु खार्ता परमागना ॥

२८८. बह्व्यो दृष्ट्वा शरीराणि क्रोशन्ति विपलन्ति च।
पाणिभिश् चापरा घ्नन्ति शिरासि मृदु-पाणय ॥

२७७. कही मासभक्षी विविध प्रकारके जन्तु-समूहोंसे
कहीपर खेलते हुये और कहीपर लेटे हुओंसे,

२७८ हे वीर, हे प्रभु, इस युद्धक्षेत्रको हे जनार्दन,
इस प्रकार, देखती हुई मैं शोकसे जल रही हूँ।

२७९ हे मधुसूदन, पंचालो और कुरुओंके विनाशको,
मैंने पाँचो भूतोंके वध सा माना।

२८० खूनसे लथपथ उन्हें गरुड़ और गिद्ध खीच रहे है।
पैरोंसे पकडकर हजारो गिद्ध खा रहे है।

२८१. जो सब मृदु निर्मल शय्याके योग्य थे,
वे आज मरकर नगी भूमिपर लेटे हुये हैं।

२८२ उनके आभूषणोको ये भयकर घोर गिद्ध, सियार और कौवे,
चिल्लाते हुये फिर-फिर घसीट रहे हैं।

२८३. सुन्दर रूप-वर्णवाले वृषभके समान इन्द्रियोवाले बहुतेरे (वीर),
हजारो, मासभक्षी जन्तुओ द्वारा छिन्न-भिन्न किये जाते लेटे है।

२८४ और कोई कोई परिघसे विशाल बाहुवाले प्रिय स्त्रियोकी तरह
गदाओको आलिंगन करते, सामने करके सो रहे हैं।

२८५ किमी किसी विमल कवच आयुध धारण करनेवालोको,
हे जनार्दन, जीता समझकर मासभक्षी नही अपमानित करते।

२८६ ये भयकर सियार हजारोकी तादादमें निहत महात्माओंके,
कठमे अवस्थित हारोंको खीच रहे हैं।

२८७ पिछली सारी रातो बदी जिनकी स्तुति करते थे,
उनके लिये यह दुःखार्त्ता श्रेष्ठ महिलायें रो रही हैं।

२८८. इनके शरीरोको देखकर बहुतेरी रोती और विलाप करती है।
दूसरी कोमल हाथोवाली (अपने) हाथोंसे सिरोको धुनती है।

२८९ शिरोभि पतितैर् हस्तै सर्वांगै खण्डश कृतै ।
इतरेतर-सपृक्तैराकीर्णा भाति मेदिनी ।।

२९० वि-शिरस्कान् अथो कायान् दृष्ट्वा घोराभिनन्दिन
मुह्यन्ति सु-चिर नार्यो वि-देहानि शिरासि च ।।

२९१ शिर कायेन सन्धाय प्रेक्षमाणा वि-चेतस ।
अपश्यन्त्योऽपर तत्र नेदमस्येति दु खिता ।।

२९२. बाहूरु-चरणान् अन्यान् विशिखोन्मथितान् पृथक् ।
सदधत्योऽसुखाविष्टा मूर्छन्त्येता पुन पुन ।।

२९३ उत्कृत्त-शिरसश् चान्यान् विजग्धान् मृग-पक्षिभि ।
दृष्ट्वा काचिद् न जानन्ति भर्तॄन् भरत-योषित ।।

२९४ पाणिभिश् चापरा घ्नन्ति शिरासि मधु-सूदन ।
प्रेक्ष्य भ्रातॄन् पितॄन् पुत्रान् पतीश् च निहतान् परै ।।

२९५ बाहुभिश् च स-खड्गैर् हि शिरोभिश् च स-कुण्डलै ।
अगम्य-कल्पा पृथिवी मास-शोणित-कर्दमा ।।

२९६ यूथानीव किशोरीणा सु-केशीना जनार्दन ।
स्नुषाणा धृतराष्ट्रस्य पश्य वृन्दान्यनेकश ।।

२९७ इतो दु खतर किं नु केशव, प्रतिभाति मे ।
यदिमा कुर्वते सर्वा रवमुच्चावच स्त्रिय ।।

२९८ नूनमाचरित पाप मया पूर्वेषु जन्मसु ।
या पश्यामि हतान् पुत्रान् पौत्रान् भ्रातॄश् च केशव ।"

२९९ एवमार्ता विलपती समाभाष्य जनार्दनम् ।
गान्धारी पुत्र-शोकार्ता ददर्श निहत सुतम् ।।

—स्त्री-पर्व, ४

२८९ सिरो, गिरे हाथो, खड-खड किये सारे अंगो,
एक दूसरे से मिश्रित पृथिवी पर आकीर्ण दीख रही है।

२९०. सिर-रहित काया और विना देहके सिरोको,
देखकर घोर-अभिनन्दन करनेवाली स्त्रियाँ देर तक मूर्छित हो जाती है।

२९१ सिरको धडसे जोड देख कर चेतनाशून्य हो,
दूसरेको न देख उसमें 'इसका यह नही है' कह दु खित होती है।

२९२ वाहु, जाँघ और दूसरे चरणोको, शिखा-रहित उन्मथित सिरोको
मुखमें आविष्ट हो अलग, जोडती ये फिर-फिर मूर्छित होती हैं।

२९३ मृगो और पक्षियो द्वारा खाये गये कटे सिरोवाले
पतियोको देखकर कोई-कोई भरत-स्त्रियाँ नही पहचानती।

२९४ दूसरी, हे मधुसूदन, शत्रुओ द्वारा भाइयो, पिताओ,
पुत्रो और पतियोको निहत देखकर (अपने) हाथोंने सिरोको पीटती है।

२९५ खड्गयुक्त वाहुओ और कुडलयुक्त सिरोंसे (ढकी),
मास और रक्तके कीचडवाली (यह) पृथिवी अगम्य हो गई है।

२९६ हे जनार्दन, सुकेशी किशोरियोंके समूहो सी,
धृतराष्ट्रकी वहुओंके अनेक वृन्दोको देखो।

२९७ हे केशव, मेरे लिए इससे वढकर दु ख क्या हो सकता है,
कि ये सव स्त्रियाँ नाना प्रकारसे क्रन्दन कर रही है।

२९८ निश्चय पूर्व जन्ममें मैंने पाप किया,
जो कि हे केशव, पुत्रो, पौत्रो और भाइयोको निहत देख रही हूँ।"

२९९ इस प्रकार आर्त हो विलाप करती पुत्र-शोक-पीडिता,
गान्धारीने कृष्णने कहकर अपने निहत पुत्रको देखा।

—स्त्री-पर्व अध्याय ४

१०. गण-तन्त्रम्—

युधिष्ठिर उवाच—

३०० गणाना वृत्तिमिच्छामि श्रोतु मतिमता वर।
यथा गणा प्रवर्धन्ते न भिद्यन्ते च भारत॥

३०१ अरीश् च विजिगीषन्ते सुहृद प्राप्नुवन्ति च।
भेद-मूलो विनाशो हि गणानामुपलक्षये॥
मन्त्र-सवरण दु ख वहूनाम् इति मे मति।

भीष्म उवाच—

३०२ गणाना च कुलाना च राज्ञा भरत-सत्तम।
वैर-सन्दीपनावेतौ लोभामर्षौ नराधिप॥

३०३ लोभमेको हि वृणुते ततोऽमर्षमनन्तरम्।
तौ क्षय-व्यय-सयुक्तावन्योन्य च विनाशिनौ॥

३०४ चार-मन्त्र-वलादानै साम-दान-विभेदनैः।
क्षय-व्यय-भयोपायै प्रकर्षन्तीतरेतरम्॥

३०५ तत्रादानेन भिद्यन्ते गणा सघात-वृत्तय।
भिन्ना वि-मनस सर्वे गच्छन्त्यरि-वश भयात्॥

३०६ भेदे गणा विनश्येयुर् भिन्नास् तु सु-जया परै।
तस्मात् सघात-योगेन प्रयतेरन् गणा सदा॥

३०७ अर्थाश् चैवाधिगम्यन्ते सघात-वल-पौरुषै।
बाह्याश् च मैत्री कुर्वन्ति तेषु सघात-वृत्तिषु॥

३०८ ज्ञान-वृद्धा प्रशसन्ति शुश्रूषन्त परस्परम्।
विनिवृत्ताभिसन्धाना सुखमेधन्ति सर्वश॥

३०९ धर्मिष्ठान् व्यवहाराश् च स्थापयन्तश् च शास्त्रत।
यथावत् प्रतिपश्यन्तो विवर्धन्ते गणोत्तमा॥

१०. गणतन्त्र—

युधिष्ठिर बोले—

३००. हे मतिमानोमें श्रेष्ठ, हे भारत, (राज्य) गणोंकी उस वृत्तिको मैं सुनना चाहता हूँ, जिससे कि गण न छिन्न-भिन्न हो बढते हैं।

३०१. वह शत्रुओको जीतते और मित्रोको प्राप्त करते हैं, गणोका विनाश फूटके कारण है, यह मैं समझता हूँ। बहुत (जनो) के भीतर मन्त्रणाको गुप्त रखना कठिन है, यह मेरी राय है।

भीष्म बोले—

३०२. हे भरतश्रेष्ठ, हे नराधिप, गणो और राजाओंके कुलोंके वैर बढानेवाले है ये लोभ और ईर्ष्या।

३०३ कोई लोभको पसन्द करता है, उसके अनन्तर ईर्ष्या (अमर्ष) को, ये दोनो क्षय और हानिसे सयुक्त हो परस्पर विनाशक हैं।

३०४. गुप्तचर, गुप्तमन्त्रणा और सेनाके ग्रहण, साम-दाम और विभेदद्वारा, क्षय, व्यय, भयके उपायोंसे (वह) एक दूसरेको खीचते हैं।

३०५. एकता स्वभाववाले गण आदान (रिश्वत) से फूटते हैं। फूटे-बिगडे मनवाले सभी (लोग) भयसे शत्रुके वशमें चले जाते हैं।

३०६ फूट होनेपर गण नष्ट होते है, फूटवाले (वह) शत्रुओ द्वारा आसानीसे जीते जाते है। इसलिए गणोको एकताबद्ध हो प्रयत्न करना चाहिए।

३०७ एकता, बल और पौरुषसे अर्थ (धन) प्राप्त होते है। उन एकता वृत्तिवालोंसे बाहरवाले (भी) मित्रता करते है।

३०८ (उनकी) ज्ञानमें-वृद्ध लोग प्रशसा करते हैं, परस्पर शुश्रूषा करते है। शत्रुओकी चालोंसे निवृत्त हो सब तरह सुखसे बढते है।

३०९ शास्त्रानुसार धर्मिष्ठ व्यवहारोकी स्थापना करते, यथोचित देखभाल करते श्रेष्ठ गण वृद्धिको प्राप्त होते हैं।

३१० चार-मन्त्र-विधानेषु कोश-सनिचयेषु च।
नित्य-युक्ता महा-बाहो विर्धन्ते सर्वतो गणा ॥

३११ प्राज्ञान् शूरान् महोत्साहान् कर्मसु स्थिर-पौरुषान्।
मानयन्त सदा युक्तान् विवर्धन्ते गणा नृप ॥

३१२ द्रव्यवन्तश् च शूराश् च निर्लोभा शास्त्रपारगा ।
कृच्छ्रास्वापत्सु समूढान् गणान् स-तारयन्ति ते ॥

३१३ क्रोधो भेदो भय दण्ड कर्षण निग्रहो वध ।
नयत्यरिवश सद्यो गणान्, भरत-सत्तम ॥

३१४ तस्माद् मानयितव्यास् ते गणमुख्या प्रधानत ।
लोक-यात्रा समायत्ता भूयसी तेषु पार्थिव ॥

३१५ मन्त्र-गुप्ति प्रधानेषु चारश् चामित्र-कर्षण।
न गणा कृत्स्नशो मन्त्र श्रोतुमर्हन्ति भारत ॥

३१६ *गण-मुख्यैस् तु सभूय कार्य गण-हित मिथ ।*
पृथग् गणस्य भिन्नस्य विततस्य ततोऽन्यथा ॥

३१७ अर्था प्रत्यवसीदन्ति तथानर्था भवन्ति च।
तेषामन्योन्य-भिन्नाना स्व-शक्तिमनुतिष्ठताम् ॥

३१८ निग्रह पण्डितै कार्य क्षिप्रम् एव प्रधानत ।
गोत्रस्य नाश कुर्वन्ति गण-भेदस्य कारकम् ॥

३१९ आभ्यन्तर भय रक्ष्यम्, अ-सार बाह्यतो भयम्।
आभ्यन्तर भय राजन्, सद्यो मूलानि कृन्तति ॥

३२० अकस्मात् क्रोध-मोहाभ्या लोभाद् वापि स्व-भावजात्।
अन्योन्य नाभिभाषन्ते तत् पराभव-लक्षणम् ॥

३२१ जात्या च सदृशा सर्वे कुलेन सदृशास् तथा।
न चोद्योगेन बुद्ध्या वा रूप-द्रव्येण वा पुन ॥

३२२ भेदाच् चैव प्रदानाच् च नाम्यन्ते रिपुभिर् गणा ।
तस्मात् सघातमेवाहुर् गणाना शरण महत् ॥

—शान्ति-पर्व, ११

३१० गुप्तचर-मन्त्रके विधानोमे और कोशके सचयोमें,
हे महावाहु, नित्य तत्पर गण सव तरह बढते है।

३११ हे नृप, वुद्धिमानो, शूरो, महासाहसियो, कामोमे दृढ पौरुपवालो, सदा तत्पर रहनेवालोका सम्मान करते, गण वृद्धिको प्राप्त करते हैं।

३१२ द्रव्यवाले शूर और शास्त्र-पारगत वे
कठिन आफतोमें फसे गणोको तारते है।

३१३ क्रोध, फूट, भय, दण्ड, घसीटना, निग्रह और वध,
हे भरतश्रेष्ठ, ये तुरन्त गणोको शत्रुके वशमें कर देते है।

३१४ इसलिए गणोंके उन नेताओको प्रधानतया सम्मानित करना चाहिए।
हे पार्थिव, लोक-निर्वाह अधिकतर उन्हीके हाथमें है।

३१५ हे शत्रु-नाशक, नेताओमें मन्त्र और गुप्तचर को गुप्त रखना,
हे भारत, गणोको पूरी तौरसे मन्त्र नही सुनना चाहिए।

३१६ गणके मुखियोको परस्पर इकट्ठा होनेसे गणका हित होता है,
फूट पडे फैले भिन्न हुये गणका उससे उलटा अहित।

३१७ अर्थ (हित) कम होते है और अनर्थ उत्पन्न होते है।
परस्पर फूटकर अपनी शक्तिका उपयोग करनेवाले उन गणोंके

३१८ पडितोको चाहिए, कि जल्दी और प्रधान द्वारा निग्रह करें।
गणोमें फूट डालनेवाले (लोग) गोत्रका नाश करते है।

३१९ (उन्हें) भीतरी भयसे वचाना चाहिए, वाहरी भय निस्सार है।
हे राजन्, भीतरी भय तुरन्त मूलको काट देता है।

३२० अकस्मात् क्रोध और मोह, स्वाभाविक लोभके कारण भी (जो)
परस्पर वात नही करते, सो पराजयका लक्षण है।

३२१ जातिसे सभी एक समान और कुलसे एक समान होते है,
किन्तु उद्योग, वुद्धि या रूप-धनमें (सभी) समान नही होते।

३२२ शत्रु फूटसे और रिश्वतसे गणोको दवाते है।
इसलिए गणोंके लिए सवसे वडी सुरक्षा एकताको ही कहा गया है।

—शान्ति-पर्व ११

१५. वाल्मीकि (२०० ई० पू०)

यद्यपि महाभारतकी अनगढ़ कविता उस कालकी है, जब कि संस्कृत नहीं पालियां बोल-चालकी भाषायें थीं, किन्तु पीछेके अर्थोंमें जिसे काव्य या महाकाव्य कहा जा सकता है, वह उसी कालकी रचना रामायणके रूपमें हमारे सामने है, इसीलिये यदि उसे "आदि काव्य" (प्रथम काव्य) कहा गया, तो अनुचित नहीं है। रामायणकी कथा भी महाभारतकी कथाकी तरह बहुत पुरानी है ? बुद्धके समय भी वह प्रचलित थी। किन्तु उसको

१. अयोध्या—

१ कोसलो नाम मुदित स्फीतो जनपदो महान्।
निविष्ट सरयूतीरे प्रभूतधनधान्यवान् ॥५॥

२. अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता।
मनना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम् ॥६॥

१५. वाल्मीकि (२०० ई० पू०)

एक सुन्दर महाकाव्यका रूप इस कृतिके रूपमें दिया गया। जिस समाज और भौगोलिक विस्तारका वर्णन रामायणमें आता है, वह शुंग-कालको सूचित करता है, इस प्रकार इसकी रचना ईसासे डेढ़-दो सौ वर्ष पहले हुई। रचयिताका नाम वाल्मीकि है, जो ठीक भी हो सकता है, किन्तु वाल्मीकिके साथ, जितनी बातें जोड़ दी गई हैं, वह आदि कविकी ऐतिहासिकतापर सन्देह पैदा कर देती हैं। "महाभारत" की तरह यह भी पालियोंके कालकी रचना है।

१. अयोध्या-वर्णन—

१ कासल नामक सुखी समृद्ध महान् जनपद (देश),
वहुत धनधान्यवाला सरयूके तीर अवस्थित था ॥५॥

२ वहाँ लोक-प्रसिद्ध अयोध्या नामक नगरी थी,
जो पुरी स्वय मानवेन्द्र मनु द्वारा निर्मित हुई थी ॥६॥

३. वह महापुरी थी दस और दो योजन विस्तृत।
सुविभक्त महापथोवाली श्रीवाली वह पुरी तीन योजन चौड़ी थी ॥७॥

४ वह सुन्दर तौरसे विभक्त महान् राजमार्गोंसे शोभित थी,
जो कि नित्य छोड़े हुये फूलोंसे आकीर्ण, जलसे सिक्त रहते थे ॥८॥

५ महान् राष्ट्र-वर्धक राजा दशरथ ने उस पुरीको,
द्यौलोकमें इन्द्र जैसे आवासित किया था ॥९॥

६ (वह पुरी थी) किवाड़-तोरणवाली, भीतरी हाटोंसे सुविभक्त।
सारे यन्त्रो-आयुधोवाली, सारे शिल्पियो से वसी ॥१०॥

७ सूतो-मागधोंसे भरी, अतुल प्रभावाली श्रीमती,
ऊँची अटारियो-ध्वजोवाली सैकड़ो शतघ्नियोंसे भरी ॥११॥

८ वधूनाटकसघैश्च सयुक्ता सर्वत पुरीम्।
उद्यानाम्रवणोपेता महती सालमेखलाम् ॥१२॥

९ दुर्गगभीरपरिखा दुर्गामन्यैर्दुरासदाम्।
वाजिवारणसपूर्णा गोभिरुष्ट्रै खरैस्तथा ॥१३॥

१० सामतराजसघैश्च वलिकर्मभिरावृताम्।
नानादेशनिवासैश्च वणिग्भिरुपशोभिताम् ॥१४॥

११ प्रासादै रत्नविकृतै पर्वतैरिव शोभिताम्।
कूटागारैश्च सपूर्णामिन्द्रस्येवामरावतीम् ॥१५॥

१२ चित्रामष्टापदाकारा वरनारीगणैर्युताम्।
सर्वरत्नसमाकीर्णा विमानगृहशोभिताम् ॥१६॥

१३ गृहगाढामविच्छिद्रा समभूमौ निवेशिताम्।
शालितडुलसपूर्णामिक्षुकाडरसोदकाम् ॥१७॥

१४ दुदुभीभिर्मृदगैश्च वीणाभि पणवैस्तथा।
नादिता भृशमत्यर्थं पृथिव्या तामनुत्तमाम् ॥१८॥

१५ विमानमिव सिद्धाना तपसाधिगत दिवि।
सुनिवेशितवेश्माता नरोत्तमसमावृताम् ॥१९॥

१६ ये च वाणैर्न विध्यति विविक्तमपरापरम्।
शब्दवेध्य च वितत लघुहस्ता विशारदा ॥२०॥

१७ सिहव्याघ्रवराहाणा मत्ताना नदता वन।
हतारो निशितै शस्त्रैर्बलाद् बाहुबलैरपि ॥२१॥

१८ तादृशाना सहस्रैस्तामभिपूर्णा महारथै।
पुरीमावासयामास राजा दशरथस्तदा ॥२२॥

८ और वधुओ-नाटकोकी जमातो चारो ओरसे सयुक्त।
उद्यानो-आम्रवनोसे युक्त सालोकी मेखलावाली महती ॥१२॥

९ किलो, गहरी खाइयोसे दुर्गम, शत्रुओ के हाथमें न आनेवाली।
घोडो-हाथियोसे भरी तथा गौवो-ऊँटो और गदहोसे खूब सपूर्ण ॥१३॥

१०. मामत राजाओके सघोसे, शुल्कवालोसे घिरी,
नाना देशके निवासियो वनियो द्वारा उपशोभित ॥१४॥

११ रत्नमय पर्वत समान प्रासादोसे शोभित,
और इन्द्रकी अमरावती सी कूटागारोसे सपूर्ण ॥१५॥

१२ विचित्र सुनहली, श्रेष्ठ नारीगणोसे युक्त,
सारे रत्नोसे समाकीर्ण, विमानगृहोसे शोभित ॥१६॥

१३. गृहोसे घनी अविरल समतल भूमिमें स्थापित,
धानके तडुलोसे सपूर्ण, ऊखके रसके जलवाली ॥१७॥

१४ दुन्दुभियो, मृदगो और वीणाओ तथा नगारोसे
बराबर निनादित पृथिवीमें अत्यन्त अनुपम ॥१८॥

१५. द्यौलोकमें तपसे प्राप्त सिद्धोके विमानकी तरह,
अच्छी तरह रक्खे घरोवाली, उत्तम नरोसे घिरी ॥१९॥

१६ और जो (नरोत्तम) परस्पर, एकान्तमें वाणोसे नही वेधते, (जो) शब्द वेध और विस्तृत (लक्ष्यमें) कुशल फुर्तीले हाथवाले है ॥२०॥

१७ वनमें गरजते मस्त सिह-बाघ-सूअरोको,
तीक्ष्ण शस्त्रो और बाहुबलसे भी मारनेवाले ॥२१॥

१८ ऐसे हजारो महारथियोसे परिपूर्ण पुरीको
उस समय राजा दशरथने आवासित कर रक्खा था ॥२२॥

१९. तामग्निमद्भिर्गणवद्भिरावृता, द्विजोत्तमैर्वेदषडङ्ग-
पारगै ।
सहस्रदै सत्यरतैर्महात्मभिर्महर्षिकल्पैर्ऋषिभिश्च
केवलै ॥२३॥

—बालकाण्डे सर्ग ५

२. दशरथ-विलापः —

२०. तत श्रुत्वा महाराज कैकय्या दारुण वच ।
चिंतामभिसमापेदे मुहूर्तं प्रतताप च ॥१॥

२१ "किं नु मेऽद्य दिवास्वप्नश्चित्तमोहोऽपि वा मम ।
अनुभूतोपसर्गो वा मनसो वाप्युपद्रव" ॥२॥

२२ इति संचिन्त्य तद्राजा नाध्यगच्छत्तदा सुखम् ।
प्रतिलभ्य तत सज्ञा कैकेयीवाक्यतापित ॥३॥

२३. व्यथितो विक्लवश्चैव व्याघ्रीं दृष्ट्वा यथा मृग ।
असवृतायामासीनो जगत्या दीर्घमुच्छ्वसन् ॥४॥

२४. मडले पन्नगो रुद्धो मत्रैरिव महाविष ।
"अहो धिगिति" सामर्षो वाचमुक्त्वा नराधिप ॥५॥

२५ मोहमापेदिवान् भूय शोकोपहतचेतन ।
चिरेण तु नृप सज्ञा प्रतिलभ्य सुदु खित ॥६॥

२६. कैकेयीमब्रवीत्क्रुद्धो निर्दहन्निव तेजसा ।
"नृशसे दुष्टचारित्रे कुलस्यास्य विनाशिनि ॥७॥

२७ किं कृत तव रामेण पापे पाप मयापि वा ।
सदा ते जननीतुल्या वृत्तिं वहति राघव ॥८॥

२८ तस्यैव त्वमनर्थाय किंनिमित्तमिहोद्यता ।
त्व मयात्मविनाशाय भवन एव निवेशिता ॥९॥

१९. अग्निसेवक गुणवान् षडगवेद-पारगत उत्तम ब्राह्मणोने,
सहस्रोंके देनेवाले सत्यरत महर्षि समान महात्माओ और केवल
ऋषियोंसे घिरी पुरीको (राजाने) आवासित किया था॥२३॥

२. दशरथका विलाप—

२० तव महाराज कैकेयीके दारुण वचनको सुनकर।
चिन्ताको प्राप्त हो मुहूर्त भर सतप्त हुये॥१॥

२१ "क्या यह मेरा दिवास्वप्न है या मेरा चित्त-मोह है।
अनुभव किया उपसर्ग[1] है, या मनका उपद्रव ही है॥२॥

२२ यह सोचते राजाने वादमें होशमें आकर,
कैकेयीके वचनसे सतापित, सुख नही पाया, ॥३॥

२३. वाघिनको देखकर मृगकी तरह विकलतासे पीडित,
नगी धरतीपर वैठे लम्वी साँस लेते॥४॥

२४. मन्त्रो द्वारा महाविषैले सर्पकी तरह मण्डलमें रुधे
"अहो, धिक्कार", यह वचन अमर्षके साथ कह नराधिप॥५॥

२५ शोकसे चेतना लुप्त हुये, फिर मूर्छाको प्राप्त हुये।
देरसे होशमें आकर नृप अति दुखित हो॥६॥

२६ क्रुद्ध होकर तेजसे जलाते हुये से कैकेयीसे वोले—
"कमीनी, दुष्टाचारिणी, इस कुलकी विनाशिका॥७॥

२७ पापिनी, रामने या मैंने ही तेरा क्या विगाडा ?
राम तेरे प्रति सदा जननीके समान भाव रखते हैं॥८॥

२८. उनके अनर्थके लिए तू आज क्यो उद्यत है ?
न जाननेके कारण मैंने अपने विनाशके लिये॥९॥

---

[1] प्रेतवाधा।

२९ अविज्ञानान्नृपसुता व्याला तीक्ष्णविषा यथा।
जीवलोको यदा सर्वो रामस्याह गुणस्तवम् ॥१०॥

३० अपराध कमुद्दिश्य त्यक्ष्यामीष्टमहं सुतम्।
कौसल्याच सुमित्रां च त्यजेयमपि वा श्रियम् ॥११॥

३१. जीवित चात्मनो राम नत्वेव पितृवत्सलम्।
पराभवति मे प्रीतिर्दृष्ट्वा तनयमग्रजम् ॥१२॥

३२ अपश्यतस्तु मे राम नष्ट भवति चेतनम्।
तिष्ठेल्लोको विना सूर्य सस्य वा सलिल विना ॥१३॥

३३ नतु राम विना देहे तिष्ठेत्तु मम जीवितम्।
तदल त्यज्यतामेष निश्चय पापनिश्चय ॥१४॥

३४ अपि ते चरणौ मूर्ध्ना स्पृशाम्येष प्रसीद मे।
किमर्थं चिंतित पापे त्वया परमदारुणाम् ॥१५॥

३५ अथ जिज्ञाससे मा त्व भरतस्य प्रियाप्रिये।
अस्तु यत्तत्त्वया पूर्व व्याहृत राघव प्रति ॥१६॥

३६ स मे ज्येष्ठसुत श्रीमान्धर्मज्येष्ठ इतीव मे।
तत् त्वया प्रियवादिन्या सेवार्थ कथित भवेत् ॥१७॥

३७ तच्छ्रुत्वा शोकसतप्ता सतापयसि मा भृशम्।
आविष्टासि गृहे शून्ये सा त्व परवशगता ॥१८॥

३८ इक्ष्वाकूणा कुले देवि, सप्राप्त सुमहानयम्।
अनयो नयसपन्ने यत्र ते विकृता मति ॥१९॥

३९ नहि किंचिदयुक्त वा विप्रिय वा पुरा मम।
अकरोस्त्व विशालाक्षि तेन न श्रद्दधामि ते ॥२०॥

४०. ननु ते राघवस्तुल्यो भरतेन महात्मना।
बहुशो हि स्म वाले त्व कथा कथयते मम ॥२१॥

२९. तेज विषवाली सर्पिणीकी तरह नृपकन्या तुझे अपने भवनमें प्रवेश कराया। जब सारा जीवलोक रामके गुणकी प्रशसा करता है, ॥१०॥

३०. तो किस अपराधके लिये मैं प्रिय सुतको प्रत्यागू ?
कौसल्या और सुमित्रा और लक्ष्मीको भी ॥११॥

३१. और अपने जीवनको भी छोड दू, पर पितृभक्त राम को नही।
ज्येष्ठ पुत्रको देखकर मुझे परम प्रसन्नता होती है ॥१२॥

३२. रामको न देख मेरी चेतना नष्ट होजाती है।
विना सूर्यके लोक, विना सलिलके सस्य भले ही रहें ॥१३॥

३३. लेकिन रामके विना मेरे देहमें जीवन नही रहेगा।
इसलिए हे बुरे निश्चयवाली, वस कर, इस निश्चयको छोड दे ॥१४॥

३४. वल्कि, मैं तेरे चरणोमें सिर डालता हूँ, मुझपर दया कर।
हे पापिन, किसलिए तूने इस परम दारुण कामकी सोची ॥१५॥

३५ यदि तू भरतके प्रिय या अप्रियकी वात मुझसे जानना चाहती है,
तो राघवके लिये जो तूने पहले कहा, वही होवे ॥१६॥

३६ वह मेरे श्रीमान् ज्येष्ठ पुत्र धर्ममे भी ज्येष्ठ ही है।
सो तुझ प्रियवादिनीने सेवाके लिए कहा होगा ॥१७॥

३७ सो सुनकर शोकसतप्त हो तू मुझे वहुत सता रही है।
सो तू परके वश होकर शून्य घरमें प्रविष्ट हुई ॥१८॥

३८. हे देवि, इक्ष्वाकुओंके कुलमें यह वहुत वड़ा अन्याय,
न्याय-सम्पन्न कुलमें अन्याय लगा, जब कि तेरी मति विगडी ॥१९॥

३९. हे विशाल-नेत्रे, तूने पहले कुछभी मेरा अयुक्त या अप्रिय,
नही किया, उसीसे तुझपर विश्वास नही करता ॥२०॥

४० राम तेरे लिये निश्चय महात्मा भरतके तुल्य ही है,
हे वाले, तूने वहुत वार यह वात मुझसे कही ॥२१॥

४१. तस्य धर्मात्मनो देवि, वने वास यशस्विन ।
कथ रोचयसे भीरु नव वर्पाणि पच च ॥२२॥

४२ अत्यतसुकुमारस्य तस्य धर्मे कृतात्मन ।
कथ रोचयसे वासमरण्ये भृगदारुणे ॥२३॥

४३ रोचयस्यभिरामस्य रामस्य शुभलोचने ।
तव शुश्रूपमाणस्य किमर्थ विप्रवासनम् ॥२४॥

४४ रामो हि भरताद् भूयस्तव शुश्रूषते सदा ।
विशेप त्वयि तस्मात्तु भरतस्य न लक्षये ॥२५॥

४५. शुश्रूषा गौरव चैव प्रमाण वचनक्रियाम् ।
कस्तु भूयस्तर कुर्यादन्यत्र पुरुषर्षभात् ॥२६॥

४६. वहूना स्त्रीसहस्राणा वहूना चोपजीविनाम् ।
परिवादोपवादो वा राघवेनोपपद्यते ॥२७॥

४७. सात्वयन्सर्वभूतानि राम शुद्धेन चेतसा ।
गृह्णाति मनुजव्याघ्र प्रियैर्विषयवासिन ॥२८॥

४८. सत्त्वेन लोकान् जयति द्विजान्दानेन राघव ।
गुरूछुश्रूषया वीरो धनुषा युधि शात्रवान् ॥२९॥

४९ सत्त्य दान तपस्त्यागो मित्रता शौचमार्जवम् ।
विद्या च गुरुशुश्रूषा ध्रुवाण्येतानि राघवे ॥३०॥

५०. तस्मिन्नार्जवसपन्ने देवि देवोपमे कथम् ।
पापमाशससे रामे महर्षिसमतेजसि ॥३१॥

५१. न स्मराम्यप्रिय वाक्य लोकस्य प्रियवादिन ।
स कथं त्वत्कृते राम वक्ष्यामि प्रियमप्रियम् ॥३२॥

५२. क्षमा यस्मिस्तपस्त्याग सत्य धर्म. कृतज्ञता ।
अप्यहिंसा च भूताना तमृते का गतिर्मम ॥३३॥

४१. हे देवि, उस धर्मात्मा यशस्वीका नौ-पाँच वर्ष वनवास,
हे भीरु, तू क्यो पसन्द करती है ॥२२॥

४२. हे अतिदारुणे, अत्यन्त सुकुमार धर्ममें निष्णात उन रामका,
अरण्यमें वास तू कैसे पसन्द करती है ॥२३॥

४३. हे शुभ-लोचने, अपने तेरे शुश्रुषा करनेवाले,
सुन्दर रामका निर्वासन किसलिए चाहती है ॥२४॥

४४. राम तो हमेशा भरतसे भी ज्यादा तेरी शुश्रूपा करते है।
तेरे विपयमें तो भरतका विशेप मैं नही लखता ॥२५॥

४५. शुश्रूषा, गौरव, प्रमाण और वचन मानना,
पुरुषश्रेष्ठ रामसे अधिक दूसरा कौन करेगा ॥२६॥

४६. वहुत हजार स्त्रियो और वहुत नौकरोका राघवके विषयमें
निन्दा और चुगली करना सभव नही है ॥२७॥

४७ पुरुप-व्याघ्र राम शुद्ध चित्तसे सारे प्राणियोको सान्त्वना देते,
प्रेमके साथ देशवासियोको ग्रहण करते है ॥२८॥

४८ राघव हिम्मतसे लोगोको, दानसे द्विजोको जीतते हैं,
सुश्रूपासे गुरुओको, धनुपसे युद्धमें शत्रुओको जीतते है ॥२९॥

४९ सत्य, दान, तप, त्याग, मित्रता, शुचिता, अकुटिलता,
विद्या और गुरुओकी सुश्रूपा यह (गुण) राघवमें अचल है ॥३०॥

५० हे देवि, उन सरल देवोपम महर्षि समान तेजस्वी,
रामके विपयमें, तू क्यो वुरा चाहती है ॥३१॥

५१ प्रियवादी लोगोंके लिये (रामका) अप्रिय वात कहना मुझे याद नही,
सो मैं तेरे लिये प्रिय रामको कैसे अप्रिय कहूँगा ॥३२॥

५२ जिसमें क्षमा, तप, त्याग, सत्य, धर्म, कृतज्ञता,
और प्राणियोंके लिये अहिसा भी है, उसके विना मेरी क्या गति होगी ॥३३॥

५३ मम वृद्धस्य कैकेयि गतातस्य तपस्विनम् ।
दीन लालप्यमानस्य कारुण्य कर्तुमर्हसि ॥३४॥

५४ पृथिव्या सागराताया यत्किचिदधिगम्यते ।
तत्सर्व तव दास्यामि मा च त्व मृत्युमाविश ॥३५॥

५५ अजलि कुर्मि कैकेयि पादौ चापि स्पृशामि ते ।
शरण भव रामस्य माऽधर्मो मामिह स्पृशेत्" ॥३६॥

—अयोध्याकाडे सर्ग १२

३. भरतयाञ्चा—

५६ उवाच भरतश्चित्र धार्मिको धार्मिक वच —
"कोहि स्यादीदृशो लोको यादृशस्त्वमरिदम ॥२॥

५७ न त्वा प्रव्यथयेद् दु ख प्रीतिर्वा न प्रहर्षयेत् ।
समतश्चापि वृद्धाना ताश्च पृच्छसि सशयान् ॥३॥

५८ यथा मृतस्तथा जीवन्यथा सति तथाऽसति ।
यस्यैष बुद्धिलाभ स्यात्परितप्येत केन स ॥४॥

५९ परावरज्ञो यश्च स्याद्यथा त्व मनुजाधिप ।
स एव व्यसन प्राप्य न विषीदितुमर्हति ॥५॥

६० अमरोपमसत्त्वस्त्व महात्मा सत्यसगर ।
सर्वज्ञ सर्वदर्शी च बुद्धिमाँश्चासि राघव ॥६॥

६१ न त्वामेवगुणैर्युक्त प्रभवाभवकोविदम् ।
अविषह्यतम दु खमासादयितुमर्हसि ॥७॥

६२ प्रोषिते मयि यत्पाप मात्रा मत्कारणात्कृतम् ।
क्षुद्रया तदनिष्ट मे प्रसीदतु भवान्मम ॥८॥

६३ धर्मबधेन बद्धोऽस्मि तेनेमा नेह मातरम् ।
हन्मि तीव्रेण दडेन दडार्हां पापकारिणीम् ॥९॥

५३ हे कैकेयि, (जीवन के) अन्तपर पहुँचे विलाप करते
वेचारे मुझ वृद्ध दीनपर करुणा कर ॥३४॥"

५४ सागर पर्यन्त पृथिवीमें जो कुछ प्राप्य है।
वह सव मैं तुझे दूगा, लेकिन तू मुझे मृत्युमें न ढकेल ॥३५॥

५५ हे कैकेयि, हाथ जोडता हूँ और तेरे पैरोको छूता हूँ, तू रामके लिए
शरण वन, जिसमें यहाँ धर्म मेरी निन्दा न करे ॥३६॥"

—अयोध्याकाण्ड सर्ग १२

३. भरतकी प्रार्थना—

५६ धार्मिक भरतने अद्‌भुत धार्मिक वचन कहा।
"हे अरिमर्दन, जैसे तुम हो ऐसा दुनियामें कौन हो सकता है ॥२॥

५७ तुम्हें दुःख नही पीडित करता, न ही प्रीति हर्षित करती।
वृद्धोंसे भी सम्मानित होते उनसे सशय पूछते हो ॥३॥

५८. जैसे मृत तैसे जीते जैसे होते तैसे न होते,
जिसको ऐसी वुद्धि प्राप्त हो, वह किससे परितप्त होगा ॥४॥

५९ वारपारका ज्ञाता जो हो, (वह वैसा ही हो) जैसे कि हे मनुजाधिप,
तुम हो। वही दुःखको पाकर विपादयुक्त नही हो सकता ॥५॥

६० देवोपम सत्ववाले, तुम सत्यवादी महात्मा हो।
हे राघव, तुम सर्वज्ञ सर्वदर्शी और वुद्धिमान् हो ॥६॥

६१. सृष्टि-उत्पत्तिके जानकार ऐसे गुणोसे युक्त तुम्हें,
असह्य दुःख वसमें नही कर सकता ॥७॥

६२ मेरे प्रवासके समय क्षुद्ध मांने मेरे लिए जो पाप किया,
वह मुझे पसन्द नही, मेरे ऊपर आप दया करें ॥८॥

६३. धर्मके वन्धनमे वधा हुआ हूँ, इसीसे यहाँ इस
दण्डनीय पापकारिणी मांको मैं तीव्र दण्डसे नही मारता ॥९॥

६४ कथ दशरथाज्जात शुभाभिजनकर्मण ।
जानन्धर्ममधर्म च कुर्या कर्म जुगुप्सितम् ॥१०॥

६५ गुरु क्रियावान्वृद्धश्च राजा प्रेत पितेति च ।
तात न परिगर्हेऽह दैवत चेति ससदि ॥११॥

६६ को हि धर्मार्थयोर्हीनमीदृश कर्म किल्विषम् ।
स्त्रिय प्रियचिकीर्षु सन्कुर्याद्धर्मज्ञ धर्मवित् ॥१२॥

६७ अतकाले हि भूतानि मुह्यतीति पुरा श्रुति ।
राज्ञैव कुर्वता लोके प्रत्यक्षा सा श्रुति कृता ॥१३॥

६८ साध्वर्थमभिसधाय क्रोधान्मोहाच्च साहसात् ।
तातस्य तदतिक्रात प्रत्याहरतु तद् भवान् ॥१४॥

६९ पितुर्हि समतिक्रात पुत्रो य साधु मन्यते ।
तदपत्य मत लोके विपरीतमतोऽन्यथा ॥१५॥

७० तदपत्य भवानस्तु मा भवान्दुष्कृत पितु ।
अति यत्तत्कृत कर्म लोके धीरविगर्हितम् ॥१६॥

७१ कैकेयी मा च तात च सुहृदो बाधवाश्च न ।
पौरजानपदान्सर्वास्त्रातु सर्वमिद भवान् ॥१७॥

७२ क्व चारण्य क्व च क्षात्त्र क्व जटा क्व च पालनम् ।
ईदृश व्याहत कर्म न भवान्कर्तुमर्हति ॥१८॥

७३. एप हि प्रथमो धर्म क्षत्त्रियस्याभिषेचनम् ।
येन शक्य महाप्राज्ञ प्रजाना परिपालनम् ॥१९॥

७४ इद निखिलमप्यग्र्य राज्य पित्र्यमकटकम् ।
अनुशाधि स्वधर्मेण धर्मज्ञ सह बाधवै ॥२५॥

७५ इहैव त्वाभिषिचतु सर्वा प्रकृतय सह ।
ऋत्विज सवसिष्ठाश्च मत्रविन्मत्रकोविदा ॥२६॥

६४. शुभ-कुल-कर्मवाले दशरथसे उत्पन्न, (क्या)
धर्मको जानते निन्दनीय अधर्म कर्मको मैं करूँ ॥१०॥

६५ गुरु, सुकर्मा, वृद्ध, मृत पिता और राजा, तथा देवता भी थे,
अत सभामे तातकी मैं निन्दा नही करता ॥११॥

६६ धर्म और अर्थसे रहित ऐसा मलिन कर्म,
स्त्रीको प्रसन्न करनेकी इच्छासे धर्मज्ञ और धर्मवित् होते कौन करेगा ॥१२॥

६७ पुरानी कहावत है—अन्तकालमें प्राणी मोहमें पड जाते है।
ऐसा करके राजाने उसी वातको ससारमें प्रत्यक्ष कर दिया ॥१३॥

६८ अच्छी वात समझकर क्रोध मोह और साहससे,
तातने जो गलती की, उसको आप हटा दें ॥१४॥

६९ पिताकी गलती जो पुत्र ठीक मानता है,
वह ससारमें पुत्र माना जाता है, नही तो उलटा है ॥१५॥

७० सो आप पिताके अपत्य हो, दुष्कृत नही
जो ससारमें धीरो द्वारा निन्दित अतिकर्म किये ॥१६॥

७१ कैकेयीको मुझे और तातको सुहृदोको और हमारे वन्धुओको,
पुरवासियोको ग्रामवासियोको सवको त्राण करनेके लिये यह करो ॥१७॥

७२ कहाँ वन और कहाँ क्षत्रियत्व? कहाँ जटा और कहाँ प्रजापालन?
ऐसा उलटा काम आपको नही करना चाहिए ॥१८॥

७३ अभिषेक करना यही क्षत्रियका प्रथम धर्म है।
जिसके द्वारा हे महावुद्धिमान्, प्रजाका परिपालन हो सकता है ॥१९॥

७४ धर्मज्ञ हो वन्धुओंके साथ इस श्रेष्ठ पैतृक सार अकंटक राज्य को स्वधर्मपूर्वक शासन करो ॥२५॥

७५ यही वसिष्ठ-सहित सारी प्रजायें
मन्त्रज्ञ मन्त्र-पडित ऋत्विग् तुम्हें अभिषिक्त करें ॥२६॥

७६ अभिषिक्तस्त्वमस्माभिरयोध्या पालने व्रज।
विजित्य तरसा लोकान्मरुद्भिरिव वासव ॥२७॥
७७ ऋणानि त्रीण्यपाकुर्वन्दुर्हृद साधु निर्दहन्।
सुहृदस्तर्पयन्कामैस्त्वमेवात्रानुशाधि माम् ॥२८॥
७८ अद्यार्य मुदिता सतु सुहृदस्तेऽभिषेचने।
अद्य भीता पलायतु दुष्प्रदास्ते दिशो दश ॥२९॥
७९ आक्रोश मम मातुश्च प्रमृज्य पुरुषर्षभ।
अद्य तत्र भवत च पितर रक्ष किल्विषात् ॥३०॥
८० शिरसा त्वाभियाचेऽह कुरुष्व करुणा मयि।
बान्धवेषु च सर्वेषु भूतेष्विव महेश्वर ॥३१॥
८१ अथवा पृष्ठत कृत्वा वनमेव भवानित ।
गमिष्यति गमिष्यामि भवता सार्धमप्यहम्" ॥३२॥
८२ तथाभिरामो भरतेन ताम्यता
प्रसाद्यमान शिरसा महीपति ।
न चैव चक्रे गमनाय सत्त्ववान्
मति पितुस्तद्वचने प्रतिष्ठित ॥३३॥

—अयोध्याकाडे सर्ग १०६

४. वियोगी रामः—

८३. "सौमित्रे, शोभते पपा वैदूर्यविमलोदका।
फुल्लपद्मोत्पलवती शोभिता विविधैर्द्रुमै ॥३॥
८४. सौमित्रे, पश्य पपाया कानन शुभदर्शनम्।
यत्र राजति शैला वा द्रुमा सशिखरा इव ॥४॥
८५ मा तु शोकाभिसतप्तमाधय पीडयति वै।
भरतस्य च दु खेन वैदेह्या हरणेन च ॥५॥

७६. हमारे द्वारा अभिषिक्त होकर प्रजापालनके लिये तुम अयोध्या जाओ। मरुतोंके साथ इन्द्रकी तरह पराक्रमसे लोकोपर विजय करने के लिये ॥२७॥

७७ तीनो ऋणोको हटाते दुष्टोको अच्छी तरह दग्ध करते, सुहृदोकी कामनाओको पूरा करते, तुम्ही यहाँ मुझे शिक्षा दो ॥२८॥

७८ हे आर्य, आज तुम्हारे अभिषेकसे मित्र लोग मुदित हो। तुम्हारे शत्रु आज भयभीत हो दसो दिशाओमें भागें ॥२९॥

७९ हे पुरुषश्रेष्ठ, मेरे और मांके अपयशको मार्जित कर, आज पिताको भी पापसे बचाओ ॥३०॥

८० मै (अपना) सिर (पैरमें रख) याचना करता हूँ, मेरे ऊपर करुणा करो। और भूतोंके ऊपर महेश्वरकी तरह सारे वान्धवो पर करुणा करो ॥३१॥

८१ अथवा पीठ फेरकर यहाँसे यदि आप वन ही जायेंगे, तो आपके साथ मैं भी जाऊँगा ॥३२॥'

८२ उस प्रकार संतप्त भरत द्वारा सिर झुकाकर मनाये जाते सुन्दर महीपति, सत्ववान् रामने पिताके उस वचनमें प्रतिष्ठित रह लौटनेका विचार नही किया ॥३३॥

—अयोध्याकाण्ड सर्ग १०६

४. वियोगी राम—

८३ "हे सौमित्रि, हीरे जैसे निर्मल जलवाली पपा सोह रही है। फूले पद्म उत्पलवाली, नाना प्रकारके वृक्षोंसे शोभित ॥३॥

८४ सौमित्रि, पपाके शुभदर्शन वनको देखो। जहाँ शिखर-सहित शैल जैसे द्रुम विराजते है ॥४॥

८५. शोकसे सतप्त मुझे तो चिन्तायें पीडित कर रही हैं, भरतके दुःख और वैदेहीके हरणके कारण ॥५॥

८६ शोकार्तस्यापि मे पपा शोभते चित्रकानना।
व्यवकीर्णा बहुविधैः पुष्पैः शीतोदका शिवा॥६॥

८७ नलिनैरपि सछन्ना ह्यत्यर्थशुभदर्शना।
सर्पव्यालानुचरिता मृगद्विजसमाकुला॥७॥

८८ अधिकं प्रविभात्येतन्नीलपीत तु शाद्वलम्।
द्रुमाणा विविधैः पुष्पैः परिस्तोमैरिवार्पितम्॥८॥

८९ पुष्पभारसमृद्धानि शिखराणि समतत।
लताभि पुष्पिताग्राभिरुपगूढानि सर्वत॥९॥

९० सुखानिलोऽय सौमित्रे काल प्रचुरमन्मथ।
गधवान्सुरभिर्मासो जातपुष्पफलद्रुम॥१०॥

९१ पश्य रूपाणि सौमित्रे वनाना पुष्पशालिनाम्।
सृजता पुष्पवर्षाणि वर्षतोयमुचामिव॥११॥

९२ प्रस्तरेषु च रम्येषु विविधा काननद्रुमाः।
वायुवेगप्रचलिता पुष्पैरवकिरति गाम्॥१२॥

९३ पतितै पतमानैश्च पादस्थैश्च मारुत।
कुसुमै पश्य सौमित्रे क्रीडतीव समतत॥१३॥

९४ विक्षिपन्विविधा शाखा नगाना कुसुमोत्कटा।
मारुतश्चलित स्थानै षट्पदैरनुगीयते॥१४॥

९५ मत्तकोकिलसन्नादैर्नर्तयन्निव पादपान्।
शैलकदरनिष्क्रात प्रगीत इव चानिल॥१५॥

९६ तेन विक्षिपताऽत्यर्थं पवनेन समतत।
अमी ससक्तशाखाग्रा ग्रथिता इव पादपा॥१६॥

९७ स एव सुखसस्पर्शो वाति चदनशीतल
गधमभ्यवहन्पुण्य श्रमापनयनोऽनिल॥१७॥

८६. शोक-पीडित भी मुझे विचित्र वनोवाली पपा सुन्दर लग रही है–
बहुत प्रकारके पुष्पोंसे आकीर्ण शीतल जलवाली कल्याणी पपा ॥६॥
८७. कमलोंसे भी आच्छादित अत्यन्त शुभदर्शना,
सर्प-हिंस्रजन्तुओकी विचरण-भूमि मृगो और पक्षियोंसे समाकीर्ण ॥७॥
८८ यह नीली-पीली हरियाली अधिक प्रकाश रही है।
मानो वृक्षोंके नाना प्रकारके पुष्पोंके गुच्छोंसे अर्पित ॥८॥
८९ चारो ओर यहाँ पुष्पभारसे समृद्ध पर्वत-शिखर हैं,
जो चारो ओर फूली लताओसे ढके हुये है ॥९॥
९० सौमित्रे, सुखद वायुवाला यह समय अधिक कामोत्तेजक है।
गन्धवान् सुगन्धित उत्पन्न पुष्प-फलवाले वृक्ष हैं ॥१०॥
९१ सौमित्रे, पुष्पशाली वनोंके रूपोको देखो,
(जो) वादलोकी वर्षाकी तरह पुष्पोकी वर्षा करते है ॥११॥
९२ और रमणीय पत्थरोपर नाना प्रकारके वनवृक्ष,
वायुके वेगसे चालित पृथिवीपर फूल विखेरते है ॥१२॥
९३. सौमित्रे, गिरे और गिर रहे तथा वृक्षपर स्थित कुसुमोंके साथ,
मानो वायु चारो ओर क्रीडा सा कर रहा है ॥१३॥
९४ पर्वतोकी प्रफुल्लित नाना शाखाओको हिलाते,
स्थानसे चलित वायुका भ्रमर अनुगान कर रहे है ॥१४॥
९५ मत्त कोकिलोंके नादोंसे वृक्षोको नचाते हुये से,
पर्वत-कदरासे निकला वायु मानो गा रहा है ॥१५॥
९६ चारो ओर जोरसे फेंकते उस पवन द्वारा,
शाखा लगे यह वृक्ष गुथे से हैं ॥१६॥
९७ वही चदन सा शीतल सुख स्पर्शवाला पवित्र गन्ध
वहन करता थकावट हटानेवाला अनिल वह रहा है ॥१७॥

११० मा हि पल्लवताम्रार्चिर्वसताग्नि प्रधक्ष्यति।
नहि ता सूक्ष्मपद्माक्षी सुकेशी मृदुभाषिणीम् ॥३०॥

१११. अपश्यतो मे सौमित्रे, जीवितेऽस्ति प्रयोजनम्।
अय हि रुचिरस्तस्या काले रुचिरकानन ॥३१॥

११२ कोकिलाकुलसीमतो दयिताया ममानघ।
मन्मथायाससभूतो वसतगुणवर्धित. ॥३२॥

११३. अय मा धक्ष्यति क्षिप्र शोकाग्निर्न चिरादिव।
अपश्यतस्ता वनिता पश्यतो रुचिरान्द्रुमान् ॥३३॥

११४ ममायमात्मप्रभवो भूयस्त्वमुपयास्यति।
अदृश्यमाना वैदेही शोक वर्धयतीह मे ॥३४॥

११५ दृश्यमानो वसतश्च स्वेदससर्गदूषक ।
मा हि सा मृगशावाक्षी चिताशोकबलात्कृतम् ॥३५॥

११६. सतापयति सौमित्रे क्रूरश्चैत्रवनानिल ।
अमी मयूरा शोभते प्रनृत्यतस्ततस्तत ॥३६॥

११७. स्वै पक्षै पवनोद्धूतैर्गवाक्षै स्फाटिकैरिव।
शिखिनीभि परिवृतास्त एते मदमूर्छिता ॥३७॥

११८. मन्मथाभिपरीतस्य मम मन्मथवर्धना:।
पश्य लक्ष्मण, नृत्यत मयूरमुपनृत्यति ॥३८॥

११९ शिखिनी मन्मथार्तैषा भर्तार गिरिसानुनि।
तामेव मनसा रामा मयूरोऽप्यनुधावति ॥३९॥

१२०. वितत्य रुचिरो पक्षौ रुतैरुपहसन्निव।
मयूरस्य वने नून रक्षसा न हृता प्रिया ॥४०॥

१२१. तस्मान्नृत्यति रम्येषु वनेषु सह कातया।
मम त्वय विना वास पुष्पमासे सुदु सह. ॥४१॥

११०. पल्लवकी लालज्वालावाली वसन्तकी आग, मुझे अवश्य जलायेगी।
उस सूक्ष्म पलकोंवाली सुकेशी मृदुभाषिणीको, ॥३०॥

१११. बिना देखे हे सौमित्रे, जीवनका प्रयोजन नही है,
उसके (रहते) समय मेरे लिये यह सुन्दर कानन रुचिर था ॥३१॥

११२ हे निष्पाप, मेरी प्रियाका कोकिलाओंके सीमन्त
कामदेवके प्रयाससे उत्पन्न वसन्तके गुणोंसे वर्धित ॥३२॥

११३ यह शोकाग्नि तुरन्त बिना देर किये ही मुझे जलायेगी।
उस वनिताको बिना देखे सुन्दर वृक्षोको देखते ॥३३॥

११४ यह कामदेव मुझे अधिकताको प्राप्त होगा।
न दीखती वैदेही मेरे शोकको अब बढायेगी ॥३४॥

११५. और स्वेदके ससर्गसे दूषित करनेवाला दीखता वसन्त,
वह मृग छौनोसी आंखोवाली,

११६ चैतका क्रूर वन-पवन हे सौमित्रे, चिन्ता-शोकके शिकार मुझे सतप्त कर रहा है
जहाँ-तहाँ नाचते यह मोर शोभा दे रहे है ॥३५, ३६॥

११७ स्फटिकके गौखोकेसे पवनसे कपते अपने पखो द्वारा,
मयूरियोंसे घिरे यह (मयूर) मदमें मूर्छित है ॥३७॥

११८ मन्मथसे आविष्ट मेरे मन्मथको बढानेवाले,
लक्ष्मण, देखो, पर्वतके सानुपर नाचते पति-मयूरके पास ॥३८॥

११९ यह कामार्त मयूरी नाच रही है।
मयूर भी उसी सुन्दरीके पीछे-पीछे दौड रहा है ॥३९॥

१२०. रुचिर पखोको फैलाकर शब्दोंसे उपहाससे करते,
मयूरके वनमें निश्चय राक्षसने प्रियाको नही हरा ॥४०॥

१२१ अतएव रमणीय वनोमें कान्ताके साथ यह नाच रहा है।
फूलोंके महीनेमें उस (प्रिया) के बिना मेरा यह निवास अति-दुस्सह है ॥४१॥

१२२ पश्य लक्ष्मण, सरागस्तिर्यग्योनिगतेष्वपि ।
अधुना शिखिनी कामाद् भर्तारमभिवर्तते ॥४२॥

१२३ ममाप्येव विशालाक्षी जानकी जातसभ्रमा ।
मदनेनाभिवर्तेत यदि नापहृता भवेत् ॥४३॥

१२४ पश्य लक्ष्मण, पुष्पाणि निष्फलानि भवन्ति मे ।
पुष्पभारसमृद्धानां वनानां शिशिरात्यये ॥४४॥

१२५ रुचिराण्यपि पुष्पाणि पादपानामतिश्रिया ।
निष्फलानि महीं यान्ति समं मधुकरोत्करैः ॥४५॥

१२६ नदन्ति कामं शकुना मुदिताः सघशः कलम् ।
आह्वयन्त इवान्योन्यं कामोन्मादकरा मम ॥४६॥

१२७ वसन्तो यदि तत्रापि यत्र मे वसति प्रिया ।
नूनं परवशा सीता सा हि शोचत्यहं यथा ॥४७॥

१२८ नूनं न तु वसन्तस्तं देशं स्पृशति यत्र सा ।
कथं ह्यसितपद्माक्षी वर्तयेत्सा मया विना ॥४८॥

१२९ अथवा वर्तते तत्र वसन्तो यत्र मे प्रिया ।
किं करिष्यति सुश्रोणी सा तु निर्भर्त्सिता परैः ॥४९॥

१३० श्यामा पद्मपलाशाक्षी मृदुभाषा च मे प्रिया ।
नूनं वसन्तमासाद्य परित्यक्ष्यति जीवितम्" ॥५०॥

—किष्किन्धाकाण्डे सर्गः १

५. वर्षा—

१३१ स तदा बालिनं हत्वा सुग्रीवमभिषिच्य च ।
वसन्माल्यवतः पृष्ठे रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥१॥

१२२ लक्ष्मण, हैवानोमें भी राग देखो।
अव मयूरी कामवश पतिका पीछा कर रही है ॥४२॥

१२३ विशालाक्षी मेरी जानकी भी जल्दी-जल्दी,
मदन परवशा होती, यदि हरी न जाती ॥४३॥

१२४. लक्ष्मण, देखो, मेरे लिये फूल निष्फल है।
शिशिरके अन्तमें पुष्पभारसे समृद्ध वनोके ॥४४॥

१२५ वृक्षोंके अतिशोभासे रुचिर पुष्प भी,
मधुकरोके समूह के साथ निष्फल हो पृथिवीपर गिर जाते हैं ॥४५॥

१२६. मुदित पक्षी सघवद्ध हो भले ही मधुर नाद करें।
एक दूसरेको पुकारते मेरे लिये तो वह काम-उन्माद करनेवाले है ॥४६॥

१२७ यदि वसन्त वहाँ भी है, जहाँ मेरी प्रिया वसती है, तो
निश्चय परवशा वह सीता भी मेरी तरह शोकार्त होगी ॥४७॥

१२८ निश्चय जहाँ वह है, उस स्थानको वसन्त नही छूता।
पद्मो जैसी काली आँखोवाली वह मेरे विना कैसे रहती होगी ॥४८॥

१२९ अथवा जहाँ मेरी प्रिया है, वहाँ वसन्त वर्तमान है।
पर, दूसरोंसे त्रासित वह सुजघी क्या करे ॥४९॥

१३० श्यामा पद्मपत्राक्षी और मृदुभाषिणी मेरी प्रिया,
निश्चय वसन्तको प्राप्त कर वह जीवन छोड देगी" ॥५०॥

—किष्किधाकाण्ड सर्ग १

५. वर्षा—

१३१ तव वालीको मारकर और सुग्रीवका अभिषेक कर,
माल्यवान् पर्वतकी पीठपर वसते उन (राम)ने लक्ष्मणसे कहा ॥१॥

१३२ "अय स काल सम्प्राप्त समयोऽद्य जलागम ।
सपश्य त्व नभो मेघै सवृत गिरिसनिभै ॥२॥

१३३ नवमासधृत गर्भं भास्करस्य गभस्तिभि ।
पीत्वा रस समुद्राणा द्यौ प्रसूते रसायनम् ॥३॥

१३४ शक्यमवरमारुह्य मेघसोपानपक्तिभि ।
कुटजार्जुनमालाभिरलकर्तु दिवाकर ॥४॥

१३५ सध्यारागोत्थितैस्ताम्रैरन्तेष्वपि च पाडुभि ।
स्निग्धैरभ्रपटच्छेदैर्बद्धव्रणमिवावरम् ॥५॥

१३६ मदमारुतनि श्वास सध्याचदनरजितम् ।
आ पाडुजलद भाति कामातुरमिवाबरम् ॥६॥

१३७ एपा धर्मपरिक्लिप्टा नववारिपरिप्लुता ।
सीतेव शोकसतप्ता मही वाष्प विमुचति ॥७॥

१३८ मेघोदरविनिर्मुक्ता कर्पूरदलशीतला ।
शक्यमजलिभि पातु वाता केतकगधिन ॥८॥

१३९ एष फुल्लार्जुन शैल केतकैरभिवासित ।
सुग्रीव इव शातारिर्धाराभिरभिषिच्यते ॥९॥

१४० मेघकृष्णाजिनधरा धारायज्ञोपवीतिन ।
मारुतापूरितगुहा प्राधीता इव पर्वता ॥१०॥

१४१. कशाभिरिय हैमीभिर्विद्युद्भिरभिताडितम् ।
अतस्तनितनिर्घोष सवेदनमिवाबरम् ॥११॥

१४२ नीलमेघाश्रिता विद्युत्स्फुरती प्रतिभाति मे ।
स्फुरती रावणस्याके वैदेहीव तपस्विनी ॥१२॥

१४३ इमास्ता मन्मथवता हिता प्रतिहता दिश ।
अनुलिप्ता इव घनैर्नष्टग्रहनिशाकरा ॥१३॥

१३२ "यह वह काल आ गया, आज वर्षाका समय है।
देखो, गिरि सदृश मेघोसे आकाश ढका है ॥२॥

१३३ समुद्रोंके रसको पीकर भास्करकी किरणो द्वारा,
नौ मास गर्भमें धारण किये द्यौलोक रसायन प्रसव कर रहा है ॥३॥

१३४ अम्वरपर चढकर मेघरूपी सीढीकी पक्तियो द्वारा,
कुटज और अर्जुनकी मालाओंसे दिवाकरको अलकृत करने को ॥४॥

१३५. और इनमें भी सन्ध्या-रागसे उठे लाल और पाण्डुर,
चिकने मेघपटोंके टुकडोंसे घाव-वधा अम्वर ॥५॥

१३६ मन्द वायुके नि श्वास द्वारा सन्ध्या रूपी चन्दनसे रगा,
थोडा पाण्डु मेघवाला अम्वर कामातुर सा मालूम होता है ॥६॥

१३७ घामसे क्लेशित नये जलसे लयपथ,
शोक-सतप्त सीता सी यह पृथिवी आँसू वहा रही है ॥७॥

१३८ मेघके उदरसे निकले, कपूरके दलसे शीतल,
केवडेके गन्धवाले वायु अजलियोंसे पिये जा सकते है ॥८॥

१३९ फूले अर्जुनवाला केवडोंसे वासित यह शैल,
शमित-शत्रुवाले सुग्रीवसे धाराओ द्वारा अभिपिक्त हो रहे है ॥९॥

१४० मेघरूपी काले मृगचर्मको धारण करनेवाले, धारारूपी यज्ञोपवीत वाले, मारुतसे भरी गुहाओवाले यह पर्वत मानो अध्ययन कर रहे हैं ॥१०॥

१४१ सुनहले चावुको जैसी विजलियो द्वारा ताडित,
भीतर कडकके घोषवाला पीडित सा है अम्वर ॥११॥

१४२ नील मेघमें आश्रित कौंदती विजली रावणकी गोदमें,
वेचारी वैदेही सी काँपती मुझे जान पडती है ॥१२॥

१४३ यह काम-पीडितोकी हत-प्रतिहत दिशायें,
वादलोंसे अनुलिप्त मानो ग्रह-शून्य चन्द्रमावाली है ॥१३॥

१४४ क्वचिद्बाष्पाभिसरुद्धान्वर्षागमसमुत्सुकान् ।
कुटजान्पश्य सौमित्रे, पुष्पितान्गिरिसानुषु ।
मम शोकाभिभूतस्य कामसदीपनान्स्थितान् ॥१४॥

१४५. रज प्रशात सहिमोऽद्य वायुर्निदाघदोषप्रसरा प्रशाता ।
स्थिता हि यात्रा वसुधाधिपाना
प्रवासिनो याति नरा स्वदेशान् ॥१५॥

१४६. सप्रस्थिता मानसवासलुब्धा
प्रियान्विता सप्रति चक्रवाका ।
अभीक्ष्णवर्षोदकविक्षतेषुयानानिमार्गेषुनसपतति ॥१६॥

१४७. क्वचित्प्रकाश क्वचिदप्रकाश नभ प्रकीर्णाबुधर
विभाति । क्वचित्क्वचित्पर्वतसनिरुद्ध
रूप यथा शातमहार्णवस्य ॥१७॥

१४८. व्यामिश्रित सर्जकदबपुष्पैर्नव जल पर्वतधातुताम्रम् ।
मयूरकेकाभिरनुप्रयात शैलापगा शीघ्रतर वहति ॥१८॥

१४९. रसाकुल षट्पदसनिकाश प्रभुज्यते जबुफल प्रकामम् ।
अनेकवर्णं पवनावधूत भूमौ पतत्याम्रफल विपक्वम् ॥१९॥

१५०. विद्युत्पताका: सवलाकमाला: शैलेद्रकूटाकृतिसनिकाशा ।
गर्जन्ति मेघा समुदीर्णनादा
मत्ता गजेद्रा इव सयुगस्था ॥२०॥

१५१ वर्षोदकाप्यायितशाद्वलानि प्रवृत्तनृत्तोत्सवबर्हि-
णानि ।
वनानि निर्वृष्टबलाहकानि
पश्यापराह्णेष्वधिक विभाति ॥२१॥

१४४　हे सौमित्रे, पर्वतोंके सानुओपर कही चारो ओर रुद्ध,
वर्षाके आनेसे उत्सुक फूले कुटजोको देखो, (जो)।
शोक-पीडित मुझे कामोद्दीपन करते खडे हैं ॥१४॥

१४५　धूलियाँ दव गई, आज वह वायु शीतल है, वर्षाके दोषका फैलाव प्रशान्त है। राजाओकी यात्रा थम गई, प्रवासी नर अपने देशोको लौट रहे हैं ॥१५॥

१४६　अब मानसके निवासके लोभी चक्रवाक प्रियासहित प्रस्थान कर चुके। वरावर वरसते पानीसे टूटे मार्गों पर यान नही चलते ॥१६॥

१४७　कही सप्रकाश और कही अप्रकाश नभ मेघोंसे भरा दीख रहा है। कही-कही वह पर्वतकी तरह रुका शान्त महासागर के रूप सा है ॥१७॥

१४८　सर्ज-कदवके पुष्पोंसे मिश्रित पर्वतके धातुओसा लाल नवीन जल है, मयूरोकी ध्वनियोंसे अनुगमन की जाती पहाडी नदियाँ अधिक तेजीसे वहती है ॥१८॥

१४९　भ्रमर समान वर्णवाले रससे भरे जामुनके फलको खूब खा रहा है। पवनसे हिला अनेक रगोका पक्व आम्रफल भूमिपर गिर रहा है ॥१९

१५०　विद्युत्की पताका, वगुलोकी माला सहित महापर्वतके शिखरके आकारसे, ऊँचे गरजते मस्त गजेन्द्रोंसे युद्ध करते से मेघ गरज रहे हैं ॥२०॥

१५१　वर्षाके जलसे तृप्त तृणोवाले, नृत्योत्सवमें लगे मोरोवाले, नवरसे मेघवाले वनोको देखो, यह अपराह्णमें अधिक शोभा दे रहे हैं ॥२१॥

१५२　वगुले वाले मेघ सलिलके भारी भारको ढोते, नाद करते, पर्वतोंके वडे-वडे शिखरोपर विश्राम कर-करके फिर प्रयाण कर रहे है ॥२२॥

१५२ समुद्वहत सलिलातिभार वलाकिनो वारिधरा नदत ।
महत्सु शृगेषु महीधराणा
विश्रम्य विश्रम्य पुन प्रयाति ॥२२॥

१५३ मेघाभिकामा परिसपतती
समोदिता भाति वलाकपक्ति- ।
वातावधूता वरपौडरीकी
लवेव माला रुचिरावरस्य ॥२३॥

१५४ वालेद्रगोपातरचित्रितेन विभाति भूमिर्नवशाद्वलेन ।
गात्रानुपृक्तेन शुकप्रभेण
नारीव लाक्षोक्षितकवलेन ॥२४॥

१५५ निद्रा शनै केशवमभ्युपैति द्रुत नदी सागरमभ्युपैति ।
हृष्टा वलाका घनमभ्युपैति
काता सकामा प्रियमभ्युपैति ॥२५॥

१५६ जाता वनाता शिखिसुप्रनृत्ता
जाता कदबा सकदवशाखा
जाता वृषा गोषु समानकामा
जाता मही सस्यवना भिरामा ॥२६॥

१५७. वहति वर्षति नदति भाति
ध्यायति नृत्यति समाश्वसति ॥
नद्या घना मत्तगजा वनाता
प्रियाविहीना शिखिन प्लवगमा ॥२७॥

१५८ प्रहर्षिता केतकिपुष्पगधमाघ्राय मत्ता वननिर्झरेषु ।
प्रपातशब्दाकुलिता गजेद्रा
सार्ध मयूरै समदा नदति ॥२८॥

१५९. धारानिपातैरभिहन्यमाना कदवशाखासु विलवमाना ।
क्षणार्जित पुष्परसावगाढ शनैर्मद षट्चरणास्त्यजति ॥२९

१५३ मेघकी कामनावाली सम्मोदित बगलोकी पाती चारो ओरसे इकट्ठा हो शोभा देती है। मानो हवासे कम्पित श्रेष्ठ श्वेतकमलो की लटकती रुचिर अम्बरकी माला है॥२३॥

१५४ शिशु बीरबहूटी द्वारा भीतर चित्रित नये तृणोंसे युक्त भूमि, मानो गात्रके लगे तोतेके रंगवाले लाखसे रंगे दुशाले युक्त नारी है॥२४॥

१५५ विष्णुके पास धीरे-धीरे निद्रा आ रही है, नदी शीघ्र सागरके पास जा रही है। हर्षित बगले मेघके पास जा रहे हैं, संतुष्ट कान्ता प्रियाके पास जा रही है॥२५॥

१५६ वन, मयूरोंके सुन्दर नृत्यवाले हो गये, कदंब शाखा-मुक्त हो गये। वृषभ गौओमें एक सी कामनावाले हैं, सस्यवाले वनोंसे पृथिवी अभिराम हो गई है॥२६॥

१५७ नदियाँ, मेघ, मस्त गज, बनावली, प्रियावियुक्त मोर और वानर बहती, बरसते है, नाद करते है, प्रकाशित होते हैं, ध्यान करते है, नाचते है, समाश्वास पाते है॥२७॥

१५८ वनोंके निर्झरोमें केतकीके फूलके गन्धको सूघकर मतवाले प्रहर्षित, जल-प्रपातके शब्दोंसे व्याकुल गजेन्द्र मोरोके साथ नशेमें हो नाद कर रहे है॥२८॥

१५९ धाराके गिरनेसे ताडित कदम्बकी शाखाओमें लटकते भ्रमर क्षणभरके लिये पुष्परससे गाढे मदको धीरे-धीरे छोड रहे हैं॥२९॥

१६० अंगारचूर्णोत्करसंनिकाशैः फलैः सुपर्याप्तरसैः समृद्धैः।
जम्बूद्रुमाणां प्रविभाति शाखा
निपीयमाना इव षट् पदौघैः ॥३०॥

१६१ तडित्पताकाभिरलंकृतानामुदीर्णगम्भीरमहारवाणाम् ।
विभाति रूपाणि बलाहकानां
रणोत्सुकानामिव वानराणाम् ॥३१॥

१६२ मार्गानुगः शैलवनानुसारी संप्रस्थितो मेघरवं निशम्य।
युद्धाभिकामः प्रतिनादशंकी
मत्तो गजेन्द्रः प्रति संनिवृत्तः ॥३२॥

१६३ क्वचित्प्रगीता इव षट्पदौघैः
क्वचित्प्रनृत्ता इव नीलकंठैः ।
क्वचित्प्रमत्ता इव वारणेन्द्रैः
विभात्यनेकाश्रयिणो वनांताः ॥३३॥

१६४ कदंबसर्जार्जुनकंदलाढ्या वनांतभूमिर्मधुवारिपूर्णा ।
मयूरमत्ताभिरुतप्रनृत्तैः
रापानभूमिप्रतिभा विभाति ॥३४॥

१६५ मुक्तासमाभं सलिलं पतद्वै सुनिर्मलं पत्रपुटेषु लग्नम्।
हृष्टा विवर्णच्छदना विहंगाः
सुरेंद्रदत्तं तृषिताः पिबंति ॥३५॥

१६६ षट्पादतंत्रीमधुराभिधानं
प्लवंगमोदीरितकंठतालम् ।
आविष्कृतं मेघमृदंगनादैः
वनेषु संगीतमिव प्रवृत्तम् ॥३६॥

१६७ क्वचित्प्रनृत्तैः क्वचिदुन्नदद्भिः
क्वचिच्च वृक्षाग्रनिषण्णकायैः ।
व्यालंबबर्हाभरणैर्मयूरैर्वनेषु संगीतमिव प्रवृत्तम् ॥३७॥

१६०. अगारके चूर्णके समूह जैसे वहुत रसीले फलोसे समृद्ध, भ्रमरो द्वारा पी जाती सी जामुनकी शाखायें सोह रही हैं ॥३०॥

१६१. विद्युत्‌की पताकाओंसे अलकृत, उठे गम्भीर महाशब्द-सहित, मेघोंके रूप रणोत्सुक वानरोंके रूप से दीख रहे हैं ॥३१॥

१६२. मार्ग-अनुगामी पर्वतीय वनका अनुसरण करनेवाला चल पडा मेघके शब्दोको सुनकर युद्ध-इच्छुक विरोधी नादकी शका युक्त मस्त गजेन्द्र लौटा ॥३२॥

१६३. कही भ्रमर समूहोंसे गाती हुई, कही नीलकण्ठोंसे नाचती हुई, कही गजेन्द्रोंसे मस्त सी अनेक आकारवाली वनावलियाँ दीख रही हैं ॥३३॥

१६४ कदम्ब-सर्ज-अर्जुन-कन्दलसे घनी-मधुर जलसे पूर्ण वनान्त भूमि, मोरोंके मत्त गीत नृत्योंसे मदिरालय समान प्रतीत होती है ॥३४॥

१६५ मुक्तासे चमकते सुनिर्मल सलिलको गिराते पत्रपुटोंमें लगे, इन्द्रके दिये जलको हर्पित हो खुले पखोवाले तृषित पक्षी पी रहे हैं ॥३५॥

१६६ भ्रमरोकी वीणाके मधुर आलापवाला, वानरोंके कथनरूपी कठ-तालवाला, मेघरूपी मृदगोंके नादोंसे वनोंमें सगीत सा होता प्रकट हो रहा है ॥३६॥

१६७ कही नृत्योंसे, कही उन्माद करनेसे और कही वृक्षो के छोरपर समूहसे बैठे, लटकते पिच्छरूपी आभरणोवाले मोरोंसे वनोंमें सगीत सा हो रहा है ॥३७॥

१६८ स्वनैर्घनाना प्लवगा प्रवुद्धा
विहाय निद्रा चिरसनिरुद्धाम् ।
अनेकरूपाकृतिवर्णनादा
नवाबुधाराभिहता नदति ॥३८॥

१६९ नद्य. समुद्वाहितचक्रवाकास्,
तटानि शीर्णान्य पवाहयित्वा ।
दृप्ता नवप्रावृतपूर्णभोगा
दृत स्वभर्तारमु पोपयति ॥३९॥

१७० नीलेपु नीला नववारिपूर्णा
मेघेपु मेघा प्रतिभाति सक्ता ।
दवाग्निदग्धेषु दवाग्निदग्धा
शैलेषु शैला इव बद्धमूला ॥४०॥

१७१ प्रमत्तसन्नादतिर्वाहिणानि सशक्रगोपाकुलशाद्वलानि ।
चरति नीपार्जुनवासितानि
गजा सुरम्याणि वनातराणि ॥४१॥

१७२ नवाबुधाराहतकेसराणि ध्रुव परिष्वज्य सरोरुहाणि ।
कदवपुष्पाणि सकेसराणि
नवानि हृष्टा भ्रमरा पिबति ॥४२॥

१७३ मत्ता गजेंद्रा मुदिता गवेंद्रा वनेषु विक्रातंतरा मृगेन्द्रा ।
रम्या नगेंद्रा विभृता नरेंद्रा
प्रक्रीडिता वारिधरै सुरेंद्र ॥४३॥

१७४ मेघा समुद्धूतसमुद्रनादा महाजलौघैर्गगनावलबा ।
नदीस्तटाकानि सरासि वापी
मंही च कृत्स्नाम पवाहयति ॥४४॥

१७५ वर्षप्रवेगा विपुला पतति प्रवान्ति वाता समुदीर्णवेगा ।
प्रणष्टकूला प्रवहति शीघ्र
नद्यो जलैर्विप्रतिपन्न मार्गा ॥४५॥

१६८ मेघोंके शब्दोंसे देरसे रोकी निद्राको छोडकर वानर जगे,
अनेक रूप, आकार, वर्ण तथा नादवाले (वह) नयी जलधारासे प्रताडित हो नाद कर रहे है ॥३८॥

१६९ चक्रवाकोको वहाती नदियाँ गिरे तटोको वहा ले जाती
नये वस्त्र तथा पूर्ण भोगसे आदृत (पत्नी सी) अपने पतिके पास जा रही हैं ॥३९॥

१७० नये जलसे भरे नीले मेघोमें ससक्त मेघ नीले से दीखते है।
वनाग्नि से जले पर्वतोमें वनाग्निसे दग्ध पर्वत जैसे जड वावे (खडे) हैं ॥४०॥

१७१. मस्त उठाये पिच्छवाले मोर, वीरवहुटीके समूहसे युक्त, तृणवाले,
नीम-अर्जुनसे सुवासित रमणीय वनोमें गज विचर रहे हैं ॥४१॥

१७२ ये भ्रमर हर्षित होकर नई जलधारासे ताडित केसरवाले कमलोको आलिंगन कर केसर-सहित कदम्बके नये पुष्पोको पी रहे हैं ॥४२॥

१७३. मस्त गजेन्द्र, मुदित वृषभ, वनमें अतिपराक्रमी सिंह,
रमणीय पर्वतराज, भरण किये नरेन्द्र, मेघोंसे खेलाये जाते सुरेन्द्र (से हैं) ॥४३॥

१७४ उठते समुद्रसे नादवाले, महाजलसमूहोंसे आकाश अवलम्बन करते मेघ नदियोको, तालावोको, सरोको, वापियोको और सारी पृथिवीको वहाये लिये जा रहे है ॥४४॥

१७५ वर्षाका वेग विपुल हो गिर रहा है, वायु वडे वेगसे चल रहे है,
जलसे मार्गको तोडफोडकर नदियाँ तेजी से वह रही है ॥४५॥

१७६ नरैर्नरेंद्रा इव पर्वतेंद्रा सुरेंद्रनीतैः पवनोपनीतैः ।
घनाम्बुकुंभैरभिषिच्यमाना
रूपश्रियं स्वामिव दर्शयंति ॥४६॥

१७७ घनोपगूढं गगनं न तारा न भास्करो दर्शनमभ्युपैति ।
नवैर्जलौघैर्धरणी वितप्ता
तमोविलिप्ता न दिशः प्रकाशाः ॥४७॥

१७८ महांति कूटानि महीधराणां
धाराविधौतान्यधिकं विभाति ।
महाप्रमाणैर्विपुलैः प्रपातैः
र्मुक्ताकलापैरिव लंबमानैः ॥४८॥

१७९ शैलोपलप्रस्खलमानवेगा शैलोत्तमानां विपुलाः प्रपाताः ।
गुहासु सन्नादितबर्हिणासु
हारा विकीर्यन्ति इवाव-भाति ॥४९॥

१८० शीघ्रप्रवेगा विपुलाः प्रपाता निर्धौतशृंगोपतला गिरीणाम् ।
मुक्ताकलापप्रतिमाः पतंतो महागुहोत्संगतलैर्ध्रियंते ॥५०॥

—किष्किन्धाकांडे सर्ग २८

६. मन्दोदरीविलापः —

१८१ दशग्रीवं हतं दृष्ट्वा रामेणाचिंत्यकर्मणा ।
पतिं मंदोदरी तत्र कृपणा पर्यदेवयत् ॥२॥

१८२ "ननु नाम महाबाहो, तव वैश्रवणानुज ।
क्रुद्धस्य प्रमुखे स्थातुं त्रस्यत्यपि पुरंदरः ॥३॥

१८३ ऋषयश्च महांतोऽपि गंधर्वाश्च यशस्विनः ।
ननु नाम तवोद्वेगाच्चारणाश्च दिशो गताः ॥४॥

१८४ स त्वं मानुषमात्रेण रामेणे युधि निर्जितः ।
न व्यपत्रपसे राजन्, किमिदं राक्षसेश्वर ॥५॥

१७६ नरोंसे नरेन्द्रकी तरह इन्द्र द्वारा लाये पवन से पास लाये पर्वत-राज, मेघके जलघटोंसे अभिषिक्त होते अपनी रूपशोभा दिखला रहे हैं ॥४६॥

१७७ घनसे आकाश ढका हुआ है, न तारा, न सूर्य दिखलाई देते हैं। नये जलसमूहसे धरणी तृप्त है, अन्धकारसे लिप्त दिशायें प्रकाशित नहीं हैं ॥४७॥

१७८. धारासे धुले पर्वतोंके बडे-बडे शिखर बहुत शोभा दे रहे हैं। (वह) भारी आकारके विपुल जलपातोंसे लटकते हुये मुक्तासमूहो जैसे दीखते हैं ॥४८॥

१७९ पत्थरोंसे गिरनेके वेगवाले उच्च शैलोंके विपुल प्रपात सुन्दर नाद करनेवाले मयूरोंवाली गुहाओंमें बिखरते हारसे प्रतीत होते हैं ॥४९॥

१८० शीघ्र वेगवाले विपुल जलप्रपात धुले पर्वतोंके शिखर-तल, से मुक्ता-समूह से गिरते महागुहाओंकी गोदोमें धारित होते हैं ॥५०॥

—किष्किन्धाकाण्ड सर्ग २८

६. मन्दोदरी-विलाप—

१८१ अचिंतनीय कर्मवाले राम द्वारा (अपने) पति दशग्रीव को निहत देख कर, अभागिनी मदोदरी वहा विलाप करने लगी ॥२॥—

१८२. "हे महाबाहु, कुबेरके छोटे भाई, क्या क्रुद्ध होने पर, तुम्हारे सामने इन्द्र भी खडा होनेमें डरता नही था ॥३॥

१८३. बडे ऋषि और यशस्वी गन्धर्व और सिद्ध भी क्या तुम्हारे उद्वेगसे दिशाओंमें नही भागे ॥४॥

१८४. सो तुम केवल मानुष रामसे युद्धमें हार गये। हे राजन्, राक्षसेश्वर, क्या इसके लिये तुम लज्जित नही होते ॥५॥

१८५ कथ त्रैलोक्यमाक्रम्य श्रिया वीर्येण चान्वितम्।
अविपह्य जघान त्वा मानुपो वनगोचर ॥६॥

१८६ मानुपाणामविपये चरत कामरूपिण ।
विनाशस्तव रामेण सयुगे नोपपद्यते ॥७॥

१८७ न चैतत्कर्म रामस्य श्रद्दधामि चमूमुखे।
सर्वत समुपेतस्य तव तेनाभिमर्षणम् ॥८॥

१८८ अथवा रामरूपेण कृतात स्वयमागत ।
माया तव विनाशाय विधायाप्रतितर्किताम् ॥९॥

१८९ अथवा वासवेन त्व धर्षितोऽसि महाबल।
वासवस्य तु का शक्तिस्त्वा द्रष्टुमपि सयुगे ॥१०॥

१९० यदैव नगरी लका दुष्प्रवेशा सुरैरपि ॥१७॥
प्रविष्टो हनुमान्वीर्यात्तदैव व्यथिता वयम्।
क्रियतामविरोधश्च राघवेणेति यन्मया ॥१८॥

१९१ उच्यमान न गृह्णासि तस्येय व्युष्टिरागता ।
अकस्माच्चाभिकामोऽसि सीता राक्षसपुगव ॥१९॥

१९२ ऐश्वर्यस्य विनाशाय देहस्य स्वजनस्य च।
अरुधत्या विशिप्टा ता रोहिण्याश्चापि दुर्मते ॥२०॥

१९३ सीता घर्षयता मान्या त्वया ह्यसदृश कृतम् ।
वसुधाया हि वसुधा श्रिया श्री भर्तृवत्सलाम् ॥२१॥

१९४ सीता सर्वानवद्याङ्गीमरण्ये विजने शुभाम्।
आनयित्वा तु ता दीना छद्मनात्मस्वदूषणम् ॥२२॥

१९५ अप्राप्य त चैव काम मैथिलीसगमे कृतम् ।
पतिव्रतायास्तपसा नून दग्धोऽसि मे प्रभो ॥२३॥

१८५ त्रैलोक्यको आक्रान्त कर लक्ष्मी और वलके घनी,
दुर्दम्य तुम्हें (इस) वन मानुषने मारा ॥६॥

१८६ मानुषोंके अप्राप्य स्थानमें स्वेन्छापूर्वक विचरण करनेवाले,
युद्धमें राम द्वारा तुम्हारा विनाश उचित नही ॥७॥

१८७ सेनाके सामने मैं (कहती हू—) यह रामका काम है, इसपर मैं विश्वास नही करती, (कि) सव तरहसे सपन्न तुम्हारा उनके द्वारा दमन (हुआ) ॥८॥

१८८ अथवा रामके रूपमें स्वय मृत्यु ही तुम्हारे विनाशके
लिये अतर्कित मायाको धारण कर आई ॥९॥

१८९ अथवा हे महावल, इन्द्रने तुम्हें दवाया,
लेकिन युद्धमें तुम्हारी ओर देखनेकी भी इन्द्रमें कहा शक्ति है॥१०॥

१९० सुरो द्वारा भी दुष्प्रवेशा लकानगरीमें जभी ॥१७॥
अपने पराक्रमसे हनूमान् प्रविष्ट हुआ, तभी हम डर गये।
'राघवके साथ विरोघ न करो' मेरे इस ॥१८॥

१९१. कथनको नही माना, इसीका यह परिणाम हुआ।
और हे राक्षस-पुगव अकस्मात् तुमने सीताकी कामना की ॥१९॥

१९२ यह तो ऐश्वर्य, देह और स्वजनके विनाशके लिये हुआ।
अरुवती और रोहिणीसे भी वढकर उस ॥२०॥

१९३ माननीया सीताको वेइज्जत करते हे दुर्मति, तुमने अनुचित किया।
वसुवाकी वसुवा, श्रीकी भी श्री पतिभक्ता ॥२१॥

१९४ सारे निर्दोष अगोवाली शुभा दीना सीताको विजन वनमें।
घोखेसे लाकर (तुमने) अपनेको दूषित किया ॥२२॥

१९५ अपनेको दूषित करनेवाली उस कामनाको मैथिलीके समागम मे अपना कर, मेरे प्रभु, तुम जरूर पतिव्रताकी तपस्यासे दग्ध हुए ॥२३॥

१९६ तदेव यन्न दग्धस्त्व धर्षयस्तनुमध्यमाम् ।
देवा बिभ्यति ते सर्वे सेन्द्रा साग्निपुरोगमा ॥२४॥

१९७ अवश्यमेव लभते फल पापस्य कर्मण ।
भर्तु पर्यागते काले कर्ता नास्त्यत्र सशय ॥२५॥

१९८ शुभकृच्छुभमाप्नोति पापकृत्पापमश्नुते ।
विभीषण सुख प्राप्तस्त्व प्राप्त पापमीदृशम् ॥२६॥

१९९ सत्यन्या प्रमदास्तुभ्य रूपेणाभ्यधिकास्तत ।
अनगवशमापन्नस्त्व तु मोहान्न बुध्यसे ॥२७॥

२०० सर्वदा सर्वभूताना नास्ति मृत्युरलक्षण ।
तव तद्वदय मृत्युर्मैथिलीकृतलक्षण ॥२९॥

२०१ सीतानिमित्तजो मृत्युस्त्वया दूरादुपाहृत ।
मैथिली सह रामेण विशोका विहरिष्यति ॥३०॥

२०२ अल्पपुण्या त्वह घोरे पतिता शोकसागरे ।
कैलासे मदरे मेरौ तथा चैत्ररथे वने ॥३१॥

२०३ देवोद्यानेषु सर्वेषु विहृत्य सहिता त्वया ।
विमानेनानुरूपेण या याम्यतुलया श्रिया ॥३२॥

२०४ पश्यती विविधान्देशास्तास्ताश्चित्रस्रगबरा ।
भ्रशिता कामभोगेभ्य सास्मि वीर, वधात्तव ॥३३॥

२०५ सैवान्येवास्मि सवृत्ता धिग्राज्ञा चचला श्रियम् ।
हा राजन, सुकुमार ते सुभ्रसुत्वक्समुन्नसम् ॥३४॥

२०६ कातिश्रीद्युतिभिस्तुल्यमिन्दुपद्मदिवाकरै ।
किरीटकूटोज्ज्वलित ताम्रास्य दीप्तकुडलम् ॥३५॥

२०७ मदव्याकुललोलाक्ष भूत्वा यत्पानभूमिषु ।
विविधस्रग्धर चारु वल्गुस्मितकथ शुभम् ॥३६॥

१९६ उसी समय, पतली कमरवाली (सीता) को बेइज्जत करके तुम जो नही दग्ध हुये, सो इसीलिए, कि इन्द्र और अग्नि-सहित सारे देवता तुमसे डरते थे ॥२४॥

१९७ हे स्वामी, पाप कर्मका फल समय आनेपर कर्ताको अवश्य ही मिलता है, इसमें सशय नहीं ॥२५॥

१९८ शुभ करनेवाला शुभको पाता है, पाप करनेवाला पापको पाता है। विभीषणने सुख पाया और तुमने पाप पाया ॥२६॥

१९९. रूपमें अधिक (सुदरी) दूसरी स्त्रिया तुम्हारे लिये थी। किंतु कामदेवके वशमें पडे तुमने मोहके मारे नही समझा ॥२७॥

२००. सारे जीवोंके लिए मृत्यु कभी विना कारण नही आती। उसी तरह तुम्हारे लिये यह मृत्यु मैथिलीके कारण हुई ॥२९॥

२०१. सीताके कारण उत्पन्न मृत्युको तुम दूरसे लाये। अव वह मैथिली रामके साथ निर्द्वद्व विहार करेगी ॥३०॥

२०२. मैं पुण्यहीना तो घोर शोकसागरमें गिरी। कैलासपर, मन्दरपर और चैत्ररथ वनमें ॥३१॥

२०३. देवताओंके सारे उद्यानोमें तुम्हारे साथ विहार करने के लिये, जो मैं अतुलश्रीके साथ अनुकूल विमान द्वारा जाती थी ॥३२॥

२०४ विचित्र माला और वस्त्र धारे उन-उन विविध देशोको देखती थी। हे वीर, सो मै तुम्हारे वधके कारण काम-भोगोसे वचित हो गई॥३३॥

२०५ वही मै अव दूसरी हो गई। चचला राजलक्ष्मीको धिक्कार। हा राजन्, तुम्हारा शरीर सुकुमार, भौं-चर्म-नासिका से सुदर था॥३४॥

२०६ कान्ति-शोभा-द्युतिमें चन्द्र-पद्म-सूर्यके तुल्य, किरीट मुकुटके शिखरसे उज्ज्वल अरुण मुख, मुक्त कुडल सहित ॥३५॥

२०७ जो पानगोष्ठियोमें मदसे आकुल चचल आखोयुक्त, विविध मालाओको धारण करनेवाला चारु मधुर मुस्कान कथनयुक्त शुभ था ॥३६॥

२०८ तदेवाद्य तवैव हि वक्त्रं न भ्राजते प्रभो।
रामसायकनिर्भिन्नं रक्तं रुधिरविस्रवैं ॥३७॥

२०९ विशीर्णमेदोमस्तिष्कं रुक्षं स्पदनरेणुभिः।
हा पश्चिमा मे संप्राप्ता दशा वैधव्यदायिनी ॥३८॥

२१०. या मयासीन्न संबुद्धा कदाचिदपि मंदया।
पिता दानवराजो मे भर्ता मे राक्षसेश्वरः ॥३९॥
पुत्रो मे शक्रनिर्जेता इत्यहं गर्विता भृशम्।

—युद्धकांडे सर्ग ११

२०८　हे प्रभु, वही तुम्हारा मुख आज नही चमक रहा है।
　　रामके बाणोंसे क्षत-विक्षत खूनके बहनेसे लाल ॥३७॥

२०९　चर्बी निकली मस्तिष्कवाला हो, रथकी धूलियोंसे रूखा है।
　　हा, वैधव्य देनेवाली मेरी अतिम दशा प्राप्त हो गई ॥३८॥

२१०　जिसे मै मन्दमतिने कभी नही सोचा था।
　　मेरा पिता दानवोका राजा, मेरा पति राक्षसोका ईश्वर ॥३९॥
　　मेरा पुत्र इन्द्रका जीतनेवाला, यह सोचकर मै बहुत गर्व करती थी।

—युद्धकाड सर्ग ११

भाग ३

प्राकृत-काल

(१–५५० ई०)

प्राय. छ शताब्दियोके धीरे-धीरे परिवर्तनके वाद ईसवी-सन् के आरम्भ-के साथ हमारी भाषायें एक नया रूप लेती है, जिसे हम प्राकृत कहते है। पालियो और पोछे अपभ्रशोका अनेक भाषाओ का सामूहिक नाम होना सभी नहीं स्वीकार करते, किन्तु प्राकृतके वारेमें यह वात नहीं है। आधे दर्जन प्राकृतोका उल्लेख हमारे प्राचीन ग्रथकारोने भी किया है, और वह उनसे भी अधिक रही होगी, इसमें सन्देह नहीं। ग्रथकारोने सिर्फ उन्हीं प्राकृतोका उल्लेख किया या उनके व्याकरण वनाये, जिनका साहित्य लिपिवद्ध हो गया था। यद्यपि शुंग-कालमें वैदिक-युगके पुन· लौटानेकी कोशिश की गई थी, जिसका सुफल "महाभारत" और "रामायण" है, किन्तु लोक-भाषायें उपेक्षित नहीं की गई थीं। गुप्त-कालके आनेसे पहले तक प्राकृतका अभिलेखोमें उपयोग यही वतलाता है, कि राजकाजमें प्राकृतोका काफी स्थान था। ब्राह्मण-भिन्नधर्म तो उसे अपनी धार्मिक भाषा भी मानते थे। इसी कारण जैन आगम प्राकृतमें सुरक्षित हुये। कुछ वौद्ध निकाय (सम्प्रदाय) भी अपने पिटकोंको प्राकृतमें पढ़ते थे। दुर्भाग्य-से उनका कोई अवशेष नहीं मिलता, किन्तु चीनी पर्यटकोंने उल्लेख किया है।

प्राकृत-काल संस्कृत-कविताका सुवर्ण-युग है। इस सुवर्ण-युग के थोडे ही से प्राकृत छींटे "गाथासप्तशती", "सेतुवध" आदि के रूपमें हमारे ऊपर पडे। इस युगकी सस्कृत कविताका आरम्भ अश्वघोषसे, चरम उत्कर्ष कालिदाससे और अन्त भारविसे होता है। आरम्भिक कालके कवि अश्वघोष, भास, आर्यशूरकी वाणी कितनी ही जगहों पर अनगढ़ सी मालूम होती है, लेकिन उसका स्वाभाविक सौंदर्य अपना अलग आकर्षण रखता है। इस अनगढ़पनको कालिदासने दूर किया, साथ ही उसकी स्वाभाविकताको वहुत हद तक कायम रक्खा। प्राकृत-कालके बाद के काव्योको जिस तरह अस्वाभाविक और जटिल होते हम देखते है, उससे प्रश्न होता है, कि प्राकृत-कालमें वैसा क्यों नहीं हुआ? इसका एक कारण लोक-भाषा भी थी। प्राकृत अपने उच्चारणमें भारी भेद रखते हुये भी व्याकरणमें

संस्कृत से बहुत नजदीक थी। कोई प्राकृतभाषी यदि संस्कृत के उच्चारणोका बोध रखता, तो उसे संस्कृतके समझने में कोई दिक्कत नहीं थी। दोनोके सुवन्त-तिङन्तके रूप एक तरह से चलते थे। इस कालके कवियोको यह ध्यान रखना था, कि हमारी कविता थोड़े से वैयाकरणो या अपनी गोष्ठीवाले लोगो तक ही सीमित न रहे, बल्कि उसकी कदरदानी करनेवाले समाजके अधिकसे अधिक लोग हो। इसके लिये जरूरी था, कि व्याकरण और भाषाके अपरिचित नियमों और अप्रचलित प्रयोगोंको लानेकी कोशिश न की जाये। प्राकृत कविता स्वय भी शातावहन-कालमें ऊचा स्थान प्राप्त कर चुकी थी, इसलिये संस्कृत-के कवि उसकी तरफ नाक-भौं नहीं सिकोड सकते थे। दरबारी और कदर-दान भी अभी अपरिचित और अप्रयुक्त शब्दोंको देखकर वाह-वाह नहीं करते थे, इसलिये भी कवियो पर अकुश था। लेकिन, इस कालके अन्तमें भारविने इस तरफ कदम बढ़ा दिया था। एक बार कदम बढ़ जाने पर अंकुश रखना मुश्किल था, और इसका अन्त श्रीहर्षके साथ होना ही था।

इस कालमें नाटक और पद्य-काव्य रचे गये। भास और आर्यशूरके समकालीन रुद्रदामा के गिरनारवाले अभिलेखसे पता लगता है, कि गद्य-काव्यकी ओर भी अच्छी प्रवृत्ति हो चुकी थी। आर्यशूरकी कृति तो वस्तुतः चम्पूकी तरह गद्य-पद्य-मिश्रित है।

१६. अश्वघोष (५० ई० पू०)

पालियोंके बाद ईसवी सन्‌के आरंभके साथ हम प्राकृतकालमें प्रवेश करते हैं। इसी समय हम इतिहासके अनिश्चित कालसे निश्चित कालमें प्रवेश करते हैं। संस्कृत (वैदिक) और पालियोंके बाद प्राकृत, भाषा-साहित्यमें समृद्ध सामग्रीके साथ ही अवतीर्ण नहीं होती, बल्कि इस समय अब लेखनके साधनों—स्याही, ताल-पत्र या भोजपत्र— का अधिक इस्तेमाल होने लगा, तथा शताब्दियोंसे कंठस्थ करके लाये गये ग्रंथोंको लिपिबद्ध करनेके साथ नये ग्रंथोंको भी पत्रपर उतारनेका रवाज चल

१. सौन्दरनन्द—

(१) गमन-प्रार्थना

१. स चक्रवाक्येव हि चक्रवाकस्,
ताया समेत प्रियया प्रियार्हः।
नाचिन्तयद्वैश्रवण न शक्र
तत्स्थानहेतो कुत एव धर्मम् ॥२॥

२ लक्ष्म्या च रूपेण च सुन्दरीति
स्तम्भेन गर्वेण च मानिनीति।
दीप्त्या च मानेन च भामिनीति
यातो बभाषे त्रिविधेन नाम्ना ॥३॥

३ सा हासहंसा नयनद्विरेफा पीनस्तनात्युन्नतपद्मकोशा।
भूयो बभासे स्वकुलोदितेन
स्त्रीपद्मिनी नन्ददिवाकरेण ॥४॥

४. रूपेण चात्यन्तमनोहरेण रूपानुरूपेण च चेष्टितेन।
मनुष्यलोके हि तदा बभूव
सा सुन्दरी स्त्रीषु नरेषु नन्द ॥५॥

१६. अश्वघोष (५० ई० पू०)

पड़ा। इस युगके प्रथम कवि अश्वघोष हैं। वह दार्शनिक और कवि हैं। कवितामें भी वह महाकाव्य और नाटकोंके रचयिता हैं। उनका नाटक "राष्ट्रपाल", "सारिपुत्र प्रकरण" से भी अधिक सम्मानित था, यह "वाद-न्याय"में धर्मकीर्ति (६०० ई०) के उल्लेखसे ज्ञात है। अश्वघोष बौद्ध-जगत्के लिए अतिसुपरिचित हैं। उनके कालके लिए भी कोई सन्देह नहीं। वह कनिष्कके समकालीन थे, जिनका चलाया शक-सवत् आज भी प्रचलित है। उनके "सौंदरनन्द" और "बुद्धचरित" से यहा कितने ही अंश दिये गए हैं।

१. सौन्दरनन्द—

(१) पत्नीसे अनुमति माँगना

१ चक्रवाकी सहित चक्रवाकी तरह उस प्रियासे युक्त प्रियतमाके योग्य नन्द न वैश्रवणको न इन्द्रको (न) उनके स्थानकी (प्राप्ति के) लिये सोचता, धर्मकी तो (बात ही) क्या ? ॥२॥

२ श्री और रूपके कारण सुदरी, हठ और गर्वके कारण मानिनी। तेज और मानके कारण भामिनी, इस प्रकार तीन नामोंसे वह (नंदा) पुकारी जाती थी ॥३॥

३ वह हासमें हसिनी, नयनमें भ्रमरी, स्थूल स्तनो से उन्नत पद्मकोश-वाली, वह नारी रूपी पद्मिनी अपने कुलमें उगे नंदरूपी दिवाकरके साथ और अधिक भासित होती थी ॥४॥

४ तव अत्यत मनोहर रूपके अनुसार चेष्टाके कारण, मनुष्य लोककी स्त्रियोमें वह सुदरी थी, नरोमें नंद सुन्दर था ॥५॥

१६. अश्वघोष (५० ई० पू०)

पालियोंके बाद ईसवी सन्‌के आरंभके साथ हम प्राकृतकालमें प्र
करते हैं। इसी समय हम इतिहासके अनिश्चित कालसे निश्चित क
प्रवेश करते हैं। संस्कृत (वैदिक) और पालियोंके बाद प्राकृत, भ
साहित्यमें समृद्ध सामग्रीके साथ ही अवतीर्ण नहीं होती, बल्कि इस
अब लेखनके साधनों—स्याही, ताल-पत्र या भोजपत्र— का ह
इस्तेमाल होने लगा, तथा शताब्दियोंसे कंठस्थ करके लाये गये ग्र
लिपिबद्ध करनेके साथ नये ग्रंथोंको भी पत्रपर उतारनेका रवाज

१. सौन्दरनन्द—

(१) गमन-प्रार्थना

१ स चक्रवाक्येव हि चक्रवाकस्,
तया समेत प्रियया प्रिय
नाचिन्तयद्वैश्रवणं न शक्र
तत्स्थानहेतो कुत एव धर्मम्

२ लक्ष्म्या च रूपेण च सुन्दरीति
स्तम्भेन गर्वेण च मानि
दीप्त्या च मानेन च भामिनीति
यातो बभाषे त्रिविधेन नाम्न

३ सा हासहंसा नयनद्विरेफा पीनस्तनात्युन्नतपद्
भूयो बभासे स्वकुलोदितेन
स्त्रीपद्मिनी नन्ददिवाक

४ रूपेण चात्यन्तमनोहरेण रूपानुरूपेण च
मनुष्यलोके हि तदा बभूव
सा सुन्दरी स्त्रीषु नरेषु

५ वह नदनवनमें विचरनेवाली देवता थी और आनदजनक कुलमें नद, भूतोंके धाताने मनुष्योको अतिक्रमण कर देवताओको न प्राप्त कर दोनोको वनाया था ॥६॥

६ उस सुदरीको अगर नद न पाता, या वह तिरछी भौहोवाली उसे न सेवती, तो निश्चय एक दूसरेसे विहीन रात्रि और चन्द्रमाकी तरह दोनो विकल हो न शोभते ॥७॥

७ कामदेव और रतिकी तरह लक्ष्य हो प्रमोद और नान्दीसे नीड रूपी, हर्प और तुष्टिके मानो पात्र, मदाध होकर दोनो साथ रमण करते ॥८॥

८ एक दूसरेके देखनेमें लगी आखोवाली, एक दूसरेसे वात करनेमें आसक्त-चित्तवाली, एक दूसरेके आलिंगनसे मिटे अगरागवाली, वह जोडी एक दूसरेको खीचती थी ॥९॥

९ पर्वतके झरने पर अवस्थित किन्नर-किन्नरीकी तरह भावसे अनुरक्त वे दोनो, रूप और श्रीसे एक दूसरेको चुनौती देते क्रीडा करते शोभा देते थे ॥१०॥

१०. वह जोडी परस्पर प्रेमको वढाते रमण करती, थकावटमें परस्पर विनोद द्वारा लीलापूर्वक एक दूसरेको और मस्त करती थी ॥११॥

११ तव उसने सजानेके लिये नही, वल्कि सेवा करनेकी इच्छासे उस प्रियाको विभूपित किया (जो) अपने रूपोंसे ही विभूपित वह विभूपणो का भी भूपण थी ॥१२॥

१२. तव इसके हाथमें दर्पण देकर वह कान्तसे वोली "मेरे सामने इसे पकडो, जव तक मैं तिलक लगा लू" और उसने उसे पकड़ा ॥१३॥

५ सा देवता नन्दनचारिणीव कुलस्य नन्दीजननश्च नन्द ।
अतीत्य मर्त्याननुपेत्य देवान्
सृष्टावभूतामिव भूत-धात्रा ॥६॥

६ ता सुन्दरी चेन्न लभेत नन्द सा वा निषेवेत न त नतभ्रू ।
द्वन्द्व ध्रुव तद्विकल न शोभे
उतान्योन्यहीनाविव रात्रिचन्द्रौ ॥७॥

७ कन्दर्परत्योरिव लक्ष्यभूत प्रमोदनान्द्योरिव नीडभूतम् ।
प्रहर्षतुष्ट्योरिव पात्रभूत
द्वन्द्व सहारस्त मदान्धभूतम् ॥८॥

८ परस्परोद्वीक्षणतत्पराक्ष परस्परव्याहृतसक्तचित्तम् ।
परस्पराश्लेषहृताङ्गराग परस्पर तन्मिथुन जहार ॥९॥

९ भावानुरक्तौ गिरिनिर्झरस्थौ
तौ किनरीकिंपुरुषाविवोभौ ।
चिक्रीडतुश्चाभिविरेजतुश्च
रूपश्रियान्योन्यमिवाक्षिपन्तौ ॥१०॥

१० अन्योन्यसरागविवर्धनेन तद्द्वन्द्वमन्योन्यमरीरमच्च ।
क्लमान्तरेऽन्योन्यविनोदनेन
सलीलमन्योन्यममीमदच्च ॥११॥

११ विभूषयामास तत प्रिया स
सिषेविषुस्ता न मृजावहर्थम् ।
स्वेनैव रूपेण विभूषिता हि
विभूषणानामपि भूषण सा ॥१२॥

१२ दत्वाथ सा दर्पणमस्य हस्ते "ममाग्रतो धारय तावदेनम् ।
विशेषक यावदह करोमी"
त्युवाच कान्त स च त बभार ॥१३॥

५ वह नदनवनमें विचरनेवाली देवता थी और आनदजनक कुलमें नद, भूतोंके घाताने मनुष्योको अतिक्रमण कर देवताओको न प्राप्त कर दोनोको वनाया था ॥६॥

६ उस सुदरीको अगर नद न पाता, या वह तिरछी भौहोवाली उसे न सेवती, तो निश्चय एक दूसरेसे विहीन रात्रि और चन्द्रमाकी तरह दोनो विकल हो न शोभते ॥७॥

७ कामदेव और रतिकी तरह लक्ष्य हो प्रमोद और नान्दीसे नीड रूपी, हर्ष और तुष्टिके मानो पात्र, मदाध होकर दोनो साथ रमण करते ॥८॥

८ एक दूसरेके देखनेमें लगी आखोवाली, एक दूसरेसे वात करनेमें आसक्त-चित्तवाली, एक दूसरेके आलिंगनसे मिटे अगरागवाली, वह जोडी एक दूसरेको खीचती थी ॥९॥

९ पर्वतके झरने पर अवस्थित किन्नर-किन्नरीकी तरह भावसे अनुरक्त वे दोनो, रुप और श्रीसे एक दूसरेको चुनौती देते क्रीड़ा करते शोभा देते थे ॥१०॥

१०. वह जोडी परस्पर प्रेमको वढाते रमण करती, थकावटमें परस्पर विनोद द्वारा लीलापूर्वक एक दूसरेको और मस्त करती थी ॥११॥

११ तव उसने सजानेके लिये नही, वल्कि सेवा करनेकी इच्छासे उस प्रियाको विभूपित किया (जो) अपने रूपोंसे ही विभूपित वह विभूपणो का भी भूपण थी ॥१२॥

१२. तव इसके हाथमें दर्पण देकर वह कान्तसे वोली "मेरे सामने इसे पकडो, जव तक मैं तिलक लगा लू" और उसने उसे पकडा ॥१३॥

१३ पत्युस्ततो दर्पणसक्तपाणेर्मुहुर्मुहुर्वक्त्रमवेक्षमाणा।
तमालपत्रार्द्रतले कपोले समापयामास विशेपक तत् ।२०।

१४ तस्या मुखतत्सतमालपत्र ताम्राधरोष्ठ चिकुरायताक्षम्।
रक्ताधिकाग्र पतितद्विरेफ
सशैवल पद्‌नमिवाव भासे ॥२१॥

१५ विमानकल्पे स विमानगर्भे ततस्तथा चैव ननन्द नन्द ।
तथागतश्चागतभैक्षकालो
भैक्षाय तस्य प्रविवेश वेश्म ॥२४॥

१६. कृत्वाजलि मूर्धनि पद्‌मकल्प
तत स कान्ता गमन ययाचे।
"कर्तु गमिष्यामि गुरौ प्रणाम
मामभ्यनुज्ञातुमिहा र्हसीति" ॥३२॥
—सर्ग: ४

(२) नन्द-प्रव्रज्या

१७ ततो हृते भर्तरि गौरवेण प्रीतौ हृतायामरतौ कृतायाम्।
तत्रैव हर्म्योपरि वर्तमाना न सुन्दरी सैव तदा वभासे ॥१॥

१८ सा भर्तुरभ्यागमनप्रतीक्षा गवाक्षमाक्रम्य पयोधराभ्याम्।
द्वारोन्मुखी हर्म्यतलाल्ललम्बे
मुखेन तिर्यङ्नतकुण्डलेन ॥२॥

१९ विलम्बहारा चलयोक्त्रका सा
तस्माद्विमानाद्विनता चकाशे।
तप क्षयादप्सरसा वरेव च्युत
विमानात्प्रियमीक्ष माणा ॥३॥

२० सा खेदसस्विन्नललाटकेन नि श्वासनिष्पीतविशेपकेण।
चिन्ताचलाक्षेण मुखेन तस्थौ भर्तारमन्यत्र विशकमाना ॥४॥

१३ तव दर्पणमें लगे हाथवाले पतिके मुखको बार-बार देखती हुई, तमाल-पत्र जैसे गीले तलवाले कपोलपर उसने तिलक लगाया ॥२०॥

१४ उसका वह तमालपत्र-सहित लाल ओष्ठ, चचल-विशाल आखें, अधिक-लाल-अग्रभाग-गिरते-भ्रमरोवाला मुख शैवल-युक्त पद्म सा भासित हुआ ॥२१॥

१५ तव देव-विमान समान प्रासादके भीतर उसके साथ नद आनद करने लगा। भिक्षाका काल आने पर (वुद्ध) उसके घरमें प्रविष्ट हुए ॥२४॥

१६ तव पद्म-अजलिको सिरपर करके उसने पत्नीसे जानेकी प्रार्थना की "मैं गुरुको प्रणाम करनके लिये जाऊगा, मुझे आज्ञा दो" ॥३२॥

—सर्ग ४

(२) नन्दका संन्यास

१७ तव पतिके हर लिये जानेपर गौरवके कारण प्रीतिके हर जाने तथा उदासीन होने पर, वही महलके ऊपर विद्यमान वह सुदरी शोभित नहीं हुई ॥१॥

१८ वह पतिके आगमनकी प्रतीक्षिका हो दोनो स्तनोको जगलेपर रखकर, टेढे लटके कुडलोवाले वदनसे द्वारकी तरफ मुख किये महलपर झुकी ॥२॥

१९ लटकते हारो चचल जूडेवाली झुकी सी वह उस महलपर प्रकाशित हुई, मानो श्रेष्ठ रमणी तपके क्षय होनेसे अप्सराओंके विमानोंसे गिरे प्रियको देख रही है ॥३॥

२० स्वेदसे भीगे ललाट, स्वाससे मिटे तिलकवाले, चितासे चचल आखो वाले मुखसे वह पतिके अन्यत्र होनेकी शका करती खड़ी रही ॥४॥

२१ ततश्चिरस्थानपरिश्रमेण स्थितैव पर्यङ्कतले पपात।
तिर्यक्च शिश्ये प्रविकीर्णहारा
सपादुकैकार्धविलम्ब पादा ॥५॥

२२ अथात्र काचित्प्रमदा सबाष्पा
ता दु खिता द्रष्टुमनी प्समाना।
प्रासादसोपानतलप्रणाद
चकार पद्भ्या सहसा रुदन्ती ॥६॥

२३ तस्याश्च सोपानतलप्रणाद श्रुत्वैव तूर्ण पुनरुत्पपात।
प्रीत्या प्रसक्तैव च सजहर्ष
प्रियोपयान परिशकमाना ॥७॥

२४ तामगना प्रेक्ष्य च विप्रलब्धा नि श्वस्य भूय शयन प्रपेदे।
विवर्णवक्त्रा न रराज चाशु
विवर्णचन्द्रेव हिमागमे द्यौ ॥९॥

२५ तस्या मुख पद्मसपत्नभूत पाणौ स्थित पल्लवरागताम्रे।
छायामयस्याम्भसि पकजस्य
वभौ नत पद्ममिवो परिष्टात् ॥११॥

२६ सा स्त्रीस्वभावेन विचिन्त्य तत्तद्
दृष्टानुरागेऽभिमुखेऽपि पत्यौ।
धर्माश्रिते तत्त्वमविन्दमाना
संकल्प्य तत्तद्विललाप तत्तत् ॥१२॥

२७ "एष्याम्यनाश्यानविशेषकाया
त्वयीति कृत्वा मयि ता प्रतिज्ञाम्।
कस्मान्नु हेतोर्दयितप्रतिज्ञ
सोऽद्य प्रियो मे वितथ प्रतिज्ञ ॥१३॥

२८ रतिप्रियस्य प्रियवर्तिनो मे प्रियस्य नून हृदय विरक्तम्।
तथापि रागो यदि तस्य ही स्यान्
मच्चित्तरक्षी न स नागत स्यात् ॥१५॥

२१ तब देर तक खडे रहने की थकावट से खडी वडी पलगके ऊपर गिर पडी। (और) विखरे हारोवाली जूतियो सहित पैरको आधा लटकाये तिरछी लेट गई ॥५॥

२२ तब यहा आसू बहाती उस दु खिताको देखनेकी न इच्छा करती किसी स्त्रीने रोते हुये एकाएक पैरोंसे महलकी सीढियोके ऊपर आवाज की ॥६॥

२३ और उसके सीढीके ऊपर की आहट सुनते ही वह जल्दी फिर उठ गई, प्रियके आनेकी शका करती, खुशीमें विभोर-सी वह हर्षित हुई ॥७॥

२४ उस स्त्रीको देख, धोखा खा सास लेती वह फिर शयनपर जा पडी। फीके मुखवाली वह हिमकालके आकाशमें फीके चन्द्रकी तरह शीघ्र शोभित नही हुई ॥९॥

२५ पद्मकी ईर्ष्याका पात्र उसका मुख, पल्लवके रगसे लाल हाथमें स्थित, जलमें छायारूप ऊपरसे झुके हुये पद्मकी तरह नही शोभित हुआ ॥११॥

२६. स्त्री स्वभावसे उन-उन देखे हुये अनुरागवाले सामने (स्थितसे) पतिके विषयमें सोचती हुई, धर्म-आश्रित तत्वको न जानकर उस-उसकी कल्पना करती वह विलाप करने लगी ॥१२॥

२७ "तिलकके मलिन होनेसे पहले ही तेरे पास मैं आ जाऊगा" यह प्रतिज्ञा करके सो किस कारण प्रियप्रतिज्ञा करनेवाले तुम आज मुझसे झूठी प्रतिज्ञावाले हुये ॥१३॥

२८ रति-प्रिय प्रिय करनेवाले मेरे प्रियका हृदय निश्चय विरक्त हो गया। तो भी यदि उनको प्रेम होता, तो मेरा चित्त रखने के लिये वह आये विना न रहते ॥१५॥

२९ सेवार्थमादर्शनमन्यचित्तो विभूषयन्त्या मम धारयित्वा।
विभर्ति सोऽन्यस्य जनस्य त चे
न्नमोऽस्तु तस्मै चलसौ हृदाय ॥१८॥

३० नेच्छन्ति या शोकमवाप्तुमेव
श्रद्धातुमर्हन्ति न ता नराणाम्" ॥१९॥

३१ स तु त्वदर्थं गृहवासमीप्सन्
जिजीविषुस्त्वत्परितो पहेतो ।
भ्रात्रा किलार्येण तथागतेन
प्रव्राजितो नेत्रजला द्रवक्त्र ॥२३॥

३२ श्रुत्वा ततो भर्तरि ता प्रवृत्ति सवेपथु सा सहसोत्पापात।
प्रगृह्य बाहू विरुराव चोच्चै
र्हृदीव दिग्धाभिहता करेणु ॥२४॥

३३. सा रोदनारोषितरक्तदृष्टि.
सतापसक्षोभितगात्र यष्टिः।
पपात शीर्णाकुलहारयष्टि
फलातिभारादिव चूत यष्टि ॥२५॥

३४ सचिन्त्य सचिन्त्य गुणाश्च भर्तु
र्दीर्घं निशश्वास तताम चैव।
विभूषणश्रीनिहितप्रकोष्ठे ताम्रे
कराग्रे च विनिर्दुधाव ॥२७॥

३५ "न भूषणार्थो मम सप्रती"ति सा दिक्षु चिक्षेप विभूषणानि।
निर्भूषणा सा पतिता चकाशे
विशीर्णपुष्पस्तवका लतेव ॥२८॥

३६. "धृत प्रियेणायमभून्ममे"ति रुक्मत्सरु दर्पणमालिलिंगे।
यत्नाच्च विन्यस्ततमालपत्रौ
रुष्टेव धृष्ट प्रममार्ज गण्डौ ॥२९॥

२९ शृंगार करती अन्यत्र चित्त हो मेरी सेवाके लिये दर्पण धारण करके, यदि वह अन्य जनके लिये धारण किये थे, तो अस्थिर स्नेहवाले उन्हें नमस्कार है ॥१८॥

३० जो (नारी) ऐसे शोकको पानेकी इच्छा नही रखती, वह पुरुषो पर विश्वास नही कर सकती। कहां मेरे प्रति उनकी वह पहलेकी अनुरक्ति और कहा यह क्षणभरमें साधारण जनकी तरह त्यागना" ॥१९॥

३१ वे तो तेरे सतोपके लिये तेरे वास्ते गृहवासकी इच्छा करते जीना चाहते थे। पर (उनके) भाई आर्य तथागतने आसू-भीगे-मुखवाले उन्हें साधु बना दिया" ॥२३॥

३२ तव पतिके सम्बन्धमें इस समाचारको सुनकर वह कापती हुई एकाएक उछल पडी, और हृदयमें विषाक्त वाणसे बिंधी हथिनीकी तरह दोनो वाहोको पकडकर जोरसे रोने लगी ॥२४॥

३३ रोनेसे लाल हुई आखोवाली सतापसे क्षुब्ध शरीरवाली, बिखरे व्याकुल हारवाली वह फलके अत्यन्त भारके कारण आम वृक्षकी तरह गिर पडी ॥२५॥

३४ पतिके गुणोंको सोच-सोचकर वह लम्बी सास लेते मूर्छित हो, भूषणकी शोभाके आधार हाथो और लाल हथेलियोको कपाने लगी ॥२७॥

३५ "मुझे अब आभूषणोंसे प्रयोजन नही" यह सोच उसने आभूषणोको चारो ओर फेंक दिया। विना भूषणकी पडी हुई वह बिखरे फूलके गुच्छोवाली लताकी तरह मालूम होने लगी ॥२८॥

३६ "मेरे प्रियने इसे पकडा था" यह सोच सोनेके मियानवाले दर्पणको आलिंगन करने लगी और प्रयत्नसे लगाये तमालपत्रवाले कपोलको रुष्ट सी हो (उसने) जोरसे पोछ दिया ॥२९॥

३७ सा चक्रवाकीव भृश चुकूज श्येनाग्रपक्षक्षतचक्रवाका।
विस्पर्धमानेव विमानसस्थै
पारावतै. कूजनलोलकण्ठै ॥३०॥
३८ विचित्रमृद्वास्तरणेऽपि सुप्ता वैडूर्यवज्रप्रतिमण्डितेऽपि।
रुक्मागपादे शयने महार्हे न शर्म लेभे परिचेष्टमाना ॥३१
३९ सदृश्य भर्तुश्च विभूपणानि
वासासि वीणाप्रभृतीश्च लीला ।
तमो विवेशाभिननाद चोच्चै
पकावतीर्णेव च सससाद ॥३२॥
४० सा सुन्दरी श्वासचलोदरी हि वज्राग्निसभिन्नदरीगुहेव।
शोकाग्निनान्तर्हृदि दह्यमाना
विभ्रान्तचित्तेव तदा बभूव ॥३३॥
४१ रुरोद मम्लौ विरुराव जग्लौ
बभ्राम तस्थौ विललाप दध्यौ।
चकार रोप विचकार माल्य
चकर्त वक्त्र विचकर्ष वस्त्रम् ॥३४॥
—सर्ग ६

२. बुद्धचरित—

(१) अन्त.पुर-विहार

४२ "किंचिन्मन क्षोभकर प्रतीप
कथ न पश्येदि"ति सोऽनुचिन्त्य।
वास नृपो व्यादिशति स्म तस्मै
हर्म्योदरेष्वेव न भू- प्रचारम् ॥२८।
४३ तत शरत्तोयदपाण्डुरेषु भूमौ विमानेष्विव रजितेषु।
हर्म्येषु सर्वर्तुसुखाश्रयेषु
स्त्रीणामुदारैर्विजहार तूय ॥२९॥

३७ बाजके अगले पखोंसे घायल चक्रवाकवाली चक्रवाकीकी तरह वह बहुत कूजने लगी। महलमें स्थित कूजनके लिये चचल कठवाले कबूतरोंसे मानो होड़ लगा रही थी ॥३०॥

३८ हीरेसे प्रतिमडित विचित्र कोमल शय्यायुक्त सोनेके पावोवाले, महार्घ शयनपर सोती भी छटपटाती उसने चैन नही पाया ॥३१॥

३९ और पतिके आभूषणो-वस्त्रो-वीणा आदि लीला-वस्तुओको देखकर मूर्छामें प्रविष्ट हो और जोरसे चिल्लाती, तथा पकमें गिरी फस सी गई ॥३२॥

४० वह साससे चचल-उदरवाली सुदरी, वज्र-अग्निसे फटे गुहावाली सी, शोकाग्निसे हृदयके भीतर जलती उद्भ्रात चित्तवाली सी हो गई ॥३३॥

४१ वह रोई, मलिन हुई, चिल्लाई, खिन्न हुई, घूमी, खडी विलाप करने लगी, चिंतित हुई, रोपित हुई। मालाओको उसने बिगाडा, मुखको नोचा, वस्त्रको खीचा ॥३४॥

—सर्ग ६

२. बुद्धचरित—

(१) अन्त पुर-विहार

४२ "मनको क्षोभ करनेवाले किसी विरुद्ध (वस्तु) को क्यो नही देखता" यह सोचकर, उस राजाने उन्हें महलोंके भीतरही वासकी आज्ञा दी, भूमिपर चलनेकी नही ॥२८॥

४३ तब शरद्के बादलो सी, सफेद रगे विमानोकी सी भूमिपर, सारे ऋतुओंके लिये सुखमय प्रासादोमें स्त्रियोंके उत्तम वाद्योंके साथ कुमारने विहार किया ॥२९॥

४४ कलैर्हि चामीकरबद्धकक्षैर्नारीकराग्राभिहतैर्मृदङ्गैः ।
वराप्सरानृत्यसमैश्च नृत्यैः
कैलासवत्तद्भवनं रराज ॥३०॥

४५ वाग्भिः कलाभिर्ललितैश्च हावैर्मदैः सखेलैर्मधुरैश्च हासैः ।
तं तत्र नार्यो रमयाम्बभूवुर्भ्रूवञ्चितैरर्धनिरीक्षितैश्च ॥३१॥

४६. नृपस्तु तस्यैव विवृद्धिहेतोस्तद्भाविनार्थेन च चोद्यमानः ।
शमेऽभिरेमे विरराम पापाद्
भेजे दमं संविबभाज साधून् ॥३३॥

४७ नाधीरवत्कामसुखे ससञ्जे न संररञ्जे विषमं जनन्याम् ।
धृत्येन्द्रियाश्वांश्चपलान्विजिग्ये
बन्धूंश्च पौरांश्च गुणैर्जिगाय ॥३४॥

४८ नाध्यैष्ट दुःखाय परस्य विद्यां
ज्ञानं शिवं यत्तु तदध्यगीष्ट ।
स्वाभ्यः प्रजाभ्यो हि यथा तथैव
सर्वप्रजाभ्यः शिवमाशशंसे ॥३५॥

४९ सान्त्वं बभाषे न च नार्थवद्यज्
जजल्प तत्त्वं न च विप्रियं यत् ।
सान्त्वं ह्यतत्त्वं परुषं च तत्त्वं
ह्रियाशकन्नात्मन एव वक्तुम् ॥३८॥

५० आर्षाण्यचारीत्परमव्रतानि
वैराण्यहासीच्चिरसंभृतानि ।
यशांसि चापद्गुणगन्धवन्ति
रजांस्यहार्षीन्मलिनीकराणि ॥४३॥

४४　स्त्रियोंके कर-पल्लवोंसे बजते मधुर-स्वर सोनेसे मढे मृदगो द्वारा, उत्तम अप्सराओंके नृत्यके समान नाचो युक्त और कैलासके समान उस भवनमें कुमार विराजा ॥३०॥

४५. कलापूर्ण वाणियो, ललित हाव-भावो, मदजनक खेल और मधुर परिहासोंके साथ, वहा नारियोने भ्रू-कुचनो और अधखुली दृष्टियोंसे उससे रमण कराया ? ॥३१॥

४६　राजाने तो उसकी ही वृद्धिके लिये और उसके भावी अर्थसे प्रेरित हो, शान्तिमें रत, पापसे विरत, दमन-युक्त हो, साधुओको दान दिया ॥३३॥

४७　(वह) अधीरकी तरह काम-सुखमें लिप्त नही हुआ, न जननीमें विषम आचारमें सरक्त हुआ । उसने धैर्य चपल इन्द्रियरूपी घोड़ोको और गुणोंसे बधुओ तथा पुरवासियोको जीता ॥३४॥

४८. उसने दूसरे के दु खके लिये विद्या नहीपढी, जो मगलमय ज्ञान था, उसे (ही) जाना, जैसे अपनी प्रजाओमें वैसे ही वह सारी प्रजाओमें कल्याणकी कामना करता ॥३५॥

४९　सान्त्वनाकी बात करता, पर अनर्थयुक्त नही, तत्वकी बात करता, पर जो अप्रिय है उसे नही, तत्वहीन सान्त्वना और परुषत्वको लज्जासे अपने लिये भी न कह सकता ॥३८॥

५०　उसने ऋषियोंके श्रेष्ठ व्रतका पालन करते, चिरसचित वैरोको छोडा, आपद्के गुण-लेशवाले यशोको, मलिन करनेवाले रजोको हटाया ॥४३॥

५१ न चाजिहीर्षीद् वलिमप्रवृत्त
न चाचिकीर्षीत्परवस्त्वभिध्याम् ।
न चाविवक्षीद् द्विषतामधर्मं
न चाविवक्षीद्धृदयेन मन्युम् ॥४४॥

५२ तस्मिंस्तथा भूमिपतौ प्रवृत्ते
भृत्याश्च पौराश्च तथैव चेरु ।
शमात्मके चेतसि विप्रसन्ने
प्रयुक्तयोगस्य यथेन्द्रियाणि ॥४५॥

५३ काले ततश्चारुपयोधराया
यशोधराया स्वयशोधरायाम् ।
शौद्धोदनो राहुसपत्नवक्त्रो
जज्ञे सुतो राहुल एव नाम्ना ॥४६॥

—सर्ग २

(२) संवेगोत्पत्ति

५४ तत "कुमार खलु गच्छतीति
श्रुत्वा स्त्रिय प्रेष्यजनात्प्रवृत्तिम् ।
दिदृक्षया हर्म्यतलानि जग्मु
र्जनेन मान्येन कृताभ्यनुज्ञा ॥१३॥

५५ ता स्रस्तकाचीगुणविघ्निताश्च
सुप्तप्रबुद्धाकुल लोचनाश्च ।
वृत्तान्तविन्यस्तविभूषणाश्च
कौतूहलेनानिभृता परीयु ॥१४॥

५६ प्रासादसोपानतलप्रणादै काचीरवैर्नूपुरनि स्वनैश्च ।
वित्रासयन्त्यो गृहपक्षिसघा-
नन्योन्यवेगाश्च समाक्षिपन्त्य ॥१५॥

५१ अप्रचलित टेक्स लेना, दूसरेकी वस्तुमें लोभ करना नही चाहा, न शत्रुओको अधर्म कहना चाहा तथा न हृदयमें क्रोध रखना चाहा ।।४४।।

५२ उस भूमिपाल (शुद्धोधन) के ऐसा आचरण करते सेवक और पुरवासी भी वैसा ही आचरण करते, जैसे शमयुक्त स्वच्छ-चित्त योगी के होनेपर (उसकी) इन्द्रिया (होती हैं) ।।४५।।

५३ तब काल पाकर अपने यशको धारण करनेवाली सुस्तनी यशोधराने, सिद्धार्थको राहुल नामक चन्द्रमुख पुत्र जना ।।४६।।

—सर्ग २

(२) वैराग्यकी उत्पत्ति

५४ तब "कुमार जा रहा है" यह समाचार सेवकोंसे सुनकर देखनेकी इच्छासे स्त्रिया, मान्यजनो की अनुमतिसे महलके कोठोपर (चढ) गईं ।।१३।।

५५ खिसकी कर्धनीकी जजीरसे बाधित, सोकर जगे व्याकुल लोचन वाली, कुतूहलके साथ चचल होकर वृत्तान्त सुन आभूषण धारे गईं ।।१४।।

५६ (वह) प्रासादके सोपानतलके शब्दो, काचीके रवो और पाजेबकी ध्वनियोंसे, गृह-पक्षियोंके समूहोको त्रस्त करती एक दूसरेके जल्दी करनेपर आक्षेप करती (चली) ।।१५।।

५७ कासाचिदासाँ तु वरागनाना
जातत्वराणामपि सोत्सुकानाम्।
गर्ति गुरुत्वाज्जगृहुविशाला
श्रोणीरथा पीनपयोधराश्च ॥१६॥

५८ शीघ्र समर्थापि तु गन्तुमन्या
गर्ति निजग्राह ययौ न तूर्णम्।
ह्रिया प्रगल्भा विनिगूहमाना
रहः प्रयुक्तानि विभूषणानि ॥१७॥

५९ परस्परोत्पीडनपिण्डिताना
समर्दसक्षोभितकुण्डलानाम्
तासा तदा सस्वनभूपणाना
वातायनेष्वप्रशमो बभूव ॥१८॥

६० वातायनेभ्यस्तु विनि सृतानि
परस्परायासितकुण्डलानि ।
स्त्रीणा विरेजुर्मुखपकजानि
सक्तानि हर्म्येष्विव पकजानि ॥१९॥

६१ ततो विमानैर्युवतीकरालै कौतूहलोद्घाटितवातयानै ।
श्रीमत्समन्तान्नगर बभासे
वियद्विमानैरिव साप्ससरोभि ॥२०॥

६२ वातायनानामविशालभावाद-
न्योन्यगण्डार्पितकुण्डलानाम् ।
मुखानि रेजु प्रमदोत्तमाना,
बद्धा कलापा इव पकजानाम् ॥२१॥

६३. त ता कुमार पथि वीक्षमाणा
स्त्रियो बभुर्गामिव गन्तुकामा ।
ऊर्ध्वोन्मुखाश्चैनमुदीक्षमाणा
नरा बभुर्द्यामिव गन्तुकामा ॥२२॥

५७. उत्सुकतायुक्त जल्दी करती इन सुदर स्त्रियोमेंसे किन्ही-किन्ही की गतिको, भारी होनेसे विशाल नितम्बो और पीन पयोधरोने रोका ॥१६॥

५८ शीघ्र जानेमें समर्थ हुई किसो दूसरीने गतिको रोका, लज्जासे (वह)सकुचित हो एकान्तमें पहने आभूषणोको छिपाती हुई जल्दी नही गई ॥१७॥

५९ तव परस्पर उत्पीडनके साथ एकत्रित हुई, धक्कासे चचल कुडलवाली, ध्वनियुक्त भूषणोवाली उन स्त्रियोको खिडकियोंमें अशान्ति मालूम हुई ॥१८॥

६० स्त्रियोंके मुख-कमल जगलोंसे निकले परस्पर आन्दोलित कुडलोवाले, महलोमें ससक्त कमलो जैसे शोभा देते थे ॥१९॥

६१ तव युवतियोंसे घिरे कौतूहलसे उघाडे वातायनोवाले महलो द्वारा, कपिलवस्तु नगर अप्सराओ-सहित आकाश-विमानोकी तरह चारो ओर श्रीयुक्त(हो) चमकने लगा ॥२०॥

६२ वातायनोंके विशाल न होनेसे एक दूसरेके कपोलोको छूते कुडलवाले उत्तम स्त्रियोंके मुख, पकजोकी वधी मालाकी तरह विराजते थे ॥२१॥

६३ कुमारको पथमें देखती वह स्त्रिया मानो पृथिवी पर जानेकी इच्छुक थी, और उसे ऊपर मुह किये देखते पुरुष मानो स्वर्ग जानेके इच्छुक थे ॥२२॥

६४ दृष्ट्वा च त राजसुत स्त्रियस्ता जाज्वल्यमान वपुषा-
श्रिया च ।
"धन्यास्य भार्ये"ति शनैरवोच शुद्धैर्मनोभि खलु
नान्यभावात् ॥२३॥
—सर्ग ३

(३) स्त्री-निवारण

६५ स तस्मिन् कानने रम्ये जज्वाल स्त्रीपुर सर ।
आक्रीड इव विभ्राजे विवस्वानप्सरोवृत ॥२८॥

६६ मदेनावर्जिता नाम त काश्चित्तत्र योषित ।
कठिनै पस्पृशु पीनै सहतैर्वल्गुभि स्तनै ॥२९॥

६७ स्रस्तासकोमलालम्बमृदुबाहुलताबला ।
अनृत स्खलित काचित्कृत्वैन सस्वजे बलात् ॥३०॥

६८ काचित्ताम्राधरोष्ठेन मुखेनासवगन्धिना ।
विनिशश्वास कर्णेऽस्य "रहस्य श्रूयता"मिति ॥३१॥

६९ काचिदाज्ञापयन्तीव प्रोवाचार्द्रानुलेपना ।
"इह भक्ति कुरुष्वेति" हस्तसश्लेषलिप्सया ॥३२॥

७० मुहुर्मुहुर्मदव्याजस्रस्तनीलाशुकापरा ।
आलक्ष्यरशना रेजे स्फुरद्विद्युदिव क्षपा ॥३३॥

७१ काश्चित्कनककाचीभिर्मुखराभिरितस्तत ।
बभ्रमुर्दर्शयन्त्योऽस्य श्रोणीस्तन्वशुकावृत्ता ॥३४॥

७२ चूतशाखा कुसुमिता प्रगृह्यान्या ललम्बिरे ।
सुवर्णकलशप्रख्यान्दर्शयन्त्य पयोधरान् ॥३५॥

७३ काचित्पद्मवनादेत्य सपद्मा पद्मलोचना ।
पद्मवक्त्रस्य पार्श्वेऽस्य पद्मश्रीरिव तस्थुषी ॥३६॥

६४ शरीर और शोभासे जाज्वल्यमान राजकुमारको देखकर उन स्त्रियोने, "इसकी भार्या धन्य है" यह धीरेसे शुद्ध मनसे कहा, न कि दूसरे भावसे ॥२३॥

—सर्ग ३

(३) स्त्रियोका रोकना

६५ वह (सिद्धार्थ कुमार) स्त्रियो-सहित उस रम्य काननमें शोभायमान थे, मानो प्रागणमें अप्सराओंसे युक्त सूर्य शोभा दे रहा था ॥२८॥

६६ वहा मदके वशमें पड किन्ही स्त्रियोने, कठिन सश्लिष्ठ सुदर पीन स्तनोसे कुमारका स्पर्श किया ॥२९॥

६७ मृदु बाहुलतासे शिथिल कन्धेका कोमल आलम्ब ले किसी अबलाने, झूठ ही गिरनेका बहाना करके हठपूर्वक आलिगन किया ॥३०॥

६८ 'रहस्य बात सुनिये' यह कह किसीने लाल अधरोष्ठयुक्त, मद्य-गधवाले मुखसे कुमारके कानमें सास छोडी ॥३१॥

६९ भीगे लेपनवाली किसीने हाथ मिलानेके लोभसे, "यहा भक्ति करो" यह आज्ञा देती सी कहा ॥३२॥

७० बार-बार मदके बहाने खिसके नील वस्त्रोवाली दूसरी युवती, कर्धनीको किंचित् दिखाती, चमकती बिजलीवाली रात्रिकी तरह शोभायमान हुई ॥३३॥

७१ कोई सूक्ष्म वस्त्रसे ढके मुखर सुवर्ण कर्धनियोंके साथ नितम्बोको दिखलाती, दूसरी इधर-उधर घूमती थी ॥३४॥

७२ कोई फूली आम्र-शाखाको पकडकर, सुवर्ण-कलश समान स्तनोको दिखलाती लटक रही थी ॥३५॥

७३ पद्मवनसे पद्मसहित कोई पद्मलोचना इस पद्ममुखके पास आकर पद्म-लक्ष्मीकी तरह खडी हुई ॥३६॥

७४ मधुर गीतमन्वर्थं काचित्साभिनय जगौ।
त स्वस्थ चोदयन्तीव "वचितोऽसी"त्यवेक्षितै ॥३७॥

७५ शुभेन वदनेनान्या भ्रूकार्मुकविकर्षिणा।
प्रावृत्यानुचकारास्य चेष्टित धीरलीलया ॥३८॥

७६ पीनवल्गुस्तनी काचिद्धासाघूर्णितकुण्डला।
उच्चैरवजहासैन "समाप्नोतु भवा"निति ॥३९॥

७७. अपयान्त तथैवान्या बवन्धुर्माल्यदामभि ।
काश्चित्साक्षेपमधुरैर्जगृहुर्वचनाकुशै ॥४०॥

७८ प्रतियोगार्थिनी काचिद् गृहीत्वा चूतवल्लरीम्।
"इद पुष्प तु कस्ये"ति पप्रच्छ मदविक्लवा ॥४१॥

७९. काचित्पुरुषवत्कृत्वा गति सस्थानमेव च।
उवाचैन "जित स्त्रीभिर्जय भो पृथिवीमिमाम्" ॥४२॥

८० अथ लोलेक्षणा काचिज्जिघ्रन्ती नीलमुत्पलम्।
किंचिन्मदकलैर्वाक्यैर्नृपात्मजमभाषत ॥४३॥

८१ "पश्य भर्तश्चित चूत कुसुमैर्मधुगन्धिभि ।
हेमपजररुद्धो वा कोकिलो यत्र कूजति ॥४४॥

८२ अशोको दृश्यतामेष कामिशोकविवर्धन ।
रुवन्ति भ्रमरा यत्र दह्यमाना इवाग्निना ॥४५॥

८३. चूतयष्ट्या समाश्लिष्टो दृश्यता तिलकद्रुम ।
शुक्लवासा इव नर स्त्रिया पीताङ्गरागया ॥४६॥

८४ फुल्ल कुरबक पश्य निर्मुक्तालक्तकप्रभम्।
यो नखप्रभया स्त्रीणा निर्भर्त्सित इवानत ॥४७॥

८५ बालाशोकश्च निचितो दृश्यतामेष पल्लवै ।
योऽस्माक हस्तशोभाभिर्लज्जमान इव स्थित ॥४८॥

७४ अभिनयपूर्वक अर्थसहित मधुर गीतको किसीने मानो सकेतोंसे "तू वचित है" यह प्रेरणा करते धीरके लिये गाया ॥३७॥

७५ किसीने खिचे हुए भ्रू रूपी धनुषवाले शुभ मुखसे घूमकर धीर लीला द्वारा कुमारकी चेष्टाका अनुकरण किया ॥३८॥

७६ पीन कोमलस्तनी, हाससे घूमते कुडलवाली, कोई "आप समाप्त करें" यह कहती उस पर ऊचे हसी ॥३९॥

७७ दूसरियोने हटते हुये कुमारको मालाकी रस्सियोंसे बाधा, और कुछने आक्षेपयुक्त मधुर वचनरूपी अकुशोंसे (उसे) पकडा ॥४०॥

७८ विरोधकी इच्छावाली किसीने आम्र-वल्लरीको पकडकर, मदसे विकल हो "यह पुष्प किसका है" यह पूछा ॥४१॥

७९ किसीने पुरुषकी तरह गति और आकार करके, उससे कहा. "स्त्रियो द्वारा जीते गये, तुम इस पृथिवीको जीतो" ॥४२॥

८० तब कोई चचल-नेत्रा नीलकमलको सूघती, कुछ मद से सुन्दर वाक्यो द्वारा राजपुत्रसे बोली ॥४३॥

८१ "हे स्वामी, मधुर गधवाले फूलोंसे सचित (इस) आमको देखो, जहा सोनेके पिजडेमें बधी कोयल कूक रही है ॥४४॥

८२ कामियोंके शोकको बढानेवाले इस अशोकको देखो, जहा भ्रमर मानो अग्निसे जलते गुनगुना रहे है ॥४५॥

८३ आम्रके तनेसे समालिगित तिलक-वृक्षको देखो, मानो पीत-अग-रागवाली स्त्रीसे आलिगित शुक्लाबर पुरुष है ॥४६॥

८४ निचोडे आलतेकी प्रभावाले फूले कुरवकको देखो, जो स्त्रियोंके नखकी प्रभासे तर्जित हो झुका हुआ सा है ॥४७॥

८५ और पल्लवोंसे सचित इस तरुण अशोकको देखो, जो हमारे हाथोकी शोभासे लजाता सा खडा है ॥४८॥

८६ दीर्घिका प्रावृता पश्य तीरजै सिन्दुवारकै ।
पाण्डुरांशुकसंवीता शयाना प्रमदामिव ॥४९॥

८७ दृश्यता स्त्रीषु माहात्म्य चक्रवाको ह्यसौ जले ।
पृष्ठत प्रेष्यवद् भार्यामनुवर्त्यनुगच्छति ॥५०॥

८८ मत्तस्य परपुष्टस्य रुवत श्रूयता ध्वनि ।
अपर कोकिलोऽन्वक्ष प्रतिश्रुत्वेव कूजति ॥५१॥

८९ अपि नाम विहगाना वसन्तेनाहृतो मद ।
न तु चिन्तयतोऽचिन्त्य जनस्य प्राज्ञमानिन " ॥५२॥

९० इत्येव ता युवतयो मन्मथोद्दामचेतस ।
कुमार विविधैस्तैस्तैरुपचक्रमिरे नयै ॥५३॥

—सर्ग ४

(४) अन्त पुर-विलाप

९१ ततस्तुरगावचर स दुर्मनास्तथा वन भर्तरि निर्ममे गते ।
चकार यत्न पथि शोकनिग्रहे
तथापि चैवाश्रु न तस्य चिक्षिये ॥१॥

९२ यमेकरात्रेण तु भर्तुराज्ञया जगाम मार्ग सह तेन वाजिना ।
इयाय भर्तुर्विरह विचिन्तय-
स्तमेव पन्थानमहोभिरष्टभि ॥२॥

९३ हयश्च सौजा विचचार कन्थकस्
तताम भावेन बभूव निर्मद ।
अलकृतश्चापि तथैव भूषणै-
रभूद् गतश्रीरिव तेन वर्जित ॥३॥

९४ निवृत्य चैवाभिमुखस्तपोवन भृश जिहेषे करुण मुहुर्मुहु ।
क्षुधान्वितोऽप्यध्वनि शष्पमम्बु वा
यथा पुरा नाभिननन्द नाददे ॥४॥

८६ तीरके सिंदुवारोंसे घिरी पुष्करणीको देखो, मानो पीत-अशुक पहने प्रमदा लेटी है ॥४९॥

८७ स्त्रियोंके वडप्पनको देखो, जलमें यह चकवा, सेवककी तरह पीछे पीछे भार्याका अनुवर्तन करता जा रहा है ॥५०॥

८८. मस्त वोलती कोयलकी ध्वनि को सुनो, दूसरा कोयल (उसके) पीछे-पीछे प्रतिध्वनिकी तरह कूक रहा है ॥५१॥

८९ वसत विहगोमें भी मद ला सकता है, पर अचित्यकी चिन्ता करते प्राज्ञ अभिमानी आदमीमें नही" ॥५२॥

९० इस प्रकार कामसे उद्दाम चित्तवाली युवतियोने उन-उन नाना उपायोंसे कुमारको खीचना चाहा ॥५३॥

—सर्ग ४

(४) रनिवास का विलाप

९१ तव निर्मम स्वामीके वन जानेपर वैसे दुखी साईस (छदक) ने, रास्तेमें शोक रोकनेका यत्न किया, तो भी उसका आसू वन्द नही हुआ ॥१॥

९२ स्वामीकी आज्ञासे उसी घोडेके साथ जिस मार्गको वह एक रातमें गया था, उसी पथको स्वामीके विरहकी चिन्ता करते उसने आठ दिनमें पूरा किया ॥२॥

९३ और ओजस्वी घोडा (कथक) मनमें खिन्न और मद-रहित हो भूषणोंसे वैसे अलकृत भी स्वामीके विना शोभा-रहित सा था ॥३॥

९४. तपोवनकी ओर मुह करके मुडकर वह वार-वार करुणा-सहित हिनहिनाया, भूखा होंते भी मार्गमें उसने तृण या जलको न पहलेकी तरह पसन्द किया, न ग्रहण किया ॥४॥

९५ ततो विहीनं कपिलाह्वयं पुरं महात्मना तेन जगद्धितात्मना
क्रमेण तौ शून्यमिवोपजग्मतुर्
दिवाकरेणेव विनाकृतं नभः ॥५॥

९६ सपुण्डरीकैरपि शोभितं जलै-
रलङ्कृतं पुष्पधरैर्नगैरपि
तदेव तस्योपवनं वनोपमं गतप्रहर्षैर्न रराज नागरैः ॥६॥

९७ ततो भ्रमद्भिर्दिशि दीनमानसैरनुज्ज्वलैर्बाष्पहतेक्षणैर्नरैः
निवार्यमाणाविव तावुभौ पुरं
शनैरपस्नातमिवाभिजग्मतुः ॥७॥

९८ निशाम्य च स्रस्तशरीरगामिनौ
विनागतौ शाक्यकुलर्षभेण तौ।
मुमोच बाष्पं पथि नागरो जनः
पुरा रथे दाशरथेरिवागते ॥८॥

९९ अथ ब्रुवन्तः समुपेतमन्यवो
जनाः पथि च्छन्दकमागताश्रवः ।
"क्व राजपुत्रः पुरराष्ट्रनन्दनो
हृतस्त्वयासा"विति पृष्ठतोऽन्वयुः ॥९॥

१०० ततः स तान् भक्तिमतोऽब्रवीज्जना-
न्नरेन्द्रपुत्रं न परित्यजाम्यहम्" ॥१०॥

१०१ इदं वचस्तस्य निशम्य ते जनाः
"सुदुष्करं खल्वि"ति निश्चयं ययुः ।
पतद्धि जहुः सलिलं न नेत्रजं
मनो निनिन्दुश्च फलोत्थमात्मनः ॥११॥

१०२ अथोचु"रद्यैव विशाम तद्वनं गतः स यत्र द्विपराजविक्रमः ।
जिजीविषा नास्ति हि तेन नौ विना
यथेन्द्रियाणां विगमे शरीरिणाम् ॥१२॥

९५ तब उस जगत्-हितैषी महात्मासे विहीन शून्य से कपिलवस्तु नगरमें, क्रमश वे दोनो मानो सूर्यके विना आकाशमें पहुचे, ॥५॥

९६ कमलयुक्त जलसे शोभित पुष्पधारी वृक्षोंसे अलकृत भी, राजकुमार का वह हर्षहीन उपवन वन-समान पुरवासियोंसे शोभा नही दे रहा था ॥६॥

९७. तब दीन-मन मलिन आसूसे उपहत नेत्रोवाले दिशाओमें घूमते मनुष्यो द्वारा निवारित होते, वे दोनो मृतक-स्नान किये से नगरमें धीरे-धीरे पहुचे ॥७॥

९८ शाक्य-कुल ऋषभके विना (ही) थके शरीरसे चलते आये उन दोनोको सुनकर, रास्तेमें पुरवासी जनोने वैसे ही आसू बहाया, जैसे पुराने समय में रामके रथके आनेपर ॥८॥

९९ तब सतप्त आसू ला लोग मार्गमें छदकसे "पुर और राष्ट्रके आनद-दायक उस राजपुत्रको तू कहा ले गया" यह कहते पीछे-पीछे लगे ॥९॥

१०० तब उसने उन भक्तिमान् जनोंसे कहा—"मैंने नरेंद्र-पुत्रको नही छोडा। निर्जन वनमें रोते हुए मुझे और गृहस्थ-वेषको उन्होने छोड दिया" ॥१०॥

१०१ उसके इस वचनको सुनकर उन लोगोने "अतिदुष्कर निस्सदेह" यह निश्चय किया, और आसुओको गिरनेसे नही रोका और अपने स्वार्थपरतावाले मनकी निंदा की ॥११॥

१०२ तब वह बोले "आज ही हम उस वनमें प्रवेश करेंगे जहा वह गजराज-पराक्रमी गया, उसके विना हमें जीनेकी इच्छा नही, जैसे इन्द्रियोंके चले जानेपर शरीरधारियोकी ॥१२॥

१०३ इद पुर तेन विवर्जित वन वन च तत्तेन समन्वित पुरम् ।
न शोभते तेन हि नो विना पुर
मरुत्वता वृत्रवधे यथा दिवम् ॥१३॥

१०४ पुन "कुमारो विनिवृत्त" इत्यथो
गवाक्षमाला प्रतिपेदिरेऽगना ।
विविक्तिपृष्ठ च निशम्य वाजिन
पुनर्गवाक्षाणि पिधाय चुक्रशु ॥१४॥

१०५ प्रविष्टदीक्षस्तु सुतोपलब्धये व्रतेन शोकेन च खिन्नमानसः
जजाप देवायतने नराधिप-
श्चकार तास्ताश्च यथाशया क्रिया ॥१५॥

१०६. तत स वाष्पप्रतिपूर्णलोचनस्तुरगमादाय तुरगमानुग ।
विवेश शोकाभिहतो नृपक्षय
युधापनीते रिपुणेवभर्तरि ॥१६॥

१०७ विगाहमानश्च नरेन्द्रमन्दिर विलोकयन्नश्रुवहेन चक्षुषा ।
स्वरेण पुष्टेन रुराव कन्थको
जनाय दु ख प्रतिवेदयन्निव॥१७

१०८ तत खगाश्च क्षयमध्यगोचरा
समीपबद्धास्तुरगाश्च सत्कृता ।
हयस्य तस्य प्रतिसस्वनु स्वन
नरेन्द्रसूनोरुपया नशकिन ॥१८॥

१०९. जनाश्च हर्षातिशयेन वञ्चिता
जनाधिपान्त पुरसनिकर्षगा ।
"यथा हय. कन्थक एष हेषते
ध्रुव कुमारो विशती"ति मेनिरे ॥१९॥

११० अतिप्रहर्षादथ शोकमूर्छिता कुमारसन्दर्शनलोललोचना ।
गृहाद्विनिश्चक्रमुराशया स्त्रिय
शरत्पयोदादिव विद्युतश्चला. ॥२०॥

१०३　उसके विना यह पुर वन है और उससे युक्त वह वन पुर है। उसके विना हमारा पुर शोभा नही देता, जैसे वृत्रके वधके समय इद्रके विना स्वर्ग" ॥१३॥

१०४. फिर "कुमार लौटा" यह सुन स्त्रिया वातायनोपर पहुची, घोडेको नगी पीठ देखकर फिर गवाक्षोको वन्द कर वह रोने लगी ॥१४॥

१०५　पुत्रकी प्राप्तिके लिए शोकसे खिन्न-मन दीक्षा ले व्रतके साथ राजा देवमन्दिरोमें जप और अभिलाषानुरूप उन-उन क्रिया-योको कर रहा था ॥१५॥

१०६　तव घोडेको ले उसके पीछे-पीछे चलते अश्रुनेत्र छन्दकने, शोकयुक्त हो नृपगृहमें प्रवेश किया, मानो युद्धमें रिपुने स्वामीको छीन लिया हो ॥१६॥

१०७　राजमन्दिरमें चलते आसू वहानेवाली आखोंसे उसे देखते, लोगोंके सामने दु ख प्रकट करते कथक ऊचे स्वरसे चिल्लाने लगा ॥१७॥

१०८　तव घरके पक्षियो और पास वधे उत्तम घोड़ोने,
उस घोडेकी आवाजपर राजपुत्रके आगमनकी आशंकासे प्रतिशब्द किया ॥१८॥

१०९　राजाके अन्त पुरके पासवाले लोगोने अत्यन्त हर्षसे उछलते समझा—"यह कथक घोड़ा हिनहिना रहा है, तो अवश्य कुमार प्रवेश कर रहे है" ॥१९॥

११०　फिर कुमारके दर्शनकी अभिलाषा भरी नेत्रोवाली अत्यन्त हर्ष-शोकसे मूर्छित स्त्रियाँ घरसे शरद्‌के चचल विजलियोकी तरह मेघसे निकली, (वह कैसी थी) ॥२०॥

१११ विलम्बकेश्यो मलिनांशुकाम्बरा
निरञ्जनैर्बाष्पहतेक्षणैर्मुखैः ।
स्त्रियो न रेजुर्मृजया विनाकृता
दिवीव तारा रजनीक्षयारुणाः ॥२१॥

११२. अरक्तताम्रैश्चरणैरनूपुरैरकुण्डलैरार्जवकन्धरैर्मुखैः ।
स्वभावपीनैर्जघनैरमेखलै-
रहारयोक्त्रैर्मुषितैरिव स्तनैः ॥२२॥

११३ निरीक्ष्य ता बाष्पपरीतलोचना
निराश्रयं छन्दकमश्वमेव च ।
विषण्णवक्त्रा रुरुदुर्वराङ्गना
वनान्तरे गाव इवर्षभोज्झिताः ॥२३॥

११४. ततः सबाष्पा महिषी महीपते
प्रनष्टवत्सा महिषीव वत्सला ।
प्रगृह्य बाहू निपपात गौतमी
विलोलपर्णा कदलीव काञ्चनी ॥२४॥

११५. हतत्विषोऽन्याः शिथिलांसबाहवः
स्त्रियो विषादेन विचेतना इव ।
न चुक्रुशुर्नाश्रु जहुर्न शश्वसु-
र्न चेलुरासुर्लिखिता इव स्थिताः ॥२५॥

११६ अधीरमन्याः पतिशोकमूर्छिता
विलोचनप्रस्रवणैर्मुखैः स्त्रियः ।
सिषिचिरे प्रोषितचन्दनान् स्तनान्धराधरः प्रस्रवणै-
रिवोपलान् ॥२६॥

११७. मुखैश्च तासां नयनाम्बुताडितै रराज तद्राजनिवेशनं तदा।
नवाम्बुकालेऽम्बुदवृष्टिताडितैः
स्रवज्जलैस्तामरसैर्यथा सरः ॥२७॥

१११ दीर्घ-केशी मलिन-वस्त्र-धरा अजनहीना अश्रु-रुद्ध नेत्रो सहित मुखोवाली, विना शृगार किये स्त्रियाँ रात वीतनेसे आकाशमें पीले पडे तारो जैसी ॥२१॥

११२ लालिमाहीन नूपुर विना चरणोवाला कुडल-रहित भूषित कधेवाले मुखोंसे, मेखला-रहित स्वभावत पोन नितम्वोंसे युक्त, हार विना चुराये हुये से स्तनोंके साथ ॥२२॥

११३. उन आँसुओंसे भरी आँखोवालियोने छदक और अश्वको असहाय देखा तो विषादयुक्त मुखवाली वरागनायें वनान्तरमें वृषभ-परित्यक्त गायकी तरह रोने लगी ॥२३॥

११४ नष्ट वच्चेवाली वत्सला महिषीकी तरह राजाकी अश्रुयुक्त महिषी, गौतमी दोनो वाहोको पकडकर चचल पत्तेवाले सोनेके केलेकी तरह गिर पड़ी ॥२४॥

११५. प्रभाहीन शिथिल-कधा-वाहुवाली विषादसे निश्चेतन सी दूसरी स्त्रियाँ न चिल्लाईं, न आँसू वहाईं, न लम्वी साँस ली, न हिली-डुली, मानो चित्रलिखितसी खडी रही ॥२५॥

११६. पति-शोकसे मूर्छित, नेत्र से अश्रु वहाते मुखोवाली दूसरी स्त्रियाँ अधीर होकर, चन्दन-मिटे स्तनोको मानो पर्वत के झरनो द्वारा पाषाणोको सीचने लगी ॥२६॥

११७. अश्रु-ताडित उनके मुखोंसे वह राजभवन उस समय वैसे शोभित था, जैसे नवीन मेघकालमें मेघकी वृष्टिसे ताड़ित वहते जलयुक्त कमलोंसे सरोवर ॥२७॥

११८ सुवृत्तपीनाङ्गुलिभिर्निरन्तरैरभूषणैर्गूढसिरैर्वराङ्गना ।
उरांसि जघ्नुः कमलोपमैः करैः
स्वपल्लवैर्वातचला लता इव ॥२८॥

११९ करप्रहारप्रचलैश्च ता बभुस्तथापि नार्यः सहितोन्नतैः स्तनैः
वनानिलाघूर्णितपद्मकम्पितैः
रथाङ्गनाम्नां मिथुनैरिवापगाः ॥२९॥

१२० यथा च वक्षांसि करैरपीडयं-
स्तथैव वक्षोभिरपीडयन् करान् ।
अकारयंस्तत्र परस्परं व्यथाः
कराग्रवक्षांस्यबला दयालसाः ॥३०॥

१२१ ततस्तु रोषप्रविरक्तलोचना
विषादसम्बन्धिकषायगद्गदम् ।
उवाच निःश्वासचलत्पयोधरा
विगाढशोकाश्रुधरा यशोधरा ॥३१॥

१२२ "निशि प्रसुप्तामवशां विहाय मां
गतः क्व स च्छन्दक मन्मनोरथः ।
उपागते च त्वयि कन्थके च मे
समं गतेषु त्रिषु कम्पते मनः ॥३२॥

१२३ अनार्यमस्निग्धममित्रकर्म मे
नृशंस कृत्वा किमिहाद्य रोदिषि ।
नियच्छ बाष्पं भव तुष्टमानसो
न संवदत्यश्रु च तच्च कर्म ते ॥३३॥

१२४ प्रियेण वश्येन हितेन साधुना
त्वया सहायेन यथार्थकारिणा ।
गतोऽर्यपुत्रो ह्यपुनर्निवृत्तये
रमस्व दिष्ट्या सफलः श्रमस्तव ॥३४॥

११८ वरागनायें भूषण-रहित छिपी नसोवाली सुगोल घनी अगुलियोयुक्त कमल समान अपने हाथोंसे छातीको वायुसे चालित पल्लवो युक्त लता सी पीटने लगी ॥२८॥

११९ हाथके प्रहारसे चचल, एक साथ उन्नत स्तनोंसे वह नारियाँ, वन-वायु द्वारा हिलाये पद्मोंसे कम्पित चक्रवाको के जोडो युक्त नदीकी तरह जान पडती थी ॥२९॥

१२० उन्होने जैसे हाथोंसे छातियोको वैसे ही छातियोंसे हाथोको पीडित किया। दयासे अलस अवलाओने (अपने) करपल्लवो और छातियो को परस्पर उस समय व्यथित किया ॥३०॥

१२१ तव रोपसे अतिरक्त लोचनवाली, लम्बी साँससे चलते स्तनोवाली, भारी शोकसे अश्रु वहाती यशोधरा विषादकी कटुतासे गद्गद् हो वोली ॥३१॥—

१२२ "हे छदक, रातको सोई वेवस मुझे छोड वह मेरा मनोरथ कहाँ गया? तीनो साथ गये, तेरे और कथकके आनेपर मेरा मन काँप रहा है ॥३२॥

१२३ हे नीच, अनार्य, स्नेहरहित शत्रुका काम करके अव तू क्यो रो रहा है? आँसू रोक, तुष्ट मन हो, तेरा आँसू तेरे उस कर्मके अनुसार नही है ॥३३॥

१२४ प्रिय, वशवद, हित, यथार्थकारी आर्यपुत्र तुझ साधुमित्रके साथ, फिर न लौटनेके लिये चले गये। खुश हो, अहो तेरा श्रम सफल हुआ ॥३४॥

१२५ वर मनुष्यस्य विचक्षणो रिपुर्न मित्रमप्राज्ञमयोगपेशलम् ।
सुहृद्ब्रुवेण ह्यविपश्चिता त्वया
कृत कुलस्यास्य महानुपप्लव ॥३५॥

१२६ इमा हि शोच्या व्यवमुक्तभूषणा
प्रसक्तवाष्पाविलरक्तलोचना ।
स्थितेऽपि पत्यौ हिमवन्महीसमे
प्रनष्टशोभा विधवा इव स्त्रिय ॥३६॥

१२७ इमाश्च विक्षिप्तविटकवाहव
प्रसक्तपारावतदीर्घनि स्वना ।
विनाकृतास्तेन सहावरोधनै
र्भृश रुदन्तीव विमानपक्तय ॥३७॥

१२८ अनर्थकामोऽस्य जनस्य सर्वथा
तुरगमोऽपि ध्रुवमेष कन्थक ।
जहार सर्वस्वमितस्तथा हि मे
जने प्रसुप्ते निशि रत्नचौरवत् ॥३८॥

१२९. यदा समर्थ खलु सोढुमागता-
निषुप्रहारानपि किं पुन कशा ।
गत कशापातभयात्कथ न्वय
श्रिय गृहीत्वा हृदय च मे समम् ॥३९॥

१३० अनार्यकर्मा भृशमद्य हेषते नरेन्द्रधिष्ण्य प्रतिपूरयन्निव ।
यदा तु निर्वाहयति स्म मे प्रिय
तदा हि मूकस्तुरगाधमोऽभवत् ॥४०॥

१३१. यदि ह्यहेषिष्यत बोधयन् जन
खुरै क्षितौ वाप्यकरिष्यत ध्वनिम् ।
हनुस्वन वा जनयिष्यदुत्तम
न चाभविष्यन्मम दु खमीदृशम्" ॥४१॥

१२५ मनुष्यके लिये होशियार शत्रु अच्छा है, (पर) युक्तिमें अचतुर अप्राज्ञ मित्र नही। अपने को सुहृद् कहनेवाले तुझ मूर्खने इस कुलका महान् अहित किया ॥३५॥

१२६ भूषणरहित आँसू बहाती मलिन लाल नेत्रोवाली यह स्त्रियाँ, हिमालय-पृथिवीके समान पतिके रहते भी नष्ट-शोभा विधवाओकी तरह शोचनीय हैं ॥३६॥

१२७ और यह फैली कपोत-स्थानोरूपी वाहोवाली बैठे कबूतरोंके लम्बे शब्दवाली, प्रासाद-पक्तियाँ अन्त पुरिकाओ के साथ प्रिय-विहीन अत्यन्त रो सी रही हैं ॥३७॥

१२८ इस जनका सर्वथा निश्चय अनर्थ-इच्छुक कथक तुरग है, जो कि रातको जनोके सोते समय रत्न-चोरकी तरह मेरे सर्वस्वको यहाँसे हर ले गया ॥३८॥

१२९. जो पडते वाणोके प्रहारोको सहनेमें भी समर्थ था, (उस कथकके लिये) कोडा क्या था ? कोडे की मारके भयसे कैसे यह हृदयके साथ मेरी शोभा को लेकर चला गया ॥३९॥

१३० अनार्यकर्मा यह आज नरेन्द्र-भवनको भरता हुआ सा हिनहिना रहा है, (पर) जब मेरे प्रियको ले जा रहा था, तब यह अधम अश्व मूक रहा ॥४०॥

१३१ यदि लोगोको जगाते हुये हिनहिनाता या खुरोंसे पृथिवीपर शब्द करता, अथवा हनुसे सुशब्द करता, तो आज मुझे ऐसा दु ख न होता" ॥४१॥

१३२ इतीह देव्या परिदेविताश्रय
निशम्य वाष्पग्रथिताक्षर वच ।
अधोमुख साश्रुकल कृताजलि
शनैरिद छन्दक उत्तर जगौ ॥४२॥

१३३ "विगर्हितु नार्हसि देवि, कन्थक
न चापि रोप मयि कर्तुमर्हसि ।
अनागसौ स्व समवेहि सर्वशो
गतो नृदेव स हि देवि देववत्" ॥४३॥

१३४ इम प्रलाप करुण निशम्य ता
भुजै परिष्वज्य परस्पर स्त्रिय ।
विलोचनेभ्य सलिलानि तत्यजु-
र्मधूनि पुष्पेभ्य इवेरिता लता ॥५९॥

१३५ ततो धरायामपतद्यशोधरा विचक्रवाकेव रथागसाह्वया।
शनैश्च तत्तद्विललाप विक्लवा
मुहुर्मुहुर्गद्गदरुद्धया गिरा ॥६०॥

१३६ "स मामनाथा सहधर्मचारिणी-
मपास्य धर्म यदि कर्तुमिच्छति ।
कुतोऽस्य धर्म सहधर्मचारिणी
विना तपो य परिभोक्तुमिच्छति॥६१॥

१३७ शृणोति नून स न पूर्वपार्थिवा
न्महासुदर्शप्रभृतीन् पितामहान् ।
वनानि पत्नीसहितानुपेयुष-
स्तथा हि धर्म मदृते चिकीर्षति ॥६२॥

१३८ मखेषु वा वेदविधानसस्कृतौ
न दपती पश्यति दीक्षितावुभौ ।
सम बुभुक्षू परतोऽपि तत्फल
ततोऽस्य जातो मयि धर्ममत्सर ॥६३॥

१३२. इस प्रकार देवीके रोदनयुक्त अश्रु-वद्ध अक्षरोवाली वाणीको सुन आँसू वहाते अधोमुख हो हाथ जोडकर छदकने धीरे से यह उत्तर दिया ॥४२॥

१३३ "हे देवि, कथककी निन्दा मत करो, और न मेरे ही ऊपर रोष करो। हम दोनोको निरपराव जानो, सव तरहसे वह नरदेव देवोके समान गये" ॥४३॥

१३४ इस करुण प्रलापको सुनकर उन स्त्रियोने वाहोंसे एक-दूसरेको आलिंगन कर, हिलाई लता जैसे पुष्पोंसे मधुको, वैसे ही नेत्रोंसे आँसू वहाया ॥५९॥

१३५ तव चक्रवाकसे रहित चक्रवाकीकी तरह यशोवरा पृथिवीपर गिर पडी। और शनै गद्गद् रुद्ध स्वरसे विकल हो वार वार विलाप करने लगी ॥६०॥—

१३६. "मुझ अनाथा सहधर्मचारिणीको छोडकर यदि प्रिय धर्म करना चाहते है तो सहवर्मचारिणीके विना उनको क्या वर्म होगा, जो कि तप भोगना चाहते हैं ॥६१॥

१३७ निश्चय उन्होने महासुदर्शन आदि पितामह पुराने राजाओंके वारेमें सुना नही, जो कि पत्नी-सहित वन गये, तभी तो मेरे विना वह धर्म करना चाहते है ॥६२॥

१३८ यज्ञोमें वेद-विहित सस्कारवाले दीक्षित दोनो दम्पतीको क्या नही देखते, जो परलोकमें भी फलको एक साथ भोगनेकी इच्छा करते है, या कि उनकी मेरे प्रति धर्म-ईर्ष्या हुई ॥६३॥

१३९ ध्रुव स जानन्मम धर्मवल्लभो
मन प्रियेर्ष्याकलह मुहुर्मिथ ।
सुख विभीर्मामपहाय रोषणा
महेन्द्रलोकेऽप्सरसो जिघृक्षति ॥६४॥

१४० इय तु चिन्ता मम कीदृश नु ता
वपुर्गुण बिभ्रति तत्र योषित ।
वने यदर्थं स तपासि तप्यते
श्रिय च हित्वा मम भक्तिमेव च ॥६५॥

१४१ न खल्विय स्वर्गसुखाय मे स्पृहा
न तज्जनस्यात्मवतोपि दुर्लभम् ।
स तु प्रियो मामिह वा परत्र वा
कथ न जह्यादिति मे मनोरथ ॥६६॥

१४२ अभागिनी यद्यहमायतेक्षण
शुचिस्मित भर्तुरुदीक्षितु मुख ।
न मन्दभाग्योऽर्हति राहुलोऽप्यय
कदाचिदके परवर्तितु पितु ॥६७॥

१४३ अहो नृशस सुकुमारवर्चस सुदारुण तस्य मनस्विनो मन ।
कलाप्रलाप द्विषतोऽपि हर्षण
शिशु सुत यस्त्यजतीदृश बत ॥६८॥

१४४ ममापि काम हृदय सुदारुण
शिलामय वाप्ययसोऽपि वा कृतम् ।
अनाथवच्छ्रीरहिते सुखोचिते
वन गते भर्तरि यन्न दीर्यते" ॥६९॥

१४५ इतीह देवी पतिशोकमूर्छिता
रुरोद दध्यौ विललाप चासकृत् ।
स्वभावधीरापि हि सा सती शुचा
धृतिं न सस्मार चकार नो ह्रियम् ॥७०॥

१३९ निश्चय मेरे धर्म-वल्लभ क्षण भरके पारस्परिक प्रिय ईर्ष्या-कलह युक्त मनको जानकर, सुखसे डरके मुझ क्रोधनाको छोड़ इन्द्रलोक की अप्सराओंको प्राप्त करना चाहते हैं ।।६४।।

१४०. मुझे तो यह चिन्ता है, कि वहां की वह स्त्रियां कैसे शरीर और गुणोंको धारण करती हैं, जिनके लिये वह राजलक्ष्मी और मेरी भक्तिको भी छोड़कर वनमें तप कर रहे हैं ।।६५।।

१४१. स्वर्गके सुखके लिये मेरी इच्छा नही है, वह संयमीके लिये दुर्लभ (भी) नहीं है, प्रियतम मुझे यहां या परलोकमें कैसे भी न छोड़ें, यही है मेरा मनोरथ ।।६६।।

१४२. दीर्घ-नेत्र शुद्ध मुस्कानयुक्त स्वामीके मुखको देखनेकी यदि मैं अभागिनी हूं। तो यह मन्दभाग्य राहुल भी क्या कभी पिताकी गोदमें पौढने योग्य नही है ।।६७।।

१४३ सुकुमार तेजवाले उन मनस्वीका मन अहो नृशंस और अतिदारुण है, जो कि हाय वह शत्रुको भी हर्षित करनेवाले मधुर-आलापी शिशुपुत्र को छोड गये ।।६८।।

१४४. मेरा भी यह अतिदारुण हृदय जरूर शिलामय या लोह-निर्मित है, जो कि अनाथकी तरह शोभारहित सुख-योग्य स्वामीके वन जाने पर भी विदीर्ण नही होता" ।।६९।।

१४५. इस प्रकार वहां पतिके शोकसे मूर्छित देवी चिन्ता करती बार-बार विलाप करती, स्वभावसे धीर भी सती शोकके कारण धैर्यको भूल संकोच छोड बैठी थी ।।७०।।

१४६. ततस्तथा शोकविलापविक्लवा
यशोधरा प्रेक्ष्य वसुधरागताम्।
महारविन्दैरिव वृष्टिताडितै
र्मुखै सवाष्पैर्वनिता विचुक्रुशुः ॥७१॥
—सर्ग ८

१७. मातृचेट (५० ई० पू०)

यह अश्वघोष और कनिष्कके समकालीन थे। कनिष्कके प्रयत्नसे जो बौद्ध महापरिषद् कश्मीरमें बैठी थी, उसमें इन्हें भी कनिष्कने निमंत्रित किया था, लेकिन वृद्धावस्थाके कारण उसमें योग देनेसे असमर्थता प्रकट करते हुए इन्होंने एक पत्र—"राजा कनिष्क लेख" लिखा था, जिसका अनुवाद तिब्बती भाषामें अब भी प्राप्य है। कनिष्क जिस बौद्ध-धर्मके

१. बुद्धकी महिमा—

१ स्वयभुवे नमस्तेऽस्तु प्रभूताद्भुतधर्मणे।
यस्य सख्याप्रभावाभ्यान्न गुणेष्वस्ति निश्चय ॥८॥
२. इयन्त इति नास्त्यन्त चेदृशा इति का कथा।
पुण्या इत्येव तु गुणान् प्रति ते मुखरा वयम् ॥९॥
३ विषह्यमविषह्य वेत्यवधूय विचारणाम्।
स्वयमभ्युपपन्नन्ते निराक्रन्द्रमिद जगत् ॥१॥
४ अव्यापारितसाधुस्त्व त्वमकारणवत्सल ।
असस्तुतसखश्च त्वमनवस्कृतबान्धव ॥२॥
५ स्वमासान्यपि दत्तानि वस्तुष्वन्येषु का कथा ।
प्राणैरपि त्वया साधो मानित प्रणयी जन ॥३॥
६. स्वै शरीरै शरीराणि प्राणै प्राणा शरीरिणा।
जिघासुभिरुपात्ताना क्रीतानि शतशस्त्वया ॥४॥

१४६ तव शोक-विलापसे विकल धरनीपर पडी यशोधराको उस तरह देखकर, वर्षाने ताडित महाकमलोसी अश्रुपूर्णमुखी वनितायें क्रंदन करने लगी ॥७१॥

—सर्ग ८

१७. मातृचेट (ईसवी प्रथम शताब्दी)

माननेवाले थे, वह "सर्वास्तिवाद" था। उस समय अन्तः सलिला नदीकी तरह महायानके कितने ही विचार जहां-तहां भले ही प्रचलित होने लगे हों, लेकिन अभी उसे यह नाम भी नहीं मिला था, न गधार-कश्मीरकी तरफ उसका पता था। अश्वघोष, मातृचेट दोनों सर्वास्तिवादी थे। उनका महायानसे कोई सम्बन्ध नहीं था, हां महायानियोंने भी उनका हमेशा सम्मान किया। मातृचेटका "अध्यर्धशतक" प्रसिद्ध ग्रंथ है।

१. बुद्धकी महिमा—

१ वहुत अद्भुत गुणोवाले हे स्वयभू, नमस्ते।
जिसके कि गुणोकी गणना और प्रभावोका निश्चय नही है ॥८॥

२. "इतना"का तो अन्त नही हैं, "ऐसा" इसकी वात ही क्या ?
पवित्र है, इतना ही तुम्हारे गुणोंके वारे में हम कह सकते हैं ॥९॥

३ सह्य असह्य इस कल्पनाको हटाकर,
तुमने कष्टपूर्ण इस जगत्को स्वय जाना ॥१॥

४ विना उपकार-व्यापारके साधु, विना कारणके तुम वत्सल हो।
विना प्रशसाके मित्र और न छोडनेवाले वन्धु हो ॥२॥

५. तुमने अपने मासको भी दे डाला, दूसरी वस्तुओकी तो वात ही क्या ? हे साधु, तुमने अपने प्राणो से भी प्रेमीजनोका मान किया ॥३॥

६ अपने शरीरसे देहधारियोंके शरीरोको, अपने प्राणोंसे प्राणोको, घातकोंके हाथमें गायोको सैंकड़ो वार तुमने खरीदा ॥४॥

७　न दुर्गतिभयान्नेष्टामभिप्रार्थयता गतिम् ।
केवलाशयशुद्ध्यैव शील सात्मीकृत त्वया ।।५।।

८　जिह्माना नित्यविक्षेपादृजूनान्नित्यसेवनात् ।।
कर्म्मणा परिशुद्धाना त्वमेकायनता गत ।।६।।

९　पीड्यमानेन वहुशस्त्वया कल्याणचेतसा ।
क्लेशेषु विवृतन्तेजो जन क्लिष्टोनुकम्पित ।।७।।

१०　परार्थे त्यजत प्राणान् या प्रीतिरभवत्तव ।
न सा नष्टोपलब्धेषु प्राणिषु प्राणिनाम्भवेत् ।।८।।

११　कदाचित् निरपेक्षस्य च्छिद्यमानस्य ते सकृत् ।
वधकेष्वपि सत्त्वेषु कारुण्यमभवत् प्रभो　।।९।।

१२　सम्यक्सम्बोधिबीजस्य चित्तरत्नस्य तस्य ते ।
त्वमेव धीर, सारज्ञो दूरे तस्येतरो जन ।।१०।।

१३　नाकृत्वा दुष्कर कर्म्म दुर्लभ लभ्यते पद ।
इत्यात्मनिरपेक्षेण वीर्यं सम्वर्द्धित त्वया ।।११।।

१४　विशेषोत्कर्षनियमो न कदाचिदभूत्तव ।
अतस्त्वयि विशेषाणा च्छिन्नस्तरतमक्रम ।।१२।।

१५　सुसुखेष्वपि सगोभूत् सफलेषु समाधिषु ।
न ते नित्यानुबद्धस्य महाकरुणया हृदि ।।१३।।

१६　त्वादृशान् पीडयत्येव नानुगृह्णाति तत्सुख ।
प्रणीतमपि सद्वृत्त यदसाधारण परै ।।१४।।

१७　विमिश्रात् सारमादत्त सर्व्वं पीतमकल्मषम् ।
त्वया भुक्त न भुक्त तु विषवत् परिवर्जितम् ।।१५।।

१८　क्रीणित रत्नसारज्ञ, प्राणैरपि सुभाषितम् ।
पराक्रान्त त्वया बोधौ तासु तासूपपत्तिषु ।।१६।।

७ न दुर्गतिके भयसे और न सुगतिकी इच्छासे,
केवल हृदय-शुद्धिके लिये ही तुमने शीलको आत्मसात् किया ॥५॥

८. कुटिल कर्मोको नित्य छोडते सरल कर्मोको नित्य सेवन करते,
परिशुद्ध कर्मोके तुम एक-आश्रय हुये ॥६॥

९. मगलचित्तवाले पीडित होते तुमने वहुत वार,
क्लेशो (मलो)के विपयमें अपने तेजको प्रकट किया और क्लेशयुक्त जनपर अनुकम्पा की ॥७॥

१० दूसरेके लिये प्राणोको छोडते जो खुशी तुम्हें हुई,
वह नप्ट हो फिर मिले प्राणियोंके विपयमें भी नही हो सकती ॥८॥

११. हे प्रभो, विना स्वार्थके काटे जाते तुम्हारे प्रति अनेक वार,
हिंसक प्राणियोंके हृदयमें भी करुणा हो आई ॥९॥

१२. हे धीर, उस परम ज्ञानके बीजवाले तुम्हारे
चित्तरत्नके तुम ही सारज्ञ हो, दूसरे जन उसमे दूर हैं ॥१०॥

१३. दुप्कर कर्म किये विना दुर्लभ पद नही मिलता,
यह सोच अपनी भी पर्वाह न कर तुमने पराक्रम वढाया ॥११॥

१४. विशेप(पुण्य)के उत्कर्पका नियम कभी भी तुम्हारे मनमें नही आया,
इसलिए तुम्हारे भीतरसे विशेपोंके कम-अधिकका ख्याल छिन्न हो गया ॥१२॥

१५ सुन्दर सफल समाधियोमें सुन्दर सुखोमें, नित्य-तत्पर
हृदयमें महाकरुणाके कारण तुम्हें आसक्ति नही हुई ॥१३॥

१६ वह सुख (भी) तुम्हारे जैसोपर अनुग्रह नही पीडन ही करता है,
सुन्दर उत्तम सदाचार भी, जो कि दूसरोंके लिये असाधारण हैं ॥१४॥

१७ तुमने मिश्रित वस्तुओंमे से सारको ग्रहण किया, सारे निर्मल सारको पिया। तुमने विपयुक्त भोगको छोड दिया ॥१५॥

१८. हे रत्नसारज्ञ, प्राणोको देकर भी तुमने सुभापितको खरीदा।
परमज्ञानके लिये तुमने नाना उपायोंसे पराक्रम किया ॥१६॥

१८. भास (२०० ई० पू०)

भास संस्कृतके ख्यातनामा प्राचीन नाटककार हैं। यद्यपि इनका नाम अपरिचित नहीं था, लेकिन इनकी कृतियां—वर्तमान शताब्दी में ही प्रकाश में आईं। इनके नाटकों में कितने ही महाभारत और रामायण की कथाओं को लेकर लिखे गये हैं, कुछ वत्सराज उदयन से सम्बन्ध रखते हैं, और कुछ दूसरी कथाओं को लेकर।

१ महाभारत-सम्बन्धी—(१) बाल चरित, (२) पंचरात्र, (३) मध्यमव्यायोग, (४) दूतवाक्य, (५) दूतघटोत्कच, (६) कर्णभार, (७) उरुभंग।

(ततः प्रविशति पद्मिनिका)

१ पद्मिनिका—मधुकरिके, मधुकरिके, आगच्छ तावच्छीघ्रम्।

२ मधुकरिका—हला, इयमस्मि। किं क्रियताम्।
पद्मिनिका—हला, किं न जानासि त्वं, भर्तृदारिका पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखितेति।

३. मधुकरिका—हा धिक्।
पद्मिनिका—हला, गच्छ शीघ्रम्, आर्यामावन्तिकां शब्दय। केवलं भर्तृदारिकायाः शीर्षवेदनामेव निवेदय, ततः स्वयमेवागमिष्यति।

४ मधुकरिका—हला, किं सा करिष्यति ?
पद्मिनिका—सा खल्विदानीं मधुराभिः कथाभिः भर्तृदारिकायाः शीर्षवेदनां विनोदयति।

५ मधुकरिका—युज्यते। कुत्र शयनीयं रचितं भर्तृदारिकायाः ?
पद्मिनिका—समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा। गच्छेदानीं त्वं। अहमपि भर्त्रे निवेदनार्थमार्यवसन्तकमन्वेषे।

१८. भास (२०० ई० पू०)

२. रामायण—(८) प्रतिमा, (९) अभिषेक।

३ उदयन-सम्बन्धी—(१०) स्वप्नवासवदत्ता, (११) प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण।

४. अन्य—(१२) अविमारक, (१३) दरिद्रचारुदत्त।

इनके नाटकों में स्वप्नवासवदत्त और प्रतिज्ञायौगन्धरायण सबसे श्रेष्ठ हैं।

स्वप्नवासवदत्त

(तब पद्मिनिका प्रवेश करती है)

१ पद्मिनिका—मधुकरिके, मधुकरिके, आ तो जल्दीसे।

(प्रवेश करके)

२ मधुकरिका—अरी, यह हूँ मैं, क्या करना है ?
पद्मिनिका—अरी, क्या तू नही जानती, कि भर्तृदारिका (स्वामि-पुत्री) पद्मावती सिरदर्दसे दुखी है।

३ मधुकरिका—हा, धिक्कार।
पद्मिनिका—अरी, जल्दी आ, आर्या अवन्तिकाको बुला। केवल भर्तृदारिकाके सिरदर्दको ही अर्ज करना है, वह स्वय ही आ जायेंगी।

४ मधुकरिका—अरी, वह क्या करेंगी ?
पद्मिनिका—वह इस समय मधुर कथाओंसे भर्तृदारिकाके सिरदर्दको भुलवायेंगी।

५ मधुकरिका—ठीक है। भर्तृदारिकाकी शय्या कहाँ लगाई ?
पद्मिनिका—समुद्रकुटीमें शय्या लगी है। जा इस समय तू। मैं भी स्वामीको निवेदन करनेके लिये आर्य वसन्तकको ढूढती हूँ।

६ मधुकरिका—एव भवतु। (निष्क्रान्ता)
पद्मिनिका—कुत्रेदानीमार्यवसन्तक प्रेक्षे?
७ विदूषक —(पद्मिनिका विलोक्य) अद्य खलु देवीवियोग-विधुरहृदयस्य तत्र भवतो वत्सराजस्य पद्मावतीपाणि-ग्रहणसमीहितस्यात्यन्तसुखावहे मगलोत्सवे मदनाग्नि-दाहोऽधिकतर वर्धते। (तत प्रविशति विदूषक)
अयि पद्मिनिके, पद्मिनिके, किमिह वर्तसे?
पद्मिनिका—आर्य, वसन्तक, किं न जानासि त्व, भर्तृदारिका पद्मावती शीर्षवेदनया दु खितेति।
८ विदूषक —भवति, सत्य, न जानामि?
पद्मिनिका—तेन हि भर्त्रे निवेदयैनाम्। यावदहमपि शीर्षानुलेपनार्थ त्वरयामि।
विदूषक —कुत्र शयनीय रचित पद्मावत्या?
पद्मिनिका—समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा।
९ विदूषक —गच्छतु भवती। यावदहमपि तत्र भवते निवेदयिष्यामि।

(निष्क्रान्तौ)

(तत प्रविशति राजा।)

१०. राजा—

श्लाघ्यामवन्तिनृपते सदृशी तनूजा,
कालक्रमेण पुनरागतदारभार।
लावण्यके हुतवहेन हृतागयष्टिं,
ता पद्मिनी हिममहतामिव चिन्तयामि॥१॥

(प्रविश्य)

६ मधुकरिका—ऐसा ही हो। (निकल गई)
पद्मिनिका—कहाँ इस समय आर्य वसन्तकको देखूँ ?

(तब विदूषक प्रवेश करता है)

७ विदूषक—आज देवीके वियोगसे दुःखित-हृदयवाले आप वत्सराज को पद्मावतीके पाणिग्रहणके अतिसुखद मगलोत्सवमें कामाग्निका दाह अत्यधिक बढ रहा है। (पद्मिनिकाको देखकर) अरी पद्मिनिके, अरी पद्मिनिके, तू कैसे यहाँ है ?
पद्मिनिका—आर्य वसन्तक, क्या तुम नही जानते, भर्तृदारिका पद्मावती सिरदर्दसे दुःखी है ?

८ विदूषक—भवति (आप), सचमुच, मैं नही जानता !
पद्मिनिका—तो यह बात स्वामीसे अर्ज करो। तब तक मैं भी सिर-के लेपके लिये जल्दी कर रही हूँ।
विदूषक—पद्मावतीकी शय्या कहाँ लगाई ?
पद्मिनिका—समुद्रकुटीमें सेज बिछी है।

९ विदूषक—आप जाइये, मैं भी तब तक आप (महाराज) को निवेदन करूँ।

(दोनो बाहर चले गये)

(प्रवेशक समाप्त)

(तब राजा प्रवेश करता है)

१० राजा—
कालक्रमसे फिर पत्नीके भारवाला (मैं) लावाणक (गाँव) में आगसे छिने शरीरवाली, अवन्तिराजकी श्लाघनीय-समानरूपा पुत्री उस पद्मिनी (वासवदत्ता) के लिये मैं हिमसे निहतपद्मिनीकी तरह सोचता हूँ॥१॥

(प्रवेश करके)

११ विदूषक—त्वरता त्वरता तावत् भवान्।
राजा—किमर्थम्?

१२ विदूषक—तत्र भवती पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखिता
राजा—कैवमाह?

१३ विदूषक—पद्मिनिकया कथितम्।
राजा—भो, कष्टम्—

रूपश्रियासमुदिता गुणतश्च युक्ता,
लब्ध्वा प्रिया मम तु मन्द इवाद्य शोकः।
पूर्वाभिघातसरुजोऽप्यनुभूतदुःख,
पद्मावतीमपि तथैव समर्थयामि ॥२॥
अथ कस्मिन् प्रदेशे वर्तते पद्मावती?

१४ विदूषक—समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा।
राजा—तेन हि तस्य मार्गमादेशय।

१५ विदूषक—एत्वेतु भवान्।

(उभौ परिक्रामतः)

विदूषक—इद समुद्रगृहम्। प्रविशतु भवान्।
राजा—पूर्व प्रविश।

१६ विदूषक—भो, तथा। (प्रविश्य) अविहा तिष्ठतु
तिष्ठतु तावत् भवान्।
राजा—किमर्थम्?
विदूषक—एष खलु दीपप्रभावसूचितरूपो वसुधातले
परिवर्तमानः काकोदर।

११ विदूपक—आप जल्दी करें, जल्दी करें।

राजा—क्यो ?

१२ विदूषक—पद्मावती सिरदर्दसे पीडित है।

राजा—किसने यह कहा ?

१३ विदूपक—पद्मिनिकाने कहा।

राजा—हा कष्टम्—

रूपकी शोभासे सपन्न और गुणसे सयुक्त प्रियाको पाकर आज तो मेरा शोक मन्द हुआ था।

पहलेके आघातसे रुग्ण दु:ख अनुभव किये मैं, पद्मावतीको भी उसी तरह मानता हूँ॥२॥

तो पद्मावती किस स्थानमें है ?

१४. विदूपक—समुद्रकुटीमें शय्या बिछी है।

राजा—तो उसका रास्ता बतलाओ।

१५. विदूपक—आइये, आइये आप।

(दोनो परिक्रमा करते हैं)

विदूपक—यह समुद्रकुटी है। आप प्रवेश करें।

राजा—पहले तुम प्रवेश करो।

१६. विदूपक—हे, अच्छा (प्रवेश करके)। हो-हो, ठहरें आप।

राजा—क्यो ?

विदूपक—यह दीपके प्रकाशसे सूचित होते शरीरवाला हिलता साँप धरती पर है।

१७ राजा—(प्रविश्यावलोक्य सस्मितम्) । अहो सर्पव्यक्ति-
वैधेयस्य ।

ऋज्वायता हि मुखतोरणलोलमाला,
भ्रष्टा क्षितौ त्वमवगच्छसि मूर्ख, सर्पम् ।
मन्दानिलेन निशि या परिवर्तमाना,
किञ्चित् करोति भुजगस्य विचेष्टितानि ॥३॥

१८ विदूपक—(निरूप्य) सुष्टु भवान् भणति । न खल्वय
काकोदर । (प्रविश्यावलोक्य) तत्र भवती पद्मावती
इहागत्य निर्गता भवेत् ।
राजा—वयस्य, अनागतया भवितव्यम् ।

१९ विदूषक—कथ भवान् जानाति ?
राजा—किमत्र ज्ञेयम् ? पश्य—

शय्या नावनता तथाऽऽस्तृतसमा न व्याकुलप्रच्छदा,
न क्लिष्ट हि शिरोपधानममल शीर्षाभिघातौषधैं ।
रोगे दृष्टिविलोभन जनयितु शोभा न काचित् कृता,
प्राणी प्राप्य रुजा पुनर्न शयन शीघ्र स्वय मुचति ॥४॥

२० विदूषक—तेन ह्यस्या शय्याया मुहुर्तकमुपविश्य तत्र
भवती प्रतिपालयतु भवान् ।
राजा—बाढम् । (उपविश्य) वयस्य, निद्रा मा बाधते ।
कथ्यता काचित् कथा ।
विदूषक—अह कथयिष्यामि । हुङ्कृति करोतु अत्र
भवान् ।
राजा—बाढम् ।

१७. राजा—(प्रवेश कर देखकर, मुस्कुराते हुये) अहो, मूर्खकी सर्पकी पहचान !

प्रधान द्वारकी जमीनपर गिरी चचल सीधी,
लम्बी मालाको मूर्ख, तू सर्प समझता है।
जो कि रातको मन्द वायुने हिलती,
कुछ साँपका अनुकरण करती है ॥३॥

१८ विदूपक—(देखकर) आप ठीक कहते है। (प्रवेश करके देखकर) पद्मावती यहाँ आकर चली गई होगी।

राजा—मित्र, शायद अभी न आई हो।

१९. विदूपक—आप कैसे जानते है ?

राजा—यहाँ जान्नेको क्या है ? देखो—

शय्या झुकी नही है और बिछी चादर अस्तव्यस्त नही है,
सिरके लेपकी औपधोंसे निर्मल तकिया मलिन नही हुआ है।
रोगमें दृष्टि-लोभ पैदा करनेके लिये कोई सजावट नही की गई,
शय्यापर पहुँचकर प्राणी रोगसे स्वय उसे शीघ्र नही छोडता ॥४॥

२०. विदूपक—तो इस शय्यापर क्षणभर बैठकर आप उनकी प्रतीक्षा करें।

राजा—अच्छा (बैठकर) मित्र, नीद मुझे सता रही है। कोई कथा कहो।

विदूपक—मैं कहूँगा, आप उसपर हुँकार भरें।

राजा—अच्छा।

२१ विदूपक—अस्ति नगर्युज्जयिनी नाम। तत्राधिकरमणीयान्युदकस्नानानि वर्तन्ते किल।
राजा—कथमुज्जयिनी नाम ?

२२ विदूपक—यद्यनभिप्रैतेपा कथा, अन्या कथयिष्यामि।
राजा—वयस्य, खलु नानभिप्रैतेषा कथा। किन्तु,

स्मराम्यवन्त्याधिपते सुताया ,
प्रस्थानकाले स्वजन स्मरन्त्या ।
वाष्प प्रवृद्ध नयनान्तलग्न,
स्नेहान्ममैवोरसि पातयन्त्या ॥५॥

अपि च

वहुशोऽप्युपदेशेषु यया मामीक्षमाणया।
हस्तेन स्रस्तकोणेन कृतमाकाशवादितम् ॥६॥

२३ विदूषक—भवतु, अन्या कथयिष्यामि। अस्ति नगर ब्रह्मदत्त नाम। तत्र किल काम्पिल्यो नाम राजा।
राजा—किमिति ? किमिति ?

२४ विदूपक—(पुनस्तदेव पठति)
राजा—मूर्ख, राजा ब्रह्मदत्त , नगर काम्पिल्यमित्यमिधीयताम्।

२५ विदूपक—कि राजा ब्रह्मदत्त , नगर काम्पिल्यम् ?
राजा—एवमेतत्।

२६. विदूपक—राजा ब्रह्मदत्त, नगर काम्पल्यम् (इति वहुश तदेव पठित्वा) इदानी शृणोतु भवान्। अयि सुप्तोऽत्र भवान्। अतिशीतलेय वेला। आत्मन प्रावारक गृहीत्वागमिष्यामि। (निष्क्रान्त)

(तत प्रविशति वासवदत्ता अवन्तिकावेषेण चेटी च)
चेटी—एत्वेत्वार्या। दृढ खलु भर्तृदारिका शीर्पवेदनया दु खिता।

२१ विदूषक—उज्जयिनी नामक नगरी है। वहाँ अतिरमणीय पानीके स्नान हैं।
राजा—क्या उज्जयिनी ?

२२ विदूषक—यदि यह कथा पसन्द नही है, तो दूसरी कहूँगा।
राजा—मित्र, यह कथा अप्रिय नही है, किन्तु—
मैं प्रस्थानके समय अवन्तिराजकी सुताको,
स्वजनोका स्मरण करते याद करता हूँ।
आँखके छोरमें बढे हुये आँसुओको वह
स्नेहसे मानो मेरे ही हृदयपर गिरा रही थी ॥५॥
और भी,
बहुत प्रकार के संगीत-उपदेशोके समय मुझे देखती हुई जिनने मिजराव-युक्त हाथोंसे सूना वादन बजाया था ॥६॥

२३ विदूषक—रहने दो, दूसरी कहूँगा। ब्रह्मदत्त नामक नगर है। वहाँ काम्पिल्य नामक राजा है।
राजा—क्या, क्या ?

२४ विदूषक—(फिर उसीको कहता है)
राजा—मूर्ख, राजा ब्रह्मदत्त, नगर काम्पिल्य ऐसा कहो।

२५ विदूषक—क्या राजा ब्रह्मदत्त, नगर काम्पिल्य ?
राजा—हाँ, ऐसा ही है यह।

२६ विदूषक—राजा ब्रह्मदत्त, नगर काम्पिल्य (बहुत बार उसीको दोहराते) अब आप सुतिये। अरे, आप यहाँ सो गये। यह बडी ठडकी वेला है। अपने दुशालेको लेकर आता हूँ। (निकल गया)।
(तब आवन्तिकाके भेसमें वासवदत्ता और दासी प्रवेश करती है)
चेटी (दासी)—आइये, आइये आर्या। भर्तृदारिका सिरदर्दसे बहुत पीडित हैं।

२७ वासवदत्ता—हा धिक्, कुत्र शयनीय रचित पद्मावत्या ।
चेटी—समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा ।
वासवदत्ता—तेन ह्यग्रतो याहि ।
(उभे परिक्रामत)
चेटी—इद समुद्रगृहकम् । प्रविशत्वार्या । यावदहमपि शीर्षानुलेपनार्थं त्वरयामि । (निष्क्राता)

२८ वासवदत्ता–(शयन नाटयति)अहो अकरुणा खल्वीश्वरा मे । विरहपर्युत्सकस्यार्यपुत्रस्य विश्रामस्थानभूतेयमपि नाम पद्मावत्यस्वस्था जाता । यावत् प्रविशामि । (प्रविश्यावलोक्य) अहो परिजनस्य प्रमाद । अस्वस्थां पद्मावती केवल दीपसहाया कृत्वा परित्यजति । इय पद्मावत्यवसुप्ता । यावदुपविशामि । अथवान्यासन-परिग्रहेणाल्प इव स्नेह प्रतिभाति । तदस्या शय्याया-मुपविशामि । (उपविश्य) किनु खल्वेतया सहोपविशन्त्या अद्य प्रह्लादितमिव मे हृदयम् ? दिष्ट्या विच्छिन्नसुख-निश्वासा । निवृत्तरोगया भवितव्यम् । अथवैकदेशस-विभागतया शयनीयस्य सूचयति मामालिंगेति । यावच्छ-यिष्ये । (शयन नाटयति)
राजा—(स्वप्नायते) हा वासवदत्ते !

२९ वासवदत्ता—(सहसोत्थाय) हम् आर्यपुत्र, न खलु पद्मावती । किन्नु खलु दृष्टास्मि ! महान् खल्वार्ययौगन्ध-रायणस्य प्रतिज्ञाभारो मम दर्शनेन निष्फल सवृत्त ।
राजा—हा अवन्तिराजपुत्रि,

२७ वासवदत्ता—हा धिक् । कहाँ विछौना किया पद्मावतीके लिये।

चेटी—समुद्रकुटीमें शय्या लगाई है।

वासवदत्ता—तो आगे-आगे चल।

(दोनो परिक्रमा करती हैं)

चेटी—यह समुद्रकुटी है। आर्या प्रवेश करें। जव तक मैं भी सिरके लेपको जल्दी लाती हूँ। (निकल गई)

२८ वासवदत्ता—अहो मेरे देवता निष्ठुर हैं। बिरह-उत्सुक आर्य-पुत्रके विश्राम-स्थानमी यह पद्मावती भी ऐसी अवस्थाको प्राप्त हुई। (प्रवेश करके देखकर) अहो, परिजनोकी भूल। अस्वस्था पद्मावतीको केवल दीपकको साथी वना छोड दिया है। यह पद्मावती सोई हुई है। तो मै भी वैठती हूँ ।

अथवा दूसरा आसन ग्रहण करनेसे थोडा ही स्नेह मालूम होता है, इसलिये इसी शय्यापर वैठती हूँ। (वैठकर) इसके साथ वैठनेमें आज क्यो मेरा हृदय आह्लादित सा है। अहो, (यह तो) निरन्तर तथा सुखपूर्वक साँस ले रही है। तो रोग हट गया होगा। अथवा एक ओर की हुई शय्या "मुझे आलिंगन कर" को सूचित कर रही है। तो सोती हूँ। (सोनेका अभिनय करती है)

राजा—(सपनाता है,) हा वासवदत्ते,

२९ वासवदत्ता—एकाएक उठकर हम्म्, आर्यपुत्र है, पद्मावती नही। मैंने क्या देख लिया? आर्य यौगन्धरायण द्वारा मेरे ऊपर रक्खा प्रतिज्ञा का भारी भार मेरे (इस) देखने से निष्फल हो गया।

राजा—हा, अवन्तिराजपुत्री,

३० वासवदत्ता—दिष्ट्या स्वप्नायते खल्वार्यपुत्र। नात्र कश्चिज्जन यावन्मुहुर्तक स्थित्वा दृष्टि हृदय च तोपयामि

राजा—हा प्रिये, हा प्रियशिष्ये, देहि मे प्रतिवचनम्।

३१ वासवदत्ता—आलपामि भर्त आलपामि।

राजा—कि कुपितासि ?

३२ वासवदत्ता—नहि नहि, दु खितास्मि।

राजा—यद्यकुपिता, किमर्थ नालकृतासि ?

३३ वासवदत्ता—इत पर किम् ?

राजा—कि विरहिका स्मरसि ?

३४ वासवदत्ता—आ अपेहि, इहापि विरहिका।

राजा—तेन हि विरहिकार्थ भवती प्रसादयामि। (हस्तौ प्रसारयति)

३५ वासवदत्ता—चिर स्थितास्मि कोऽपि मा पश्येत्। तद् गमिष्यामि। अथवा, शय्यावलम्बितमार्यपुत्रस्य हस्त शयनीये आरोप्य गमिष्यामि। (तथा कृत्वा निष्क्रान्ता)

राजा—(सहसोत्थाय) वासवदत्ते, तिष्ठ तिष्ठ। हा धिक्—

निष्क्रामन् सभ्रमेणाथ द्वारपक्षेण ताडिता।
ततो व्यक्त न जानामि भूतार्थोय मनोरथ ॥७॥

(प्रविश्य)

३६ विदूषक—अयि प्रतिबुद्धोऽत्र भवान्।

राजा—वयस्य, प्रियमावेदय, धारयते खलु वासवदत्ता।

३० वासवदत्ता—अहो, आर्यपुत्र सपना रहे है। यहाँ कोई आदमी नही है। तो क्षण भर ठहर कर नेत्र और हृदयको तुष्ट कर लू।

राजा—हा प्रिये शिष्ये, मुझे उत्तर दो।

३१ वासवदत्ता—वोलती हूँ, स्वामी, वोलती हूँ।

राजा—क्या कुपित हो ?

३२ वासवदत्ता—नही, नही, दु खित हूँ।

राजा—यदि कुपित नही हो, तो क्यो आभूपण-अलकृत नही हो ?

३३ वासवदत्ता—इसके वाद क्या (कहूँ) ?

राजा—क्या विरहिका को याद करती हो ?

३४ वासवदत्ता—(रोपके साथ) आह, हटो, यहाँ भी विरहिका की वात ?

राजा—तो विरहिकाके लिये आपसे क्षमा माँगता हूँ। (दोनो हाथोको फैलाता है)

३५ वासवदत्ता—देरसे खडी हूँ। कोई मुझे देख लेगा। तो जाऊँगी, अथवा आर्यपुत्रके नीचे लटकते हाथको विस्तरेपर रखकर जाऊँगी। (वैसा करके गई) राजा—(एकाएक उठकर) वासवदत्ते, ठहर, ठहर। हा घिक्कार। जल्दी-जल्दी निकलते हुये द्वारकी किवाडसे ताडित हुई थी। उससे साफ नही जानता, कि यह मनोरथ सत्य है ।।७।।

(प्रवेश करके)

३६ विदूपक—अरे आप जाग गये ?

राजा—मित्र, खुशीकी वात तुझे वतलाता हूँ, वासवदत्ता जीती है।

३७ विदूपक—अविहा वासवदत्ता। कुत्र वासवदत्ता ? चिरात् खलूपरता वासवदत्ता।

राजा—वयस्य ? मा मैव,

शय्यायामवसुप्त मा वोधयित्वा सखे गता।
दग्धेति ब्रुवता पूर्वं वचिताऽस्मि रुमण्वता॥८॥

३८ विदूषक—अविहा असभावनीयमेतत्। उदकस्नाना-सकीर्तनेन तत्र भवती चिन्तयता सा स्वप्ने दृष्टा भवेत्।

राजा—एवम्—

यदि तावदय स्वप्नो धन्यमप्रतिवाधनम्।
अथाय विभ्रमो वा स्याद्विभ्रमो ह्यस्तु मे चिरम्॥९॥

३९ विदूषक—भो वयस्य, अस्मिन् राजकुलेऽवन्ति-सुन्दरी नाम यक्षिणी प्रतिवसति। सा त्वया दृष्टा भवेत्।

४०. राजा—न न,

स्वप्नस्यान्ते विबुद्धेन नेत्रविप्रोक्षिताजनम्।
चारित्रमपि रक्षन्त्या दृष्ट दीर्घालक मुखम्॥१०॥

अपि च वयस्य, पश्य पश्य,

योऽय सन्त्रस्तया देव्या तया वाहुर्निपीडित।
स्वप्नेऽप्युत्पन्नसस्पर्शो रोमहर्षं न मुञ्चति॥११॥

४१ विदूषक—मेदानी भवाननर्थं चिन्तयित्वा। एत्वेतु भवान्, चतु शाल प्रविशाव।

३७ विदूपक—अहो वासवदत्ता ! कहाँ वासवदत्ता ? चिर हुआ वासवदत्ता तो मर गई।

राजा—मित्र, नही ऐसा नही।

शय्यापर सोये हुये मुझे जगाकर गई, मित्र।

पहिले "जल गई" यह कहकर रुमण्वान्ने मुझे धोखा दिया ॥८॥

३८ विदूपक—अविहा, यह असम्भव नही है। हाँ, उदकस्नानके कथन से उनकी चिन्ता करते आपको वह स्वप्नमें दिखी होगी।

राजा—ऐसा ?

यदि यह स्वप्न है, तो न जागना ही धन्य होता।

अथवा यदि यह मतिभ्रम है, तो यह भ्रम चिरतक रहता ॥९॥

३९ विदूपक—हे मित्र, इस राजमहलमें अवन्तिसुन्दरी नामक एक यक्षिणी रहती है, उसें तुमने देखा होगा।

४० राजा—ना, ना,

स्वप्नके अन्तमें जाग नेत्रसे पुछे अजनवाली,

सदाचारकी रक्षा करती उसके लम्बे केशोवाले मुखको मैंने देखा ॥१०॥

और भी मित्र, देखो देखो,

उस सत्रस्त देवीने जो स्वप्नमे भी छुआ

यह वाहु रोमाच नही छोडता ॥११॥

४१ विदूपक—इस समय आप अनर्थ चिन्तन न करें। आइये, आइये आप। चतु शालामे प्रवेश करें।

(प्रवेश करके)

४२ काचुकीय —जयत्वार्यपुत्र ।(प्रविश्य)अस्माक महाराजो दर्शको भवन्तमाह–एष खलु भवतोऽमात्यो रुमण्वान् महता वलसमुदयेनोपयात खल्वारुणिमभिघातयितुम्। तथा हस्त्यश्वरथपदातीनि मामकानि विजयागानि सन्नद्धानि। तदुत्तिष्ठतु भवान्। अपि च—

भिन्नास्ते रिपवो, भवद्‌गुणरता पौरा समाश्वासिता.।
पार्ष्णी यापि भवत्प्रयाणसमये तस्या विधान कृतम्।
यद्यत् साध्यमरिप्रमाथजनन तत्तन्मयानुष्ठित,
तीर्णा चापि वलैर्नदी त्रिपथगा वत्साश्च हस्ते तव ।।१२।।

४३ राजा–(उत्थाय) वाढम्। अयमिदानी —

उपेत्य नागेन्द्रतुरगकीर्णे,
तमारुणि दारुणकर्मदक्षम्।
विकीर्णवाणौघतरगभगे,
महार्णवाभे युधि नाशयामि ।।१३।।

(निष्क्रान्ता सर्वे)

(इति पचमोऽक)

४२ कञ्चुकी—जय हो आर्यपुत्रकी। हमारे महाराज दर्शक आपसे कहते हैं—"आपके अमात्य रुमण्वान् वडी सेना के साथ आरुणीको मारनेके लिये आये। वैसे ही मेरे हाथी-घोडे, रथ और पैदल की विजय-सेनाएँ तैयार हैं। सो आप उठें। और भी—
तुम्हारे रिपु छिन्न-भिन्न हो गये, आपके गुणमें अनुरक्त पुरवासी धैर्ययुक्त हुये। आपके प्रयाणके समयके हरावलका भी विधान कर दिया। शत्रुके उच्छेदनके लिये जो-जो करणीय था, सो-सो मैंने कर दिया। सेनायें गगा नदी पार हो गईं और वत्सदेश तुम्हारे हाथमें है" ॥१२॥

४३ राजा—उठकर अच्छा, अव यह,—
गजेन्द्रराजो और तुरगोंसे आकीर्ण
विखरे हुये वाणोंके उग्र तरग-भगोवाले,
महासमुद्र जैसे युद्धमे पहुँचकर,
उस आरुणिका मै नाश करता हूँ ॥१३॥

(सव निकल गये)

(पचम अक समाप्त)

१९. आर्यशूर (२०० ई० पू०)

आर्यशूर ने जातकोकी कथाओ को लेकर सस्कृतमें गद्य-पद्यमय "जातकमाला" लिखी। इसमें ३८ जातक सुन्दर काव्य शैली तथा भव्य साहित्यिक भाषा में लिखे गये है। इनकी एक दूसरी पुस्तक 'पारमितासमास'

जातकमाला

सुपारगजातकम्

१. बोधिसत्त्वभूत किल महासत्त्व परमनिपुणमतिर्नौसारथिर्बभूव। धर्मता ह्येषा बोधिसत्वाना प्रकृतिमेधावित्वाद्यदुत य य शास्त्रातिशय जिज्ञासन्ते कलाविशेष वा, तस्मिस्तस्मिन्नधिकतरा भवन्ति मेधाविनो जगत। अथ स महात्मा विदितज्योतिर्गतित्वाद्दिग्विभागेष्वसमूढमति, परिविदितनियतागन्तुकौत्पातिकनिमित्त, कालाकालक्रमकुशलो, मीनतोयवर्णभौमप्रकारशकुनिपर्वतादिभिश्चिह्नै सूपलक्षितसमुद्रदेश, स्मृतिमान्विजिततन्द्रानिद्र, शीतोष्णवर्षादिपरिखेदसहिष्णुरप्रमादी, धृतिमानाहरणापहरणकुशलत्वादीप्सित देश प्रापयिता वणिजामासीत्। तस्य परमसिद्धयात्रत्वात्**सुपारग** इत्येव नाम बभूव। तदध्युषित च पत्तन **सुपारग**मित्येवाख्यातमासीत्, यदेतर्हि **सुपारग**मिति ज्ञायते। सोऽपि मगलसम्मतत्वाद् वृद्धत्वेऽपि सायात्रिकैर्यात्रासिद्धिकामैर्वहनमभ्यर्थनसत्कारपुर सरमारोप्यते स्म।

२ अथ कदाचिद् भरुकच्छादभिप्रयाता **सुवर्णभूमि**वणिजो यात्रासिद्धिकामा सुपारग पत्तनमुपेत्य त महासत्व वहनारोहणार्थमभ्यर्थयामासु.।

१९. आर्यशूर (२०० ई० पू०)

पारमिताओ पर छ सर्गों, ३६४ श्लोको में "सरल तथा सुबोध शैली में" रची गई हैं।

(१. हारवर्ड प्राच्य ग्रंथमालामें डा० कर्न द्वारा सम्पादित, २. रोमसे अनाली लतेरानेंसी, जिल्द १०, १९५० में प्रकाशित।)

जातकमाला

सुपारग जातक

१ उस समय महापुरुष बोधिसत्त्व हो अत्यन्त निपुणबुद्धिवाले नाविक सार्थवाह थे। स्वभावत मेधावी होनेसे बोधिसत्त्वोकी यह धर्मता (प्रकृति) है, जो कि वह जिस-जिस विशेष शास्त्र या विशेष कलाको जानना चाहते है, उस-उसमें ससारमें अति मेधावी होते है। तब वह महात्मा ताराकी गतिके जानकार होनेसे दिशाओके पहचाननेमें न भ्रम करनेवाले, नियमपूर्वक या आकस्मिक उत्पातके लक्षणोंके जानकार, काल-अकालके क्रममें कुशल, मछली-जलके रग, भूमिके प्रकार, पक्षी-पर्वत आदि चिन्हो द्वारा समुद्रके देशोको अच्छी तरह जानते याद रखनेवाले, तन्द्रा-निद्रा जीते, शीत-उष्ण-वर्षा आदिके खेदको सहनेवाले, प्रमादरहित, धैर्यवान्, लेने-छोड़नेमें चतुर होनेसे वनियोको इच्छित देशमें पहुँचानेवाले थे। यात्रामें परमसिद्ध होनेसे "सुपारग" यही उनका नाम पड़ गया था। उनके और उनके निवास-वाले वन्दरगाहको सुपारग यही कहकर (पुकारा) जाता था, जोकि आजकल सुपारग (सुपारा) के नामसे ज्ञात है। मगल माने जानेके कारण उन्हें वुढापेमें भी यात्राकी सिद्धि चाहनेवाले पोत-वणिक् प्रार्थना-सत्कार-सहित पोत-वहनके कार्यमें लगाते थे।

२ एक समय भडौंचसे प्रस्थान किये वर्मके वनियोने यात्राकी सिद्धिकी कामनासे सुपारगपत्तनमें आकर उस महापुरुषसे पोतपर आरोहण करनेके लिए प्रार्थना की।

स तानुवाच—

३ "जराज्ञया संह्रियमाणदर्शने श्रमाभिपातैः प्रतनूकृतस्मृतौ।
स्वदेहकृत्येऽप्यवसन्नविक्रमे सहायता का परिशङ्क्यते मयि" ॥१॥

४ वणिज ऊचुः—"विदितेयमस्माकं युष्मच्छरीरावस्था। सत्यपि च वः पराक्रमासहत्वे नैव वयं कर्मविनियोगेन युष्मानायासयितुमिच्छामः। किं तर्हि

५ त्वत्पादपङ्कजसमाश्रयसत्कृतेन,
माङ्गल्यतामुपगता रजसा त्वियं नौः।
दुर्गे महत्यपि च तोयनिधावमुष्मिन्,
स्वस्ति व्रजेदिति भवन्तमुपागताः स्म" ॥२॥

६ अथ स महात्मा तेषामनुकम्पया जराशिथिलशरीरोऽपि तद्वहनमारुरोह। तदधिरोहणाच्च प्रमुदितमनसः सर्व एव ते वणिजो बभूवुर्- "नियतमस्माकमुत्तमा यात्रासिद्धिरि"ति। क्रमेण चावजगाहिरे विविधमीनकुलविचरितमनिभृतजलकलकलारावमनिलबलविलासप्रविचलिततरङ्गं बहुविधरत्नैर्भूमिविशेषैरर्पितरङ्गं फेनावलीकुसुमदामविचित्रमसुरवलभुजगभवनं दुरापपातालमप्रमेयतोयं महासमुद्रम्।

७ अथेन्द्रनीलप्रकराभिनीलं सूर्यांशुतापादिव खं विलीनम्।
समन्ततोऽन्तर्हिततीरलेखमगाधमम्भोनिधिमध्यमीयुः ॥३॥

८ तेषां तत्रानुप्राप्तानां सायाह्नसमये मृदुभूतकिरणचक्रप्रभावे सवितरि महदौत्पातिकं परमभीषणं प्रादुरभूत्।

९ विभिद्यमानोर्मिविकीर्णफेनश्चण्डानिलास्फालनभीमनादः।
नैभृत्यनिर्मुक्तसमग्रतोयः क्षणेन रौद्रः समभूत्समुद्रः ॥४॥

सुपारगने उनसे कहा —

३. "वुढापेकी आज्ञासे दृष्टि-क्षीण, थकावटके जोरसे स्मृति-क्षीण, अपने देहकृत्यमें भी शक्तिहीन मुझसे तुम किस सहायताकी आशा रखते हो ॥१॥"

४. वनियोने कहा—"तुम्हारी ऐसी शारीरिक अवस्था हमें विदित है। आपके परिश्रमके न सह सकने पर भी हम इस तरह काम में लगाकर तकलीफ देना नही चाहते। फिर क्यो—

५ तुम्हारे चरणकमलके आश्रयसे पूजित धूलिसे, यह नौका मगलमय हो गई। इस दुर्गम महान् सागरमें भी, मगलपूर्वक यात्रा हो, यह सोच हम आपके पास आये" ॥२॥

६ तव वह महात्मा वुढापेमे शिथिल-शरीर भी उनपर कृपा करते उनके पोतपर आरूढ हुए। उनके चढनेसे यह सोचकर वे सभी वनिये मुदित-मन हुए, कि "अवश्य हमारी यात्रा की सिद्धि उत्तम होगी।" क्रमश नाना मीनोंके विचरणस्थान, निरन्तर जलके कलरवसे युक्त, वायुके वलके विलाससे चलित तरग सहित, वहुत प्रकारके रत्नो तथा विशेप भूमियोंसे पाये रगवाले फेनोकी कुसुममालासे विचित्र, असुरो-भुजगोंके भवन, तल-रहित अपरिमित जलवाले महासमुद्रको उन्होने अवगाहन किया।

७ फिर वह नीलम-समूहसे अतिनील-सूर्य-किरणोके तापसे मानो आकाशमें विलीन, चारो ओर छिपी तीरलेखावाले अगाव समुद्रके मध्यमें पहुँचे ॥३॥

८ उनके वहाँ पहुँचनेपर शामके समय सूर्य-किरणोंके प्रभावके नरम होनेके समय अति-भीपण महान् उत्पात प्रकट हुआ।

९ फूटती तरगो द्वारा विखेरे फेनोवाला, प्रचड वायुके हिलानेका भयकर नाद, विल्कुल मुक्त, सारे जलवाला समुद्र एक क्षणमें ऐसा विकराल हो गया ॥४॥

१० उत्पातवाताकलितैर्महद्भिस्तोयस्थलैर्भीमरयैर्भ्रमद्भि
युगान्तकालप्रचलाचलेव भूमिर्वभूवोग्रवपु समुद्र ॥५॥

११. विद्युल्लतोद्भासुरलोलजिह्वा नीला भुजगा इव नैकशीर्षा:
आवव्रुरादित्यपथ पयोदा प्रसक्तभीमस्तनितानुनादा ॥६॥

१२ घनैर्घनैरावृतरश्मिजाल सूर्य क्रमेणास्तमुपारुरोह।
दिनान्तलब्धप्रसर समन्तात्तमो घनीभावमिवाजगाम ॥७॥

१३ धाराशरैराच्छुरितोर्मिचक्रे महोदधावुत्पततीव रोषात्।
भीतेव नौरभ्यधिक चकम्पे विषादयन्ती हृदयानि
तेषाम् ॥८॥

१४ ते त्रासदीनाश्च विषादमूका धीरा: प्रतीकारससम्भ्रमाश्च।
स्वदेवतायार्चनतत्पराश्च भावान्धयासत्त्वगुण विवव्रु ॥९॥

१५ अथ ते सायात्रिका पवनवलचलितसलिलवेगवशगया नावा परिभ्रम्यमाणा वहुभिरप्यहोभिर्नैव कुतश्चित्तीर ददृशुर्न च यथेप्सितानि समुद्रचिह्नानि। अपूर्वैरेव तु समुद्रचिह्नैरभिबर्धमानवैमनस्या भयविषादव्याकुलतामुपजग्मु । अथैतान्सुपारगोबोधिसत्वो व्यवस्थापयन्नुवाच—"आश्चर्य खलु महासमुद्रमध्यमवगाढानामौत्पातिकक्षोभपरिक्लेश । तदलमत्र भवता विषादानुवृत्या। कुत —

१६ नापत्प्रतीकारविधिर्विषादस्तस्मादल दैन्यपरिग्रहेण।
धैर्यात्तु कार्यप्रतिपत्तिदक्षा कृच्छ्राण्यकृच्छ्रेण समुत्तरन्ति ॥१०॥

विषाददैन्य व्यवधूय तस्मात्कार्यावकाश क्रिययाभजध्वम्।
प्राज्ञस्य धैर्यज्वलित हि तेज सर्वार्थसिद्धिग्रहणाग्रहस्त ॥११॥

१०. उत्पातके वायुसे युक्त महान् जलस्थान भीपण वेगसे चक्कर खाता, प्रलयके समय तेज चलते पर्वतोवाली पृथिवीकी तरह समुद्र उग्र-शरीर हो गया ॥५॥

११ विजलीकी लतासे भासुर, चचल जिह्वावाले अनेक सिरवाले नीले भुजगोकी तरह, भयकर कडककी आवाजसे युक्त मेघोने सूर्यके पथको ढाक दिया ॥६॥

१२ घने मेघोसे ढके किरणोवाला सूर्य क्रमश अस्त हो गया, सन्ध्याके अवकाश पानेपर चारो ओर अन्धकार घना हो गया ॥७॥

१३ धाराके वाणोसे उछलती तरगोवाले, रोषसे मानो ऊपर कूदते समुद्रमें, उनके हृदयोको विपादित करती भयभीत सी नौका अधिक कांपने लगी ॥८॥

१४ वे धीर वनिये त्राससे दीन, विपादसे मूक हो, उपायके लिये उद्विग्न, अपने देवताओकी प्रार्थनामें तत्पर, भावोमे भिन्न गुणको प्रकट करने लगे ॥९॥

१५ तव उन जहाजी व्यापारियोने पवनके वलसे चचल जलके वेगमें पडी नावपर घूमते वहुत दिनोतक कही भी न तीरको और न अभिलपित सामुद्रिक चिन्होको देखा। अपरिचित समुद्र-चिन्होसे वढी चिन्तासे युक्त वह भय और विपादमें व्याकुल हो गये। तव उन्हें वोधिसत्व सुपारगने सान्त्वना देते कहा—"महासमुद्रके मध्यमें पडे (तुम्हारा), उत्पातसे क्षुब्ध और क्लेशित होना आश्चर्य (की वात) नही है। पर आपका विपाद करना वेकार है। क्योकि—

१६ विपाद करना आफतके प्रतिकारका उपाय नही है, इसलिये दीनता दिखलाना व्यर्थ है। धैर्यसे कार्य करनेमें दक्ष (पुरुष) कठिनाइयोको आसानीसे पार होते है ॥१०॥

इसलिये विषाद और दीनता को छोडकर कार्यके समय क्रियामें तत्पर होओ। वुद्धिमान्का धैर्य द्वारा प्रज्ज्वलित तेज सारी अर्थ-सिद्धिके पानेका करपल्लव है ॥११॥

१७ तद्यथाधिकारावहिता भवन्तु भवन्त" इति। ते सायात्रिकास्तेन महात्मना धीरीकृतमनस कूलदर्शनोत्सुकमतय समुद्रमवलोकयन्तो ददृशु पुरुपविग्रहानामुक्तरूप्यकवचानिवोन्मज्जतो निमज्जतश्च। सम्यक् चैपामाकृतिनिमित्तमुपधार्य सविस्मया सुपारगाय "अपूर्वं खल्विदमिह समुद्रे चिह्नमुपलभ्यते—महात्मन्यवेदयन्त। एते खलु—

१८ आमुक्तरूप्यकवचा इव दैत्ययोधा,
घोरेक्षणा खुरनिकाशविरूपघोणा।
उन्मज्जनावतरणस्फुरणप्रसगात्,
क्रीडामिवार्णवजलेऽनुभवन्ति केपि॥१२॥

१९ सुपारग उवाच—"नैते मानुषा अमानुषा वा मीना खल्वेते। अतो न भेतव्यमेभ्य, किन्तु—

२० सुदूरमपकृष्टा स्म पत्तनद्वितयादपि।
खुरमाली समुद्रोऽय तद्यतध्व निवर्तितुम्"॥१३॥

२१ चण्डवेगवाहिना सलिलनिवहेनैकान्तहरेण च पाश्चात्येन वायुना समाक्षिप्ततया न ते सायात्रिका शेकुर्विनिवर्तितुम्।
अथावगाहमाना क्रमेण रूप्यप्रभावभासितमनीलफेनतनिचयपाण्डुरमपर समुद्रमालोक्य सविस्मया. सुपारगमूचु.—

२२ "स्वफेनमग्नैरिव कोऽयमम्बुभिर्महार्णव शुक्लदुकूलवानिव।
द्रवानिवेन्दो किरणान्समुद्वहन्समन्ततो हास इव प्रसर्पति"॥१४॥

१७. सो अपने अधिकारके अनुसार आप लोग सावधान हो जायें। महात्माके ऐसा कहनेपर उन पोतारोहियोंके मनमें धीरज बधा। किनारा देखनेको उत्सुक मनवाले उन्होने समुद्रको देखते चाँदीकी कवच धारे पुरुष-शरीरोको डूबते-उतराते देखा। उनके आकार-चिन्होको अच्छी तरह समझ कर विस्मयके साथ उन्होने सुपारगसे निवेदन किया—"यहाँ महासमुद्रमें अपूर्वचिन्ह मिल रहा है। ये तो—

१८. चाँदीकी कवच धारण किये दैत्य योद्धाओसे, घोर-नेत्र, खुर समान कुरूप नाकोवाले, डूबते-उतराते अपनी गतिके प्रसग द्वारा समुद्र-जलमें खेल रहे हैं" ॥१२॥

१९ सुपारग बोले—"ये मनुष्य या अमनुष्य[1] नही है, वल्कि ये मछलियाँ हैं। अत इनसे डरना नही चाहिए, वल्कि (अब)—

२०. हम दुहरे पत्तनसे अति दूर आ गये है। यह खुरमाली समुद्र है, सो लौटनेकी कोशिश करो" ॥१३॥

२१ (पर) तीव्र वेगमे वहनेवाले जलसे एक ओर खिचते, पछुआँ हवाके खिचावके कारण (वढते) पोतारोही नही लौट सके।

सब अवगाहन करते क्रमश रुपहले प्रभावसे भासित अनील फेनो-युक्त दूसरे श्वेत समुद्रको देखकर विस्मयके साथ उन्होने सुपारगसे कहा—

२२. अपने फेनमें डूबे जलोके सफेद दुकूलवाला यह कौन सा महासागर है, जो चन्द्रमाकी पिघली किरणोको वहन करते हासकी तरह चारो ओर फैला है" ॥१४॥

---

१ देवता, राक्षस।

२३ "क्षीरार्णव इति ख्यात उदधिर्दधिमाल्यसौ।
क्षम नात पर गन्तु शक्यते चेन्निवर्तितुम्" ॥१५॥

२४ वणिज ऊचु —"न खलु शक्यते विलम्बयितुमपि वहनं कुत एव सन्निवर्तयितुमतिशीघ्रवाहित्वाद्वहनस्य प्रतिकूलत्वाच्च मारुतस्येति"।

अथ व्यतीत्य तमपि समुद्र सुवर्णप्रभानुरजितमचलोर्मिमालमग्निज्वालकपिलसलिलमपर समुद्रमालोक्य विस्मयकौतूहलास्ते वणिज **सुपारगं** पप्रच्छु —

२५ "बालार्कलक्ष्म्येव कृतागरागै समुन्नमद्भि सलिलैरनीलै।
ज्वलन्महानग्निरिवावभाति को नाम तस्माच्च महार्णवोऽयम्" ॥१६॥

२६ **सुपारग** उवाच—
"अग्निमालीति विख्यात समुद्रोऽय प्रकाशते।
अतीव खलु साधु स्यान्निवर्त्तेमहि यद्यत" ॥१७॥

२७ इति स महात्मा नाममात्रमकथयत्तस्य सरित्पतेर्न तोयवैवर्ण्यकारण दीर्घदर्शित्वात्।

अथ ते सायात्रिकास्तमपि समुद्रमतीत्य पुष्परागेन्द्रनीलप्रभोद्योतितसलिल परिपक्वकुशवननिकाशवर्ण समुद्रमालोक्य कौतूहलजाता **सुपारगं** पप्रच्छु —

२८. "परिणतकुशपर्णवर्णतोय सलिलनिधि. कतमोन्वय विभाति।
सकुसुम इव फेनभक्तिविचित्रैरनिलजवाकलितैस्तरगभगै" ॥१८॥

२९. **सुपारग** उवाच—"भो सार्थवाहा, निवर्तन प्रति यत्नः क्रियताम्। न खल्वत क्षमते पर गन्तुम्।

२३. "यह क्षीरसागर नामसे प्रसिद्ध दधिमाली सागर है। इससे आगे नही जाना चाहिये, यदि हो सके तो लौटाओ" ॥१५॥

२४. वनियोने कहा—"पोतको धीमा भी नही किया जा सकता, लौटने की तो वात ही क्या, क्योकि पोत वडी तेजीसे वह रहा है और वायु प्रतिकूल है।"

तव उस समुद्रको भी पारकर सुवर्णकी प्रभा से अनुरजित निश्चल तरग-मालावाले अग्निकी ज्वाला समान भूरे जलवाले दूसरे समुद्र को देखकर कौतूहलयुक्त उन वनियोने सुपारगसे पूछा—

२५. "वालसूर्यकी शोभासे मानो अगराग लगाये, उठते अनील जलोंसे प्रज्ज्वलित, महान् अग्निकी तरह भासित होता यह कौन नामवाला महासागर है" ॥१६॥

२६. सुपारग वोले—

"अग्निमाली नामसे विख्यात यह समुद्र भास रहा है। बहुत अच्छा हो, यदि यहाँसे हम लौट चलें" ॥१७॥

२७. इस प्रकार उस महापुरुषने उस सागरका नाम मात्र वतलाया, दीर्घ-दर्शिताके कारण जलके भिन्न वर्णके होनेकी वजह नही वतलाई। तव उन पोतारोहियोने उस समुद्रको भी पार कर पोखराज-इन्द्रनील की प्रभा जैसे चमकते जलवाले पके कुशके जगलके समान वर्णवाले समुद्रको देखकर कौतूहलवश सुपारगसे पूछा—

२८ "पके कुशके पत्तेके रग जैसे जलवाला यह कौन सा सागर भास रहा है, (जो) फेनकी किनारीसे विचित्र वायुके वेगसे वनी तरग-भगो द्वारा सुन्दर कुसुम जैसा है" ॥१८॥

२९. सुपारग वोले—"हे सार्थवाहो, लौटनेके लिये प्रयत्न करो। इससे आगे जाना ठीक नही।

३०. कुशमाली समुद्रोऽयमत्यकुश इव द्विप ।
प्रसह्यासह्यसलिलो हरन् हरति नो रतिम्" ॥१९॥

३१ अथ ते वाणिजका. परेणापि यत्नेन निवर्तयितुमशक्नुवन्तस्तमपि समुद्रमतीत्य वशरागवैडूर्यप्रभाव्यतिकरहरितसलिलमपर समुद्रमालोक्य सुपारगमपृच्छन्——

३२. "मरकतहरितप्रभैर्जर्वहति नवामिव शाद्वलश्रियम् ।
कुमुदरुचिफेनभूपण सलिलनिधि कतमोऽयमीक्ष्यते" ॥२०॥

३३ अथ स महात्मा तेन वणिग्जनस्य व्यसनोपनिपातेन दह्यमानहृदयो दीर्घमुष्णमभिनिश्वस्य शनैरुवाच— —

३४ "अतिदूरमुपेता स्थ दु खमस्मान्निवर्तितुम् ।
पर्यन्त इव लोकस्य नलमाल्येष सागर" ॥२१॥

३५. अथ ते वाणिजका विषादोपरुध्यमानमनसो विस्रस्यमानगात्रोत्साहा निश्वसितमात्रपरायणास्तत्रैव निषेदु । व्यतीत्य च तमपि समुद्र सायाह्नसमये विलम्बमानरश्मिमण्डले सलिलनिधिमिव प्रवेष्टुकामे दिवसकरे समुद्वर्तनस्येव सलिलनिधेरशनीनामिव च सम्पतता वेणुवनानामिव चाग्निपरिगताना विस्फुटता तुमुलमतिभीषण श्रुतिहृदयविदारण समुद्रध्वनिमश्रोषु । श्रुत्वा च सन्त्रासवशगा. स्फुरन्मनस सहसैवोत्थाय समन्ततोऽनुविलोकयन्तो ददृशु प्रपात इव श्वभ्र इव च महति तमुल्कौघ निपतन्त दृष्ट्वा च परमभयविषादविह्वला **सुपारगमुपेत्योचु**

३६ "निर्भिन्दन्निव न श्रुती प्रतिभयश्चेतासि मथ्नन्निव
क्रुद्धस्येव सरित्पतेर्ध्वनिरय दूरादपि श्रूयते ।
भीमे श्वभ्र इवार्णवस्य निपतत्येतत्समग्र जल,
तत्कोऽसावुदधि किमत्र च पर कृत्य भवान्मन्यते" ॥२२॥

३०. अकुशसे न रुकनेवाले गज-सा यह कुसुमाली समुद्र है, जवर्दस्त असह्य जलवाला (यह) खीचते हमारी प्रसन्नताको खीच रहा है" ॥१९॥

३१ तव उन वनियोने जवर्दस्त प्रयत्न द्वारा भी लौटनेमें असमर्थ हो उस समुद्र को पार कर वाँस के रग के हीरे की प्रभा युक्त हरे जलवाले दूसरे नमुद्रको देखकर सुपारगसे पूछा—

३२. "पन्ना जैसी हरी प्रभावाले जलके साथ, नवीन हरीतिमा शोभा-धारक, कुमुद जैसा रुचिर फेन भूपणधारी, यह कौन सा जलनिधि दिखाई देता है" ॥२०॥

३३ तव वनियोंके उस आफतसे दग्ध-हृदय हो महात्माने लम्वी साँस ले धीरेसे कहा—

३४ "दु खमें हम वहुत दूर आ गये, यहाँसे लौटना चाहिये। दुनियाके अन्त सा यह नलमाली सागर है" ॥२१॥

३५ तव वे वनिये विपादसे रुद्ध-मन हो शरीरके उत्साहको छोड साँस भर लेते वही वैठ गये। उस समुद्रको भी पार कर शामको समुद्रमें प्रवेश करनेके इच्छुक होते, समुद्रके उठानेको ही मानो गिरती विजलियो जैसी सूर्य-किरणोंके लटकते समय आगकी लपटमें आकर फूटते वाँसके जगलोंके तुमुल भीपण कान फाडनेवाली समुद्र-ध्वनि सुनी। चारो ओर देखते पर्वत-प्रभातकी तरह, खड्डकी तरह भारी तुमुल प्रवाहमे गिरते चारो ओर देखकर अत्यन्त भय और विपादसे विह्वल हो त्राससे होश उडते हो एकाएक उठकर सुपारगके पास आकर उन्होने कहा—

३६ "हमारे कानोको फाडती सी, मनोको मथन करती सी भयद, मानो क्रुद्ध सागर ही की यह ध्वनि दूरसे सुनाई दे रही है। मानो समुद्रका यह सारा जल भयकर खड्डमें गिर रहा है। सो यह कौन सा समुद्र है और यहाँ आप क्या करना अच्छा मानते हैं" ॥२२॥

३७ अथ स महात्मा ससम्भ्रम कप्ट "कष्टमि"त्युक्त्वा समुद्रमालोकयन्नुवाच—

३८ यत्प्राप्य न निवर्तन्ते मृत्योर्मुखमिवामुखम्।
अशिव समुपेता स्थत तदेवद्वडवामुखम् ॥२३॥

३९ तदुपश्रुत्य ते वाणिजका "वडवामुखमुपेता वयमिति" त्यक्तजीविताशा मरणभयविक्लवीभूतमनस —

४० सस्वर रुरुदु केचिद्विलेपुरथ चुक्रुशु ।
न किंचित्प्रत्यपद्यन्त केचित्त्रासविचेतस ॥२४॥

४१ विशेषत केचिदभिप्रणेमुर्देवेन्द्रमार्तिप्रहतैर्मनोभि ।
आदित्यरुद्राश्च मरुद्वसूश्च प्रपेदिरे सागरमेव चान्ये ॥२५॥

४२ जेपुश्च मन्त्रानपरे विचित्रानन्ये तु देवी विधिवत्प्रणेमु ।
सुपारग केचिदुपेत्य तत्तद्विचेष्टमाना करुण विलेपु ॥२६॥

४३ "आपद्गतत्रासहरस्य नित्य परानुकम्पागुणसम्भृतस्य।
अथ प्रभावातिशयस्य तस्य तवाभ्युपेतो विनियोगकाल ॥२७॥

४४ आर्ताननाथाच्छरणागतान्नस्त्व त्रातुमावर्जय धीर चेत ।
अय हि कोपाद्वडवामुखेन चिकीर्षति ग्रासमिवार्णवोऽस्मान् ॥२८॥

४५ नोपेक्षितु युक्त मय जनस्ते विपद्यमान सलिलौघमध्ये।
नाज्ञा तवात्येति महासमुद्रस्तद्वार्यतामप्रशमोऽयमस्य"॥२९॥

४६ अथ स महात्मा महत्या करुणया समापीड्यमान-हृदयस्तान् वाणिजकान् व्यवस्थापयन्नुवाच—"अस्त्यत्रापि न कश्चित्प्रतीकारविधि प्रतिभाति। तत्तावत्प्रयोक्ष्ये। यतो मुहूर्तं धीरास्तावद् भवन्तु भवन्त" इति।

३७. तब वह महात्मा "कष्ट-कष्ट" यह कहते समुद्रको देखकर बोले—

३८. खुले मृत्युके मुखकी तरह जहाँ पहुँचकर लौटा नही जा सकता। सो इस अमगल बड़वामुखमें तुम पहुँच गये ॥२३॥

३९. यह सुनकर वे वनिये "हम वडवामुखमें पहुँच गये" यह सोच जीवनकी आशा छोड मरणके भयसे विकल हो गये—

४० कुछ स्वर के साथ रोने, विलाप और चिल्लाहट करने लगे। कोई त्रासके मारे बेहोश हो कुछ नही समझ पाते थे ॥२४॥

४१. किसीने विशेषत आर्त-मनसे इन्द्रको प्रणाम किया। दूसरोंने सूर्य, रुद्र और मरुतो, वसुओ और सागरकी ही प्रार्थना की ॥२५॥

४२. औरोने विचित्र मन्त्रोको जपा। अन्योने देवीको विधिपूर्वक प्रणाम किया। कुछने नाना प्रकारकी चेष्टा करते सुपारगके पास आकर करुण विलाप किया ॥२६॥

४३ "आपद्में पडोके त्रासको नित्य हरनेवाले परानुकम्पासे युक्त, अतिशय प्रभाववाले तुम्हारे उस विनियोगका काल आ गया ॥२७॥

४४. हे धीर, हम आर्तो-अनाथो-शरणागतोंकी रक्षाके लिये मन लगाओ। कोपसे यह समुद्र वडवामुखका हमें ग्रास बनाना चाहता है ॥२८॥

४५ अपार जलके बीच मारे जाते इन लोगोकी उपेक्षा करना ठीक नही। समुद्र तुम्हारी आज्ञा का अतिक्रमण नही करेगा, सो इसकी इस अशान्ति को रोको" ॥२९॥

४६ तब उस महात्माने महती करुणासे मनमें पीडित हो उन वनियोको सान्त्वना देते कहा—"यहाँ प्रतिकार का एक उपाय है, यह मुझे मालूम पड़ता है। सो मैं उसका प्रयोग करूँगा। इसके लिये क्षणभर आप लोग धीरज धरें"।

४७ अथ ते वाणिजका "अस्त्यत्रापि किल प्रतीकारविधि"-रित्याशया समुपस्तम्भितधैर्यास्तदवहितमनसस्तूष्णी बभूवु । अथ सुपारगो बोधिसत्व एकासमुत्तरासग कृत्वा दक्षिणेन जानुमण्डलेनाधिष्ठाय नाव समावर्जितसर्वभाव प्रणम्य तथागतेभ्यस्तान्सायात्रिकानामन्त्रयते स्म— "शृण्वन्त्वत्र भवन्त सायात्रिका सलिलनिधिव्योमाश्रयाश्च देवविशेषा —

४८ स्मरामि यत आत्मान यत प्राप्तोऽस्मि विज्ञताम् ।
नाभिजानामि सचिन्त्य प्राणिन हिंसितु क्वचित् ॥३०॥

४९ अनेन सत्यवाक्येन मम पुण्यबलेन च ।
वडवामुखमप्राप्य स्वस्ति नौर्विनिवर्तताम्" ॥३१॥

५० अथ तस्य महात्मन सत्याधिष्ठानबलात् पुण्यतेजसा सह सलिलजवेन स मारुतो व्यावर्तमानस्ता नाव निवर्तयामास। निवृत्ता तु ता नावमभिसमीक्ष्य ते वाणिजका परमविस्मयप्रहर्षोद्धतमानसा "निवृत्ता नौरिति" प्रणामसभाजनपुरस्सर सुपारगाय न्यवदयन्त। अथ स महात्मा तान्वाणिजकानुवाच—"स्थिरीभवन्तु भवन्त शीघ्रमारोप्यन्ता शीतानि।" इति च तेन समादिष्टा प्रमोदादुद्भूतबलोत्साहास्ते तदधिकृतास्तथा चक्रु ।

५१ अथ मुदितजनप्रहासनादा प्रविततपाण्डुरशीतचारुपक्षा ।
सलिलनिधिगता रराज सा नौर्गतजलदे नभसीव राजहसी ॥३२॥

४७ तव वे वनिये "यहाँ प्रतिकार का उपाय है" यह मनमे कर धैर्य धर उनकी ओर ध्यान लगाये चुप हो गये।
तव सुपारग वोधिसत्वने चादरको एक कधेपर कर दाहिने घुटनेपर वैठ नावपर सारे मनको एकत्रित कर तथा वुद्धोको प्रणाम कर उन पोतारोहियो को सम्वोधित किया—"आप पोतारोही तथा समुद्र-आकाशमें रहनेवाले देवता लोग (मेरी) सुनें।

४८ चूकि मै अपनेको याद करता हूँ, चूकि मैंने विज्ञता प्राप्त की है। सोचने पर भी मुझे याद नही, कि मैंने कभी प्राणियोकी हिंसा की हो ॥३०॥

४९ सो इस सत्यवचन और मेरे पुण्यवलसे, यह नाव वड्वामुख में न जा स्वस्ति से लौट जाये" ॥३१॥

५० तव उस महात्माके सत्य-सकल्पके वलसे पुण्य तेजके साथ जलके वेग से लौटाये वायुने उस नावको लौटा दिया। नावको लौटी देखकर वनियो ने अत्यन्त विस्मय और हर्षसे उद्धत-मन हो प्रणामपूर्वक सुपारगसे निवेदन किया "नाव लौट चली"। तव उस महात्माने उन वनियोंसे कहा—"आप स्थिर हो जायें, जल्दी पाल चढावें।" ऐसा कहके आदेश देनेपर प्रमोद से वलोत्साहयुक्त हो अधिकारियोंने वैसा ही किया।

५१ तव मुदित जनोंके हास-नादवाली, फैले श्वेत पालरूपी सुन्दर पक्ष-वाली, वह नाव समुद्रमें मेघ-रहित आकाशमें राजहसीकी तरह शोभा दे रही थी ॥३२॥

५२ निवृत्ताया तु तस्या नाव्यनुकूलसलिलमारुताया विमानलीलया स्वेच्छयैव चाभिप्रयाताया नातिश्यामीभूत-सन्ध्यागरागासु प्रवितन्यमानतमोवितानास्वालक्षितनक्षत्र-भूषणासु दिक्षु किंचिदवशेषप्रभे दिवसकरमार्गे प्रवृत्तक्षण-दाधिकारे सुपारगस्तान्वाणिजकानुवाच—"भो सार्थवाहा नलमालिप्रभृतिभ्यो यथादृष्टेभ्य समुद्रेभ्यो बालुका पाषाणश्च वहनमारोप्यन्ता यावत्सहते एवमिद यानपात्र निर्घातभराक्रान्त न च पार्श्वानि दास्यति, मगलसम्मताश्चैते बालुका पाषाणा नियत लाभसिद्धये वो भविष्यन्तीति।"

अथ ते सायात्रिका सुपारगप्रेमबहुमानावर्जितमतिभि-र्देवताभिरनुप्रदर्शितेभ्य स्थलेभ्य आदाय बालुकापाषाण-बुद्धया वैडूर्यादीनि रत्नानि वहनमारोपयामासु । तेनैव चैकरात्रेण सा नौ भरुकच्छमुपजगाम।

५३ अथ प्रभाते रजतेन्द्रनीलवैडूर्यहेमप्रतिपूर्णनौका ।
स्वदेशतीरान्तमुपागतास्ते प्रीत्या तमानर्चुरु-
दीर्णहर्षा ॥३३॥

५४ तदेव धर्माश्रय सत्यवचनमप्यापद नुदति प्रागेव तत्फल-मिति धर्मानुवर्तिना भवितव्यम्। कल्याणमित्राश्रयवर्णेऽपि वाच्यमेव कल्याणमित्राश्रिता श्रेय प्राप्नुवन्तीति।

५२ जब अनुकूल जलवायुयुक्त हो वह नाव स्वेच्छासे लौट विमान लीलाके साथ चली, तो दिशायें अतिश्यामल न हो सन्ध्याके अग-रागयुक्त, फैलते अन्धकारके वितानवाली, जब थोडा दिखाई देते तारोकी भूषण वाली थी, आकाशमें थोडी प्रभा बची थी, जब रातका अधिकार जारी हो गया था, तब सुपारगने उन बनियोंसे कहा—"हे सार्थवाहो, नलमाली आदि देखे हुये समुद्रोसे बालू और पत्थर लेकर पोतपर रख लो, जिसमें कि इस प्रकार चपेटेके बलसे आक्रान्त हो पोत एक करवट न हो जाये। ये बालू और पत्थर मगल माने जाते है, यह तुम्हारी लाभसिद्धिके लिये निश्चय कार्यकारी होगे।"

तब सुपारगके प्रति प्रेम और बहुमानयुक्त पोतारोहियोने मत फेरे देवताओ द्वारा प्रदर्शित स्थलोंसे बालू और पत्थरके विचारसे हीरा आदि रत्नोको पोतपर रख लिया। उसी रातमें वह जहाज भडौंच आ पहुँचा।

५३ तब प्रभातके समय चाँदी, नीलम, हीरा, सोनासे भरी नौकावाले (बनियोने) अतिहर्षित हो स्वदेशके तटपर आ महात्माकी पूजा की ॥३३॥

५४ सो इस प्रकार धर्मयुक्त सत्यवचन अपने फलसे पहले ही आपत् को हटाता है, (यह) सोचकर धर्मानुवर्ती होना चाहिये। भले मित्रके आश्रयकी प्रशसामें भी कहना है, कि कल्याण-मित्रका अवलम्ब लेनेवाले इस प्रकार श्रेय प्राप्त करते है।

भाग ३

प्राकृत काल (२)

(उत्तरकाल ३००–५५० ई० पू०)

२०. कालिदास (४०० ई०)

२१. कुमारदास (५०० ई०)

२२. शूद्रक (५४० ई०)

२३. भारवि (५५० ई०)

२४. विशाखदत्त (५५० ई०)

२०. कालिदास (४०० ई०)

यह संस्कृतके सर्वश्रेष्ठ महाकवि सभवतः उज्जयिनी (अवन्ती) के रहने वाले थे। सस्कृतकी कविताओके लिये प्राकृतकाल सबसे समृद्ध काल है, और उसमें भी संस्कृत काव्यको उन्नतिके सर्वोच्च शिखरपर पहुचानेवाली कालिदासकी निम्न कृतियां है—

१ ऋतुसंहार, २ मेघदूत, ३ कुमारसभव, ४ रघुवश, ५. मालविकाग्निमित्र (नाटक), ६ विक्रमोर्वशीय (नाटक), ७ अभिज्ञानशाकुन्तल (नाटक)।

१. मेघदूतम्

(१) मेघयाञ्चा

१ कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात् प्रमत्त,
शापेनास्तगमितमहिमा वर्षभोग्येन भर्तु ।
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु,
स्निग्धच्छायातरुषु वसति रामगिर्याश्रमेषु ॥१॥

२ तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्त स कामी
नीत्वा मासान् कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठ ।
आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानु,
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीय ददर्श ॥२॥

३ तस्य स्थित्वा कथमपि पुर कौतुकाधानहेतो-
रन्तर्बाष्पश्चिरमनुचरा राजराजस्य दध्यौ।
मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेत,
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसस्थे ॥३॥

२०. कालिदास (४०० ई०)

कालिदास गुप्त-सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (३७५-४१४ ई०) के सम्मानित महाकवि थे। प्राकृतका "सेतुबंध" महाकाव्य यद्यपि वाकाटक-राजा प्रवरसेनकी कृतिके नामसे प्रसिद्ध है, किन्तु इस किंवदन्तीमें सत्यका अंश है, कि उसके वास्तविक रचयिता कालिदास थे। चन्द्रगुप्तकी पुत्री प्रभावतीका व्याह वाकाटक-वंशमें होना भी कालिदासके साथ उस वंशके सम्पर्कको बतलाता है, और अवन्ती देश वाकाटकोंकी भूमि (विदर्भ) के समीप भी था।

१. मेघदूत

(१) मेघसे प्रार्थना

१ कान्ताके विरहके भारसे युक्त अपने अधिकारसे भ्रस्त, स्वामीके वर्ष भर भोगे जानेवाले शापसे अस्त हुई महिमावाले, किसी यक्षने जानकीके स्नानके पवित्र जल-सहित स्निग्ध छाया युक्त वृक्षोवाले रामगिरि-आश्रममें वास किया ॥१॥

२ उस पहाड़में कुछ महीने बिताकर स्त्री-वियोगी सुवर्ण वलयके गिर जाने से नगी कलाईवाले उस कामीने, आषाढके प्रथम दिन शिखर-लग्न वप्रके उखाड़नेकी क्रीडामें प्रौढ हाथी जैसे दर्शनीय मेघको देखा ॥२॥

३ कैसे ही उसके सामने खड़ा होकर कौतुक उत्पादनके कारण राजराज (कुबेर) के अनुचरने (नेत्रोंके) भीतर आंसू रखे देर तक सोचा मेघके दर्शन होनेपर दूसरी वृत्तिवाला चित्त भी सुखी हो जाता है। कंठ आलिंगनके इच्छुक परदेशी जनके बारेमें तो कहना ही क्या ॥३॥

४ प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी,
जीमूतेन स्वकुशलमयी हारयिष्यन् प्रवृत्तिम् ।
स प्रत्यग्रै कुटजकुसुमै कल्पितार्घाय तस्मै,
प्रीत प्रीतिप्रमुखवचन स्वागत व्याजहार ।।४।।

५ "सतप्ताना त्वमसि शरण तत्पयोद, प्रियाया,
सदेश मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य ।
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणा,
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ।।७।।

६ त्वामारुढ पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ता,
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिता प्रत्ययादाश्वसन्त्य ।
क सनद्धे विरहविधुरा त्वय्युपेक्षेत जाया,
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो य पराधीनवृत्ति ।।८।।

७ ता चावश्य दिवसगणनातत्परामेकपत्नी-
मव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम् ।
आशाबन्ध कुसुमसदृश प्रायशो ह्यगनाना
सद्य पाति प्रणयि हृदय विप्रयोगे रुणद्धि ।।१०।।

८ त्वय्यायत्त कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञै,
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनै पीयमान ।
सद्य सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य माल
किंचित्पश्चाद् व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण ।।१६।।

(२) अवन्ति देशः

९ वक्र पन्था यदपि भवत प्रस्थितस्योत्तराशा,
सौधोत्सगप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः ।
विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौरागनाना,
लोलापागैर्यदि न रमसे लोचनैर्वंचितोऽसि ।।२७।।

४ श्रावणके समीप होते समय प्रियाके जीवनके अवलबके इच्छुक उसने मेघ द्वारा अपने कुशल-मगलके समाचारको भेजते हुए, अभिनव कुटजके फूलोंसे अर्घ दे प्रसन्न हो प्रीति-सहित वचनसे उसके लिये स्वागत कहा ।।४।।

५. "हे मेघ, सतप्तोंके तुम शरण हो, सो प्रियाके लिये कुवेरके क्रोधसे वियोगी वने मेरा सन्देश ले जाओ । तुम्हें यक्षेश्वरोकी वस्ती अलकाको जाना है, जिसके प्रासाद वाहरी उद्यानमें स्थित तथा शिवके शिरकी चद्रिका जैसे उज्वल हैं ।।७।।

६. पवनके मार्ग पर आरूढ विश्वाससे ढारस पाती केशोको थामे पथिक-वनितायें ऊपरकी ओर तुम्हें देखेंगी । तुम्हारे तैयार होजाने पर कौन है, जो विरह-पीडित पत्नीकी उपेक्षा कर सकता है, यदि वह जन मेरे जैसा पराधीन वृत्तिवाला न हो ।।८।।

७ और दिन गिननेमें लगी न मरी (अपनी) उस भाभीको अवाध-गति तुम अवश्य देखोगे । स्त्रियोका आशा वन्धन, प्राय फूलसा है जो तुरन्त गिरनेवाले प्रेमी-हृदयको वियोगमें रोक रखता है ।।१०।।

८ "तुम्हारे आधीन ही कृषिका फल है" यह सोच भौंहोंके विलाससे अनभिज्ञ, प्रीतिसे स्निग्ध, ग्रामीण-वहुओंके नेत्रो द्वारा पीये जाते तुम तुरन्त हलके जोतनेसे सोधी माल खेतपर आरूढ होकर कुछ पीछे फिर जल्दी-जल्दी चलते उत्तरकी ओर (वढ) चलना ।।१६।।

(२) मालव

९ उत्तरकी ओर प्रस्थान किये आपके लिये यद्यपि मार्ग टेढा होगा । (तो भी) उज्जयिनीके महलोकी गोदवाले प्रेम से विमुख न होना । नगरकी स्त्रियोंके विद्युत्मालाकी तरह फडफडाते और चकित चचल पलकोंवाले नेत्रोंसे यदि (तुमने) नही रमण किया तो तुम अभागे हो ।।२७।।

४. प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी,
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन् प्रवृत्तिम्।
स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै,
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार॥४॥

५ "संतप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद, प्रियायाः,
संदेशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य।
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां,
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या॥७॥

६ त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः,
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसन्त्यः।
कः संनद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां,
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः॥८॥

७ तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नी-
मव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम्।
आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्यः पाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि॥१०॥

८ त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः,
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः।
सद्यः सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं
किंचित्पश्चाद् व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण॥१६॥

(२) अवन्ति देशः

९ वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां,
सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः।
विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्गनानां,
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि॥२७॥

४ श्रावणके समीप होते समय प्रियाके जीवनके अवलवके इच्छुक उसने मेघ द्वारा अपने कुशल-मगलके समाचारको भेजते हुए, अभिनव कुटजके फूलोंसे अर्घ दे प्रसन्न हो प्रीति-सहित वचनसे उसके लिये स्वागत कहा ॥४॥

५. "हे मेघ, सतप्तोंके तुम शरण हो, सो प्रियाके लिये कुवेरके क्रोधसे वियोगी वने मेरा सन्देश ले जाओ। तुम्हें यक्षेश्वरोकी वस्ती अलकाको जाना है, जिसके प्रासाद वाहरी उद्यानमें स्थित तथा शिवके शिरकी चद्रिका जैसे उज्वल है ॥७॥

६. पवनके मार्ग पर आरूढ विश्वाससे ढारस पाती केशोको थामे पथिक-वनितायें ऊपरकी ओर तुम्हें देखेंगी। तुम्हारे तैयार होजाने पर कौन है, जो विरह-पीड़ित पत्नीकी उपेक्षा कर सकता है, यदि वह जन मेरे जैसा परावीन वृत्तिवाला न हो ॥८॥

७ और दिन गिननेमें लगी न मरी (अपनी) उस भाभीको अवाध-गति तुम अवश्य देखोगे। स्त्रियोका आशा वन्धन, प्राय फूलसा है जो तुरन्त गिरनेवाले प्रेमी-हृदयको वियोगमें रोक रखता है ॥१०॥

८. "तुम्हारे आवीन ही कृषिका फल है" यह सोच भौंहोके विलाससे अनभिज्ञ, प्रीतिसे स्निग्ध, ग्रामीण-वहुओंके नेत्रो द्वारा पीये जाते तुम तुरन्त हलके जोतनेसे सोंधी माल खेतपर आरूढ होकर कुछ पीछे फिर जल्दी-जल्दी चलते उत्तरकी ओर (वढ) चलना ॥१६॥

(२) मालव

९ उत्तरकी ओर प्रस्थान किये आपके लिये यद्यपि मार्ग टेढा होगा। (तो भी) उज्जयिनीके महलोकी गोदवाले प्रेम से विमुख न होना। नगरकी स्त्रियोंके विद्युत्मालाकी तरह फडफडाते और चकित चचल पलकोवाले नेत्रोंसे यदि (तुमने) नहीं रमण किया तो तुम अभागे हो ॥२७॥

१० प्राप्यावन्तीमुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्,
पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम्।
स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां,
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम् ॥३०॥

११ दीर्घीकुर्वन्पटु मदकलं कूजितं सारसानां,
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः।
यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः
शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः ॥३१॥

१२ अप्यन्यस्मिन् जलधर, महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः।
कुर्वन्सध्यावलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीयां,
आमन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम् ॥३४॥

१३ गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं,
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः।
सौदामिन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शयोर्वीं,
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा स्म भूर्विक्लवास्ताः ॥३७॥

१४ तां कस्यांचिद् भवनवलभौ सुप्तपारावतायां,
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्रः।
दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान्वाहयेदध्वशेषं,
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ॥३८॥

१५ आराध्यैनं शरवणभवं देवमुल्लङ्घिताध्वा
सिद्धद्वन्द्वैर्जलकणभयाद्वीणिभिर्मुक्तमार्गः।
व्यालम्बेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्
स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम् ॥४५॥

१० **अवन्तिदेशमें** पहुँच उदयनकी कथाके पडित गावके वृद्धोंसे पूर्वोक्त लक्ष्मीसे विशाल पुरीका अनुसरण करना, सुकर्मके फलोंके अत्यन्त होनेसे पृथिवीपर आये स्वर्गीय जनो के अवशिष्ट पुण्योसे जिसने स्वर्गलोककी कान्तिका मानो एक अश हर लिया है ।।३०।।

११ जहा सारसो के स्पष्ट मस्त मधुर कूजनको लम्वा करते, प्रात काल फूले कमलके गन्धके सम्पर्कसे कपाययुक्त शिप्रा नदीका वायु प्रार्थनाके लिए चाटुकारी प्रियतमकी तरह अगानुकूल हो, स्त्रियोंके सुरत खेदका अपहरण करता है ।।३१।।

१२ हे मेघ, दूसरे कालमें भी **महाकालको** पा कर जब तक सूर्य चला नही जाये, तव तक तुम नयनके विषय रहना। (तव) त्रिशूलधारीकी प्रशसनीय सध्याकालीन पूजाके नगारेका रूप लेते, कुछ गम्भीर गर्जनोका पूरा फल तुम पाओगे ।।३४।।

१३ वहा रातको प्रियतमके निवासको जाती स्त्रियोंके लिये, घने अन्ध-कारके कारण रुके प्रकाशवाले राजमार्गपर कनक कसौटी-जैसी चिकनी विजली द्वारा पृथिवीको दिखलाना। वह विकल हैं, (अत) जलके त्यागकी कडकसे मुखर न होना ।।३७।।

१४ किसी भवनकी सोये कवूतरोवाली अटारीपर उस रातको विता, चिर-विलासके कारण खेदयुक्त विद्युत्-स्त्रीवाले आप सूर्य देखने पर फिर वचे मार्गको पूरा करें। मित्रोंके प्रयोजनके कार्य (भार) को स्वीकार कर पुरुष सुस्त नही हुआ करते ।।३८।।

१५ **कार्तिकेय** देवकी पूजा करके रास्ता पार करते, छीटेके भयसे वीणा-वादक सिद्ध-दपतीके छोडे मार्गपर हो, भूमिपर धाराके रूपमें प्रकट हुई **रंतिदेवकी** कीर्ति, गौओके हननसे उत्पन्न (चम्वल) का मान करते (उसका) सहारा लेना ।।४५।।

१६ त्वय्यादातु जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे
तस्या सिन्धो पृथुमपि तनु दूरभावात्प्रवाहम् ।
प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्य दृष्टी-
रेक मुक्तागुणमिव भुव स्थूलमध्येन्द्रनीलम् ।।४६।।

१७ तामुत्तीर्य व्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणा,
पक्ष्मोत्क्षेपादुपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणाम् ।
कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषामात्मबिम्ब,
पात्रीकुर्वन्दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम् ।।४७।।

(३) कुरुदेशः

१८ **ब्रह्मावर्त्तं** जनपदमथच्छायया गाहमान
क्षेत्र क्षत्रप्रधनपिशुन कौरव तद् भजेथा ।
राजन्याना सितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा,
धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि ।।४८।।

१९ हित्वा हालामभिमतरसा रेवतीलोचनाका,
बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लागली या सिषेवे ।
कृत्वा तासामभिगममपा सौम्य सारस्वतीना,
अन्त शुद्धस्तवमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्ण ।।४९।।

(४) कनखलः

२० तस्माद् गच्छेरनु**कनखलं** शैलराजावतीर्णां
जह्नो कन्या सगरतनयस्वर्गसोपान पक्तिम् ।
गौरीववक्त्रभ्रुकुटिरचना या विहस्येव फेनै,
शभो केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता ।।५०।।

१६ कृष्णके वर्णके चोर झुके हुए तुम्हारेमेंसे जल लेनेके लिये, आकाश-गामी (सिद्ध लोग) अवश्य दृष्टि घुमाकर उस सिन्धुके वडे प्रवाहको दूर होनेके कारण छोटा, मध्यमें स्थूल इन्द्रनील-मणिसा, भूमिके एक मुक्ता-सूत्रका सा देखेंगे ।।४६।।

१७ उसको उतर कर परिचित भ्रूलताओंके सौंदर्यवाली, पलक उठानेसे ऊपर सोहती, मृगकी द्युतियोवाली, कुन्द पुष्पके अनुगामी मधुकरकी शोभा चुरानेवाले, दशपुरकी वधुओंके नेत्रोंके कुतूहलोको अपनी छायाका पात्र वनाते आगे जाना ।।४७।।

(३) कुरुदेश

१८ तव अपनी छायासे ब्रह्मावर्त देशको पार होते क्षत्रियोके विनाशके लिये दुख्यात उस कुरुक्षेत्रको जाना, जहापर गाण्डीवधारीने सैकडो, श्वेत-वाणो की वर्षाकी धारा गिरा, राजन्योके मुखो पर (वैसी) वर्षा की, जैसी कि कमलो पर तुम ।।४८।।

१९ रेवतीके लोचन सी प्रिय रसवती मदिराको छोडकर वन्धुओ की खुशीके लिये युद्धसे विमुख हो वलभद्रने जिनका सेवन किया, उन सरस्वती के जलोको प्राप्त कर हे सौम्य, तुम भी रगमात्रसे कृष्ण (रह) भीतरसे शुद्ध हो जाओगे ।।४९।।

(४) कनखल

२० वहासे कनखलके पास पर्वतराजसे उतरी, सगर-तनयोंके लिये स्वर्गकी सीढियो जैसी गगाको जाना, जिसने गौरीके मुखकी टेढी भौं रचनेको हसकर ही चन्द्रमें लगी लहरो रूपी हाथो वाली अपनी फेनोसे शभूके केशोको पकड लिया ।।५०।।

(५) हिमालयः

२१ त चेद्वायौ सरति सरलस्कन्धसघट्टजन्मा
बाधेतोल्काक्षपितचमरीबालभारो दवाग्नि ।
अर्हस्येन शमयितुमल वारिधारासहस्रै-
रापन्नार्तिप्रशमनफला सपदो ह्युत्तमानाम् ।।५३।।

२२ गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसघ,
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथि स्या ।
शृङ्गोच्छ्रायैं कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थित ख,
राशीभूत प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहास ।।५८।।

२३ हेमाम्भोजप्रसवि सलिल मानसस्याददान,
कुर्वन्काम क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य ।
धुन्वन्कल्पद्रुमकिसलयान्यशुकानीव वातै-
र्नानाचेष्टैर्जलद, ललितैर्निविशेस्त नगेन्द्रम् ।।६२।।

२४ तस्योत्सगे प्रणयिन इव स्रस्तगगादुकूला,
न त्व दृष्ट्वा न पुन**रलकां** ज्ञास्यसे कामचारिन् ।
या व काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना,
मुक्ताजालग्रथितमलक कामिनीवाभ्रवृन्दम् ।।६३।।

२. कुमारसंभवम्

(१) हिमालयः

२५ अस्त्युत्तरस्या दिशि देवतात्मा **हिमालयो** नाम नगाधिराज
पूर्वापरौ तोयनिधीर्विगाह्य स्थित पृथिव्या इव मान-
दण्ड ।।१।।

२६ य सर्वशैला परिकल्प्य वत्स मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे ।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च पृथूपदिष्टा दुदुहुर्धरित्रीम्
।।२।।

(५) हिमालय

२१ यदि वायु चलते समय देवदारकी शाखाओकी रगडसे उत्पन्न चिंगारी से चवरीकी पूछको नष्टकर जगलकी आग हिमालयको पीडित कर रही हो, तो हजारो जलधाराओंसे उसे शात करनेमें तुम समर्थ होना। उत्तम जनोकी सम्पत्ति का फल शरणापन्नोकी पीडाका शमन है॥५३॥

२२ और ऊपर जा, रावणकी भुजा द्वारा विलगाये शिखरोकी सधिवाले स्वर्गकी वनिताओंके दर्पण (जैसे) कैलासके अतिथि होना, जो कि शकरके प्रतिदिनके अट्टहासकी राशि सा, श्वेत कमल जैसे निर्मल (अपने) शिखरोकी ऊचाइयोंसे आकाशमें फैला खडा है॥५८॥

२३ मानसरोवरके कनक-कमलोंके उत्पादक जलको लेते, क्षण भर ऐरावतके मुखके अशुककी यथेच्छ प्रसन्नता करते, हवाओंसे कल्पद्रुमके पत्रोको वस्त्रोकी तरह कपित करते, हे मेघ, नाना ललित चेष्टाओंके साथ उस पर्वत-राजमें प्रवेश करना॥६२॥

२४ हे इच्छाविहारी, कैलासकी गोदमें प्रियतमकी तरह शिथिलित गगारूपी दुकूलवाली अलक को फिर देखे बिना तुम नही जानोगे। जो ऊचे महलो वाली मेघकालमें जल उगलनेवाले मेघ-समूहोको मोतिया गुथी अलकोको कामिनीकी तरह धारण करती है॥६३॥

२. कुमारसंभव

(१) हिमालय

२५ उत्तर दिशामें देवतारूपी हिमालय नामक पर्वतराज है। जो पूर्वी पश्चिमी सागरोको अवगाहता पृथिवीके माप-दण्ड सा खडा है॥१॥

२६ दूहनेमें दक्ष दोहक मेरुके रहते भी जिस हिमालयको बछड़ा बनाकर सारे पर्वतोने पृथु द्वारा उपदिष्ट पृथिवीसे प्रकाशमान रत्नो और महौषधियोको दूहा॥२॥

२७. अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिम न सौभाग्यविलोपि जातम् ।
एको हि दोषो गुणसनिपाते निमज्जतीन्दो किरणेष्वि-
वाक ॥३॥

२८. यश्चाप्सरोविभ्रममण्डनाना सपादयित्री शिखरैर्बिभर्ति
बलाहकच्छेदविभक्तरागामकालसध्यामिव धातुमत्ताम् ॥४॥

२९ आमेखल सचरता घनाना छायामध सानुगता निषेव्य ।
उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते शृङ्गाणि यस्यातपवन्ति
सिद्धा ॥५॥

३०. पद तुषारस्रुतिधौतरक्त यस्मिन्नदृष्ट्वापि हतद्विपानाम् ।
विदन्ति मार्गं नखरन्ध्रमुक्तैर्मुक्ताफलै केसरिणा
किराता ॥६॥

३१ न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र भूर्जत्वच कुजरबिन्दुशोणा
व्रजन्ति विद्याधरसुन्दरीणामनगलेखक्रिययोपयोगम् ॥७॥

३२ य॰ पूरयन्कीचकरन्ध्रभागान् दरीमुखोत्थेन समीरणेन ।
उद्गास्यतामिच्छति किनराणा तानप्रदायित्वमिवो-
पगन्तुम् ॥८॥

३३ कपोलकण्डू करिभिर्विनेतु विघट्टिताना सरलद्रुमाणाम् ।
यत्र स्रुतक्षीरतया प्रसूत सानूनि गन्ध सुरभीकरोति ॥९॥

३४ लागूलविक्षेपविसर्पिशोभैरितस्ततश्चन्द्रमरीचिगौर ।
यस्यार्थयुक्त गिरिराजशब्द कुर्वन्ति वालव्यजनै-
श्चमर्य ॥१३॥

३५ यत्राशुकाक्षेपविलज्जिताना यदृच्छया किपुरुषागनानाम् ।
दरीगृहद्वारविलम्बिबिम्बास्तिरस्करिण्योजलदाभवन्ति १४

३६ भागीरथीनिर्झरसीकराणा वोढा मुहु कम्पितदेवदारु ।
यद्वायुरन्विष्टमृगै किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्ह १५
—सर्ग १

२७ अनन्त रत्नोंके उत्पादक जिसके लिये हिम (बर्फ) सौभाग्य-विलोपक नही हुआ। चद्रमाकी किरणोमें लाछनकी तरह बहुतसे गुणोंके होनेसे एक दोष विलीन हो जाता है ॥३॥

२८ जो अपने शिखरो द्वारा अप्सराओंके विलास-आभूषणोको प्राप्त करानेवाली, मेघके खडोंसे लगाये रगवाली अकाल सध्याकी तरह धातु-धारक है ॥४॥

२९ मेखला तक सचरण करनेवाले मेघोकी नीचे सानुपर पडी छायाको सेवन कर वर्षासे उद्विग्न सिद्ध-लोग जिसके धूपवाले शिखरोका आश्रय लेते हैं ॥५॥

३० हिमके गलनेसे मृत-गजोंके धुले लाल पैरोको जहा न देखकर भी सिंहो के नखो द्वारा बखेरे मोतियो से किरात लोग मार्गका पता पाते है ॥६॥

३१ जहा धातुके रस से लिखित, गजोके रक्त-विन्दुओ सी लाल भुर्ज छालें, विद्याधरोकी सुन्दरियोंके प्रेम-पत्र लिखनेके लिये उपयुक्त होती है ॥७॥

३२ जो गुहाओके मुहसे उठे वायु द्वारा बजनेवाले बासोंके छिद्रोको भरते, गानेवाले किन्नरोंके लिये तान देनेवाला बननेकी इच्छा करता है ॥८॥

३३ जहा गालकी खुजलोको हटानेके लिये गजोसे रगडे देवदारुओंके बहे दूधसे उत्पन्न गन्ध शिखरोको सुगन्धित करती है ॥९॥

३४ पूछके कपानेकी शोभावाले, जहा-तहा चन्द्र-किरणो जैसे सफेद, अपने चवरो द्वारा चमरिया जिसके गिरिराज नामको सार्थक करती हैं ॥१३॥

३५ जहा अकस्मात् वस्त्रके खिचनेसे लज्जित किन्नरियोंके लिये गुहाके द्वारपर लटके मेघ पर्दा बन जाते है ॥१४॥

३६ भागीरथीके निर्झरकी फुहारोको ले जाते फिर-फिर देवदारुओको कपाते, बिलगाये मोरके पिच्छोवाले जिसके वायुकी मृगखोजी किरात सेवन करते है ॥१५॥

—सर्ग १

(२) रति-विलाप

३७ अथ मोहपरायणा सती विवशा कामवधूर्विबोधिता।
विधिना प्रतिपादयिष्यता नववैधव्यमसह्यवेदनम् ॥१॥

३८ "अयि जीवितनाथ, जीवसीत्य" भिधायोत्थितया तया पुर ।
ददृशे पुरुषाकृति क्षितौ हरकोपानलभस्म केवलम् ॥३॥

३९ अथ सा पुनरेव विह्वला वसुधालिंगनधूसरस्तनी।
विललाप विकीर्णमूर्धजा समदु खामिव कुर्वती स्थलीम् ॥४॥

४० "उपमानमभूद्विलासिना करण यत्तव कान्तिमत्तया।
तदिद गतमीदृशी दशा न विदीर्ये कठिना खलु स्त्रिय ॥५॥

४१. क्व नु मा त्वदधीनजीविता विनिकीर्य क्षणभिन्नसौहृद ।
नलिनी क्षतसेतुबन्धनो जलसघात इवातिविद्रुत ॥६॥

४२ कृतवानसि विप्रिय न मे प्रतिकूल न च ते मया कृतम्।
किमकारणमेव दर्शन विलपन्त्यै रतये न दीयते ॥७॥

४३ हृदये वससीति मत्प्रिय यदवोचस्तदवैमि कैतवम्।
उपचारपद न चेदिद त्वमनग कथमक्षता रति ॥९॥

४४. परलोकनवप्रवासिन प्रतिपत्स्ये पदवीमह तव।
विधिना जन एष वचितस्त्वदधीन खलु देहिना सुखम्।१०।

४५ रजनीतिमिरावगुण्ठिते पुरमार्गे घनशब्दविक्लवा ।
वसति प्रिय, कामिना प्रियास्त्वदृते प्रापयितु क ईश्वर ११

४६ नयनान्यरुणानि घूर्णयन्वचनानि स्खलयन्पदे पदे।
असति त्वयि वारुणीमद प्रमदानामधुना विडम्बना ॥१२॥

४७ अवगम्य कथीकृत वपु प्रियबन्धोस्तव निष्फलोदय ।
वहुलेऽपि गते निशाकरस्तनुता दु खमनग, मोक्ष्यति ॥१३॥

(२) रतिका विलाप

३७ तब मूर्छिता परवशा काम-बधू (रति) को आकर असह्य पीडाकर नवीन वैधव्य देनेवाले विधाताने होशमें किया ॥१॥

३८ "हे प्राणनाथ, तुम जीते हो" यह कहकर उठके उसने सामने पृथिवी पर शिवकी कोपाग्निसे (जलकर) भस्म-मात्र बचे पुरुष-आकारको देखा ॥३॥

३९ तब पृथिवी पर लोटनेसे धूसर स्तनवाली, विह्वल हो केश बिखेरे, वह (रति) उस स्थलीको अपने समान दु खित करती विलापने लगी ॥४॥

४०. अत्यन्त सौन्दर्यके कारण जो तुम्हारा शरीर विलासियोंके लिये उपमा (की वस्तु) था। सो इसे ऐसी दशामें देख मै फट जाती— नही (हाय) कठोर स्त्रिया ॥५॥

४१ जीवनाधार मुझे फेंक क्षणभरमें सौहार्द छोड तुम कहा हो ? टूटे बाध वाले जलसमूहकी तरह नलिनी (छोड) तुम कहा भाग गये ॥६॥

४२ तुमने कभी मेरा अप्रिय नही किया और न मैने ही तुम्हारे विरुद्ध कुछ किया। फिर विलखती रतिको अकारण ही क्यो नही दर्शन देते ॥७॥

४३ "तू (मेरे) हृदयमें बसती है" यह जो मुझसे प्रिय वाक्य कहते थे, उसे मैं वचना समझती हू। यदि यह दिखावेकी बात न थी, तो कैसे (आज) तुम अगहीन और रति अक्षत-शरीरा हैं ॥९॥

४४ परलोककी ओर (जाते) नये यात्री, मैं तेरे मार्गका अनुगमन करूगी। दैवनेइस जनको वचित कर दिया, प्राणियोका सुख तो तेरे ही अधीन है ॥१०॥

४५ हे प्रिय, रातके अन्धकारसे ढके नगर-भागमें मेघके शब्दसे भयभीत कामियोकी प्रियाओको तेरे बिना (अब) कौन (प्रियतमकी) बस्तीमें पहुचा सकेगा ॥११॥

४६ लाल नेत्रोको घुमाते पद-पदपर बातोको बडबडाते महिलाओका शराबका नशा तेरे विना अब केवल विडबना है ॥१२॥

४७ हे अनग, प्रिय बन्धु, तेरे शरीरको कथा-मात्र अवशिष्ट जानकर निष्फल-उदयवाला चन्द्रमा कृष्णपक्षमें क्षीणताको प्राप्त होते दु ख से नही छूटेगा ॥१३॥

४८ हरितारुणचारुबन्धन कलपुस्कोकिलशब्दसूचित ।
वद सप्रति कस्य वाणता नवचूतप्रसवो गमिष्यति ॥१४॥

४९ प्रतिपद्य मनोहर वपु पुनरप्यादिश तावदुत्थित ।
रतिदूतिपदेषु कोकिला मधुरालापनिसर्गपण्डिताम् ॥१६॥

५० मदनेन विनाकृता रति क्षणमात्र किल जीवितेति मे ।
वचनीयमिद व्यवस्थित रमण,त्वामनुयामि यद्यपि" ॥२१॥

—सर्ग ४

(३) कुमारक्रीडा

५१ महेश्वर शैलसुता च हर्षात्सतर्षमेकेन मुखेन गाढम् ।
अजातदन्तानि मुखानि सूनोर्मनोहराणि क्रमतश्चुचुम्ब४१।

५२ क्वचित्स्खलद्भि क्वचिदस्खलद्भि क्वचित्प्रकम्पै क्वचिदप्रकम्पै ।
बाल स लीलाचलनप्रयोगैस्तयोर्मुद वर्धयति स्म पित्रो ॥४२॥

५३ अहेतुहासच्छुरिताननेन्दुर्गृहागणक्रीडनधूलिधूम्र ।
मुहुर्वदन्किचिदलक्षितार्थं मुद तयोरकगतस्तातान ॥४३॥

५४ किंचित्कल भगुरकधरस्य नमज्जटाजूटधरस्य शभो ।
प्रलम्बमान किल कौतुकेन चिर चुचुम्बे मुकुटेन्दुखण्डम्४८

५५ इत्थ शिशो शैशवकेलिवृत्तैर्मनोभिरामैर्गिरजागिरीशौ ।
मनोविनोदैकरसप्रसक्तौ दिवानिश नाविदता कदा-
चित् ॥४९॥

—सर्ग ११

४८ हरे लाल रगके सुन्दर वृन्तवाली, कोयलके मीठे शब्दो द्वारा ज्ञापित, नये आमकी नई मजरी, बताओ अब किसका वाण बनेगी ॥१४॥

४९ मनोहर शरीर धार उठकर फिर आदेश दो। रतिकी दूतिकाओमें मीठे आलापमें स्वाभाविक पण्डित कोयलोको आज्ञा दो ॥१६॥

५० हे प्रिय, मदनसे विछडी रति क्षण भर जीती रही यह निन्दा, मेरे ऊपर आ पडी, यद्यपि मै तेरा अनुगमन करूगी" ॥२१॥

—सर्ग ४

(३) शिशु कार्तिकेय

५१. शंकर और पार्वतीने हर्षसे लालसाके साथ एक मुख द्वारा क्रमश पुत्रके विना दातवाले मनोहर छओ मुखोको चूमा ॥४१॥

५२ वह वालक कही डगमगाते कही न डगमगाते, कही कापते, कही न कापते, लीला-सहित चलनेके प्रयोगो द्वारा पिता-माताकी प्रसन्नताको वढा रहा था ॥४२॥

५३ विना कारणकी हसीसे मिश्रित मुँहवाले, घरके आगनमे खेलते, धूलिसे धूसरित, अस्पष्ट अर्थवाली कुछ वात वोलते दोनोकी गोदमें स्थित उस शिशु कुमारने प्रसन्नता पैदा की ॥४३॥

५४ पडे कन्धेवाले, झुके जटाजूटको धारण करनेवाले, शकरके से आलम्वयुक्त मुकुटके कुछ मधुर चन्द्रखण्डको कुतूहलसे देर तक उसने चूमा ॥४८॥

५५ इस प्रकार शिशुके मनोहर शैशवकी क्रीडाओ द्वारा मनोविनोद रूपी एकमात्र रसमें आसक्त गिरिजा और गिरीश कभी दिन और रात वीतने का पता भी नही पाते थे ॥४९॥

—सर्ग ११

३. रघुवंशम्

(१) रघुदिग्विजयः

५६ स सेना महती कर्षन्पूर्वसागरगामिनीम्।
बभौ हरजटाभ्रष्टां गंगामिव **भगीरथ** ॥३२॥

५७ पौरस्त्यानेवमाक्रामस्तांस्ताञ्जनपदाञ्जयी।
प्राप तालीवनश्याममुपकण्ठं महोदधेः ॥३४॥

५८ अनम्राणां समुद्धर्तुस्तस्मात्सिन्धुरयादिव।
आत्मा संरक्षितः **सुह्मै**र्वृत्तिमाश्रित्य वैतसीम् ॥३५॥

५९ **वंगा**नुत्खाय तरसा नेता नौसाधनोद्यतान्।
निचखान जयस्तम्भान्गंगास्रोतोन्तरेषु सः ॥३६॥

६० स तीर्त्वा कपिशां सैन्यैर्बद्धद्विरदसेतुभिः।
उत्कलादर्शितपथः **कलिंगा**भिमुखो ययौ ॥३८॥

६१ प्रतिजग्राह कालिंगस्तमस्त्रैर्गजसाधनः।
पक्षच्छेदोद्यतं शक्रं शिलावर्षीव पर्वतः ॥४०॥

६२ स सैन्यपरिभोगेन गजदानसुगन्धिना।
कावेरीं सरितां पत्युः शंकनीयामिवाकरोत् ॥४५॥

६३ दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणस्यां रवेरपि।
तस्यामेव रघोः **पाण्ड्याः** प्रतापं न विषेहिरे ॥४९॥

६४ **ताम्रपर्णी**समेतस्य मुक्तासारं महोदधेः।
ते निपत्य ददुस्तस्मै यशः स्वमिव संचितम् ॥५०॥

६५ स निर्विश्य यथाकामं तटेष्वालीनचन्दनौ।
स्तनाविव दिशस्तस्याः शैलौ **मलयदर्दुरौ** ॥५१॥

६६ असह्यविक्रमः **सह्यं** दूरान्मुक्तमुदन्वता।
नितम्बमिव मेदिन्याः स्रस्तांशुकमलंघयत् ॥५२॥

३. रघुवंश

(१) रघु-दिग्विजय

५६ वह (रघु) **पूर्वी** सागर गामिनी बड़ी सेनाको ले जाता शंकरकी जटासे भ्रष्ट गंगाको (ले जाते) **भागीरथ** सा मालूम पड़ा ॥३२॥

५७ उन-उन पूर्वी देशोंको इस प्रकार आक्रान्त करते वह विजयी, महासागरके श्यामल तालके वनोंवाले तटपर पहुंचा ॥३४॥

५८ न झुकनेवालोंको निर्मूल करनेवाले रघुसे, नदीके वेगसे बेतके झुकनेके स्वभावका आश्रय लेकर, **सुह्म**देशियोंने अपनी रक्षा की ॥३५॥

५९ पोतो-साधनोंके साथ तैयार **बंग**-राजको बलपूर्वक उन्मूलन कर उस नेताने **गंगा**के प्रवाहके बीच जयस्तम्भ स्थापित किया ॥३६॥

६०. गजो-बंधे सेतुओंवाली सेनाओंके साथ **कपिशा** नदीको पार कर, **उत्कलों** द्वारा दिखाये पथसे वह **कलिंग**की ओर गया ॥३८॥

६१ गजोंके साधनवाले कलिंग-राजने अस्त्रोंसे उसका मुकाबला किया जैसे पंख काटनेके लिये उद्यत इन्द्रका पत्थर बरसानेवाले पर्वतोंने ॥४०॥

६२ उसने गजोंके मदजलकी सुगन्धिवाले सेनाके कपोंके साथ, (अवगाहित कर) नदी-पतिके लिये **कावेरी**को अविश्वसनीय बना दिया ॥४५॥

६३ दक्षिण दिशा (के जाडों) में सूर्यका भी तेज मन्द हो जाता है। उसी दिशामें **पाण्ड्य** (लोग) **रघु**के प्रतापको नही सह सके ॥४९॥

६४ ताम्रपर्णीके संगमवाले महासागरकी श्रेष्ठ मोतियोंको उन्होंने अपने संचित यशकी तरह प्रणिपात करके प्रदान किया ॥५०॥

६५ तटोंपर फैले चन्दनयुक्त उस दिशाके स्तन समान **मलय** और **दर्दुर** पर्वतोंका यथेच्छ उपभोग कर ॥५१॥

६६. सागरसे दूर छूटे पृथिवीके शिथिल वस्त्रवाले नितम्ब जैसे **सह्याद्रि**का लंघन असह्य-पराक्रमी (रघुने) किया ॥५२॥

६७ तस्यानीकैर्विसर्पद्भिरपरान्तजयोद्यतै ।
रामास्त्रोत्सारितोऽप्यासीत्सह्यलग्न इवार्णव ॥५३॥

६८ भयोत्सृष्टविभूषाणा तेन **केरल**योषिताम् ।
अलकेषु चमूरेणुश्चूर्णप्रतिनिधीकृत ॥५४॥

६९ अवकाश किलोदन्वान् रामायाभ्यर्थितो ददौ ।
अपरान्तमहीपालव्याजेन रघवे करम् ॥५८॥

७० **पारसीकां**स्ततो जेतु प्रतस्थे स्थलवर्त्मना ।
इन्द्रियाख्यानिव रिपूस्तत्त्वज्ञानेन सयमी ॥६०॥

७१ **यवनी**मुखपद्माना सेहे मधुमद न स ।
बालातपमिवाब्जानामकालजलदोदया ॥६१॥

७२ सग्रामस्तुमुलस्तस्य पाश्चात्यैरश्वसाधनै ।
शार्ङ्गकूजितविज्ञेयप्रतियोधे रजस्यभूत ॥६२॥

७३ भल्लापवर्जितैस्तेषा शिरोभि श्मश्रुलैर्महीम् ।
तस्तार सरघाव्याप्तै स क्षौद्रपटलैरिव ॥६३॥

७४ अपनीतशिरस्त्राणा शेषास्त शरण ययु ।
प्रणिपातप्रतीकार सरम्भो हि महात्मनाम् ॥६४॥

७५ विनयन्ते स्म तद्योधा मधुभिर्विजयश्रमम् ।
आस्तीर्णाजिनरत्नासु द्राक्षावलयभूमिषु ॥६५॥

७६ तत. प्रतस्थे **कौवेरीं** भास्वानिव रघुर्दिशम् ।
शरैरुस्त्रैरिवोदीच्यानुद्धरिष्यन् रसानिव ॥६६॥

७७ विनीताध्वश्रमास्तस्य **सिंधु**तीरविचेष्टनै ।
दुधुवुर्वाजिन स्कन्धाल्लग्नकुकुमकेसरान् ॥६७॥

७८ तत्र **हूणा**वरोधाना भर्तृषु व्यक्तविक्रमम् ।
कपोलपाटलादेशि वभूव रघुचेष्टितम् ॥६८॥

६७ **अपरान्त** देशके जयके लिये तैयार हुई उसकी सेनाओंने परशु-रामके अस्त्रसे दूर हटाये सागरको **सह्याद्रि**से सटासा दिया ॥५३॥

६८ उसने भयसे भूषणरहित **केरल**-स्त्रियोंके अलकोंमें सेनाकी धूलिको (रखते) सुवासित चूर्णका रूप दिया ॥५४॥

६९ (जिस) सागरने प्रार्थना करनेपर रामको स्थान दिया था, उसीने **अपरान्त**के राजाके बहाने **रघुको** कर दिया ॥५८॥

७० तब **पारसीकों**को जीतनके लिए स्थल-मार्गसे (वैसेही) प्रस्थान किया, जैसे संयमी (पुरुष) इन्द्रियरूपी रिपुओंको तत्वज्ञानसे ॥६०॥

७१ **यवनियों**के मुखकमलके मद्यके नशेको उसने (वैसेही) सहन नहीं किया, जैसे, अकाल मेघोंका उदय कमलोंकी कोमल धूपको ॥६१॥

७२ घोड़ेके साधनवाले पाश्चात्योंके साथ धनुषके शब्दोंसे सूचित प्रतिभटों वाली धूलिमें उसका तुमुल संग्राम हुआ ॥६२॥

७३ उनके भालेसे कटे दाढी-मूछवाले सिरोंसे उसने पृथिवीको मधु-मक्खियोंसे व्याप्त मधुके छत्तोंकी तरह ढाक दिया ॥६३॥

७४ बाकी बचे हुए सैनिक शिरस्त्राणको हटा उसकी शरण में गये। (आखिर) महात्माओंके कोपका प्रतिकार प्रणिपात ही है ॥६४॥

७५ उसके योधाओंने महार्घ छालोंसे बिछी द्राक्षालताओंकी भूमियोंमें अंगूरकी मदिरा द्वारा विजयके खेदको मिटाया ॥६५॥

७६ तब **रघुने** सूर्यकी तरह किरणों द्वारा रसको उठाते, बाणों द्वारा उत्तरदेशियोंका उन्मूलन करते उत्तर दिशाको प्रस्थान किया ॥६६॥

७७ **सिन्धु** नदीके तीरपर लोटनेसे मार्गके खेदको हटाते उसके घोड़ोंने कन्धेपर लगे केसरसे पीले (अपने) केसरोंको हिलाया ॥६७॥

७८ वहां जगह जगह स्वामियोंके ऊपर प्रकट **रघुके** पराक्रमकी चेष्टाने **हूणों**की अन्तःपुरिकाओंके कपोलोंको लाल करनेका आदेश दिया ।६८

९० कामरूपेश्वरस्तस्य हेमपीठाधिदेवताम् ।
रत्नपुष्पोपहारेण छायामानर्च पादयो ॥८४॥

९१ इति जित्वा दिशो जिष्णुर्न्यवर्तत रथोद्धतम् ।
रजो विश्रामयन् राज्ञा छत्रशून्येषु मौलिषु ॥८५॥

—सर्ग ४

(२) **इन्दुमती-स्वयंवर.**

९२ तत्र स्वयवरसमाहृतराजलोक,
कन्याललामकमनीयमजस्य लिप्सो ।
भावावबोधकलुषा दयितेव रात्रौ,
निद्रा चिरेण नयनाभिमुखी बभूव ॥६४॥

९३. त कर्णभूषणनिपीडितपीवरास,
शय्योतरच्छदविमर्दकृशागरागम् ।
सूतात्मजा सवयस प्रथितप्रबोध,
प्राबोधयन्नुषसि वाग्भिरुदारवाच ॥६५॥

९४ "रात्रिर्गता मतिमता वर, मुच शय्या,
धात्रा द्विधैव ननु धूर्जगतो विभक्ता ।
तामेकतस्तव विभर्ति गुरुर्विनिद्रस्,
तस्या भवानपरधुर्यपदावलम्बी ॥६६॥

९५ निद्रावशेन भवताप्यनवेक्षमाणा,
पर्युत्सुकत्वमबला निशि खण्डितेव ।
लक्ष्मीर्विनोदयति येन दिगन्तलम्बी,
सोऽपि त्वदाननरुचि विजहाति चन्द्र ॥६७॥

९६ वृन्ताच्छ्लथ हरति पुष्पमनोकहाना,
संसृज्यते सरसिजैररुणाशुभिन्नै ।
स्वाभाविक परगुणेन विभातवायु,
सौरभ्यमीप्सुरिव ते मुखमारुतस्य ॥६९॥

९० कामरूपेश्वरने सुवर्ण पीठपर स्थित देवता की तरह, उसके पैरोकी छायाकी रत्न-पुष्पोके उपहारसे पूजा की ॥८४॥

९१ इस प्रकार (सभी) दिशाओको जीतकर रथसे उठी धूलियोको छत्र-शून्य राजाओंके सिरोपर विश्राम कराते विजयी (रघु) लौटा ॥८५॥
—सर्ग ४

(२) इन्दुमती-स्वयंवर

९२ वहा स्वयवरके लिये एकत्रित राजा लोगो वाली
कमनीया कन्याके लाभके इच्छुक अजकी
भाव जानती प्रियाकी तरह रातमें, निद्रा
देरसे नैनोके पास आई ॥६४॥

९३ कर्ण-भूपणसे दबे स्थूल कन्धोवाले,
शय्याकी चादरकी रगडसे मिटे अगरागवाले **अजको**
समान आयु-उदार, वचन सहित सूत-पुत्रोने उस प्रसिद्ध
प्रवोघवाले उपाकालमें (अपनी) वाणियोंसे जगाया ॥६५॥

९४ "हे मतिमानो में श्रेष्ठ, रात बीत गई, शय्या छोडो।
विधाताने तो ससारके भारको दो ही हिस्सोमें बाटा है।
जिनमेंसे एकको जागते हुए तुम्हारे पिता धारण करते है,
उसके दूसरे भारके अवलम्ब आप हैं ॥६६॥

९५ निद्रालीन आपके द्वारा उपेक्षिता,
रात्रिमें खण्डिता अवलासी (अपनी) उत्सुकताको,
लक्ष्मी जिससे हटाती, वह चन्द्र भी, दिगन्तको पकड
तुम्हारे मुख जैसी शोभा को छोड रहा है ॥६७॥

९६ सवेरेका वायु वृक्षोंके वृन्तसे शिथिल पुष्पोको हर रहा है।
लाल किरणोंसे प्रस्फुटित कमलोंके साथ,
दूसरेके गुणसे स्वाभाविक गुणको मिला रहा है।
मानो तुम्हारी श्वासकी सुगन्धिके पानेका इच्छुक है ॥६९॥

१०३. विललाप स बाष्पगद्गद सहजामप्यहाय धीरताम्।
अभितप्तमयोऽपि मार्दव भजते कैव कथा शरीरिषु ।।४३

१०४. "कुसुमान्यपि गात्रसगमात्प्रभवन्त्यायुरपोहितु यदि।
न भविष्यति हन्त साधन किमिवान्यत्प्रहरिष्यतो विधे ।।४४।।

१०५. अथवा मृदु वस्तु हिंसितु मृदुनैवारभते प्रजान्तक ।
हिमसेकविपत्तिरत्र मे नलिनी पूर्वनिदर्शन मता ।।४५।।

१०६. स्रगिय यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम्।
विषमप्यमृत क्वचिद् भवेदमृत वा विषमीश्वरेच्छया।।४६।।

१०७. अथवा मम भाग्यविप्लवादशनि कल्पित एष वेधसा ।
यदनेन तरुर्न पातित क्षपिता तद्विटपाश्रिता लता ।।४७।।

१०८ कृतवत्यसि नावधीरणामपराद्धेऽपि यदा चिर मयि।
कथमेकपदे निरागस जनमाभाष्यमिम न मन्यसे ।।४८।।

१०९ ध्रुवमस्मि शठ शुचिस्मिते विदित कैतववत्सलस्तव।
परलोकमसनिवृतये यदनापृच्छ्य गतासि मामित ।।४९।।

११० मनसापि न विप्रिय मया कृतपूर्व तव किं जहासि माम्।
ननु शब्दपति क्षितेरह त्वयि मे भावनिबन्धना रति ।।५१।।

१११. कुसुमोत्खचितान्वलीभृतश्चलयन्भृङ्गरुचस्तवालकान्।
करभोरु करोति मारुतस्त्वदुपावर्तनशकि मे मन ।।५३।।

११२ इदमुच्छ्वसितालक मुख तव विश्रान्तकथ दुनोति माम्।
निशि सुप्तमिवैकपकज विरताभ्यन्तरषट्पदस्वनम्।।५५।

१०३ अपनी सहज धीरताको भी छोडकर वह अश्रु रुँधे कण्ठसे विलाप करने लगे। सतप्त (होने पर) लोहा भी मृदु हो जाता है, शरीर-धारियोकी तो वात ही क्या ॥४३॥

१०४ "यदि शरीरको छूकर फूल भी जीवनको खतम कर सकते है, तो हन्त, प्रहार-इच्छुक दैवका दूसरा साधन क्यो नही होगा ॥४४॥

१०५ अथवा काल मृदु वस्तुको मृदु द्वारा ही मारा करता है। यहाँ पालेके अभिषेकसे मरती कमलिनी प्रथम उदाहरण दीखती है ॥४५॥

१०६ यदि यह माला जीवनघातिका है, तो हृदयपर रक्खी मुझे क्यो नही मारती? (सच है) ईश्वरकी इच्छासे विष भी कही अमृत और अमृत भी विष हो जाता है ॥४६॥

१०७ अथवा मेरे उलटे भागके कारण ब्रह्माने इसे विजली वना दिया, जो कि इसने आश्रित लताको नष्ट कर दिया, पर वृक्षको नही गिराया ॥४७॥

१०८. जव अपराध करनेपर भी चिरकाल तक तुमने मेरी अवज्ञा नही की, तो क्यो एकाएक इस निरपराध जनको वात करने योग्य नही समझती ॥४८॥

१०९ हे उज्ज्वल-हासवाली, मै झूठा स्नेह दिखलानेवाला शठ हूँ, यह तुम्हे निश्चय विदित हो गया। तभी तो मुझसे विना पूछे ही तुम न लौटनेके लिए यहाँसे परलोक चली गई ॥४९॥

११०. मैने मनसे भी कभी तुम्हारा अप्रिय नही किया, (फिर) क्यो मुझे छोड रही हो? निश्चय मैं नामके लिए पृथिवीका पति हूँ, भावोसे युक्त मेरा प्रेम तो तुझमें है ॥५१॥

१११ हे हस्तिनीसदृश उरुवाली, फूल गुथे घुघराले भ्रमरकी कान्ति वाले तेरे अलकोको वायु हिलाता मेरे मनमें तेरे लौट आने का सन्देह पैदा कर रहा है ॥५३॥

११२ यह हिलते अलकोवाला तेरा मौन मुख मुझे (वैसे ही) सतप्त कर रहा है, जैसे रात्रिमें भीतर भ्रमरके शब्दसे रहित सोया अकेला कमल ॥५५॥

११३ शशिन पुनरेति शर्वरी दयिता द्वन्द्वचर पतत्रिणम् ।
इति तौ विरहान्तरक्षमौ कथमत्यन्तगता न मा दहे ।।५६।।

११४. नवपल्लवसस्तरेऽपि ते मृदु दूयेत यदगमर्पितम् ।
तदिद विषहिष्यते कथ वद वामोरु चिताधिरोहणम्।।५७।।

११५ कलमन्यभृतासु भाषित कलहसीषु मदालस गतम् ।
पृषतीषु विलोलमीक्षित पवनाधूतलतासु विभ्रमाः ।।५९

११६ त्रिदिवोत्सुकयाप्यवेक्ष्य मा निहिता सत्यममी गुणास्त्वया
विरहे तव मे गुरुव्यथ हृदय न त्ववलम्बितु क्षमा ।।६०।।

११७ कुसुम कृतदोहदस्त्वया यदशोकोऽयमुदीरयिष्यति ।
अलकाभरण कथ नु तत्तव नेष्यामि निवापमाल्यताम्।।६२

११८ तव नि श्वसितानुकारिभिर्बकुलैरर्धचिता सम मया ।
असमाप्य विलासमेखला किमिद किनरकण्ठि सुप्यते ।।६४

११९. धृतिरस्तमिता रतिश्च्युता विरत गेयमृतुर्निरुत्सव ।
गतमाभरणप्रयोजन परिशून्य शयनीयमद्य मे ।।६६।।

१२०. गृहिणी सचिव सखी मिथ प्रियशिष्या ललिते कला-
विधौ ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वा वद कि न मे
हृतम् ।।६७।।

१२१ विभवेऽपि सति त्वया विना सुखमेतावदजस्य गण्यताम् ।
अहृतस्य विलोभनान्तरैर्मम सर्वेविषयास्त्वदाश्रा ”।।६९।

१२२ विलपन्निति कोसलाधिप करुणार्थग्रथित प्रिया प्रति ।
अकरोत्पृथिवीरुहानपि स्रुतशाखारसवाष्पदूषिताम् ।।७०

—सर्ग ८

११३ चन्द्रमाके पास फिर रात्रि आती है, चकवा पक्षीके पास फिर उसकी प्रिया आती है। इस प्रकार वे दोनो विरहके कालको सह सकते है, (पर) सदा के लिए चली गई तू मुझे क्यो न सतप्त करेगी ॥५६॥

११४ तेरा जो शरीर नव-पल्लवके बिस्तरे पर भी रखने पर सतप्त होता था, हे सुदर उरुवाली, बोल, सो यह कैसे चितापर चढना सहेगा ॥५७॥

११५ तेरा मधुर भाषण कोयलोमें, मदसे अलस गमन कलहसियोमें, चचल दृष्टि हरिनियोमें, विलास पवन-कम्पित लताओमें ॥५९॥

११६ सचमुच ही स्वर्ग जानेकी लालसावाली तूने मेरे ख्यालसे ये गुण बाँट दिये। लेकिन वे (भी) तेरे विरहमें अति व्यथित मेरे हृदयको नही थाम सकते ॥६०॥

११७. तेरा दोहद बना यह अशोक जब फूलेगा, तब तेरे अलकोंके उस आभरणको कैसे मैं श्राद्धकी माला बनाऊँगा ॥६२॥

११८. तेरे श्वासोका अनुकरण करनेवाली मौलसरियोकी हमारी आधी गुथी, इस विलास-मेखलाको बिना पूरा किये, हे किन्नरकण्ठी, तू यह क्यो सो रही ॥६४॥

११९. मेरा धैर्य अस्त हो गया, खेल छूट गया, गान विरत हो गया, ऋतु मेरे लिये उत्सवहीन हो गया। आभूषणका प्रयोजन चला गया, आज मेरी शय्या तेरे बिना परिशून्य है ॥६६॥

१२० तू ही गृहिणी, सचिव, सखी, ललित-कलाओके बारेमें परस्पर प्रिय-शिष्या रही है। निष्ठुर कालने तुझे हरते, बोल, मेरा क्या नही हर लिया ॥६७॥

१२१ विभव होनेपर भी तेरे बिना अजका सुख इतना ही गिनो, कि दूसरे प्रलोभनोमें न आकृष्ट मेरे सारे भोग तेरे अधीन है ॥६९॥"

१२२ इस प्रकार प्रियाके प्रति करुणा-पूर्ण विलाप करते कोसलाधिपने, वृक्षोको भी शाखाओसे गिरते रसरूपी आँसुओसे मलिन कर दिया ॥७०॥

—सर्ग ८

(४) रामप्रत्यावर्तनम्

१२३ अथात्मन शब्दगुण गुणज्ञ पद विमानेन विगाहमान ।
रत्नाकर वीक्ष्य मिथ स जाया रामाभिधानो हरि-
रित्युवाच ॥१॥

१२४ वैदेहि पश्यामलयाद्विभक्त मत्सेतुना फेनिलमम्बुराशिम् ।
छायापथेनेव शरत्प्रसन्नमाकाशमाविष्कृतचारुतारम् ॥२॥

१२५ गर्भे दधत्यर्कमरीचयोऽस्माद्विवृद्धिमत्राश्नुवते वसूनि ।
अबिन्धन वह्निमसौ विभर्ति प्रह्लादन ज्योतिरजन्य-
नेन ॥४॥

१२६ ता तामवस्था प्रतिपद्यमान स्थित दश व्याप्य दिशो
महिम्ना ।
विष्णोरिवास्यानवधारणीयमीदृक्तया रूपमियत्तया
वा ॥५॥

१२७ मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भ स्वय तरगाधरदानदक्ष ।
अनन्यसामान्यकलत्रवृत्ति पिवत्यसौ पाययते च
सिन्धु ॥९॥

१२८ ससत्त्वमादाय नदीमुखाम्भ समील्यन्तो विवृताननत्वात् ।
अमी शिरोभिस्तिमय सरध्रैरूर्ध्व वितन्वन्ति जल-
प्रवाहान् ॥१॥-

१२९ मातगनक्रै सहसोत्पतद्भिर्भिन्नान्द्विधा पश्य समुद्रफेनान् ।
कपोलससर्पितया य एषा व्रजन्ति कर्णक्षणचाम-
रत्वम् ॥११॥

१३० वेलानिलाय प्रसृता भुजगा महोर्मिविस्फूर्जथुनिर्विशेषा ।
सूर्याशुसपर्कसमृद्धरागैर्व्यज्यन्त एते मणिभि
फणस्थै ॥१२॥

(४) रामका अयोध्या लौटना

१२३　तब गुणज्ञ राम नामक हरिने विमानसे आकाशको अवगाहन करते, समुद्रको देखकर पत्नीसे कहा ॥१॥

१२४　"वैदेहि, मलय तक मेरे सेतु द्वारा विभक्त फेनिल सागरको देख, मानो आकाशगंगासे (विभक्त) उगे सुन्दर तारो वाला शरत्-कालका निर्मल आकाश है ॥२॥

१२५　सागरसे सूर्यकी किरणें जलरूपी गर्भ धारण करती है, यहाँ धन वृद्धिको प्राप्त होते हैं। यह जल-इंधनवाली (बड़वा) अग्निको धारण करता है, इसने आह्लादक चन्द्रमाको पैदा किया ॥४॥

१२६. नाना अवस्थाओको प्राप्त करते यह अपनी महिमासे दशो दिशाओमें व्याप्त होकर स्थित है। विष्णुकी तरह इसका रूप ऐसा या इतना कह कर समझाया नही जा सकता ॥५॥

१२७　तरगरूपी अधरके देनेमें दक्ष, पत्नीमें अनन्य सामान्य प्रेम रखनेवाला स्वभावसे ही ढीठ यह समुद्र नदियो को स्वय पीता-पिलाता है ॥९॥

१२८　नदीके मुहानेके प्राणियो सहित जलको खुले मुह हो रगड़ते, ये तिमि मत्स्य अपने छिद्रवाले सिरोंसे जलके प्रवाहोको ऊपर उछाल रहे हैं ॥१०॥

१२९　गजाकार नाकोंके एकाएक ऊपर उछलनेसे समुद्रके फेनोको दो टुकडे होता देखो,वे इनके गालके पास होनसे क्षणभरके लिये कानोंके चवर बन जाते है ॥११॥

१३०　तटकी हवा पीनेके लिए बडी लहरोंके वेगसे अभिन्नसे फैले सॉप, सूर्यकी किरणोंके सम्पर्कसे बढे रगवाली फणस्थित मणियोंसे व्यक्त होते हैं ॥१२॥

१३१. तवाधरस्पर्धिषु विद्रुमेषु पर्यस्तमेतत्सहसोर्मिवेगात्।
ऊर्ध्वांकुरप्रोतमुख कथचित्क्लेशादपक्रामति शख-
यूथम् ॥१३॥

१३२ प्रवृत्तमात्रेण पयासि पातुमावर्तवेगाद् भ्रमता घनेन।
आभाति भूयिष्ठमय समुद्र प्रमथ्यमानो गिरिणेव
भूय ॥१४॥

१३३ दूरादयश्चक्रनिभस्य तन्वी तमालतालीवनराजिनीला।
आभाति वेला लवणाम्बुराशेर्धारानिवद्धेव कलक-
रेखा ॥१५॥

१३४ कुरुष्व तावत्करभोरु, पश्चान्मार्गे मृगप्रेक्षिणि दृष्टिपात,
एषा विदूरीभवत समुद्रात्सकानना निष्पततीव -
भूमि ॥१८॥

१३५ क्वचित्पथा सचरते सुराणा क्वचिद्घनाना पतता
क्वचिच्च।
यथाविधो मे मनसोऽभिलाष प्रवर्तते पश्य तथा
विमानम् ॥१९॥

१३६ असौ महेन्द्रद्विपदानुगन्धिस्त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीत ।
आकाशवायुर्दिनयौवनोत्थानाचामति स्वेदलवा-
न्मुखे ते ॥२०॥

१३७ सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वा भ्रष्ट मया नूपुरमेक-
मुर्व्याम्।
अदृश्यत त्वच्चरणारविन्दविश्लेषदु खादिव बद्ध-
मौनम् ॥२३॥

१३८ त्व रक्षसा भीरु, यतोऽपनीता त मार्गमेता कृपया-
लता मे। अदर्शयन्वक्तुमशक्नुवत्य शाखाभिरावर्जि-
तपल्लवाभि ॥२४॥

१३१　तेरे अघरकी स्पर्श करनेवाले लहरोके वेगसे एकाएक फेंके हुये ऊपरी अकुरो सहित मूगोसे गुथे मुखवाले शखोके समूह जैसे कैसे कठिनाईसे दूर जा रहे है ।।१३।।

१३२　भँवरके वेगसे घूमते जलको पीनेमें लगे मेघ द्वारा, यह समुद्र, पर्वत द्वारा फिर अत्यधिक मथा जाता दीख पड रहा है ।।१४।।

१३३　लवणसागरकी घारासे बघी वारीक तमाल-तालकी वन-पक्तियोसे नीला तट, दूरसे लोहेके चक्केके सदृश (और) लवणसागरकी जल-धारा स्याहीकी रेखा सी दीख पडती है ।।१५।।

१३४　हे गज सी उरुवाली,मृगनयनी, जरा पीछे रास्तेपर दृष्टिपात करो। कानन-सहित यह भूमि दूर होते समुद्रसे भाग सी रही है ।।१८।।

१३५　कही देवताओंके पथसे और कही, पक्षियो कही वादलोंके पथसे मेरे मनकी अभिलापाके अनुसार देखो विमान जा रहा है ।।१९।।

१३६　यह महेन्द्रके गजके मदजलकी गन्धवाला, गगाकी लहरके सम्पर्कसे शीतल, आकाश का वायु, मध्यान्हमें निकले तेरे मुखके स्वेद-कणो को पी रहा है ।।२०।।

१३७　यही वह स्थल है, जहाँ तुझे खोजते पृथिवीपर गिरे एक नूपुरको मैंने देखा, जो मानो तेरे चरण-कमलके वियोगके दु खसे मौन था ।।२३।।

१३८　हे भीरु, जिस मार्गसे राक्षस तुझे ले गया, उसे कृपा करके, वोलनेमें असमर्थ झुके पल्लवोयुक्त शाखाओसे इन लताओने मुझे वतलाया ।।२४।।

१३९ मृग्यश्च दर्भांकुरनिर्व्यपेक्षास्तवागतिज्ञ समबोधयन्माम्।
व्यापारयन्त्यो दिशि दक्षिणस्यामुत्पक्ष्मराजीनि विलो-
चनानि ॥२५॥

१४० एतद्गिरेर्माल्यवत पुरस्तादाविर्भवत्यम्बरलेखि शृङ्गम्।
नव पयो यत्र घनैर्मया च त्वद्विप्रयोगाश्रु सम विसृ-
ष्टम् ॥२६॥

१४१ उपान्तवानीरवनोपगूढान्यालक्ष्यपारिप्लवसारसानि।
दूरावतीर्णा पिबतीव खेदादमूनि पम्पासलिलानि
दृष्टि ॥३०॥

१४२ इमा तटाशोकलता च तन्वी स्तनाभिरामस्तबका-
भिनम्राम्।
त्वत्प्राप्तिबुध्या परिरब्धुकाम सौमित्रिणा साश्रुरह
निषिद्ध ॥३२॥

१४३ धारास्वनोद्गारिदरीमुखोऽसौ शृङ्गाग्रलग्नाम्बुदव-
प्रपक ।
वध्नाति मे बन्धुरगात्रि चक्षुर्दृप्त ककुद्मानिव **चित्र-
कूटः** ॥४७॥

१४४ एषा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा सरिद्विदूरान्तरभावतन्वी।
मन्दाकिनी भाति नगोपकण्ठे मुक्तावली कण्ठगतेव
भूमे ॥४८॥

१४५ क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयी यष्टिरिवानु-
विद्धा।
अन्यत्र माला सितपकजानामिन्दीवरैरुत्खचितान्त-
रेव ॥५४॥

१३९ और तृणाकुरोकी उपेक्षा कर हरिनियोने तेरे जानेसे अनभिज्ञ मुझे सबोधित करते, ऊपर उठी पलकोकी पक्तिवाले नेत्रोको दक्षिण दिशामें कर दिया ॥२५॥

१४० **माल्यवान्** गिरिके आगे आकाशचुम्बी यह शिखर प्रकट हो रहा है, जहाँपर मेघोके साथ मैंने तेरे वियोगमें नया अश्रु-जल छोडा ॥२६॥

१४१ पासमें वेलोंके वनोसे आच्छादित, सारसोंसे दोलित पम्पाके इस जल को दूरसे उतरी दृष्टि खिन्न हो पी सी रही है ॥३०॥

१४२ स्तन जैसे सुन्दर गुच्छोंसे झुकी, तटके अशोककी पतली लताको तुझे पाया समझ अश्रु बहाते आलिगनके इच्छुक मुझे लक्ष्मणने रोका ॥३२॥

१४३ हे सुतनु, धाराकी आवाज उगलनेवाली गुहारूपी मुख और शिखरके अग्रभागपर लगे मेघके क्रीडा-पकवाला यह **चित्रकूट** दर्पयुक्त हो साडकी तरह मेरी आँखोको खीच रहा है ॥४७॥

१४४ पर्वतके पास निर्मल निश्चल प्रवाहवाली दूर होनेसे पतली यह **मन्दाकिनी** नदी भूमिके कण्ठमें पडी मुक्तावलि सी प्रतीत हो रही है ॥४८॥

१४५ कही प्रवाहको लेपन करनेवाले नीलोंसे मिश्रित हो नीलममय यष्टि सी, कही नील कमलोंसे भीतर खचित श्वेत पकजोकी माला सी ॥५४॥

१४६ क्वचितखगाना प्रियमानसाना कादम्बससर्गवतीव
पक्ति ।
अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पि-
तेव ॥५५॥

१४७ क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्चछायाविलीनै शव-
लीकृतेव ।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्य नभ-
प्रदेशा ॥५६॥

१४८ क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्मागरागा तनुरीश्वरस्य ।
पश्यानवद्यागि, विभाति **गंगा** भिन्नप्रवाहा **यमुना**-
तरगै ॥५७॥

१४९. समुद्रपत्न्योर्जलसनिपाते पूतात्मनामत्र किलाभिषेकात् ।
तत्त्वावबोधेन विनापि भूयस्तनुत्यजा नास्ति शरीर-
बन्ध ॥५८॥

१५० जलानि या तीरनिखातयूपा वहत्ययोध्या मनुराज-
धानीम् ।
तुरगमेधावभृथावतीर्णैरिक्ष्वाकुभि पुण्यतरीकृतानि॥६१॥

१५१ असौ पुरस्कृत्य गुरु पदाति पश्चादवस्थापितवाहिनीक ।
वृद्धैरमात्यै सह चीरवासा मामर्घ्यपाणिर्भरतोऽभ्यु-
पैति ॥६६॥

—सर्ग १३

(५) **परित्यक्ताऽयोध्या**

१५२ तमब्रवीत्सा गुरुणानवद्या या नीतपौरा स्वपदोन्मुखेन ।
तस्या पुर सप्रति वीतनाथा जानाहि राजन्नधिदेवता
माम् ॥९॥

१४६ कही मानसप्रेमी पक्षियोंके समूहके सम्पर्कवाली पक्ति सी, कही कालागुरुसे दिये हुये पत्राकनवाली चन्दन निर्मित पृथिवीकी भक्ति सी ॥५५॥

१४७ कही छायामें विलीन अन्धकारोंसे चन्द्रमाकी कालिमा लगी प्रभा सी, कही छिद्रोंसे दिखाई देते नील आकाशमें शरद्के शुभ्र मेघ-पक्तियो सी ॥५६॥

१४८ कही भस्म-चूर्ण लगे काले सर्पोंके भूषणवाले शकरके शरीर सी। हे निर्दोषशरीरे, देख जमुनाके तरगोंसे मिश्रित **गगा**का प्रवाह दिखलाई दे रहा है ॥५७॥

१४९ समुद्रकी पत्नियो **गगा-जमुना**के सगमपर स्नान करने से, पवित्र हुये को, तत्वज्ञानके विना भी मरनेपर शरीरका बन्धन नही रहता ॥५८॥

१५० तीरपर गाडे यज्ञस्तम्भोवाली सरयू **अयोध्या** राजधानीके पाससे जिस जलको बहाती है, उसे अश्वमेधके स्नानके लिये उतारकर **इक्ष्वाकुओ**ने पवित्र किया है ॥६१॥

१५१ (देखो) गुरुको आगे, सेनाओको पीछे किये वृद्ध अमात्योके साथ, यह चीरधारी **भरत** अर्घ्य हाथमें लिये मेरे पास आ रहे है ॥६६॥

—सर्ग १३

५. ध्वस्त अयोध्या

१५२. "मै हे अपने पदसे ऊर्ध्वगामी, तुम्हारे पिताके अधीन नागरिकोवाली थी।" वह कुशसे बोली, हे राजन्, इस समय उसी अनाथपुरी (अयोध्या) की मुझे अधिदेवता जानो ॥९॥

१५३ विशीर्णतल्पाट्टशतो निवेश पर्यस्तशाल प्रभुणा
विना मे।
विडम्वयत्यस्तनिमग्नसूर्यं दिनान्तमुग्रानिलभिन्न-
भेद्यम् ॥११।

१५४ निशासु भास्वत्कलनूपुराणा य सचरोऽभूदभिसारि-
काणाम् ।
नदन्मुखोल्काविचितामिषाभि स वाह्यते राजपथ
शिवाभि ॥१२॥

१५५ आस्फालित यत्प्रमदाकराग्रैर्मृदगधीरध्वनिमन्वगच्छत्।
वन्यैरिदानी महिषैस्तदम्भ शृङ्गाहत क्रोशति दीर्घि-
काणाम् ॥१३॥

१५६. वृक्षेशया यष्टिनिवासभगान्मृदगशब्दापगमादलास्या ।
प्राप्ता दवोल्काहतशेषबर्हा क्रीडामयूरा वनवर्हिण-
त्वम् ॥१४।

१५७. सौपानमार्गेषु च येषु रामा निक्षिप्तवत्यश्चरणान्सरागान्।
सद्यो हतन्यकुभिरस्रदिग्ध व्याघ्रै पद तेषु निधीयते
मे ॥१५॥

१५८ स्तम्भेषु योषित्प्रतियातनानामुत्क्रान्तवर्णक्रमधूस-
राणाम्।
स्तनोत्तरीयाणि भवन्ति सगान्निमोर्कपट्टा फणिभि-
र्विमुक्ता ॥१७॥

१५९ कालान्तरश्यामसुधेषु नक्तमितस्ततो रूढतृणाकुरेषु।
त एव मुक्तागुणशुद्धयोऽपि हर्म्येषु मूर्च्छन्ति न चन्द्र-
पादा ॥१८॥

१५३ स्वामीके विना सैकडो गिरे-पडे हाटो तथा ध्वस्त शालावाले मेरे गृह है, (जो) शामको उग्र वायुसे छिन्न-भिन्न मेघो-सहित डूवते सूर्य जैसे मालूम होते हैं ॥११॥

१५४ चमकते सुन्दर नूपुर पहिने अभिसारिकायें जहाँ रातोमें गमनागमन करती थी। वह राजमार्ग मुखकी मशालसे मास चुनती चिल्लाती गीदडियोका गमन-स्थान है ॥१२॥

१५५. ललनाओंके हाथोंसे मृदगकी धीर-ध्वनिका जो अनुकरण करता था, आलोडित होता था, वह दीर्घियोका जल अब वनैले भैंसोके सीगोंसे आहत होकर चिल्ला रहा है ॥१३॥

१५६ सीकचोंके निवासोकें टूट जाने से मृदगके शब्दोंके विना नृत्य-रहित हो वृक्षोपर रहनेवाले, वनाग्निकी चिनगारीसे जली पूछोवाले क्रीडा-मयूर अब वनमयूर हो गये हैं ॥१४॥

१५७ और रमणियोने महावर लगे चरणोका जिनपर निक्षेप किया था, उन मेरे सोपानमार्गोंपर तुरन्त मारे मृगोंके रक्तसे लिप्त व्याधोके पद रक्खे जाते है ॥१५॥

१५८ मिटे रगके श्रमवाले धूसर स्त्रियोकी प्रतिमाओंके लिये, स्तम्भोमें अटकी रहनेसे साँपोकी छोडी केंचुलें (आज) स्तन ढाकने की चादरें होती है ॥१७॥

१५९ समय बीतनेसे काले पडे चूनेवाले जहाँ-तहाँ उगे तृण-अकुरोवाले प्रासादोमें, चन्द्रमाकी मोती सी स्वच्छ वही किरणें (पूर्ववत्) प्रतिबिंवित नही होती ॥१८॥

१६० आवर्ज्य शाखा सदय च यासा पुष्पाण्युपात्तानि विला-
सिनीभि ।
वन्यै पुलिन्दैरिव वानरैस्ता क्लिश्यन्त उद्यानलता
मदीया ॥१९॥

१६१ रात्रावनाविष्कृतदीपभास कान्तामुखश्रीवियुता
दिवापि।
तिरस्क्रियन्ते कृमितन्तुजालैर्विच्छिन्नधूमप्रसरा
गवाक्षा ॥२०॥

१६२ बलिक्रियावर्जितसैकतानि स्नानीयससर्गमना ब्रुवन्ति
उपान्तवानीरगृहाणि दृष्ट्वा शून्यानि दूये सरयू-
जलानि ॥२१॥

१६३ तदर्हसीमा वसति विसृज्य यामभ्युपेतु कुलराजधानीम् ।
हित्वा तनु कारणमानुवीता यथा गुरुस्ते परमात्म-
मूर्तिम् ॥२२॥
—षोडश सर्ग

४. अभिज्ञानशाकुन्तलम्

(१) शकुन्तला-परित्यागः

१६४ राजा—(आरुह्य परिजनासावलम्बी तिष्ठति) वेत्रवति,
किमुद्दिश्य भगवता काश्यपेन मत्सकाशमृषय प्रेषिता
स्यु ? किं तावद् व्रतिनामुपोढतपसा विघ्नैस्तपो दूषित,
धर्मारण्यचरेषु केनचिदुत प्राणिष्वसच्चेष्टितम् ।
आहोस्वित्प्रसवो ममापचरितैर्विष्टम्भितो वीरुधा,
इत्यारूढबहुप्रतर्कमपरिच्छेदाकुल मे मन ॥९॥

प्रतीहारी—सुचरितनन्दिन ऋषयो देव सभाजयितुमागता
इति तर्कयामि।

१६० जिनकी शाखाओंसे स्नेहके साथ पकडकर विलासिनियोने पूजाके फूल उतारे थे, वह मेरी उद्यान-लतायें जगली भीलो जैसे वानरो द्वारा पीडित हो रही है॥१९॥

१६१ रातको दीपककी रोशनीसे शून्य, दिनमें भी ललनाओकी मुख-शोभासे रहित, विना धूयेंवाले गवाक्ष मकडियोंके जालोंसे ढाके जा रहे है॥२०॥

१६२ पूजा-कर्मसे रहित वालुकामय, स्नानीय चूर्णोसे वचित, पासमें वेंत-र घरवाले सरयूके शून्य जलो को देखकर मै सतप्त हो उठती हूँ॥२१॥

१६३ इसलिये इस (श्रावस्ती) बस्तीको छोडकर (अपनी) कुलराजधानी अयोध्यामें चलो॥२२॥

—सर्ग १६

४. अभिज्ञानशाकुन्तल

१. शकुन्तलाका परित्याग

१६४ राजा—(द्वारके कोठेपर चढकर परिजनके कन्धेका आसरा लिये खडे हैं) वेत्रधारिणी, किसलिये भगवान् काश्यपने मेरे पास ऋषियो को भेजा होगा—

क्या वढे व्रतवालोंके तप में विघ्न पडा,
या धर्मारण्यमें रहनेवाले प्राणियोपर अत्याचार हुआ,
अथवा मेरे पापोंसे वन-लताओका फूलना-फलना रुक गया,
इस तरह वहुत तर्क-वितर्क करते निश्चय न कर मेरा मन व्याकुल है॥९॥

प्रतिहारी—मै सोचती हूँ, सदाचार-प्रेमी ऋषि महाराजका अभि-नन्दन करनेके लिये आये हैं।

(**गौतमी**के साथ **शकुन्तला**को आगे करके मुनि लोग प्रवेश करते है, उनके आगे-आगे कचुकी और पुरोहित है)।

कचुकी[1]—आप लोग इधर-इधर आयें।

---

[1] ख्वाजासरा, अन्त पुरचारी वृद्ध ब्राह्मण।

(तत प्रविशन्ति गौतमीसहिता शकुन्तला पुरस्कृत्य मुनय पुरश्चैषा कचुकी पुरोहितश्च)

कचुकी—इत इतो भवन्त ।

१६५. शाङ्गरव—शारद्वत,

महाभाग काम नरपतिरभिन्नस्थितिरहो,
न कश्चिद्वर्णनामपथमपकृष्टोऽपि भजते।
तथापीद शश्वत्परिचितविविक्तेन मनसा,
जनाकीर्णं मन्ये हुतवहपरीत गृहमिव ।।१०।।

१६६. शकुन्तला—(निमित्त सूचयित्वा)। अहो, कि मे वामेतरन्नयन विस्फुरति।

गौतमी—जाते, प्रतिहतममगलम्। सुखानि ते भर्तृकुल-देवा वितरन्तु। (इति परिक्रामति।)

१६७ पुरोहित—(राजान निर्दिश्य) भो भोस्तपस्विन असावत्र भवान्वर्णाश्रमाणा रक्षिता प्रागेव मुक्तासनो व प्रतिपालयति। पश्यतैनम्।

१६८ शाङ्गरव—भो महाब्राह्मण, काममेतदभिनन्दनीय तथापि वयमत्र मध्यस्था । कुत—

भवन्ति नम्रास्तरव फलागमैर्,
नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घना ।
अनुद्धता सत्पुरुषा समृद्धिभि,
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ।।१२।।

प्रतीहारी—देव, प्रसन्नमुखवर्णा दृश्यन्ते। जानामि विश्रब्धकार्या ऋषय ।

१६९ राजा—(शकुन्तला दृष्ट्वा) अथात्र भवती—

का स्विदवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या।
मध्ये तपोधनाना किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम् ।।१३।।

१६५ शार्ङ्गरव—शारद्वत,
अहो महाभाग राजा चाहे न्यायपर दृढ़ हो,
वर्णोंमें कोई भी कुमार्गपर चलता हो,
तो भी सदा एकान्तमें अभ्यस्त मनसे,
यह जनाकीर्ण स्थान मुझे आगसे घिरे घर सा मालूम होता है ॥१०॥

१६६ शकुन्तला—(असगुन देखकर) अहो, मेरा दाहिना नेत्र क्यों फडक रहा है ?
गौतमी—पुत्रि, (तेरा) अमगल नष्ट हो गया है। पतिके कुलदेवता तुझे सुख प्रदान करें। (परिक्रमा करके)

१६७ पुरोहित—(राजाको दिखलाकर) हे तपस्वियो, वर्णाश्रमो के रक्षक यहाँ आप पहले ही से आसन को छोड आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, उन्हें देखें।

१६८ शार्ङ्गरव—हे महाब्राह्मण, चाहे यह अभिनन्दनीय हो, तो भी हम इस विषयमें उदासीन है। क्योकि—
फलके आनेपर वृक्ष नम्र होते हैं,
नये जलवाले मेघ दूर तक लटकते है।
सत्पुरुष समृद्धिसे उच्छृखल नही होते,
परोपकारियोका यही स्वभाव है ॥१२॥
प्रतिहारी—महाराज, यह प्रसन्नमुख दिखाई दे रहे है। मै समझती हूँ, ऋषि आश्वस्त है।

१६९ राजा—(शकुन्तलाको देखकर) और यह आप—
शरीरके अत्यन्त अस्फुट सौन्दर्यसे युक्त अवगुण्ठनवती,
तपस्वियोके बीच पीले पत्तोंके बीच नवपल्लवो सी कौन है ॥१३॥

१७० प्रतीहारी—देव, कुतूहलगर्भोपहितो न मे तर्क प्रसरति। ननु दर्शनीया पुनरस्या आकृतिर्लक्ष्यते।
राजा—भवतु। अनिर्वर्णनीय परकलत्रम्।

१७१. शकुन्तला—(हस्तमुरसि कृत्वा। आत्मगतम्) हृदय, किमेव वेपसे? आर्यपुत्रस्य भावमवधार्य धीर तावद् भव।

१७२. पुरोहित—(पुरोगत्वा) एते विधिवदर्चितास्तपस्विन। कश्चिदेषामुपाध्यायसदेश। त देव श्रोतुमर्हति।
राजा—अवहितोऽस्मि।

१७३ ऋषय—(हस्तानुद्यम्य) विजयस्व राजन्।
राजा—सर्वानभिवादये।
ऋषय—इष्टेन युज्यस्व।
राजा—अपि निर्विघ्नतपसो मुनय?

१७४ ऋषय—
कुतो धर्मक्रियाविघ्न सता रक्षितरि त्वयि।
तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति॥१४॥

१७५ राजा—अर्थवान्खलु मे राजशब्द। अथ भगवाल्लोकानुग्रहाय कुशली कण्व?
ऋषय—स्वाधीनकुशला सिद्धिमन्त। स भवन्तमनामयप्रश्नपूर्वकमिदमाह—
राजा—किमाज्ञापयति भगवान्?

१७६ शार्ङ्गरव—यन्मिथ समयादिमा मदीया दुहितर भवानुपायस्त, तन्मया प्रीतिमता युवयोरनुज्ञातम्। कुत, तदिदानीमापन्नसत्वा प्रतिगृह्यता सहधर्म चरणायेति।

१७० प्रतिहारी—महाराज, कौतूहलमें पडा मेरा तर्क काम नही दे रहा। हाँ इसका रूप दर्शनीय मालूम होता है।
राजा—अस्तु, दूसरेकी स्त्रीको नही देखना चाहिये।

१७१. शकुन्तला—(छातीपर हाथ रख अपने आपसे) हृदय, क्यो इस तरह काँपता है। आर्यपुत्रके अभिप्रायको जानकर धीरज धर।

१७२ पुरोहित—(आगे जाकर) इन तपस्वी (महात्माओ) की विधिवत् पूजा कर दी गई है। इनके उपाध्यायका कोई सन्देश है, उसे महाराज सुनें।
राजा—मै सावधान हूँ।

१७३. ऋषि लोग—(हाथ उठाकर) राजन् तुम्हारी विजय हो।
राजा—मै सबको अभिवादन करता हूँ।
ऋषि लोग—तुम्हारी अभिलाषा पूरी हो।
राजा—मुनि लोगोकी तपस्या निर्विघ्न तो है?

१७४. ऋषि लोग—
तुम्हारे रक्षक होते कैसे सतोंके धर्म-कार्यमें विघ्न हो सकता है?
सूर्य के तपते समय कैसे अन्धकार प्रकट हो सकता है॥१४॥

१७५ राजा—मेरा राजाका नाम सार्थक है। अच्छा, भगवान् कण्व लोक पर अनुग्रह करनेके लिये कुशलपूर्वक तो है?
ऋषि लोग—सिद्धिप्राप्त पुरुषोका कुशल (उनके) स्वाधीन होता है। उन्होने कुशल-मगल पूछकर यह कहा है।
राजा—भगवान् क्या आज्ञा देते है?

१७६ शार्ङ्गरव—"आपसमें शर्त करके मेरी कन्याके साथ आपने व्याह किया, सो प्रसन्नताके साथ मैने आप दोनोके कार्यको स्वीकार किया। अब यह गर्भिणी है, इसे साथ रख धर्माचरणके लिये ग्रहण कीजिये"। ..

१७७ शकुन्तला—(आत्मगतम्) किं नु खल्वार्यपुत्रो भणति ?

राजा—किमिदमुपन्यस्तम् ?

१७८ शकुन्तला—(आत्मगतम्) पावक खलु वचनोपन्यास

शार्ङ्गरव—कथमिद नाम ? भवन्त एव सुतरा लोक-वृत्तान्तनिष्णाता

गौतमी—

नापेक्षितो गुरुजनो नो खलु पृष्टश्च बन्धुजन ।
परस्परस्मिन्नेव चरिते भणामि किमेकैकम् ॥१६॥

सतीमपि ज्ञातकुलैकसश्रया जनोऽन्यथा भर्तुमती विशकते।
अत समीपे परिणेतुरिष्यते प्रियाप्रिया च प्रमदा स्व-बन्धुभि ॥१७॥

राजा—किं चात्र भवती मया परिणीतपूर्वा ?

शकुन्तला—(सविषादम्, आत्मगतम्) हृदय, साप्रत त आशका।

१७९ गौतमी—जाते, मुहुर्तं मा लज्जस्व। अपनेष्यामि तावत्तेऽवगुण्ठनम्। ततस्त्वा भर्ताभिज्ञास्यति। (इति यथोक्त करोति)।

१८० राजा—शकुन्तला निर्वर्ण्य। (आत्मगतम्)—

इदमुपनतमेव रूपमक्लिष्टकान्ति,
प्रथमपरिगृहीत स्यान्न वेति व्यवस्यन्।
भ्रमर इव विभाते कुन्दमन्तस्तुषार।
न च खलु परिभक्तु नैव शक्नोमि हातुम् ॥१९॥

(इति विचारयन्स्थित)

१७७ शकुन्तला—(अपने आपसे) देखें, आर्यपुत्र क्या बोलते हैं?
राजा—आपने यह क्या कहा?

१७८ शकुन्तला—(अपने आपसे)। यह वचन आग-जैसा है।
शार्ङ्गरव—यह कैसे? आप ही लोकवृत्तान्तके अधिक ज्ञाता हैं।
इसने गुरुजनोकी अपेक्षा नही की, और न वन्धुजनोसे पूछा।
परस्पर किये कामके विषयमें एक-एकको क्या कहूँ ॥१६॥
मायकेमें ही केवल रहनेवाली सधवा सतीके वारेमें भी लोग शका करते है। इसलिये प्रिया या अप्रिया स्त्रीको वन्धुजन पतिके पास रख देना चाहते है॥१७॥
राजा—क्या मैंने इन आपसे पहले व्याह किया है?
शकुन्तला—(विपादके साथ अपने आपसे) हृदय, तेरी शका उचित है।

१७९ गौतमी—पुत्रि, जरा लज्जा न कर। तेरे घूघटको हटाती हूँ, तव तुझे पति पहचानेंगे।

१८० राजा—(शकुन्तलाको अच्छी तरह देखकर अपने आपसे)—
ऐसा निर्मल कमनीय रूप (घर) आया है,
इसे पहले ग्रहण किया या नही, यह सोचते,
भीतर तुपारयुक्त कुन्दको सवेरे जैसे भ्रमर,
(वैसे ही) मैं न भोग सकता न छोड सकता॥१९॥
(यह विचारते खड़ा रहा)।

१८१ प्रतीहारी—अहो धर्मापेक्षिता भर्तु। ईदृश नाम सुखोपनत रूप दृष्ट्वा कोऽन्यो विचारयति।

शार्ङ्गरव—भो राजन्, किमिति जोषमास्यते?

१८२ राजा—भोस्तपोधन, चिन्तयन्नपि न खलु स्वीकरण-मत्रभवत्या स्मरामि। तत्कथमिमामभिव्यक्तसत्त्व-लक्षणा प्रत्यात्मान क्षेत्रिणमाशकमान प्रतिपत्स्ये?

१८३ शकुन्तला—(अपवार्य) आर्यस्य परिणय एव सदेह। कुत इदानी मे दूराधिरोहिण्याशा।

१८४ शार्ङ्गरव—मा तावत्—

कृताभिमर्षामनुमन्यमान सुता त्वया नाद्य मुनि-
विमान्य।
मुष्ट प्रतिग्राहयता स्वमर्थं पात्रीकृतो दस्युरिवासि
येन ॥२०॥

१८५ शारद्वत—शार्ङ्गरव, विरम त्वमिदानीम्। शकुन्तले, वक्तव्यमुक्तमस्माभि। सोऽयमत्र भवानेवमाह। दीय-तामस्मै प्रत्ययप्रतिवचनम्।

१८६ शकुन्तला—(अपवार्य) इदमवस्थान्तर गते तादृशे-नुरागे किं वा स्मारितेन। आत्मेदानी मे शोचनीय इति व्यवसितमेतन् (प्रकाश) आर्यपुत्र, (इत्यर्धोक्ते) सशयित इदानी परिणये नैष समुदाचार। पौरव, न युक्त नाम ते तथा पुराऽऽश्रमपदे स्वभावोत्तानहृदयमिम जन समयपूर्व प्रतार्यदृशैरक्षरै प्रत्याख्यातुम्।

१८७ राजा—(कर्णौ पिधाय) शान्त पापम्।

व्यपदेशमाविलयितु किमीहसे जनमिम च पातयितुम्।
कूलकषेव सिन्धु प्रसन्नमम्भस्तटतरु च ॥२१॥

१८१ प्रतिहारी—अहो, स्वामीका धर्मपर ध्यान। ऐसे सुलभ रूपको देख कर कौन है दूसरा, (जो) हिचकिचाता।
शार्ङ्गरव—राजन्, आप क्यो चुप है ?

१८२ राजा—हे तपोवन, सोच कर भी इनके ग्रहणकी बात मुझे याद नही आती। फिर कैसे प्रकट गर्भिणी इनके प्रति अपनेको क्षेत्री बनाऊ।

१८३ शकुन्तला—(एकान्तमें) व्याहके विषयमें भी आर्यको सन्देह है ? अब कहाँ से मैं दूरवाली सीढीकी आशा कर सकती हूँ ?

१८४ शार्ङ्गरव—ऐसा मत कहो—
(तुमसे) अपनी सुताको सबवित मानते (उस) मुनिको अपमानित न करो। जिसने चुराये धनको चोरको देते तुम्हें पात्र बनाया ॥२०॥

१८५ शारद्वत—शार्ङ्गरव, जरा तुम ठहरो। शकुन्तले, जो कहना था, हमने कह दिया। और आप ऐसा कह रहे है। इन्हें विश्वास दिलाओ।

१८६ शकुन्तला—(एकान्तमें) उस तरहके अनुरागके उलट जाने पर याद करानेसे क्या ? मुझे अब अपनेपर शोक करना है, यही निश्चित है। (प्रकट) आर्यपुत्र, (आधा ही कहकर, विवाहके सदिग्ध होनेपर यह सबोधन ठीक नही) पुरु-सतान, पहले आश्रममें स्वभावत सरल हृदयवाले इस जनको प्रतिज्ञापूर्वक वचित कर ऐसे शब्दो द्वारा प्रत्याख्यान करना तुम्हारे लिये उचित नही है।

१८७ राजा—(दोनो कानोपर हाथ रखकर) शान्त पापम् क्या (मेरी) कीर्तिको मलिन करना और इस जनको गिराना चाहती हो, जैसे किनारा तोडनेवाली नदी निर्मल जल और तटके वृक्षको (गिराती है) ॥२१॥

१८८ शकुन्तला—भवतु। यदि परमार्थत परपरिग्रह-शकिना त्वयैव वक्तु प्रवृत्त, तदभिज्ञानेनानेन तवाशकामपनेष्यामि।
राजा—उदार कल्प।

१८९ शकुन्तला—(मुद्रास्थान परामृश्य) हा धिक्। अगुलीयकशून्या मेऽगुलि। (इति सविषाद गौतमीमवेक्षते)।
गौतमी—नून ते शक्रावताराभ्यन्तरे शचीतीर्थसलिल वन्दमानाया प्रभ्रष्टमगुलीयकम्।

—अक ५

(२) **अभिज्ञान-लाभः**

(तत प्रविशति नागरिक श्याल, पश्चाद्बद्धपुरुषमादाय रक्षिणौ च)

१९० रक्षिणौ—(ताडयित्वा) अरे कुम्भीरक, कथय कुत्र त्वयैतन्मणिबन्धनोत्कीर्णनामधेय राजकीयमगुलीयकमासादितम्?
पुरुष—(भीतिनाटितकेन) प्रसीदन्तु भावमिश्रा.। अह नेदृशकर्मकारी।

१९१ प्रथम—कि शोभनो ब्राह्मण इति कलयित्वा राज्ञा प्रतिग्रहो दत्त.?
पुरुष—शृणुतेदानीम्। अह शक्रावताराभ्यन्तरवासी धीवर।

१९२ द्वितीय—पाटच्चर, किमस्माभिर्जाति पृष्ठा?
उभौ—यदावुत आज्ञापयति, कथय।

१८८ शकुन्तला—अस्तु, यदि पराईके स्वीकारके भयसे तुम वस्तुत ऐसा कहते हो, तो इस अभिज्ञान से तुम्हारी शका मिटाती हूँ।
राजा—बहुत ठीक ।

१८९. शकुन्तला—(अगूठीके स्थानको छूकर) हा धिक्, मेरी अगुली में अगूठी नही है। (यह कह खिन्न हो गौतमीको देखती है)।
गौतमी—निश्चय, शक्रावतारमें शची तीर्थकी वदना करते तेरी अगूठी गिरी होगी।

—अक ५

(प्रवेशक)

२. स्मारक अंगूठी का लाभ

(कोतवाल हाथ पीछे बधे पुरुष और दो पुलिस सिपाहियोको लेकर प्रवेश करता है।)

१९० दोनो सिपाही—(पीटकर) अरे चोर, बता यह नामाकित राजकीय अगूठी तूने कहाँ पाई ?
पुरुष—(भयका अभिनय करते) हुजूर, दया करें। मै ऐसा काम करनेवाला नही हूँ।

१९१ प्रथम सिपाही—तो क्या भला ब्राह्मण समझकर राजाने (इसे) तुझे दान दिया।
पुरुष—सुनिये अब। मै शक्रावतारमें रहनेवाला धीवर हूँ।

१९२ दूसरा सिपाही—लुटेरे, क्या हमने तुझसे जात पूछी ?
कोतवाल—सूचक, क्रमसे सब कहने दो, बीचमें मत टोको।

१९३ पुरुष —अह जालोद्गालादिभिर्मत्स्यबाधनोपायै कुटु-म्बभरण करोमि। एकस्मिन्दिवसे खण्डशो रोहितमत्स्यो मया कल्पितो, यावत् तस्योदराभ्यन्तर इद रत्नभासुरमगुलीय दृष्ट्वा पश्चादह तस्य विक्रयाय दर्शयन्गृहीतो भावमिश्रै। मारयत वा मुचत वा, अयमस्यागमवृत्तान्त।

१९४ श्याल —जानुक, विस्रगन्धी गोधादी मत्स्यबन्ध एव नि सशयम्। अगुलीयकदर्शनमस्य विमर्शयितव्यम्। राजकुलमेव गच्छाम

रक्षिणौ—तथा। गच्छ अरे गण्डभेदक।

(सर्वे परिक्रामन्ति)

१९५ श्याल —सूचक, इम गोपुरद्वारेऽप्रमत्तौ प्रतिपालयत यावदिदमगुलीयक यथागमन भर्तुर्निवेद्य तत शासन प्रतीक्ष्य निष्क्रमामि

१९६ उभौ—प्रविशत्वावुत्त स्वामिप्रसादाय

(इतिनिष्क्रान्त श्याल)

प्रथम —जानुक, चिरायते खल्वावुत्त।

द्वितीय —नन्ववसरोपसर्पणीया राजान।

१९७ प्रथम —जानुक, प्रस्फुरतो मम हस्तावस्य वधार्थ सुमनस पिनद्धुम (इति पुरुष निर्दिशति)।

१९८ पुरुष —नार्हति भावोऽकारणमारण भावयितुम्। द्वितीय —(विलोक्य) एष नौ स्वामी पत्रहस्तो राज-शासन प्रतीक्ष्यैतोमुखो दृश्यते। गृध्रबलिर्भविष्यति, शुनो मुख वा द्रक्ष्यसि।

(प्रविश्य)

१९३ पुरुष—मैं जाल फेंकने आदि मछली फसानेके उपायोंसे कुटुम्वका पोषण करता हूँ। एक दिन रोहू मछलीको मैं खड-खड काट रहा था। उसी समय उसके पेटके भीतर इस रत्न जैसी प्रकाशमान अगूठीको देखकर फिर मैं वेचनेके लिये इसे दिखला रहा था, तभी हुजूर लोगोने मुझे पकड लिया। मारिये या छोडिये, इसकी प्राप्तिकी यही वात है।

१९४ कोतवाल—जानुक यह निस्सन्देह विसाइन वसाता गोह-भक्षक धीवर है। अगूठी कैसे पाया, यह सोचना है। दरवारमें ही चलते हैं।

दोनो सिपाही—ठीक, चल रे पाकेटमार।

(सब परिक्रमा करते हैं)

१९५ कोतवाल—सूचक, दरवारके फाटकपर इसे सावधानीसे तव तक रक्खो, जव तक कि अगूठी कैसे प्राप्त हुई, इसके वारेमें स्वामीको निवेदन कर उनसे आज्ञा लेकर मैं न आजाऊँ।

१९६ दोनो सिपाही—वावू, स्वामीकी कृपा पानेके लिये प्रवेश करें।

(कोतवाल निकल गया)

प्रथम सिपाही—जानुक, वावू देर कर रहे है।

दूसरा सिपाही—राजा लोगोंके पास अवसर पाकर ही पहुचना होता है।

१९७ प्रथम सिपाही—जानुक, वध के लिये इसपर, फूल वाधनेके वास्ते मेरे हाथ फडक रहे हैं।

(ऐसा कहते पुरुषकी ओर इशारा करता है।)

१९८ पुरुष—हुजूर, अकारण मरवाना नही चाहिये।

दूसरा सिपाही—(देखकर) यह हमारे स्वामी हाथमें पत्र लिये राजाज्ञा पा इधर ही आते दिखाई दे रहे है। रे, (अव) तू गिद्धोकी वलि होगा, या कुत्तेका मुह देखेगा।

(प्रवेश करके)

१९९ श्याल —सूचक, मुच्यतामेष जालोपजीवी। उपपन्न खल्वगुलीयस्यागम ।
सूचक —यथावुत्तो भणति।
द्वितीय —एष यमसदन प्रविश्य प्रतिनिवृत्त । (इति पुरुष परिमुक्तबन्धन करोति)।

२०० पुरुष —(श्याल प्रणम्य) भर्त, अथ कीदृशो म आजीव ?
श्याल —एष भर्त्रागुलीयकमूल्यसमित प्रसादोऽपि दापित (इति पुरुषाय स्व प्रयच्छति)।

२०१ पुरुष —(सप्रणाम प्रतिगृह्य) भर्त, अनुगृहीतोऽस्मि
सूचक —एप नामानुग्रहो यच्छूलादवतार्य हस्तिस्कन्धे प्रतिष्ठापित ।
जानुक —आवुत्त, परितोष कथय। तेनागुलीयकेन भर्तु समतेन भवितव्यम् ?

२०२ श्याल —न तस्मिन्महार्हं रत्न भर्तुर्बहुमतमिति तर्कयामि। तस्य दर्शनेन भतुरभिमतो जन स्मारित । मुहुर्त प्रकृतिगम्भीरोऽपि पर्युत्सुकनयन आसीत्।

२०३ सूचक —सेवित नामावुत्तेन।
जानुक —ननु भण। अस्य कृते मात्स्यिकभर्तुरिति (इति पुरुषमसूयया पश्यति)।

२०४ पुरुष —भट्टारक, इतोऽर्धं युष्माकं सुमनोमूल्यं भवतु।
जानुक —एतावद्युज्यते।

२०५. श्याल —धीवर, महत्तरस्त्व प्रियवयस्यक इदानी मे सवृत्त । कादम्वरीसखित्वमस्माकं प्रथमशोभितमिष्यते। तच्छौण्डिकापणमेव गच्छाम ।

(इति निष्क्रान्ता सर्वे)

—अक ६

१९९. कोतवाल—सूचक, धीवरको छोड दो। अगूठी (जैसे) मिली (वह) ठीक है।
सूचक—जैसी वाबूकी आज्ञा।
दूसरा सिपाही— यमराजके घरमें पहुँचकर यह लौट आया।

२००. पुरुष—(कोतवालको प्रणाम कर) स्वामी, तो कैसा रहा मेरा पेशा ?
कोतवाल—स्वामीने अगूठीके मूल्यके वरावर यह इनाम दिलवाया है। (पुरुषको धन देता है)।

२०१. पुरुष—(प्रणाम सहित ले कर) मालिक, वडा अनुगृहीत हूँ।
सूचक—इसीको अनुग्रह कहा जाता है, जो सूलीसे उतारकर हाथी के कन्धेपर वैठाना।
जानुक—वावू, इनाम की वात कही। वह अगूठी स्वामीको वहुत प्रिय होगी।

२०२ कोतवाल—मैं समझता हूँ, महार्घ रत्न सोचकर वह स्वामीको प्रिय नही है, उसके दर्शनसे स्वामीको अपने प्रियजनकी याद हो आई। स्वभावत गम्भीर भी स्वामी क्षणभर कातर-नयन हो गये।

२०३. सूचक—तो वाबूने सेवा वजा दी।
जानुक—तो वतलाओ, इसके वारेमें धीवरको (पुरुषको ईर्ष्यासे देखता है)।

२०४. पुरुष—भट्टारक, इसका आधा तुम लोगोंके लिये फूलका दाम रहे।
जानुक—इतना ठीक है।

२०५ कोतवाल—धीवर महतो, तू अव मेरा प्रिय मित्र हो गया। पहिला शुभ कार्य, हमारा शरावसे मित्र वनना ठीक है, सो कलालकी दूकानमें चलें।

(सव निकल गये)

—अक ६

५. दिदृक्षुरन्त सरसीमलध्य, यत्खातहस समुदीक्ष्य
वप्रम्।
सस्मार नून दृढक्रौंचकुज,-भागच्छिद भार्गवमा-
र्गणस्य ॥५॥

६. रथ्यासु यस्या रदिनो गृहाणा,-मादर्शभिन्न कृत-
बध्यघाता ।
स्वबिंबमालोक्य तत प्रमाण, चक्रुर्मदामोदमरि-
द्विपानाम् ॥६॥

७ लग्नैकभाग सितहर्म्यश्रृगे, विकृष्य मन्देन समीरणेन।
दीर्घीकृत बालमृणालशुभ्रं, करोति यत्रध्वज-
कृत्यमभ्रम् ॥७॥

८ यस्या युवत्यो विहिता विधात्रा, रत्नैरिवापूर्वपुष
प्रकर्षम् ।
प्रवालशीर्षा वदन सुवर्ण, मुक्तामयागावयवान्-
वहन्त्य ॥८॥

९. आलिग्य तुग वलभीविटक, विश्राणितात्मध्वनिपुष्करेषु
यत्सौधकान्तेरिव सविभाग, वव्रे सित शारदमभ्र-
वृन्दम् ॥९॥

१०. प्रभाविवृत्तिर्वितता पताका-,स्वासन्नजीमूतघटासु
यस्याम् ।
विद्युन्निभा काचनर्पिजरासु, ततान तोष शिखिना-
मुदग्रम् ॥१०॥
—सर्ग १

५. जिसकी परिखाका हस, सरोवरके भीतर देखनेके इच्छुक अलंघनीय प्रकारको ऊपर देखकर, भार्गवके वाणके दृढ क्रौंच-कुजके भागका छेदना याद करता था ।।५।।

६. जिसकी सडकोपर के हाथी घरोंके दर्पणमें निकले अपने प्रतिविंवको देखकर वध्य घात किये गज शत्रुओंके गजोके मदकी गन्ध का पता पाते ।।६।।

७ सफेद महलके शिखरके एक छोरपर फसा, मन्द वायुसे खिंचा, नव मृणाल जैसा श्वेत लम्बा, वना मेघ, पताकेका काम देता था ।।७।।

८. जहाँ ब्रह्माने युवतियोको रत्नोकी तरह सुन्दर शरीर, मूगे जैसे सिरवाले सुनहले मुख, मुक्तामय शरीरावयव वाली वनाया ।।८।।

९ अटारीकी ऊँची वेदीका आलिगन कर, पोखरोंमें अपनी ध्वनिको वाट कर, शरद्कालके श्वेत मेघने जिसके महलोकी कान्ति को स्वीकार सा किया ।।९।।

१० जिस नगरीमें समीपस्थ मेघकी घटाओ में विजली-सी पताकाओंमें फैली प्रभाने, सोनेके पिंजड़ोमें स्थित मोरोको वहुत प्रसन्न किया ।।१०।।

—सर्ग १

(२) वसन्तः

११. अथो वसन्त सुमनस्समृद्ध्या, पूर्वावितीर्णो भुवन ततान ।
तस्य श्रिय प्राणसमस्य सम्यग्, ज्ञात्वा विवक्षामिव मर्त्यधाम ॥१॥

१२ भ्रान्त्वा विवस्वानथ दक्षिणाशा, आलब्य सर्वत्र करप्रसारी ।
ऋत्विक्ततो नि स्व इव प्रतस्थे, यत्रोपलब्धौ धनदस्य . वास ॥२॥

१३ रूप वितेनुर्नवकुड्मलाढ्या, वृक्षा मनोज्ञद्युतिचपकाख्या
न्यस्ता वसन्तस्य वनस्थलीभि, सहस्रदीपा इव दीप-वृक्षा ॥३॥

१४. सपिंडितात्मावयवा उदीयु, पद्मानवा कटकितोर्ध्व-दडा ।
अन्तर्जलावासविरूढशीत,-त्रस्ता वसन्तातपका-म्ययैव ॥४॥

१५. कर्णे कृतो दीर्घविलोचनाना, आलोलदृष्टिद्युति-भिन्नराग ।
बालोऽप्यशोकप्रभव प्रवाल, कान्ति प्रपेदे परि-णामगम्यम् ॥५॥

१६. प्रादुर्बभूवुर्नवकुड्मलानि, स्फुरन्ति कान्त्या करवीरजानि
प्रवासिना शोणितपाटलानि, नीरीफलानीव मनो-भवस्य ॥६॥

१७. वन्ध्योपि सालक्तकपादघात, लब्ध्वा रणन्नूपुरमग-नानाम्
उद्भूतरोमाच इवातिहर्षात्, पुष्पाकुरैरास नवैर-शोकः ॥७॥

२. वसन्त-वर्णन

११ तब वसन्त फूलोकी समृद्धिके साथ पहले उतरकर भुवनमें फैल गया। उसकी प्राणसम शोभाको भली प्रकार जानकर मर्त्यलोक में रहनेकी इच्छासे मानो ॥१॥

१२ सूर्यने दक्षिणायन भ्रमणकर सर्वत्र किरणोको बिखेर, अधिक दानसे मानो धनहीन हो, कुबेरका जहाँ वास है, वहाँ उसे पानेके लिये प्रस्थान किया ॥२॥

१३ मनोहर द्युतिवाले चम्पक वृक्ष नवीन कलियोंसे समृद्ध हो सौन्दर्य बढा रहे थे। वनस्थलियोने वसन्तके हजार दीपवाले झाडको मानो स्थापित किया था ॥३॥

१४ अपने शरीरको सकुचित किये, कण्टकित ऊपरी नालवाले, नवीन पद्म उगे थे। मानो जलके भीतर वास करनेसे बढी सर्दीसे डरकर वसन्तकी धूपकी कामनासे ही (यह कह रहे थे) ॥४॥

१५ विशाल-नेत्रियोके कानोमें स्थापित अशोकसे मूगारूपी नव-अकुरने चचल नेत्रकी आभासे रगसे मिश्रित हो उनकी कान्तिको धारण किया ॥५॥

१६ करवीरकी नवीन कलियाँ प्रादुर्भूत हुईं, अपनी कान्तिसे चमकने लगी। मानो कामदेव के लाल नीरीफल विरहियोके रक्तसे रजित है ॥६॥

१७ वन्ध्या होते भी अगनाओके झँकृत नुपूरवाले महावर सहित पैरोके आघातसे, मानो वन्ध्या अशोक अति हर्षसे नवीन पुष्पाकुरोके मिससे रोमाचित है ॥७॥

१८. महीध्रमूर्ध्नि भ्रमरेन्द्रनीलै,-र्विभक्तशोक शिखि-
कठनीलै ।
गृहीतभास्वन्मुकुटानुकारः, ततान कान्ति नवकर्णि-
कार ॥८॥

१९. वासतिकस्यांशुचयेन भानोर्, हेमन्तमालोक्य हतप्रभावम्
रम्य जहासे घृतकटकेन, प्रीत्या वनेनेव सरोरुहाणाम् ॥९॥

२० समीरणानर्तितमजरीके, चूते निसर्गेण निषक्तभावा ।
पुष्पावतसेषु पद न चक्रु,-र्दीप्तेष्विवाशोकवनेषु
भृगा ॥१०॥

२१. विनिद्रपुष्पाभरण पलाश, समुल्लसन् कुन्दलतावनद्ध. ।
उद्भूतभस्मा मधुनेव रेजे, राशीकृतो मन्मथदाह-
वह्नि ॥११॥

२२ वसन्तदीप्तातपखेदिताना, महीरुहा वातचला प्रवाला ।
जिह्वा यथा विद्रुमभगताम्रा, निष्कासिता रेजुरति-
श्रमेण ॥१२॥

२३ प्रालेयकालप्रियविप्रयोग,-ग्लानेव रात्रि क्षय-
माससाद ।
जगाम मन्द दिवसो वसन्ते, क्रूरातपश्रान्त इव
क्रमेण ॥१३॥

२४ तत स्मरस्याहवधामकल्प,क्षोणी (गत) भ्रान्तशिलीमुखा-
कम् । उद्यानमासेवत रक्तदीप्ति,– सन्तानभास्वत्-
करवीरकीर्णम् ॥१४॥

२५ रम्याणि रामानुगताविभग,-पक्षानिलानर्तितपल्लवानि ।
उद्भ्रातभृगाणि लतागृहाणि, सभावयामास रहो
विहारै ॥१५॥

१८ पर्वतके शिखरपर भवरो, मोरके कण्ठो-जैसे नीले गहरे नीलम द्वारा शोक-रहित सूर्यके मुकुटका अनुकरण करनेवाला नवीन कर्णिकार कान्तिका प्रसार कर रहा था ॥८॥

१९ वसन्तकालके सूर्यकी किरणोसे हेमन्तको अशक्त देख कर, कमलोंके कण्टकित वनसे प्रसन्न होकर मानो (वसन्त) हस रहा था ॥९॥

२० वायुसे नाचती मजरीवाले आम्रमें स्वभावत आसक्ति रखनेवाले भवरे, अशोक-वनोको प्रज्ज्वलित (अग्नि) सा समझ फूलोंके ऊपर पैर नही रखते थे ॥१०॥

२१ अडहुल-कुसुमसे भूषित, कुन्दकी लतासे बद्ध, उल्लसित पलाश, कामदेवकी दाह-अग्नि की राशिसे उठी मधुर भस्मसा शोभित (हो रहा) था ॥११॥

२२ वसन्तकी उद्दीप्त धूपसे खिन्न, हवा से चलते वृक्षोंके पल्लव, जान पडते थे, मानो (वह) अत्यन्त श्रमके कारण अपनी मूगे सी लाल जिह्वायें निकाले हैं ॥१२॥

२३ प्रलयकालके प्रिय-वियोगसे खिन्न सी रात क्षीण हो गई, वसन्तमें क्रूर आतपसे पीडित-सा हो दिन धीरे-धीरे मन्द हो गया ॥१३॥

२४ तब कामदेवके युद्धके प्रकाश सा, घूमते भ्रमरोंके मुखोंके चिन्हवाला, लाल दीप्तियोंसे चमकते करवीरोंसे आकीर्ण-उद्यानका सेवन किया ॥१४॥

२५ रमणियोंके साथ हवासे नाचती पल्लवोवाले, मस्त भृगोंसे रमणीय लतागृहोमें वह एकान्त विहार करते थे ॥१५॥

२६ "त्वमप्रमाद कुरु नूपुराग्रौ, भर क्वण काचिनितवभारम् ।"
इतीव तस्मिन् विहरन् नृपस्त्री–,कक्ष्या तुलाकोटि-
पुटैर्निनेदे ॥१६॥

२७ चिक्षेप बाला मुहुरर्धदृष्टि, पत्यावनगक्षतधैर्यवृत्ति ।
दूरस्थपुष्पस्तवकावभग–,व्याजेन सन्दर्शितबाहुमूल । १७

२८ पत्या परस्या· प्रविधीयमाने, विलासवत्याश्चरणान्तरागे ।
अन्यत्र युक्तोऽपि बबन्ध राग,लाक्षारसस्तत्प्रतिपक्षनेत्रे।१८

२९. पातु सुदत्या वदनारविन्द–,मादाय दृष्टो ललनाभि-
रीश ।
अपुष्परेणुव्यथितेऽपि तस्या–,श्चिक्षेप नेत्रे मुखगन्धवाहम्।१९

३०. पुष्पावभंगे निजहस्तकान्त्या, विन्यस्तराग कठिन पलाशम् ।
प्रवालकृत्ये विनियोजयन्ति, भर्त्रा परा सस्मितमालि-
लिंगे ॥२०॥

३१. स्निग्धद्विजाली रुचिर प्रियगु–,श्यामाद्युतिश्चारु-
तमालकान्ता ।
विभर्षि गन्धाहृतभृगचक्र, सन्माधवीमडपमेतदास्यम् ।२१।

३२. मध्ये ललाट तिलकस्य वृत्ति–, रोष्ठद्युतिर्भाति च पाट-
लेयम् ।
पुन्नागसयोगविभूषिताया–,श्चेत समायातमशोक-
ताते ॥२२॥

३३. "किं कौतुकेन श्रमकारिणा ते, सृजत्वमुद्यानविहारराagम् ।
बाले त्वमस्योपवनस्य लक्ष्मी–" रित्येवमूचे ललना
सखीभि ॥२३॥

३४ प्रियेण तन्व्या विनिवेशितस्य, कर्णे न वाशोकदलस्य राग
आनीलया नेत्ररुचा निरस्ता,–स्तस्या जगामेव विव-
र्त्तचक्षु ॥२४॥

२६. "तू (अपने) नूपुरवाले चरणोंमें सावधानी रख, क्षणभर मेखलायुक्त नितम्बके भारको सभाल," यही कहते मानो वहाँ विहरते वह रानियोकी करधनोकी तुलाके पलडोंसे शब्द कर रहा था ॥१६॥

२७ कामदेवद्वारा धैर्य नष्ट हुई बालाने दूरस्थ फूलके गुच्छेके तोडनेके बहाने अपने बाहुमूलोको दिखाते क्षणभर पतिपर आधी नजर डाली ॥१७॥

२८. दूसरी ललनाके चरणपर पतिको राग करते देख, दूसरी जगह लगा महावर उसके रोषयुक्त नेत्रमें लग गया ॥१८॥

२९. सुन्दर दातवालीका मुखकमल पीनेके इच्छुक राजा को, ललनाने देखा, तो पुष्परजसे अ-पीडित उसके नेत्रने मुखसे सुगन्धित सास छोडी ॥१९॥

३०. फूल तोडते समय अपने हाथकी कान्तिसे कठिन पलासको रगती जब वह, मूगेकी कारीगरी कर रही थी, तभी स्वामीने मुस्कुरा कर दूसरीको आलिंगन किया ॥२०॥

३१ चिकने दन्त-पक्तियोवाली, प्रियगुसी श्यामल रुचिर द्युतिवाली, सुन्दर तमाल-सी कमनीया, गन्धसे भृगोकी आकर्षिका, इस सुन्दर माधवी मडप जैसा तेरा मुख है ॥२१॥

३२. ललाटके बीचमें तिलक और यह ओठोकी लाल द्युति चमक रही है। पुन्नागके सपर्कसे विभूषित यह अशोकताके अन्तमें आ गया ॥२२॥

३३ "थकानेवाले कौतूहलसे तुझे क्या (लेना), तू उद्यान-विहारकी लालसा छोड। बाले, तू इस उपवनकी लक्ष्मी है", यही सखियोने उस ललनासे कहा ॥२३॥

३४ तन्वगीके कानोमें लगाये प्रियके अशोक पल्लवका राग, नील-नेत्र किरणोसे निरस्त और उसका नेत्र उलटा हो गया ॥२४॥

३५ विलोकयाक्ष्णो शितिकान्तिजालै–,रुदन्यया वारि-विगाहितायाः ।
रक्तोत्पल तन्निकटप्ररूढमिन्दीवरत्वगमित हरिण्य ॥२८॥

(३) जलक्रीडा

३६ तत सलील सलिल विभिन्दन्, एव वदन्नेव वरागनाभि ।
वृतो वृषेन्द्रोपमखेलगामी,स दीर्घिका दीर्घभुजो जगाहे॥३२

३७ तस्योरसि क्षत्रकुलैककेतोस् , तरगदोषा कमलाकरेण ।
न्यस्ता मुहु पकजरेणुपक्ति , सौवर्णसूत्रश्रियमाततान॥३३

३८. पद्माकरो वारि विगाहमान, कामीव रामाजनमूरुदघ्नम् ।
वीची-कराग्रेण नितबभागे, व्यास्फालयामास, शनै सशब्दम् ॥३४

३९ तस्यावगाहे वनिताजनस्य, दूरीकृत पीननितबचक्रैः ।
लब्धप्रवेशस्तनुषूदरेषु, स्तनैरुदासेऽथ सरस्तरग ॥३५॥

४०. क्रीडापरिक्षोभरयेण तासा, उत्सारिते पकजरेणुजाले ।
कुसुम्भरक्तादिव कचुकान्त, कृष्ट बभासेऽम्बुरुहा-कराम्भ ॥३६॥

४१. निरुद्धहासस्फुरितावरोष्ठ, सद्य समाविष्कृतरोमहर्ष ।
जलावमग्नप्रमदोपगूढै–,रुद्भासकस्तस्य बभूव गड ॥४३॥

४२ फुल्ल यदीद कमल किमेव, अत्रैव नीलोत्पलयोर्विकाश ।
इत्यात्तशको वदन सुदत्या, हस सिषेवे न सरस्तरन्त्या ॥४४॥

४३ मत्स्येन चीनाशुकपृष्ठलक्ष्य–,काचीमणिग्रासकुतूहलेन ।
आघ्राय मुक्तोपनितबमेका, सत्रासभुग्नभ्रु चिर चकम्पे ॥४६॥

३५. देख, नेत्रोकी श्वेत प्रभासे जल अवगाहित उदन्या से, उसके निकट उगा रक्त कमल, हरनियोंके लिये नीलकमल हो गया ॥२८॥

३. जलक्रीडा—

३६ तव लीला-सहित जलको फाडते वरागनाओंसे घिरे, यह कहते महावृषभ समान खेलते वह दीर्घभुज, (राजा) दीघीमें अवगाहन करने लगे ॥३२॥

३७. उस क्षत्रिय-वश-ध्वजके वक्षस्थलपर, तरगित सरोवर द्वारा रक्खी, कमलरजकी पक्तिने क्षण भर सुवर्ण-सूत्रकी शोभा धारण की ॥३३॥

३८ सरोवरमें जाघ भर जलमें अवगाहन करते, ललनाओको कामीकी तरह, तरगरूपी हाथसे नितम्ब स्थलपर शब्द-सहित हिलाया ॥३४॥

३९ वनिताओंके अवगाहन करते समय उनके स्थूल नितम्बोंसे दूर हटाई तरगोने, सूक्ष्म उदरोमें प्रवेश करनेका अवसर पाई सरोवर-तरगोको स्तनोने उछाल दिया ॥३५॥

४० उनकी क्रीडाके चाचल्यके वेगसे कमलोके केसर उडाये जानेपर, कुसुम्भसे लाल खिचे कचुकके छोरसा सरोवर-जल प्रकाशित हो उठा ॥३६॥

४१ रुके हाससे फरफराते अधरके वात से तुरन्त रोमाचित, जलमें मग्न कामिनियोंके आलिंगनसे उसका कपोल भासमान हुआ ॥४३॥

४२ "अगर यह कमल फूला है, तो क्यो न यहीं दो नीलकमल खिले," इस शकासे हसते सरोवरमें तैरती सुदन्तीके मुखका सेवन नही किया ॥४४॥

४३ रेशमी वस्त्रयुक्त पीठपर दीखती कटिमेखलाकी मणिको खानेकी इच्छासे मछलीने, सूघकर छोड दिया, इससे त्रस्त हो वह तिरछी भौं से देखती देर तक कांपती रही ॥४६॥

४४ प्रियोऽपरस्या गलितान्तरीये, व्यापरायामास दृशो नितवे।
तद्धस्तयत्रच्युतवारिधारा, नाल बभूवास्य मुखार-
विन्दे ॥४७॥

४५ साय समादाय निकामपीत--,सुप्तद्विरेफ मुकुल
सरोजम्
काचित् तरास्फालितदीर्घदडा, भर्तुर्भुव कूजयतिस्म
कर्णे ॥५०॥

४६ सर. सहस सहकामिनीभिर्, विभाय तुल्यो वृषवाहनस्य।
विभूषितो लभितभूषणानि–,रध्यास्त सौध वसुधाधि-
नाथ ॥६२॥

४७ विलासवत्यो मदघूर्णिलोचना, निरूपयन्त्य शुचिरौ-
प्यभाजने।
स्थितस्य मुग्धा मधुनो न जज्ञिरे, स्वरूपमिन्दुप्रतिरूप-
गोपितम् ॥७४॥

४८ विधूयमाना अपि पूर्वमासव, प्रवृद्धवामत्वमनस्यसाधितम्।
स्मर नु तासा हृदये विलोचने, बबन्ध राग नु मुखेऽनुसौ-
रभम् ॥७५॥

(४) प्रबोधस्तुतिः

४९ इति प्रबन्धाहितपानकातर, प्रिया च तल्पे कथित निशा-
त्यये
व्यवोधयन् मगलवन्ति वन्दिनो, विधाय वाक्यानि विधा-
नृते जयम् ॥७६॥

५० जहीहि शयनमुद्गमस्य काल, समुपयत्यनुरक्तमड-
लस्य।
ध्रुवशिरसि कीर्णपादधाम्नो, भुवन इव क्षततामसस्य
भानो ॥७७॥

४४ प्रियतमने दूसरीके हटे चादरवाले नितम्बके ऊपर नजर डाली, जिससे उसके हाथकी पिचकारीसे छूटी जल-धारा उसके मुखार-विन्दपर शोभित नही हुई ॥४७॥

४५. सायकालको खूब पीकर सोये भवरसे युक्त कमलकी कलीको लेकर, कोई लम्बे दण्डको खूब हिलाती भूपतिके कानमें कूजन करती थी ॥५०॥

४६ कामिनियो सहित हस-युक्त सरोवरको शकरके समान विभासित कर, आभूषणोंसे अलकृत हो वसुधानाथ महलपर बैठे ॥६२॥

४७ मद्यसे घूर्णित नेत्रोवाली मुग्धा विलासवतियोने शुद्ध रौप्य पात्रमें स्थित, चन्द्रमाके प्रतिबिंबसे छिपाये मद्यके रूपको नही जाना ॥७४॥

४८ उन्हें कपित करते भी दूसरी सजावट के विना बढे सौन्दर्यको स्मरण करते मद्यने पहिले उनके हृदय और नेत्रोमें,फिर सुगन्धयुक्त मुखमें राग (लालिमा) प्रदान किया ॥७५॥

४.प्रभातकी स्तुति—

४९ इस प्रकार पानसे कातर शय्यापर सोये (राजा) और प्रियाको रात्रि के अन्तमें, वन्दियोने मगल-युक्त वचनोको गाते जय करते जगाया ॥७६॥

५० 'हे, बिस्तर छोडें, भुवन के सिरपर किरण-प्रकाश बिखेरे, अन्धकार-नाशक रक्तमण्डल प्रभाके भवन जैसे सूर्यके उगनेका काल (अब) समीप है ॥७७॥

५१ विराम. शर्वर्या हिमरुचिरवाप्तोऽस्तशिखरम् ।
किमद्यापि स्वापस्तव मुकुलिताभोरुहदृश ।
इतीवाय भानु प्रमदवनपर्यन्तसरसी ।
करेणाताम्रेण प्रहरति विबोधाय तरुतः ॥७८॥

५२. समुत्तिष्ठन्त्येते निगडकृतझकारमपर ।
शनैराकर्षन्त करटनटलीनालिवितति ।
निरस्यन्तो हेला विधुतपृथुकर्णान्तपवनैर्,
द्विपास्ते दन्ताग्रस्थितकरमुदस्याननतटम् ॥७९॥

५३ पादेनैकेन तिष्ठन् पटुपटहरवैर्बोधितस्ते मयूर ।
पश्चात् पक्षेण सार्धं चिरशयनगुरु पादमन्य वितत्य ।
उत्फुल्लोद्धूतपक्षच्युतहिमकणिकावृष्टिरावातयष्ट्या,
दृष्ट्वामार्तण्डधामोदयमुदितमुदोजृम्भते ताण्डवार्थी ॥८०॥

५४ पूर्वाद्रौ सूर्यपादे चरति विसृजता चन्द्रपादावदात ।
कल्प तेनानुचक्रे मलयतरुरसामोदितासद्वयेन ।
उन्निद्रश्वेतपद्मप्रकरपरिकरच्छन्नवीचीवितानाद् ।
उद्यन् मन्द सरस्तस्सलिलगुरुबृहत्पक्षतिर्मल्लि
काक्ष ॥८१॥

—सर्ग २

(५) **वर्षा**

५५ अथ तत्र भूधरशिरस्यधिकां, समनुव्रजन् मनुकुलप्रभव ।
विरहानलक्षततनुस्तनुतां, गमयाबभूव निवसन दिवसान् ॥१॥

५६ अधिकुजमस्य निपतद्धरिता, अनुरजित शुकमुखद्युतिभि । खुरघूतधातुकनिकानिकरैं, तरुणायते परिणतोऽपि रवि ॥२॥

५१ रात्रिका अन्त हुआ, चन्द्रमा अस्ताचलके शिखरपर पहुँच गये मुकुलित कमल से नयनोवाले क्या आज भी तेरा सोना (रहा) है। इसी तरह यह तरुण सूर्य वनितोद्यानकी छोरवाली पुष्करणी जगानेके लिये किंचित् लाल करो (किरणो)से प्रहार कर रहा है ॥७८॥

५२. यह तेरे गज दूसरे जजीरोकी झकारको,
धीरेसे खीचते, गडमें विलीन भवरोकी पातीको,
कपित बडे कानोंके पवनसे अप्रयास हटाते,
दातके छोरपर स्थित शुडयुक्त मुखको ऊपर उठा रहे हैं ॥७९॥

५३ तुम्हारा मोर नगाडेकी जोरकी आवाजसे जगकर एक पैर पर खडा, देर तक सोनेसे भारी हुये दूसरे पैरको पखके साथ फैलाकर, फुल्ल-कपित पखसे गिरे ओसकी बूदोकी वृष्टियुक्त यष्टिपर, सूर्यके प्रकाशके उदयको देख मुदित हो नाचनेका इच्छुक उठकर जम्हाई ले रहा है ॥८०॥

५४ उदयाचलपर सूर्यकी किरणोंके विचरते समय, चन्द्रमाकी किरणो जैसे उज्ज्वल, कल्पको छोडते, चन्दनके रससे सुगन्धित दोनो कन्धो सहित, फूले श्वेत कमलके घेरेसे ढँकी लहरोवाले, सरोवरके जलसे भारी, वडे पक्षवाला हस धीरेसे उठ रहा है ॥८१॥

—सर्ग २

५. वर्षा—

५५ तव वहां पर्वतके शिखरपर चलते विरहानलसे क्षीण-शरीर, मनु-सतान (राम)ने अधिक क्षीण होते दिन विताये ॥१॥

५६ इसके दौडते घोडोकी शुक-मुख सी द्युतिवाली, खुरोंसे उठाई धातुकी कनिकाओंसे रगा कुजमें प्रौढ भी सूर्य तरुण हो रहा था ॥२॥

५७ इममातपे रविमणिप्रभव–,ज्वलनाभिदीपिततनु सकलम् ।
शशिकान्तरत्ननिसृतै रजनी, शिशिरीकरोति पयसा
निकरै ॥१०॥

५८ प्रतिनाग इत्यवगतस्सरसी, मदहस्तिहस्तहतजर्जरित ।
इह तत्प्रकोपहुतमुग्धतया, सलिलानि मुचति यथा
जलद ॥११॥

५९ अवजित्य खर्ववपुष शिखरैर्, हसतीव सोऽयमितरान-
चलान् ।
स्फुटधातुलोहितदरीवदन–,स्थितहसपक्तिदशनद्यु-
तिभि ॥१२॥

६० स्रुतधातुपकिलतनुर्धरणी–,धरणक्षमो हरिवराहरुचम् ।
अयमुद्वहत्यभिमुखापतिते, दशनाकृतौ हिमरुचि
शकले ॥१३॥

६१ इह धातुसानुषु निषण्णदृश शिरसि स्थितासितघना-
वलिषु ।
मृगयोषितो जहति मुग्धधियो, दवकृष्णपद्धतिभय न
चिरम् ॥१४॥

६२ अधिगशृमस्य रुचिभि स्फुरित–,ग्रहवृन्दसक्तशिर-
सस्तरव ।
परिफुल्लनीपतरुपण्डरुचा जनयन्ति चेतसि मद
शिखिनाम् ॥१५॥

६३ शिखरेषु पकजमणिप्रकरे, द्युतिरजितच्छदभृतो दधते ।
इह भूरिभूरुहलताततय, समये गतेऽप्यरुणपल्ल-
वताम् ॥१६॥

६४ अयमेष सोदकदरीवदन–,स्रुतधातुधौतकटुकावयव ।
प्रविभात्यसृक्सुपिशगितनुर्, युधिदानवद्विप इव
प्रहत ॥१७॥

५७. धूपमें सूर्य (-कान्त) मणिसे उत्पन्न अग्नि द्वारा दीप्त तनुवाले (राम) को, चन्द्रकान्त मणिसे निकले जलोंसे रात ठंडा करती थी'॥१०॥

५८ "यह प्रतिद्वंद्वी गज है" यह समझ मत्त गजके हाथके प्रहारसे जर्जरित सरोवर, यहाँ उसके प्रकोपकी ज्वाला हटानेके लिये मेघ सा जल छोड रहा है॥११॥

५९. अपने शिखरोंसे खर्वशरीर दूसरे पहाडोको जीतकर यह मानो धातुसे साफ लाल गुहामुखमें अवस्थित हसोकी पक्तिरूपी अपने दातोकी द्युतिसे हस सा रहा है॥१२॥

६० बहती (गेरु) धातुसे पंकिल-शरीर, पृथिवीके धारणमें समर्थ, सामने आ पडे, दन्ताकार पाषाण-खडोमें यह सुवर्ण सा चमकता विष्णुके वराह-रूप सा है॥१३॥

६१ यहाँ सिरपर अवस्थित काली मेघ-पक्तियोंसे युक्त धातु-सानुओपर बैठी, मुग्ध-बुद्धि हरिनियाँ वनाग्निके काले मार्गका भय देरतक नही छोड पाती॥१४॥

६२ इसके शिखरपर (अपनी)प्रभासे जगमगाते, फूले नीम-वृक्षके वनके शोभायुक्त वृक्ष, नक्षत्रोमें लगे सिरवाले मोरोके हृदयमें मस्ती उत्पन्न करते हैं॥१५॥

६३. यहाँ कमल-मणियो वाले शिखरोपर द्युतिसे रगे पत्रोको धारण करते भारी वृक्ष-लता-समूह समयके बीतनेपर भी लाल पल्लववाले है॥१६॥

६४ यह यहाँ जलयुक्त गुहाके मुखपर बहते गेरुसे धुले कटुक अगयुक्त, रुधिर जैसे लाल शरीरवाले, युद्धमें मरे दानव-गज सा दिखाई पड रहा है॥१७॥

६५. अयमर्कतापिततनुः शशिन, परिणीय सामृतकणानचल ।
पुनरुद्वहत्युरुदरीवदन–, स्नुतनिर्झरच्छलहृत किर-
णान् ॥१८॥

६६ भृशमस्य गोपतिमणिप्रभव–,ज्वलदग्निदग्धविपिने
शिरसि ।
चलनादुपाहितमसीमलिनं, वहतीव शीतकिरणै
करणम् ॥१९॥

६७ स्रुतधातुलोहितममी जलदा, अमित निपीय सलिल
सरस ।
अथ कल्पयन्त्यरुणकान्तिहृत, स्थितसध्यया परिगत
गगनम् ॥२१॥

६८ परिधावत शिखरिण. शिखरे, वत दन्तिन प्रतिरिपु-
द्विरदम् ।
पवनैरसावुपहितो वदने, जलद क्षणं मुखपटो
भवति ॥२२॥

६९ गजभिन्नगैरिकरसारुणिता, सितपकजैरनुगतास्सरित ।
नवबद्धरक्तवसनाकृतय, प्रविभान्त्यमूर्गिरिनितब-
गता ॥२३॥

७० शिखरैकभागनिरत पवनै–, रुपनीयतेऽयमुदधिं जलद ।
अवगाहपानविधये समद, प्रविमुच्य वृक्षत इव
द्विरद ॥२४॥

७१ रदनक्षतक्षितिधरक्षतज–, स्रवसन्निभैररुषिता रदिन ।
कटकेषु धातुभिरिमे दधते, तरुणारुणावृतपयोद-
रुच ॥२५॥

७२ इति भास्वत सुतवरे वदति, न्यपतत् प्रयोधरपथादभित-
मधुकानन हृतमधु प्रसभ, प्रविधाय वेदितधृतिर्हनु-
मान् ॥२६॥

६५. सूर्यसे शरीर तपाया यह पर्वत चन्द्रके अमृत-कणोको पीकर, विशाल गुहाके मुखपर वहते चश्मेके व्याजसे फिरसे किरणोको धारण कर रहा है ॥१८॥

६६. सूर्यकान्त मणिसे उत्पन्न प्रज्ज्वलित अग्निसे दग्ध वनोवाले इसके शिखरपर, चलनेसे मसी जैसे काले अगको शीघ्र ठडी किरणोद्वारा वहन सा कर रहा है ॥१९॥

६७. सरोवरसे वहती (गेरु) धातुसे लाल जलोको अत्यधिक पी, लाल हो, उपस्थित सन्ध्यासे मेघ आकाशको व्याप्त करते हैं ॥२१॥

६८. पर्वतके शिखरपर शत्रु-गजके सामने दौडते हाथीका, वायुसे आनीत मेघ, क्षण भरके लिये (गज का) मुखपट वन जाता है ॥२२॥

६९ हाथियोसे तोडे गेरुके रससे लाल, सफेद कमलोंसे युक्त नदियाँ, पर्वत-नितम्वमें नये वधे लाल वस्त्र सी सोहती हैं ॥२३॥

७० शिखरके एक भागमें लग्न इस मेघको, वायु समुद्रके पास ला रहे हैं। मानो वृक्षसे खोलकर नहाने और पिलानेके लिये मस्त हाथी जा रहे है ॥२४॥

७१ दातसे क्षत पर्वतके घावसे निकलती धाराओ द्वारा लाल रगे ये हाथी, धातुओ द्वारा कटकोमें तरुण-अरुण आच्छादित मेघका रूप धारण कर रहे हैं ॥२५॥

७२ इस प्रकार सूर्यके श्रेष्ठ पुत्र (राम) के कहते समय, सामने मेघ-मार्गसे मधुर वनको वलात् मधु-वञ्चित कर, प्रकट धैर्यवाले हनुमान उतर पडे ॥२६॥

७३. रविदग्धपक्षतियुग विहग, प्रतिपद्य रावणगमे विदिते ।
मकराकर सपदि लघयितु, मलयादगामथ महेन्द्र-
नगम् ॥२९॥

—सर्ग १३

(६) **सागरसेतुः**

७४ नियतमेष पयोधिमहाधिप , पिवति सर्वमसख्यगुहामुखै ।
इति चिराय सविस्मयमीक्षितो, नृपसुतेन समीरण-
नन्दन ॥२३॥

७५. अथ ससर्प ससर्ज वनाकुल, द्युतिमदभ्रमदभ्रमदद्विपम् ।
भयसरोगसरोगतपन्नग, पथि घनस्य घनस्यदना-
दितम् ॥२४॥

७६ तटयुगानतवारिदपक्षतिर्, गुरुदरीमुखलवितपन्नग ।
अनुचकार पतत्पतिमुत्पतन्, फणधरोद्धरणे धरणी-
धरम् ॥२५॥

७७. अभिहतो गिरिणा वडवानल-प्रवलरोषधरो जलधिद्विप ।
रचयतिस्म सुवेलमहातरौ, नियमितस्थित एव गता-
गतम् ॥२७॥

७८. उपलसकटकै कटकैस्तता', कपिबलेन नगाननगात्रगा' ।
पथि रवे रविना रविताडवा , कृतरव समुदा समुदा-
सिरे ॥२८॥

७९. हतसमुत्पतितोदकसन्तति–,स्फटिकदडयुतक्षणमाबभौ ।
किरणमौक्तिकजालवृत सदा, सकलचन्द्रसितातप-
वारणम् ॥३०॥

८०. प्रथममुद्गतवारितति पतद्, गिरितटाहतकोटिरुदन्वत ।
क्षणमरोचत वृष्टिषु विभ्रतो, भुज इवाद्रिवर मुर-
विद्विष ॥३१॥

७३. सूर्य द्वारा जलाये पखोवाले पक्षी (संपाती) से रावणके गमनको जान लेने पर (राम) तुरन्त सागरको लाघनेके लिए मलयगिरिसे महेंद्रगिरिपर पहुचे ॥२९॥

—सर्ग १३

६. सागर-सेतु—

७४. निश्चय ही यह पयोधि-राज असख्य गुहा-मुखोंसे सबको पीता है, यह सोचते राजपुत्रने पवन-पुत्रके साथ देर तक विस्मयसे (समुद्रको) देखा ॥२३॥

७५. तब प्रकाशमान मेघके अति मदसे मस्त गज वाले, भयसे रुग्ण सरोवरस्थित सापवाले वनोको, मेघ-मार्गपर मेघके चलनेसे निनादित पाया और छोडा ॥२४॥

७६. दोनो तटोपर झुके मेघ-पखोवाले, भारी गुहा-मुखपर लटकते सर्पसे हनूमान्, साप उठानेमें पक्षिराजसे उडते पर्वतसे जान पडते थे ॥२५॥

७७ पर्वत द्वारा कहे जाने पर वडवानल जैसे प्रवल रोपको धारण करने-वाला समुद्ररूपी गज, नियमित रूपसे खडा ही सुबेल रूपी महावृक्ष पर गमनागमन करता था ॥२७॥

७८. पाषाण-समूहवाले कटकोंसे विस्तृत, कपि-सेना द्वारा पर्वतके मुख-शरीरपर स्थित, सूर्यके मार्गपर सूर्यके साथ शब्द करते आनदके साथ उडे ॥२८॥

७९. आहत होकर उछला जल क्षण भर स्फटिक-दडसे युक्त सा, सदा पूर्णचन्द्रसे श्वेत छत्रयुक्त किरणरूपी मोतियोंके जालसे आच्छादित भासित हुआ ॥३०॥

८० पर्वतके तटपर आहत छोरवाली सागरकी ऊपर उठी गिरी, जल-पक्ति पहले वृष्टिमें श्रेष्ठ (गोवर्धन) पर्वत-धारी कृष्णकी भुजाकी तरह क्षण भर शोभित हुई ॥३१॥

८१. अथ निरीक्ष्य चिर हरिचेष्टित, सपदि वन्ध्यमवन्ध्य-
पराक्रम ।
इदमुवाच गभीरतया जित–,क्षुभितसिन्धुरव नृवरो
वच ॥४५॥

८२ इह गिलन्ति तिमिंगिलपक्तय, क्षुभितसम्पतितास्ति-
मिशकया ।
सलिलधौ तिमित तिमित नग, त्यजत सेतुविधान-
मनोरथम् ॥४६॥

८३ अयमुपाहितसेतुरकपित–,स्थितमहातिमिदेहमहीधरै ।
बलमिद सकल शरताडितो, नयतु वारिधिरेव पर
तटम् ॥४८॥

८४. इति गिरा चलितो दृढकीलन–,ध्वतिनकपितदिग्वि-
दिशो नल ।
मलयकुजदरीषु महीभृत, पृथुरुत प्रथम समवेशयत् ॥५१

८५. अपहसन्निव फेनरुचा चिर, गिरिहतोदितकन्ततिबाहुना ।
अभिजघान पयोनिधिरुद्धत, कुसुमभाजि सुवेल-
शिरस्तटे ॥५२।

८६. विततधातुरस धरणीधर–,क्षतकृतव्रणचक्रमिबाम्बुधे ।
अभिचकर्त नलोऽनलभासुर, सलिलपृष्ठतट गिरि-
सेतुना ॥५४॥

८७. अवसितो नगसेतुरलक्ष्यत, क्षिपति विष्णुवराहरदे भुवि ।
विषमकृष्टतया जलपृष्ठत, समुदित क्षितिपार्श्वं
इवैकत ॥५५॥

८८. अथ निवारयितु दृढमन्तरा, प्रथमपश्चिमसागरविग्रहम् ।
विपुलमद्रियुगेन महीयसा, विरचित नु भुजद्वय-
बन्धनम्॥६९॥

८१ तब हरि (हनूमान) की चिर चेष्टाको निष्फल देखकर अनिष्फल पराक्रमवाले, पुरुषोत्तमने क्षुभित समुद्रके घोषको हरानेवाले इस वचनको गम्भीरताके साथ कहा ॥४५॥

८२ यहा तिमिंगलोकी पक्तिया क्षुब्ध हो गिरी हुई तिमिके सन्देहसे, समुद्रमें विलीन तिमि बने पर्वत (हैं)। सेतु-निर्माणके मनोरथको छोड दो ॥४६॥

८३ यह पास स्थापित सेतुवाला शरसे ताडित समुद्र ही, अकपित खडे महातिमिके देह सदृश पर्वतोंके साथ इस सारी सेनाको दूसरे तटपर ले जावे ॥४८॥

८४. इस तरह वाणीसे सचालित दृढ कील गाडनेसे दिशा-विदिशाको ध्वनित कपित करनेवाले नलने मलयगिरिके कुजोकी गुहाओमें घोर शब्द करते प्रथम पर्वतको स्थापित किया ॥५१॥

८५ उद्धत सागरने फेन-सदृश देर तक मानो हसते हुए कुसुम-युक्त सुबेलके शिरोभागपर पर्वतके आघातसे उछली जल-समुदाय रूपी बाहुसे ताडन किया ॥५२॥

८६ विस्तृत धातुरसवाले पर्वतके घावसे सागरके व्रण सा, अनल तुल्य प्रकाशमान नलने जलके पृष्ठ तलको पर्वतके सेतु से ढाक दिया ॥५४॥

८७. तैयार पर्वत-सेतु जान पडता था, विष्णुवराहके दात पर लटकी भूमि पर जलके तलसे पृथिवीका पार्श्व ही विषम आकर्षणसे एक ओरसे उत्पन्न हुआ है ॥५५॥

८८. तब भीतरसे पूरी तरह दृढतासे निवारण करनेके लिये प्रथम पश्चिमी सागरकी देह पर दो भुजाओंके बन्धन की तरह अतिमहान् दो पर्वतोंसे विपुल पुल बनाया ॥६१॥

८९. अतिनिमग्नमदीयमहाशर–,व्रणरुजा कृतकार्श्यविभा-
वितम् ।
लवणसागरदानवदन्तिन, प्रकटमस्थि नु वंशसमुद्-
भवम् ॥७०॥

९०. मदगजैरगजैरगनिर्जर–,ध्वनितवृंहित सम्मित सूचितैं ।
सरसि तैरसितैरपि वारिदै, प्रविततं सतत समय
कर्णैं ॥७५॥

९१. निकषणेन युगस्य हिरण्मय–,ज्वलितरूपधरस्य
विघृष्टया ।
कटकभित्तिषु काचनरेखया, रविगत प्रथयन्तमुदा-
रया ॥७६॥

९२. ज्वलितरत्नचयेन नभस्पृशा, गगनलग्नदवानलसंशयात् ।
अधिरुरोह सुवेलमल विभु, प्रतिजन जनयन्नतिसौ-
रतम् ॥८०॥

९३. तत्र स्थित्वा किरणनिकरन्यस्तरगैस्तरगैर्,
भास्वत्तोय वरुणनिलय वैद्रुमाणा द्रुमाणाम् ।
पश्यन् रेमे सततसलिलभ्रंशमुक्त समुक्त,
शक्रत्रस्तक्षितिधरशतस्थानदत्त तदन्तम् ॥८१॥

—सर्ग १४

८९ अत्यन्त घुसे मेरे महावाणके व्रणकी बाधासे हुये दुबलेपन द्वारा लवण-सागररूपी दानव-गजकी पृष्ठवशसे उत्पन्न अस्थि मानो प्रकट हुई थी ॥७०॥

९०. पर्वतोत्पन्न पहाडी झरनोकी भारी आवाजसे सूचित पर्वतीय मस्त गजोंसे, सागरमें उन काले मेघो द्वारा निरतर जल कण फैलाये गये ॥७५॥

९१. सुवर्णमय उज्ज्वल रूप-धारी दोनोंके कसौटीके घर्षणसे, कटककी भित्तियोमें स्थूल सुवर्ण-रेखा द्वारा रविके मार्गको प्रकट करते ॥७६॥

९२. आकाश छूनेवाले जलते रत्नोसे गगनमें लगे दावानलका सन्देह पैदा करनेवाले सुबेल पर्वतपर विभु (राम) सबके (मनमें) बहुत आनन्द उत्पन्न करते चढे ॥८०॥

९३. खडे हो मूगेके वृक्षोंके किरणोंसे रगी तरगो द्वारा चमचमाते सागरको देखकर, निरन्तर जलके गिरनेसे छुटते मुक्ता-सहित, इन्द्रसे त्रस्त सैकडो पर्वतोंके स्थान रूपी दन्तवाले उसके अन्तको दखनेका आनद लिया ॥८१॥

—सर्ग १४

२२. शूद्रक (५४० ई० पू०)

"मृच्छकटिक" संस्कृतके सर्वोत्कृष्ट नाटकोंमें है। इसके रचयिताका नाम शूद्रक बतलाया जाता है। शायद शूद्रक विदिशाका राजा था, जैसा कि बाणको "कादम्बरी" में संकेत मिलता है। इस कविकी यही एक ही कृति प्राप्य है। इसका कथानक भासके "दरिद्रचारुदत्त" का है, लेकिन यह उससे

१. मृच्छकटिकम्

(१) वसन्तसेना-हृदयम्

(तत प्रविशति चेटी)

१. चेटी—कथमद्याप्यार्या न विबुध्यते ? भवतु, प्रविश्य प्रतिबोधयिष्यामि । (इति नाट्येन परिक्रामति)
(तत प्रविशत्याच्छादितशरीरा प्रसुप्ता वसन्तसेना)

२ चेटी—(निरूप्य) उत्तिष्ठतूत्तिष्ठत्वार्या। प्रभात सवृतम्।
वसन्तसेना—(प्रतिबुध्य) कथ रात्रिरेव प्रभात सवृतम् ?
चेटी—अस्माकमेष प्रभात, आर्याया पुन रात्रिरेव।

३ वसन्तसेना—चेटि, कुत पुनर्युष्माकं द्यूतकर ?
चेटी—आर्ये, वर्धमानक समादिश्य पुष्पकरडक जीर्णोद्यान गत आर्यचारुदत्त ।

४ वसन्तसेना—किं समादिश्य ?
चेटी—योजय रात्रौ प्रवहण, वसन्तसेना गच्छत्विति।

५ वसन्तसेना—चेटि, कुत्र मया गन्तव्यम् ?
चेटि—आर्ये, यत्र चारुदत्त ।

२२. शूद्रक (५४० ई० पू०)

कहीं अधिक पूर्ण और सुन्दर है। शूद्रकका नाम चाहे यों ही इस नाटकके साथ जोडा गया हो, पर इस कृतिका महत्त्व उससे कम नहीं होता। "मृच्छकटिक" से तत्कालीन भारतीय समाजपर जितना प्रकाश पडता है, उतना और किसी नाटकसे नहीं पड़ता।

१. मृच्छकटिक

१. वसन्तसेनाका हृदय—

(तब दासी प्रवेश करती है)

१. चेटी—क्या अब भी आर्या नही जाग रही है? अच्छा, भीतर चलकर जगाती हू। (अभिनयके साथ घूमती है)

(तब शरीर ढाके सोई वसतसेना प्रवेश करती है)

२. चेटी—(देखकर) उठिये, उठिये आर्या, सवेरा हो गया।
वसतसेना—(जगकर) क्या रात ही सवेरा हो गया?
चेटी—हमारा यह सवेरा है, आर्याकी तो रात ही है।

३. वसतसेना—चेटि, तुम्हारा जुआरी कहा है?
चेटी—आर्या, वर्धमानकको आज्ञा दे, पुष्पकरंडक जूने उद्यान आर्य चारुदत्त गये।

४. वसतसेना—क्या आज्ञा देकर?
चेटी—"रातमें रथ जोड ले, वसतसेना जायेगी।"

५ वसतसेना—चेटि, मुझे कहा जाना है?
चेटी—आर्या, जहाँ चारुदत्त है।

६. वसन्तसेना—(चेटी परिष्वज्य) चेटि, सुष्ठु न निध्यातो रात्री, तदय प्रत्यक्ष प्रेक्षिष्ये ? चेटि, किं प्रविष्टाहमिहाभ्यन्तरचतु शालकम् ?
चेटी—न केवलमभ्यन्तरचतु शालकं, सर्वजनस्यापि हृदय प्रविष्टा।

७. वसन्तसेना—अपि सन्तप्यते चारुदत्तस्य परिजन ?
चेटी—सतप्स्यसि।
वसन्तसेना—कदा ?
चेटी—यदार्या गमिष्यति।

८. वसन्तसेना—(सानुनयम्) तदा मया प्रथमं संतप्तव्यम्। चेटि, गृहाण ता रत्नावलीम्। मम भगिन्या आर्याधूतायै गत्वा समर्पय। वक्तव्य च—"अहं श्रीचारुदत्तस्य गुणनिर्जिता दासी, तदा युष्माकमपि। तदेषा तवैव कण्ठाभरण भवतु रत्नावली।"
चेटी—आर्ये, कुपिष्यति चारुदत्त आर्यायै तावत्।

९ वसन्तसेना—गच्छ, न कुपिष्यति।
चेटी—(गृहीत्वा निष्क्रम्य, पुन प्रविशति) आर्ये, भणत्यार्या धूता—"आर्यपुत्रेण युष्माक प्रसादीकृता; न युक्त ममैता ग्रहीतुम्। आर्यपुत्र एव ममाभरणविशेष इति जानातु भवती।"
(तत प्रविशति दारक गृहीत्वा रदनिका)

० . रदनिका—एहि वत्स, शकटिकया क्रीडाव।
दारक—(सकरुणम्) रदनिके, किं ममैतया मृत्तिकाशकटिकया ? तामेव सौवर्णशकटिका देहि।

६. वसंतसेना—(चेटीको आलिंगन करके) चेटि, अच्छी तरह रातको नहीं ध्यान दिया, सो उन्हें प्रत्यक्ष देखूंगी। क्या मैं यहां चतुःशालाके भीतर प्रविष्ट हुई हूं ?
चेटी—केवल चतुःशालाके भीतर ही नहीं, बल्कि सभी जनोंके हृदयके भीतर भी प्रविष्ट हैं।

७. वसंतसेना—चारुदत्तका परिवार संतप्त तो नहीं हो रहा है ?
चेटी—संतप्त होगा।
वसंतसेना—कब ?
चेटी—जब आर्या जायेगी।

८. वसंतसेना—(खेदके साथ) तब मैं ही पहले संतप्त होऊंगी। चेटि, इस रत्नावलीको ले। मेरी बहिन आर्या धूताको ले जाकर अर्पित कर। और कहना: "मैं श्री चारुदत्तके गुणों द्वारा जीती गई दासी, आपकी भी (दासी) हूं। सो यह रत्नावली आपही का कंठ-भूषण हो।"
चेटी—आर्य चारुदत्त आर्यापर कुपित होंगे।

९. वसंतसेना—जा, नहीं कुपित होंगे।
चेटी—जो आज्ञा देती है। (लेकर बाहर जा फिर प्रवेश करती है) आर्या, आर्या धूता कहती है "आर्यपुत्रने तुमको भेंट किया है, तो इसे मेरा ग्रहण करना उचित नहीं है। आप समझें कि आर्यपुत्र ही मेरे विशेष आभरण है।"

(बच्चेको लिये रदनिका प्रवेश करती है)

१०. रदनिका—आ बच्चा, शकटिका (खिलौने की गाडी) से खेलें।
बच्चा—(दुःखके साथ) रदनिका, इस मिट्टीकी गाड़ीसे मुझे क्या ? उसी सोनेकी शकटिकाको दे।

११ रदनिका—(सनिर्वेद नि श्वस्य उपसृत्य) जात, कुतोऽस्माक सुवर्णव्यवहार ? तातस्य पुनरपि ऋद्धया सुवर्णशकटिकया क्रीडिष्यसि। तद्यावद्विनोदयाम्येनम्। आर्यावसन्तसेनाया समीपमुपसर्पिष्यामि। आर्ये, प्रणमामि।

१२ वसन्तसेना—रदनिके, स्वागत ते, कस्य पुनरय दारक ? अनलकृतशरीरोऽपि चन्द्रमुख आनन्दयति मम हृदयम्।
रदनिका—एष खल्वार्यचारुदत्तस्य पुत्रो रोहसेनो नाम।

१३ वसन्तसेना—(बाहू प्रसार्य) अनुकृतमनेन पितू रूपम्। (इत्यक उपवेश्य) एहि मे पुत्रक, आलिंग ।
रदनिका—न केवलं रूप, शीलमपि तर्कयामि। एतेनार्यचारुदत्त आत्मान विनोदयति।

१४ वसन्तसेना—अथ किंनिमित्तमेष रोदिति ?
रदनिका—एतेन प्रातिवेशिकगृहपतिदारकस्य सुवर्ण-शकटिकया क्रीडितम्। तेन च सा नीता। तत पुनस्ता याचतो मयेय मृत्तिकाशकटिका कृत्वा दत्ता। ततो भणति—"रदनिके, किं ममैतया मृत्तिकाशकटिकया ? तामेव सौवर्णशकटिका देहि" इति।

१५ वसन्तसेना—हा धिक् हा धिक्, अयमपि नाम परसपत्त्या सतप्यते । भगवन्कृतान्त, पुष्करपत्रपतितजलबिन्दु-सदृशै क्रीडसि त्व पुरुषभागधेयैं । (सासूय) जात मा रुदिहि। सौवर्णशकटिकया क्रीडिष्यसि।
दारक—रदनिके, कैषा ?

११. रदनिका—(दुःखके साथ उसास ले, पास आकर) पुत्र, कहा हम लोगोंके यहा सोनेका व्यवहार है। तातके पास फिर सपत्ति होने पर सोनेकी शकटिका से तू खेलेगा। इसे वहलाऊ। आर्या वसतसेनाके पास जाऊ। आर्या, प्रणाम करती हू।

१२. वसतसेना—रदनिका, तेरा स्वागत है। किसका यह बच्चा है, जो विना भूपित-शरीर भी चादसे मुखडेवाला मेरे हृदयको आनदित कर रहा है।
रदनिका—यह आर्य चारुदत्तका पुत्र रोहसेन है।

१३. वसतसेना—(हाथ फैलाकर) आ मेरे पुतवा, आलिगन कर। (गोदमें बैठाकर) पिताके जैसा इसका रूप है।
रदनिका—केवल रूप ही नही, शीलको भी, मैं सोचती हू। इससे आर्य चारुदत्त अपना मनोविनोद करते हैं।

१४. वसतसेना—तो, किसलिये यह रोता है?
रदनिका—यह पडोसी वैश्यके लड़केकी सोनेकी शकटिकासे खेलता था। उसने उसे ले लिया। फिर उसे मागा, तो मैंने मिट्टीकी शकटिका वनाकर दी। इसपर कहता है "रदनिका, इस मिट्टीकी शकटिकासे मुझे क्या? उसी सोनेकी शकटिका को दे।"

१५ वसतसेना—(खेदके साथ) हा धिक्, हा धिक्, यह भी दूसरेकी सम्पत्तिसे सतप्त है। हे भगवान् विधाता, कमल-पत्रपर गिरे जल-विन्दुके समान पुरुषके सौभाग्यसे तुम खेलते हो। (खेदके साथ) पुत्र, मत रो। सोनेकी शकटिकासे खेलोगे।
वच्चा—रदनिका, यह कौन है?

१६ वसन्तसेना—ते पितुर्गुणनिर्जिता दासी।
रदनिका—जात, आर्या ते जननी भवति।
दारक—रदनिके, अलीक त्वं भणसि, यदस्माकमार्या जननी, तत् किमर्थमलकृता ?

१७ वसन्तसेना—जात, मुग्धेन मुखेनातिकरुण मन्त्रयसि। (नाट्येनाभरणान्यवतार्य रुदती) एषेदानी ते जननी सवृत्ता, तद्गृहाणैतमलकार, सौवर्णशकटिका कारय।
दारक—अपेहि न गृहीष्यामि, रोदिषि त्वम्।

१८ वसन्तसेना—(अश्रूणि प्रमृज्य) जात, न रोदिष्यामि। गच्छ, क्रीड। (अलकारैर्मृच्छकटिका पूरयित्वा) जात, कारय सौवर्णशकटिकाम्।

(इति दारकमादाय निष्क्रान्ता रदनिका)
प्रविश्य प्रवहणाधिरूढ)

१९. चेट—रदनिके, निवेदयार्यायै वसन्तसेनायै—पक्षद्वारके सज्ज प्रवहण तिष्ठति।

(प्रविश्य)

रदनिका—आर्ये, एष वर्धमानको विज्ञापयति—"पक्षद्वारे सज्ज प्रवहणम्" इति।

२० वसन्तसेना—चेटि, तिष्ठतु मुहर्तक, यावदहमात्मान प्रसाधयामि।
रदनिका—(निष्क्रम्य) वर्धमानक, तिष्ठ मुहूर्तक, यावदार्यात्मान प्रसाधयति।
चेट.—ही ही भो., मयापि यानास्तरण विस्मृतम्। तद्यावद् गृहीत्वागच्छामि। एतौ नासिकारज्जुकटुकौ वलीवर्दौ। भवतु, प्रवहणेनैव गतागति करिष्यामि।

(इति निष्क्रान्तश्चेट)

१६. वसतसेना—तेरे पिता के गुणोसे जीती गई दासी ।
रदनिका—पुत्र, यह आर्या तेरी जननी होती है।
बच्चा—रदनिका, तू झूठ बोलती है, यदि आर्या हमारी जननी है, तो क्यो जेवर पहने है ?

१७ वसतसेना—पुत्र, भोले मुंह से अत्यत करुण वात कह रहे हो। (अभिनयके साथ आभूषणो को उतार कर रोती) यह अव मैं तेरी जननी हो गई, सो इस आभूषणको ले, सोनेकी शकटिका बनवा ले।
बच्चा—हट परे, नही लूगा, तू रोती है।

१८ वसतसेना—(आसुओको पोछ कर) पुत्र, नही रोऊगी। जा, खेल। (आभूषणोंसे मिट्टीकी शकटिकाको भर कर) पुत्र, सोनेकी शकटिका बनवा ले।

(बच्चेको लेकर रदनिका निकल गई)

(रथपर चढा प्रवेश करके)

१९ चेट—रदनिका, आर्या वसतसेनाको निवेदन कर ढंका हुआ रथ पासके छोटे दरवाजे पर तैयार खड़ा है।

(प्रवेश करके)

रदनिका—आर्या, यह वर्धमानक अर्ज करता है, कि पास द्वारपर रथ तैयार है।

२०. वसतसेना—चेटि, जरा सा ठहर, जब तक मैं अपनेको सजा लेती हू।
रदनिका—(निकल कर) वर्धमानक, जरा सा ठहर, जब तक आर्या अपनेको सजाती है।
चेट—ही-ही है, मैं भी यानके बिछौनेको भूल गया हूँ, सो तब तक उसे लाता हू। यह बैल के नाथकी रस्सीके कडे है। अच्छा, रथसे ही जाना-आना करता हू। (चेट निकल गया)

२१. वसन्तसेना—चेटी उपनय मे प्रसाधन, आत्मान प्रसाधयिष्यामि। (प्रसाधयन्ती स्थिता) —अक ६

२. अधिकरणम्—

(तत. प्रविशति शोधनक)

२२. शोधनक —आज्ञप्तोऽस्म्यधिकरणभोजकै —"अरे शोधनक, व्यवहारमण्डप गत्वाऽऽसनानि सज्जीकुरु" इति। तद्यावदधिकरणमण्डप सज्जितु गच्छामि। (परिक्रम्यावलोक्य) एषोऽधिकरणमण्डप । एष प्रविशामि। (प्रविश्य समार्ज्यासनमाधाय) विविक्त कारितो मयाधिकरणमण्डप विरचितानि मयासनानि । तद्यावदधिकरणिकाना पुनर्निवेदयामि। (परिक्रम्यावलोक्य च) कथमेष राष्ट्रियश्यालो दुष्टदुर्जनमनुष्य इत एवागच्छति ? तद्दृष्टिपथ परिहृत्य गमिष्यामि।

(इत्येकान्ते स्थित)

(तत प्रविशत्युज्ज्वलवेषधारी शकार)

२३ शकार —

स्नातोऽह सलिलजलै पानीयैरुद्यान उपवनकानने निषण्ण ।
नारीभि बहुयुवतिभि स्त्रीभिर्गन्धर्वै सुविहितैरगकै ॥
क्षणेन ग्रन्थि क्षणजूलिका मे क्षणेन बाला क्षणकुन्तला वा।
क्षणेन मुक्ता क्षणमूर्ध्वचूडाश्चित्रो विचित्रोऽह राजश्याल ॥

(तथा स्थित)

२४. शोधनक —(अन्यत परिक्रम्य, पुरो दृष्ट्वा) एतेऽधिकरणिका आगच्छन्ति, तद्यावदुसर्पामि। (इत्युपसर्पति)

(तत प्रविशति श्रेष्ठिकायस्थादिपरिवृतोऽधिकरणिक)

अधिकरणिक —भो भो श्रेष्ठिकायस्थौ,

श्रेष्ठिकायस्थौ—आज्ञापयत्वार्य ।

. वसंतसेना—चेटि, ला मेरे प्रसाधन, अपनेको सजाऊंगी। (सजाती रही)

—अंक ६

न्यायालय—

(शोधनक प्रवेश करता है)

शोधनक (झाड़ूदार)—अदालतके अधिकारियोंने आज्ञा दी है अरे शोधनक न्यायमंडपमें जाकर आसन लगा। सो न्यायमंडपको तैयार करने जाता हूं। (परिक्रमा करके, देखकर) यह अदालतका मंडप है, प्रवेश करता हूं। (प्रवेश करके झाड़ू देकर आसन रखकर) अदालतके मंडपको मैंने साफ कर दिया, आसन लगा दिये। सो अब अधिकरणिको (अफसरों) से अर्ज करता हूं। (परिक्रमा करके और देखकर) क्यों यह राष्ट्रिय शाला दुष्ट दुर्जन मनुष्य इधर ही आ रहा है, इसकी नजर बचाकर जाऊं।

(एक ओर खड़ा)

(तब उज्ज्वल-वेषधारी शकार प्रवेश करता है)

शकार—

मैं नल्लिल जल पानीमें स्नान कर उद्यान-उपवन-काननमें बैठा,
नारियों, युवतियों, स्त्रियों, गंधर्वो, सुसज्जित शरीरवालोंके साथ।
क्षणमें गांठ और क्षणमें मेरी जूड़ा, क्षणमें बाल और क्षणमें कुंतल,
क्षणमें मोती, क्षणमे ऊपर चूड़ा, मैं चित्र-विचित्र राजाका साला हूं।

(वैसे ही खड़ा)

शोधनक—(दूसरी ओर परिक्रमा करके सामने देखकर) यह अधिकरणिक आ रहे हैं, सो पास जाता हूं। (पास जाता है)

(श्रेष्ठी, कायस्थ आदिसे अफसर प्रवेश करता है)

अफसर—हे, हे श्रेष्ठि-कायस्थो।

श्रेष्ठि और कायस्थ—आज्ञा दें, आर्य।

२५ अधिकरणिक—अहो, व्यवहारपराधीनतया दुष्कर खलु परचित्तग्रहणमधिकरणिकै.
छन्न कार्यमुपक्षिपन्ति पुरुषा न्यायेन दूरीकृतं,
स्वान्दोषान्कथयति नाधिकरणे रागाभिभूता स्वयम्।
तै. पक्षापरपक्षवर्धितबलैर्दोषैर्नृप स्पृश्यते,
सक्षेपादपवाद एव सुलभो द्रष्टुर्गुणो दूरत ॥३॥

२६ अपि च,—
छन्न दोषमुदाहरन्ति कुपिता न्यायेन दूरीकृता,
स्वान्दोषान्कथयन्ति नाधिकरणे सन्तोऽपि नष्टा ध्रुवम्।
ये पक्षापरपक्षदोषसहिताः पापानि सकुर्वते,
सक्षेपादपवाद एव सुलभो द्रष्टुर्गुणोदूरत ॥४॥

२७ यतोऽधिकरणिक खलु।
शास्त्रज्ञ कपटानुसारकुशलो वक्ता न च क्रोधनस्,
तुल्यो मित्रपरस्वकेषु चरित दृष्ट्वैव दत्तोत्तर.।
क्लीबान्पालयिता शठान्व्यथयिता धर्म्यो न लोभान्वितो
द्वार्भावे परतत्वबद्धहृदयो राज्ञश्च कोपापह ॥५॥

२८ श्रेष्ठिकायस्थौ–आर्यस्यापि नाम गुणे दोष इत्युच्यते।
यद्येव, तदा चन्द्रालोकेऽप्यन्धकार इत्युच्यते।

२९ अधिकरणिक—भद्र शोधनक, अधिकरणमण्डपस्य मार्गमादेशय।
शोधनक—एत्वेत्वधिकरणभोजक, एतु
(इति परिक्रामन्ति)

२५. अधिकरणिक—अहो न्यायके पराधीन होनेसे अधिकरणिको (न्यायाधीशो) के लिये दूसरेके चित्तको अनुकूल करना दुष्कर है—
न्यायसे हटाये छिपे कार्यको पुरुष ला धरते है,
रागमें लिप्त स्वय अपने दोषोको अदालतमें नही कहते।
पक्ष-विपक्षके बढाये बलवाले दोषोंने राजा लिप्त होता है,
सक्षेपमें द्रष्टाका गुण दूर अपवादरूपसे ही सुलभ है ॥३॥

२६. और भी—
कुपित होकर न्यायसे हटे असत्यसे ढके दोषको बतलाते है,
अपने दोषोको अदालतमें नही कहते, होते भी नष्ट हो जाते।
जो पक्ष-विपक्षके दोषोंके साथ हो पाप लिप्त होते है,
सक्षेपमें द्रष्टाका गुण दूरसे अपवाद रूपसे ही सुलभ है ॥४॥

२७. क्योकि अधिकरणिक (न्यायाधीश) तो—
शास्त्रज्ञ होते भी कपटके अनुसरणमें कुशल, वक्ता किंतु क्रोधी नही,
मित्र और स्वकीयमें समान आचरण देखकर ही उत्तर देनेवाला।
नपुसकोका पालक शठोका पीडक धर्मानुसारी और निर्लोभ,
द्वार बन परम तत्वमें आबद्ध हृदय और राजाके कोपको दूर करने-
वाला ॥५॥

२८. श्रेष्ठि और कायस्थ—आर्यके भी गुणमें दोष कहा जावे ? यदि ऐसा तो चादनीमें भी अन्धकार कहा जावे।

२९. अधिकरणिक—भद्र शोधनक, अधिकरण-मडप (न्यायालय) का मार्ग बतला।
शोधनक—आर्यें, आर्यें अधिकरणभोजक, आर्यें।
(परिक्रमा करते हैं)

३० शोधनक —अयमधिकरणमण्डप, तत्प्रविशन्त्वधिकरण-भोजका ।

(सर्वे च प्रविशन्ति)

अधिकरणिक —भद्र शोधनक, वहिर्निष्क्रम्य ज्ञायता– "क क कार्यार्थी" इति ।

३१ शोधनक —यदार्य आज्ञापयति। (इति निष्क्रम्य) आर्या, अधिकरणिका भणन्ति "क क इहकार्यार्थी"'इति। शकार —(सहर्षम्) उपस्थिता अधिकरणिका (साटोप परिक्रम्य) अह वरपुरुषो मनुष्यो वासुदेवो राष्ट्रियश्यालो राजश्याल कार्यार्थी ।

३२. शोधनक —(ससम्भ्रमम्) हन्त, प्रथममेव राष्ट्रियश्याल कार्यार्थी । भवतु, आर्य, मुहूर्तं तिष्ठ, तावदधिकरणिकाना निवेदयामि। (उपगम्य) आर्या, एष खलु राष्ट्रियश्याल कार्यार्थी व्यवहारमुपस्थित ।

३३ अधिकरणिक —कथ प्रथममेव राष्ट्रियश्याल कार्यार्थी। यथा सूर्योदये उपरागो महापुरुषनिपातमेव कथयति। शोधनक, व्याकुलेनाद्य व्यवहारेण भवितव्यम्। भद्र, निष्क्रम्योच्यताम्—"गच्छाद्य, न दृश्यते तव व्यवहार" इति ।

३४ शोधनक —यदार्या आज्ञापयतीति। (निष्क्रम्य, शकार-मुपगम्य) आर्य, अधिकरणिका भणन्ति—"अद्य गच्छ न दृश्यते तव व्यवहार ।"

शकार —(सक्रोधम्)आ किं न दृश्यते मम व्यवहार । यदि न दृश्यते, तदावुत्त, राजान पालकं भगिनीपतिं विज्ञाप्य भगिनी मातर च विज्ञाप्यैतमधिकरणिक दूरीकृत्यात्रान्यमधिकरणिक स्थापयिष्यामि।

(इति गन्तुमिच्छति)

३०. शोधनक—यह अधिकरणमंडप है, सो अधिकरणभोजक प्रवेश करें।

(सब प्रवेश करते हैं)

अधिकरणिक—भद्र शोधनक, बाहर निकल कर जानो, "कौन-कौन वादी है।"

३१ शोधनक—जो आर्य आज्ञा देते हैं। (बाहर निकलकर) आर्यो, अधिकरणिक कहते हैं "कौन-कौन यहां वादी है।"

शकार—(हर्षके साथ) आ गये अधिकरणिक ? (अभिमान के साथ परिक्रमा करके) मैं श्रेष्ठ पुरुष मनुष्य वासुदेव राष्ट्रियशाल (राजशाला) वादी हूं।

३२ शोधनक—(घबडाया सा) हन्त, पहले ही राष्ट्रियशाल मुकदमे-वाला! अच्छा, आर्य, क्षण भर ठहरो, तब तक अधिकरणिकोंको अर्ज करता हूं। (पास आकर) आर्यो, यह राष्ट्रियशाल वादी न्यायके लिये उपस्थित है।

३३ अधिकरणिक—क्यों, पहले ही राष्ट्रियशाल वादी, जैसे सूर्योदयके समय ग्रहण किसी महापुरुषके मरनेको ही बतलाता है। शोधनक, आज मुकदमा गडबड होगा। भद्र, जाकर कह . "जा, आज तेरा मुकदमा नहीं देखा जायेगा।"

३४ शोधनक—जो आर्य आज्ञा देते हैं। (निकलकर शकारके पास जाकर) आर्य, अधिकरणिक कहते हैं "जा, आज तेरा मुकदमा नहीं देखा जायेगा।"

शकार—(क्रोधके साथ) आह, क्या मेरा मुकदमा नहीं देखा जायेगा! यदि नहीं देखा जायेगा, तो भगिनी-पति जीजा राजा पालक से अर्ज करके, भगिनी और माको अर्ज करके इस अधिकर-णिकको हटा कर इस पद पर दूसरे अधिकरणिकको स्थापित कराऊंगा।

(जाना चाहता है)

३५ शोधनक—आर्य, राष्ट्रियश्याल। मुहूर्तं तिष्ठ, तावदधिकरणिकाना निवेदयामि। (अधिकरणिकं उपगम्य) एष राष्ट्रियश्याल कुपितो भणति (इति तदुक्त भणति)
अधिकरणिक—सर्वमस्य मूर्खस्य सभाव्यते। भद्र, उच्यताम्—"आगच्छ, दृश्यते तव व्यवहार।"

३६. शोधनक—(शकारमुपगम्य) आर्य, अधिकरणिका भणन्ति—"आगच्छ, दृश्यते तव व्यवहार", तत्प्रविशत्वार्य.
शकार—ही, प्रथम भणन्ति न दृश्यते, साप्रत दृश्यत इति। तन्नामभीतभीता अधिकरणभोजका, यद्यह भणिष्यामि तत्प्रत्याययिष्यामि। भवतु, प्रविशामि। (प्रविश्योपसृत्य) सुसुखमस्माक, युष्माकमपि सुख ददामि न ददामि च।

३७. अधिकरणिक—(स्वगतम्) अहो, स्थिरसंस्कारता व्यवहारार्थिन.। (प्रकाशम्) उपविश्यताम्।
शकार—आ, आत्मीयैषा भूमि। तद्यत्र मह्य रोचते तत्रोपविशामि। (श्रेष्ठिन प्रति) एष उपविशामि (शोधनक प्रति) नन्वत्रोपविशामि। (इत्यधिकरणिक-मस्तिष्के हस्त दत्वा) एष उपविशामि। (इति भूमौ उपविशति)

३८. अधिकरणिक—भवान्कार्यार्थी?
शकार—अथ किं?
अधिकरणिक.—तत्कार्यं कथय।

३९. शकार—(कर्णे कार्यं कथयिष्यामि) एव मल्लक प्रमाणस्य कुलेऽह जात।
राजश्वशुरो मम पिता राजा तातस्य भवति जामाता।
राजश्यालोऽहं ममापि भगिनिपती राजा॥६॥

१५. [illegible]—[illegible]। [illegible]
[illegible] है। ([illegible]) [illegible]
[illegible] है, ([illegible]) ।
[illegible]—[illegible] है। [illegible], [illegible] "[illegible],
[illegible] देना [illegible]।"

१६. [illegible]—([illegible]) [illegible], [illegible]
"[illegible], [illegible] देना [illegible]।" [illegible]।
[illegible]—[illegible], [illegible], [illegible], ([illegible])
[illegible]। [illegible], [illegible] [illegible],
[illegible]। [illegible], [illegible] है। ([illegible]
[illegible]) [illegible] है, [illegible] है।

१७. [illegible]—([illegible]) [illegible], [illegible]
[illegible] ([illegible]) है। ([illegible]) [illegible]।
[illegible]—[illegible] है। [illegible] है, [illegible]
[illegible] है। ([illegible]) [illegible] है। ([illegible]) [illegible]
है। ([illegible]) [illegible] है। ([illegible]
[illegible] है)

१८. [illegible]—[illegible] है ?
[illegible]—और क्या ?
[illegible]—[illegible] ([illegible]) [illegible]।

१९. [illegible]—[illegible]। [illegible]
[illegible] में [illegible] है।
[illegible] है, [illegible] है।
मैं [illegible] है, [illegible] है ॥६॥

४० अधिकरणिक—सर्वं ज्ञायते,

किं कुलेनोपदिष्टेन शीलमेवात्र कारणम्।
भवन्ति नितरा स्फीता सुक्षेत्रे कण्टकिद्रुमा ॥७॥

तदुच्यता कार्यम्।

४१ शकार—एव भणामि, अपराद्धस्यापि न च मे किमपि करिष्यति, ततस्तेन भगिनीपतिना परितुष्टेन मे क्रीडितु रक्षितु सर्वोद्यानाना प्रवर पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यान दत्तम्। तत्र च प्रेक्षितुमनुदिवस शुष्क कारयितु पुष्ट कारयितु लून कारयितु गच्छामि। दैवयोगेन पश्यामि, न पश्यामि वा, स्त्रीशरीर निपतितम्।

४२ अधिकरणिक—अथ ज्ञायते का स्त्री विपन्नेति?

शकार—अहो अधिकरणभोजका, किमिति न जानामि? ता तादृशी नगरमण्डना काचनशतभूषणा केनापि कुपुत्रेण आर्थकल्यवर्तस्य कारणाच्छून्य पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान प्रवेश्य बाहुपाशबलात्कारेण वसन्तसेना मारिता, न मया। (इत्यर्धोक्ते मुखमावृणोति)

४३ अधिकरणिक—अहो नगररक्षिणा प्रमाद। भो श्रेष्ठिकायस्थौ "न मयेति" व्यवहारपदमभिलिख्यताम्,

कायस्थ—यदार्य आज्ञापयति। (तथा कृत्वा) आर्य, लिखितम्।

४४ शकार—(स्वगत) आश्चर्यम्, त्वरा कुर्वाणेनैव पायसपिण्डारकेणाय मयात्मैव विनाशित, भवतु। एव तावत् (प्रकाश्य) अहो अधिकरणभोजका, ननु भणामि, मयैव दृष्टा कि कोलाहल कुरुत? (इति) पादेन लिखित प्रो छति,

अधिकरणिक—कथ त्वया ज्ञात यथा खल्वर्थनिमित्त बाहुपाशेन व्यापादिता?

१०. [illegible]—[illegible] है।
[illegible] है।
[illegible] ॥३॥
[illegible]
[illegible]

११. [illegible] ([illegible]) [illegible]
[illegible] किया।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ?

[illegible]—[illegible]

१२. [illegible]—[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ([illegible]
[illegible] है)

१३. [illegible]—[illegible]
[illegible] ([illegible]) [illegible]
[illegible]—[illegible] है। ([illegible]) [illegible]
[illegible]

१४. [illegible]—([illegible]) [illegible] ([illegible])
[illegible] है।
[illegible] है)
[illegible] ([illegible])
[illegible]—[illegible] जाता, [illegible]
[illegible] ?

४५　शकार —हहो, नून परिशून्यया मोघस्थानया ग्रीवालिकया सुवर्णकैराभरणस्थानैस्तर्कयामि ।
श्रेष्ठिकायस्थौ—युज्यत इव ।

४६. शकार —(स्वगतम्) दिष्ट्या प्रत्युज्जीवितोऽस्मि ।
श्रेष्ठिकायस्थौ—भो, कमेष व्यवहारोऽवलम्बते ?
अधिकरणिक —इह हि द्विविधो व्यवहार ।
श्रेष्ठिकायस्थौ—कीदृश ?

४७　अधिकरणिक —वाक्यानुसारेण, अर्थानुसारेण च ।
स यस्तावद्वाक्यानुसारेण, खल्वर्थिप्रत्यर्थिभ्य,
यश्चार्थानुसारेण स चाधिकरणिकबुद्धिनिष्पाद्य. ।
श्रेष्ठिकायस्थौ—तद्वसन्तसेनामातरमवलम्बते व्यवहार ।

४८. अधिकरणिक —एवमिदम् । भद्र शोधनक, वसन्तसेनामातरमनुद्वेजयन्नाह्वय ।
शोधनक —तथा, (इति निष्क्रम्य, गणिकामात्रा सह प्रविश्य) एत्वेत्वार्या ।

४९　वृद्धा—गता मे दारिका मित्रगृहमात्मनो यौवनमनुभवितुम् । एष पुनर्दीर्घायुर्भणति–"आगच्छ,अधिकरणिक आह्वयति" तन्मोहपरवशमिवात्मानमवगच्छामि । हृदय मे प्रकम्पते आर्य, आदिश मह्यमधिकरणमण्डपस्य मार्गम् ।

५०. शोधनक —एत्वेत्वार्या ।

(उभौ परिक्रामत.)

शोधनक—एषोऽधिकरणमण्डप. । अत्र प्रविशत्वार्या ।

(इत्युभौ प्रविशत)

५१. वृद्धा—(उपसृत्य) सुख युष्माक भवतु भावमिश्राणाम् ।
अधिकरणिक—भद्रे, स्वागतम्, आस्यताम् ।
वृद्धा—तथा । (इत्युपविष्टा)

४५ शकार—विना सुवर्णवाले आभरणसे खाली छूछी गर्दनसे अनुमान करता हूं।
श्रेष्ठी और कायस्थ—संभव सा है।

४६. शकार—(अपने आपसे) खूब, फिर जी गया।
श्रेष्ठी और कायस्थ—हे, किसके ऊपर यह व्यवहार (अभियोग) है?
अधिकरणिक—यहां दो प्रकारका व्यवहार होता है।
श्रेष्ठी और कायस्थ—कैसा?

४७ अधिकरणिक—वाक्यके अनुसार और अर्थके अनुसार। जो वाक्यके अनुसार होता है, वह वादी-प्रतिवादियोंसे और जो अर्थके अनुसार, वह अधिकरणिककी बुद्धिसे तैयार होता है।
श्रेष्ठी और कायस्थ—तो यह व्यवहार (मुकदमा) वसंतसेनाकी मासे सम्बन्ध रखता है।

४८ अधिकरणिक—यह ऐसा ही। भद्र शोधनक, वसंतसेनाकी माको विना उद्वेजित किये बुला लाओ।
शोधनक—अच्छा। (निकल कर गणिकाकी माके साथ प्रवेश करके) आओ, आओ आर्या।

४९ वृद्धा—मेरी लड़की मित्रके गृहमें अपना यौवन भोगने गई। पर, यह चिरंजीवी बोलता है: "अधिकरणिक बुला रहे हैं", सो मोह-परवश अनुभव कर रही हूं। मेरा हृदय कांप रहा है। आर्य, मुझे अधिकरण मंडपका मार्ग बतला।

५०. शोधनक—आओ, आओ, आर्या।

(दोनो परिक्रमा करते हैं)

शोधनक—यह अधिकरणमंडप है। यहां आर्या बैठो।

(दोनो प्रवेश करते हैं)

५१ वृद्धा—(पास जाकर) तुम महानुभावो, सुखी होओ।
अधिकरणिक—भद्रे, स्वागतम्, बैठिये।
वृद्धा—अच्छा। (बैठ गई)

५२ शकार —(साक्षेपम्) आगतासि वृद्धकुट्टनि, आगतासि ?
अधिकरणिक —अये, त्व किल **वसन्तसेनाया** माता ?
वृद्धा—अथ किं।
अधिकरणिक —अथेदानी वसन्तसेना क्व गता ?
वृद्धा—मित्रगृहम् ।
५३ अधिकरणिक —किंनामधेय तस्या मित्रम् ?
वृद्धा—हा धिक् हा धिक्, अतिलज्जनीयं खल्विद। जनस्य पृच्छनीयोऽयमर्थ, न पुनरधिकरणिकस्य।
५४ अधिकरणिक —अल लज्जया, व्यवहारस्त्वा पृच्छति।
श्रेष्ठिकायस्थौ—व्यवहार पृच्छति। नास्ति दोष ,कथय।
५५ वृद्धा—कथ व्यवहार ? यद्येव, तदा शृण्वन्त्वार्यमिश्रा । स खलु सार्थवाह**विनयदत्तस्य** नप्ता, **सागरदत्तस्य** तनय. सुगृहीतनामधेय आर्य**चारुदत्तो** नाम, **श्रेष्ठिचत्वरे** प्रातिवसति। तत्र मे दारिका यौवनसुखमनुभवति ।
५६ शकार —श्रुतमार्यै ? लिख्यन्तामेतान्यक्षराणि । चारुदत्तेन सह मम विवाद ।
श्रेष्ठिकायस्थौ—चारुदत्तो मित्रमिति नास्ति दोष
५७ अधिकरणिक—व्यवहारोय चारुदत्तमवलम्बते।
श्रेष्ठिकायस्थौ—एवमिव ।
५८ अधिकरणिक —**धनदत्त,** वसन्तसेनार्यचारुदत्तस्य गृह गतेति लिख्यता व्यवहारस्य प्रथम पाद ।कथमार्यचारुदत्तोऽप्यस्माभिराह्वयितव्य ? अथवा व्यवहारस्तमाह्वयति। भद्र शोधनक, अगच्छ, आर्यचारुदत्त स्वैरमसभ्रान्तमनुद्विग्न सादरमाह्वय प्रस्तावेन—"अधिकरणिकस्त्वा द्रष्टुमिच्छति" इति।

५२. शकार—(आक्षेपपूर्वक) आ गई बूढी कुटनी, आ गई ?
अधिकरणिक—अयें, तुम वसंतसेनाकी मा हो ?
वृद्धा—और क्या ?
अधिकरणिक—तो इस समय वसंतसेना कहां गई है ?
वृद्धा—मित्रके गृह।

५३ अधिकरणिक—क्या नाम है उसके मित्र का ?
वृद्धा—हा धिक्, हा धिक्, यह अत्यन्त लज्जास्पद है। लोगो के पूछनेकी यह वात है, अधिकरणिकके पूछनेकी नही।

५४. अधिकरणिक—लज्जा छोडो, व्यवहार (मुकदमा) तुमसे पूछता है।
श्रेष्ठी और कायस्थ—व्यवहार पूछता है। कोई दोष नही, वताओ।

५५. वृद्धा—क्यो व्यवहार ? यदि ऐसा, तो आर्य लोग सुनें। सार्थवाह विनयदत्तके नाती, सागरदत्तके पुत्र सुन्दर नामवाले आर्य चारुदत्त जो सेठ चौतरेमें वसते हैं, मेरी लडकी वहा यौवन-सुख अनुभव करती है।

५६ शकार—सुना आर्योंने ? इन अक्षरोको लिखिये। चारुदत्त के साथ मेरा विवाद है।
श्रेष्ठी और कायस्थ—चारुदत्त मित्र हैं, इसमें दोष नही।

५७ अधिकरणिक—यह मामला अव चारुदत्तसे सम्बन्ध रखता है।
श्रेष्ठी और कायस्थ—ऐसा ही।

५८ अधिकरणिक—धनदत्त, वसंतसेना आर्य चारुदत्तके गृह गई, यह व्यवहारका प्रथम चरण है, (इसे) लिखिये। क्या आर्य चारुदत्तको भी हमें वुलाना होगा। अथवा व्यवहार उन्हें वुला रहा है। भद्र शोधनक, जा, आर्य चारुदत्तको स्वेच्छासे विना शका और उद्वेगके आदरपूर्वक इस प्रस्तावके साथ वुला ला : "अधिकरणिक तुम्हारा दर्शन चाहते हैं।"

५९. शोधनक—(इति निष्क्रान्त.) यदार्यं आज्ञापयति।
(चारुदत्तेन सह प्रविश्य) एत्वेत्वार्य.।

६०. चारुदत्त—(विचिन्त्य)

परिज्ञातस्य मे राज्ञा शीलेन च कुलेन च।
यत्सत्यमिदमाह्वानमवस्थामभिशकते ॥८॥

६१ (सवितर्कं, स्वगतम्)

ज्ञातो नु किं स खलु बन्धनविप्रयुक्तो,
मार्गागत प्रवहणेन मयापनीतः।
चारेक्षणस्य नृपते श्रुतिमागतो वा,
येनाहमेवमभियुक्त इव प्रयामि ॥९॥

अथवा किं विचारितेन ? अधिकरणमण्डपमेव गच्छामि।
भद्र शोधनक, अधिकरणस्य मार्गमादेशय।

६२ शोधनकः—एत्वेत्वार्य.।
(इति परिक्रामत)

६३ चारुदत्त—(सशंकम्) तत्किमपरम् ?

रुक्षस्वर वाशति वायसोऽय-
ममात्यभृत्या मुहुराह्वयन्ति।
सव्य च नेत्र स्फुरति प्रसह्य,
ममानिमित्तानि हि खेदयन्ति॥१०॥

शोधनक—एत्वेत्वार्य स्वैरमसम्भ्रान्तम्।

६४ चारुदत्तः—(परिक्रम्याग्रतोऽवलोक्य च)

शुष्कवृक्षस्थितो ध्वाक्ष आदित्याभिमुखस्तथा।
मयि चोदयते वाम चक्षुर्घोरमसंशयम्॥११॥

५९ शोधनक—जो आर्य आज्ञा देते हैं। (निकलकर चारुदत्तके साथ प्रवेश करके) आओ, आओ आर्य।

६० चारुदत्त—(सोचते)
शील और कुलके साथ (मुझसे) राजा परिचित है, मेरा,
यह बुलाया जाना सचमुच ही शकास्पद है ॥८॥

६१ (तर्क करते अपने आपसे)
क्या उसे बन्धन-मुक्त जान लिया।
मैंने रास्तेमें रथसे हटाया।
या गुप्तचर आखोवाले राजाके कानमें पड़ा,
जिससे कि मै इस तरह अभियुक्त की तरह (ले जाया) जा रहा हू ॥९॥
अथवा विचारनेसे क्या फायदा? अधिकरण-मंडप ही जा रहा हू।
भद्र शोधनक, अधिकरण (न्यायालय) का मार्ग बतला।

६२ शोधनक—आर्ये, आर्ये, आर्य।
(दोनो परिक्रमा करते हैं)

६३ चारुदत्त—(शकायुक्त) तो और दूसरा क्या?
यह कौआ रूखे स्वरसे बोल रहा है,
फिर अमात्यके नौकर बुला रहे है।
और मेरी बाई आख जोरसे फड़क रही है,
मेरे असगुन (मुझे) खिन्न कर रहे है ॥१०॥
शोधनक—आर्ये, आर्ये आर्य, स्वच्छन्द निश्चिन्त।

६४ चारुदत्त—(परिक्रमा करके और देखकर)
सूखे वृक्षपर बैठा तथा सूर्यकी ओर मुह किये कौआ है। और मेरा बाया नेत्र निश्चय घोर (बात) बतला रहा है ॥११॥

६५. (पुनरन्यतोऽवलोक्य) अये, कथमय सर्प ?

मयि विनिहतदृष्टिर्भिन्ननीलाजनाभ,
स्फुरितविततजिह्व शुक्लदंष्ट्राचतुष्क ।
अभिपतति सरोषो जिह्मिताध्मातकुक्षि-
र्भुजगपतिरय मे मार्गमाक्रम्य सुप्त ॥१२॥

६६ अपि च, इदम्

स्खलति चरण भूमौ न्यस्त न चार्द्रतमा मही,
स्फुरति नयन वामो बाहुर्मुहुश्च विकम्पते ।
शकुनिरपरश्चायं तावद्विरौति हि नैकश,
कथयति महाघोरं मृत्यु न चात्र विचारणा ॥१३॥

सर्वथा देवता· स्वस्ति करिष्यन्ति ।
शोधनक —एत्वेत्वार्य ।इममधिकरणमण्डप प्रविशत्वार्य ।

६७. चारुदत्त —(प्रविश्य, समन्तादवलोक्य) अहो, अधिकरण-मण्डपस्य परा श्री । इह हि—

चिन्तासक्तनिमग्नमन्त्रिसलिल दूतोर्मिशङ्खाकुलम्,
पर्यन्तस्थितचारनक्रमकर नागाश्वहिंस्राश्रयम् ।
नानावाशकवकपक्षिरचित कायस्थसर्पास्पद,
नीतिक्षुण्णतट च राजकरण हिंस्रै समुद्रायते ॥१४॥

भवतु । (प्रविश छिरोभिघातमभिनीय, सवितर्कम्) अहह इदमपरम्—

सव्यं मे स्पन्दते चक्षुर्विरौति वायसस्तथा ।
पन्था सर्पेण रुद्धोय स्वस्ति चास्मासु दैवत· ॥१५॥

तावत्प्रविशामि । (इति प्रविशति)

६५ (फिर दूसरी ओर देखकर) अये, क्यो यह साप :
अजन सा अतिनील हिलती फैली जिह्वावाला,
सफेद चार दाढोयुक्त कुपित,
कुटिल हाफती काखवाला महाभुजग,
मेरे ऊपर नजर गड़ाये मेरे मार्गको रोककर लेटा है ॥१२॥

६६. और यह भी—
भूमिपर पडा (मेरा) चरण डगमगाता है और पृथिवी गीली नही है। नेत्र फडक रहा है, और वाईं वाह वार-वार काप रही है। यह दूसरा पक्षी वार-वार चिल्ला रहा है, (जो) महाघोर मृत्युको वतला रहा है, इसमें शक नही ॥१३॥
सर्वथा देवता मगल करें।
शोधनक—आर्ये, आर्ये आर्य। इस अधिकरणमडपमें प्रवेश करें आर्य।

६७ चारुदत्त—(प्रवेश करके चारो ओर देखकर) अहो, अधिकरण मडपकी परम शोभा—
यहा तो—
चिंतासक्त निमग्न मन्त्री रूपी सलिलवाला, दूतरूपी लहरोकी आकुल शकासे चारो ओर स्थित गुप्तचररूपी नाक-मगरवाला, गज-अश्वरूपी हिंस्रकोका आश्रय। नाना काव-काव करने वाले काग पक्षीसे वना, कायस्थरूपी सर्पोका निवास, राजनीतिसे ध्वस्त किये तटवाला, यह अधिकरण हिंस्रको से समुद्र सा है॥१४॥
अच्छा (घुसते हुए सिरपर धक्काका अभिनय करके सोचते) अहह, यह दूसरा (असगुन)—
मेरी वाईं आँख फडक रही है, और कौआ वोल रहा है।
यह मार्ग सर्पसे रुद्ध है, देवता हमारा मगल करे॥१५॥
तो प्रवेश करूँ। (प्रवेश करता है)

६८. अधिकरणिक—अयमसौ चारुदत्तः। य एष—

घोणोन्नत मुखमपागविशालनेत्र
नैतद्धि भाजनमकारणदूषणानाम्।
नागेषु गोषु तुरगेषु तथा नरेषु
न ह्याकृति सुसदृश विजहाति वृत्तम् ॥१६॥

६९. चारुदत्त—भो., अधिकृतेभ्य स्वस्ति। हहो नियुक्ता अपि कुशल भवताम्?

अधिकरणिक—(ससभ्रमम्) स्वागतमार्यस्य। भद्र शोधनक, आर्यस्यासनमुपनय।

७०. शोधनक—(आसनमुपनीय) इदमासनम्। अत्रोपविशत्वार्य.।

(चारुदत्त उपविशति)

शकार—(सक्रोध) आगतोऽसि रे स्त्रीघातक, आगतोऽसि। अहोऽधर्म्यो व्यवहार, यदेतस्मै स्त्रीघातकायासन दीयते। भवतु, ननु दीयताम्।

७१. अधिकरणिक—आर्य चारुदत्त, अस्ति भवतोऽस्या आर्याया दुहित्रा सह प्रसक्ति. प्रणय प्रीतिर्वा?

चारुदत्त—कस्या.?

७२. अधिकरणिक—अस्या (इति वसन्तसेनामातर दर्शयति)

चारुदत्त—उत्थाय आर्ये, अभिवादये।

वृद्धा—जात, चिर मे जीव। (स्वगत) अय स चारुदत्त सुनिक्षिप्त खलु दारिकया यौवनम्।

७३. अधिकरणिक—आर्य, गणिका तव मित्रम्?

(चारुदत्तो लज्जा नाटयति)

६८　अधिकरणिक—सो यह चारुदत्त हैं, जो कि यह—

ऊँची नाकवाला मुख, पलकयुक्त विशालनेत्र,
अकारण यह दोषी नही हो सकते।
नागो, बैलो, घोडो और मनुष्योमें (उनका)
आकार सुन्दर शीलको नही छोडता ॥१६॥

६९　चारुदत्त—भो, अधिकारियोंके लिए स्वस्ति। अहो नियुक्त (पुरुषो), आप लोगोका कुशल तो है?

अधिकरणिक—(घबडाहटके साथ) आर्यका स्वागत है। शोधनक, आर्यके लिए आसन लाओ।

७०. शोधनक—(आसन लाकर) यह आसन है। आर्य यहाँ बैठें।

(चारुदत्त बैठते है)

शकार—(क्रोधके साथ) आ गया रे स्त्रीघातक, आ गया? अहो, धर्मानुसारी व्यवहार, जो कि इस स्त्रीघातकको आसन दिया जा रहा है। (गर्वके साथ) अच्छा, तो दीजिए।

७१. अधिकरणिक—आर्य चारुदत्त, इस आर्याकी लडकीके साथ आपकी प्रसक्ति, प्रणय या प्रीति है?

चारुदत्त—किसकी?

७२　अधिकरणिक—इसकी (वसन्तसेनाकी माको दिखलाता है)।

चारुदत्त—(उठकर) आर्ये, अभिवादन करता हूँ।

वृद्धा—मेरे पुत्र, चिरञ्जीव। (अपने आपसे) यही वह चारुदत्त है। बेटीने (अपने) यौवनको सुन्दर जगह अर्पण किया।

७३. अधिकरणिक—आर्य, गणिका तुम्हारी प्रेमिका है?

(चारुदत्त लज्जा प्रदर्शित करता है)

७४. शकार —
लज्जया भीरुतया वा चारित्रमलीक निगूहितुम्।
स्वय मारयित्वार्थकारणादिदानी गूहति न तद्धि भट्टक।१७।
श्रेष्ठिकायस्थौ—आर्य चारुदत्त, भण ? अल लज्जया।
व्यवहार खल्वेष।

७५ चारुदत्त —(सलज्जम्) भो अधिकृता, मया कथमीदृश वक्तव्यम्—"यथा गणिका मम मित्र" मिति ? अथवा यौवनमत्रापराध्यति, न चारित्र्यम्।

७६ अधिकरणिक.—
व्यवहार सविघ्नोयं त्यज्य लज्जा हृदि स्थिताम्।
ब्रूहि सत्यमल धैर्यं छलमत्र न गृह्यते॥१८॥

७७ अल लज्जया, व्यवहारस्त्वा पृच्छति।
चारुदत्त —अधिकृत, केन सह मम व्यवहार. ?
शकार:—(साटोपम्) मया सह व्यवहार।

७८. चारुदत्त —त्वया सह मम व्यवहार सुदु सह।
शकार —अरे स्त्रीघातक, ता तादृशी रत्नशतभूषणा **वसन्तसेनां** मारयित्वा, साप्रत कपटकापटिको भूत्वा, निगूहसि ?

७९ चारुदत्त —असबद्ध खल्वसि।
अधिकरणिक —आर्य चारुदत्त, अलमनेन, ब्रूहि सत्यम्। अपि गणिका तव मित्रम।

८० चारुदत्त.—एवमेव।
अधिकरणिक.—आर्य, **वसन्तसेना** क्व ?

८१ चारुदत्त —गृह गत।
श्रेष्ठिकायस्थौ—कथं गता, कदा गता, गच्छन्ती वा केनानुगता ?

७४. शकार—

लज्जा या भीरुतासे अनुचित आचरणको छिपानेके लिये,
धनके लिये स्वय मारकर उसे अव भडुआ छिपाता है॥१७॥

श्रेष्ठी और कायस्थ—आर्य चारुदत्त, कहें लज्जा छोडें। यह व्यवहार है।

७५. चारुदत्त—(लज्जापूर्वक) हे अधिकारियो, मै कैसे कहूँ, कि गणिका मेरी मित्र है। अथवा यह यौवनका अपराध है, चरित्रका नहीं।

७६. अधिकरणिक—

यह खतरनाक व्यवहार है, मनकी लज्जा छोडो।
सच वोलो, धीरता रहने दो, यहाँ छल नही चलता॥१८॥

७७. लज्जा रहने दो, व्यवहार तुमसे पूछता है।

चारुदत्त—अधिकारी, किसके साथ मेरा व्यवहार (मुकदमा) है?

शकार—(फूलकर) अरे, मेरे साथ व्यवहार है।

७८. चारुदत्त—तेरे साथ मेरा व्यवहार, वहुत मुश्किल है।

शकार—अरे स्त्रीघातक, वैसी सौ रत्नोकी भूषणवाली वसन्तसेनाको मार कर अव कपट-कपटी वनकर छिपाता है?

७९. चारुदत्त—फजूल है तू।

अधिकरणिक—आर्य चारुदत्त, इसे रहने दो, सच वोलो। क्या गणिका तुम्हारी मित्र है?

८० चारुदत्त—ऐसा ही है।

अधिकरणिक—आर्य, वसन्तसेना कहा है?

८१ चारुदत्त—घर गई।

श्रेष्ठी और कायस्थ—कैसे गई, कव गई, और जाती हुई किसके साथ गई?

८२ चारुदत्त —(स्वगतम्) किं प्रच्छन्न गतेति ब्रवीमि ?
श्रेष्ठिकायस्थौ—आर्य, कथय।

८३ चारुदत्त —गृह गता किमन्यद् ब्रवीमि ?
शकार —मदीय पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यान प्रवेश्यार्थनिमित्त बाहुपाशबलात्कारेण मारिता। अये, साम्प्रत वदसि गृह गतेति ?

८४ चारुदत्त —आ, असंबद्धप्रलापिन्—

अभ्युक्षितोऽसि सलिलैर्न बलाहकाना,
चाषाग्रपक्षसदृश भृशमन्तराले।
मिथ्यैतदाननमिद भवतस्तथा हि,
हेमन्तपद्ममिव निष्प्रभतामुपैति ॥१९॥

८५ अधिकरणिक —(जनान्तिकम्)

तुलन चाद्रिराजस्य समुद्रस्य च तारणम्।
ग्रहण चानिलस्येव **चारुदत्तस्य** दूषणम् ॥२०॥

८६ (प्रकाशम्) आर्यचारुदत्त खल्वसौ कथमिदानी अकार्यं करिष्यति ?
शकार —किं पक्षपातेन ? व्यवहारो दृश्यते।

८७ अधिकरणिक —अपेहि मूर्ख,
वेदार्थान्प्राकृतस्त्व वदसि, न च ते जिह्वा निपतिता,
मध्याह्ने वीक्षसेऽर्कं, न तव सहसा दृष्टिर्विचलिता।
दीप्ताग्नौ पाणिमन्त क्षिपसि, स च ते दग्धो भवति नो,
चारित्र्याच्चारुदत्त चलयसि, न ते देह हरति भू ॥२१॥

८८ आर्यचारुदत्त कथमकार्यं करिष्यति ?

कृत्वा समुद्रमुदकोच्छ्रयमात्रशेष,
दत्तानि येन हि धनान्यनपेक्षितानि।
स श्रेयसा कथमिवैकनिधिर्महात्मा,
पाप करिष्यति धनार्थमवैरिजुष्टम् ॥२२॥

८२. चारुदत्त—(अपने आपसे) क्या छिपकर गई यह कहूँ ?
श्रेष्ठी और कायस्थ—आर्य कहैं।

८३ चारुदत्त—घर गई, और क्या बतलाऊँ ?
शकार—मेरे पुष्पकरडक जूने उद्यानमें ले जाकर धनके लिये वाहुपाशसे बलात् मार डाला। अये, अब कहता है घर गई ?

८४ चारुदत्त—आह, बकवास करनेवाले,
वादलोंके जलसे तू घुला नही है,
चाशके अगले पखके समान भीतरसे,
यह आपका मुख अत्यन्त झूठा है,
जो जाडेके कमलकी तरह निष्प्रभ हो रहा है॥१९॥

८५. अधिकरणिक—(अपनोमें)
पर्वतराजके तोलने और समुद्र पार होने,
और वायुके पकडने जैसा ही चारुदत्तके ऊपर दोप लगाना है॥२०॥

८६ (प्रकट) आर्य चारुदत्त हैं, कैसे यह अकरणीय करेंगे।
शकार—पक्षपात करनेसे क्या लाभ ? व्यवहार (साफ) दिखाई दे रहा है।

८७. अधिकरणिक—हट परे, मूर्ख—
गवार तू वेदके अर्थको कह रहा है, और तेरी जीभ नही गिरती, मध्याह्नमें सूर्यको देख रहा है, तेरी दृष्टि सहसा विचलित नही होती। प्रज्ज्वलित अग्निके भीतर हाथ डाल रहा है, और वह तेरा दग्ध नही होता। सदाचारसे चारुदत्तको विचलित कर रहा है, और धरती तेरी देहको नही हरती॥२१॥

८८. आर्य चारुदत्त कैसे यह अकार्य करेंगे ?
समुद्रके जलकी ऊँचाई मात्र वचा रखकर,
जिसने वेपर्वाह हो धन दे डाला।
वह भलाइयोका एक मात्र निधि महात्मा,
धनके लिये कायरोका सा पाप करेगा॥२२॥

८९ वृद्धा—हताश, यस्तदानी न्यासीकृत सुवर्णभाण्ड रात्रौ चौरैरपहृतमिति तस्य कारणाच्चतु समुद्रसारभूता रत्नावली ददाति, स इदानीमर्थकल्यवर्तस्य कारणादिदमकार्यं करोति ? हा जाते, एहि मे पुत्रि, (इति रोदिति)

अधिकरणिक —आर्यचारुदत्त, किमसौ पद्भ्या गता, उत प्रवहणेनेति ?

९०. चारुदत्त —ननु मम प्रत्यक्ष न गता। तन्न न जाने किं पद्भ्या गता, उत प्रवहणेनेति।

(प्रविश्य, सामर्ष)

वीरक —

पादप्रहारपरिभवविमाननाबद्धगुरुकवैरस्य।
अनुशोचत इय कथमपि रात्रि. प्रभाता मे ।।२३।।

तद् यावद् अधिकरणमण्डप उपसर्पामि (प्रविष्टकेन) सुख आर्यमिश्राणाम् ?

९१. अधिकरणिक —अये, नगररक्षाधिकृतो वीरक'। किमागमन-प्रयोजनम् ?

वीरक —ह्वी, बन्धनभेदनसभ्रमे आर्यकमन्वेषयन्, अपवारित प्रवहण व्रजतीति विचार कुर्वन्नन्वेषयन्, "अरे! त्वयाप्यालोकित, मयाप्यालोकितव्य" इति भणन्नेव चन्दनमहत्तरकेण पादेन ताडितोऽस्मि। एतच्छ्रुत्वा आर्यमिश्रा प्रमाणम्।

९२ अधिकरणिक —भद्र, जानीषे कस्य तत्प्रवहणमिति ?

वीरक —अस्यार्यचारुदत्तस्य। वसन्तसेनारूढा पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यान क्रीडितु नीयत इति प्रवहणवाहकेन कथितम्।

शकार—पुनरपि श्रुतमार्यै ।

८९. वृद्धा—हताश, जो उस समय अमानत रक्खे सोनेके आभूषणको रातमें चोरो द्वारा चुराये जानेपर उसकी जगह चारो समुद्रोका सार रत्नावली दे देता है, वह अब धनके लिये इस अकार्यको करेगा ? हा वेटी, आ मेरी पुत्री। (रोती है)

अधिकरणिक—आर्य चारुदत्त, क्या वह पैदल गई या रथसे ?

९०. चारुदत्त—मेरे सामने नही गई, सो नही जानता, पैदल गई या रथसे।

(प्रवेश करके क्रोधके साथ)

वीरक—पाद प्रहारके अपमानसे पीडित भारी वैरसे।
सोचते हुये मेरी यह रात कैसे करके सवेरा हो गई ॥२३॥
सो अधिकरणमण्डपमें जाता हूँ। (प्रवेश करके) सुख तो है आर्योंको ?

९१ अधिकरणिक—अये, नगररक्षाधिकारी वीरक, वीरक, (तुम्हारे) आनेका क्या प्रयोजन है ?

वीरक—ही, वन्दीखाना टूटनेके उतावलेपनमें आर्यकको ढूढते, "ढँका हुआ रथ जा रहा है", यह विचार तलाशी लेते "अरे तूने भी देखा, मैंने भी देखा" यह कहते चन्दन महत्तरने मुझे लात मारी। यह सुनकर अब (आप) आर्य जो उचित समझें, (सो करें)।

९२ अधिकरणिक—भद्र, जानते हो, किसका वह रथ था ?

वीरक—इस आर्य चारुदत्तका। "वसन्तसेना चढकर पुष्पकरडक जूने उद्यानमें विहारके लिये ली जा रही है", रथवान्‌ने कहा।

शकार—फिरभी सुना आर्योंने ?

९३. अधिकरणिक —

एष भो निर्मलज्योत्स्नो राहुणा ग्रस्यते शशी ।।
जल कूलावपातेन प्रसन्न कलुषायते ।।२४।।

वीरक —पश्चादिह भवतो न्याय द्रक्ष्याम. । य एषोऽधिक-रणद्वार्यश्वस्तिष्ठति, तमेनमारुह्य गत्वा पुष्पकरण्डकोद्यान दृश्यतामस्ति तत्र काचिद् विपन्ना स्त्री न वेति ।

९४ वीरक —यदार्य आज्ञापयति । (इति निष्क्रम्य, प्रविश्य च) गतोऽस्मि तत्र । दृष्ट च मया स्त्रीकलेवर श्वापदैर्विलुप्यमा-नम् ।

श्रेष्ठिकायस्थौ—कथ त्वया ज्ञात स्त्रीकलेवरमिति ?

९५ वीरक —सावशेषै केशहस्तपाणिपादैरुपलक्षितं मया ।

अधिकरणिक —अहो, धिक् वैषम्य लोकव्यवहारस्य-
यथा यथैव निपुण विचार्यते, तथा तथा सकटमेव दृश्यते ।
अहो सुसन्ना व्यवहारनीतयो, मतिस्तु गौ पकगतेव सीदति
।।२५।।

९६ चारुदत्त —(स्वगतम्)

दुष्टात्मा परगुणमत्सरी मनुष्यो रागान्ध परमिह हन्तुकामबुद्धि
किं यो यद्वदति मृषेव जातिदोषात्तद्ग्राह्य भवति न तद्विचारणीय
।।२७।।

९७. अपि च,—

यो हि लता कुसुमितामपि पुष्पहेतोराकृष्य नैव कुसुमावचयकरोमि
सोऽहं कथ भ्रमरपक्षरुचौ सुदीर्घे केशे प्रगृह्य रुदतीं प्रमदा निहन्मि
।।२८।।

९३. अधिकरणिक—

भो, यह निर्मल चादनीवाला चन्द्रमा राहुसे ग्रसा जा रहा है।
तट के गिरनेसे स्वच्छ जल मलिन हो रहा है ॥२४॥

वीरक, आपके न्याय (मुकदमे) को पीछे देखेंगे। अधिकरणके दरवाजेपर जो यह घोडा खडा है, उसपर चढ जाकर पुष्पकरडक उद्यानको देखें, वहाँ कोई मरी स्त्री है या नही।

९४. वीरक—जो आर्य आज्ञा देते हैं। (बाहर जाकर और फिर प्रवेश कर) वहाँ गया था। मैंने जानवरोंसे विलुप्त किये जाते स्त्रीशरीरको देखा।

श्रेष्ठी और कायस्थ—कैसे तुमने जाना, कि स्त्रीशरीर है?

९५. वीरक—बचे हुये केश, हाथ, पाणि, पैरोंसे मैंने समझा।
अधिकरणिक—अहो, लोक-व्यवहारकी विषमताको धिक्कार है। जैसे-जैसे इसे अच्छी तरह विचारते हैं, वैसे-वैसे सकट ही दिखाई दे रहा है। अहो सुगठित व्यवहारकी नीतियाँ, जहाँ बुद्धि पकमें पडी गौकी तरह फस जाती है ॥२५॥

९६. चारुदत्त—(अपने आपसे)

दुष्टात्मा दूसरेके गुणोमें ईर्ष्यालु रागसे अन्धा मनुष्य दूसरेको मारने की इच्छासे जो कहता है, जातिके दोपसे वह झूठ ही क्या ग्राह्य होता है, वह विचारणीय नही ॥२७॥

९७. और भी—

जो मैं फूली लताको फूलके लिये झुकाकर नही चुनता।
सो मैं भवरेके पखो से (काले) लम्बे केशोको पकडकर रोती स्त्रीको मारूँगा ॥२८॥

९८. शकार—हहो अधिकरणभोजका, किं यूय पक्षपातेन व्यवहार पश्यथ, येनाद्याप्येष हताशश्**चारुदत्त** आसने धार्यते ?

अधिकरणिक—भद्र शोधनक, एव क्रियताम्।

(शोधनकस्तथा करोति)

९९ चारुदत्त—विचार्यताम्। भो अधिकृता, विचार्यताम् (इत्यासनादवतीर्य भूमावुपविशति)

शकार—(स्वगत, सहर्षं नर्तित्वा) ही, अनेन मया कृत पापमन्यस्य [मस्तके] निपतितम्। तद्यत्र चारुदत्त उपविशति तत्राहमुपविशामि। (तथा कृत्वा) चारुदत्त, पश्य-पश्य माम्। तद् भण भण मया मारितेति।

१००. चारुदत्त—भो अधिकृता (दुष्टात्मा इत्यादि पठति) (सनि श्वास, स्वगतम्)

मैत्रेय भो, किमिदमद्य ममोपघातो,
हा ब्राह्मणि, द्विजकुले विमले प्रसूता।
हा रोहसेन, हि न पश्यसि मे विपत्ति,
मिथ्यैव नन्दसि परव्यसनेन नित्यम् ॥२९॥

प्रेषितश्च मया तद्वार्तान्वेषणाय **मैत्रेयो** वसन्तसेनासकाश शकटिकानिमित्त च तस्य प्रदत्तान्यलकरणानि प्रत्यर्पयितु, तत्कथ चिरयते।

(तत प्रविशति गृहीताभरणो विदूषक)

९८. शकार—हे हो अधिकरणभोजको, क्यो तुम पक्षपात से व्यवहारको देख रहे हो, जो अब भी इस अभागे चारुदत्तको आसनपर वैठाये हुये हो ?

अधिकरणिक—भद्र शोधनक, ऐसा (ही) करो।

(शोधनक वैसा करता है)

९९. चारुदत्त—विचार कीजिये, हे अधिकारियो, विचार कीजिये। (आसनसे उठ कर जमीनपर वैठ जाता है)

शकार–(हर्षके साथ नाच कर) ही इस तरह अपने किये पापको दूसरे के मत्थे डाला। सो जहां चारुदत्त वैठा है, वही (मैं भी) वैठता हूँ। (वैसा करके) चारुदत्त, देख-देख (तो) मुझे। सो कह-कह, कि मैंने मारा।

१००. चारुदत्त—हे अधिकारियो, (दुष्टात्मा आदि पढता है)

(उसास लेकर अपने आपसे)

हे मैत्रेय, क्या आज यह मेरा मरण है,
विमल द्विजकुलमें जनमी हा ब्राह्मणी,
हा रोहसेन, मेरी विपद्को नही देख रहा है।
दूसरेके दुखसे झूठ ही तू आनन्दित होता है॥२९॥

मैंने उसका पता लगानेके लिये मैत्रेयको, वसन्तसेना द्वारा शकटिकाके लिये दियें आभूपणोको लौटानेके वास्ते भेजा था। सो वह क्यो देर कर रहा है ?

(आभरण वगलमें दावे विदूषक प्रवेश करता है)

१०१ विदूषक—प्रेषितोऽस्म्यार्यचारुदत्तेन वसन्तसेनासकाशम्, तत्रालकरणानि गृहीत्वा यथा "आर्य मैत्रेय, वसन्तसेनया वत्सो रोहसेन आत्मनोऽलकारेणालकृत्य जननीसकाश प्रेषित। अस्य आभरण दातव्य, न पुनर्गृहीतव्यम्, तत्समर्पय" इति। तद्यावद्वसन्तसेनासकाशमेव गच्छामि।

(परिक्रम्यावलोक्य च आकाशे) कथ भावरेभिलः? भो भावरेभिल, किंनिमित्त त्वमुद्विग्न उद्विग्न इव लक्ष्यसे? (आकर्ण्य) किं भणसि "प्रियवयस्यश्चारुदत्तोऽधिकरणमण्डप आहूत इति"? तन्न खल्वल्पेन कार्येण भवितव्यम्। (विचिन्त्य) तत्पश्चाद् वसन्तसेनासकाश गमिष्यामि, अधिकरणमण्डप तावद् गमिष्यामि। अयमधिकरणमण्डप। तद्यावत्प्रविशामि। (प्रविश्य) सुखमधिकरणभोजकानाम्। कुत्र मम प्रिय वयस्य?

१०२. अधिकरणिक—नन्वेष तिष्ठति।

विदूषक – वयस्य, स्वस्ति ते।

चारुदत्त—भविष्यति।

१०३ विदूषक—अपि क्षेम ते?

चारुदत्त—एतदपि भविष्यति।

विदूषक—भो वयस्य, किंनिमित्तमुद्विग्न उद्विग्न इव लक्ष्यसे? कुतो वाऽऽहूत?

१०४ चारुदत्त—वयस्य—

मया खलु नृशसेन परलोकमजानता।
स्त्री रतिर्वा विशेषेण शेषमेषोऽभिधास्यति॥३०॥

विदूषक—किं किं?

१०१. विदूषक—आर्य चारुदत्तने मुझे वसन्तसेनाके पास अलकार देकर भेजा, "आर्य मैत्रेय वसन्तसेनाने वत्स रोहसेनको अपने अलकारसे अलकृत करके मा के पास भेजा था। उसे आभरण देना चाहिये, न कि (उससे) लेना चाहिये, सो (इसे) दे आओ।" सो वसन्तसेनाके पास जा रहा हूँ। (परिक्रमा करते आकाशकी ओर देख) क्यो श्री रेभिल हैं? हे श्री रेभिल, क्यो तुम उद्विग्नसे दिखाई देते हो। (सुनकर) क्या कहते हो : "प्रिय मित्र चारुदत्त अधिकरणमण्डपमें बुलाये गये?" यह छोटा-मोटा काम नही होगा। (सोचकर) तो वसन्तसेना के पास पीछे जाऊँगा। अधिकरणमण्डपमें (पहिले) चलू। यह अधिकरणमण्डप है, सो प्रवेश करता हूँ। (प्रवेश करके) अधिकरण भोजकोको सुख तो है? कहाँ है मेरा प्रिय मित्र?

१०२. अधिकरणिक—यह रहे।

विदूषक—वयस्य, स्वस्ति तुम्हें।

चारुदत्त—होगी।

१०३ विदूषक—तुम्हारा क्षेम तो है?

चारुदत्त—यह भी होगा।

विदूषक—हे मित्र, किसलिये उद्विग्नसे दिखाई दे रहे हो? और किसलिये (यहाँ) बुलाये गये?

१०४ चारुदत्त—मित्र,

परलोकके न जाननेवाले मुझ नृशंसने,

स्त्री या विशेष करके रतिको, शेष यह कहेगा ॥३०॥

विदूषक—क्या-क्या?

१०५. चारुदत्त.—(कर्णे) एवमेवम्
विदूषक—क एव भणति ?
१०६. (संज्ञया शकार दर्शयति) नन्वेष तपस्वी हेतुभूत कृतान्तो मा व्याहरति।
विदूषक.—(जनान्तिकम्) एव किमर्थं न भण्यते गृह गतेति।
१०७. चारुदत्त :—उच्यमानमप्यवस्थादोषान्न गृह्यते।
१०८. विदूषक —भो भो आर्या, येन तावत्पुरस्थापनविहारारामदेवालयतडागकूपयूपैरलकृता नगर्युज्जयिनी, सोऽनीशोऽर्थकल्यवर्तकारणादीदृशमकार्यमनुतिष्ठतीति ? अरे रे कुलटापुत्र, राजश्यालसस्थानक, उच्छृखल, कृतजनदोषभाण्डबहुसुवर्णमण्डितमर्कटक, भण भण ममाग्रत, य इदानी मम प्रियवयस्य कुसुमिता माधवीलतामप्याकृष्य कुसुमावचय न करोति, कदाऽप्याकृष्टतया पल्लवच्छेदो भवतीति, स कथमीदृशमकार्यमुभयलोकविरुद्ध करोति ? तिष्ठ रे कुट्टिनीपुत्र, तिष्ठ, यावदेतेन कुटिलेन दण्डकाष्टेन तव मस्तक शतखण्ड करोमि।
१०९ शकार—(सक्रोधम्) श्रृण्वन्तु शृण्वन्त्वार्यमिश्रा, चारुदत्तेन सह मम विवादो व्यवहारो वा, तत्किमर्थमेष काकपदशीर्षमस्तको मम शिर शतखण्डं करोति ? मा तावत्, रे दास्या पुत्र दुष्टवटुक।
(विदूषको दण्डकाष्ठमुद्यम्य पूर्वोक्त पठति, शकार सक्रोधमुत्थाय ताडयति, विदूषक प्रतीप ताडयति, अन्योऽन्य ताडयत विदूषकस्य कक्षदेशादाभरणानि पतन्ति)

१०५. चारुदत्त—(कानमें) ऐसा-ऐसा।
विदूषक—कौन ऐसा कहता है?

१०६ चारुदत्त—(संकेतसे शकारको दिखलाता है) यही बेचारा हेतु बन यमराज सा मुझपर मुकदमा कर रहा है।
विदूषक—(आपसमे) क्यो नही कहते, कि घर गई है।

१०७ चारुदत्त—कहनेपर भी परिस्थितिके दोषके कारण नही माना जा सकता।

१०८ विदूषक—भो, भो आर्यो, जिसने कि पुरकी स्थापनामें 'विहार, आराम, देवालय, तडाग, कूप और यज्ञयूपोंसे उज्जयिनी नगरीको अलंकृत किया, वह बेचारा धनके लिये ऐसा कार्य करेगा? (क्रोधके साथ) अरे रे, छिनालके बेटे, राजाके साले सस्थानक, उजड्ड, लोगोपर किये दोषोंके भाड, बहुत सोनेसे मण्डित वानर, कह, कह मेरे सामने, जो मेरा मित्र फूली चमेलीकी लताको खीचकर फूल नही चुनता, कि खीचनेपर पल्लव टूट जायगी; वह दोनो लोकोंके विरुद्ध ऐसे अकार्यको कैसे करेगा? ठहर रे कुटनीके बेटे, ठहर, जब तक कि इसी बीच मैं इस टेढे डण्डेसे तेरे सिरको सौ खण्ड नही बना देता।

१०९. शकार—(क्रोधके साथ) सुनें, सुनें आर्यो, चारुदत्तके साथ मेरा विवाद या व्यवहार है, सो यह सिर-मस्तकपर चुटियावाला मेरे सिरको क्यो सौ खण्ड बनाता है? मत रे दासीके बेटे, दुष्ट बटुक। (विदूषक डण्डेको उठाकर पहिलेकी तरह कहता है, शकार क्रोध के साथ उठकर मारता है। विदूषक उलटे मारता है। दोनो एक दूसरेको पीटते हैं, विदूषककी काँखसे आभूषण गिर जाते हैं)

११०. शकार.—(तानि गृहीत्वा, दृष्ट्वा ससाध्वस) पश्यन्तु पश्यन्त्वार्या, एते खलु तस्यास्तपस्विन्या अलकारा। अस्यार्थकल्यवर्तस्य कारणादेषा मारिता व्यापादिता च।
(अधिकृता: सर्वेऽधोमुखा स्थिता)

१११. चारुदत्त —(जनान्तिकम्)
अयमेवविधे काले दृष्टो भूषणविस्तर।
अस्माक भाग्यवैषम्यात्पतित. पातयिष्यति ॥३१॥
विदूषक —भो, किमर्थं भूतार्थो न निवेद्यते?

११२. चारुदत्त —वयस्य!
दुर्बल नृपतेश्चक्षुर्नैतत्तत्व निरीक्षते।
केवल वदतो दैन्यमश्लाघ्य मरण भवेत् ॥३२॥

११३. अधिकरणिक —कष्ट भो, कष्टम्,
अगारकविरुद्धस्य प्रक्षीणस्य बृहस्पते।
ग्रहोऽयमपर पार्श्वे धूमकेतुरिवोत्थित. ॥३३॥
श्रेष्ठिकायस्थौ—(विलोक्य, वसन्तसेनामातरमुद्दिश्य) अवहिता तावदार्येद सुवर्णभाण्डमवलोकयतु तदेवेद न वेति?

११४ वृद्धा—(अवलोक्य) सदृशमेतद्, न पुनस्तत्।
शकार—आ., वृद्धकुट्टनि, अक्षिभ्या मन्त्रित वाचा मूकितम्।
वृद्धा—हताश, अपेहि।
श्रेष्ठिकायस्थौ–अप्रमत्त कथय, तदेवैतन्न वेति?

११५ वृद्धा—आर्य, शिल्पिकुशलतयावबध्नाति दृष्टिम्, न पुनस्तत्।
अधिकरणिक —भद्रे, अपि जानास्येतान्याभरणानि?

११६ वृद्धा—ननु भणामि, न खलु न खल्वनभिज्ञात। अथवा कदापि शिल्पिना घटितो भवेत्।

११०. शकार—(उन्हें ले देखकर जल्दीमें) देखें, देखें आर्य, यह उसी बेचारीके आभूषण हैं, इसीके लिये वह मारी और व्यापादित की गई (सारे अधिकारी मुह नीचा कर लेते हैं)।

१११. चारुदत्त—(आपसमें)
ऐसे समय हमारे भाग्यकी विषमतासे।
गिरा और देखा गया यह भूषण (मुझे) गिरायेगा ॥३१॥
विदूषक—हे, क्यो असली बात नही बतलाते ?

११२. चारुदत्त—मित्र,
राजाकी आंख दुर्बल होती है, वह वास्तविकताको नही देखती। (और) सिर्फ दीनता दिखलानेवालेका मरण अश्लाघनीय होता है ॥३२॥

११३. अधिकरणिक—कष्टं भो कष्टं,
मगल (ग्रह) विरुद्ध होने, क्षीण वृहस्पतिके होने पर,
पासमें यह दूसरा (ग्रह) धूमकेतुकी तरह उग आया ॥३३॥
श्रेष्ठी और कायस्थ—(देखकर वसन्तसेनाकी मासे) ध्यानसे आर्या, इस सोनेके आभूषणको देखें, यह वही है या नहीं ?

११४. वृद्धा—(देखकर) समान है, किन्तु वही नही है।
शकार—हाँ, वृढी कुटनी, आंखोसे सलाह करती, मुहसे मौन।
वृद्धा—हताश, हट परे।
श्रेष्ठी और कायस्थ—ठीकसे कहो, यह वही है या नही।

११५. वृद्धा—आर्य, शिल्पकारकी चतुरताके कारण आंखको भ्रम होता है, पर वह नही है।
अधिकरणिक—भद्रे, क्या इन आभरणोको पहचानती है ?

११६. वृद्धा—कह तो रही हूं। नही, नही, यह बे-पहिचानके नही है। अथवा शायद शिल्पीने (वैसा) गढा हो।

११७ अधिकरणिक—पश्य श्रेष्ठिन् !

वस्त्वन्तराणि सदृशानि भवन्ति नून,
रूपस्य भूषणगुणस्य च कृत्रिमस्य।
दृष्ट्वा क्रियामनुकरोति हि शिल्पिवर्ग,
सादृश्यमेव कृतहस्ततया च दृष्टम् ॥३४॥

११८ श्रेष्ठिकायस्थौ—आर्यचारुदत्तीयान्येतानि।
चारुदत्त—न खलु न खलु।
श्रेष्ठिकायस्थौ—तदा कस्य ?
चारुदत्त—न खलु न खलु, इहात्र भवत्या दुहितु ।

११९ श्रेष्ठिकायस्थौ—कथमेतानि तस्या वियोगं गतानि ?
चारुदत्त—एव गतानि। आ, इदम्।

१२०. श्रेष्ठिकायस्थौ—आर्यचारुदत्त, अत्र सत्य वक्तव्यम्,
पश्य पश्य—

सत्येन सुख खलु लभ्यते सत्यालापेन भवति पातकम्।
सत्यमिति द्वे अप्यक्षरे मा सत्यमलीकेन गूहय ॥३५॥

१२१ चारुदत्त—आभरणान्याभरणानीति न जाने, किंत्व-
स्मद्गृहादानीति जाने।
शकार—उद्यान प्रवेश्य प्रथम मारयसि कपटका
पटिकतया साप्रत निगूहसि ?

१२२ अधिकरणिक—आर्यचारुदत्त, सत्यमभिधीयताम्—
इदानी सुकुमारेऽस्मिन्नि शक कर्कशा. कशाः।
तव गात्रे पतिष्यन्ति सहास्माक मनोरथै. ॥३६॥

११७. अधिकरणिक—देखो श्रेष्ठी—

भिन्न-भिन्न वस्तुयें भी एक समान होती है,
रूपको और कृत्रिम भूषण-गुणको,
देखकर शिल्पी लोग कारीगरीका अनुकरण करते हैं,
निपुणताके कारण समान दीखते हैं॥३४॥

११८. श्रेष्ठी और कायस्थ—आर्य चारुदत्तके है यह?
चारुदत्त—नही, नही, (ये) आपकी लड़कीके है।

११९. श्रेष्ठी और कायस्थ—कैसे यह उससे अलग हुये?
चारुदत्त—ऐसे हुये, हाँ यह।

१२०. श्रेष्ठी और कायस्थ—सच कहो, देखो, देखो—

सत्यसे ही सुख मिलता है, सत्यके अपलापसे पातक होता है।
सत्य यह दोनो अक्षर हैं, सत्यको झूठसे मत छिपाओ॥३५॥

१२१ चारुदत्त—आभरण, आभरण मैं नही जानता, किन्तु ये हमारे घरसे लाये गये हैं, यह जानता हूँ।

शकार—उद्यानमें ले जाकर पहले मारता है, फिर कपटकपटीपन दिखलाते अब छिपाता है?

१२२. अधिकरणिक—आर्य चारुदत्त, सच कहो—

अब तुम्हारे इस सुकुमार शरीरपर निश्चय,
कर्कश कोड़े हमारे मनोरथोंके साथ पड़ेंगे॥३६॥

१२३. चारुदत्त.—
अपापाना कुले जाते मयि पाप न विद्यते।
यदि सभाव्यते पापमपापेन च किं मया ? ॥३७॥
(स्वगतम्) न च मे वसन्तसेनाविरहितस्य जीविते कृत्यम्। (प्रकाशम्) भो, किं बहुना—
मया किल नृशसेन लोकद्वयमजानता।
स्त्रीरत्नं च विशेषेण शेषमेषोऽभिधास्यति॥३८॥

१२४ शकार.—व्यापादिता। अरे, त्वमपि भण, मया व्यापादितेति।
चारुदत्त —त्वयैवोक्तम्।

१२५ शकार —शृणुत शृणुत भट्टारका। एतेन मारिता। एतेनैव सशयश्छिन्न।
अधिकरणिक —शोधनक, गृह्यतामय चारुदत्त।

—अक ९

२३. भारवि (५५० ई०)

भारविके नामका उल्लेख ६३४ ई० (शकाब्द ५५६) में उत्कीर्ण ऐहोड़ (जिला वीजापुर) के शिलालेख में मिलता है। वह कालिदासके वादके महाकवियोंमें वहुत ऊँचा स्थान रखते हैं। एक परम्पराके अनुसार यह दक्षिणापयके राजा पुलकेशी द्वितीयके छोटे भाई विष्णुवर्धनके दरबारी कवि थे। सम्भव है, दक्षिणापय के ही रहनेवाले हों। यह दण्डीके

१२३. चारुदत्त—

निष्पाप कुलमें उत्पन्न मुझमें पाप नही है।
यदि पाप सम्भव है, तो मेरे निष्पाप होनेसे क्या ?॥३७॥

(अपने आपसे) (अब) मुझे वसन्तसेना के बिना जीवनसे काम नही। (प्रकट) भो, अधिक क्या—

दोनो लोकोका न ख्याल करते मुझ नृशसनें,
और विशेष कर स्त्रीरत्नको...बाकी यह कहेगा॥३८॥

१२४. शकार—मारा। अरे, तू भी कह, कि मैंने मारा।

चारुदत्त—तूने ही कह दिया।

शकार—सुनो, सुनो भट्टारको (साहबो), इसने मारा। इससे ही सन्देह दूर हो गया।

१२५. अधिकरणिक—शोधनक, चारुदत्त को पकड लो।

—अक ९

२३. भारवि (५५० ई०)

परदादा दामोदरके मित्र थे, इन्होंकी सहायतासे दामोदर चालुक्यराजा विष्णुवर्धनके दरबारमें पहुँचे । यद्यपि इनकी कवितामें प्रसादगुण का ह्रास है, लेकिन उतना नहीं, जितना कि बादके अपभ्रंशकालीन कवियोंमें उसे देखा जाता है। भारविकी सिर्फ एक ही कृति (किरातार्जुनीय) १८ सर्गोंमें मिलती है।

किरातार्जुनीयम्

(१) गुप्तचराभि हिता प्रवृत्तिः—

१ श्रिय कुरूणामधिपस्य पालनी प्रजासु वृत्ति यमयुक्त वेदितुम् ।
स वर्णिलिंगी विदित समाययौ युधिष्ठिर द्वैतवने वनेचर ॥१॥

२. कृतप्रणामस्य मही महीभुजे जिता सपत्नेन निवेदयिष्यत ।
न विव्यथे तस्य मनो नहि प्रिय प्रवक्तुमिच्छन्ति·मृषा हितैषिण· ॥२॥

३ द्विषा विघाताय विघातुमिच्छतो रहस्यनुज्ञामधिगम्य भूभृत ।
स सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनी विनिश्चितार्थामिति वाचमाददे ॥३॥

४ "क्रियासु युक्तैर्नृप चारचक्षुषो न वचनीया प्रभवोऽनुजीविभि ।
अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा हित मनोहारि च दुर्लभ वच ॥४॥

५ स किसखा साधु न शास्ति योऽधिप हितान्न य सशृणुते स किंप्रभु ।
सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसपद ॥५॥

६ विशकमानो भवत पराभव नृपासनस्थोऽपि वनाधिवासिन ।
दुरोदरच्छद्मजिता समीहते नयेन जेतु जगती सुयोधन ।७।

किरातार्जुनीयम्

१. गुप्तचरने युधिष्ठिरसे कहा—

१ कुरुओंके राजाकी राजलक्ष्मीके पालनव्यवहारको जाननेके लिये प्रजामें जिसे नियुक्त किया (गया था), वह ब्रह्मचारी वेषधारी वन-घुमन्तू किरात पता लगाकर द्वैतवनमें (आ) युधिष्ठिरसे मिला ॥१॥

२. प्रणाम करके शत्रुसे जीती पृथिवीके बारेमें राजाको निवेदन करते-करते, वह दुखी नही हुआ, हितैषी लोग झूठे प्रियवाक्य कहना नही पसद करते ॥२॥

३ शत्रुओंके नाशके लिये काम करनेकी इच्छावाले राजा युधिष्ठिरकी अनुज्ञा पा, एकान्तमें उसने भली, उदार और विशेषयुक्त निश्चित अर्थवाली वाणीको इस प्रकार कहना शुरू किया ॥३॥

४ "राजन्, कार्यमें नियुक्त अनुजीवियोको चाहिये कि गुप्तचररूपी आखवाले प्रभुओको वचित न करें। अत अच्छा हो या बुरा, मेरे कहे को क्षमा करें, क्योकि हित और मनोहर वचन दुर्लभ है ॥४॥

५ जो सखा स्वामीको उचित नही कहता वह कैसा सखा ? जो हितकी (बातें) नही सुनता वह कैसा प्रभु ? अनुकूल नृपो और अमात्योपर ही सारी सम्पदायें अनुरक्त होती हैं ॥५॥

६ सिहासनासीन भी दुर्योधन वननिवासी आपसे पराजयकी शंका करता, जूये से जीते ससारको नीतिसे जीतना चाहता है ॥७॥

७. तथापि जिह्म स भवज्जिगीषया तनोति शुभ्र गुणसपदा यश: ।
समुन्नयन्भूतिमनार्यसगमाद्वर विरोधोऽपि समं महात्मभि ॥८॥

८. कृतारिषड्वर्गजयेन मानवीमगम्यरूपा पदवी प्रपित्सुना ।
विभज्य नक्तदिवमस्ततन्द्रिणा वितन्यते तेन नयेन पौरुषम् ॥९॥

९ सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविन समानमानान्सुहृदश्च बन्धुभि ।
स सतत दर्शयते गतस्मय. कृताधिपत्यामिव साधु बन्धुताम् ॥१०॥

१० अनेकराजन्यरथाश्वसकुल तदीयमास्थाननिकेतनाजिरम् ।
नयत्ययुग्मच्छदगन्धिरार्द्रता भृश नृपापायनदन्तिना मद ॥१६॥

११. न तेन सज्य क्वचिदुद्यत घनु कृत न वा कोपविजिह्ममाननम् ।
गुणानुरागेण शिरोभिरुह्यते नराधिपैर्माल्यमिवास्य शासनम् ॥२१॥

१२. तदाशु कर्तु त्वयि जिह्ममुद्यत विधीयता तत्र विधेयमुत्तरम् ।
परप्रणीतानि वचासि चिन्वता प्रवृत्तिसारा खलु मादृशा गिर:" ॥२५॥

(२) द्रौपदी-सम्मतिः—

१३ निशम्य सिद्धि द्विषतामपाकृतीस्ततस्ततस्त्या विनियन्तुमक्षमा ।
नृपस्य मन्युव्यवसायदीपिनीरुदाजहार द्रुपदात्मजा गिर ॥२७॥

७. तो भी वह कुटिल (दुर्योधन) आपको जीतनेकी इच्छासे गुण-सम्पदा युक्त उज्ज्वल यश बढा रहा है। क्योंकि वैभवको ऊपर उठाते महात्माओंके साथ विरोध भी अनार्योंके ससर्गसे अच्छा है ॥८॥

८. काम-क्रोधादि छ प्रकारके शत्रुओपर जय पा मनु-उपदेशित दुर्लभ-नीतिको पानेकी इच्छासे आलस्य छोड़ वह इसीलिये तत्परतासे रात और दिनको बाटकर नीतिके साथ प्रयत्न कर रहा है ॥९॥

९ सदा निरहकार हो परिहास छोड़ वह नौकरोंके प्रति प्रिय मित्रो सा और मित्रोको भाइयो सा मानते आधिपत्य किये बन्धुओको भली प्रकार दिखलाता है ॥१०॥

१०. राजाओंके भेंट दिये छतिवनके फूलकी तरह की गन्धवाले गजोके मदसे, अनेक सामन्तो, रथो, घोडोंसे भरा उसके दरबारगृहका आँगन अत्यन्त गीला रहता है ॥१६॥

११. उसने कही भी ज्या चढाये धनुषको नही उठाया, मुखको कोपसे कुटिल नही किया। गुण-अनुरागसे राजा लोग उसकी आज्ञाको शिरपर मालाकी तरह धारण करते हैं ॥२१॥

१२. सो तुम्हारे साथ छल करनेमें तत्पर उसके साथ करने लायक प्रतिकार करें। दूसरोकी बातोको ढूढनेवाले मेरे जैसोकी बातें समाचार भर सार रखती हैं" ॥२५॥

२. द्रौपदीकी सलाह—

१३. तब शत्रुओकी सिद्धि सुनकर तत्सम्बन्धी विकारोको रोकनेमें असमर्थ द्रौपदी राजाके क्रोध और साहसको उत्तेजित करनेवाली वाणी बोली ॥२७॥

१४ भवादृशेषु प्रमदाजनोदित भवत्यधिक्षेप इवानुशासनम् ।
तथापि वक्तु व्यवसाययन्ति मा निरस्तनारीसमया दुरा-
घय ।।२८।।

१५. "व्रजन्ति ते मूढधिय पराभव भवन्ति मायाविषु ये न
मायिन ।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधानसवृतागान्निशिता
इवेषव ।।३०।।

१६ गुणानुरक्तामनुरक्तसाधन कुलाभिमानी कुलजा नरा-
घिप ।
नरैस्त्वदन्य क इवापहारयेन्मनोरमामात्मवधूमिव
श्रियम् ।।३१।।

१७ परिभ्रमल्लोहितचन्दनोचित पदातिरन्तर्गिरि रेणुरूषित ।
महारथ सत्यधनस्य मानस दुनोति नो कच्चिदय
वृकोदर ।।३४।।

१८ विजित्य य प्राज्यमयच्छदुत्तरान्कुरूनकुप्य वसु वासवोपम ।
स वल्कवासासि तवाधुना हरन्करोति मन्यु न कथ
धनजय. ।।३५।।

१९ वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती कचाचितौ विष्वगिवागजौ
गजौ ।
कथ त्वमेतौ घृतिसयमौ यमौ विलोकयन्नुत्सहसे न
वाधितुम् ।।३६।।

२० विहाय शान्ति नृप, धाम तत्पुन प्रसीद सधेहि वधाय
विद्विषाम् ।
व्रजन्ति शत्रूनवधूय नि स्पृहा शमेन सिद्धि मुनयो न
भूभृत. ।।४२।।

१४. "(यद्यपि) आप जैसोंके सामने स्त्रीजनोका कथन आज्ञा देने की तरह तिरस्कारसा (ही) है, तथापि नारीके रीतिभावको हटानेवाली मनकी व्यथायें मुझे कहनेको प्रेरित कर रही हैं ॥२८॥

१५ वे मूढवुद्धि पराजित होते हैं, जो कि मायावियोके प्रति मायावी नही होते। वैसे कवचहीन अगवालोंके भीतर तीक्ष्ण वाणोकी तरह शठ लोग घुसकर मारते हैं ॥३०॥

१६. अनुरक्त साधनोवाले कुलाभिमानी तुमसे भिन्न कौन सा राजा (होगा जो) गुणोमें अनुरक्त, पैतृक मनोरमा लक्ष्मीको अपनी वहू की तरह शत्रुओ द्वारा अपहरण करायेगा ॥३१॥

१७. लाल चन्दन (लगाने) के अभ्यासी, रथोपर चलनेवाला (आज) धूल-धूसरित, पर्वतोमें पैदल भटकता यह सत्यवादी भीमसेन क्या आपके मनको दुखित नही करता ॥३४॥

१८ इन्द्र-समान जिसने उत्तर-कुरुओको जीतकर श्रेष्ठ धन प्रदान किया। वह धनञ्जय आज तुम्हारे वल्कल-वस्त्रोको ले चलते क्या तुम्हें क्रोधयुक्त नही करता ॥३५॥

१९. वन्य गजोकी तरह वनभूमियोमें सोनेसे कठोर देहवाले, चारो ओरसे उलझे केशोवाले इन जुडवो (नकुल-सहदेव)को देखते तुम कैसे धैर्य और सयमको हटानेका उत्साह नही करते ॥३६॥

२० हे नृप, कृपया शान्ति छोड उसी तेजको शत्रुओंके वधके लिये फिर अगीकार करो। निस्पृह मुनि लोग शत्रुओको हरा शान्तिसे सिद्धि प्राप्त करते हैं, राजा नही ॥४२॥

२१ अथ क्षमामेव निरस्तविक्रमश्चिराय पर्येषि सुखस्य साधनम्।
विहाय लक्ष्मीपतिलक्ष्म कार्मुकं जटाधरः सञ्जुहुधीह पावकम्" ॥४४॥
—सर्ग. १

(३) हिमालय-वर्णनम्—

२२ अथ जयाय नु मेरुमहीभृता रभसया नु दिगन्तदिदृक्षया।
अभिययौ स हिमाचलमुच्छ्रितं समुदितं न विलंघयितुं नभः ॥१॥

२३. तपनमण्डलदीपितमेकतः सततनैशतमोवृतमन्यतः।
हसितभिन्नतमिस्रचयं पुरः शिवमिवानुगतं गजचर्मणा ॥२॥

२४. भुजगराजसितेन नभःश्रिता कनकराजिविराजितसानुना।
समुदितं निचयेन तडिद्वतीं लंघयता शरदम्बुदसंहतिम् ॥४॥

२५ मणिमयूखचयांशुकभासुराः सुरवधूपरिभुक्तलतागृहाः।
दधतमुच्चशिलान्तरगोपुराः पुर इवोदितपुष्पवना भुवः ॥५॥

२६ अविरतोज्झितवारिविपाण्डुभिर्विरहितैरचिरद्युतितेजसा।
उदितपक्षमिवारतनिःस्वनैः पृथुनितम्बविलम्बिभिरम्बुदैः ॥६॥

२७ दधतमाकरिभिः करिभिः क्षतैः समवतारसमैरसमैस्तटैः।
विविधकामहिता महिताम्भसः स्फुटसरोजवना जवना नदीः ॥७॥

२८ नवविनिद्रजपाकुसुमत्विषां द्युतिमतां निकरेण महाश्मनाम्।
विहितसान्ध्यमयूखमिव क्वचिन्निचितकाञ्चनभित्तिषु सानुषु ॥८॥

२१. यदि पराक्रम छोड चिरकाल तक क्षमाको ही सुखका साधन समझते हो, तो राज-चिन्ह धनुषको छोड़ जटाधारी हो यहा अग्निमें होम करो" ॥४४॥

—सर्ग १

छन्द—द्रुतविलबित

३. हिमालय-वर्णन—

२२. तब वह (अर्जुन) मेरुपर्वतके जीतनेके लिये देशोंके देखने की प्रबल इच्छासे, आकाश लाघनेके लिये मानो ऊपर उठे उन्नत हिमाचल में गया ॥१॥

२३ (जो था) एक भागमें सूर्यमडलसे प्रकाशित, दूसरी जगह रातके अन्धकारसे निरन्तर आच्छादित, सामने अट्टहाससे अन्धकार-समूह को नष्ट करते, गज-चर्म पहिने शकरकी तरह ॥२॥

२४ शेषनाग जैसे सफेद, गगनचुम्बी सुवर्णरेखाओंसे शोभित शिखर-वाले, बिजली सहित शरद्के मेघ-समूहको नीचा दिखाते शिखर समूहोंसे समुन्नत ॥४॥

२५. मणि-किरण-समूहरूपी वस्त्रोंसे प्रकाशमान, देवागनाओ द्वारा सेवित लतागृहोयुक्त, ऊँची शिलाओरूपी पुर-द्वारोवाली उदित, फूले पुष्प युक्त वनोवाली भूमिको नगरसा धारण किये ॥५॥

२६ निरन्तर छोडते जलसे पीली विद्युतके तेजसे युक्त, गर्जनोंसे स्थूल नितम्बोपर लटकते मेघो द्वारा मानो उगे पखोवाले ॥६॥

२७ उच्चजातीय गजो द्वारा क्षत घाटोपर समतल-असमतल तटो द्वारा, पूज्य जलवाली विविध कामनाओंके योग्य, फूले कमल-वनोवाली वेगवती नदियोके धारक ॥७॥

२८. प्रकाशमान महार्घ पत्थरोंसे नये फूले अँडहुलके पुष्पकी कान्तिवाले, कही पर खचित सुवर्ण-भित्तिवाले सानुओमें सन्ध्याकी किरण बनाये से ॥८॥

२९. पृथुकदम्बकदम्बकराजित ग्रथितमालतमालवनाकुलम् ।
लघुतुषारतुषारजलच्युत धृतसदानसदाननदन्तिनम् ॥९॥

३०. ससुरचापमनेकमणिप्रभैरपपयोविशद हिमपाण्डुभि ।
अविचल शिखरैरुपबिभ्रत ध्वनितसूचितमम्बुमुचा चयम् ॥१२॥

३१. विकचवारिरुह दधत सर सकलहसगण शुचि मानसम् ।
शिवमगात्मजया च कृतेर्ष्यया सकलहसगणं शुचिमानसम् ॥१३॥

३२ विततशीकरराशिभिरुच्छ्रितैरुपलरोधविवर्तिभिरम्बुभि· ।
दधतमुन्नतसानुसमुद्यता धृतसितव्यजनामिव जाह्नवीम् ॥१५॥

३३. रुचिरपल्लवपुष्पलतागृहैरुपलसज्जलजैर्जलराशिभि· ।
नयति सततमुत्सुकतामय धृतिमतीरुपकान्तमपि स्त्रिय· ॥१९॥

३४. अखिलमिदममुष्य गौरीगुरोस्त्रिभुवनमपि नैति मन्ये तुलाम् ।
अधिवसति सदा यदेनं जनैरविदितविभवो भवानीपति ॥२१॥

३५ कुररीगण कृतरवस्तरव कुसुमानता· सकमलं कमलम् ।
इह सिन्धवश्च वरणावरणा करिणा मुदे सनलदानलदा ॥२५॥

३६ येनापविद्धसलिल स्फुटनागसद्मा,
देवासुरैरमृतमबुनिधिर्ममन्थे ।
व्यावर्तनैरहिपतेरयमाहिताक ,
ख व्यालिखन्निव विभाति स मन्दराद्रि ॥३०॥

२९. गुच्छेवाले स्थूल कदम्बसे शोभित गूथी माला जैसे तमालवनोंसे आकीर्ण, अल्प शीतल हिमजल बरसानेवाले, मद-युक्त सुमुख गजोको धारण किये ॥९॥

३०. नाना मणि-प्रभायुक्त हिमश्वेत शिखरो, इन्द्रधनुष-सहित निर्जल-विशद, निश्चल पर ध्वनि द्वारा सूचित मेघोंके समूहको धारण करते ॥१२॥

३१ फूले कमलो और हसो सहित निर्मल मानस सरको धारण करते, ईर्ष्या किये पार्वतीके साथ कलहयुक्त गणो सहित पवित्र मन वाले शिवको धारण किये ॥१३॥

३२ शिलाकी रोकसे लौट पडे जलो द्वारा विस्तृत उडते फुहारपुजो वाले, श्वेत व्यजन सा उन्नत सानुओपर वहती गगाको धारण किये ॥१५॥

३३ यह हिमालय रुचिर पल्लव-पुष्प-लतागृहोवाला (अपने) शोभाय-मान सरोवरो द्वारा, कान्तके समीप धैर्यवती स्त्रियोको भी निरन्तर उत्सुक करता है ॥१९॥

३४. इस गौरीके पिता (हिमालय) की समानता सारा त्रिभुवन नही कर सकता, यह मैं मानता हूँ, क्योकि लोक-अज्ञात-महिमावाले भवानी-पति सदा यहा निवास करते हैं ॥२१॥

३५ यहां कुररियाँ शब्द करती, वृक्ष फूलोंसे झुके, जल कमलयुक्त। वृक्षावृत खस-सहित अग्नि-सतापहारिणी नदिया गजोंके आनन्दके लिये है ॥२५॥

३६. दास और असुरोने जिसके द्वारा नाग-निवास अमित-जल सागरसे अमृत मथा, उस वासुकि नागके लपेटनेके चिन्हवाला, वही मन्दर-गिरि आकाशको फोडता सा दीखता है ॥३०॥

३७ अस्मिन्नगृह्यत पिनाकभृता सलील-
मावद्धवेपथुरधीरविलोचनाया ।
विन्यस्तमगलमहौषधिरीश्वराया –
स्रस्तोरगप्रतिसरेण करेण पाणि ॥३३॥

—सर्ग. ५

(४) जलक्रीडा—

३८ अथ स्फुरन्मीनविधूतपकजा विपकतीरस्खलितोर्मिसहृति. ।
पयोऽवगाढु कलहसनादिनी समाजुहावेव वधू सुरापगा ॥२७॥

३९ प्रशान्तघर्माभिभव शनैर्विवान्विलासिनीभ्य परिमृष्टपकज ।
ददौ भुजालम्बमिवात्तशीकरस्तरगमालान्तरगोचरोऽनिल ॥२८॥

४० गतै सहावै कलहसविक्रम कलत्रभारै पुलिन नितम्बिभि ।
मुखै सरोजानि च दीर्घलोचनै सुरस्त्रिय. साम्यगुणान्निरासिरे ॥२९॥

४१ विभिन्नपर्यन्तगमीनपक्तय पुरो विगाढा सखिभिर्मरुत्वत ।
कथचिदाप सुरसुन्दरीजनै सभीतिभिस्तत्प्रथम प्रपेदिरे ॥३०॥

४२. विगाढमात्रे रमणीभिरम्भसि प्रयत्नसवाहितपीवरोरुभि. ।
विभिद्यमाना विससार सारसानुदस्य तीरेषु तरंगसहति ॥३१॥

३७　यहा पिनाकधारी (शिव) ने चकित-नयना,
गौरीके मगल-महौषधि-लगे काँपते,
हाथको शिथिल सर्पके ककणयुक्त,
अपने हाथोमें लीला-सहित ग्रहण किया ।।३३।।

—सर्ग ५

४. जल-क्रीड़ा-वर्णन—

३८. तब चचल मछलियों द्वारा कपित, कमलोवाली, पकरहित तीरमें गिरती लहरियोवाली, कलहसोंसे निनादित गगाने मानो देव-वन्धुओको जल-क्रीडा के लिए बुलाया ।।२७।।

३९. प्रशान्त धूपकी बाधावाले पकजको मीजते, फुहार लिये, तरगमालाओंके मध्यमें स्थित धीरे बहते वायुने विलासिनियोको हस्तावलम्ब दिया ।।२८।।

४० अप्सराओने हाव-भावयुक्त चेष्टाओ द्वारा कलहसोकी लीलाको, नितम्बयुक्त पत्नियोंके भारोंसे तटको, दीर्घलोचनवाले मुखो द्वारा और सरोजोको, समान गुणतासे निरस्त किया ।।२९।।

४१. सामने विभिन्न ओर जानेवाली मीन-पक्तियो वाले जलको, सखियो सहित पहले प्रविष्ट भयभीत सुर-सुन्दरियोने किसी तरह अवगाहन किया ।।३०।।

४२. प्रयत्नसे सचालित स्थूल जघोवाली रमणियोने अवगाहित जलमें विखर गई तरग-पक्तिया सारसोको उडाकर तीरपर फैल गईं ।।३१।।

४३ शिलाघनैर्नाकसदामुरस्थलैर्बृहन्निवेशैश्च वधूपयोधरै.।
तटाभिनीतेन विभिन्नवीचिना रुषेव भेजे कलुषत्व-
मम्भसा ॥३२॥

४४. विधूतकेशा परिलोलितस्रज सुरागनाना प्रविलुप्त-
चन्दना ।
अतिप्रसगाद्विहितागसो मुहु प्रकम्पमीयु समया
इवोर्मय ॥३३॥

४५. विपक्षचित्तोन्मथना नखव्रणास्तिरोहिता विभ्रममण्ड-
नेन ये।
हृतस्य शेषानिव कुंकुमस्य तान्विकत्थनीयान्दधुरन्यथा
स्त्रिय ॥३४॥

४६. सरोजपत्रे नु विलीनषट्पदे विलोलदृष्टे स्विदमू विलोचने।
शिरोरुहा स्विन्नतपक्ष्मसततेर्द्विरेफवृन्द नु निशब्द-
निश्चलम् ॥३५॥

४७ अगूढहासस्फुटदन्तकेसर मुख स्विदेतद्विकसन्नु पकजम्।
इति प्रलीना नलिनीवने सखी विदाबभूवु सुचिरेण
योषित ॥३६॥

४८. प्रियेण सग्रथ्य विपक्षसनिधावुपाहिता वक्षसि पीवरस्तने।
स्रज न काचिद्विजहौ जलाविला वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न
वस्तुनि ॥३७॥

४९ असशय न्यस्तमुपान्तरक्तता यदेव रोद्धु रमणीभिरजनम्।
हृतेऽपि तस्मिन्सलिलेन शुक्लता निरास रागो नयनेषु
न श्रियम् ॥३८॥

५०. विपत्रलेखा निरलक्तकाधरा निरजनाक्षीरपि बिभ्रती
श्रियम्।
निरीक्ष्य रामा वुवुधे नभश्चरैरलकृत तद्वपुषैव मण्ड-
नम् ॥४०॥

४३ स्वर्ग-वासियोंके शिला-तुल्य कठिन वक्षस्थलो, और अतिस्थूल वधुओंके स्तनो द्वारा, तटपर ढकेले गये टूटी लहरोवाले जलने मानो क्रोधसे मलिनता धारण की ॥३२॥

४४ केश उलझाने वाली माला डुलाने, चन्दन मिटाने के अतिप्रसग से, देवागनाओका अपराध किये सी तरगें भय सहित वारवार काप रही थी ॥३३॥

४५ सोतोंके चित्तको व्यथित करनेवाले नखक्षतको, सौन्दर्य-मण्डनको, धुल गये केसरके श्लाघनीय अवशेषोकी तरह स्त्रियोने उलटे धारण किया ॥३४॥

४६ चचलनयनीके नेत्र मानो भ्रमरो से लीन कमलपत्र हैं, झुके पलको वालीके केश मानो नीरव निश्चल भवरोंके झुण्ड हैं ॥३५॥

४७. स्पष्ट हाससे प्रकट दन्तरूपी केसरवाला मुख नही, (वल्कि) फूल कमल है। इस प्रकार कमलिनीवनमें छिपी सखीको स्त्रिया देरतक देखती रही ॥३६॥

४८. किसी ललनाने प्रियकी गूथी, सोतोंके स्थूल स्तनवाले वक्षस्थल पर रक्खी, जलसे मलिन, मालाको नही छोड़ा, क्योकि गुण प्रेममें वसते हैं, वस्तुमें नही ॥३७॥

४९ रमणियोने जो अजन डाला था, सो निस्सशय आंखके दोनो कोरोपर लालिमा लगानेके लिये ही। उसके जलसे धुल जाने पर रागने भी नयनोकी सफेदीको हटाया, न कि शोभाको ॥३८॥

५० खौर विना, अधरराग-रहित ओठोवाली, अजनहीन आखोवाली सोहती, ललनाओको देखकर सुरोने उनके शरीरोंसे ही आभूषण को अलंकृत जाना ॥४०॥

५१. शुभानना.: साम्बुरुहेषु भीरवो विलोलहाराश्चलेफन-
पङ्क्तिषु।
नितान्तगौर्यो हृतकुङ्कुमेष्वश न लेभिरे ता परभाग-
मूर्मिषु ।।४२।।

५२. ह्रदाम्भसि व्यस्तवधूकराहते रव मृदगध्वनिधीरमुज्झति।
मुहु स्तनैस्तालसम समाददे मनोरम नृत्यमिव प्रवेपितम्
।।४३।।

५३. श्रिया हसद्भि कमलानि सस्मितैरलङ्कृताम्बु प्रतिमागतै-
र्मुखै ।
कृतानुकूल्या सुरराजयोषिता प्रसादसाफल्यमवाप जान्हवी
।।४४।।

५४ परिस्फुरन्मीनविघट्टितोरव सुरागनास्त्रासविलोलदृष्टय
उपाययु कम्पितपाणिपल्लवा सखीजनस्यापि विलोकनी-
यताम् ।।४५।।

५५. भयादिवाश्लिष्य झषाहतेऽम्भसि प्रिय मुदा नन्दयतिस्म
मानिनी।
अकृत्रिमप्रेमरसाहितैर्मनो हरन्ति रामा कृतकैरपीहितै
।।४६।।

५६. तिरोहितान्तानि नितान्तमाकुलैरपा विगाहादलकै प्रसा-
रिभि ।
ययुर्वधूना वदनानि तुल्यता द्विरेफवृन्दान्तरितै सरोरुहै
।।४७।।

५७ करौ धुनाना नव पल्लवाकृती पयस्यगाधे किल जातसभ्रमा।
सखीषु निर्वाच्यमधाष्ट्र्यदूषित प्रियागसश्लेषमवाप
मानिनी ।।४८।।

५१. सुमुखी चचल-हारवाली अत्यत गौरी भीरु स्त्रियो ने चचल फन-पक्तियोवाली, क्रमयुक्त फूल वहाती लहरो में तृप्ति नही प्राप्त की। ।।४२।।

५२ वहुओ के फैलाये हाथो द्वारा ताडित सरोवर के जल में मृदंग सी गभीर ध्वनि छोडने पर क्षण भर स्तनो ने ताल के साथ मनोरम नृत्यकी तरह कपन शुरू किया।।४३।।

५३ अपनी शोभा-सहित मुस्कुराहट से कमलो पर हंसती, प्रतिविंवित मुखो द्वारा शोभित जलवाली, अनुकूल वनाई गंगा, देवराज की स्त्रियो की प्रसन्नता को पाने में सफल हुई।।४४।।

५४. चारो ओर डोलती मछलियो से घर्षित जघोवाली, भय से चचल नेत्रोवाली, कापते पाणिपल्लवोवाली, देवागनायें अपनी सखियो के लिये भी दर्शनीय हो गईं।।४५।।

५५ मछली द्वारा ताडित पानी में भयभीत मानिनी, मद से प्रिय को आलिगन कर आनंदित करती थी, ललनायें अकृत्रिम प्रेमरस-युक्त कृत्रिम चेष्टाओ से भी मन हर लेती हैं।।४६।।

५६ जल के अवगाहन से अत्यंत अस्त-व्यस्त विखरी-फैली अलको से ढके छोरवाले, ववुओ के मुख, मेघो में छिपे कमलो से मालूम होते थे।।४७।।

५७ अगाव जल में भयभीत नवपल्लव समान दोनो हाय कपाती मानिनी ने सखियो के वीच कथनीय घृष्टता से अदूषित प्रिय का अग-आलिंगन प्राप्त किया।।४८।।

५८. प्रियै सलील करवारिवारित प्रवृद्धनि श्वासविकम्पित-
स्तन ।
सविभ्रमाधूतकराग्रपल्लवो यथार्थतामाप विलासिनीजन
॥४९॥

५९ उदस्य धैर्यं दयितेन सादर प्रसादिताया करवारिवारितम् ।
मुख निमीलन्नयन नतभ्रुव श्रिय सपत्नीवदनादिवाददे
॥५०॥

६०. निरजने साधिविलोलिक दृशावयावक वेपथुरोष्ठपल्लवम् ।
नतभ्रुवो मण्डयति स्म विग्रहे बलिक्रिया चातिलक तदा-
स्पदम् ॥५२॥

—सर्गः ८

(५) चन्द्रिका—

६१. रजिता नु विविधास्तरुशैला नामित नु गगन स्थगित नु ।
पूरित नु विषमेषुधरित्री सहृता नु ककुभस्तिमिरेण ॥१५॥

६२. रात्रिरागमलिनानि विकास पकजानि रहयन्ति विहाय ।
स्पष्टतारकमियाय नभ श्रीर्वस्तुमिच्छति निरापदि सर्व
॥१६॥

६३. व्यानशे शशधरेण विमुक्तकेतकीकुसुमकेसरपाण्डु ।
चूर्णमुष्टिरिव लम्भितकान्तिर्वासवस्य दिशमशुसमूह. ।१७।

६४ उज्झती शुचमिवाशु तमिस्रामन्तिक व्रजति तारकराजे ।
दिक्प्रसादगुणमण्डनमूहे रश्मिहासविशद मुखमैन्द्री ॥१८॥

६५ नीलनीरजनिभे हिमगौर शैलरुद्धवपुष सितरश्मे. ।
खे रराज निपतत्करजाल वारिधे पयसि गागमिवाम्भ
॥१९॥

५८ लीला से प्रिया के हाथ के जल द्वारा रोकी, वरावर सास लेने से कंपित स्तनोवाली, सुदरता से हिलते करपल्लवयुक्त विलासिनियो ने यथार्थता प्राप्त की ।।४६।।

५६ प्रिय ने धैर्य को हटा आदर-सहित प्रसन्न की हुई, झुकी भौंहोवाली (प्रिया) के अजलि-जल से निवारित, मुदे नयनवाले मुख को मानो सौत के मुह से शोभा को ले लिया ।।५०।।

६० अजन-रहित लोचन में तिरछी नजर सोहती थी, विना अधरराग के अधरपल्लव को कपन सोहाता था, तिलक-रहित उसके ललाट को रेखाकन मडित करता था ।।५२।।

—सर्ग ८

५. चाँदनी-रात—

६१ अधकारने नाना वृक्षो और पर्वतोको अपने रगसे रग दिया, गगनको ढंककर मानो झुका दिया। पृथ्वी को ऊचे-नीचे स्थानोमें भर दिया, दिशाओको मानो लुप्त कर दिया ।।१५।।

६२ रात्रिके रंगसे मुरझाये पकज खिलना छोडकर रह गये। आकाश स्पष्ट तारो से युक्त हुआ। सभी निरापद स्थानमें रहना चाहते हैं ।।१६।।

६३ चन्द्र द्वारा फेंका केवडे के फूलके केसर सा श्वेत किरण-समूह मानो चूर्णमुष्टिसा पूर्व दिशा में व्याप्त हुआ ।।१७।।

६४ वह पूर्व दिशा तारापतिके पास जाती, अधकारको विरह-शोककी तरह जल्दी छोडती, प्रसन्नता गुणरूपी मुडनसे युक्त, किरणोके हाससे विशद मुख को धारण करती थी ।।१८।।

६५ शैल (उदयाचल) में छिपे विंववाले चन्द्रकी हिम-श्वेत चादनी नीलकमलसे आकाशमें फैलती, समुद्रके जलमें गंगाके पानीके मिलनेकी तरह शोभा दे रही थी ।।१९।।

६६. द्या निरुन्धदतिनीलघनाभ ध्वान्तमुद्यतकरेण पुरस्तात्।
क्षिप्यमाणमसितेतरभासा शंभुनेव करिचर्म चकासे ॥२०॥
६७ अन्तिकान्तिकगतेन्दुविसृष्टे जिह्मता जहति दीधितिजाले।
नि सृतस्तिमिरभारनिरोधादुच्छ्वसन्निव रराज दिगन्त ।२१
६८. दीपयन्नथ नभ. किरणौघै कुकुमारुणपयोधरगौर।
हेमकुम्भ इव पूर्वपयोधेरुन्ममज्ज शनकैस्तुहिनाशु ॥२३॥
६९ उद्गतेन्दुमवभिन्नतमिस्रा पश्यति स्म रजनीमवितृप्त ।
व्यशुकस्फुटमुखीमतिजिह्मा व्रीडया नववधूमिव लोकः ॥२४॥
७०. न प्रसादमुचित गमिता द्यौर्नोद्धत तिमिरमद्रिवनेभ्य ।
दिङ्मुखेषु च धाम विकीर्णं भूषितैव रजनीहिमभासा ॥२५॥
७१. मानिनीजनविलोचनपातानुष्णबाष्पकलुषान्प्रतिगृह्णन्।
मन्दमन्दमुदित प्रययौ ख भीतभीत इव शीतमयूख ॥२६॥
ेरित शशधरेण करौघ सहतान्यपि नुनोद तमासि।

६६. आकाशको आच्छादित करते अतिनील घन जैसे अधकार, चन्द्रमाके उगते किरणो द्वारा, प्राचीमें फेंका जाता, शकरके द्वारा फेंके गज-चर्म सा प्रतीत होता था ॥२०॥

६७ अत्यन्त समीप पहुचे चन्द्रमा द्वारा छोडे किरणोके सकोच छोड़ने पर अधकारके भार के हटने से निकली दिशायें सास लेती सी सोहती थी ॥२१॥

६८ तव किरणो से आकाशको प्रकाशित करते केसरसे अरुण पयोधरयुक्त गौरवर्ण हिमाशु,पूर्वसागरसे मानो सुवर्ण-कलशसा धीरे-धीरे ऊपर उठा ॥२३॥

६९ चन्द्रमावाली, नष्ट-अधकारवाली रजनीको, लोग अशुक-रहित खुले मुखवाली, लज्जासे अति सकुचाती नववधूकी तरह अतृप्त हो देख रहे थे ॥२४॥

७० चन्द्रमा द्वारा आकाशको उचित स्वच्छता नही प्राप्त हुई, पर्वतो-वनोंसे तिमिर नही हटा,और दिशाओमें तेज फैला, (जिससे) रजनी चन्द्र द्वारा अलंकृत ही हुई ॥२५॥

७१ उष्ण अश्रुसे मलिन मानिनियोके आमुओको स्वीकार करते, भयभीत सा हिमाशु धीरे-धीरे उगकर आकाशमें प्राप्त हुआ ॥२६॥

७२ चन्द्र द्वारा प्रेरित किरणोने सघन अधकारको भी, मन्दर से मथित क्षीरसागर की तरह ऊचे वृक्षोवाले सघन वनोसे दूर किया ॥२८॥

७३ आतपमें वधूके साथ संतुष्ट रात्रि-विरही चकवा पक्षीने हिमाशुकी किरणें नही सहन की—दुखित मनमें सव असह्य लगता है ॥३०॥

७४ रजकण वाहक फूलते कुमुदोके गध फेंकते तो यामिनीके वायुने सोये पक्षियोवाली वनालियोको थोडा कपित किया ॥३१॥

—सर्ग ९

६. युधिष्ठिरका गम्भीर उद्गार—

७५. शत्रुकी सकल प्रकट चालोको जानते वाणीके विस्तारपूर्वक तत्त्व-सग्रही अर्थसक्षेप, कालको प्रधान साधन माननेवाले प्रशातचेष्टा-युक्त युधिष्ठिर वोले ॥२॥

७६. विविक्तवर्णाभरणा सुखश्रुति प्रसादयन्ती हृदयान्यपि द्विषाम् ।
प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणां प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती ॥३॥

७७ भवन्ति ते सभ्यतमा विपश्चिता मनोगत वाचि निवेशयन्ति ये ।
नयन्ति तेष्वप्युपपन्ननैपुणा गभीरमर्थं कतिचित्प्रकाशताम् ॥४॥

७८ स्तुवन्ति गुर्वीमभिधेयसपद विशुद्धिमुक्तेरपरे विपश्चितः ।
प्रागल्भमात्मा धुरि धुर्य, वाग्मिना वनेचरेणापि सताधिरोपितः ॥६॥

७९. विरोधि सिद्धेरिति कर्तुमुद्यत स वारित किं भवता न भूपति. ।
हिते नियोज्य खलु भूतिमिच्छता सहार्थनाशेन नृपोऽनुजीविना ॥८॥

८० यदि प्रमाणीकृतमार्यचेष्टित किमित्यदोषेण तिरस्कृता वयम् ।
अयातपूर्वा परिवादगोचर सता हि वाणी गुणमेव भाषते ॥११॥

८१ वनाश्रया कस्य मृगा परिग्रहा श्रृणोति यस्तान्प्रसभेन तस्य ते ।
प्रहीयतामत्र नृपेण मानिता न मानिता चास्ति भवन्ति च श्रिय ॥१३॥

८२ न वर्त्म कस्मैचिदपि प्रदीयतामिति व्रत मे विहित महर्षिणा ।
जिघासुरस्मान्निहतो मया मृगो व्रजाभिरक्षा हि सतामलक्रिया ॥१४॥

७६. स्पष्ट-वर्णाभरणा, कर्णसुखा, शत्रुओंके हृदयोको भी प्रसन्न करनेवाली स्पष्ट गम्भीर पदोवाली वाणी न-पुण्यकर्माकी नही होती ।।३।।

७७ वे विद्वानोके बीच अति सभ्य हैं, जो मनके भीतरके अर्थको वाणीमें प्रवेश कराते हैं। उनमें भी निपुण कुछ (लोग) गम्भीर अर्थको (वाणीसे) प्रकाशित करते है ।।४।।

७८ हे धुरधर, कोई भारी अर्थरूपी सपत्ति को प्रशसते हैं, दूसरे विद्वान् वचन की शुद्धताको, तुमने वनचर होते भी अपनेको वाग्मियोमें अग्रणी सावित किया ।।६।।

७९ "सिद्धिका विरोधी है" यह सोच कर्म करनेके लिये उद्यत राजाको आपने क्यो नही रोका ? अभिवृद्धि-इच्छुक अर्थ-नाश में सहभागी नौकरको चाहिये कि राजाको हितमें नियुक्त करे ।।८।।

८० यदि श्रेष्ठोके चरित्रको माना, तो हम निर्दोष तिरस्कृत हुये, इससे क्या ? निन्दामें कभी न प्रवृत्त सत्पुरुषोकी वाणी गुणको ही कहती है ।।११।।

८१ वनमें रहनेवाले वे मृग किसकी प्रजा हैं, जो कि उन्हें वलपूर्वक (पुरुष) मारता है। नृपको अभिमान छोडना चाहिये, जिसे ममता नही है, (उसकी ही) लक्ष्मिया होती हैं ।।१३।।

८२ "किसीको मौका नही दो" यह व्रत महर्षि (व्यास) ने मेरे लिये विहित किया। इसी कारण हिंस्र मृगको मैंने मारा, व्रतकी रक्षा करना सत्पुरुषो की शोभा है ।।१४।।

८३. यदात्थ काम भवता स याच्यतामिति क्षम नैतदनल्पचेतसाम्।
कथं प्रसह्याहरणैषिणा प्रिया परावनत्या मलिनीकृता श्रिय ॥१८॥

८४ वय क्व वर्णाश्रमरक्षणोचिता क्व जातिहीना मृगजीवितच्छिद ।
सहापकृष्टैर्महता न सगत भवन्ति गोमायुसखा न दन्तिन ॥२२॥
—सर्ग. १४

२४. विशाखदत्त (५५० ई०)

संस्कृतके ऐतिहासिक नाटकोंका एक अति सुन्दर नमूना "मुद्राराक्षस" है, जिसके रचयिता विशाखदत्त हैं। विशाखदत्त सम्भवतः स्वय सामन्त थे, और प्राकृत कालके अन्त समयमें उत्तरी भारतके किसी स्थानमें पैदा हुए थे। इनके कालके बारेमें मतभेद है। कुछ विद्वान् इन्हें कालिदास और चन्द्रगुप्तका समकालीन मानते हैं, दूसरे नवीं शताब्दीमें खींचते हैं। "मुद्राराक्षस" की प्रस्तावनाके एक श्लोकमें जिस चन्द्रग्रहणका उल्लेख है, उसे याकोबीने

मुद्राराक्षसम्

(१) कौमुदीमहोत्सवनिषेधः—

(तत प्रविशति कचुकी)

१ कञ्चुकी—

रूपादीन् विषयान् निरूप्य करणै यैरात्मलाभस्त्वया,
लब्धस्तेष्वपि चक्षुरादिषु हता स्वार्थावबोधक्रिया ।
अगानि प्रसभ त्यजन्ति पटुतामाज्ञाविधेयानि मे ।
न्यस्त मूर्ध्नि पद तवैव जरया, तृष्णे ! मुधा माद्यसि[1] ॥१॥

---

१. शार्दूलविक्रीडितम् ।

८३ "उस राजा से यथेच्छ आप मागें" यह जो कहा, वह बुद्धिमानोके लिये उचित नहीं। बलात् हरनेके इच्छुकोको दूसरेके सामने झुकनेसे मलिन हुई लक्ष्मिया कैसे प्रिय हो सकती है ।।१८।।

८४ वर्ण-आश्रमके रक्षक कहा हम राजा और कहा मृगोको मारनेवाले नीच व्याधे। निकृष्टोके साथ उत्कृष्टोकी सगति नही हो सकती, गज सियारोके मित्र नही होते ।।२२।।

—सर्ग १४

२४. विशाखदत्त (५५० ई०)

२ दिसम्बर ८६० ई० का माना है, और इसके कारण उन्हें नवीं सदीका ठहराया है।

"मुद्राराक्षस"के अतिरिक्त "देवीचन्द्रगुप्त" नामक एक दूसरे नाटककी भी रचना इन्होने की थी, जिसका खण्डित अंश मिलता है, और जिसमें समुद्रगुप्तके बाद रामगुप्तको हटाकर चन्द्रगुप्तके गद्दीपर बैठनेका उल्लेख है।

मुद्राराक्षस

१. कौमुदी महोत्सवका निषेध—

(कचुकी प्रवेश करता है)

१ कचुकी—

रूप आदि विषयोको जिन इन्द्रियोसे निरूपण करके तुमने आत्मलाभ किया, उन नेत्र आदिमें भी अपने अर्थके जाननेकी शक्ति नष्ट हो गई। आज्ञा-वशवर्ती मेरे अंग सहसा पटुताको छोड रहे हैं, हे तृष्णे, जराने तेरे सिरपर पैर रख दिया, तू व्यर्थ बढ रही है ।।१।।

२ (परिक्रम्य आकाशे) भो भो सुगागप्रासादाधिकृता पुरुषा, सुगृहीतनामा देव चन्द्रगुप्तो व समाज्ञापयति। यथा—"प्रवृत्तकौमुदीमहोत्सवरमणीयतर कुसुमपुर अवलोकयितु इच्छामि, तत् सस्क्रियन्ताम् अस्मद्दर्शनयोग्या सुगागप्रासादस्य उपरि भूमय" इति। तत् किं चिरयन्ति भवन्त ? (आकाशे आकर्ण्य) किं ब्रूथ "आर्य ! किम् अविदित एवाय देवस्य चन्द्रगुप्तस्य कौमुदीमहोत्सवप्रतिषेध" इति ? आ दैवोपहता, किमनेन व प्राणहरेण कथोद्घातेन ? शीघ्र इदानीम्,—

आलिगन्तु गृहीतधूपसुरभीन् स्तम्भान् पिनद्धस्रज,
सम्पूर्णेन्दुमयूखसहतिरुचा सच्चामराणा श्रिय ।
सिंहाकासनधारणाच्च सुचिर सजातमूर्च्छामिव,
क्षिप्र चन्दनवारिणा सकुसुम सेकोऽनुगृह्णातु गाम् ।।२।।[1]

३ (आकाशे) किं कथयन्ति भवन्त ? "एते त्वरामहे" इति ? भद्रा, त्वरध्वम्, अयमागत एव देव चन्द्रगुप्त । य एष —

सुविश्रब्धैरगै पथिषु विषमेष्वप्यचलता,
चिर धुर्येणोढा गुरुरपि भुवो याऽस्य गुरुणा।
धुर तामेवोच्चैर्नववयसि वोढु व्यवसितो,
मनस्वी दम्यत्वात् स्खलति न च, दु ख वहति च ।।३।।[2]

(नेपथ्ये)। इत इतो देव ।

(तत प्रविशति राजा प्रतीहारी च)

४. राजा—(स्वगतम्) राज्य हि नाम राजधर्मानुवृत्तिपरतन्त्रस्य भूपते महदप्रीतिस्थानम्। यत —

परार्थानुष्ठाने जडयति नृप स्वार्थपरता,
परित्यक्तान्यार्थो नियतमयथार्थ क्षितिपति ।
परार्थैश्चेत् स्वार्थादभिमततरो, हन्त परवान्,
परायत्त प्रीतै कथमिव रस वेत्तु पुरुष ।।४।।

---

१. हरिणी। २. शिखरिणी।

२ (परिक्रमा कर आकाशकी ओर) हे हे सुगांग महलके अफसर-पुरुषो, सुगृहीतनाम महाराज **चन्द्रगुप्त** तुम्हें आज्ञा देते हैं, कि "हे रहे इस कौमुदी महोत्सवसे मैं **पटना**को अधिक रमणीय देखना चाहता हूँ, सो **सुगांग-प्रासाद**की ऊपरवाली मंजिलो को हमारे देखने लायक ठीकठीक करो।" सो आप क्यो देर कर रहे हैं? (आकाशकी ओर सुनकर) क्या कहते हो—"आर्य, क्या यह नही मालूम है, कि महाराज चन्द्रगुप्तके **कौमुदी-महोत्सव**का निषेध हो गया है।" आह भाग्यके मारे, तुम्हारे इस प्राणहारक बात कहनेका क्या मतलब? जल्दी, अब—धूप सुगंध लिये माला बंधे स्तम्भोका आलिंगन पूर्ण-चन्द्रकी कान्तिवाले अच्छे चवरोकी शोभायें करें। सिंहासनके धारणसे बहुत चिरसे मानो मूर्छित सी पृथिवीको जल्दी कुसुम-सहित चन्दन-जलका अभिषेक अनुगृहीत करें।।२।।

३ (आकाशकी ओर) आप क्या कह रहे हैं—"यह हम जल्दी कर रहे हैं?" भद्रजनो, जल्दी करो, यह महाराज चन्द्रगुप्त आ ही गये। जो कि यह—

विषम मार्गों में भी सुविश्वस्त अगोंसे न विचलित होते, इसके पिताने पृथिवीके भारी जूयेको चिरकाल तक वहन किया, उसी बड़े जूयेको जवानीमे उठानेके लिये उद्यत, मनस्वी (चन्द्रगुप्त) विनम्र होने से न खिन्न होता है, और न दुखी ।।३।।

(पर्देमें) इधर-इधर महाराज (राजा और अंगरक्षक प्रवेश करते हैं।)

४ राजा—(अपने आपसे) राजधर्मके अनुवर्तनमे परवश भूपतिके लिये राज्य तो सचमुच बडी अप्रिय वस्तु है। क्योकि—

पराये अर्थके करनेमें स्वार्थपरता राजाको निश्चेष्ट करती है, दूसरे अर्थोंको छोड वह निश्चय ही गलत पृथिवीपति है। अपने स्वार्थसे परार्थ यदि अधिक पसन्द है, तो अहो परवश, पराधीन वह प्रीति-रसको कैसे जान सकता है।।४।।

५ अपि च। दुराराध्या हि राजलक्ष्मी आत्मवद्भि अपि राजभि । कुत —

तीक्ष्णादुद्विजते, मृदौ परिभवत्तासान्न सन्तिष्ठते,
मूर्खान् द्वेष्टि न गच्छति प्रणयितामत्यन्तविद्वत्स्वपि ।
शूरेभ्योऽप्यधिक बिभेत्युपहसत्येकान्तभीरूनहो ।
श्रीर्लब्धप्रसरेव वैशवनिता दु खोपचर्या भृशम् ॥५॥[1]

६ अन्यच्च। कृतककलह कृत्वा, स्वतन्त्रेण त्वया कचित् काल व्यवहर्त्तव्यमित्यार्योपदेश । स च कथमपि मया पातकम् इवाभ्युपगत ।अथवा शश्वद् आर्योपदेशसस्क्रियमाणमतय सदा एव अस्वतन्त्रा वयम्। कुत ?—

इह हि रचयन् साध्वी शिष्य क्रिया न निवार्य्यते'
त्यजति तु यदा मार्गं मोहात् तदा गुरुरकुश
विनयरुचयस्तस्मात् सन्त सदैव निरकुशा.,
परतरमत स्वातन्त्र्येभ्यो वय हि पराङ्मुखा ॥६॥[2]

(प्रकाशम्) आर्य वैहीनरे, सुगागप्रसादमार्गं आदेशय।

कचुकी—इत इतो देव ।

७ राजा—(परिक्रामति) ।

कचुकी—(परिक्रम्य) अय सुगागप्रासाद, शनै आरोढुमर्हति आर्य ।

८. राजा—(नाट्येन आरुह्य दिशोऽवलोक्य) अहो, शरत्समय-सम्भृतशोभाविभूतीना दिशा' अतिरमणीयता । कुत ?—

शनै शान्ता भूता सितजलधरच्छेदपुलिना,
समन्तादाकीर्णा कलविरुचिभि सारसकुलै.।
चिता. चित्राकारैर्निशि विकचनक्षत्रकुमुद,
नभस्त स्यन्दन्ते सीरित इव दीर्घा दश दिश[3]॥७॥

---

१. स्रग्धरा। २ वसन्ततिलका। ३. शिखरिणी।

५ और भी, सयमी राजाओ के लिये राजलक्ष्मीका सेवन दुष्कर हैं। क्योंकि (वह) उग्र पुरुष से उद्विग्न होती है, अपमानके डरसे कोमल के पास नही ठहरती, मूर्खोंसे द्वेष करती, अत्यन्त विद्वानोकी भी प्रेमिका नही होती। शूरोंसे भी अधिक डरती है, बिल्कुल डरपोकोसे अहो उपहास करती है, हाथ आई वेश्या स्त्री सी लक्ष्मी का सेवन बहुत दुष्कर है॥५॥

६. और भी, बनावटी कलह करके कुछ काल तक स्वतन्त्र व्यवहार करना यह आर्य **चाणक्य** का उपदेश है। और उसे जैसे-कैसे भी मैंने पापकी तरह स्वीकार किया। अथवा आर्यके उपदेशका अनुकरण करनेकी मतिवाले हम सदा ही परतन्त्र हैं, क्योंकि—
इस दुनिया में अच्छा काम करते शिष्य को रोका नही जा सकता, जब मोहसे वह मार्गको छोड़ता है, तब गुरु अकुश (बनता) है। इसलिये विनयमें रुचिवाले सत सदा ही निरकुश हैं। अतः हम स्वतत्रता से बहुत ही दूर हैं॥६॥
(प्रकट) आर्य वैहीनरि, सुगांग-प्रासादका मार्ग बतलाइये।
कचुकी—इधर-इधर महाराज।

७. राजा—(परिक्रमा करता है)
कचुकी—(परिक्रमा करके) यह सुगाग-प्रासाद है, आर्य धीरेसे चढें।

८ राजा—(अभिनयपूर्वक चढकर, चारो ओर देखकर) अहो! शरत्काल द्वारा प्रदत्त शोभा-सपत्तिवाली दिशाओकी अतिरमणीयता। क्योंकि—
सफेद मेघखडोके तटवाली, चारो ओर मधुर शब्दवाले सारसोंसे आकीर्ण, रातमें विचित्र आकारवाले फूल तारारूपी कमलोसे सचित लम्बी नदियो सी आकाशसे दसों दिशायें बह रही हैं॥७॥

९ अपि च—

अपामुद्वृत्ताना निजमुपदिशन्त्या स्थितिपद,
दधत्या शालीनामवनतिमुदारे सति फले।
मयूराणामुग्र शरविषमिव हरन्त्या मदमहो,
कृत कृत्स्नस्याय विनय इव लोकस्य शरदा[1]॥८॥

१० अपि च—

भर्त्तुस्तथा कलुषिता बहुवल्लभस्य,
मार्गे कथचिदवतार्य तनूभवन्तीम्।
सर्वात्मना रतिकथाचतुरेव दूती,
गगा शरन्नयति सिन्धुपर्ति प्रसन्नाम्[2]॥९॥

(समन्तात् नाट्येन अवलोक्य) अये, कथ अप्रवृत्त-कौमुदीमहोत्सव कुसुमपुर पश्यामि ? आर्य वैहीनरे, अथ त्वया अस्मद्वचनाद् आघोषित कुसुमपुरे कौमुदीमहोत्सव ?

कचुकी—देव, अथ किम्। आघोषितो देवस्य आज्ञया कुसुमपुरे कौमुदीमहोत्सव।

राजा—आर्य, तदेव किं न परिगृहीत अस्मद्वचन पौर-जनेन ?

११ कचुकी—(कर्णौ पिधाय) देव, शान्त पाप, शान्त पाप, पृथिव्या अस्खलितपूर्व देवस्य शासन, कथ पौरेषु स्खलितु-मर्हति ?

१२ राजा—आर्य वैहीनरे, तत् कथ अप्रवृत्तकौमुदीमहो-त्सव अधुनाऽपि कुसुमपुर पश्यामि ? पश्य,—

धूर्त्तैरन्वीयमाना स्फुटचतुरकथाकोविदैर्वेशनार्य्यो,
नालकुर्वन्ति रथ्या पृथुजघनभराक्रान्तिमन्दै प्रयातै।
अन्योन्य स्पर्द्धमाना न च गृहविभवै स्वामिनो मुक्तशका,
साक स्त्रीभिर्भजन्ते विधिमभिलषित पार्वणपौरमुख्या[3]।१०।

---

१. शिखरिणी। २ प्रहर्षिणी। ३ शार्दूल विक्रीडितम्।

९ और भी—

भवराते जलोको अपनी मर्यादाका उपदेश करती, उदार फल होनेपर धानोके झुकनेको धारती, मोरोके उग्र शर विष जैसे मदको हरण करती, अहो, शरद्‌ने इस सारे लोकको विनय (युक्त) सा कर दिया ।।८।।

१० और भी—

वहु पत्नीवाले स्वामी की जैसी कलुपित मार्ग पर किसी तरह क्षीण होती, रतिकी कथामें सर्वथा चतुर दूतीसी, शरद् स्वच्छ गगाको सागरके पास ले जा रही है ।।९।।

(चारो ओर अभिनय के साथ देखकर) अये, पटनाको कौमुदी-महोत्सव-रहित देख रहा हूँ ? आर्य वैहीनरि, क्या हमारे वचनसे कुसुमपुरमें तुमने कौमुदी-महोत्सवकी घोषणा की ?

११ कचुकी—(दोनो कानोको ढाककर) महाराज, शान्त पाप, शान्त पापं (घोर अनर्थ), पृथिवीपर महाराजका शासन कभी वाधित नही हुआ, वह कैसे नागरिकोमें वाधित हो सकता है ?

१२ राजा—आर्य वैहीनरि, तो अव भी कुसुमपुरको कौमुदी-महोत्सवके, विना क्यो देख रहा हूँ ? देखो—

धूर्तो द्वारा, स्पष्ट कथा-कोविदो द्वारा लिवाई जाती वेश्यायें स्थूल नितम्वके वोझसे मन्द गतिके साथ सडकोंको अलकृत नही कर रही हैं। नागरिकोके मुख्य गृह-विभवमें एक-दूसरेसे होड करते वेपर्वाह स्वामी (अपनी) स्त्रियोंके साथ पौर्णमासी पर्वकी इच्छित विधिका सेवन नही कर रहे है ।।१०।।

१३. कचुकी—देव, एवमेतत्।
राजा—किमेतत् ?
कचुकी—देव, अत इदम्—

१४. राजा—आर्य, स्फुटमभिधीयताम्।
कचुकी—देव, प्रतिषिद्ध कौमुदीमहोत्सव ।
राजा—(सक्रोधम्)। आ केन ?

१५. कचुकी—न अत. पर अस्माभिर्देवो विज्ञापयितु शक्यते।
राजा—न खलु आर्येण चाणक्येन अपहृत प्रेक्षकाणा अतिशयरमणीय चक्षुषो विषय. ?

१६ कचुकी—देव, कोऽन्यो जीवितुकामो देवस्य शासन उल्लघयिष्यिति ?

राजा—शोणोत्तरे, उपवेष्टु इच्छामि ।

१७. प्रतीहारी—देव, एतत् सिंहासन, उपविशतु देव ।

राजा—(नाट्येन उपविश्य) आर्य वैहीनरे, आर्यचाणक्यं द्रष्टु इच्छामि ।

कचुकी—यद् आज्ञापयति देव. (इति निष्क्रान्त.)
(ततः प्रविशति आसनस्थ स्वभवनगत. कोपानुविद्ध
चिन्ता नाटयन् चाणक्य.)

(२) चाणक्य-प्रकृति :—

१८. चाणक्य—(आत्मगत) कथ स्पर्द्धते मया सह दुरात्मा राक्षसहतक ? कुत ?—

कृतागा कौटिल्यो भुजग इव निर्याय नगरात्,
यथा नन्द हत्वा नृपतिमकरोत् मौर्यवृषलम् ।
तथाऽह मौर्येन्दो श्रियमपहरामीति कृतधी,
प्रभावं मद्वुद्धेरतिशयितुमेष व्यवसित. ॥११॥

१३ कचुकी—महाराज, यह ऐसा ही है।

राजा—यह क्या बात है?

कचुकी—महाराज, इसलिये यह—

राजा—आर्य,

१४ राजा—साफ कहिये।

कचुकी—महाराज, कौमुदी महोत्सवका निषेध कर दिया है।

राजा—(क्रोध-पूर्वक) आह, किसने?

१५ कचुकी—इससे आगे हम महाराजके सामने अर्ज नही कर सकते।

राजा—आर्य **चाणक्य**ने तो दर्शकोकी आखोको अति रमणीय दृश्यसे वचित नही किया?

१६ कचुकी—महाराज, जीनेकी इच्छावाला दूसरा कौन महाराजके शासन का उल्लघन करेगा?

राजा—श्रोणोत्तरा, बैठना चाहता हूँ।

१७ प्रतीहारी—यह सिंहासन है, महाराज बैठें।

राजा—(अभिनयके साथ बैठकर) आर्य वैहीनरि, आर्य **चाणक्य**को देखना चाहता हूँ।

कचुकी—जो आज्ञा देते है महाराज (यह कह चला गया)।

(कोप-सहित, चिन्ताका अभिनय करते अपने भवनमें आसनपर स्थित चाणक्य प्रवेश करते हैं)

२. चाणक्यका स्वभाव—

१८ चाणक्य—(अपने आपसे) दुष्टात्मा राक्षस अभागा मेरे साथ क्या स्पर्धा करता है? क्योकि—

सापकी तरह नगरसे निकलकर **कौटिल्य**ने, जैसे पापी **नन्द**को मारकर **मौर्य** शूद्रको राजा बनाया। वैसे मैं भी मौर्य चन्द्रकी लक्ष्मीको हरूगा, यह सोचकर वह मेरी बुद्धिके प्रभावसे बढनेकी इच्छासे प्रयत्न-शील है॥११॥

२७ कचुकी—(भय नाटयित्वा) प्रसीदतु आर्य । स्वयमेव सुगागप्रासादशिखरगतेन देवेन अवलोकित अप्रवृत्तकौमुदी-महोत्सव कुसुमपुरम् ।

चाणक्य —आ ज्ञात, तिष्ठ तावद् भवद्भि एव मदन्तरेण प्रोत्साह्य रोषितो वृषल, कि अन्यत् ?

२८ कचुकी—(सभय तूष्णी अधोमुखस्तिष्ठति) ।

चाणक्य —अहो ! राजपरिजनस्य चाणक्यस्य उपरि विद्वेषपक्षपात । अथ क्व वृषल तिष्ठति ?

२९ कचुकी—(भय नाटयन्) आर्य, सुगागप्रसादगतेन देवेन अह आर्य्यपादमूल प्रेषित ।

चाणक्य —(उत्थाय) कचुकिन्, सुगागप्रासादमार्गं देशय ।

(३) उत्सव-निषेधकारणम्

३० कचुकी—इत इत आर्य । (इति उभौ परिक्रामत)

कचुकी—अये सुगागप्रासाद, शनै आरोढुमर्हति आर्य ।

३१ चाणक्य —(नाट्येन आरुह्य अवलोक्य च सहर्ष आत्मगतम्) अये, सिहासनमध्यास्ते वृषल । साधु साधु—

नन्दैर्वियुक्तमनपेक्षितराजवृत्तै
अध्यासित च वृषलेन वृषेण राज्ञाम् ।
सिहासन सदृशपार्थिवसगत च,
प्रीति परा प्रगुणयन्ति गुणा ममैते[1] ॥१८॥

(उपसृत्य) विजयता वृषल ।

---

१ वसन्ततिलका ।

२७ कचुकी—(भय का अभिनय कर) दया करें आर्य, सुगाग-प्रासादके शिखरपर अवस्थित महाराजाने स्वय कुसुमपुरको कौमुदी-महोत्सव रहित देखा।

चाणक्य—आ समझा, तो ठहरो। आप लोगोने ही मेरे विना प्रोत्साहित कर शूद्र को रुष्ट किया, और क्या ?

२८ कचुकी—(भयभीत नीचे मुख किये चुप रहता है)

चाणक्य—अहो, चाणक्यके ऊपर राजसेवकोका द्वेषयुक्त पक्षपात ? तो शूद्र कहा है ?

२९ कचुकी—(भयका अभिनय करके) आर्य, सुगाग-प्रासादपर स्थित महाराजने मुझे आर्यके चरणोमें भेजा।

चाणक्य—(उठकर) कचुकि, सुगाग-प्रासादका मार्ग वतलाओ।

३. उत्सव-निषेधका कारण—

३० कचुकी—इधर, इधर आर्य। (दोनो परिक्रमा करते है)

कचुकी—यह सुगाग-प्रासाद है। आर्य धीरे-धीरे चढिये।

३१ चाणक्य—(अभिनयपूर्वक चढ और देखकर हर्षपूर्वक अपने आपसे)। अये, सिहासन पर आसीन है वृषल। अच्छा-अच्छा—राजाओके कर्तव्यसे वेपर्वाह नदो द्वारा त्यक्त, श्रेष्ठ राजा वृपल द्वारा अधिष्ठित और योग्य राजा के पास गया यह सिहासन है, यह गुण मेरी परम प्रसन्नता को वढाते हैं ॥१८॥

(पास जाकर) विजयी हो वृपल।

३२ राजा—(सिंहासनादुत्थाय चाणक्यस्य पादौ गृहीत्वा) आर्य, चन्द्रगुप्त प्रणमति।

चाणक्य—(पाणौ गृहीत्वा) उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वत्स,

आ शैलेन्द्राच्छिलान्तस्खलितसुरधुनीशीकरासारशीतात्,
आ तीरान्नैकरागस्फुरितमणिरुचो दक्षिणस्यार्णवस्य।
आगत्यागत्य भीतिप्रणतनृपशतै शश्वदेव क्रियन्ता,
चूडारत्नाशुगर्भास्तव चरणयुगस्यांगुलीरन्ध्रभागा[१] ॥१९॥

३३. राजा—आर्यप्रसादाद् अनुभूयत एवैतत् नाशास्यते। उपविशतु आर्य । (इति उभौ यथासन उपविष्टौ)

चाणक्य—वृषल, किमर्थं वय आहूता ?

३४ राजा—आर्यस्य दर्शनेन आत्मान अनुग्राहयितुम्।

चाणक्य—(स्मित कृत्वा) वृषल, अलम् अनेन प्रश्रयेण, न निष्प्रयोजन अधिकारवन्त प्रभुभि आहूयन्ते, तत्प्रयोजन अभिधीयताम्।

३५ राजा—आर्य, कौमुदीमहोत्सवप्रतिषेधस्य कि फल आर्य. पश्यति ?

चाणक्य—(स्मित कृत्वा) वृषल, उपालब्धु तर्हि वय आहूता ?

राजा—आर्य, न उपालब्धुम्।

३६ चाणक्य—किं तर्हि ?

राजा—विज्ञापयितुम्।

चाणक्य—वृषल, यदि एव तर्हि विज्ञापनीयाना अवश्य शिष्येण रुचयोऽनुरोद्धव्या ।

---

१. स्रग्धरा ।

३२ राजा—(सिंहासनसे उठकर चाणक्यके दोनो पैरोको पकड़कर)। आर्य, चन्द्रगुप्त प्रणाम करता है।

चाणक्य—(दोनो हाथोको पकडकर) उठ, उठ बच्चे—

महापर्वतोसे शिलाओ पर गिरी गगाके फुहारोसे शीतल अनेक रगोकी, चमकती मणियोकी कातिवाले दक्षिण सागरके तीर तकके आ-आकर भयसे प्रणत सैकडो राजा सदा तेरे चरण युगलोकी अगुलियोके छिद्र-भागको अपने चूडारत्नकी किरणोंसे व्याप्त बनायें ॥१६॥

३३ राजा—आर्यकी कृपासे यह भोग ही किया जा रहा है, आर्य, बैठिये।

(दोनो अपने अपने आसनपर बैठे)

चाणक्य—वृषल, किसलिये हमें बुलाया ?

३४ राजा—आर्यके दर्शनसे अपनेको अनुगृहीत करनेके लिये।

चाणक्य—(मुस्कुराकर) वृषल, रहने दो तकल्लुफ, स्वामी, बिना प्रयोजन अधिकारियो को नही बुलाते। वही प्रयोजन कहिये।

३५ राजा—आर्य, **कौमुदी-महोत्सव**के निषेधमें क्या लाभ आप देखते हैं।

चाणक्य—(मुस्कुराकर) तो वृषल, उलाहना देनेके लिये हमें बुलाया है ?

राजा—आर्य, उलाहना देनेके लिये नही।

३६ चाणक्य—तो क्या ?

राजा—विज्ञापन (अर्ज) करनेके लिये।

चाणक्य—वृषल, यदि यह है, तो विज्ञापनीयो (गुरुजनो) की रुचिका शिष्यको अवश्य पालन करना चाहिये।

३७ राजा—आर्य, क सन्देह ? किन्तु न कदाचिदपि आर्यस्य निष्प्रयोजना प्रवृत्ति इति अस्ति न प्रश्नावकाश.।

चाणक्य—वृषल, सम्यग्गृहीतवानसि मदाशयम्। न हि प्रयोजन अनपेक्षमाण स्वप्नेऽपि चाणक्य चेष्टते।

३८. राजा—आर्य, अतएव मा प्रयोजनशुश्रूषा मुखरयति।

चाणक्य—वृषल, श्रूयता, इह खलु अर्थशास्त्रकारा. त्रिविधा, सिद्धि उपवर्णयन्ति। तद्यथा, राजायत्ता, सचिवायत्ता उभयायत्ता च इति। तत् सचिवायत्तसिद्धेर्भवत किं फलान्वेषणेन ? यतो वयमेव अत्र नियुक्ता वेत्स्याम ।

३९ राजा—(सकोप इव मुख परिवर्त्तयति)

(ततौ नेपथ्ये वेतालिकौ पठत.)

४०. एक,—

आकाश काश पुष्पच्छविमभिनवता भस्मना शुक्लयन्ती,
शीताशोरशुजालैर्जलघरमलिना क्लिन्दती कृत्तिमैभीम्।
कापालीमुद्वहन्ती स्रजमिव धवला कौमुदीमित्यपूर्वा,
हासश्रीराजहसा हरतु तनुरिव क्लेशमैशी शरद्व.[1]॥२०॥

४१ अपि च,—

प्रत्यग्रोन्मुषजिह्मा क्षणमनभिमुखी रत्नदीपप्रभाणाम्,
आत्मव्यापारगुर्वी जनितजललवा, जृम्भितै. सागभगे ।
नागाक भोक्तुमिच्छो शयनमुरु फणान्चक्रवालोपधान,
निद्राच्छेदाभिताम्रा चिरमवतु हरेर्दृष्टिराकेकरा व.[1]॥२१॥

४२. द्वितीय.,—

सत्वोत्कर्षस्य धात्रा निधय इव कृता केऽपि कस्यापि हेतो,
जेतार स्वेन धाम्ना मदसलिलमुचा नागयूथेश्वराणाम्।
दष्ट्राभग मृगाणामधिपतय इव व्यक्तभानावलेपा,
नाज्ञाभग सहन्ते नृवर, नृपतयस्त्वादृशा सार्वभौमा ॥२२॥

---

१. स्रग्धरा। २. पथ्यावक्त्रम्।

३७ राजा—आर्य, इसमें क्या सन्देह? लेकिन कभी भी आर्य विना प्रयोजनके कोई काम नही करते, इसलिये हमें पूछने का अवकाश है।
चाणक्य—वृषल, मेरे अभिप्रायको अच्छी तरह तुमने पकडा है। प्रयोजनके विना चाणक्य स्वप्नमें भी कोई काम नही करता।

३८ राजा—आर्य, इसीलिये प्रयोजन सुननेकी मेरी इच्छा मुझसे वुलवा रही है।
चाणक्य—वृषल, सुनिये, यहा शास्त्रकार तीन प्रकारकी सिद्धि वतलाते है, जैसे·—"राजाधीन, सचिव-अधीन और दोनो के अधीन।" तो सचिवाधीन सिद्धिके लाभ के वारेमें अन्वेषणसे आपको क्या? क्योकि इसमें नियुक्त हमी उसे जानेंगे।

३९ राजा—(कुपित सा हो मुख फेर लेता है)
(पर्देमें दो वैतालिक पाठ करते हैं)

४० एक—
ढंकनेवाली भस्म द्वारा आकाशको, काशके फूलकी शोभा जैसी सफेद करती, चन्द्रकी किरणोसे मेघ द्वारा मलिन गज-चर्मको भिगो रही है, उजली चादनीको शिरकी माला जैसी धारण करती, यह अपूर्व शंकरको हास-शोभारूपी राजहसी तुम्हारे क्लेशको हरे॥२०॥

४१. और भी—
अभिनव उद्‌घाटनसे तिरछी, क्षण भर रत्नदीपोकी प्रभाओंके असम्मुख अपने काममें मथर, जलकण उपजाती अग-भगोके व्यापारोंसे विशाल फणमडलके तकियेवाले शेपनागकी शय्या छोड़नेके इच्छुक (विष्णु) की निद्राके विच्छेदसे रक्तिम (तथा) कुचित दृष्टि तुम्हारी सदा रक्षा करे॥२१॥

४२. दूसरा—
किसी भी हेतुसे किसीको ब्रह्माने मद-जल छोड़ते गजयूथोके स्वामियोको अपने तेजसे जीतनेवाला, शौर्यके उत्कर्ष की निधिसा वनाया स्पष्ट अभिमान, गर्वीले मृगोके स्वामियोकी तरह हे पुरुषश्रेष्ठ तेरे जैसे चक्रवर्ती राजा दाढ़ तोड़नेकी तरह आज्ञा तोडनेको नही सह सकते॥२२॥

अपि च,—
भूषणाद्युपभोगेन प्रभुर्भवति न प्रभु ।
परैरपरिभूताज्ञस्त्वमिव प्रभुरुच्यते ।।२३।।

४३ चाणक्य —(आकर्ण्य आत्मगतम्) प्रथम तावद्विशिष्टदेवता-स्तुतिरूपेण प्रवृत्त शरद्गुणप्रख्यापन आशीर्वचनम्, इद अपर किमिति न अवधारयामि। (विचिन्त्य) आ ज्ञातम्। राक्षसस्य अय प्रयोग । आ दुरात्मन् राक्षस-हतक, दृश्यसे, जागर्त्ति खलु कौटिल्य.।

राजा—आर्य वैहीनरे, दीयताम् आभ्या वैतालिकाभ्या सुवर्णशतसहस्रम् ।

कञ्चुकी—यद् आज्ञापयति देव । (इति उत्थाय परिक्रामति) ।

४४ चाणक्य —(सक्रोधम्) वैहीनरे, तिष्ठ तिष्ठ, न गन्तव्यम्। वृषल, किं अयमस्थाने एव महान् अर्थोत्सर्ग. क्रियते ?

राजा—आर्येण एव सर्वतो निरुद्धचेष्टाप्रसरस्य मम बन्धन इव राज्य, न राज्यमिव।

४५ चाणक्य —वृषल, स्वय अनभियुक्ताना राज्ञा एते दोषा भवन्ति। तद् यदि न सहसे, तदा स्वयमेव अभि-युज्यस्व।

राजा—एते वय स्वकर्म्मणि अभियुज्यामहे।

४६ चाणक्य —प्रिय न, वयमपि स्वकर्म्मणि अभियुज्यामहे।

राजा—यदि एव, तर्हि कौमुदीमहोत्सवप्रतिषेधस्य प्रयो-जन श्रोतु इच्छामि।

चाणक्य —वृषल, कौमुदीमहोत्सवानुष्ठानस्य किं प्रयो-जन इति अहमपि श्रोतु इच्छामि।

राजा—प्रथम तावत् ममाज्ञाव्याघात ।

और भी—
भूषण आदिके उपभोगसे (कोई) प्रभु नही होता। तेरी तरह जिसकी आज्ञा को दूसरे तिरस्कृत नही कर सकते, वही प्रभु कहा जा सकता है ॥२३॥

४३. चाणक्य—(सुनकर अपने आपसे) पहले (श्लोकमें) तो विशेष देवताकी स्तुतिके रूपमें वर्तमान शरद्के गुणको वतलाते आशीर्वाद है। यह दूसरा क्या है, यह नहीं समझ पाया। (सोचकर) ओ समझा। राक्षसका यह काम है। आ, दुष्ट अभागे राक्षस, तू देखेगा कि कौटिल्य जागरूक है।
राजा—आर्य वैहीनरि, इन दोनो वैतालिकोको सौ हजार सुवर्ण (मुहर) दे दीजिये।
कचुकी—जो महाराज आज्ञा देते है। (उठकर परिक्रमा करता है)

४४ चाणक्य—(क्रोध-सहित) वैहीनरि, ठहर, ठहर न जा। वृषल, क्यो अनुचित स्थानमें इतने भारी धनका व्यय किया जा रहा है?
राजा—आर्य द्वारा इस प्रकार सब तरफसे कामोको करनेसे रोके गये मेरे लिये राज्य, राज्य जैसा नही वल्कि वन्धन जैसा है।

४५. चाणक्य—वृषल, ये अयोग्य राजाओके अपने दोष है। तो यदि तुम नही वर्दाश्त करते, तो स्वय ही अभियोजन (आज्ञा) करो।
राजा—यह (लीजिये) हम अपने काममें अभियोजन करते है।

४६. चाणक्य—यह हमें वहुत पसन्द है, हम भी काममें अभियोजन करेंगे।
राजा—अगर ऐसा है, तो कौमुदी-महोत्सवके निषेधका प्रयोजन सुनना चाहता हूँ।
चाणक्य—वृषल, कौमुदी-महोत्सवके अनुष्ठानका क्या प्रयोजन है, यह मैं भी सुनना चाहता हूँ।
राजा—पहले तो मेरी आज्ञाका भग हुआ।

४७ चाणक्य—वृषल, ममापि खलु त्वदाज्ञाव्याघात एव कौमुदीमहोत्सवप्रतिषेधस्य प्रथम प्रयोजनमिति। कुत.?—
अम्भोधीना तमालप्रभवकिसलयश्यामवेलावननाम्,
आ पारेभ्यश्चतुर्णां चटुलतिमिकुलक्षोभितान्तर्जलानाम्।
मालेवाज्ञा सपुष्पा नतनृपतिशतैरुह्यते या शिरोभि,
सा मय्येव स्खलन्ती प्रथयति विनयालकृत ते प्रभुत्वम्[1] ॥२४॥

४८ राजा—अथ अपरमपि प्रयोजन यत् तच्छ्रोतु इच्छामि।
चाणक्य—तदपि कथयामि?
राजा—कथ्यताम्।

४९. चाणक्य—शोणोत्तरे, शोणोत्तरे, मद्वचनात् कायस्थ अचलदत्त ब्रूहि, यत् भद्रभटप्रभृतीना लेख्यपत्र तत्तावत् दीयता इति।

प्रतीहारी—यदार्यं आज्ञापयति इति। (निष्क्रम्य पुनः प्रविश्य) आर्य, इद पत्रम्।

चाणक्य—गृहीत्वा। वृषल, श्रूयताम्।

राजा—दत्तावधानोऽस्मि।

५० चाणक्यः—वाचयति। स्वस्ति, सुगृहीतनामधेयस्य देवस्य चन्द्रगुप्तस्य सहोत्थायिना प्रधानपुरुषाणाम्। तत्र प्रथम तावद् गजाध्यक्षो भद्रभट, अश्वाध्यक्ष पुरुषदत्त, महाप्रतीहारस्य चन्द्रभानोर्भागिनेयो हिंगुरात, देवस्य स्वजनगन्धी महाराजो बलगुप्त, देवस्यैव कुमारसेवको राजसेन, सेनापते सिंहबलदत्तस्य कनीयान् भ्राता भागुरायण, मालवराजपुत्रो रोहिताक्ष, क्षत्रगणमुख्यतमो विजयवर्मा इति (आत्मगतम्) एते वय देवस्य कार्य्ये अवहिता स्म इति। (प्रकाशम्) एतावद् एतत् पत्रम्।

राजा—आर्य, एतेषां अपरागहेतून् श्रोतु इच्छामि।

---

१. स्रग्धरा।

४७ चाणक्य—वृषल, तेरी आज्ञाका भग ही कौमुदी-महोत्सवके निषेधका मेरा प्रथम प्रयोजन है।

क्योकि—

तमालमें उत्पन्न पत्तोसे श्याम तटके वनोवाले, चचल महामत्स्यो द्वारा क्षोभित, भीतर जलयुक्त चारो समुद्रोके पार तटके प्रणत सैकडो नृपति (अपने) सिरो पर जिस आज्ञाको पुष्पमालाकी तरह रखते हैं। सो (आज्ञा) मेरे ही ऊपर गिरती तेरे विनय-भूषित प्रभुताको प्रख्यापित करती है।।२४।।

४८ राजा—और दूसरा भी प्रयोजन सुनना चाहता हूँ।

चाणक्य—उसे भी कहूँ?

राजा—कहिये।

४९ चाणक्य—शोणोत्तरा **शोणोत्तरा**, मेरे वचनसे **कायस्थ अचलदत्त**को कह, कि **भद्रभट** आदि का जो लेख्यपत्र है, उसे दीजिये।

प्रतीहारी—जो आर्य आज्ञा देते हैं। (निकलकर फिर प्रवेश करके)। आर्य, यह पत्र है।

चाणक्य—(लेकर) वृषल, सुनिये।

राजा—सावधान हूं।

५० चाणक्य—वाचता है। स्वस्ति, सुगृहीत नामवाले महाराज **चन्द्रगुप्त** के साथ उठने-बैठने वाले प्रधानपुरुषोकी यहासे हटकर मलयकतुके आश्रितो की सख्याका लेख्यपत्र। वहा पहले गजाध्यक्ष **भद्रभट**, अश्वाध्यक्ष पुरुपदत्त, महाप्रतीहार चन्द्रभानुका भाजा **हिंगुरात**, महाराजका स्वजन-सम्बन्धी महाराज **बलगुप्त**, देवका ही कुमार-सेवक **राजसेन**, सेनापति **सिंहबलदत्त**का छोटा भाई **भागुरायण**, मालव-राजकुमार रोहिताक्ष, क्षत्रियसमूहका सबसे बडा मुखिया **विजयवर्मा**। (अपने आपसे) यह हम देवके कार्यमें लगे हैं। (प्रकट) इतना है यह।

राजा—आर्य, इनके विरक्त (बागी) होनेका कारण सुनना चाहता हू।

५१. चाणक्य—वृषल, श्रूयताम् । अत्र यौ एतौ गजाध्यक्षाश्वाध्यक्षौ भद्रभटपुरुषदत्तनामानो, एतौ खलु स्त्रीमद्यमृगयाशीलौ, हस्त्यश्वावेक्षणे अनभियुक्तौ, इति स्वाधिकाराभ्या अवरोप्य मया स्वजीवनमात्रेणैव स्थापितौ इति अपरक्तौ, गत्वा स्वेन स्वेन च अधिकारेण व्यवस्थाप्य मलयकेतु आश्रितौ। यौ एतौ हिंगुरातबलगुप्तौ, तौ अपि अत्यन्तलुब्धप्रकृती, दत्त धनम् अबहु मन्यमानो, तत्र बहु लभ्यते इति मलयकेतु आश्रितौ। योऽपि असौ भवत कुमारसेवको राजसेन, सोऽपि तव प्रसादात् अतिमात्र कोषहस्त्यश्व सहसा एव सुमहदैश्वर्य्यमवाप्य पुनरुच्छेदशकया अपक्रम्य मलयकेतु आश्रित.। योऽयमपर सेनापते सिंहबलदत्तस्य कनीयान् भ्राता भागुरायण., असौ अपि तत्र काले पर्वतकेन सह समुत्पन्नसौहार्द तत्प्रीत्या च "पिता मे चाणक्येन घातित" इति रहसि त्रासयित्वा, मलयकेतु अपवाहितवान्, ततो भवत्पथ्यकारिषु चन्दनदासप्रभृतिषु निगृह्यमाणेषु स्वदोषाशकया अपक्रम्य मलयकेतुमाश्रित , तेनापि असौ मम अनेन प्राणा परिरक्षिता इति कृतज्ञता अनुरुध्यमानेन पैतृक च परिचय, आत्मनोऽनन्तर अमात्यपद ग्राहित । यौ तौ रोहिताक्षविजयवर्म्माणौ, तौ अत्यन्तमानित्वात् स्वदायादेभ्य त्वया दीयमान बहुसम्मान असहमानौ, मलयकेतु आश्रितौ। इत्येषा अपरागहेतव.।

५२. राजा—आर्य, एवं एतेषु परिज्ञातापरागहेतुषु अपि क्षिप्रमेव कस्मात् न प्रतिविहितम् आर्येण ?

चाणक्य—वृषल, न पारित प्रतिविधातुम्।

५१. चाणक्य—वृषल, सुनिये। यहा जो यह गजोके अध्यक्ष और घोडोके अध्यक्ष भद्रभट और पुरुषदत्त हैं, यह स्त्री-मद्य और मृगयाके प्रेमी हैं, हाथी-घोडोकी (सेना) के देखनेके अयोग्य है। इसलिये अधिकारोंसे वचित कर उन्हें अपने जीवन मात्रके साथ मैंने रख दिया, इसलिये यह विरक्त हो जाकर (वहा) अपने-अपने अधिकार पर आरूढ हो **मलयकेतु**के आश्रित हो गये। जो यह हिंगुरात और वलगुप्त हैं, ये भी वहुत लोभी स्वभावके हैं, यहा दिये जाते, धनको वहुत न मानकर वहा वहुत मिलेगा, यह सोच मलयकेतुके आश्रित हो गये। और जो यह आपका कुमारसेवक राजसेन है, वह भी आपकी कृपासे वहुत अधिक कोश-हाथी-घोडेसहित भारी ऐश्वर्यको एकाएक पाकर उनके उच्छेदके डरसे भागकर मलयकेतुके आश्रित हो गया। जो यह दूसरा सेनापति सिहवलदत्तका छोटा भाई भागुरायण है, यह भी वहा समयपर पर्वतकके साथ मित्रता करके उसकी प्रीति और "तेरे पिताको चाणक्यने मरवाया" यह कह एकान्तमें डराकर मलयकेतुका विरोधी वना। इसलिये आपके अहित करनेवाले चदनदास आदिके पकडे जानेपर यह अपने अपराधके (खुलनेके) भयसे भागकर मलयकेतुके आश्रित हो गया। उसने भी, "इसने मेरे प्राणोकी रक्षा की" यह सोच कृतज्ञताके अनुरोवसे और पैतृक परिचय का ख्याल कर अपने वाद अमात्यका पद प्रदान किया। जो वे रोहिताक्ष और विजयवर्मा हैं, वे अपने दायादोको तुम्हारे द्वारा वहुत सम्मान दिये जानेको न सहन कर अत्यन्त अभिमानी होनेके कारण मलयकेतुके आश्रित हो गये। यह है इनके विरागका कारण।

५२ राजा—आर्य, इस प्रकार इनके विरागके हेतुओके जान लेनेपर भी जल्दी ही क्यो नही आर्यने प्रतिविधान किया?

चाणक्य—वृषल, प्रतिविधान नही कर सका।

५३ राजा—किं अकौशलात्, उत प्रयोजनापेक्षितया ?
चाणक्य—कथ अकौशल भविष्यति, नियतं प्रयोजनापेक्षितया।
राजा—तत् अप्रतिविधानप्रयोजन इदानी श्रोतुमिच्छामि।
चाणक्य—वृषल, श्रूयता अवधार्यतांच।
राजा—उभयमपि क्रियते, कथ्यताम्।

५४. चाणक्य—वृषल, इह खलु विरक्ताना प्रकृतीना द्विविध प्रतिविधानम्, तद् यथा, अनुग्रहो निग्रहश्च इति। अनुग्रह तावत् आक्षिप्ताधिकारयो भद्रभटपुरुषदत्तयो पुन अधिकारारोपण एव। अधिकारश्च पुन. तादृशेषु व्यसनदोषात् अनभियुक्तेषु पुन आरोप्यमाण सकलस्य एव राज्यस्य मूल हस्त्यश्व अवसादयेत्। हिंगुरातवलगुप्तयो अत्यन्तलुब्धप्रकृतिकयो सकलराज्यसम्प्रदानेनापि अपरितुष्यतो अनुग्रह कथ कर्तुं शक्य ? राजसेनभागुरायणयोस्तु स्वधनप्राणनाशभीतयो कुतोऽनुग्रहस्य अवकाश ? रोहिताक्षविजयवर्म्मणोरपि दायादमानप्रदानपीडितयो मानमपि अपमान मन्यमानयो अत्यन्तमानिनो कीदृशोऽनुग्रह प्रीति जनयिष्यतीति परिहृत पूर्व पक्ष, उत्तरोऽपि खलु वय अचिरात् अधिगतनन्दैश्वर्या सहोत्थायिन प्रधानपुरुषवर्ग उग्रेण दण्डेन पीडयन्तो, नन्दकुलानुरक्ताना प्रकृतीना अविश्वास्या भवाम, इत्यत परिहृत एव। तत् एवमनुगृहीतास्मद्भृत्यपक्षो राक्षसोपदेशश्रवणप्रवणो महीयता म्लेच्छराजबलेन परिवृत, पितृवधामर्षित पर्वतकपुत्रो मलयकेतु अस्मान् अभियोक्तु उद्यत इति, सोऽय व्यायामकालो न उत्सवकाल इति। अतो दुर्गसस्कारे आरब्धव्ये किं कौमुदीमहोत्सवेन ? इति प्रतिषिद्धि ।

५३ राजा—क्या अकौशलके कारण, या किसी मतलबसे।

चाणक्य—अकौशल (अनिपुणता) कैसे, निश्चय मतलबसे ही।

राजा—अब प्रतिविधान न करनेका मतलब सुनना चाहता हू।

चाणक्य—वृषल, सुनिये और मनमें करिये।

राजा—दोनो करता हू, कहिये।

५४ चाणक्य—वृषल, बागी प्रजाओका दो प्रकारसे प्रतिविधान होता है, जैसे कि, अनुग्रह और निग्रह (दण्ड) से। अनुग्रह तो है छिने अधिकार वाले भद्रभट और पुरुषदत्तको फिरसे अधिकारपर स्थापित करना ही। व्यसनके दोषके कारण ऐसे अयोग्योको अधिकार पर पुन. स्थापित किये जाने पर सारे राज्य की जड हाथी-घोडेका (की सेना का) नाश करते। और अत्यन्त लोभी प्रकृतिवाले, सारा राज्य देनेपर भी न सतुष्ट होनेवाले हिंगुरात और बलगुप्त पर कैसे अनुग्रह किया जा सकता है? अपने धन और प्राणके नाशसे भयभीत राजसेन और भागुरायणपर अनुग्रह के लिये अवसर कहा? दायादोको मान देनेसे पीड़ित, मानको भी अपमान माननेवाले अत्यन्त अभिमानी रोहिताक्ष और विजयवर्मा के मन में भी अनुग्रह कैसे (विश्वास) पैदा करेगा। इस प्रकार पहला पक्ष छोड देना पडा। दूसरा पक्ष (निग्रह)—हमने हाल ही में नन्दके ऐश्वर्यको पाया है, उसके साथ उन्नत हुये प्रधान पुरुषोको कठोर दण्ड द्वारा पीडित करने पर नन्दकुल-भक्त प्रजाओका विश्वास हम पर नही रहता, इसलिये उसे भी छोड दिया। इस प्रकार अनुगृहीत हुये हमारे भृत्य लोग राक्षसकी बात माननेके इच्छुक है, म्लेच्छ राजा की भारी सेना लेकर पिताके वधसे क्रुद्ध पर्वतक-पुत्र मलयकेतु हमसे लड़नेके लिये उद्यत है। सो यह प्रयत्नका समय है, उत्सवका नही। गढकी मरम्मत में लगनेके समय कौमुदी-महोत्सव-का क्या काम, इसीलिये मैंने (उसका) निषेध किया।

५५. राजा—आर्य, बहु प्रष्टव्यमत्र ।

चाणक्य —वृषल, विश्रब्ध पृच्छ, ममापि बह्वाख्येय अत्र ।

राजा—एष पृच्छामि ।

चाणक्य —अहमपि एष कथयामि ।

राजा—योऽय अस्माकमस्य सर्वस्यैव अनर्थस्य हेतुर्मलय-केतु, स कस्मात् आर्येण अपक्रामन् उपेक्षित ?

५६. चाणक्य —वृषल, मलयकेतो अपक्रमणानुपेक्षणे द्वयी गति च स्यात्, अनुगृह्येत निगृह्येत वा । अनुग्रहे पूर्वप्रतिश्रुत राज्यार्द्ध प्रतिपाद्येत । निग्रहे तावत् पर्वतकोऽस्माभि व्यापादित इति कृतघ्नताया स्वय हस्तो दत्त स्यात् । प्रतिश्रुतार्द्धराज्यप्रतिपादनेऽपि पर्वतकविनाश केवल कृतघ्नता-मात्रफल स्यात् इति मलयकेतु अपक्रामन् उपेक्षित. ।

५७ राजा—अत्र तावदेव राक्षस पुन इहैव अन्तर्नगरे वर्त्तमान आर्येण उपेक्षित, इत्यत्र किमुत्तर आर्यस्य ?

५८. चाणक्य —राक्षसोऽपि खलु निजस्वामिनि स्थिरानुरागित्वात् सुचिरमेव अत्र सहवासाच्च शीलज्ञाना नन्दानुरक्ताना प्रकृतीना अत्यन्त विश्वास्य, प्रज्ञापुरुषकाराभ्या उपेत, सहायसम्पदा युक्त, कोषबलवानिहैव अन्तर्नगरे वर्तमानो महान्त खलु अन्त कोप उत्पादयेत् । दूरीकृतस्तु, वाह्यकोप उत्पादयन्नपि न दु खसाध्यो भविष्यति इत्यतोऽपक्रामन् उपेक्षित. ।

राजा—तत् किमर्थं इहस्थ एव उपायै न उपक्रान्तः ?

५९. चाणक्य —अथ कथ अपक्रान्तो भविष्यति? ननु उपायै. एव असौ हृदयेशय शकुरिव उद्धृत्य दूरीकृत । दूरीकरणस्य च उक्त प्रयोजनम् ।

राजा—आर्य, कस्माद्विक्रम्य न गृहीत ?

५५. राजा—आर्य, अभी बहुत पूछना है।

चाणक्य—वृषल, निश्शक पूछो, मुझे भी अभी बहुत कहना है।

राजा—यह लो मैं पूछता हू।

चाणक्य—यह लो मै भी कहता हू।

राजा—हमारे इन सभी अनर्थो का कारण जो **मलयकेतु** है, क्यो आर्यने उसके बाहर जाने की उपेक्षा की?

५६ चाणक्य—वृषल, मलयकेतुके बाहर जानेकी उपेक्षा न करनेपर दो ही बातें होती, उसपर अनुग्रह किया जाता या निग्रह। अनुग्रह करने-पर पहलेके वचनके अनुसार आधा राज्य देना पडता, निग्रह (दण्ड) करनेपर हमने पर्वतकको मारा, इस कृतघ्नताके (लाछन) को खुद अपने ऊपर लेना पडता। वचन दिये आधा राज्य प्रदान करने पर भी **पर्वतक**का नाश करना, केवल कृतघ्नता होती, इसलिये हमने मलयकेतुके बाहर जाने की उपेक्षा की।

५७ राजा—यहा तो (खैर) यह है। पर फिर यही भीतर नगरमें मौजूद राक्षस की आर्यने क्यो उपेक्षा की। इसके बारे में आर्यका क्या उत्तर है?

५८ चाणक्य—अपने स्वामी (**नन्द राजा**) का दृढ भक्त होने से बहुत समयसे ही यही साथ रहनेके कारण **राक्षस** (उनके) शीलसे परिचित नद-भक्त प्रजाओका अत्यत विश्वसनीय है। प्रजा और पौरुषसे, मित्र और सम्पत्तिसे युक्त, कोशसे बलवान् वह यही नगरके भीतर रहता भीतरसे भारी क्षोभ पैदा करता निकाल बाहर करने पर बाहरसे क्षोभ पैदा करते भी दुस्साध्य होता, यह सोच बाहर जाते उसको मैंने उपेक्षा की।

राजा—तो क्यो नही यहा उसके रहते रहते उपाय किया?

५९ चाणक्य—फिर वह बाहर कैसे गया होता? निश्चय उपायोमे ही हृदयमें गड़े काटेकी तरह मैंने उसे निकालकर दूर किया। और दूर करनेका प्रयोजन मैंने बतला दिया।

राजा—आर्य, पराक्रम करके क्यो नही उसे पकडा?

६०. चाणक्य —वृषल, राक्षस खलु असौ विक्रम्य निगृह्यमाण स्वय वा विनश्येत्, युष्मद्बलानि वा विनाशयेत्। एव सति उभयथापि दोष । पश्य,—

स हि भृशमभियुक्तो यद्यपेयाद् विनाश,
ननु वृषल, वियुक्तस्तादृशेनापि पुसा।
अथ तव बलमुख्यान् नाशयेत्, सापि पीडा,
नवगज इव तस्मात् सोऽभ्युपायैर्विनेय.[1] ॥२५॥

६१ राजा—न शक्नुमो वय आर्यस्य वाचा वाचम् अतिशयितु, सर्वथा अमात्यराक्षस एव अत्र प्रशस्यतर ।
चाणक्य —(सक्रोधम्) न भवान् इति वाक्यशेष.। मा तावत् एवम्। भो वृषल, तेन किं कृतम् ?

६२. राजा—यदि न ज्ञायते, तदा श्रूयताम्। तेन खलु महात्मना,

लब्धाया पुरि यावदिच्छमुषित, कृत्वा पद नो गले,
व्याघातो जयघोषणादिषु बलादस्मद्बलानां कृत ।
अत्यर्थं विपुलै सुनीतिविभवै. सम्मोहमापादिता,
विश्वास्येष्वपि विश्वसन्ति मतयो न स्वेषु वर्गेषु न.[2] ॥२६॥

चाणक्य —(विहस्य) वृषल, एतत् कृत राक्षसेन।

६३. राजा—अथ किम्। एतत् कृत अमात्यराक्षसेन।
चाणक्य.—वृषल, मया पुनर्ज्ञात, नन्दमिव भवन्तं उद्धृत्य भवानिव भूतले मलयकेतु अधिराज्य आरोपितः।
राजा—अल उपालभ्य ? आर्य, दैवेन इद अनुष्ठित, किं अत्र आर्यस्य ?

---

१. मालिनी। २. शार्दूल विक्रीडितम्।

६० चाणक्य—वृषल, पराक्रम करके पकड़कर दडित करनेपर राक्षस खुद नष्ट होता, या तुम्हारी सेनाको नष्ट करता। ऐसा होना दोनो ही प्रकारसे बुरा है। देखो—

अत्यन्त आक्रान्त हो यदि वह नष्ट होता, तो वृषल, वैसे पुरुषसे वचित होते। अगर तुम्हारी सेनाके मुखियोको वह नष्ट करता, तो वह हानि भी नये फमाये हाथी सी होती, इसलिये उसे युक्तिसे विनीत करना है ॥२५॥

६१ राजा—हम आर्यको वातसे पार नही पा सकते, सव तरह से (देखते) अमात्य राक्षस ही अधिक प्रशसनीय है।

चाणक्य—(कोपके साथ) आप नही, यह वाकी वाक्य भी कहो। ऐसा नही। वृषल, उसने क्या किया ?

६२ राजा—यदि नही मालूम है, तो सुनिये। उस महात्माने—

पुरीपर अधिकार होते समय इच्छानुसार वसे रह हमारे कठपर पैर रखकर जय घोषणा आदिमें हमारी सेनाओ को जवर्दस्ती वाधा दी। (उसने) अपने विपुलनीति-वैभवसे अत्यधिक भ्रम पैदा किया, वुद्धिया विश्वसनीयो पर भी विश्वास करती है, (पर) हमारे अपने वर्ग पर नही ॥२६॥

चाणक्य—(हसकर) वृषल, यह किया राक्षसने ?

६३ राजा—और क्या ? यह किया अमात्य राक्षसने।

चाणक्य—वृषल, मैने तो समझा, नन्दकी तरह आपका उच्छेद कर आपकी तरह उसने मलयकेतुका पृथ्वीपर राज्यारोहण कराया।

राजा—रहने दें उलाहना। आर्य, दैवने ऐसा किया, इसमें आर्यका क्या है ?

६४. चाणक्य—हे मत्सरिन्,

आरुह्य या रुढकोपस्फुरणविषमिताग्रांगुलीमुक्तचूडा,
लोकप्रत्यक्षमुग्रा सकलरिपुकुलोच्छेददीर्घां प्रतिज्ञाम्।
केनान्येनावलिप्ता नवनवतिशतद्रव्यकोटीश्वरास्ते,
नन्दा पर्यायभूता पशव इव हता पश्यतो राक्षसस्य[1] ॥२७॥

६५. अपि च,—

गृध्रैराबद्धचक्र वियति चलनया दीर्घनिष्कम्पपक्षै,
धूमैर्ध्वस्तार्कभासा सघनमिव दिशा मण्डल दर्शयन्त.।
नन्दाना नन्दयन्त पितृवनिलयान् प्राणिन पश्य, चैतान्,
निर्वान्त्यद्यापि नैते सुतबहलवसावाहिनो हव्यवाहा[2] ॥२८॥

राजा—अन्येनैव इद अनुष्ठितम्।

चाणक्य—आ केन ?

६६ राजा—नन्दकुलविद्वेषिणा दैवेन।

चाणक्य—दैव अविद्वास प्रमाणयन्ति।

राजा—विद्वासोऽपि अविकत्थना भवन्ति।

६७ चाणक्य—(सक्रोध नाटयेन) वृषल, भृत्यमिव मा आरोढु इच्छसि ?

शिखा मोक्तु बद्धामपि पुनरय धावति कर,
(भूमौ पादप्रहार कृत्वा)।
प्रतिज्ञामारोढु पुनरपि चलत्येष चरण ।
प्रणाशान्नन्दाना प्रशममुपयात त्वमधुना,
परीत कालेन, ज्वलयसि पुन क्रोधदहनम्[3] ॥२९॥

---

१. स्रग्धरा। २. वसन्ततिलका। ३ शिखरिणी।

६४ चाणक्य—हे डाही—

वढे क्रोधके फडफडानेसे टेढी अगली अंगुलियो द्वारा खुली शिखावाली, सारे रिपुओके छेदसे लम्वी, लोगोके सामने कठोर प्रतिज्ञा के ऊपर आरूढ होकर राक्षसके देखते देखते नौ करोड़ द्रव्यके स्वामी अभिमानी नवनन्द किसके द्वारा पक्तिवद्ध पशुओकी तरह मारे गये ॥२७॥

६५ और भी—

लम्वे निश्चल पखोवाले गिद्धो द्वारा (अपनी) गतिसे आकाशमें वधे चक्र, धूमो द्वारा सूर्यके ध्वस्त प्रकाशवाली दिशाओको मेघयुक्त सी दिखलाती नन्दोके पितृवनके घरोवाले प्राणियोको आनदित करती, देख, वहुत वहती चर्वीको वहन करनेवाली ये अग्नियां अव भी नहीं वुझ रही हैं ॥२८॥

राजा—दूसरे ने ही यह किया।

चाणक्य—आह, किसने ?

६६ राजा—नन्दकुलपर द्वेप रखनेवाले दैव ने।

चाणक्य—दैवको मूर्ख प्रमाण मानते हैं।

राजा—विद्वान् गाल वजाने वाले नही होते।

६७ चाणक्य—(क्रोध का अभिनय करते) वृपल, वृपल, भृत्य की तरह मेरे ऊपर चढना चाहता है—

वधी हुई शिखा को फिर छोडनेके लिये यह हाथ दौड रहा है,

(भूमिपर पैर पटककर)

प्रतिज्ञापर आरूढ होनेके लिये यह चरण फिर चल रहा है।

नन्दोके नाशसे शान्त हो गई क्रोधाग्निको कालसे घिरा तू अव पुनः प्रज्वलित कराना चाहता है ॥२९॥

६८ राजा—(सावेग स्वगतम्) अये, तत् कथ सत्यमेव कुपित आर्य ? तथाहि,—

सरम्भस्पन्दिपक्ष्मक्षरदमलजलक्षामयापि,
भ्रूभगोद्भेदधूम ज्वलितमिव पुन पिगया नेत्रभासा।
मन्ये, रुद्रस्य रौद्र रसमभिनयतस्ताण्डवे सस्मरन्त्या,
सजातोदग्रकम्प कथमपि धरया धारित पादघात[1] ॥३०॥

६९ चाणक्य —(कृतक कोप सहृत्य) वृषल, वृषल, अल उत्तरोत्तरेण ? यदि अस्मत्तो वरीयान् राक्षसोऽवगम्यते, तस्माद् इद शस्त्र तस्मै दीयता इति । (शस्त्रमुत्सृज्य उत्थाय च प्रत्यक्षवत् आकाशे लक्ष्य बद्ध्वा स्वगतम्) । राक्षस, राक्षस, एष एव भवत कौटिल्यबुद्धिविजिगीषोर्बुद्धे प्रकर्ष,—

चाणक्यत स्खलितभक्तिमह सुखेन,
जेष्यामि मौर्यमिति सम्प्रति य प्रयुक्त ।
भेद, किलैष भवता सकल स एव,
सम्पत्स्यते, शठ, तवैव हि दूषणाय[2] ॥३१॥

(इति निष्क्रान्त:) ।

७० राजा—आर्य वैहीनरे, अद्य प्रभृति अनादृत्य चाणक्य चन्द्रगुप्त स्वयमेव राज्यकार्याणि करिष्यतीति गृहीतार्था प्रकृतय क्रियताम् ।

७१. कचुकी—(स्वगतम्) कथ निरुपपद एव 'चाणक्यो' न 'आर्य चाणक्य' इति । सत्यमेव हृतोऽधिकार, अथवा न खलु अत्र वस्तुनि देव दोषेण अवगन्तु अर्हामि—

स दोष सचिवस्यैव, यदसत् कुरुते नृप ।
याति यन्तु प्रमादेन गजो व्यालत्ववाच्यताम् ॥३२॥

---

[1] स्रग्धरा, [2] वसतलिका

६८. राजा—(आवेगके साथ अपने आपसे) अये, तो क्या सचमुच ही आर्य कुपित हो गये? क्योंकि—
कोपमे फडकनेवाली पलकोसे वहते निर्मल जलके प्रक्षालनसे छोटी हुई भी पीली नेत्र-किरणो द्वारा, भृकुटी ताननेसे उठे धूमवाले फिरसे मानो जले, मानता हू ताडवमें रौद्ररसके अभिनय करते रुद्रका स्मरण करती, उठे हुये भारी कंपनवाले पद के प्रहारको पृथिवीने जैसे-तैसे धारण किया ।।३०।।

६९ चाणक्य—(वनावटी कोप हटाकर) वृषल, वृपल, रहने दो उत्तरके उत्तरको। यदि हमसे वडा राक्षसको समझते हो, तो इस हथियारको उसे दे दो। (हथियार छोडकर और उठकर प्रत्यक्षकी तरह आकाशमें लक्ष्य करके अपने आपसे) राक्षस, राक्षस, कौटिल्यकी वुद्धि जीतनेकी इच्छुक आपकी वुद्धिका यही वडप्पन है—
"चाणक्यसे हटी भक्तिवाले मौर्यको अव मैं आसानीसे जीतूगा," यह (सोच) इस समय जो तुमने फूट डाली, वह सव निश्चय ही शठ, तेरे ही दूषण के लिये होगा ।।३१।।

(निकल गये)

७० राजा—आर्य, वैहीनरि, आजसे चाणक्यकी पर्वाह न करें, चन्द्रगुप्त स्वय ही राज्यका काम-काज करेगा, यह प्रजाको समझा दो।

७१ कचुकी—(अपने आपसे) क्या विना उपाधि के ही चाणक्य "आर्य चाणक्य" नही। हन्त, सचमुच ही अधिकार खतम हुआ, अथवा इस वातमें राजामें दोप देखना अच्छा नही है।
वह मन्त्रीका ही दोप है, जो कि राजा अनद् आचरण करता है। हाथीवान्के प्रमादसे गज दुष्ट कहलाता है ।।३२।।

७२ राजा—आर्य, किं विचारयसि ?

कचुकी—देव, न किंचिद् विचारयामि, किन्तु एतद् विज्ञापयामि, दिष्ट्या देव इदानी देव. सवृत्त इति।

७३ राजा—(आत्मगतम्) एव अस्मासु गृह्यमाणेषु स्वकार्यसिद्धिकाम. सकामो भवतु आर्य । (प्रकाशम्) शोणोत्तरे, अनेन शुष्ककलहेन शिरोवेदना मा बाधते, तत् शयनगृह आदेशय।

प्रतीहारी—एतु एतु महाराज ।

७४. राजा—(आसनात् उत्थाय आत्मगतम्)—

आर्याज्ञयैव मम लघितगौरवस्य,
बुद्धि प्रवेष्टुमवनेर्विवर प्रवृत्ता ।
ये सत्यमेव न गुरून् प्रतिमानयन्ति,
तेषा कथं नु हृदय न भिनत्ति लज्जा ॥३३॥

(इति निष्क्रान्ता सर्वे)

—अक ३

७२ राजा—आर्य, क्या सोचते हो?

कचुकी—देव, कुछ नही सोचता, केवल इतना ही अर्ज करता हूं, खुशी है, कि देव अव देव (राजा) हो गये।

७३ राजा—(अपने आपसे) इस प्रकार हमारे (कार्यभार) ग्रहण करने पर अपने कार्य की सिद्धिकी कामनावाले आर्य सफल होवें। (प्रकट) शोणोत्तरा, इस सूखी कलह के कारण सिरकी पीडा मुझे दु ख दे रही है, सो शयनगृहको वताओ।

प्रतिहारी—आर्ये, आर्ये, महाराज।

७४ राजा—(आसनसे उठकर अपने आपसे)

लाजके तिरस्कारसे ही मानो गौरव-उल्लघन करनेवाली मेरी वुद्धि, पृथिवीके छेदमें प्रवेश करनेको प्रवृत्त हुई। सचमुच ही जो गुरुओको नही सम्मानित करते, उनके हृदयको लज्जा तोड क्यो नही देती ।।३३।।

(सव चले गये)

—अक ३

भाग ४

अपभ्रंश (१)

(पूर्वकाल ५५०–७०० ई०)

२५. सुबन्धु	(५६० ई०)
२६. दंडी	(५८० ई०)
२७. भट्टि	(६१० ई०)
२८. विज्जा	(,,)
२९. वाण	(६२० ई०)
३०. हर्षवर्धन	(६०७-४७ ई०)
३१. मयूर	(६२० ई०)
३२. अमरुक	(६७० ई०)
३३. भर्तृहरि	(,,)
३४. शीला भट्टारिका	(,,)
३५. माघ	(६७५ ई०)
३६. भवभूति	(७०० ई०)

४. अपभ्रंश (५५०–१२०० ई०)

(१) पूर्व-काल (५५०–७०० ई०)

बाणने भाषाकवि ईशानका उल्लेख प्राकृत कविसे भिन्न किया है, जिससे साफ है, कि बाणके समय लोक-भाषा प्राकृतसे भिन्न थी। इस कालकी भाषाका नाम अपभ्रंश था। यद्यपि अपभ्रंश शब्दका प्रयोग भाषाके तौरपर पतंजलि (१५० ई० पू०) ने भी किया है, लेकिन वहा वह सस्कृतसे भ्रष्ट उच्चारण रखनेवाली भाषाओंको अपभ्र श कहा गया है। पतजलिके समयकी वह भाषा पालि थी। विशेष कालकी भिन्न-भिन्न भाषाओंके सामूहिक नामके तौरपर अपभ्र श शब्दका प्रयोग बाणके बादसे हुआ है, जब कि प्राकृतका स्थान दूसरी भाषाने लिया। ईशान इसी भाषाके कवि थे। उनका नाम पीछे अपभ्रंश-कवियोको भी मालूम था, लेकिन उनकी कोई कृति हमारे पास तक नहीं पहुची।

अपभ्रंश-कालने हमें सुबन्धु, दण्डी और बाण जैसे महान् गद्यकार कवि प्रदान किये, जो बतलाता है, कि अब लोग गद्यकी महिमाको मानने लगे थे। अफसोस है, स्वयं अपभ्र श भाषामें ऐसे गद्य नहीं मिलते। अपभ्रंश भाषा एक ऐसी भाषा है, जो उच्चारणमें प्राकृतका पूरा अनुसरण करती है, लेकिन व्याकरणमें कनउजी के अत्यन्त नजदीक है। यहा मैं केवल उस अपभ्र शके बारेमें कह रहा हूँ, जो कि साहित्यके रूपमें सुरक्षित है, और जो उस समयके सबसे बड़े राजनीतिक और सांस्कृतिक केन्द्र कान्यकुब्जकी भाषा थी। व्याकरणके दूर होनेके कारण अब प्राकृतकी तरह संस्कृत-उच्चारणोंके परिवर्तनसे भाषाका समझना आसान नहीं था। इसलिए कविताके सभी रसिक और पारखी अब सस्कृत कविताका आनंद नहीं ले सकते थे, और न उसके ऊपर अपनी राय देकर प्रभाव डाल सकते थे। इस प्रकार अब संस्कृत कवि इन बहुसख्यक अधिकारियोंसे वंचित हो गये। संस्कृत कविताका अब वही आनंद ले सकते थे, जिन्होने संस्कृत

व्याकरण और साहित्यके अध्ययनमें काफी समय लगाया हो। उन्हींके वाह-वाह करनेपर कवि सफल हो सकता था, राजकवि और दरबारी कवि बनकर सुखी जीवन बिता सकता था। कविताको अब बहुत सीमित लोगोंमें स्वीकृत होनेका अवसर रह गया और उसके लिये वही कसौटी थे। परिणाम यह हुआ, कि अपभ्रंशकालमें क्लिष्टसे क्लिष्टतर भाषामें लिखनेकी होड़ लग गई, जिन अलंकारोंको परिमित और मर्यादित रखकर सुन्दर काव्य रचा जाता था, उनकी भरमारको अब गुण समझा जाने लगा। कवि लोगोंका सारा ध्यान शब्दालंकारों और अर्थालंकारोंको ढूंढ़ ढूंढ़कर सजानेमें लग गया। उन्हे यह ख्याल नहीं रहा, कि कालिदासकी सफलतामें उनकी भाषाकी सरलताका हाथ कम नहीं है।

इस कालकी एक विशेषता है कुछ स्त्री कवित्रियोंकी कृतियोंका हमारे पास तक आना। दूसरे कालोंमें भी वह रही होंगी, किन्तु उनकी कविताके अवशेष हमें इसी कालके मिलते है। जहां इस कालके पुरुष कवियोंने शब्दा-डम्बरपर बहुत जोर दिया, वहां स्त्री कवित्रियां इस दोषसे मुक्त है। विज्जा, शीला भट्टारिकाके पद्य बड़े सुन्दर है। गोवर्धन और हर्षवर्धनकी कविताओंमें भी प्रसाद गुण है, लेकिन, इन्हें अपवाद ही कहना चाहिये, क्योंकि इस कालके सभी महाकवि प्रसाद गुणको कविताका दूषण मानते थे। यद्यपि भट्टिकी तरह सबने व्याकरण-काव्य बनानेका प्रयास नहीं किया, किन्तु झुकाव उसी तरफ था, और श्री हर्षने तो अपनी कविता द्वारा दर्शनको भी सिखलानेकी कोशिश की है।

२५. सुबन्धु (५६० ई०)

सुबन्धु प्राकृत और अपभ्रंश-कालोंकी सन्धिमें पैदा हुए थे। इस कालका पूर्व भाग काव्यकी दृष्टिसे बड़ा समृद्ध है। इसी समय दण्डी, बाण जैसे महान् गद्यकाव्य-रचयिता तथा भट्टि, हर्ष, मयूर, भर्तृहरि, अमरुक, माघ, भवभूति, भट्टनारायण, मुरारि जैसे कवि और नाटककार पैदा हुए।

जहाँ तक उपलब्ध कृतियोंका सम्बन्ध है, संस्कृतके गद्य कवियोंमें सुबन्धु सबसे पुराने हैं। दण्डी, बाण उनकी परम्पराको आगे ले चलते हैं। सुबन्धुकी कृतिका नाम "वासवदत्ता" है, इस वासवदत्ताका वत्सराज उदयनकी प्रियतमा अवन्तिराजपुत्री वासवदत्तासे कोई सम्बन्ध नहीं है।

वासवदत्ता

(१) प्रास्ताविकम्—

१ करबदरसदृशमखिलं भुवनतलं यत्प्रसादतः कवयः।
पश्यन्ति सूक्ष्ममतयः सा जयति सरस्वती देवी ॥१॥

२. भवति सुभगत्वमधिकं विस्तारितपरगुणस्य सुजनस्य।
वहति विकाशितकुमुदो द्विगुणरुचिं हिमकरोद्योतः ॥५॥

३. विषधरतोऽप्यतिविषमः खल इति न मृषा वदन्ति विद्वांसः।
यदयं नकुलद्वेषी सकुलद्वेषी पुनः पिशुनः ॥६॥

४ हस्त इव भूतिमलिनो यथा यथा लघयति खलः सुजनम्।
दर्पणमिव तं कुरुते तथा तथा निर्मलच्छायम् ॥९॥

५ सा रसवत्ता विहता नवका विलसन्ति चरति नो कङ्कः।
सरसीव कीर्त्तिशेषं गतवति भुवि विक्रमादित्ये ॥१०॥

६ अविदितगुणाऽपि सत्कविभणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम्।
अनधिगतपरिमलाऽपि हि हरति दृशं मालतीमाला ॥११॥

२५. सुबन्धु (५६० ई०)

सुबन्धु "न्यायवार्तिक" रचयिता उद्योतकरके बाद हुए। कौनसे प्रदेशमें पैदा हुए, आदिके बारेमें कुछ पता नहीं लगता। बहुत सम्भव है, वह मध्यदेश (हिन्दी प्रदेश) के निवासी थे। विक्रमादित्य (गुप्तवंशी) के कीर्तिशेष रहनेका इन्हें बहुत अफसोस था, क्योंकि इन्हें विक्रमादित्य जैसा गुणग्राहक कहीं नहीं मिला। सुबन्धुके समयसे चार सौ वर्ष पहले भी गद्यकी नई छटा आरम्भ हो गई थी, यह रुद्रदामा (१६०–१७० ई०) के गिरनारवाले शिला-लेखसे पता लगता है। बाणने भट्टार हरिश्चन्द्रके गद्यबन्धकी तारीफ की है, जो अब उपलब्ध नहीं है। सम्भवत. वह सुबन्धुसे भी पहले हुए थे।

वासवदत्ता

१. प्रस्तावना—

१　जिसकी कृपासे हाथमें स्थित बैरके समान सारे भुवनको,
सूक्ष्ममति कवि देखते है, उस सरस्वती देवीकी जय हो ॥१॥

२　दूसरेके गुणोको फैलानेवाले सज्जनका सौभाग्य अधिक होता है। कुमुदको विकसित करनेवाले चन्द्रमाकी रोशनी की रुचि दुगुनी होती है ॥५॥

३. विद्वान झूठ नही कहते, कि खल सापसे भी अधिक विषम है।
क्योकि साप नकुलका द्वेषी है, तो चुगल सुकुलका॥६॥

४　राख से मलिन हाथकी तरह खल जैसे-जैसे सज्जनको अपमानित करता है, दर्पणकी तरह वह वैसे ही वैसे उसे निर्मल-आकारका बनाता है ॥९॥

५　सरोवरकी तरह पृथिवीपर विक्रमादित्यके कीर्तिशेष हो जाने पर वह रसज्ञता नष्ट हो गई, नये (तुच्छ राजा) विलासी है, फिर कौन किसके पास नही जायगा ॥१०॥

६　अज्ञात गुणोवाली भी सत्कविकी वाणी कानमें मधुकी धारा गिराती है। सुगंधित न हुई भी चमेलीकी माला आखोको आकृष्ट करती है ॥११॥

७. सरस्वतीदत्तवरप्रसादश्चक्रे सुबन्धु सुजनैकबन्धु ।
प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्ध विन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबन्धम् ॥१३॥

(२) नायकः कन्दर्पकेतुः—

८ अभूदभूतपूर्व सर्वोर्वीपतिचक्रचारुचूडामणिश्रेणीशोणकोण कषणनिर्मलीकृतचरणनखमणिर्नृसिंह इव दर्शितहिरण्य-कशिपुक्षेत्रदानविस्मय, कृष्ण इव कृतवसुदेवतर्पणो, नाराण इव सौकर्यसमासादितधरणिमण्डल. महानायको राजा चिन्तामणिनामं । यत्र च शासति धरणिमण्डल छलनिग्रह-प्रयोगो वादेषु, नास्तिकता चार्वाकेषु, कण्टकयोगो नियोगेषु परीवादो वीणासु, खलसयोग. शालिषु, द्विजिह्वसगृही तिराहितुण्डिकेषु, करच्छेद क्लृप्तकरग्रहणेषु, नेत्रोत्पाटनं मुनीना, द्विजराजविरुद्धता पकजाना, सार्वभौमयोगो दिग्गजस्य, अग्नितुलाशुद्धि सुवर्णाना, सूचीभेदो मणीनां, शूलभगो युवतिप्रसवे, दु शासनदर्शन भारते, करपत्रदारणं जलजानाम् ।

९ तस्य च पारिजात इवाश्रितनन्दन, हिमालय इव जनित-शिव, मन्दर इव भोगिभोगाकित, कैलास इव महेश्व-रोपभुक्तकोटि, मधुरिव नानारामानन्दकर, क्षीरोदमथनो-द्यतमन्दर इव मुखरितभुवन, रागरज्जुरिवोल्लासितरति, ईशानभूतिसचय इव सन्ध्योच्छलित, शरन्मेघ इवावदात-हृदयो विष्णु पदावलम्बी च, पार्थ इव समरसाहसोचित, कस इव कुवलयापीडभूषित, तार्क्ष्य इव विनताऽनन्दकर.

७ सरस्वतीके दिये वरके प्रसादवाले, सज्जनोंके एक मात्र वधु सुबंधुने प्रतिअक्षर श्लेष-सहित प्रवध-रचना-चातुरीकी निधिसमान (इस) ग्रथ को रचा ॥१३॥

२. नायक कन्दर्पकेतु—

८ अभूतपूर्व सारे पृथिवीपतियोके मुदर चूडामणिरुपी कसौटीके कोनेके घर्षणसे निर्मल किये चरण-नखरूपी मणियोवाला, नरसिंहकी तरह हिरण्यकशिपु-क्षेत्रके दानका विस्मय दिखानेवाले, कृष्णकी तरह वसुदेवको तृप्त किये, नारायणकी तरह आसानीसे पृथिवीमडलको प्राप्त किये, अचचल भी महानायक चिन्तामणि नामक राजा हुये। जिनके पृथिवीमडलके शासन करते समय छल और निग्रहका प्रयोग शास्त्रार्थोंमें होता, नास्तिकता चार्वाकोमें, कटकका सयोग नियोगो (आज्ञाओ) में, परिवाद (निंदा) का वीणाओमें, खल (खल, खलिहान) का सयोग धानोमें, दो जीभ (साप) का सग्रह सपेरो के पास, कर (टेक्स) का छेद विहित करोके लेनेमें, नेत्र उखाडना (उघाडना) मुनियोका, द्विजराज (चन्द्र) से विरोध कमलोका, सारी भूमिसे योग दिग्गजका, अग्नि और तुलाकी शुद्धि सुवर्णोंकी, सूची (सूई) से छेदना मणियोका, शूलकी पीडा तरुणियोके प्रसवमे, दु शासनका दर्शन महाभारतमें, करपत्र (आरा, करसे पत्र) द्वारा विदारण कमलोका था। ..

९ पारिजातकी तरह नन्दन (वन) में आश्रित, हिमालयकी तरह शिव (मगल) का उत्पादक, मन्दरकी तरह भोगी (सर्पो के) भोग (फण) से चिह्नित, कैलासकी तरह महेश्वर से उपभुक्त कोटि (शिखर या उत्कर्ष) वाला, मधुकी तरह नाना रामाओको आनददायक, क्षीर सागरके मथनको तैयार (खडे) मन्दरकी तरह भुवनको मुखरित करनेवाला, रागकी स्त्रीकी तरह रतिका उल्लासक, शकरकी विभूतिके सचयकी तरह, सन्ध्यासे उठा, शरद्के मेघकी तरह उज्ज्वल हृदयवाला और विष्णुपद (आकाश) का अवलम्बी, अर्जुनकी तरह समर साहस में योग्य, कसकी तरह कुवलयापीड

सुमुखनन्दनश्च, विष्णुरिव क्रोडीकृतसुतनु, शान्तनव इव स्ववशस्थापितकालधर्म, कौरवव्यूह इव सुशर्माधिष्ठित, जलधरसमय इव विमलतरवारिधारात्रासितराजमण्डल, सुबाहुरपि रामानन्दी, समदृष्टिरपि महेश्वर, मुक्तामयोऽप्यतरलमध्य, वशप्रदीपोऽप्यक्षतदशस्तनयोऽभूत्कन्दर्पकेतुर्नाम ।

१० येन च चन्द्रेणेव सकलकलाकुलग्रहेण, शर्वरीतिहारिणा, दलितकैरवेण, प्रसाधिताशेन विलोकिता, जलधय इव परामृद्धिमवापु ।

(३) स्वप्ने वासवदत्ता-दर्शनम्—

११. अथ स कदाचिदवसन्नाया यामवत्या दधिधवलकालक्षेपणकमासपिण्ड इव, निशायमुनाफेनपुज इव, मेनकास्वमार्जनधवलशिलाशकल इव, मधुच्छत्रच्छायमण्डलोदरे, पश्चिमाचलोपधानसुखनिषण्णशिरसो राजतताटकचक्र इव, श्यामश्यामाया, शेषमधुभाजि चषक इव विभावरीबध्वा, अपरजलधिपयसि शखकान्तिकामुक इव मज्जति कुमुदिनीनायके, शिशिरहिमशीकरकर्दमितकुमुदमध्यबद्धचरणेषु षट्चरणेषु, कलप्रलापपरागबोधितचकिताभिसारिकासु सारिकासु, प्रबुद्धाध्ययनकर्मठेषु, वटुषु विभासरागमुखरकार्पटिकजनोपगीयमानकाव्यकथासु रथ्यासु, विजयपताकामिव मकरध्वजस्य, आजिभूमिमिव मदनस्य, सकेतभूमिमिव लावण्यस्य, विहारस्थलीमिव सौन्दर्यस्य, एकायतनशालामिव

(कमल, शिरोभूषा) से भूषित, गरुडकी तरह विनता (नम्र) का आनदकर और सुमुख नदन (पुत्र), विष्णुकी तरह व्यापक सुन्दर तन, भीष्मकी तरह अपने वशमें काल (मृत्यु) धर्मको किये, कौरवोंके व्यूहकी तरह सुशर्मा (सुनय) द्वारा अधिष्ठित, वर्षाके समयकी तरह अधिक निर्मल, जलधारासे सत्रासित राज(हस) मडलवाला, सुवाहुकी तरह राम, (रामा, सुन्दरी) का आनद दायक, सम दृष्टि (युग्म आखो वाला) भी महेश्वर, मुक्तामय भी अचचल मध्य (हृदय) वाला, वश (वास) का प्रदीप भी अक्षत दश (दशा) वाला, (राजा चिन्तामणि) का कन्दर्पकेतु नामक पुत्र था।

१० और जिसके द्वारा चन्द्र द्वारा सारी कलाओंके ग्रहणसे शर्वरीति (शकरकी रीति) मनोहर, दलित कुमुद (धूर्त) वाले, स्वायत्त किये आशा (दिशा) वाले (उसके) द्वारा देखे जाते, समुद्रकी तरह उल्लसित गोत्र (जल) वाले, दूरवर्धित जीवनवाले, प्रसन्न-हृदय सतजनो ने परमऋद्धि को प्राप्त किया ।

३. स्वप्नमें वासवदत्ता दर्शन—

११ तब वह एक वार भिनसारमें (जब कि) कुमुदिनीपति ((चद्र), दहीकी तरह श्वेत, कालरूपी क्षपणक (साधु, नाशक) के मासपिड सा, निशारूपी जमुनाके फेनपुज सा, मेनकाके मार्जनके लिये निजी श्वेत शिलाखड सा, मधुछत्र से आकाशमें गर्भित अस्ताचलके तकियेके साथ सुखसे बैठे सिरवाला, रूपेकी तडागोके चक्र सा, सावली-सावली रात्रिरूपी वधूके बचे मद्यवाले प्यालेसा होते, पश्चिम (दिशारूपी) समुद्रके जलमे शखकी कान्ति (ढूढने) का इच्छुक सा हो रहा था, (जबकि) शिशिरकी ओसकी फुहारोंसे गीले कुमुदके भीतर भवर बधे चरणोवाले थे, कोमल कथनरूपी परागमे जगाई चकित अभिसारिका सी मैनाये, जगकर अध्ययनमें भिडे से छात्रो, विभास (विहाग) रागमे याचकजन सडको पर काव्य-कथायें गा रहे थे, (उसी समय) कामदेवकी विजय-पताकाकी सी, मदनकी युद्धभूमिसी, लावण्य कीसकेत-भूमिसी, सौंदर्यकी विहारस्थली सी सौभाग्यकी एक मात्र निवास-

सौभाग्यस्य, उत्पत्तिस्थानमिव कान्ते, स्तम्भनचूर्णमिव इन्द्रियाणाम्, आकर्षणमन्त्रसिद्धिमिव मनस, चक्षुर्बन्धनमहोषधिमिव मन्मथेन्द्रजालिन, त्रिभुवनविलोभनसृष्टिमिव प्रजापते, अष्टादशवर्षदेशीया कन्यामपश्यत् स्वप्ने।

१२. अथ ता प्रीतिविस्फारितेन चक्षुषा पिबन्निव जनितेर्ष्ययेव निद्रया चिरसेवितया स मुमुचे। अथ प्रबुद्धस्तु विषसरसीव दुर्जनवचसीव निमग्नमात्मानमवधारयितु न शशाक। तथा हि—निर्लक्षमाकाशतले आलिंगनार्थं प्रसारितबाहुयुगल, "एह्येहि प्रियतमे, मा गच्छ, मा गच्छे"ति दिक्षु विदिक्षु च विलिखितामिव, उत्कीर्णामिव, चक्षुषि निखातामिव हृदये प्रियतमामाजुहाव। ततस्तत्रैव शय्यातले निलीनो निषिद्धाशेषपरिजनो दत्तकपाट परिहृतताम्बूलादिसकलोपभोगस्त दिवसमनयत्। तथैव निशामपि स्वप्नसमागमेच्छया कथमप्यनैषीत्। अथ तस्य प्रियसखो मकरन्दो नाम कथमपि लब्धप्रवेशदर्शन, कन्दर्पसायकप्रहारपरवश कन्दर्पकेतुमुवाच—

१३. "सखे, किमिदमसाम्प्रतमसाधुजनोचितमध्वानमाश्रितोऽसि। तवैतच्चरितमालोक्य वितर्कदोलासु निवसन्ति सन्तः। खला पुनस्त्वदनुचितमनिष्टमाचरन्ति। अनिष्टोद्भावनरसोत्तर हि भवति खलहृदयम्। को नामाऽस्य तत्वनिरूपणे समर्थ ?"

कथमपि स्मरशरप्रहारपरवश कन्दर्पकेतु. परिमिताक्षर- ""ाच —

शाला, कान्तिके उत्पत्तिस्थान सी, इन्द्रियोके स्तम्भन करनेवाले चूर्णसी, मनके आकर्पण-मन्त्रकी सिद्धि सी, कामदेवरूपी इन्द्र-जालिक की नजर वाघनेवाली महौपधिमी, त्रिभुवनको लोभनेवाली ब्रह्माकी सृष्टि सी, अठारह वर्पकी कन्या को स्वप्नमें देखा।

१२ तब खुश हो आखें फाड पीते हुयेसे, चिरसेवित ईर्ष्यालु निद्रासे वह मानो युक्त हो गया। तब जगकर मानो विपके सरोवरमें दुर्जन-वचन में डूवा हुआ सा वह अपनेको थाम न सका। और अलख आकाशमे आलिगनके लिये दोनो वाहोको फैलाये "आ, आ प्रिय-तमा, मत जा, मत जा," वोलते दिशाओ और विदिशाओंमें प्रियतमाको विलिखित सी, आखमें उत्कीर्ण सी, हृदयमें जडी सी (जानकर) पुकारने लगा। तब वही शैय्याके ऊपर लेटा सारे परिजनोको हटा किवाड देकर ताम्बूल आदि सारे उपभोगोको छोड उसने वह दिन विताया। उसी तरह रात भी स्वप्न-समागमकी इच्छासे किसी तरह विताई। तब उसका प्रिय मित्र मकरन्द जैसे-कैसे घरके भीतर प्रवेश और दर्शन पाकर कामदेवके वाणोके प्रहार के परावीन कदर्पकेतुसे वोला—

१३ "मित्र, क्यो इस अनुचित, अमावुजनोके योग्य मार्गपर चल रहे हो? तुम्हारे इन आचरणको देखकर सतजन सदेहके हिंडोलेमें झूल रहे है, और खल तुम्हारे लिये अनुचित और अनिष्ट हर्कत कर रहे है। खलोका हृदय अनिष्ट के उद्भावनमें रस लेता है, इसकी वास्त-विकता कौन वतला सकता है? ..

(इस पर) कामदेव के वाणोके प्रहारसे विवश कदर्पकेतुने किसी तरह चन्द अक्षरोमें कहा—

१४. "वयस्य, दितिरिव शतमन्युसमाकुला भवत्यस्मादृशजनचित्तवृत्ति । नायमुपदेशकाल । पच्यन्त इव मेऽङ्गानि । कृष्यन्त इवेन्द्रियाणि । भिद्यन्त इव मर्माणि । निस्सरन्तीव प्राणा । उन्मूल्यन्त इव विवेका । नष्टेव स्मृति । अधुना तदलमनया कथया । यदि त्व सहपासुक्रीडासमदु खसुखोऽसि, तन्मया सममागम्यतामि"त्युक्त्वा परिजनालक्षित एव तेन सह पुरान्निर्जगाम ।

१५. विन्ध्यो नाम गिरिरदृश्यत—
यश्च प्रबृद्धगुल्मतया रोगीव दृश्यमानबहुधातुविकार, साधुरिव सानुग्रहप्रचारप्रकटितमहिमा, मीमासान्याय इव पिहितदिगम्बरदर्शन । यश्च हरिवशैरिव पुष्कराक्षप्रादुर्भावरमणीयै, राशिभिरिव भीममकरकुलीरमिथुनसगतै, करणैरिव शकुनिनागभद्रवालबकुलोपेतै, देवखातैरुपशोभितान्त । यश्च छन्दोविचितिरिव कुसुमविचित्राभि, वशापत्रपतिताभि, पुष्पिताग्राभि, प्रहर्षिणीभि शिखरिणीभिर्लताभिर्दर्शितानेकवृत्तविलास ।

(४) कुसुमपुर-राजकन्या वासवदत्ता—

१६. अस्ति मन्दरगिरिश्रृगैरिव प्रशस्तसुधाधवलै वृहत्कथालम्बैरिव शालभजिकोपशोभितै, वृत्तैरिव समाणवकक्रीडितै, करियूथैरिव समत्तवारणै, सुग्रीवसैन्यैरिव सगवाक्षै, वलि-

१४ "मित्र, दितिकी तरह शतमन्यु (इन्द्र या सौ क्रोधो) से समाकुल होती है, हमारे जैसे लोगो की चित्तवृत्ति । यह उपदेशका समय नही। मेरे अग जल रहे है, जीवन निकालेसे जा रहे है, हृदय फट सा रहा है, प्राण निकल से रहे हैं, विवेक उन्मूलित से हो रहे हैं, स्मृति नष्टसी हो रही है। सो अब यह बात रहने दो। यदि तुम बचपन से साथ धूल खेलनेके समयने दुख-सुखके साथी हो, तो मेरे साथ, चलो", यह कह परिजनोसे छिप कर वह उसके साथ नगरमे निकल पडा।..

१५ (आगे विन्ध्य पर्वत दिखाई पडा)—
जो बढी हुई झाडियोसे रोगोसा बहुतमी धातुओ (सोना-चादी या वात-पित्त आदि)को विकारोको दिखाता, साधुकी तरह सानुग्रह (शिखरपर ग्रहोके या अनुग्रह सहित) प्रचारसे (अपनी) महिमा प्रकट करता, **मीमांसाशास्त्र**की तरह **दिगम्बर** (आकाश या जैन) दर्शन को ढके था। जो **हरिवंशों** की तरह पुष्कराक्ष (कमल-नयन या हस) के प्रादुर्भावमे रमणीय, राशियोकी तरह मीन-मकर-कर्कट-मिथुन (मछली, मगर, केकडाके जोडो) से सयुक्त, करणो (तिथि आदि) की तरह पक्षी नागवल्ली, तरुण मौलसरीसे युक्त, अमानुष-निर्मित सरोवरो द्वारा भीतर से शोभित था। और जो **छन्दोविचिति** (छद ग्रथ) की तरह कुसुमोसे विचित्र (कुसुमविचित्रा) वासके पत्ते पर गिरे (वशस्थ) पुष्पिताग्र, प्रथिताग्रा (छद या फले अग्रभाग), प्रहर्षणी (एक छंद या हर्षकारक), शिखरिणी (छद या शिखरवाली) लताओंसे अनेक प्रकारके वृत्तो (छदो या वातो) की शोभाको दिखला रहा था।

४. पटनाकी राजकुमारी वासवदत्ता—

१६ मन्दर पर्वतकी चोटियोकी तरह प्रशस्त चूनेसे श्वेत, **वृहत्कथा** (ग्रथ) के लम्बो (सर्गो) की तरह शालभजिकाओ (पुतलियो) से शोभित, वृत्तो (छदो या वर्तमान) की तरह छात्रोकी क्रीडावाले, गज-समूहोकी तरह मत्तगजो सहित, सुग्रीवकी सेनाओकी तरह गवाक्षो (जगलो या उस नामके वानर सेनापति) से युक्त, वलि

भवनैरिव सुतलसन्निवेशे, वेश्मभिरुद्भासितम्। धनदेनापि प्रचेतसा, गोपालेनापि रामेण, प्रियवदेनापि पुष्पकेतुना, भरतेनापि लक्ष्मणेन, तिथिपरेणाप्यतिथिसत्कारप्रवणेन, असख्येनापि सख्यावता, अमर्मभेदिनाऽपि वीरतरेण। अपतितेनापि नानासवासक्तेन, सुदर्शनेनाप्यचक्रेण, अजातमदेनापि सुप्रतीकेन, हसेनाप्यपक्षपातिना, अविदितस्नेहक्षयेणापि कुलप्रदीपेन, अग्रन्थिनापि वशपोतेन, अग्रहेणापि काव्यजीवज्ञेन, निदाघदिवसेनेव वृषवर्धितरुचिना, माघविरामदिवसेनेव तपस्यारम्भिणा, नभस्वतेव सत्पथगामिना, विवस्वतेव गोपतिना, महेश्वरेणेव चन्द्र दधता निवासिजनेनानुगतम्। घनापगमेनेव दर्शितखण्डाभ्रेण, वेलातटेनेव प्रवालमण्डनेन, गजेन्द्रेणेव पल्लववर्धितरुचिना, कोकिलेनेव परपुष्टेन, भ्रमरेणेव कुसुमेषुलालितेन, जलौकसेव रक्ताकृष्टिनिपुणेन, महानटबाहुनेव वद्धभुजगाकेन, गरुडेनेव विलासिहृदयतापकारिणा, वन्धकेनेव शूलानामुपरिगतेन वेश्याजनेनाधिष्ठित कुसुमपुर नाम नगरम्।..

(राजा या वलि कर्म) के भवनोकी तरह सुतल (पाताल) या सुन्दर भूवरा के स्थानोवाले गृहो से चमचमाता (वह नगर) था। (उसके) निवासी धनद (कुवेर या धन देनेवाले) प्रचेतस (वरुण या समझदार), गोपालके साथ रामसे, प्रियवादीके साथ पुष्पकेतु (फूल और ध्वजा या कामदेव) से, भरतके साथ लक्ष्मणसे भी, तिथिवाले भी अतिथि (सत्कार)-परायण, असख्य भी सख्यायुक्त (ज्ञानी), विना मर्म भेदे भी अतिवीर, न गिरे भी नाना आसव (मद्य) में आसक्त, सुदर्शन (चक्र या देखनेमें सुन्दर) भी अचक्र (अकपट), अनुत्पन्न मदवाले भी सुप्रतीक (सुन्दर अग या देवगज), हस भी अपक्षपाती (विना पख उडनेवाले या न-पक्षपाती), अज्ञात स्नेह (प्रेम या तेल) की हानिसे भी कुल-प्रदीप, विना ग्रंथिके भी वशके पोत (बच्चे या छोटे वास), ग्रह न होते भी काव्य (कविता या शुक्र) तथा जीव (वृहस्पति या जीव या काम) के ज्ञाता, गर्मीके दिनकी तरह वृष (वृषराशि या धर्म) की रुचि (तेज वर्धक), माघके विराम-दिवसकी तरह तपस्या करनेवाले, वायुकी तरह सत्पुरुषो (या नक्षत्रो) के पथ पर जानेवाले, सूर्यकी तरह गोपति (किरणोंके या गायोके स्वामी), महेश्वरकी तरह चन्द्र (या सुवर्ण) धारण करनेवाले थे। जिस कुसुमपुर की निवासिनी वेश्यायें थी वादलके हटनेसे दिखलाई देते मेघ-खडोसी, समुद्रके किनारेकी तरह प्रवाल (मूंगे) के मडनवाली, देवागनाओकी तरह इन्द्राणीकी परिचर्यामें चतुर, गजेन्द्रकी तरह पल्लवमे रुचि (या पल्लवसे कान्ति) वढाये, कोयलकी तरह परपुष्ट (दूसरेसे पोषित या परम पोपणयुक्त), भवरकी तरह कुसुमेपु (कामदेव या फूलोमे) लालित, (या जलगृहोकी तरह) रक्त (रुधिर या अनुरक्त) के आकर्पणमें निपुण, महानट (वडे नट या शकर के) वाहकी तरह वधे भुजग (साप या लपट) वाली, गरुडकी तरह विलासियोके हृदयोको ताप करनेवाली वुध की तरह शूलपर चढी।

१७. प्रचण्डप्रतिपक्षलक्ष्मीकेश-पाशकुसुममालामोदसुरभितकर-कमल, प्रशस्तकेदार इव बहुधान्यकार्यसम्पादक, पार्थ इव सुभद्रान्वित सभीमसेनश्च, कृष्ण इव सत्य-भामोपेत सबलश्च, शृंगारशेखरो नाम राजा प्रति-वसतिस्म। यो बलभित्, पावक, धर्मराट्, निर्ऋति प्रचेता सदागति धनद, शकर इत्यष्टमूर्तिरप्यनष्ट-मूर्तिः।

१८. तस्य चाभूदेवविधस्य राज्ञो महिषीदिग्गजमदरेखेवा-नन्दितालिगणा, पार्वतीव सुकुमारा चन्द्रलेखालकृता च वनराजिरिव नवमालिकोद्भासिता सचित्रका च, अप्सरसहतिरिव सहतसुकेशी सुमजुघोषा च, सर्वान्त-पुरप्रधानभूता अनगवती नाम। तयोश्च मध्यमो-पान्ते वयसि वर्तमानयो कथमपि दैववशात् त्रिभुवन-विलोभनीयाकृति, पुलोमतनयेव नन्दितसहस्रनेत्रा, मेरु-गिरिमेखलेव सुजातरूपा, शरन्निशेव उल्लसत्तारका, सत्परिषदिव अच्छिद्रद्विजपक्तिभूषिता, राक्षसकुललक्ष्मीरिव माल्यवत्सुकेशशोभिता तनयाऽभूद् वासवदत्ता नाम। अथ सा रावणभुजवन इव उल्लसितगोत्रे, विन्ध्याचल इव मदनालकृते, पारावार इव सजातलावण्ये, नन्दवन इव सदाकल्पतरूणामभिनन्दिते, पवन इव सुमनोहरे, परिणाम-मुपयात्यपि यौवने परिणयपराङमुखी तस्थौ।

[१७ **शृंगारशेखर** राजा बसता था (जोकि) था, प्रचड शत्रुकी लक्ष्मीके केशोकी कुसुममालाकी सुगधसे सुगधित करकमलवाला, प्रशसनीय क्यारीकी तरह बहुत धान्य और कार्यका सपादक, अर्जुनकी तरह सुभद्रा (या भद्रजनो से) युक्त और भीमसेन (भयानक सेना) से युक्त, कृष्णकी तरह सत्यभामा (या सत्यके प्रकाश) से और बल (शक्ति या बलराम) से युक्त, जो शत्रुओका नाशक (या इन्द्र), पावक (पवित्र), धर्मराज, निरुपद्रव (या दिक्पाल), शकर (या कल्याण-कारी) होनेसे अष्टमूर्ति भी अ-नष्ट (या नही आठ) मूर्तिवाला था।

१८ उस राजाकी पटरानी अनगवती थी, (जोकि) दिग्गजोकी मद-रेखा सी आनदित अलिगणो (सखियो या भ्रमरो) वाली, पार्वतीकी तरह सुकुमार और चन्द्रलेखा (सुन्दर कार्तिकेय या चन्द्रलेखा हार) से शोभित, वनपक्तिकी तरह नवमालिका (एक फल या नवीन माला) से उद्भासित और चित्रक (तिलक या वृक्ष विशेष)-सहित, अप्सराओकी तरह सघन सुकेशी (सुकेशी अप्सरा) से युक्त, मजुघोषा (मजुभाषिणी या मजुघोषा अप्सरा) युक्त। उन दोनोके जवानीके अन्त होते समय दैववश कैसे ही वासवदत्ता नामक पुत्री पैदा हुई (जो कि थी) त्रिभुवनको लुभानेवाली आकृतिसे शचीकी तरह सहस्र नेत्र (इन्द्र या हजारो आखो) को आनदित करनेवाली, मेरुपर्वतकी मेखलाकी तरह सुजातरूपा (सुन्दर उत्पन्न रूप या सुन्दर सुवर्ण वाली), शरद्कालकी रात्रि की तरह तारा (पुतली या नक्षत्रो) को उल्लसित करनेवाली, सत-परिषद्की तरह छिद्र (दोष)-रहित द्विजोसे भूषित, राक्षसकुलकी लक्ष्मीकी तरह माल्यवान् (या मालावाले) सुकेश (या सुन्दर केश) वालोसे शोभित। वह पूरी तरुणाई में, (जो-कि थी) रावणके भुज-वनमे उल्लसित हुये गोत्रो (पर्वतो या सजातियो) वाली, विध्याचलकी तरह मदन (या उस नामके वृक्ष) से अलकृत, सागरको तरह लावण्य (सुन्दरता या क्षारपन)-सहित, नदनवनकी तरह सदा कल्पतरु (या सुन्दर तरुओ) से अभिनदित, पवनकी तरह सुमनोहर, भी विवाह-विमुख थी।

१९. सा च क्षणेनैं कंकश समवलोक्य विरक्तहृदया सती तस्मात् कर्णीरथादवततार। अथ तस्यामेव रात्रौ सा स्वप्ने,वालिन- मिवागदोपशोभितस्पर्धागृह लक्ष्मीसरस्वत्यो त्रिभुवन-विलोभनीयकृति कंचिद्युवान ददर्श ।

(५) कन्दर्पकेतु-सौंदर्य-विरह व्यथा—

२०. स चिन्तामणिनाम्नो राज्ञस्तनय कन्दर्पकेतुरिति स्वप्न एव तन्नामादिकमश्रृणोत्। अनन्तरम् "अहो प्रजापते रूप-निर्माणकौशलम्! मन्ये, स्वस्यैव नैपुण्यस्यैकत्र दर्शनो-त्सुकमनसा वेधसा जगत्त्रयसमवायिरूपपरमाणुनादाय विर-चितोऽयमिति, अन्यथा कथमिमास्य कान्तिविशेष ईदृशो भवति। वृथैव दमयन्ती नलस्य कृते वनवासवैशसमवाप, मुधैवेन्दुमती महिष्यप्यजानुरागिणी वभूव। विफलमेव दुष्यन्तस्य कृते दुर्वासस शापमनुवभूव शकुन्तला। निरर्थकमेव मदनमजरी नरवाहनदत्त चकमे। निष्कारण-मेव उरुगारिमनिर्जितरम्भा रम्भा नलकूवरमचीकमत्। व्यर्थमेव धूमोर्णा स्वय स्वयवरार्थमागतेषु देवगणेषू धर्मराजमाचकाक्ष। निष्प्रयोजनमेव ऋद्धिर्गन्धर्वपक्षेषु कुवेर-माससाद। अहेतुकमेव पुलोमतनया देवेन्द्रासक्तचित्ता वभूव।" इति वहुविध चिन्तयती, विरह मुर्मुरमध्यमाधि-रूढेव, मदनदावाग्निशिखाकवलितेव, वसन्तकालाग्नि-गृहीतेव, दक्षिणमारुतरुद्रपावकग्रस्तेव, उन्मादपातालगृह प्रविष्टेव, शून्यकरणग्रामेव वर्तमाना, हृदये विलिखित-मिव, उत्कीर्णमिव, प्रत्युप्तमिव, कीलितमिव, निगलित-मिव, वज्रलेपघटितमिव, अस्थिपंजरप्रविष्टमिव, मर्मा-न्तरस्थितमिव, मज्जारसशवलितमिव, प्राणपरीतमिव, अन्तरात्मानमविष्ठितमिव, रुधिराशये द्रवीभूतमिव, पलल-सविभक्तमिव, कन्दर्पकेतु मन्यमाना, उन्मत्तेव, अन्धेव,

१९ (स्वयंवर सभामें) वह क्षण भर एक-एकको देखकर विरक्त हृदय हो मचसे उतर गई। तब उसी रात में उसने स्वप्नमे वालिकी तरह अगद (या भूषण) से उपशोभित .लक्ष्मी और सरस्वतीकी स्पर्धाके गृह, तीनो लोकोको लुभानेवाली आकृतिवाले किसी तरुणको देखा।

५. कन्दर्पकेतुका सौंदर्य और विरह-व्यथा—

२० वह चिन्तामणि नामक राजाका पुत्र कन्दर्पकेतु है, यह भी स्वप्नमें ही उसने उसके नाम आदिको सुना, फिर (सोचने लगी) "अहो, ब्रह्माके रूप-निर्माणकी निपुणता! मैं समझती हू, अपनी निपुणताको एक जगह दिखलानेके लिये उत्सुक ब्रह्माने तीनो जगत्के उपादान रूपके परमाणुओको लेकर इसे बनाया, नही तो कैसे इसकी विशेष कान्ति होती? व्यर्थ ही दमयन्तीने नलके लिये वनवासकी पीडा सही। व्यर्थ ही पटरानी इन्दुमती भी अजकी अनुरागिनी हुई। व्यर्थ ही शकुन्तलाने दु ष्यन्तके लिये दुर्वासाके शापको भोगा। निरर्थक ही मदनमजरी नरवाहनदत्तपर आसक्त हुई। अकारण ही अपने उरुकी गरिमासे रभा (केले) को जीतनेवाली रभाने नलकूवरको प्यार किया। व्यर्थ ही धर्मोणाने स्वयवरके लिये आये देवगणोमें स्वय धर्मराजसे प्रेम किया। निष्प्रयोजन ही ऋद्धिने गधर्वो-में कुबेरको प्राप्त किया। बिना हेतु ही पुलोमकी पुत्री (शची) देवेन्द्र पर आसक्त हुई।" इस तरह बहुत प्रकारसे सोचती वह विरहके भौर (की आग) मे पडी, मदनरूपी दावानलकी ज्वालासे ग्रसित सी, वसतकालकी अग्निमें पकडी सी, दक्खिनी हवारूपी भयकर पावकसे ग्रस्त सी, उन्मादरूपी भुईंघरेमें प्रविष्ट सी, सुन्न इन्द्रियोवाली सी हुई। उसने हृदयमें कदर्प-केतुको जटित सा, उत्कीर्ण सा, खचित सा, कीलित सा, बद्ध सा, वज्रलेप-गठित सा, हड्डियोमें प्रविष्ट सा, कलेजे के भीतर स्थित सा, प्राणोमें व्याप्त सा, अन्तरात्मापर अधिष्ठित सा, रुधिरमें, मज्जामें घुल गया सा, मासमें मिल गया सा समझा। और वह उन्मत्ता सी,

वधिरेव, मूकेव, शून्येव, निरस्तेन्द्रियग्रामेव, मूर्च्छा-गृहीतेव, ग्रहग्रस्तेव, यौवनसागरतरलतरगपरम्परापरि-गतेव, रागरज्जुभि परिवारितेव, कन्दर्पकुसुमवाणै-कीलितेव, शृगारभावनाविषरसघूर्णितेव, रूपपरिभावना-शल्यकीलितेव, मलयानिलापहृतजीवितेव भवन्ती, "हा प्रिये सख्यनगलेखे, वितर हृदये मे पाणिपद्म, दु सहो विरहसन्ताप । मुग्धे मदनमजरि, सिचागानि चन्दन-वारिणा। सरले वसन्तसेने, सवृणु केशपाशम्। तरले तरगवति, विकिरागेषु कैतकधूलिम्। वामे मदनमालिनि, कलय वलय शैवालकलापेन । चपले चित्रलेखे, चित्रपटे विलिख चित्तचौर जनम्। भामिनि विलासवति, विक्षिपा-वयवेषु मुक्ताचूर्णनिकरम् । रागिणि रागलेखे, स्थगय नलिनीदलनिचयेन पयोधरभारम् । सुकान्ते कान्तिमति, मन्द मन्दमपनय वाप्पविन्दून् । यूथिकालकृते यूथिके, सचारय नलिनीदलतालवृन्तेनार्द्रवातान् । एहि भगवति निद्रे, अनुगृहाण माँ । धिक् इन्द्रियैरपरै, किमिति लोचनमयान्येव न कृतान्यगानि विधिना । भगवन् कुसुमायुध, तवायमजलि, अनुवगो भव भाववति मादृशे जने। मलयानिल, वह यथेप्ट, अपगता मम प्राणा" इति वहुविध भापमाणा वासवदत्ता सखीजनेन समं समुमूर्च्छ ।

२१ अथ तस्यास्तमालिका नाम शारिका तत्प्रियसखीभिः सम समालोच्य कन्दर्पकेतोर्भावमाकलयितु प्रेषिता ।

अन्धी सी, वहरी सी, गूगी सी, सूनी सी, सारे इन्द्रियोके विना सी, मूर्छित सी, भूत पकडी सी, यौवन-सागरके चचल तरगोमें लीन सी, रागरूपी रस्सीसे वेष्टित सी, कदर्पके पुष्प-वाणोसे जडी सी, शृगार-भावनाके विषरससे घूमते सिरवाली सी, (तरुणके) रूपके सोचने-रूपी शल्यसे कीलित सी, **मलयानिल** द्वारा जीवन हरी जाती सी सखियोंसे कहने लगी—"हा प्रिय सखी अनगलेखा, मेरी छातीपर अपने पाणिपकजको रख, विरहका सताप दुस्सह हो रहा है। मुग्धा मदनमजरी, चदनजलमे अगोको भिगो। भोली वसतसेना, (मेरे) केशोको वाघ। चचल तरगवती, अगमें केवडेके केसरको विखेर। सुन्दरी मदनमालिनी, सेवारका ककण वना। चपला चित्रलेखा, (मेरे) चित्तचोरको चित्रपटपर लिख। भामिनी विलासवती, अवयवोमें मोतीके चूर्ण डाल। रागिनी रागलेखा, कमलिनीके पत्रोंसे स्तनोको ढाक दे। सुन्दर कातिवाली कातिमती, धीरे-धीरे (मेरे) आसुओके वूदोको हटा। जूहीसे अलकृत यूथिका, कमलिनीके पत्रके पंखेमे भीगी भीगी हवा चला। भगवती, निद्रा आओ, मेरे ऊपर अनुग्रह करो। दूसरी इन्द्रियोको धिक्कार। ब्रह्माने क्यो अगोको लोचनमय नही वनाया? हे भगवान् कामदेव, तुम्हारे लिये यह हाथ जोडती है, भाववाले मेरे जैसे जनपर अनुकूल होओ। हे मलयवायु, यथेष्ट वहो, मेरे प्राण जा रहे हैं। (फिर) वह मूर्छित हो गई।

•

२१ तव उनकी तमालिका नामकी मैनाको प्रिय सखियोने सलाह करके कंदर्पकेतुका समाचार जाननेके लिये भेजा।...

(६) वासवदत्ता-भवने--

२२. अथ सहर्षं समुत्थाय मकरन्दस्तां तमालिकामाहूय विदितवृत्तान्तामकरोत्। सा तु तस्मै कृतप्रणामा तां पत्रिकामुपानयत्। अथ मकरन्दस्तामादाय पत्रिकां विस्रस्य स्वयमेवावाचयत्।

प्रत्यक्षदृभावाप्यस्थिरहृदया हि कामिनी भवति।
स्वप्नानुभूतभावा दृढयति न प्रत्ययं युवतिः॥

२३ तच्छ्रुत्वा कन्दर्पकेतुरमृतार्णवनिमग्नमिव, सर्वानन्दानामुपरि वर्तमानमिवात्मानं मन्यमानो मन्दं मन्दमुत्थाय प्रसारितबाहुयुगलस्तमालिकामालिलिंग। अथ तयैव सार्धं समासीन--"किं करोति, किं वदति, कथमास्ते" इत्यादि सकलं वासवदत्तावृत्तान्तमपृच्छत्। तं च दिवसं तत्रैवातिबाह्य तस्मात्प्रदेशात्तया सहोच्चचाल ससुहृत्कन्दर्पकेतुः। अत्रान्तरे भगवानपि मरीचिमाली वृत्तान्तममुं कथयितुमिव मध्यमं लोकमवततार।

२४. ततः क्रमेण च विघटमानदलपुटकुमुदकाननकोशमकरन्दविन्दुसन्दोहसान्द्रं निष्यन्दास्वादमुदितमधुकरकुलकलरुतमुखरितदिगन्ते, चन्द्रिकापानभरालसचकोरकामिनीभिरभिनन्दितागमने, सुरतभरपरिश्रमखिन्नपुलिन्दराजसुन्दरीस्वेदजलकणिकापहारिणि प्रवाति सायन्तने तनीयसि निशानिश्वासनिभे नभस्वति, कन्दर्पकेतुस्तमालिलिकामकरन्दसहायो वासवदत्तानगरमयासीत्।

२५ अथ स प्रविश्य कटकैकदेशं विनिर्मितं, अभ्रलिहशिखरेण, सुधाधवलेन एकान्तरनिविष्टकनकमुक्तामरकतपद्मरागच्छलेन, वासवदत्तादर्शनार्थमवस्थितदेवतागणेनेव सालवलयेन परिगतं, अनिलोल्लासिताभिर्नभस्तरुकुसम-

६. वासवदत्ताके भवनमें—

२२ हर्षके साथ उठकर मकरंदने तमालिकाको बुलाकर सब वृत्तान्तसे परिचित कराया। उसने प्रणाम कर उसके लिये लाई चिट्ठी सामने रक्खी। तब मकरदने चिट्ठी लेकर खोलकर स्वय पढा—
"भावोको प्रत्यक्ष देख भी कामिनी अस्थिर हृदयवाली होती है। स्वप्नमें भावोको अनुभव करनेवाली युवतीका विश्वास दृढ नहीं हो सकता।"

२३ यह सुन अमृतसागरमें डूबे से, सभी आनदोके ऊपर अपनेको अवस्थित मानते से कदर्पकेतुने धीरे-धीरे उठकर दोनो हाथोको फैला तमालिकाको आलिगन किया। फिर साथ बैठकर—"वह क्या करती है, क्या बोलती है, कैसे है" इत्यादि कहते वासवदत्ताके सभी वृत्तान्त पूछे। वह दिन वही विताकर उसीके साथ उस प्रदेशसे अपने मित्र कंदर्पकेतुको लिये चला। इसी बीच भगवान् सूर्य भी इस वृत्तान्तको मानो कहनेके लिये पृथिवीलोकसे नीचे उतरे। . .

२४ तब कदर्पकेतु, तमालिका और मकरदके साथ वासवदत्ताके नगरमें शामको गया, जब कि क्रमश खिलते पत्रपुटवाले कुमुद-वनके कोशोसे मकरन्दके बिन्दुओके घने क्षरण और आस्वादसे मुदित भ्रमरोंके मृदुल शब्दोंसे दिशायें मुखरित थीं, चादनीके पानके भारसे अलस चकोरियाँ जिसके आगमनको अभिनदित कर रही थी, परिश्रमसे खिन्न शबरराजसुन्दरीके स्वेद जलकणोको हटाता रात्रिके अतिक्षीण स्वांसको तरह सायकालका वायु बह रहा था।

२५ (नगरमें) प्रवेश कर कार्तिकेय-तुल्य प्रभाववाले कदर्पकेतुने राजधानीके एक मार्गपर निर्मित, वासवदत्ताके भवनको देखा, जिसका कि आकाशचुम्बी शिखर चूनेसा धवल था, (जो) एक ओर रक्खे सुवर्ण-सोनो-पन्ना-लालके व्याजसे, वासवदत्ताके देखनेके लिये अवस्थित देवतागणोकी तरह, साल (वृक्ष) की वल्लियोसे घिरा, सुरपुरकी शोभाको तर्जित करती वायुसे हिलाती पारिजात कुसुम-मजरियोकी

मजरीभिरिव तर्जयन्तीभिरिव गगनपुरश्रिय पताकाभि-रुपशोभमान, निधानमिव कौतुकस्य, आस्थानमिव शृगारस्य, कुलगृहमिव सकलविभ्रमाणा, सकेतस्थानमिव सौन्दर्यस्य, वासवदत्ताभवन ददर्श।

२६ प्रणयपेशला प्रमदानामालापकथा शृण्वन् कन्दर्पकेतु-र्मकरन्देन सह तद्भवन प्राविशत्।

(७) वासवदत्ता-सौदर्यम्—

२७ अकरोच्च मनसि—अहो भुवनातिशायि सौन्दर्यम्। अहो शृगारकलाकौशलम्। तथा ह्यय तत्काललीलावह-लविमलमालवीदशनकान्तिदन्तिदन्तघटितो मण्डपोऽसावपि कनकशलाकाविनिर्मितयन्त्रपजरसयत क्रीडाशुक इत्यादि-परिचिन्तयन्, प्रविश्य, व्याकरणेनेव सरक्तपादेन, महा-भारतेनेव सुपर्वणा, रामायणेनेव सुन्दरकाण्डचारुणा, जघा-युगलेन विराजमाना, छन्दोविचितिमिव भ्राजमानतनु-मध्या, नक्षत्रविद्यामिव गणनीयहस्तश्रवणा, न्यायस्थिति-मिवोद्यतकरस्वरूपा, बौद्धसगतिरिवालकारभूषिता, उप-निषदमिवानन्दमेकमुद्द्योतयन्ती, द्विजकुलस्थितिमिव चारु-चरणा, विन्ध्यगिरिश्रियमिव सुनितम्बा, तारामिव गुरु-कलत्रतयोपशोभिता, शतकोटियष्टिमिव मुष्टिग्राह्य-मध्या, प्रियगुश्यामासखीमिव प्रियदर्शना, ब्रह्मदत्तमहिषी-मिव सोमप्रभा, दिग्गजकरेणुकामिवानुपमा, रेवामिव नर्मदा, वेलामिव तमालपत्रप्रसाधिता, अश्वतरकन्यामिव मदालसा, वासवदत्ता ददर्श।

सी पताकाओंसे शोभित था। जो कौतुककी निधि सा, शृंगाररसका दरबार सा सारी शोभाओके कुलगृह सा, सौंदर्यका सकेत-स्थान सा था।

२६ महिलाओके प्रेम-मनोहर वार्तालापको सुनते कदर्पकेतु मकरदके साथ उस भवनमे प्रविष्ट हुआ।

७. वासवदत्ताका सौंदर्य—

२७ कन्दर्पकेतुके मनमे हुआ—"अहो भुवनमें सबसे बढकर (यह) सौंदर्य! अहो शृंगार कलाका कौशल! जैसे मालविकाओके तत्काल लीलामय विरल विमल दातोकी कातिवाले गजदतोसे गढा यह मडप है, यह भी सुवर्ण शलाकाओके बने पिंजरेमे रक्खा पालतू तोता" इत्यादि यह सोचते प्रवेश कर उसने व्याकरणकी तरह रक्तपाद (लाल चरण या तेन रक्त सूत्र) के साथ, **महाभारतकी** तरह सुन्दर पर्व (या ग्रथि) के साथ, रामायणकी तरह **सुन्दरकाण्ड** (या मनोहर नाल) से सुचारु दोनो जाघोके साथ विराजमान वासदत्ताको देखा। (वह थी) **छन्दोविचिति** (ग्रथ) की तरह तनुमध्या (छद या क्षीण कटि) हो शोभती, नक्षत्रविद्याकी तरह हस्त और श्रवण (नक्षत्र या हाथ और कान) से गणनीय (श्रेष्ठ), न्याय (शास्त्र) की स्थितिकी तरह **उद्योतकर** (नैयायिक या प्रकाशक) स्वरूपवाली, **बौद्ध** सगतिकी तरह अलकार (आभूषण या सूत्रालकार) से विभूषित, उपनिषद् की तरह एक आनदको उद्योतित करती, द्विज (पक्षी या ब्राह्मण) के कुलकी मर्यादाकी तरह सुन्दर चरणो (या चरण सूत्र) वाली, विंध्य पर्वतकी शोभाकी तरह सुन्दर नितम्ब (या पर्वत निम्नदेश) वाली, ताराकी तरह गुरुपत्नी (बहुत परिजनो) से उपशोभित, वेल की यष्टिकी तरह मुट्ठीमें कमर आ जानेवाली, प्रियगुश्यामा (कगुसी श्यामा सखी) प्रियदर्शना (नाम या सुन्दर रूपवाली) ब्रह्मदत्तकी महिषीकी तरह सोमप्रभा (या चन्द्रमाकी कान्तिवाली), दिग्गजकी हथिनियोकी तरह अनुपमा (या उपमा रहित), रेवाकी तरह नर्मदा (नदी या क्रीडा देनेवाली), समुद्रतटकी तरह तमाल-पत्रोमे सजाई गई, अश्वतर-कन्याकी तरह मदालसा (रानी या मदसे अलस)।

(८) किं करणीयम्—

२८ अथ ता प्रीतिविस्फारितेन चक्षुषा पिबत कन्दर्पकेतोर्जहार चेतना मूर्च्छा। तमपि पश्यन्ती वासवदत्ता मुमूर्च्छ। अथ मकरन्दसखीजनप्रयत्नाल्लब्धसज्ञावेतावेकासनमलचक्रतु। अथ वासवदत्ताया प्राणेभ्योऽपि गरीयसी सर्वविस्रम्भपात्र कलावती नाम सखी कन्दर्पकेतुमुवाच "आर्यपुत्र, नाय विस्रम्भकथानामवसर। अतो लघुतरमेवाभिधीयते। त्वत्कृते याऽनया वेदनाऽनुभूता, सा यदि नभ पत्रायते, सागरो मेलानन्दायते, ब्रह्मा लिपिकरायते, भुजगपतिर्वा कथकायते तदा मिकपि कथमप्यनेकैर्युगसहस्रैरभिलिख्यते कथ्यते वा। त्वयापि राज्यमुज्झित किं बहुना आत्मा सकटे समारोपित एव। एषाऽस्मत्स्वामिदुहिता प्रभाताया शर्वर्या यौवनातिक्रमदोषशकिना पित्रा हठेन विद्याधरचक्रवर्तिनो विजयकेतो पुत्राय पुष्पकेतवे पाणिग्रहणेन दातव्येति निश्चिता। अनया चार्ययाऽस्माभि सह सम्मन्त्र्यालोचित—"अद्य यदि त जनमादाय नागच्छति तमालिका, तदावश्यमेवाश्रयाश आश्रयितव्य" इति। सुकृतवशाच्च महाभाग समागत.। तदत्र यत् साम्प्रत तत्र भवानेव प्रमाणम्" इत्युक्त्वा विरराम।

(९) पलायनम्—

२९ अथ कन्दर्पकेतुर्भीतभीत इव, प्रणयानन्दामृतसागरलहरीभिराप्लुत इव, भुवनत्रयराज्याभिषिक्त इव, वासवदत्तया सह सम्मन्त्र्य, मकरन्द वार्तान्वेषणाय तत्रैव नगरे नियुज्य, भुजगेनेव सदागत्यभिमुखेन, सरित्पतिनेव शुक्ति-

८. क्या करना चाहिए—

२८ प्रेम से आखें फाड़ कर उसे पीते कन्दर्पकेतुकी चेतनाको मूर्छाने हर लिया। वासवदत्ता भी उसे देख मूर्छित हो गई। तव मकरद और सखियोके प्रयत्नसे होशमें आये दोनो एक आसन पर विराजमान हुये। वासवदत्ताकी प्राणसे भी वढकर सारे विश्वासोकी पात्र कलावती नामकी सखीने कदर्पकेतुसे कहा—"आर्यपुत्र, इत्मीनानके साथ वात करने को अवसर नही है, इसलिये वहुत सक्षेपमें ही कहती हूँ। तुम्हारे लिये इसने जो वेदना सही, उसे, यदि आकाश पत्र हो जाये, सागर दवात वन जाये, व्रह्मा लिपिकर हो जाये, शेप कथा कहनेवाले हो जाये, तव (उसमें से) कुछ मुश्किलमे अनेक हजार युगोमे लिखी या कही जा सकती है। तुमने भी अपना राज छोडा। अधिक क्या, अपनेको सकटमें भी डाला। इस हमारी स्वामिपुत्री को यौवन वीत जानेके दोपसे डरते पिताने हठकर विद्या-धरोके राजा विजयकेतुके पुत्र पुष्पकेतुके साथ पाणिग्रहण करके कल सवेरे देनेका निश्चय किया है। इस आर्याने हमारे साथ सलाह करके निश्चय किया था—"आज यदि उस जनको लेकर तमालिका नही आती, तो अवश्य मैं अग्निका ही आश्रय लूगी।" पुण्यवश महाभाग (यहा) आ गये। सो यहा जो उचित हो, उसके वारेमें आप ही प्रमाण है।" यह कहकर वह चुप हो गई।.

९. पलायन—

२९ तव प्रेमरूपी आनदके अमृतसागरकी लहरोमे डूबनेसे, तीनो लोकके राज्यपर अभिपिक्त हुये से कदर्पकेतु वासवदत्ताके साथ उसने सलाह करके मकरन्दको पता लेने के लिये उसी नगरमें नियुक्त करके, मनोजव नामक घोडे पर नगरसे निकल पडा। (वह घोडा) भुजगकी तरह गतिमें सदा अभिमुख (सीधे) सागरकी तरह शुक्ति (सीपो

शोभितेन, विन्ध्यविपिनेनेव श्रीवृक्षलाञ्छितेन, हंसेनेव मानसगतिना, अरण्येनेव गण्डशोभितेन, वनस्पतिनेव स्कन्धशोभितेन, वज्रेणेवेन्द्रायुधेन, मनोजवनाम्ना तुरगेण तया सह नगरान्निर्जगाम। .

(१०) आत्मघात-निश्चयः—

३०. जलनिधिं अपश्यत्, अचिन्तयच्च (कदर्पकेतु)—"अहो मे कृतापकारेणापि विधिनोपकृतिरेव कृता, यदय लोचन-गोचरता नीत समुद्र। तदत्र देहमुत्सृज्य प्रियाविरहाग्नि निर्वापयामि। यद्यप्यनातुरस्य देहत्यागो न विहितस्तथापि कार्यः। न खलु सर्वं सर्वं कार्यमेव करोति। असारे ससारे केन किं नाम न कृतम्? तथाहि—गुरुदारहरण द्विजराजोऽकरोत्। पुरूरवा ब्राह्मणधनतृष्णया विननाश। नहुप परकलत्रदोहदी भुजगतामयासीत्। ययातिर्विहित-ब्राह्मणीपाणिग्रहण पपात। सुद्युम्न स्त्रीमय एवाभवत्। सोमकस्य प्रख्याता जगति जन्तुवधनिर्घृणता। पुरुकुत्सः कुत्सित एवाभवत्। कुवलयाश्वोऽश्वतरकन्यामपि जगाम। नृग कृकलासतामगमत्। नल कलिनाऽभिभूत। सवरणो मित्रदुहितरि विक्लवतामगात्। दशरथोऽपीष्टरामोन्मादेन मृत्युमवाप। कार्तवीर्यो गोब्राह्मणपीडया पचत्वमयासीत्। शन्तनुरतिव्यसनाद्विललाप। युधिष्ठिर समरशिरसि सत्य-मुत्ससर्ज। तदित्थ नास्त्येव जगत्यकलङ्क कोऽपि। तदहमपि देहमुत्सृजामि।...

या भवरियो) से शोभित, विध्याचलके वनकी तरह श्रीवृक्ष (पीपल या घोडोकी विशेष भंवरी) से लाछित, हसकी तरह मानस (मानसरोवर) की ओर गमन (या मनके वेग) वाला, अरण्यकी तरह गड (गैंडा या गडा) से शोभित, वनस्पतिकी तरह स्कन्ध (कन्धे या वडी डाली) से अलकृत, वज्र की तरह इन्द्रायुध (इन्द्रका हथियार या नील नेत्रवाला)।

१०. आत्महत्याकी तैयारी—

३० जलनिधिको देख (कदर्पकेतु) सोचने लगा—"अहो, अपकार करते भी विधिने मेरा उपकार ही किया, जो कि इस समुद्रको लोचन-गोचर बनाया। सो मैं यहा देह छोड प्रियाके विरहकी अग्नि बुझाऊगा। यद्यपि निरोगके लिये देहत्याग (शास्त्रमें) विहित नही है, तो भी वह करणीय (ही) है। सभी करणीय ही नही करते। असार ससारमें किसने क्या नही किया?—गुरुपत्नीका हरण द्विजोके राजा (चन्द्र) ने किया, पुरूरवा ब्राह्मणके धनकी तृष्णा करके नष्ट हुआ। **नहुष** दूसरेकी पत्नीका इच्छुक हो अजगर बना। **ययाति** ब्राह्मणीका पाणिग्रहण करके पतित हुआ। **सुद्युम्न** स्त्री बन गया। प्राणि-वधमे सोमककी निर्दयता ससार में प्रसिद्ध है। **पुरुकुत्स** निंदित ही हुआ। कुवलयाश्व, **अश्वतर** (नागराज) की कन्याके पास गया। नृग गिरगिट हुआ। **नल** कलिमे अभिभूत हुआ। **संवरण** मित्रकी कन्यापर विकल हुआ। **दशरथ** भी प्रिय रामके लिये पागल हो मृत्युको प्राप्त हुआ। **कार्तवीर्य** गो-ब्राह्मणकी पीडाके कारण मरा। **शन्तनुने** अतिव्यसनके कारण विलाप किया। **युधिष्ठिरने** युद्धक्षेत्रमें सत्यको छोड़ दिया। इस प्रकार ससारमें कोई कलकरहित नही है। सो मै भी शरीरत्याग करूगा।..."

३१ तत कृतस्नानादिसकलकृत्यो जलनिधिजलमवतरितुमारेभे शरीरत्यागाय।

३२ अथ सानग्रहेषु ग्राहेषु, निर्मत्सरेपु मत्स्येषु, अनिच्छेषु कच्छपेषु, अक्रूरेषु नक्रेषु, अभयंकरेषु मकरेषु, अमारेषु शिशुमारेषु आकाशसरस्वती समुदचरत्—"आर्य कन्दर्पकेतो, पुनरपि तव प्रियया सगतिर्भविष्यत्यचिरेण। तद्विरम मरणव्यवसायात्" इति। सोऽपि तदुपश्रुत्य मरणारम्भाद्विरराम। तत प्रियासमागमाशया शरीरस्थितिहेतुमशन चिकीर्षु कच्छोपान्तवन जगाम। अथ इतस्तत परिभ्रमन्, फलमूलादिना वने वर्तयन्, कियन्त काल निनाय कन्दर्पकेतु।

(११) वासवदत्ता-समागमः—

३३ शरत्समयारम्भे विजृम्भमाणे कन्दर्पकेतुरितस्तत परिभ्रमन् काचिच्छिलापुत्रिका "मम प्रियानुकारिणी"ति करेण पस्पर्श। अथ सा स्पृष्टमात्रैव शिलाभावमुत्सृज्य वासवदत्तास्वरूप प्रपेदे। तामवलोक्य कन्दर्पकेतुरमृतार्णवमग्न इव सुचिरमालिंग्य "प्रिये वासवदत्ते, किमेतत्", इति प्रपच्छ।

३४ सा तु दीर्घमुष्ण च नि श्वस्य प्रत्युवाच—"आर्यपुत्र, अपुण्याया मन्दभाग्याया मम कृते महाभागो भवान् उत्सृष्टराज्य एकाकी परिभ्रमन् प्राकृतजन इव अवाङ्मनसगोचर दु खमनुबभूव। उपवासादिना तृषातुरे भवति निद्राश्रान्ते प्रथम प्रबुद्धाऽह "भवत. फलमूलादिकमाहरिष्यामी"ति विचिन्त्य फलाद्यन्वेषणाय वनेऽगच्छम्।

३१ स्नान आदि सारे कृत्योंको करके (अब) वह शरीरत्यागके लिये समुद्रजल में उतरने लगा।

३२ जब कि ग्राह अनुग्रहयुक्त थे, मत्स्य मत्सर (ईर्ष्या) रहित थे, कच्छप इच्छाहीन थे, नक्र(नाके) क्रूरता रहित थे, मकर न-भयकर थे, शिशु मार मारनेवाले नहीथे, ऐसे समय आकाशवाणी हुई—"आर्य कदर्पकेतु, प्रियाके साथ जल्दी ही फिर तुम्हारा मिलन होगा। सो मरनेकी कोशिश न करो।" उसे सुनकर उसने मरनेका ख्याल छोड दिया। तब वह प्रियाके मिलनेकी आशासे शरीर-रक्षाके लिये भोजन करनेकी इच्छासे तटके पासवाले वनमें गया। फल-मूल आदिसे वनमें जीवन-यापन करते इधर-उधर घूमते कदर्पकेतुने कितना ही समय बिताया।.

११. वासवदत्तासे भेंट—

३३ शरद् ऋतुके आरभ होते समय कन्दर्पकेतुने इधर-उधर घूमते किसी पत्थरकी पुतलीको "मेरी प्रिया जैसी है" सोच हाथसे छू दिया। छूने मात्र से उसने शिलारूपको छोडकर वासवदत्ताका स्वरूप प्राप्त कर लिया। उसे देखकर अमृतसागरमें निमग्नकी तरह कदर्पकेतुने देर तक आलिंगन करके पूछा—"प्रिये वासवदत्ता, यह क्या?"

३४ उसने देर तक गर्म उसास लेकर उत्तर दिया—"आर्यपुत्र, मुझ पापिनी अभागिनी के लिये आप महाभागने राज्य छोड साधारण आदमीकी तरह अकेले घूमते वचन और मनमें न आनेवाले दुःख अनुभव किये। आप उपवास आदिसे प्यासे निद्रामे थके थे। पहले जगकर मैं 'आपके लिये फल-मूल लाऊ' यह सोच फलादिकी तलाशके लिये वनमें गई।"

३५ "अथ क्षणेन तरुगुल्मान्तरित सेनानिवेश दृष्ट्वा 'किमय ममान्वेषणाय तातस्य व्यूह समायात। आहोस्विदार्यपुत्रस्ये'ति चिन्तयन्ती मा चारकथितोदन्तो दूरात्किरातसेनापतिर्धावति स्म। ततोऽन्य किरातसेनापतिस्तादृश एव तथाभूतया सेनयाऽन्वितो मृगया गत सोऽपि तच्छ्रुत्वा धावति स्म।

३६ अनन्तर चिन्तित मया—'यद्यहमार्यपुत्राय कथयामि, तदा स एकाक्येभिरेव हन्तव्योऽथ न कथयामि तदैभिरह घातनीये'ति चिन्ताक्षण एव एकामिषलुब्धयोरिव गृध्रयो तयोर्युद्धमासीत्। तत प्रवृत्तशरासारदुर्दिनस्थगितदिनकरकिरणे, रणकर्मविशारदद्विरदकरदूरोत्क्षिप्तक्षिप्लखड्गधरसुभटाश्लिष्यमाणविद्याधरविभ्रमे, समरदर्शनसचरदनेकनभश्चरचारणरचितचक्रवाले, चरच्चारुभटखड्गखण्डितद्विपदसमाप्तपिशाचिकाकर्णोलूखलाभरणे, कौतुकाकृष्टजनकृतवदननान्दीके, कान्दिशीकभीरुणि, प्रस्कन्नक्लीवजने, रणोद्यतजितकाशिनि रणखले, शृगालिकाशृगालप्रार्थनीयेष्वामिषपिण्डेष्विव, जिह्मगदष्टेष्विव, श्वित्रदुर्भगेष्विव, शरीरेष्वनास्था कलयन्त, सम द्विषता धनुषा च जीवाकर्षण योधाश्चक्रु।

३७ अनन्तर च नारायण इव कश्चिन्नरकच्छेदमकार्षीत्। कश्चिद्बौद्धसिद्धान्त इव क्षपितश्रुतिवचनदर्शनोऽभवत्। कश्चित्क्षपणक इव कटावृतविग्रहोऽभवत्। कश्चिदाशकितोरुभग सुयोधन इव पयसि विवेश। कश्चित्सुरापद्विज इव पपात। कश्चित् शरतल्पगतो भीष्म इव गतायुश्चिर श्वसन्नासीत्। कश्चित्कर्ण इव विक्लवी-

३५ उमी क्षण वृक्षो-झाडियोसे छिपे एक छावनीको देखकर मै सोचने लगी —"क्या यहा मुझे ढूढनेके लिये वापूकी अथवा आर्यपुत्रकी सेनायें आ गई ?" . गुप्तचरसे वात मुनकर दूरसे किरात सेनापति मेरे पीछे दौडा। दूसरा किरात मेनापति भी वैसी ही सेनाके साथ शिकार को आया था। वह भी वात सुनकर दौडा।

३६ इसके वाद मैंने सोचा "यदि मै आर्यपुत्रको कहती हू, तो वह अकेले (लडते) इनके द्वारा मारे जायेंगे। न कहू, तो इनके द्वारा मै मारी जाऊगी"। मेरे ऐसा सोचते समय ही एक मास-खडके लोभी दो गिद्धो की तरह उनके वीच युद्ध हुआ। ..(वह युद्ध-क्षेत्र था) चलते वाणोकी वदलीसे ढकी सूर्यकिरणोवाला, रणकर्ममें विशारद हाथियोके सूडो द्वारा दूर फेंके गये खड्गधारी सैनिकोमे आलिगित होते विद्याधरके सौंदर्यवाला, देखनेके लिये सचार करते अनेक आकाशचारी चारणोसे सचित चक्रवालवाला, सुन्दर भटोके चलते खड्गसे खडित हाथीके पदसे वनाये पिशाचीके ओखली कर्णाभूषणवाला, कौतुकसे आकृष्ट जनोके मुहसे निकले, शब्दोवाला, पलायन करनेवाले भीरुओवाला, गिरे कायर जनोवाला, रणोद्यत जयशालियोवाला। वहा (वह) युद्ध, गीदड और गीदडीके पसन्द मासपिडोकी तरह, सापसे डसोकी तरह, रक्तसे असुन्दरकी तरह, अपने शरीरोकी पर्वाह न करते शत्रुओ और धनुषोके जीव (या प्रत्यचा) का आकर्पण करनेके साथ हुआ।

३७ वादमें नारायणकी तरह किसीने नरक (राक्षस या नरमुह) का छेद किया। **वौद्ध-सिद्धान्त**की तरह कोई नष्ट-श्रुति-वचन-दर्शन (कान जीभ आख के विना या वेद-वचनके विरोधी दर्शनवाला) हुआ। कोई **जैन** साधुकी तरह कट (शव या चटाई से ढके शरीरवाला) हुआ, कोई जघाके तोडनेकी आशकावाले दुर्योधनकी तरह पानीमें घुस गया। कोई मदिरा पीनेवाले ब्राह्मण की तरह पतित हुआ। कोई शरशय्यापर स्थित भीष्मकी तरह आयु-रहित हो देर तक सास लेता रहा, किसीने कर्णकी तरह सारे अंगमें विकल हो शक्ति (हथि-

कृतसर्वांग शक्तिमोक्षमकरोत्। कश्चिद्राघव इव रावण वधमकरोत्। ततो विध्वस्तध्वजपट पतत्पताक च्युतचा-पचामरापीड स्खलत्खड्ग तत्समस्तमुभय मिथो जगाम हनन सैन्यम्।

३८ ततश्च यस्याश्रम, तेन मुनिना पुष्पादिकमादायागतेन योगदृशा प्रतिपन्नवृत्तान्तेन 'त्वत्कृते ममायमाश्रमो भग्न' इति कुपितेन 'शिलामयी पुत्रिका भव' इति शप्ताऽस्म्यहम्। तत क्षणेनैवेय वराकी बहुदु खमनुभव। तीत्यनुग्रहादार्य-पुत्रकरुणया च स मुनिर्याच्यिमान आर्यपुत्रहस्तस्पर्शावधिक शापमकरोत्।"

३९ तत कन्दर्पकेतु श्रुतवृत्तान्तेन समागतेन मकरन्देन तया वासवदत्तया च सम स्वपुर गत्वा हृदयामिलषितानि सुर-लोकदुर्लभानि सुखानि ताभ्या सहानुभवन् कालमनेक निनाय।

२६. दण्डी (५८० ई०)

दण्डीका समय सुबन्धु और वाणके बीचमें छठी सदीका अन्त है। यह दक्षिणके रहनेवाले थे। इनकी तीन कृतियोमें ,एक "अवन्तिसुन्दरी कथा" से पता लगता है, कि इनके प्रपितामह दामोदर भारविके मित्र थे, जिसके कारण भारविको ५०० ई० के पहले होना चाहिए। अवन्तिसुन्दरीके अतिरिक्त "दशकुमारचरित" और "काव्यादर्श" इनकी अन्य उपलब्ध कृतियाँ हैं। "काव्यादर्श" अलकारका बहुत ही सरल और सुन्दर ग्रन्थ है। इसके गुणोंसे मुग्ध होकर तिब्बती भाषामें इसका अनुवाद हुआ, जो आज भी अलकार-शास्त्र पढ़नेवालोके लिए अनिवार्य पाठ्य ग्रन्थ है। तिब्बतमें मम्मटके "काव्यप्रकाश" की भी तालपोथी इन पक्तियोके लेखक ने देखी थी। जान पड़ता है, उससे दण्डीकी कृति सुबोध तथा अच्छी जान पडी, इसीलिए

यार या वल) छोडा, किसीने रामकी तरह रावण (शत्रु) का वध किया। पताकायें गिराते चाप और चमरके आभूषणको च्युत करते, खड्गको (हाथ से) छोडते सैनिक मारे गये।

३८ तव पुष्प आदि लेकर लौटी मुझे उस आश्रमके मुनिने दिव्य दृष्टिसे (सव) वृत्तान्त जान कर—"तेरे कारण मेरा यह आश्रम नष्ट हुआ" कहते कुपित हो "तू शिलामयी पुतली हो जा" कह मुझे शाप दिया। तव क्षण भरमें ही, "वेचारी वहुत दु ख अनुभव कर रही है", सोच अनुग्रहसे आर्यपुत्र पर (भी) करुणा करके याचना करनेपर, उन्होंने आर्यपुत्रके हाथके स्पर्शको अवधि उस शापको कर दी।"

३९ तव कंदर्पकेतुका वृत्तान्त सुनकर आये **मकरन्द** और **वासवदत्ताके** साथ उसने अपने पुरमें जाकर उन दोनोंके साथ हृदयके लिये प्रिय देवलोक-दुर्लभ सुखोंको अनुभव करते काल विताया।

२६. दण्डी (५८० ई०)

उसीका अनुवाद किया गया। "दशकुमारचरित" वहुत ही मजा हुआ गद्य-काव्य है, जो कितनी ही वातोंमें सुवन्धु और वाणसे भी अधिक आकर्षक है। दण्डीने "छन्दोविचिति"के नामसे एक छन्द-ग्रन्थ भी लिखा था, जो अव प्राप्य नहीं है। "कालपरिच्छेद" नामक एक और ग्रन्थको भी इनका वनाया वतलाया जाता है। लेकिन, दण्डीकी सर्वश्रेष्ठ कृति "दशकुमार-चरित" ही है। कालिदास उपमामें, भारवि अर्थगाम्भीर्यमें श्रेष्ठ माने जाते हैं, तो दण्डीको पद-लालित्यमें अद्वितीय सावित करनेवाला यही "दशकुमारचरित" है। "दशकुमारचरित"में भी सभी उच्छ्वासोंको दण्डीकी कृति नहीं माना जाता, न इस ग्रन्थ में दशों कुमारोंका चरित मिलता है।

दशकुमारचरितम्

(१) कुमाराणां जन्म वियोगश्च—

१ अस्ति समस्तनगरीनिकषायमाणा शश्वदगण्यपण्यविस्तारितमणिगणादिवस्तुजातव्याख्यातरत्नाकरमाहात्म्या मगधदेशशेखरीभूता पुष्पपुरी नाम नगरी। तत्र वीरभटात्तरगतुरगकुञ्जरमकरभीषणसकलरिपुगणकटकजलनिधिमथनमन्दरायमाणसमुद्दण्डभुजदण्ड, पुरन्दरपुराङ्गणवनविहरणपरायणगीर्वाणतरुणगणिकागणजेगीयमानयाऽतिमानया शरदिन्दुकुन्दघनसारनीहारमृणालमरालसुरगजनीरक्षीरगिरिशाट्टहासकैलासकाशनीकाशमूर्त्या कीर्त्याऽभित सुरभित, स्वर्लोकशिखरो रुचिररत्नरत्नाकरवेलामेखलावलयितधरणीरमणीसौभाग्यभागभाग्यवान् विरचितारातिसतापेन प्रतापेन सततंतुलितवियन्मध्यहसो राजहसो नाम धनदर्पकन्दर्पसौन्दर्यसोदर्यहृद्यनिरवद्यरूपो भूपो बभूव। तस्य वसुमती नाम सुमती लीलावतीकुलशेखरमणी रमणी बभूव। विजितामरपुरे पुष्पपुरे निवसता सानन्तभोगलालिता वसुमती वसुमतीव मगधराजेन यथासुखमन्वभावि।

२ तस्य राज्ञ परमविधेया धर्मपालपद्मोद्भवसितवर्मनामधेया धीरधिषणावधीरितविबुधाचार्यविचार्यकार्यसाहित्या कुलामात्यास्त्रयोऽभूवन्। तेषा सितवर्मण. सुमतिसत्यवर्माणौ, धर्मपालस्य सुमन्त्रसुमित्रकामपाला, पद्मोद्भवस्य सुश्रुतरत्नोद्भवाविति तनया समभूवन्। तेषु धर्मशील सत्यवर्मा ससारासारता बुद्ध्वा तीर्थयात्राभिलाषी देशान्तरमगमत्। विटनटवारनारीपरायणो दुर्विनीत कामपालो जनकाग्रजन्मनो शासनमतिक्रम्य भुव बभ्राम। रत्नोद्भवोऽपि वाणिज्यनिपुणतया पारावारतरणमकरोत्। इतरे मन्त्रिसूनव पुरन्दपुरातिथिषु पितृषु यथापूर्वमन्ववतिष्ठन्।

दशकुमारचरित

१. कुमारोका जन्म और वियोग—

१ सारी नगरियोकी कसौटी सी, सदा अगिनित पण्यो में फैलाई मणि समूह आदि वस्तुओ से रत्नाकरकी वडाई प्रकट करने वाली, मगध-जैसे देश के शिरसी पुष्पपुरी (पटना) नामक नगरी है। वहा राजहस नामक भूप थे, जो कि वीर सैनिको की उत्तरगो से युक्त तुरग-गजरूपी मकरोसे भीषण सारे रिपुगणोके सेनारूपी सागरके मथनके लिए मन्दर जैसे उद्दण्ड भुज-दण्डवाले, जिनकी कीर्त्ति नगर-उपवनमें विहरनेवाली देवोका तरुण गणिकायें गाती थी, (कीर्त्ति जो) अति सम्मानयुक्त शरद्के चन्द्रसी कुन्दवन, कपूर, ओस, मृणाल, हस, ऐरावत, नीर, क्षीर, शकरके, अट्टहास, **कैलास** या, काशके ममान उज्ज्वल, सारी दिशाओंमें व्याप्त, उससे चारो तरफ सुगधित। (राजा तो) स्वर्ग-शिखरके रुचिर रत्नोके रत्नाकरकी तट-मेखलासे घिरी पृथिवीरूपी रमणीके सौभाग्यके भागसे भाग्यवान्, शत्रुके सतापके प्रतापसे सदा आकाशके मध्यमें स्थित हस (सूर्य) के समान, तथा भारी अभिमानसे कामदेवके सौन्दर्यके सहोदर मनोहर निर्मल रूपवाले थे। उनकी रमणी **वसुमती** थी, जो सुमति, सुन्दरियोके कुलकी चूडामणि थी। अमरपुरको जीतनेवाले पुष्प-पुर नगरमें निवास करते मगधराजके साथ अनत भोगोमे लालित वसुमतीने **वसुमती** (पृथिवी) की तरह **मगधराज**के साथ यथेच्छ सुख-भोग किया।

२ राजाके अनेक आज्ञाकारी, धीर, वुद्धिमें वृहस्पतिको हरानेवाले, विचारकार्यवाले **धर्मपाल, पद्मोद्भव, सितवर्मा** नामक तीन खान-दानी मत्री थे। उनमें सितवर्माके पुत्र थे **सुमतिवर्मा** और **सत्यवर्मा**, धर्मपालके **सुमन्त्र, सुमित्र** और **कामपाल**, पद्मोद्भवके **सुश्रुत** और **रत्नोद्भव**। उनमें धर्मात्मा सत्यवर्मा ससारको असार समझ तीर्थयात्राकी इच्छासे देशान्तर चला गया। भडुओ, नटो, वेश्याओ में परायण दुराचारी कामपाल पिता और वडे भाईकी आज्ञाका उल्लघन कर पृथिवीपर घूमने लगा। रत्नोद्भव भी व्यापारमें निपुण होनेने समुद्र पार चला गया। दूसरे मन्त्री-पुत्र अपने पिताओके इन्द्रपुरके अतिथि होने (मरने) पर पूर्ववत् कार्य करते रहे।

३ एकदा हितै सुहृन्मन्त्रिपुरोहितै सभाया सिंहासनासीनो गुणैरहीनो (राजा) ललाटतटन्यस्ताजलिना द्वारपालेन व्यज्ञापि—"देव, देवदर्शनलालसमानस कोऽपि देवेन विरच्यार्चनार्हो यतिर्द्वारदेशमध्यास्ते" इति। तदनुज्ञातेन तेन स सयमी नृपसमीपमानायि। भूपतिरायान्त त विलोक्य सम्यग्ज्ञाततदीयगूढचरभावो निखिलमनुचरनिकर विसृज्य मन्त्रिजनसमेत प्रणतमेन मन्दहासमभाषत —"ननु तापस, देश सापदेश भ्रमन्भवास्तत्र तत्र भवद-भिज्ञात कथयतु" इति।

४ तेनाभाषि भूभ्रमणवलिना प्राजलिना—"देव, शिरसि देवस्याज्ञामादायैन निर्दोष वेश स्वीकृत्य मालवेन्द्रनगर प्रविश्य तत्र गूढतर वर्तमानस्तस्य राज्ञ समस्तमुदन्तजात विदित्वा प्रत्यागमम्। मानी मानसार स्वसैनिकायुष्म-त्तान्तराये सपराये भवत पराजयमनुभूय वैलक्ष्यलक्ष्य-हृदयो वीतदयो महाकालनिवासिन कालीविलासिनमनश्वरं महेश्वर समाराध्य तप प्रभावसतुष्टादस्मादेकवीरारा-तिघ्नी भयदा गदा लब्ध्वात्मानमप्रतिभट मन्यमानो महाभिमानो भवन्तमभियोक्तुमुद्युक्ते। तत पर देव स्वय एव प्रमाणम्" इति।

(२) अवन्तिसुन्दरी-प्रेम—

५ अथ मधुकरकलकण्ठाना काकलीकलकलेन दिक्चक्र वाचालयन्, मानिनीमानसोत्कलिकामुपनयन्, माकन्द-सिन्दुवाररक्ताशोककिंशुकतिलकेपु कलिकामुपपादयन् मदनमहोत्सवाय रसिकमनासि समुल्लासयन् वसन्तसमय समाजगाम। तस्मिन्नतिरमणीये कालेऽवन्तिसुन्दरी नाम

३ एक वार सुहृत्-मित्र-पुरोहितो सहित गुणोसे युक्त राजा सभामें सिहासनपर वैठे थे, उसी समय ललाटके ऊपर हाथ जोडकर द्वारपालने राजासे अर्ज की—"देव, देव द्वारा पूजनीय कोई यति महाराजके दर्शनको लालसासे आकर द्वारपर खडे हैं।" तव अनुज्ञा मिलनेपर वह उस सयमीको राजाके समीप ले आया। आते हुये उसे देखकर उसके गुप्तचर होनेको अच्छी तरह जान सारे अनुचरोको हटाकर मत्रीजनो के साथ (वैठे) राजा प्रणाम करते उस यतिसे मद हासके साथ वोले—"तो तपस्वी, भेस वदले (नाना) देशोमे घूमते आपने जहा-जहा जो कुछ देखा, उसे कहो।"

४ पृथिवी-भ्रमणके वलीने हाथ जोडकर कहा—"देव, महाराजकी आज्ञाको सिरपर धारणकर यतियोके इस निर्दोष भेसको स्वीकार कर (मैंने) **मालवराज**के नगरमें प्रवेश किया। वहा वहुत गुप्त रहते राजाके सारे वृत्तान्तोको जानकर मै लौटा हू। अभिमानी मानसारने अपने सैनिकोको मरवा, युद्धमें आपसे पराजित होकर लज्जित-हृदय (पर) निर्दय हो महान् काल तक रहनेवाले काली-विलासी (शकर) की आराधना की। तपके प्रभावसे सतुष्ट शकर ने उसे वडे वीर शत्रुओको हनन करनेवाली एक भयकर गदा प्रदान की। जिस से अपनेको शत्रुहीन समझ वडे अभिमानसे वह आपके साथ लडनेकी तैयारी कर रहा है। इसके वाद देव ही जानें।"

२. अवन्तिसुन्दरी प्रेम—

५ वसन्त का समय आ गया। भ्रमरोके मधुर कठोकी शहनाईका कलरव दिशाओको वाचान्वित कर रहा था, मानिनियोके मनको उत्कठित कर रहा था। वह माकंद, सिन्दुवार, लाल-अशोक, पलाश, तिलकके वृक्षोपर कलिया पैदा करते कामदेवकी यात्राके लिये रसिकोके मनोको उल्लसित कर रहा था। उस अतिरमणीय

मानसारनन्दिनी प्रियवयस्यया बालचन्द्रिकया सह नगरोपान्तरम्योद्याने विहारोत्कण्ठया पौरसुन्दरीसमवाय-समन्विता कस्यचिच्चूतपोतकस्य छायाशीतले सैकततले गन्धकुसुमहरिद्राक्षतचीनाम्बरादिनानाविधेन परिमल-द्रव्यनिकरेण मनोभवमर्चयन्ती रेमे। तत्र रतिप्रतिकृति-भवन्तिसुन्दरी द्रष्टुकाम काम इव वसन्तसहाय पुष्पोद्-भवसमन्वितो राजवाहनस्तदुपवन प्रविश्य तत्र तत्र मलयमारुतान्दोलितशाखानिरन्तरसमुद्भिन्नकिसलय - कुसुमफलसमुल्लसितेषु रसालतरुषु कोकिलकीरालिकुल-मधुकराणामालापान् श्रावश्राव . चक्रवाककलरव्या-कुलविमलशीतलसलिलललितानि सरासि दर्शदर्शम-मन्दलीलया ललनासमीपमवाप।

६ बालचन्द्रिकया "नि शकमित आगम्यताम्" इति हस्तसज्ञया समाहूतो निजतेजोनिर्जितपुरुहूतो राजवाहन कृशोदर्या अवन्तिसुन्दर्या अन्तिक समाजगाम। सा मूर्तिमतीव लक्ष्मीर्मालवेशकन्यका स्वेनेवाराध्यमान सकल्पितवर-प्रदानायाविर्भूत मूर्तिमन्त मन्मथमिव तमालोक्य मन्द-मारुतान्दोलिता लतेव मदनावेशवती चकम्पे। तदनु क्रीडाविश्रम्भान्निवृत्तलज्जया कानि कान्यपि भावान्तराणि व्यधत्त। "ललनाजन सृजता विधात्रा नूनमेषा घुणाक्षरन्यायेन निर्मिता। नो चेदब्जभूरेवविधनिर्माण-निपुणो यदि स्यात्तर्हि तत्समानलावण्यामन्या तरुणी किं न करोति" इति सविस्मयानुराग विलोकयतस्तस्य समक्ष स्थातु लज्जिता सती किंचित्सखीजनान्तरितगात्रा तन्नयनाभिमुखै किंचिदाकुञ्चितैरे चितभ्रूलतैरपागवीक्षितै-रात्मन. कुरगस्यानायमानलावण्य राजवाहन विलोक-यन्त्यतिष्ठत्।

कालमें मानसारकी पुत्री **अवन्तिसुन्दरी** अपनी प्रिय-सखी **बालचन्द्रिका** और नगरकी सुन्दरियोके साथ नगरके छोरपर अवस्थित रमणीय उद्यानमें विहारकी लालसामे गई। वहाँ किसी असोलेकी छायासे शीतल वालुका तलपर गन्ध-कुसुम-हल्दी-अक्षत-रेशमी वस्त्र आदि नाना प्रकारके सुगधित द्रव्योसे कामदेवकी पूजा करती रमण करने लगी। रतिकी मूर्ति सी अवतिसुन्दरीको देखनेकी इच्छासे मित्र-वसन्त सहित कामदेवकी तरह **पुष्पोद्भव**के साथ **राजवाहन**ने उस वनमें प्रवेश किया। वह जहा-तहा मलयवायुसे हिलती शाखाओपर लगातार फूटते नवपल्लव-पुष्प-फलोसे उल्लसित आमके वृक्षोपर कोयल, तोता, भवरोके आलापोको सुनते-सुनते चकवोके कल-रवमे आकुल निर्मल शीतल जलोमे ललित सरोवरोको देखते-देखते लीलाके साथ ललनाओके समीप पहुचे।

६ "बेखौफ इधर आइये" बालचद्रिकाके हाथके इस इशारेसे बुलाये जाने पर अपने तेजसे इन्द्रको पराजित किये **राजवाहन** पतली कमरवाली अवन्तिसुन्दरीके पास पहुचे। वह साकार लक्ष्मी सी मालवेश्वरकी कन्या इच्छित वर प्रदानके लिये पूजे जाते साकार प्रकट हुये मन्मथकी तरह उन्हें देखकर मद वायुसे हिलाई लताकी तरह कामके आवेशसे कप उठी। फिर खेलके ख्यालमे लज्जा छोड कौन-कौनसे दूसरे हाव-भाव किये। "ललनाओको बनाते समय विधाताने अवश्य इसे घुणाक्षर न्यायसे बनाया होगा। नही तो यदि ब्रह्मा ऐसियोके निर्माणमे निपुण होता, तो उसके समान सौंदर्यवाली दूसरी तरुणीको क्यो नही बनाता" यह सोचते आश्चर्य और अनुरागके साथ राज-कुमार उसकी ओर देखने लगे। उनके सामने खडी होनेमें लज्जित हो उसने सखियोकी आडमें शरीरको कुछ छिपा लिया। फिर नयनो के अभिमुख कुछ तिरछी खिंची भौहोवाली आखोकी चितवन से अपने हरिनके लाये जाते लावण्ययुक्त राजवाहनको देखती खड़ी रही।

७ सोऽपि तस्यास्तदोत्पादितभावरसाना सामग्र्या लब्ध-बलस्येव विषमशरस्य शरव्यायमानमानसो बभूव। सा मनसीत्थमचिन्तयत्—"अनन्यसाधारणसौन्दर्येणानेन कस्या पुरि भाग्यवतीना तरुणीना लोचनोत्सव क्रियते? पुत्ररत्नेनामुना पुरन्ध्रीणा पुत्रवतीना सीमन्तिनीना का नाम सीमन्तमौक्तिकीक्रियते? कास्य देवी? किमत्रागमन-कारणमस्य? मन्मथो मामपहसितनिजलावण्यमेन विलोयकन्तीमसूययेवातिमात्र मथ्नन्निजनाम सान्वयं करोति। किं करोमि? कथमय ज्ञातव्य" इति।

८ ततो बालचन्द्रिका तयोरन्तरगवृत्ति भावविवेकैर्ज्ञात्वा कान्तासमाजसन्निधौ राजनन्दनोदन्तस्य सम्यगाख्यानमनु-चितमिति लोकसाधारणैर्वाक्यैरभाषत—"भर्तृदारिके, अय सकलकलाप्रवीणो देवतासानिध्यकरण आहवनिपुणो भूसुरकुमारो मणिमन्त्रौषधिज्ञ परिचर्यार्हो भवत्था, पूज्यताम्" इति। तदाकर्ण्य निजमनोरथमनुवदन्त्या बालचन्द्रिकया सतुष्टान्तरगा तरगावली मन्दानिलेनेव सकल्पजेनाकुलीकृता राजकन्या जितमार कुमार समु-चितासनासीन विधाय सखीहस्तेन शस्तेन गन्धकुसुमा-क्षतघनसारताम्बूलादिनानाजातिवस्तुनिचयेन पूजा तस्मै कारयामास।

९ तस्मिन्नवसरे मालवेन्द्रमहिषी परिजनपरिवृता दुहितृ-केलिविलोकनाय त देशमवाप। बालचन्द्रिका तु ता दूरतो विलोक्य रहस्यनिर्भेदभिया (भीता)। मानसारमहिषी सखीसमेताया दुहितुर्नानाविधा विहारलीलामनुभवन्ती क्षण स्थित्वा निजागारगमनायोद्युक्ता बभूव। मातरमनु-

७. उस समय उसका मन उसके किये हाव-भावके रस-सामग्रीसे शक्ति पा कामदेवके वाणका लक्ष्य हो गया। राजकन्याने मनमें सोचा- "अपने इस अनन्य-साधारण सौंदर्यसे किस नगरकी भाग्यशालिनी तरुणियोंके लोचनोंको यह आनंदित करता होगा? पुत्रवती पत्नियो-में कौन इस पुत्ररत्नसे अपनी केशोंकी मुक्ता बनाती होगी? इसकी देवी (पत्नी) कौन होगी? इसके यहा आनेका क्या कारण है? अपने लावण्यके उपहास-कर्त्ता इसको ओर देखती मुझे मन्मथ ईर्ष्यासे अत्यधिक मथन करता अपने नामको सार्थक कर रहा है। क्या करू? कैसे यह जानू?"

८ बालचन्द्रिकाने इंगितोंमे उनके भीतरी भावोंको जानकर (भी), स्त्री-समाजके पास राजकुमारके वृत्तान्तको अच्छी तरह बतलाना अनुचित होगा, यह सोच साधारण वाक्यमें कहा—"भर्तदारिके (स्वामिपुत्री), यह सकलकला-चतुर, देवताके आवाहन करनेमें निपुण, मणि-मन्त्र-औषधिके ज्ञाता पूजनीय ब्राह्मण-कुमार हैं। आप (इनकी) पूजा करें।" अपने मनोरथको दोहराती बालचद्रिकासे वह (बात) सुनकर वह मनमें सतुष्ट हुई। और मद वायु-द्वारा तरंगावली सी हो कामदेव से व्याकुलित राजकन्याने कामदेवके जीतनेवाले कुमारको उचित आसनपर बैठा कर सखियोंके हाथसे बढिया गधकुसुम-अक्षत-चन्दन-ताम्बूल आदि नाना प्रकारकी वस्तुओंसे पूजा कराई।...

९ उसी समय परिजनोंसे घिरी मालवेन्द्रकी रानी बेटीकी क्रीडा देखनेके लिये उस स्थानमें आई। बालचन्द्रिका दूरसे ही उसे देखकर रहस्यके खुलनेके भयसे डर गई।...मानसारकी रानी सखियो सहित अपनी पुत्री की नाना प्रकारकी विहार-लीलाओंका मजा लेती क्षण भर ठहर

गच्छन्त्यवन्तिसुन्दरी "राजहंसकुलतिलक, विहारवाञ्छया केलीवने मदन्तिकमागतं भवन्तमकाण्ड एव विसृज्य मया समुचितमिति जनन्यनुगमनं क्रियते, तदनेन भवन्मनो-रागोऽन्यथा मा भूत्" इति मरालमिव कुमारमुद्दिश्य समुचितालापकलापं वदन्ती पुनः पुनः परिवृत्तदीननयना वदनं विलोकयन्ती निजमन्दिरमगात्

१० तत्र हृदयवल्लभकथाप्रसङ्गे बालचन्द्रिकाकथिततद-न्वयनामधेया मन्मथबाणपतनव्याकुलमानसा विरह-वेदनया दिने दिने बहुलपक्षशशिकलेव क्षामक्षामा ऽऽहारादिसकलं व्यापारं परिहृत्य रहस्यमन्दिरे मलय-जरसक्षालितपल्लवकुसुमकल्पिततल्पतलावर्तितनुलता बभूव। तत्र तथाविधावस्थामनुभवन्ती मन्मथानलसंतप्तां सुकुमारीं कुमारीं निरीक्ष्य खिन्नो वयस्यागणः काञ्चन-कलसंचितानि हरिचन्दनोशीरघनसारमिलितानि तद-भिषेककल्पितानि सलिलानि बिसतन्तुमयानि वासांसि च नलिनीदलमयानि तालवृन्तानि च संतापहरणानि बहूनि संपाद्य तस्याः शरीरमशिशिरयत्। बाल-चन्द्रिका मनोजज्वरावस्थापरमकाष्ठां गतां कोमलाङ्गीं तां राजवाहनलावण्याधीनमानसामनन्यशरणामवेक्ष्यात्मन्य-चिन्तयत्—"कुमारः सत्वरमानेतव्यो मया। नो चेदेनां स्मरणीयां गतिं नेष्यति मीनकेतनः। तत्रोद्याने कुमारयो-रन्योन्यावलोकनवेलायामसमसायकः समं मुक्तसायको-ऽभूत्। तस्मात्कुमारानयनं सुकरम्" इति।

कर जानेके लिये तैयार हुई। माताका अनुगमन करती अवन्ति-सुन्दरीने हसके वहाने कुमारको लक्ष्य करके "राजहस-कुलतिलक, विहारकी इच्छामे क्रीडा-वनमें मेरे पास आये आपको असमय ही छोडकर मेरा जाना उचित नही है। मै माताका अनुगमन कर रही हू, इसमे आपको अपना मनोराग दूसरा नही करना चाहिये।" इस तरह उचित वातें कहती, फिर-फिर घूमते दीन नयनोसे कुमारके मुखको देखती वह अपने महल को चली गई।

१० वहा हृदयवल्लभकी वातके प्रसगमें वालचद्रिकाने कुमारके कुल, नामको वतलाया। इस पर कामदेवके वाणके प्रहारसे व्याकुल-मन हो, विरह-वेदनासे कृष्णपक्षके चन्द्रमाकी कलाकी तरह दिन-दिन दुवली होती, आहार आदि सारे कामको छोडकर एकान्त महलमें चन्दनरससे प्रक्षालित पल्लवकुसुमोसे रचित शय्यापर छटपटाती पड गई। वहा उस अवस्थाको अनुभव करती, कामाग्निसे सतप्त सुकुमारी कुमारीको देखकर सखियाँ खिन्न हो उसके सिचन के लिये तैयार किये सुवर्णकलशमें रक्खे हरिचन्दन-खश-कपूर-मिश्रित जलो, ताप हरणके लिये कमलनालके तन्तुके वने वस्त्रो, कमलिनी-पत्रके वने पखोको वहुत सा वनाकर उसके शरीरको शीतल करने लगी। वाल-चन्द्रिकाने उस कोमलागीको कामज्वरकी चरम अवस्थाको प्राप्त और राजवाहनके सौंदर्यके अधीन-मनवाली, अनन्यशरणा देखकर अपने मनमें सोचा—"मुझे कुमारको जल्दी लाना चाहिये। नही तो कामदेव इसे स्मृति-शेष गतिको पहुचा देगा। उद्यानमें दोनो के परस्पर अवलोकन करते समय कामदेवने एक ही समय (दोनो पर) वाण छोड़ा, इसलिये कुमारका लाना सुकर है।"

गच्छन्त्यवन्तिसुन्दरी "राजहसकुलतिलक, विहारवाछया केलीवने मदन्तिकमागत भवन्तमकाण्ड एव विसृज्य मया समुचितमिति जनन्यनुगमन क्रियते, तदनेन भवन्मनोरागोऽन्यथा मा भूत्" इति मरालमिव कुमारमुद्दिश्य समुचितालापकलाप वदन्ती पुन पुन परिवृत्तदीननयना वदन विलोकयन्ती निजमन्दिरमगात्

१० तत्र हृदयवल्लभकथाप्रसगे बालचन्द्रिकाकथिततदन्वयनामधेया मन्मथबाणपतनव्याकुलमानसा विरहवेदनया दिने दिने बहुलपक्षशशिकलेव क्षामक्षामाऽऽहारादिसकल व्यापार परिहृत्य रहस्यमन्दिरे मलयजरसक्षालितपल्लवकुसुमकल्पिततल्पतलावर्तितनुलता बभूव। तत्र तथाविधावस्थामनुभवन्ती मन्मथानलसतप्ता सुकुमारी कुमारी निरीक्ष्य खिन्नो वयस्यागण काचनकलसचितानि हरिचन्दनोशीरघनसारमिलितानि तदभिषेककल्पितानि सलिलानि बिसतन्तुमयानि वासासि च नलिनीदलमयानि तालवृन्तानि च सतापहरणानि बहूनि सपाद्य तस्या शरीरमशिशिरयत्। बालचन्द्रिका मनोजज्वरावस्थापरमकाष्ठा गता कोमलागी ता राजवाहनलावण्याधीनमानसामनन्यशरणामवेक्ष्यात्मन्यचिन्तयत्—"कुमार सत्वरमानेतव्यो मया। नो चेदेना स्मरणीया गति नेष्यति मीनकेतन। तत्रोद्याने कुमारयोरन्योन्यावलोकनवेलायामसमसायक सम मुक्तसायकोऽभूत्। तस्मात्कुमारानयन सुकरम्" इति।

कर जानेके लिये तैयार हुई। माताका अनुगमन करती अवन्ति-सुन्दरीने हंसके वहाने कुमारको लक्ष्य करके "राजहंस-कुलतिलक, विहारकी इच्छासे क्रीडा-वनमें मेरे पास आये आपको असमय ही छोडकर मेरा जाना उचित नही है। मैं माताका अनुगमन कर रही हूं, इससे आपको अपना मनोराग दूसरा नही करना चाहिये।" इस तरह उचित वातें कहती, फिर-फिर घूमते दीन नयनोसे कुमारके मुखको देखती वह अपने महल को चली गई।

१०. वहा हृदयवल्लभको वातके प्रसंगमें वालचंद्रिकाने कुमारके कुल, नामको वतलाया। इस पर कामदेवके वाणके प्रहारसे व्याकुल-मन हो, विरह-वेदनासे कृष्णपक्षके चन्द्रमाकी कलाकी तरह दिन-दिन दुवली होती, आहार आदि सारे कामको छोडकर एकान्त महलमें चन्दनरससे प्रक्षालित पल्लवकुसुमोसे रचित शय्यापर छटपटाती पड़ गई। वहा उस अवस्थाको अनुभव करती, कामाग्निसे संतप्त सुकुमारी कुमारीको देखकर सखियां खिन्न हो उसके सिंचन के लिये तैयार किये सुवर्णकलशमे रक्खे हरिचन्दन-खश-कपूर-मिश्रित जलो, ताप हरणके लिये कमलनालके तन्तुके वने वस्त्रो, कमलिनी-पत्रके वने पखोको वहुत सा वनाकर उसके शरीरको शीतल करने लगी। वाल-चन्द्रिकाने उस कोमलागीको कामज्वरकी चरम अवस्थाको प्राप्त और राजवाहनके सौंदर्यके अधीन-मनवाली, अनन्यशरणा देखकर अपने मनमें सोचा—"मुझे कुमारको जल्दी लाना चाहिये। नही तो कामदेव इसे स्मृति-शेप गतिको पहुचा देगा। उद्यानमें दोनो के परस्पर अवलोकन करते समय कामदेवने एक ही समय (दोनो पर) वाण छोडा, इसलिये कुमारका लाना सुकर है।"

११. ततोऽवन्तिसुन्दरीरक्षणाय समयोचितकरणीयचतुरं सखीगण नियुज्य सा राजकुमारमन्दिरमवाप। .. राजवाहन. प्राणेश्वरीमुद्दिश्य सह पुष्पोद्भवेन सलपन्नागता प्रियवयस्यामालोक्य पादपमूलमन्वेषणीया लतेव बालचन्द्रिकाऽऽगतेति सतुष्टमना निटिलतटमण्डनीभवदम्बुजकोरकाकृतिलसदजलिपुटा "इतो निषीद" इति निर्दिष्टसमुचितासनासीनामवन्तिसुन्दरीप्रेषित सकर्पूरं ताम्बूल विनयेन ददती ता कान्तावृत्तान्तमपृच्छत्। तया सविनयमभाणि—"देव, क्रीडावने भवदवलोकनकालमारम्य मन्मथ-मथ्यमाना पुष्पतल्पादिषु तापशमनमलभमाना वामनेनेवोन्नततरुफमलभ्य त्वदुरस्थलालिंगनसौख्य स्मरान्धतया लिप्सु सा स्वयमेव पत्रिकामालिख्य 'वल्लभायेनामर्पय' इति मा नियुक्तवती" इति। राज कुमार पत्रिका तामादाय पपाठ—

"सुभग कुसुमसुकुमार जगदनवद्य विलोक्य ते रूपम्।
मम मानसमभिलषति त्व चित्त कुरु तथा मृदुलम्॥" इति।

१२ इति पठित्वा सादरमभाषत—"सखि, छायावन्मामनुवर्तमानस्य पुष्पोद्भवस्य वल्लभा त्वमेव तस्या मृगीदृशो वहिश्चरा प्राणा इव वर्तसे। त्वच्चांतुर्यमस्या क्रियाया मालवालमभूत्। तदखिल करिष्यामि। ."

(३) साधु तस्करः—

१३ नगरमाविशन्नेव चोपलभ्य लोकवादाल्लुब्धसमृद्धपूर्णं पुरमित्यर्थानां नश्वरत्व च प्रदर्श्य प्रकृतिस्थानमून्विधास्यन्कर्णीसुतप्रहिते पथि मतिमकरवम्। अनुप्रविश्य च द्यूतसभामक्षधूर्तै समगसि। तेषां च पचविंशति-

११ "तब **अवन्तिसुन्दरी**की देखभालके लिये समयानुसार काम करनेमें चतुर सखियोको नियुक्त कर वह राजकुमारके घरपर पहुची।. प्राणेश्वरीके बारेमें (ही) पुष्पोद्भवके साथ राजवाहन बात कर रहा था। प्रियसखीको आई देखकर पादमूलके अन्वेपणीय लतासी बालचद्रिका आ गई सोच, मनमें सतुष्ट हुआ। ललाट-तटपर आभूपण बनते कमलकलीके आकारवाले शोभायमान अजलिपुटको ललाट पर भूपण बनते देख, "यहा बैठो", कह दिखलाकर उचित आसनपर बैठाया। अवन्तिसुन्दरीके भेजे कपूर-सहित ताम्बूलको विनयपूर्वक देती हुई, उससे कुमारने कान्ताका वृत्तान्त पूछा। उसने विनय पूर्वक कहा—"देव, क्रीडोद्यानमें आपको देखनेके समयसे ही वह मन्मथसे मथित हो रही है। पुष्प शय्याओपर तापको शान्त होते न देख, बौनेके समान ऊचे वृक्षके अलभ्य फलको न पा उसने मुझे भेजा है। कामान्धा होनेसे तुम्हारे वक्षके आलिगनके सुखको पानेकी इच्छुक उसने 'स्वय ही प्रियतम को इसे अर्पित करना', कह पत्रिका लिखकर मेरे हाथो भेजी।" राजकुमारने पत्रिकाको लेकर बाचा—

सुन्दर कुसुम से सुकुमार, ससार में निर्दोप, तुम्हारे रूपको देखकर, मेरा मन अभिलाष कर रहा है, तुम (भी) अपने चित्तको वैसा ही मृदुल करो॥

१२ पढकर कुमारने आदरपूर्वक कहा—"सखि, छायाकी तरह मेरा अनुगमन करनेवाले पुष्पोद्भवकी प्रिया तू ही उस मृगनयनीकी बाहरी प्राणसी है। तेरी चतुराई इस कार्यलताकी थाला बनी हुई है। सो मै सब करूगा।

३. भलामानुस चोर—

१३ नगरमें प्रविष्ट होते ही किवदन्तियोसे लोभियो और धनियोसे नगर पूर्ण है, यह जानकर धनोका नश्वरत्व दिखला उन्हे प्रकृतिस्थ बनानेकी इच्छासे (चौराचार्य) **कर्णीपुत्र**के मार्गपर चलनेका मैने इरादा किया। मै जूयेकी सभामें प्रवेश कर जूयेके धूर्तोसे

प्रकारासु सर्वासु द्यूताश्रयासु कलासु कौशलमक्षभूमि-हस्तादिषु चात्यन्तदुरुपलक्ष्याणि कूटकर्माणि तन्मूलानि सावलेपान्यधिक्षेपवचनानि जीवितनिरपेक्षाणि संरम्भ-विचेष्टितानि .. चान्यानि चानुभवन्न तृप्तिमध्यगच्छम्। .... (एकदा) प्रतिकितवस्तु निर्दहन्निव क्रोधताम्रया दृशा मामभिवीक्ष्य—"शिक्षयसि रे, द्यूतवर्त्म हासव्याजेन ? आस्तामयमशिक्षितो वराक। त्वयैव तावद्विचक्षणेन देविष्यामि" इति द्यूताध्यक्षानुमत्या व्यत्यषजत्। मया जितश्चासौ षोडशसहस्राणि दीनाराणाम्। तदर्धं सभिकाय सभ्येभ्यश्च दत्वाऽर्धं स्वीकृत्योदतिष्ठम्। उदतिष्ठँश्च तत्र गताना हर्षगर्भा प्रशंसालापा। प्रार्थ्यमानसभिकानुरोधाच्च तदगारेऽत्युदारमभ्यवहार-विधिमकरवम्। यन्मूलश्च मे दुरोदरावतार स मे विमर्दको नाम विश्वास्यतर द्वितीय हृदयमासीत्। तन्मुखेन च सारत कर्मत शीलतश्च सकलमेव नगर-मवधार्य धूर्जटिकण्ठकल्माषकालतमे तमसि नीलनिवस-नार्धोरुकपरिहितो बद्धतीक्ष्णकौक्षेयक .. गत्वा कस्यचिल्लुब्धेश्वरस्य गृहे संधि छित्वा सूक्ष्मच्छिद्रालक्षिता-न्तर्गृहप्रवृत्तिरव्ययो निजगृहमिवानुप्रविश्य नीवीं सा रमहतीमादाय निरगाम्।

१४. नीलनीरदनिकरपीवरतमोनिविडितायां राजवीथ्या झटिति शतह्रदासंपातमिव क्षणमालोकमलक्षयम्। अथासौ नगरदेवतेव नगरमोपरोपिता नि सवावेलाया नि सृता सनिकृष्टा काचिदुन्मिषद्भूषणा युवतिराविरासीत्। "कासि वासु, क्व यासि ?" इति सदयमुक्ता त्रासगद्-

मिला। उनकी पचीस प्रकारकी सभी जूआ-सम्वन्धी कलाओमें चतुराई, जूएके सार-हाथ आदि में, और अत्यन्त दुर्लक्ष्य कूट कामो में, उसके कारण होनेवाली साभिमान निन्दा वचनो, प्राणोकी पर्वाह किये विना साहसकार्यों.. और दूसरी (वातो) ,का तजर्वा करके मैं तृप्त नही हुआ। . एक वार मेरा विरोधी जुआडी क्रोधसे अपनी लाल हुई आखोसे जलाता सा मुझे देखकर "क्यो रे, परिहासके वहाने तू जूयेका कायदा सिखलाता है। रहने दे इस अशिक्षित वेचारेको। तुझ चतुरके ही साथ मैं जूआ खेलूगा" कहते जूयेके अध्यक्षकी अनुमतिसे मेरे साथ भिड गया। मैंने उससे सोलह हजार दीनार जीते। उसका आधा द्यूताध्यक्ष (सभिक) और जुआडियोमें वाँट, आधा लेकर जव मैं उठ खडा हुआ, तो वहा अवस्थित लोगोंके भी हर्पयुक्त प्रशसा-वचन मेरे प्रति उठ खडे हुये। अधिक अनुरागसे प्रार्थना करनेपर सभिकके घरमें मैंने अत्यत वढिया भोजन किया। जिस आदमी के मुकाविलेमें जूयेमें मैं उतरा था, वह विमर्दक मेरा अत्यत विश्वसनीय दूसरा हृदय सा वन गया। उसके मुहसे सारे नगरके वारे में मार-कर्म-शीलमे जानकर, शकरके कठकी कालिमा जैसे अधिक काले, अन्धकार में नीले वस्त्रकी जाघिया पहने तेज छुरा वाधे जाकर मैंने किसी परम लोभीके घरमें सेंध काटी और सूक्ष्म छिद्रसे दिखाई देती गृहके भीतर चोजोको जान विना कठिनाईके अपने घरकी तरह प्रवेश कर वहुत धनवाली निधि ले मैं वाहर निकला।

२४ नीले मेघ-समूह जैसे स्थूल अन्धकारसे घुप सडकपर (पहुच) तुरन्त विजलीके गिरनेकी तरह मैंने क्षण भर रोशनी देखी। मानो नगर देवताकी तरह नगरकी चोरीसे रुष्ट हो, सुनसानकी वेलामें निकल चमकते भूपणवाली कोई युवती पास आ प्रकट हुई। "सुन्दरी, तू कौन है, कहा जाती है?" इस तरह दयायुक्त पूछनेपर वह भयसे

गदमगादीत्—"आर्य, पुर्यस्यामर्यवर्य कुबेरदत्तनामा वसति। अस्म्यह तस्य कन्या। मा जातमात्रा धनमित्र-नाम्नेऽत्रत्यायैव कस्मैचिदिभ्यकुमारायान्वजानाद् भार्यां मे पिता। स पुनरस्मिन्नत्युदारतया पित्रौरन्ते वित्तैर्निजै. क्रीत्वेवार्थिवर्गाद् दारिद्र्य दरिद्रति सत्यथोदारक इति च प्रीतलोकाधिरोपितापरश्लाध्यनामनि वरयत्येव तस्मिन्मा तरुणीभूतामधन इति विदित्वार्थपतिनाम्ने कस्मै-चिदितरस्मै यथार्थनाम्ने सार्थवाहाय दित्सति मे पिता। तदमगलमद्य किल प्रभाते भावीति ज्ञात्वा प्रागेव प्रिय-तमदत्तसकेता वञ्चितस्वजना निर्गत्यावाल्याभ्यस्तेन वर्त्मना मन्मथाभिसरा तदगारमभिसरामि, तन्मा मुञ्च। गृहाणैतद् भाण्ड" इत्युन्मुच्य मह्ममर्पितवती।

१५ दयमानश्चाहमब्रवम्—"एहि साध्वि, त्वा नयेयं त्वत्प्रियावसथम्" इति त्रिचतुराणि पदान्युदचलम्। आपतच्च दीपिकालोकपरिलुप्यमानतिमिरभार यष्टि-कृपाणपाणि नागरिकवलमनल्पम्। दृष्ट्वैव प्रवेपमानां कन्यकामवदम्—"भद्रे, मा भैषी । अस्त्ययमसिद्द्वितीयो मे वाहु । अपि तु मृदुरयमुपायस्त्वदपेक्षया चिंतित । शयेऽह भावितविषवेगविक्रिय । त्वयाप्यमी वाच्या. निशि वयमिमा पुरी प्रविष्टा । दष्टश्च ममैष नायको दर्वीकरेणामुष्मिन्सभागृहकोणे। यदि व कश्चिन्मत्रवित् कृपालु स एनमुज्जीवयन्मम प्राणानाहरेदनाथाया" इति। सापि वाला गत्यन्तराभावाद् भयगद्गदस्वरा वाष्पदुर्दिनाक्षी वद्धवेपथु कथकथमपि गत्वा मदुक्त-मन्वतिष्ठत्। अहमपि चाह भावितविपविक्रिय ।

गदगद होकर बोली—"आर्य, इस पुरीमें वैश्यश्रेष्ठ **कुबेरदत्त** रहते हैं। मैं उनकी कन्या हूं। जन्मते ही मुझे यहीके **धनमित्र** नामक एक धनिक-कुमारकी पत्नी बनाना मेरे पिताने मान लिया। किन्तु वह मा-बापके मरनेपर अति उदारताके कारण अपने धनसे याचकोंकी दरिद्रता खरीदकर दरिद्र हो गया। तब प्रसन्न लोगों द्वारा दिये गये **"उदारक"** इस दूसरे श्लाघ्य नामवालेको वरण करनेकी इच्छा रखती भी मुझ तरुणीको उस निर्धनको न दे अर्थपति नामक एक दूसरे यथार्थ नामवाले सार्थवाहको मेरा पिता देना चाहता है। यह अमंगल आज सवेरे होनेवाला है, यह जानकर पहले ही प्रियतमके दिये संकेतके अनुसार स्वजनोंको छोड घरसे निकलकर बचपनसे ही परिचित मार्ग द्वारा मन्मथका अनुगमन करती प्रिय के घर जा रही हूं। सो मुझे छोड दो। इस धनको ले लो।" यह कहकर उसने खोलकर आभूषण मुझे दे दिये।

१५ तब दयार्द्र हो—"आ साध्वि, तुझे तेरे प्रियके घर ले चलता हूं।" यह कह मैं तीन चार पग चला। इसी समय मशालके आलोकसे अन्धकारको लुप्त करती लाठी-तलवार हाथमें लिये नागरिकोंकी भारी सेना आ गई। देखते ही कांपती उस कन्यासे मैंने कहा—"भद्रे, डर मत। तलवारके साथ यह मेरी भुजा (मौजूद) है। तो भी तेरे कारण मैंने यह मृदु उपाय सोचा है। मैं विष-विकारका अभिनय करते लेट जाता हूं, तू इनसे कहना—रातको हम इस नगरीमें आये। उस सभागृह के कोने पर मेरे इन स्वामीको सांपने काट लिया। यदि आपमेंसे कोई दयालु मन्त्र जानने-वाला हो, तो इन्हें उज्जीवित करके मुझ अनाथाके प्राणोंको लौटा दे।" उस बालाने और उपाय न होनेसे भयसे गद्गद् स्वरवाली, आंसुओंका सावन भादों बहाती, कांपती जैसे-तैसे भी मेरे कहे

तेषु कश्चिन्नरेन्द्राभिमानी मां निर्वर्ण्य मुद्रातन्त्रमन्त्रध्यानादिभिश्चोपक्रम्याकृतार्थं "गत एवायं कालदष्टः। तथाहि स्तब्धश्यावमगं, रुद्धा दृष्टिः, शान्ता एवोष्मा। शुचाऽलं वासु। श्वोऽग्निसात्करिष्यामः, कोऽतिवर्त्तेत दैवं" इति सहेतरैः प्रायात्।

१६ उत्थितश्चाहमुदारकाय तां नीत्वाऽब्रवम्—"अहमस्मि कोऽपि तस्करः। त्वद्गतेनैव चेतसा सहायभूतेन त्वामिमामभिसरन्तीमन्तरोपलभ्य कृपया त्वत्समीपमनैषम्। भूषणमिदमस्याः" इत्यंशुपटलपाटिध्वान्तजालं तदप्यर्पितवान्। उदारकस्तु तदादाय सलज्जं च सहर्षं च ससम्भ्रमं च मामभाषत—"आर्य, त्वयैवेयमस्यां निशि प्रिया मे दत्ता, वाक्पुनर्ममापहृता। तथा हि न जाने वक्तुं त्वत्कर्मैतदद्भुतमिति, न ते स्वशीलमद्भुतवत्प्रतिभाति। नैवमन्येनापि कृतपूर्वमिति प्रतिनियतैव वस्तुशक्तिः। न हि त्वय्यन्यदीया लोभादयः। त्वयाद्य साधुतोन्मीलितेति तत्प्रायस्त्वत्पूर्वावदानेभ्यो न रोचते। दृष्टमिदानीमौदार्यस्य स्वरूपमिति त्वदाशयमननुमान्य न युक्तो निश्चयः। त्वयामुना सुवृत्तेन क्रीतोऽयं दासजन इत्यसारमतिगरीयसा क्रीणासीति स ते प्रज्ञाधिक्षेपः। प्रियादानस्य प्रतिदानमिदं शरीरमिति तदलाभे निधनोन्मुखमिदमपि त्वयेव दत्तम्। अथवैतावदत्र प्राप्तरूपम्। अद्यप्रभृति भर्तव्योऽयं दासजनः" इति मम पादयोरपतत्।

मुताबिक किया। और मैं विप-विकारका अभिनय करते लेट गया। उनमेंसे कोई मत्रज्ञ-अभिमानी मुझे देखकर मुद्रा-तन्त्र-मन्त्र-ध्यान आदिका उपयोग करके निष्फल हो "कालने डसा है, यह चल वसा, क्योंकि, इसके शरीरने कालिमा पकड ली है, दृष्टि निश्चेष्ट, (शरीर की) गर्मी भी शात है। सुन्दरी, शोक करना वेकार है, कल हम इसे अग्निसात् करेंगे। दैवको कौन रोक सकता है" कह दूसरोके साथ चला गया।

१६ उठकर उसे उदारकके पास ले जाकर मैं वोला—"मैं एक चोर हू। तुम्हारे ऊपर लगे (अपने) चित्तरूपी सहायताके साथ तुम्हारे पास अभिसार करती वीचमें पाकर मैं कृपासे इसे तुम्हारे पास लाया हूँ। यह इसके भूषण है," और कपडो की तहसे अन्धकार-जालको फाडते आभूपणको दे दिया। उदारकने उसे लेकर लज्जा और हर्पके साथ आश्चर्यसे मुझसे कहा—"आर्य, तुमने ही इस रातमें मेरी प्रिया दी, (पर) मेरी वाणीका अपहरण कर लिया। तुम्हारे ऐसे अद्भुत कर्मके वारेमें क्या कहू, यह समझ नही पाता। तुम्हारा आचरण अद्भुत ही नही प्रतीत होता, वल्कि दूसरे किसीने भी पहले कभी ऐसा नही किया। हरेक वस्तुकी अपनी निजी शक्ति होती है। तुम्हारे भीतर दूसरो जैसे लोभ आदि नही है। तुमने आज साधुताका उद्घाटन किया। यह पहलेके किये गये सुचरितोके समान नही है। मैंने इस वक्त उदारताके स्वरूपको देखा। इसलिये तुम्हारी वात को मानकर निश्चय करना ठीक नही है। तुमने इस सुकर्मसे इस दासजनको, मुझ जैसे निस्सार वुद्धिवालेको वडे दामपर खरीदा, यह (कहना) तुम्हारी प्रज्ञाका अपमान नही है। प्रियाके दानका प्रतिदान है यह मेरा शरीर, जो उसकी प्राप्तिके विना नष्ट होनेवाला (ही) था, इसे भी तुम्हीने दिया। अथवा यहा इतना ही कहना उचित है, कि अवसे इस दासजनका तुम भरण करना" यह कहकर वह मेरे पैरोमें गिर पडा।

(४) दुहिता जमाताजाता—

२१ अहं च गत्वा श्रावस्तीमध्वश्रान्तो बाह्योद्याने लतामण्डपे शयितोऽस्मि। हंसरवप्रबोधितश्चोत्थाय कामपि क्वणितनूपुरमुखराभ्यां चरणाभ्यां मदन्तिकमुपसरन्तीं युवतीमद्राक्षम्। सा त्वागत्य स्वहस्तवर्तिनि चित्रपटे लिखितं मत्सदृशं कमपि पुरूषं मां च पर्यायेण निर्वर्णयन्ती सविस्मयं सवितर्कं सहर्षं च क्षणमवातिष्ठत्। मयापि तत्र चित्रपटे मत्सादृश्यं पश्यता तद्दृष्टिचेष्टितमनाकस्मिकं मन्यमानेन "ननु सर्वसाधारणोऽयं रमणीयः पुण्यारामभूमिभागः किमिति चिरस्थितिक्लेशोऽनुभूयते। ननूपवेष्टव्यम्" इत्यभिहिता।

२२ सा सस्मितं "अनुगृहीतास्मि" इति न्यषीदत्।

२३ सकथा च देशवार्तानुविद्धा काचनावयोरभूत्। कथासंश्रिता च सा "देशातिथिरसि, दृश्यन्ते च तेऽध्वश्रान्तानीव गात्राणि। यदि न दोषो मद्गृहेऽद्य विश्रमितुमनुग्रहः क्रियतां" इत्यशंसत्।

२४ अहं च "अयि मुग्धे, नैष दोषः, गुण एव" इति तदनुमार्गगामी तद्गृहे राजार्हेण स्नानभोजनादिनोपचरितः, सुखं निषण्णो रहसि पर्यपृच्छ्ये—"महाभाग, दिगन्तराणि भ्रमता कच्चिदस्ति किंचिदद्भुतं भवतोपलब्धम्" इति। ममाभवन्मनसि "महदिदमाशास्पदम्। एषा खलु निखिलपरिजनसंवाधासंलक्षितायाः सखी राजदारिकायाः। चित्रपटे चास्मिन्नपि तदुपरि विरचितसितवितानं हर्म्यतलम्, तद्गतं च प्रकामविस्तीर्णं शरदभ्रपटलपाण्डरं शयनं, तदधिशायिनी च निद्रालीढलोचना ममैवेयं प्रतिकृतिः। अतो नूनमनंगेन सापि सखीनिर्बन्धपृष्ठविक्रियानिमित्तं चातुर्येणैतद्रूपनिर्माणेनैव समर्थमुत्तरं दत्तवती। रूपसंवादाच्च संशयादनया पृष्टो भिन्द्यामस्याः संशयं यथानुभवकथनेन" इति जातनिश्चयोऽब्रवम्।

४. बेटी दामाद हो गई—

२१ मैं **श्रावस्ती** जाकर रास्तेका थका नगरके वाहरवाले उद्यानमें लता-मडपके भीतर सोया था। हसकी आवाजसे जगकर मैंने रुन्झुन् करते नूपुर सहित चरणोवाली पास आती किसी युवतीको देखा। आकर अपने हाथमें रक्खे चित्रपटमें लिखित मेरे समान किसी पुरुप-आकृति और मुझे अच्छी तरह देखती आश्चर्य-वितर्क-हर्षके साथ क्षण भर वह खडी रही। मैंने भी चित्रपटमें मेरे सादृश्यको देख उसके देखने को आकस्मिक न समझकर कहा—"क्यो, यह पवित्र आरामका रमणीय भूभाग तो सार्वजनिक चीज है, फिर क्यो देर तक खडे रहनेके क्लेशको सह रही हो, वैठ जाओ ना।"

२२ मुस्कुराते हुये—"अनुगृहीता हू" कह वह वैठ गई।

२३ फिर हम दोनोके वीच देशके सम्वन्धमें कुछ वात हुई। वातके सिल-सिलेमें उसने कहा—"तुम हमारे देशके अतिथि हो। तुम्हारा शरीर यात्रासे थका सा दिखाई पडता है। अगर दोप न हो, तो आज मेरे घरमें विश्राम करनेका अनुग्रह करें।"

२४ मैं—"अयि मुग्धे, यह दोष नही, गुण ही है" कह उसके पीछे-पीछे उसके घर गया। वहा राजसी स्नान-भोजन आदि सेवन करके सुखपूर्वक वैठनेपर एकान्तमें उसने मुझसे पूछा—"महाभाग, दिशाओ में घूमते हुये कौन कौन अद्भुत वस्तु आपने पाई?" मेरे मनमें हुआ—"यह वडो (शुभ) आशाकी वात है। यह राजकन्याके सारे परिजनोमें देखी-सुनी सखी है। इस चित्रपटमें भी ऊपर सफेद चदवा लगे महलकी छत और उसके भीतर काफी विस्तीर्ण शरद्के मेघोमी उजली शय्या, और उसपर सोती निद्रा-विलीन नेत्रोवाली मेरी ही यह छवि है। इसलिये निश्चय ही कामदेवने उस राजकन्याको भी वैसी ही अवस्थामें पहुचा दिया है। असह्य कामज्वरकी पीडासे पागल हो, सखी द्वारा आग्रहपूर्वक पूछनें पर अस्वास्थ्य-कारणका सार्थक उत्तर चतुराईसे इस चित्रके निर्माण द्वारा ही राजकन्याने दिया। चित्रकी समानता के सशयसे यह पूछनेपर अपने अनुभवके कथनसे इसके सशयको तोडू" यह सोच निश्चय करके मैंने कहा—

२५ "भद्रे, देहि चित्रपट" इति। सा त्वर्पितवती मद्धस्ते। पुनस्तमादाय तामपि व्याजसुप्तामुल्लसन्मदनरागविह्वलां वल्लभा तत्रैवाभिलिख्य "काचिदेवभूता युवतिरीदृशस्य पुस पार्श्वशायिन्यरण्यानीप्रसुप्तेन मयोपलब्धा किलैष स्वप्न." इत्यालप च।

२६ हृष्टया तु तया विस्तरत पृष्ट सर्वमेव वृत्तान्तमकथयम्। असौ च सख्या मन्निमित्तान्यवस्थान्तराण्यवर्णयत्। तदाकर्ण्य च "यदि तव सख्या मदनुग्रहोन्मुख मानस, गमय कानिचिदहानि। कमपि कन्यापुरे निराशकनिवासकारणमुपायमारचय्यागमिष्यामि" इति कथचिदेनामभ्युपगमय्य गत्वा तदेव खर्वट वृद्धविटेन समगसि। ससभ्रम सोऽपि विश्रमय्य तथैव स्नानभोजनादि कारयित्वा रहस्यमपृच्छत्—"आर्य, कस्य हेतोरचिरेणैव प्रत्यागतोऽसि"।

२७ प्रत्यवादिषमेन—"स्थान एवाहमार्येणास्मि पृष्ट। श्रूयताम्। अस्ति हि श्रावस्ती नाम नगरी। तस्या पतिरपर इव धर्मपुत्रो धर्मवर्धनो नाम राजा। तस्य दुहिता प्रत्यादेश इव श्रिय, प्राणा इव कुसुमधन्वन, सौकुमार्यविडम्बितनवमालिका नवमालिका नाम कन्यका। सा मया समापत्तिदृष्टा कामनाराचपक्तिमिव कटाक्षमाला मम मर्माणि व्यकिरत्। तच्छल्योद्धरणाक्षमश्च धन्वन्तरिसदृशस्त्वदृते नेतरोऽस्ति वैद्य इति प्रत्यागतोऽस्मि। तत्प्रसीद कचिदुपायमाचरितुम्। अयमह परिवर्तितस्त्रीवेषस्ते कन्या नाम भवेयम्। अनुगतश्च मया त्वमुपगम्य धर्मासनगत धर्मवर्धन वक्ष्यसि—"ममेयमेकैव दुहिता। अनुगतश्च मे जातमात्राया त्वस्या जनन्यस्या प्रस्थिता। माता च पिता च भूत्वाहमेव व्यव-

२५ "भद्रे, (जरा) चित्रपटको दो तो।" उसने उसे मेरे हाथमें दे दिया फिर उसे लेकर बहाना बना उल्लसित मदनके रागसे विकल सोई उस वल्लभाको भी वही चित्रित कर मैंने कहा—"मैंने एक ऐसी युवतीको ऐसे पुरुषकी बगलमें लेटी जगलमें निद्रित पाया। यह स्वप्न था।"

२६ पूछनेपर हर्षित होकर विस्तारके साथ मैंने सारे वृत्तान्तको कह दिया। उसने (भी) मेरे कारण अपनी सखीकी हुई अवस्थाको बतलाया। उसको सुनकर मैंने कहा, "यदि तेरी सखीका मन मेरे ऊपर अनुग्रह करना चाहता है, तो कुछ दिन (ऐसे ही) बितावे। मैं कन्याके अन्त पुरमें नि शक निवासके लिये उपाय करके आऊगा।" इस प्रकार किसी तरह उसे समझा-बुझाकर मैं उसी वणिक्-पथपर जा वृद्ध वेश्याभिलाषीसे जा कर मिला। उसने भी विश्राम करा वैसे ही स्नान-भोजनादि कराकर एकान्तमें मुझसे पूछा—"आर्य, किस कारण बडी जल्दी लौट आये?"

२७ मैंने जवाब दिया—"ठीक ही आर्यने पूछा। सुनिये, **श्रावस्ती** नामक नगरी है। उसका पति दूसरा धर्मपुत्र (ुधिष्ठिर) **धर्मवर्धन** नामक राजा है। उसकी दुहिता लक्ष्मीका प्रत्याख्यान सी, कामदेवके प्राणोसी, सुकुमारतामें नवमालिका (चमेली) को दूर फेंकनेवाली **नवमालिका** नामक है। उसने अकस्मात् देखे जानेपर कामके वाणोकी पातीकी तरह कटाक्षोकी माला मेरे हृदय पर फेंकी। उस शल्यको निकालनेमें असमर्थ हो 'धन्वन्तरि समान तुम्हारे विना दूसरा वैद्य नही है,' यह सोचकर लौट कर आया हूं। सो कृपा करके कोई उपाय करें। मै स्त्रीभेस वदलकर तुम्हारी कन्या वनता हूँ। मेरे पीछे-पीछे तुम चलकर धर्मासनपर वैठे धर्मवर्धनसे कहना—'मेरी यह एक ही दुहिता है। जन्मते ही इसकी माता मर गई। मैंने ही माता और पिता होकर इसका पालन-पोषण किया। इसके

र्घयम् । एतदर्थमेव विद्यामय शुल्कमर्जितु गतोऽभूदवन्ति-नगरीमुज्जयिनीमस्मद्वैवाह्यकुलज कोऽपि विप्रदारक । तस्मै चेयमनुमता दातुमितरस्मै न योग्या । तरुणीभूता चेयम् । स च विलम्बित । तेन तमानीय पाणिमस्या ग्राह-यित्वा तस्मिन् न्यस्तभार सन्यसिष्ये । दुरभिरक्षतया तु दुहितृणा मुक्तशैशवाना, विशेषतश्चामातृकाणा इह देव मातृपितृस्थानीय प्रजानामापन्नशरणमागतोऽस्मि । यदि वृद्ध ब्राह्मणमधीतिनमगतिमतिथि च मामनुग्राह्यपक्षे गण-यत्यादिराजचरितधुर्यो देव, सैषा भवद्भुजतरुच्छायाम-खण्डितचारित्रा तावदध्यास्ता यावदस्या पाणिग्राहक-मानयेयम्" इति ।

२८ स एवमुक्तो नियतमभिमनायमान स्वदुहितृसनिधौ मा वास-यिष्यति । गतस्तु भवानागामिनि मासि फाल्गुणे फल्गुणी-षूत्तरासु राजान्त पुरजनस्य तीर्थयात्रोत्सवो भविष्यति । तीर्थस्थानात्प्राच्या दिशि गोरुतान्तरमतिक्रम्य, वानीर-वलयमध्यवर्तिनि कार्त्तिकेयगृहे करतलगतेन शुक्लावरयुग-लेन स्थास्यसि । स खल्वहमनभिशक एवैतावन्त काल सहा-भिविहृत्य राजकन्यया भूयस्तस्मिन्नुत्सवे । पुनस्त्वदुपहृते वाससी परिधायापनीतदारिकावेषो जामाता नाम भूत्वा त्वामेवानुगच्छेयम् । नृपात्मजा तु मामितस्ततोन्विष्या-नासादयन्ती "तया विना न भोक्ष्ये" इति रुदन्त्येवावरोधने स्थास्यसि । तन्मूले च महति कोलाहले, क्रन्दत्सु परिजनेषु, रुदत्सु सखीजनेषु, शोचत्सु पौरजनेषु, किंकर्तव्यतामूढे सामात्ये पार्थिवे, त्वमास्थानीमेत्य मा स्थापयित्वा वक्ष्यसि—

लिये ही विद्यारूपी कन्या-शुल्क अर्जित करनेके लिये हमारे विवाह करने योग्य कुलमें उत्पन्न एक ब्राह्मण कुमार अवन्ती देशकी नगरी उज्जयिनीमें गया। उसे इसे देनेका वचन दे दूसरेको देना ठीक नही है। यह अब तरुणी हो गई है, और वह विलम्ब कर रहा है। इसलिये उसे लाकर इसका पाणिग्रहण करा उसके ऊपर भार छोड मैं सन्यास लेना चाहता हू। शैशव छोड (आगे बढी) विशेषकर विना माताकी लडकियोकी रक्षा कठिन है, यह सोच प्रजाके माता-पिता जैसे महाराजको जानकर मै शरणमें आया हू। यदि इस वेदपाठी निरवलम्ब अतिथि वृद्ध ब्राह्मणको, मनुके चरित्रको धारण करनेवाले महाराज आप अनुग्रह-योग्य समझते है, तो यह (मेरी कन्या)आपके भुजरूपी वृक्षकी छायामें अखडित-चरित्रवाली हो तब तक रहे, जब तक कि मै इसके पाणिग्रहण करनेवालेको ले आता हू।"

२८ वह ऐसा कहनेपर निश्चय ही मुझे अपनी लडकीके पास रहनेके लिये भेजेगा। आगामी फागुन मासकी उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें राजाकी अन्त पुरिकाओका तीर्थ-मेला होगा। तीर्थ (नदीके घाट) से पूर्व दिशामें एक गव्यूति (दो कोस) दूर बेंतकी लताके बीच स्थित कार्तिकेयके मन्दिरमें दो सफेद वस्त्र हाथमें लेकर तुम रहना। इतने समय तक निर्भय हो राजकन्याके साथ विहार करके, उस मेले में गगा-जल-विहारमें कन्याओके लगी रहते समय, मैं डूबकर तुम्हारे पास आ ऊपर उठूगा। फिर तुम्हारे लाये दोनो वस्त्रोको पहनकर कन्याके भेसको छोड दामाद बनकर तुम्हारे पीछे-पीछे चलूगा। राजकन्या मेरे लिये इधर-उधर ढूढकर मुझे न पा—"उसके विना खाना नही खाऊगी" कहती अन्त पुरमें रोती रहेगी। उसके कारण महान् कोलाहल होगा, परिजनोमें क्रन्दन मचेगा, सखियाँ रोयेंगी, पुरवासी शोक करेंगे, अमात्य-सहित राजा किंकर्तव्यविमूढ हो जायेगा, उस समय तुम दरबारमें पहुचकर मुझे सामने रखकर कहना—

२९ "देव, स एष मे जामाता तवार्हति श्रीभुजाराधनम्। अधीती चतुर्ष्वाम्नायेषु, गृहीती षट्स्वंगेषु, आन्वीक्षिकीविचक्षण चतुःषष्टिकलागमप्रयोगचतुर, विशेषेण गजरथतुरगतन्त्र-वित् इष्वसनास्त्रकर्मणि गदायुद्धे च निरुपम, पुराणेति-हासकुशल, कर्ता काव्यनाटकाख्यायिकानाम्, वेत्ता सोपनिषदोऽर्थशास्त्रस्य, निर्मत्सरो गुणेषु, विश्रम्भी सुहृत्सु, शक्त, सविभागशील, श्रुतधर गतस्मयश्च। नास्य दोषमणीयासमप्युपलभे। न च गुणेष्वविद्यमानम्। तन्मादृशस्य ब्राह्मणमात्रस्य न लभ्य एव सम्बन्धी। दुहितरमस्मै समर्प्य वार्धकोचितमन्त्यमाश्रमं सङ्क्रमेयं, यदि देव साधु मन्यत" इति।

३० स इदमाकर्ण्य वैवर्ण्याक्रान्तवक्त्र परमुपगतो वैलक्ष्यमारप्स्यतेऽनुतुमनित्यतादिसकीर्तनेनात्रभवन्त मन्त्रिभि. सह। त्वं तु तेषामदत्तश्रोत्रो मुक्तकण्ठ रुदित्वा चिरस्य वाष्पाकुण्ठकण्ठ. काष्ठान्याहृत्याग्नि सधुक्ष्य राजमन्दिरद्वारे चिताधिरोहणायोपक्रमिष्यते। स तावदेव त्वत्पादयोर्निपत्य समागत्य नरपतिरनूनैरर्थैस्त्वामुपच्छन्द्य दुहितर महृय दत्वा मद्योग्यतासमाराधितः समस्तमेव राज्यभारं मयि समर्पयिष्यति। सोऽयमभ्युपायोऽनुष्ठेयो यदि तुभ्य रोचते इति।

३१ सोऽपि पटुविटानामग्रणीरसकृदभ्यस्तकपटप्रपंच. पाचालशर्मा यथोक्तमभ्यधिक च निपुणमुपक्रान्तवान्। आसीच्च मम समीहितानामहीनकालसिद्धि.। अन्वभव च मधुकर इव नवमल्लिकामाद्रसुमनसम्।

२९ "देव, यह मेरा दामाद आपके श्रीभुजकी पूजाके योग्य है। चारो वेदोको पढे, छहो अगोको ग्रहण किये, न्यायशास्त्रमें विचक्षण, चौंसठ कलाओके प्रयोगमें चतुर, विशेषकर गज-रथ-तुरगकी, शास्त्रोका वेत्ता, वाण-हथियारके काममें, गदा-युद्धमें अनुपम, पुराण-इतिहासमें कुशल, काव्य-नाटक-आख्यायिकाका रचयिता, रहस्य-सहित अर्थ-शास्त्रका वेत्ता, गुणोमें ईर्ष्या न करनेवाला, मित्रोका भक्त, मधुर-भाषी, वाँटकर भोग करनेवाला, तीव्र स्मृतिवाला, गर्व-रहित तरुण है। इसमें मैं अणुमात्र भी दोप नही पाता, न गुणोमें से किसीको अविद्यमान। सो मेरे जैसे (साधनहीन) केवल ब्राह्मण मात्र व्यक्तिको ऐसा सम्वन्धी प्राप्य नही हो सकता। इसे अपनी कन्या समर्पित कर वुढापेके लिये उचित चौथे अन्तिम आश्रम (सन्यास) में चला जाना चाहता हू, यदि महाराज इसे ठीक मानते हैं।"

३० फिर यह सुनकर फीके पड़े मुह से वह अत्यन्त लज्जित हो ससारकी अनित्यता आदि कहकर मन्त्रियो सहित तुम्हें समझानेकी कोशिश करेगा। फिर तुम उनकी वातो पर कान न दे मुक्तकठ देरतक रोकर आसुओके मारे वैठ गये गलेवाले हो, राजमहलके फाटकपर काष्ठ जमा कर आग जला चितापर वैठनेका प्रयत्न करना। तव अमात्यो सहित राजा अवश्य तुम्हारे पैरोमें गिरकर धन से तुम्हें सान्त्वना दे, मुझे अपनी लडकी दे, मेरी योग्यतासे प्रसन्न हो सारे राज्यके भारको मेरे ऊपर समर्पित करेगा। यह उपाय करना है, अगर तुम्हें पसन्द हो।"

३१ उस धूर्त-श्रेष्ठ पचालशर्माको अनेक वार कपट-प्रपच करनेका अभ्यास था। मैंने जैसा कहा, उससे भी अधिक अच्छी तरह उसने किया। थोडे ही कालमें मेरे मनोरथ सिद्ध हो गये। भवरेकी तरह नवमा-लिका (चमेली) के ताजे फूलोका मैंने उपभोग किया।

—उ० उ० ५

(५) राजनीतिः—

३२ दिव्य हि चक्षुर्भूतभवद्भविष्यत्सु व्यवहितविप्रकृष्टादिषु च विषयेषु शास्त्र नामाप्रतिहतवृत्ति। तेन हीन सतोरप्यायतविशालयोर्लोचनयोरन्ध एव जन्तुरर्थदर्शनेष्वसामर्थ्यात्। अतो विहाय वाह्यविद्यास्वभिषगमागमय दण्डनीति कुलविद्याम्। तदर्थानुष्ठानेन चावर्जितशक्तिसिद्धिरस्खलितशासन "शाधि चिरमुदधिमेखलामुर्वीम्" इति।

३३ एतदाकर्ण्य "स्थान एव गुरुभिरनुशिष्टम्। तथा क्रियते" इत्यन्त पुरमविशत्। ता च वार्ता पार्थिवेन प्रमदासनिधौ प्रसगेनोदीरितामुपनिशम्य समीपोपविष्टश्चित्तानुवृत्तिकुशल प्रसादवित्तो गीतनृत्यवाद्यादिष्वसाह्यो वाह्यनारीपरायण पटुरयन्त्रितमुखो बहुभगिविशारद परमन्विषणपर परिहासयिता परिवादरुचि पैशुन्यपण्डित सचिवमण्डलादप्युत्कोचहारी सकलदुर्नयोपाध्याय कामतन्त्रकर्णधार कुमारसेवको विहारभद्रो नाम स्मितपूर्व व्यज्ञापयत्—

३४ "देव, दैवानुग्रहेण यदि कश्चिद् भाजन भवति विभूते, तमकस्मादुच्चावचैरुपप्रलोभनै कदर्थयन्त स्वार्थ साधयन्ति धूर्ता। तथाहि केचित्प्रेय किल लभ्यैरभ्युदयातिशयैराशामुत्पाद्य, मुण्डयित्वा शिर, बद्ध्वा दर्भरज्जुभि, अजिनेनाच्छाद्य, नवनीतेनोपलिप्य, अनशन च शाययित्वा सर्वस्व स्वीकरिष्यन्ति। तेभ्योऽपि घोरतरा पाषण्डिन पुत्रदारशरीरजीवितान्यपि मोचयन्ति। यदि कश्चित्पटुजातीयो नास्यै मृगतृष्णिकायै हस्तगत त्यक्तुमिच्छेत्। तमन्ये परिवार्याह —

५. राजनीति—

३२ भूत और भविष्यत् कालमें दूर और नजदीकके विषयोमें अव्याहत-गति रखनेवाला शास्त्र दिव्यचक्षु है। उसके विना दीर्घ विशाल लोचनोके रहते भी पदार्थके दर्शनमें असमर्थ होनेसे प्राणी अन्ध ही है। इसलिये बाहरी विषयो में आसक्ति छोड कुलकी विद्या दण्डनीति (राजनीति) को सीखो। उसकी बातोके प्रयोग द्वारा अपनेमें शक्ति सिद्ध कर स्थायी शासनवाले बन-समुद्रमेखला पृथिवीका शासन चिरकालतक करो।

३३ यह सुनकर "गुरुजनने ठीक ही शिक्षा दी, मै वैसा ही करूगा।"—कह वह अन्त पुरमें चला गया। प्रसगवश स्त्रियोके पास यह बात राजाने कही। उसे सुनकर पासमें बैठे आज्ञाकारितामें कुशल, कृपासे धनी बने, गीत-नृत्य-वाद्य आदि से अवचित, बाहरी नारियोमें लपट, चतुर, मुहफट, बहु व्यग-चतुर, दूसरेके हृदयका पता लगाने में तत्पर, हसानेवाला, दूसरेकी निंदामें रुचि रखनेवाला, चुगली करनेमें पण्डित, मन्त्रियोसे भी रिश्वत लेनेवाला, सारे दुराचारोको पढानेवाला, **कामशास्त्र**का कर्णधार, (राजाका) **विहारभद्र** नामक सेवक कुमार-अवस्थासे साथ रहता मुस्कुराकर अर्ज करने लगा।

३४ "देव, दैवकी कृपासे यदि कोई वैभवका पात्र होता है, तो धूर्त उसे अकस्मात् नाना प्रकारके प्रलोभनोसे दूषित करके अपना मतलब गाठते हैं। जैसे—कोई मरकर मिलनेवाले भारी अभ्युदयोकी आशासे सिर मुडाकर कुश-रस्सी बाध, मृगचर्मसे (तन) ढाक, मक्खनसे शरीर चुपड और अनशनके लिये लेटवाकर सर्वस्व हर लेते है। उनसे भी बड़े घोर पाखडी पुत्र-स्त्री-शरीर-प्राणोको भी छीन लेते हैं। यदि कोई होशियार (आदमी) इस मृगतृष्णाके लिये हाथके धनको नही छोडना चाहता, तो उसे दूसरे घेर कर कहते हैं—

३५ एकामपि काकिणी कार्षापणलक्षमापादयेम, शस्त्रादृते सर्वशत्रून् घातयेम, एकशरीरिणमपि मर्त्यं चक्रवर्तिनं विदधीमहि, यद्यस्मदुद्दिष्टेन मार्गेणाचर्यत" इति। स पुनरिमान्प्रत्याह—

३६ "कोऽसौ मार्ग" इति। पुनरिमे ब्रुवते—"ननु चतस्रो राजविद्यास्त्रयी वार्ताऽन्वीक्षिकी दण्डनीतिरिति। तासु तिस्रस्त्रयीवार्तान्वीक्षिक्यो महत्यो मन्दफलाश्च, तास्तावदासताम्। अधीष्व तावद् दण्डनीतिम्। इयमिदानीमाचार्यविष्णुगुप्तेन मौर्यार्थे षड्भि श्लोकसहस्रै संक्षिप्ता। सैवेयमधीत्य सम्यगनुष्ठीयमाना यथोक्तकर्मक्षमा" इति। स "तथा" इत्यधीते, शृणोति च, तत्रैव जरां गच्छति। तत्तु किल शास्त्र शास्त्रान्तरानुबन्धि सर्वमेव वाङ्मयमविदित्वा न तत्त्वतोऽधिगस्यते, भवतु कालेन बहुनाल्पेन वा तदर्थाधिगति, अधिगतशास्त्रेण चादावेव पुत्रदारमपि न विश्वास्यम्। आत्मकुक्षेरपि कृते तण्डुलैरियद्भिरियानोदन. संपद्यते, इयत ओदनस्य पाकायैतावदिन्धन पर्याप्तमिति मानोन्मानपूर्वक देयम्। उत्थितेन च राज्ञा क्षलिताक्षालिते मुखे मुष्टिमर्धमुष्टिं वाभ्यन्तरीकृत्य कृत्स्नमायव्ययजातमह्न प्रथमेऽष्टमे वा भागे श्रोतव्यम्। शृण्वत एवास्य द्विगुणमपहरन्ति तेऽध्यक्षधूर्तश्चत्वारिंशत चाणक्योपदिष्टानाहरणोपायान्सहस्रधात्मबुद्ध्यैव ते विकल्पयितार।

३७ द्वितीयेऽन्योन्य विवदमानाना जनानामाक्रोशाद् दह्यमानकर्ण कष्ट जीवति। तत्रापि प्राड्विवाकादय. स्वेच्छया जयपराजयौ विदधाना, पापेनाकीर्त्या च भर्तारमात्मनश्चार्थैर्योजयन्ति। तृतीये स्नातु भोक्तु च लभते। भुक्तस्य याव-

३५ "एक काकिणी (वीस कौडी) को भी हम लाख कार्षापण वना सकते हैं, हथियारके विना सभी शत्रुओको मार सकते हैं। अकेले तनवाले मर्दको चक्रवर्ती वना सकते है, यदि हमारे वतलाये मार्गपर (वह) चले इनके वारेमें पूछना है—

३६ "वह कौन सा मार्ग है?" फिर वह कहते हैं— "चार राजविद्यायें है ना, त्रयी (तीनो वेद), वार्ता (अर्थकर शिल्प), आन्वीक्षिकी (तर्कशास्त्र) और दडनीति (राजनीति)। उनमेंसे तीन पहली (त्रयी, वार्ता और आन्वीक्षिकी) वडी पर कम फल देनेवाली है। उन्हें रहने दो। राजनीति पढो। इसे आचार्य **विष्णुगुप्त** (चाणक्य) ने मौर्य (**चन्द्रगुप्त**) के लिये छ हजार श्लोकोमे सक्षिप्त कर दिया है। सो यही अध्ययन करके अच्छी तरह अनुष्ठान किये जाने पर कहेके अनुसार काम कर सकती है।" आदमी "ठीक है" कहकर पढता और सुनता है। (पढते पढते) वह वूढा हो जाता है। वह शास्त्र तो दूसरे शास्त्रोसे सम्वन्ध रखता है, सारे ही वाङमय (साहित्य) को विना जाने उसे ठीक तौरसे नही समझा जा सकता। मान लो, कम या अविक समय में उसने उसके अर्थको समझ लिया। (राजनीति) शास्त्रके जानकार को प्रारम्भ ही में पुत्र-स्त्रीपर भी विश्वास नही करना चाहिये। अपने पेटके लिये भी वनाये जाते इतने चावलोंसे इतना भात तैयार होता है, इतने भातके पकानेके लिये इतना ईंधन काफी है, इस तरह नाप-तोलकर चीज देनी चाहिये। (सवेरे) उठकर राजाको मुह धोये या विना धोये मुट्ठी-आध-मुट्ठी पेटके भीतर करके दिनके पहले या आठवें भागमें सारे आय-व्ययको सुनना चाहिये। इसके सुनते-सुनते भी वे धूर्त अध्यक्ष (विभाग-अध्यक्ष) दूना मार लेते है। वह (तो) **चाणक्य**के वतलाये चालीस अपहरणके उपायोको अपनी वुद्धिसे हजार गुना वना सकते है।

३७ दूसरे (भाग) में परस्पर लड़नेवाले लोगोकी चिल्लाहटसे कान जलते वेचारा राजा जीता है। वहा भी **प्राड्विवाक** (वकील) आदि स्वेच्छासे जय-पराजय कराते, स्वामीको पाप और अपयशके साथ और अपनेको धनके साथ जोड देते है। तृतीय (भागमें)

दन्ध परिणामस्तावदस्य विषभय न शाम्यत्येव । चतुर्थे हिरण्यप्रतिग्रहाय हस्त प्रसारयन्नेवोत्तिष्ठति । पचमे मन्त्रचिन्तया महान्तमायासमनुभवति । तत्रापि मन्त्रिणो मध्यस्था इवान्योन्य मिथ सभूय दोषगुणौ दूतचारवाक्यानि शक्याशक्यता देशकालकार्यावस्थाश्च स्वेच्छया विपरिवर्तयन्त, स्वपरमित्रमण्डलान्युपजीवन्ति । वाह्याभ्यन्तराश्च कोपान् गूढमुत्पाद्य प्रकाश प्रशमयन्त इव स्वामिनमवशसवगृह्णन्ति । षष्ठे स्वैरविहारो मन्त्रो वा सेव्य । सोऽस्यैतावान्स्वैरविहारकालो यस्य तिस्रस्त्रिपादोत्तरा नाडिका । सप्तमे चतुरगवलप्रत्यवेक्षणप्रयास । अष्टमेऽस्य सेनापतिसखस्य विक्रमचिन्ताक्लेश. ।

३८ पुनरुपास्यैव सध्या, प्रथमे रात्रिभागे गूढपुरुषा द्रष्टव्या । तन्मुखेन चातिनृशसा. शस्त्राग्निरसप्रणिधयोऽनुष्ठेया. । द्वितीये भोजनानन्तर श्रोत्रिय इव स्वाध्यायमारभेत । तृतीये तूर्यघोषेण सविष्टश्चतुर्थपचमौ शयीत किल । कथमिवास्याजस्रचिन्तायासविह्वलमनसो वराकस्य निद्रासुखमुपनमेत् । पुन षष्ठे शास्त्रचिन्ताकार्यचिन्तारम्भ. । सप्तमे तु मन्त्रग्रहो दूताभिप्रेषणानि च । दूताश्च नामोभयत्र प्रियाख्यानार्थान्वितशुल्कवाधवर्मनि वाणिज्यया गर्धयन्त, कार्यमविद्यमानमपि लेगेनोत्पाद्यानवरत भ्रमन्ति । अष्टमे पुरोहितादयोऽभ्येत्यैनमाहु·—

स्नान-भोजनका समय मिलता है। खाया भोजन जब तक पचता नही तब तक उसके मनसे विपका भय शान्त नही होता। चतुर्थ (भागमें) सुवर्ण-ग्रहणके लिये हाथ फैलाये उठ खडा होता है। पचम (भागमें) मत्रणाकी चिन्तासे भारी परिश्रमका अनुभव करता है। वहा भी मध्यस्थकी तरह परस्पर मिलकर दोप-गुणो, दूतो, गुप्तचरोके वाक्योको, सभव-असभवको और देश-काल-कार्य की अवस्थाओको, मनमाना उलटते मत्री लोग एक दूसरेके मित्रोका लाभ करते है, गुप्तरीतिसे राज्यके भीतर और वाहर उपद्रव पैदा कर वाहरसे शान्त करते हुये से वेबस वना स्वामीको हाथमें कर लेते हैं। छठे (भाग) में स्वेच्छापूर्वक विहार या मत्रणा की जा सकती है। सो उस (राजाका) इतना ही स्वेच्छासे विहार करनेका काल है, जो आधार पहर (तीन पाव अविक तीन नाडिका) काल है। सातवें (अश) में चतुरग सेनाके निरीक्षणका प्रयास करना है। आठवें में सेनापति सहित सैनिक तैयारी सम्वन्धी चिन्ताका क्लेश उठाना है।

३८ फिर सन्ध्या की उपासना करनी ही है। रातके पहले भागमें गुप्त-चरोको देखना है। उनके द्वारा हथियार-आग-विपदान जैसे अत्यन्त नृशस काम कराने है। रातके द्वितीय (भाग) में भोजनके वाद वेदपाठीकी तरह स्वाध्याय आरम्भ करे। तृतीय भाग में वाद्य घोपके साथ लेटकर चौथे-पाचवें में सोवे। निरन्तर चिन्ताके कष्टसे विह्वल इस वेचारेको कैसे निद्रा-सुख मिलेगा? फिर छठे भागमें शास्त्र-चिन्तनके कार्यकी चिन्ता शुरू होगी। रातके सातवें भागमे तो सलाह लेनी और दूतोको भेजना है। दूत भी तो दोनो ओर मीठी वातें कहने से पाये धनको, शुल्ककी वाधासे रहित रास्तेमें वाणिज्य द्वारा वढाते है, और अविद्यमान कार्यको भी जरा से उपायसे विद्यमान करके लगातार भ्रमण करते रहते हैं। आठवें भागमें पुरोहित आदि पास आकर राजासे कहते है—

३९ "अद्य दृष्टो दुःस्वप्नः। दुःस्था ग्रहाः। शकुनानि चाशुभानि। शान्तयः क्रियन्ताम्। सर्वमस्तु सौवर्णमेव होमसाधनम्। एवं सति कर्म गुणवद् भवति। ब्रह्मकल्पा इमे ब्राह्मणाः। कृतमेभिः स्वस्त्ययनं कल्याणतरं भवति। ते चामी कष्टदारिद्र्या बह्वपत्या यज्वानो वीर्यवन्तश्चाद्याप्यप्राप्तप्रतिग्रहाः। दत्तं चैभ्यः स्वर्ग्यमायुष्यमरिष्टनाशनं च भवति" इति बहु बहु दापयित्वा तन्मुखेन स्वयमुपाशु भक्षयन्ति। तदेवमहर्निशमविहितसुखलेशमायासबहुलमविरलकदर्थनं च नयतो न तत्रास्यास्ता चक्रवर्तिता, स्वमण्डलमात्रमपि दुरारक्ष्यं भवेत्। शास्त्रज्ञसमाज्ञातो हि यद् ददाति, यन्मानयति, यत्प्रियं ब्रवीति, तत्सर्वमतिसंधातुमित्यविश्वासः। अविश्वासता हि जन्मभूमिरलक्ष्म्याः। यावता च नयेन विना न लोकयात्रा स लोक एव सिद्धः नात्र शास्त्रेणार्थः। स्तनंधयोऽपि हि तैस्तैरुपायैः स्तनपानं जनन्या लिप्सते।

—उत्तर० उ० ८

(६) राजपत्रिका—

३९ पुष्पपुराद्राज्ञो राजहंसस्याज्ञापत्रमादाय समागता राजपुरुषाः प्रणम्य राजवाहनं व्यजिज्ञपन्—"स्वामिन्! एतज्जनकस्य राजहंसस्याज्ञापत्रं, गृह्यताम्।" इत्याकर्ण्य समुत्थाय भूयोभूयः सादरं प्रणम्य सदसि तदाज्ञापत्रमग्रहीत्। शिरसि चाधाय ततः उत्तार्योत्कील्य राजा राजवाहनः सर्वेषां शृण्वतामेवावाचयत्—

३६ "आज सरकारने दु स्वप्न देखा। (आपके ग्रह बुरे) स्थानमें हैं। अशुभ सगुन है। इनकी शान्ति करनी चाहिये। होमके सारे साधन सोनेके होने चाहिये। ऐसा करनेसे कर्म फलदायक होता है। ब्राह्मण ब्रह्मा के समान है। इनके द्वारा किया गया स्वस्तिवाचन बहुत कल्याण-कारी होता है। ये दरिद्रताका कष्ट उठाते बहुसन्तान यज्ञकर्ता हिम्मतवाले होते भी अभी दान नही पाये हैं। इनको दिया दान स्वर्गोपयोगी, दीर्घायुकारी, अनिष्ट-नाशक होता है।" यह कह बहुत सा धन दिलवाकर उसमें से स्वय गुप्तरूपसे खाते हैं। सो इस प्रकार रात-दिन जरा भी सुख पाये विना, बहुत कष्टवाला, घने मनोरथ भगो वाला हो रात-दिन विताते अनीतिको, राजाको चक्रवर्तिता मिलती, तो दूर अपने मडल मात्रकी प्रतिरक्षा भी मुश्किल हो जाती है। शास्त्रज्ञतामें ख्याति प्राप्त हो वह जो देता है, जो मानता है, जो मधुर बोलता है, सो सब वचनाके लिये। अविश्वास दरिद्रताकी जन्मभूमि है। नीतिके विना लोक-व्यवहार नही होता (पर) वह तो लोक सिद्ध है, वहा शास्त्रका कोई प्रयोजन नही। दुव-मुहा बच्चा भी जैसे-तैसे उपायोसे जननीके स्तनपानको पानेकी इच्छा करता है।

—उत्तर उ० ८

६. राजाकी चिट्ठी—

३६ पुष्पुरसे राजा **राजहंस**के आज्ञापत्रको लेकर आये राजपुरुषोने प्रणाम करके **राजवाहन**से अर्ज किया—"स्वामिन्, यह पिता (राज-हंस) का आज्ञापत्र ग्रहण कीजिये।" यह सुन उठकर सभा में वार-वार आदरपूर्वक प्रणाम कर आज्ञापत्रको ग्रहण किया, और सिरपर रख उससे उतारकर खोलकर राजा राजवाहनने सबको सुनाते इस प्रकार उसे वाचा—

४० "स्वस्ति श्री पुष्पपुरराजधान्या श्री राजहंसभूपतिश्चम्पा-नगरीमधिवसतो राजवाहनप्रमुखान् कुमारान् आशास्याज्ञापत्र प्रेषयति । यथा यूयमितो मामामन्त्र्य प्रणम्य प्रस्थिता पथि कस्मिंश्चिद् वनोद्देश उपशिवालय स्कन्धावारमवस्थाप्य स्थिता । तत्र राजवाहन शिवपूजार्थं निशि शिवालये स्थित प्रातरनुपलभ्यावशिष्टा सर्वेऽपि कुमारा 'सहैव राजवाहनेन राजहस प्रणस्यामो न चेत्प्रा-णास्त्यक्ष्याम' इति प्रतिज्ञाय सैन्य परावर्त्य राजवाहन-मन्वेष्टु पृथक्प्रस्थिता एत भवद्वृत्तान्त तत प्रत्या-वृत्ताना सैनिकाना मुखादाकर्ण्यासह्यदु खोदन्वति मग्नमानसावुभावह युष्मज्जननी च ।"

४१ वामदेवाश्रम गत्वैतद् वृत्तात तद्विदित विधाय प्राण परित्याग कुर्व इति निश्चित्य तदाश्रममुपगतौ त मुनिं प्रणम्य यावत्स्थितौ तावदेव तेन त्रिकालवेदिना मुनिना विदित-मेवास्मन्मनीषितम् । निश्चयमवबुद्ध्य प्रावोचि—'राजन प्रथममेवैतत्सर्वं युष्मन्मनीषित विज्ञानबलादज्ञायि । येदेते त्वत्कुमारा राजावाहननिमित्ते कियन्तमनेहसमापदमासाद्य भाग्योदयादसाधारणेन विक्रमेण विहितदिग्विजया प्रभूतानि राज्यान्युपलभ्य षोडशाब्दान्ते विजयिन राजवाहन पुरस्कृत्य प्रत्येत्य तव वसुमत्याश्च पादानभिवाद्य भवदाज्ञा-विधायिनो भविष्यन्ति । अतस्तन्निमत्त किमपि साहस न विधेयम्' इति । तदाकर्ण्य तत्प्रत्ययाद्धैर्यमवलम्ब्याद्य-प्रभृत्यह देवी च प्राणानधारयाव । इदानिमासन्नवर्तिन्यवधौ वामदेवाश्रमे गत्वा विज्ञप्ति कृता—'स्वामिन् ! तदुक्तावधि पूर्णप्रायो भवति, तत्प्रवृत्तिस्त्वयाद्यापि

४०. "स्वस्ति श्री, **पुरुषपुर** राजधानीसे श्री **राजहंस** भूपति चम्पा नगरीमें वसते **राजवाहन** आदि कुमारोको आशीर्वाद दे आज्ञापत्र भेजते है। क्योकि, तुम सब यहासे विना पूछे मुझे प्रणाम करके प्रस्थान कर रास्तेमें किसी वनस्थानमें शिवालयके पास छावनी डाले रहे। वहा शिवालयमें रातके वक्त शिवपूजनके लिये गये राजवाहनको सवेरे न पाकर वाकी सारे कुमारोने भी 'राजवाहनके साथ ही राजहंसको प्रणाम करेंगे, नही तो प्राणोको छोडेगे' यह प्रतिज्ञा करके सेनाको लौटा राजवाहनको ढूढ़नेके लिये अलग-अलग प्रस्थान किया। आपके इस वृत्तान्तको वहा से लौटे सैनिकोके मुहसे सुनकर मेरी और तुम्हारी मा का मन असह्य दु ख-सागरमें मग्न हुआ।"

४१ **वामदेव**के आश्रममें जाकर इस वृत्तान्तको उन्हें ज्ञात करा 'हम प्राण त्याग करेंगे' यह निश्चय कर हम दोनो उस आश्रममें जा, मुनिको प्रणाम कर खडे हुये। तभी उस त्रिकालज्ञ मुनिने हमारे मनकी वातको जान लिया, और (हमारे) निश्चयको समझकर कहा—'राजन्, आपके इस सारे मनोभावको (दिव्य) ज्ञानके वलसे मैंने पहले ही जान लिया। यह (लोग) तुम्हारे कुमार, राजवाहनके लिये कितने ही समय तक आफत उठायेंगे। फिर भाग्यवश असाधारण पराक्रमसे दिग्विजय कर वहुत से राज्य प्राप्त कर सोलहवें वर्षके अन्तमें विजयी राजवाहनको आगे किये लौटकर तुम्हारे और वसुमतीके चरणोका अभिवादन करके आपके आज्ञाकारी होगे। अत उनके लिये कोई साहस नही करना चाहिये।' सो सुनकर उस पर विश्वास करके धैर्य अवलवन कर आज तक मैं और देवीने प्राण धारण किया। अव अवधिके नजदीक आनेपर वामदेवके आश्रममें जाकर हमने अर्ज की—'स्वामिन् आपकी कही अवधि करीब करीव पूर्ण हो रही है। उनका समाचार तो आप जानते

विज्ञायत' इति श्रुत्वा मुनिरवदत्—'राजन् राजवाहनप्रमुखा सर्वेपि कुमारा अनेकान्दुर्जयाशत्रून्विजित्य दिग्विजय विधाय भूवलय वशीकृत्य चम्पायामेकत्र स्थिता तवाज्ञापत्रमादाय तदानयनाय प्रेष्यन्ता शीघ्रमेव सेवका' इति मुनिवचनमाकर्ण्य भवदाकारणायाज्ञापत्र प्रेषितमस्ति। अत पर चेत्क्षणमपि यूय विलम्ब विधास्यथ तत मा वसुमती च मातर कथावशेषावेव श्रोष्यथेति ज्ञात्वा पानीयमपि पथि भूत्वा पेयम्" इति।

—कथोपसहार

२७. भट्टि (६१० ई०)

भट्टि स्वामी या वत्सभट्टि गुजरातके निवासी तथा वलभीके राजा श्रीधरसेनके दरबारी कवि थे। वलभीमें श्रीधरसेन चार हुए। श्रीधरसेन द्वितीयने भट्टि नामके किसी विद्वान्को कुछ भूमि दान दी थी, सम्भव है यह वही भट्टि हों। भट्टिकी एक ही कृति हमें मिलती है, जिसका मूल नाम "रावणवध" था, लेकिन वह कविके नामपर ही अधिक प्रसिद्ध है। यह महाकाव्य २० सर्गों और ३६२४ श्लोकोंमें समाप्त हुआ है। इस काव्यमें

रावणवध

(१) रामजन्म—

१ अभून् नृपो विबुधसख परन्तप श्रुतान्वितो दशरथ इत्युदाहृत ।
गुणैर्वर भुवनहितच्छलेन य सनातन पितरमुपागमत् स्वयम् ॥१॥

हो है।' सुनकर मुनि ने कहा—'राजन्, राजवाहन आदि सारे कुमार अनेक दुर्जय शत्रुओंको जीतकर दिग्विजय कर भूमण्डलको वशमें करके **चम्पामें** एकत्र मौजूद हैं। अपना आज्ञापत्र उन्हें बुलानेके लिये जल्दी सेवकों द्वारा भेजो।' मुनिके इस वचनको सुनकर आप लोगोंके बुलानेके लिये (यह) आज्ञापत्र भेजा है। इसके बाद अगर क्षण भर भी तुम विलम्ब करोगे, तो मुझे और माता वसुमतीका कथाशेष ही सुनोगे, यह जानकर पानी भी रास्ते पर (आरूढ) होकर ही पीना।"

—कथाका उपसंहार

२७. भट्टि (६१० ई०)

अपने सारे व्याकरण-ज्ञानका समावेश करना चाहा है, जिसके कारण यह काव्य नहीं, बल्कि व्याकरणके प्रयोगोंका ग्रन्थ बन गया और उसी दृष्टिसे लोग अधिकतर इसे पढ़ते भी हैं। व्याकरण चक्षुवालोंके लिए दीपतुल्य होते भी इसका यह अर्थ नहीं है, कि इसमें काव्यके गुणोंका बिल्कुल अभाव है। रामायणके कई पात्रोंकी उक्तियाँ इसमें बड़ी ही सुन्दर और सजीव देखनेमें आती हैं।

भट्टिकाव्य

१. राम-जन्म—

१ देवताओंके मित्र परम तपस्वी, वेदज्ञ **दशरथ** नामसे प्रसिद्ध राजा हुये। गुणोंमें श्रेष्ठ जिन्हें पिता बनाकर सनातन पुरुष स्वयं लोक-हितके बहाने आये ।।१।।

२ सोऽध्यैष्ट वेदास्त्रिदशानयष्ट पितृनपारीत् सममंस्त बन्धून् ।
व्यजेष्ट षड्वर्गमरंस्त नीतौ समूलघातं न्यवधीदरींश्च ॥२॥

३. वसूनि तोयं घनवद् व्यकारीत् सहाऽऽसनं गोत्रभिदा- ऽध्यवात्सीत् ।
न त्र्यम्बकादन्यमुपास्थिताऽसौ यशांसि सर्वेषुभृता निरास्थत् ॥३॥

४. पुण्यो महाब्रह्मसमूहजुष्टः सन्तर्पणो नाकसदां वरेण्यः ।
जज्वाल लोकस्थितये स राजा यथाऽध्वरे वह्निरभि- प्रणीतः ॥४॥

५ स पुण्यकीर्तिः शतमन्युकल्पो महेन्द्रलोकप्रतिमां समृद्ध्या ।
अध्यास्त सर्वर्तुसुखामयोध्यामध्यासितां ब्रह्मभिरि- द्धबोधैः ॥५॥

६ निर्माणदक्षस्य समीहितेषु सीमेव पद्मासनकौशलस्य ।
ऊर्ध्वस्फुरद्रत्नगभस्तिभिर्या स्थिताऽवहस्येव पुरं मघोनः ॥६॥

७ सद्रत्नमुक्ताफलवज्रभाञ्जि विचित्रधातूनि सकाननानि ।
स्त्रीभिर्युतान्यप्सरसामिवौघैर्मेरोः शिरांसीव गृहाणि यस्याम् ॥७॥

८ अन्तर्निविष्टोज्ज्वलरत्नभासो गवाक्षजालैरभिनिष्पतन्त्यः ।
हिमाद्रिटङ्कादिव भान्ति यस्यां गङ्गाऽम्बुपातप्रतिमा गृहेभ्यः ॥८॥

२ उन्होने वेदोंको पढा, देवताओंको पूजा, पितरोंको तृप्त किया, वधुओंको सम्मानित किया। रागादि छ वर्गको जीता, नीतिमें रति की, और जडमे शत्रुओंका वध किया ॥२॥

३ मेघ जैसे जलको वैसे धनको बाटा, इन्द्रके साथ (एक) आसनपर बैठे। शंकर छोड उन्होंने किसीकी भक्ति नही की, सारे बाणधारियोंके यशको नष्ट कर दिया ॥३॥

४ पुण्यात्मा महाब्राह्मणोंके समूहमें युक्त हो देवताओंके अति उत्तम तृप्तिकारक, वह राजा लोककी स्थितिके लिये, (वैसे) प्रज्वलित हुये जैसे यज्ञमें ले जाया गया अग्नि ॥४॥

५ वह इन्द्र समान पुण्य-यशवाले, ज्ञानी ब्राह्मणों द्वारा निवासित सारे ऋतुओंमे सुखद, समृद्धिमें इन्द्रलोकके समान अयोध्यामें रहते थे ॥५॥

६ जो **अयोध्या** निर्माण-चतुर ब्रह्माके कौशलकी अभिलाषाओंकी सीमा सी, ऊपर चमकती रत्न-किरणोंसे मानो इन्द्रपुरका उपहास करते अवस्थित थी ॥६॥

७ जिस अयोध्याके घर सच्चे-रत्न मोती-हीरायुक्त, विचित्र धातुओं और उपवन सहित, अप्सराओंके समूहो जैसी ही स्त्रियोंसे युक्त सुमेरुके शिखर जैसे थे ॥७॥

८ जहा गृहोंके भीतर रक्खे उज्ज्वल रत्नोंकी किरणें गवाक्षो द्वारा निकलती, **हिमाचल**-शिखरसे गगाजलके पात सी शोभा देती थी ॥८॥

९ धर्म्यासु कामाऽर्थशयस्करीषु मतासु लोकेऽधिगतासु काले
विद्यासु विद्वानिव सोऽभिरेमे पत्नीषु राजा
तिसृषूत्तमासु॥९॥

१०. पुत्रीयता तेन वराङ्गनाभिरानायि विद्वान् ऋतुषु क्रियावान्।
विपत्तिमज्ञानगतिर्मनस्वी मान्यो मुनि स्वा
पुरमृष्यशृङ्ग ॥१०॥

११. ऐहिष्ट त कारयितु कृताऽऽत्मा ऋतु नृप पुत्रफल मुनीन्द्रम्।
ज्ञाताऽऽशयस्तस्य ततो व्यतानीत् स कर्मठ. कर्म सुताऽ-
नुबन्धम् ॥११॥

१२. रक्षासि वेदी परितो निरास्थदगान्ययाक्षीदभित प्रधानम्।
शेषाण्यहौषीत् सुतसम्पदे च वर वरेण्यो नृपतेरमार्गीत् ॥१२॥

१३ निष्ठा गते दत्रिमसभ्यतोषे विहित्रिमे कर्मणि राजपत्न्य।
प्राशुर्हुतोच्छिष्टमुदारवश्यास्तिस्र प्रसोतु चतुर सुपुत्रान्।१३।

१४ कौसल्ययाऽसावि सुखेन राम प्राक्केकयीतो भरतस्ततोऽभूत्
प्रासोष्ट शत्रुघ्नमुदारचेष्टमेका सुमित्रा सह लक्ष्मणेन॥१४॥

—प्रकीर्णकाण्डम्, सर्ग १

(२) प्रात·—

१५. अथाऽस्तमासेदुषि मन्दकान्तौ पुण्यक्षयेणेव निधौ कलानाम्।
समाललम्बे रिपुमित्रकल्पै पद्मै प्रहास कुमुदैर्विषाद ॥१॥

१६. दूर समारुह्य दिव पतन्त भृगोरिवेन्दु विहितोपकारम्।
बद्धाऽनुरागोऽनुपपात तूर्णं तारागण सम्भृतशुभ्रकीर्ति ॥२॥

९ वह राजा धर्मयुक्ता काम-अर्थ-यश-करी, लोक-सम्मानिता, कालमें प्राप्त तीन उत्तम पत्नियोंमे, विद्याओंमें विद्वान् की तरह रमण करता था ॥९॥

१० वरांगनाओंने पुत्रकी कामना करते उसने यजनें कर्मिष्ट विद्वान्, विपाक-निर्मित ज्ञानमें गति रखनेवाले, मनस्वी माननीय, शृंगी ऋषिको अपने पुरमें बुलवाया ॥१०॥

११ राजाने उन नयमी मुनीद्रसे पुत्रफलवाले यज्ञको करानेकी इच्छा (प्रकट) की। भाव जानकर उन कर्मठ मुनिने पुत्र-सम्बन्धी कर्मको उसके लिये कराया ॥११॥

१२ यज्ञवेदीके चारो ओर राक्षसोंका निराकरण किया, प्रधान यज्ञके चारो ओर अगी (यज्ञ) का यजन कराया। पुत्र-प्राप्तिके लिये श्रेष्ठ आहुतिया डाली और श्रेष्ठ मुनिने नृपतिके लिये वर मागा ॥१२॥

१३ दानपात्र ब्राह्मणोके तुष्ट होने, विहित कर्मके समाप्त होने पर उच्चवंशी तीनो राजपत्नियोंने यज्ञशेषको भक्षण किया, चार सुन्दर पुत्रोंको पैदा करनेके लिये ॥१३॥

१४ कौसल्याने पहले सुज्ञसे रामको जन्म दिया, फिर कैकेयीसे भरत हुये। अकेली सुमित्राने लक्ष्मण-सहित उदार-चेष्टावाले शत्रुघ्नको जन्म दिया ॥१४॥

—सर्ग १

२. प्रात.वर्णन—

१५ तब कलानिधि (चन्द्रमा) के मदकाति हो, पुण्यक्षय जनकी तरह अस्ताचलपर जानेपर, शत्रुओ और मित्रोंके समान क्रमश कमलोंने प्रहास और कोइयोंने विषाद प्राप्त किया ॥१॥

१६ भृगु (गिरि) पतन की तरह दूर आकाशमें आरूढ हो गिरते, उपकारक चन्द्रके गिरनेपर उसके पीछे अनुरागी स्वच्छ-कीर्ति-धारी तारागण भी गिरे ॥२॥

१७. क्व ते कटाक्षा क्व विलासवन्ति प्रोक्तानि वा तानि ममेति मत्वा।
लकाऽगनानामवबोधकाले तुलामनारुह्य गतोऽस्त-मिन्दु ।।३।।

१८ मानेन तल्पेष्वयथामुखीना मिथ्याप्रसुप्तैर्गमितत्रियामा ।
स्त्रीभिर्निशाऽतिक्रमविह्वलाभिर्दृष्टेऽपि दोपे पतयोऽनु-नीता ।।४।।

१९ ईर्ष्याविरुग्णा स्थिरबद्धमूला निरस्तनि शेषशुभप्रताना ।
आप्यायिता नेत्रजलप्रसेकै प्रेमद्रुमा सरुरुहु प्रिया-णाम् ।।५।।

२० तत समाशकितविप्रयोग पुनर्नवीभूतरसोऽवितृष्ण ।
स्मरस्य सन्त पुनरुक्तभाव नाऽऽवर्तमानस्य विवेद लोक ।६

२१ शशाकनाथाऽपगमेन धूम्रा मूर्च्छापरीतामिव निर्विवेकाम् ।
तत सखीव प्रथिताऽनुरागा प्राबोधयद् द्या मधुराऽरुण-श्री ।।१६।।

२२ अवीततृष्णोऽथ परस्परेण क्षणादिवाऽऽयातनिशाऽवसान ।
दु खेन लोक परवानिवाऽगात् समुत्सुक स्वप्ननिकेत -नेभ्य ।।१७।।

२३ तालेन सम्पादितसाम्यशोभ गुभाऽवधान स्वरवद्धरागम् ।
पदैर्गतार्थ नृपमन्दिरेपु प्रातर्जगुर्मगलवत्तरुण्य ।।१९।।

२४ दुरुत्तरे पक इवान्धकारे मग्न जगत्सन्ततरश्मिरज्जु ।
प्रनष्टमूर्तिप्रविभागमुद्यन् प्रत्युज्जहारेव ततो विवस्वान् ।।२०

१७ कहा वे कटाक्ष, कहा वे मेरे ललित वचन है, यह सोचकर, लकाकी स्त्रियोके जागनेके समय, सन्देह पर आरूढ हुये बिना चन्द्रमा अस्त हो गया ॥३॥

१८. निशाके बीतनेसे विह्वल स्त्रियो द्वारा दोष देखनेपर भी मान करके शय्यापर उलटा मुख किये झूठो निद्रामें रात बिताये पति मनाये गये ॥४॥

१९ प्रियतमाओकी ईर्ष्याने व्यथित स्थिरबद्धमूल सारे शुभ हास आदि विस्तारोसे वचित, प्रेमरूपी वृक्ष आसुओके सेचनसे तर्पित हो बडे ॥५॥

२० तब वियोगकी आशका करनेवाले पुन नये उत्पन्न रसयुक्त अभिलाषी लोगोने दोहराते कामदेवके भी पुनरुक्तभावको नही जाना ॥६॥

२१ रात्रिके बीतनेसे मूर्छित, विवेक-रहित से धूमिल द्युलोकको, अरुणकी मधुर शोभाने बडे अनुरागवाली सखीकी तरह जगाया ॥१६॥

२२ तब एक दूसरेसे अतृप्त हुये, मानो क्षण भरमें निशाकी समाप्ति होगी समझनेवाले, लोग दु खसे परवशकी तरह उत्सुक हो शयनगृहोसे निकले ॥१७॥

२३. राजमहलोमें प्रात काल तरुणियोने तालसे समता और शोभा सम्पादित किये। शुभ एकाग्रतायुक्त सार्थक स्वरयुक्त मगल रागको पदोके साथ गाया ॥१९॥

२४ तब दुस्तर पक जैसे अन्धकारमें मग्न, आकारके भेदसे नष्ट हुये, फैले रश्मिरूपी रस्सीवाले सूर्यने उगकर जगत्को निकाला ॥२०॥

२५. पीतौष्ठरागणि हृताऽञ्जनानि भास्वन्ति लोलैरलकैर्मुखानि।
प्रात कृताऽर्थानि यथा विरेजुस्तथा न पूर्वेद्युरलङ्कृतानि ॥२१
—सर्ग. ११

(३) **विभीषण-विलापः—**

२६ व्यश्नुते स्म तत शोको नाभिसम्बन्धसम्भव.।
विभीषणमसावुच्चै रोदिति स्म दशाननम् ॥१॥

२७. "भूमौ शेते दशग्रीवो महार्हशयनोचित ।
नेक्षते विह्वल मा च न मे वाच प्रयच्छति ॥२॥

२८ विपाकोऽय दशग्रीव, सदृष्टोऽनागतो मया।
त्व तेनाऽभिहित पथ्य किं कोप न नियच्छति ॥३॥

२९ भजन्ति विपदस्तूर्णमतिक्रामन्ति सम्पद ।
तान्मदान्नावतिष्ठन्ते ये मते न्यायवादिनाम् ॥४॥

३० अपथ्यमायतौ लोभादामनन्त्यनुजीविन ।
प्रिय शृणोति यस्तेभ्यस्तमृच्छन्ति न सम्पद ॥५॥

३१ द्वेष्टि प्रायो गुणेभ्यो यन्न च स्निह्यति कस्यचित्।
वैरायते महद्भिश्च शीयते वृद्धिमानपि ॥९॥

३२ समाश्वसिमि केनाह कथ प्राणिमि दुर्गत ।
लोकत्रयपतिर्भ्राता यस्य मे स्वपिति क्षितौ ॥१०॥

३३ अहो जागर्ति कृच्छ्रेषु दैव यद्बलभिज्जित ।
लुठ्यन्ति भूमौ क्लिद्यन्ति बान्धवा मे स्वपन्ति च ॥११॥

३४ शिवा कुष्णन्ति मासानि भूमि पिबति शोणितम्।
दशग्रीवसनाभीना समदन्त्यामिष खगा ॥१२॥

२५ पीले ओष्ठ रंगवाले अंजन पुछे चंचल अलकोंसे चमकते कृतार्थ मुख प्रात जैसे शोभा दे रहे थे, वैसे पूर्व दिन में अलंकृत भी नहीं शोभा देते थे ॥२१॥

—सर्ग ११

३. विभीषणका विलाप—

२६ तव महोदर सम्बन्धी शोक **विभीषणको** व्याप्त हुआ, और वह **रावणके** लिये फूट-फूट कर रोने लगा ॥१॥

२७ "महार्घ शय्यापर सोनेवाला दशानन भूमिपर सो रहा है। वह न मुझ विह्वलको देखता है और न मुझे उत्तर देता है ॥२॥

२८ हे दशग्रीव, मैंने इस उचित परिणामको देखा था। उसे तुझे कहा (भी), पर तूने कोपपर भावी नियंत्रण नहीं किया ॥३॥

२९ जो मदके कारण उचित वक्ताओंकी सम्मति नहीं मानते, उन्हें विपत्तियां जल्दी ही आ पकड़ती और सम्पत्तियां छोड़ जाती हैं ॥४॥

३० भविष्यमें अपथ्य होनेवाली वातको सेवक लोभवश कहते हैं। उनसे जो प्रिय वात सुनता है, उसे सम्पदा नहीं प्राप्त होती ॥५॥

३१ चूंकि प्राय गुणोंसे द्वेष करता है और किसीसे स्नेह नहीं करता, महानोंके साथ वैर करता है, इससे (उसकी) समृद्धि भी नष्ट हो जाती है ॥६॥

३२ दुर्गतिको प्राप्त मैं किससे ढारस वांधू, कैसे जिऊं, जब कि मेरा तीन-लोक पति भाई पृथिवीपर सो रहा है ॥१०॥

३३ अहो संकटोंमें दैव जग रहा है, जो कि इन्द्रके विजेता मेरे वान्धव भूमिपर लोटे सो रहे हैं ॥११॥

३४ सियारियां मास खा रही हैं, पृथिवी शोणित पी रही है। **दशाननके** वन्धुओंके आमिषको पक्षी खा रहे हैं ॥१२॥

३५ येन पूतक्रतो मूर्ध्नि स्थीयते स्म महाऽहवे।
तस्यापीन्द्रजितो दैवाद्ध्वाक्षै शिरसि लीयते ॥१३॥

३६ त्वमजानन्निद राजन्नीडिषे स्म स्वविक्रमम्।
दातु नेच्छसि सीता स्म विषयाणा च नेशिषे ॥१५॥

३७ हविर्जक्षति नि शको मखेषु मघवानसौ।
प्रवाति स्वेच्छया वायुरुद्गच्छति च भास्कर ॥१९॥

३८ धनानामीशते यक्षो यमो दाम्यति राक्षसान्।
तनोति वरुण पाशमिन्दुनोदीयतेऽधुना ॥२०॥

३९ शाम्यत्यृतुसमाहारस्तपस्यन्ति वनौकस ।
नो नमस्यन्ति ते बन्धून् वरिवस्यन्ति नामरा ॥२१॥

४० श्रीर्निष्कुष्यति लकाया विरज्यन्ति समृद्धय ।
न वेद तन्न यस्यास्ति मृते त्वयि विपर्यय ॥२२॥

४१ शम शम नभस्वन्त पुनन्ति परितो जगत्।
उज्जिहीषे महाराज, त्व प्रशान्तो न किं पुन ॥२७॥

४२ प्रोर्णोति शोकश्चित्त मे सत्व सशाम्यतीव मे।
प्रमार्ष्टि दु खमालोक मुचाम्यूर्ज त्वया विना ॥२८॥

४३ रोदिम्यनाथमात्मान बन्धुना रहितस्त्वया।
प्रमाण नोपकाराणामवगच्छामि यस्य ते ॥३०॥

४४ त्वयापि नाम रहिता कार्याणि तनुमो वयम्।
कुर्मश्च जीविते बुद्धि धिक् तृष्णा कृतनाशिनीम् ॥३२॥

४५ तृणेह्मि देहमात्मीय त्व वाच न ददासि चेत्।
द्राघयन्ति हि मे शोक स्मर्यमाणा गुणास्तव" ॥३३॥

४६ अन्त पुराणि पौलस्त्य, पौराश्च भृशदु खिता ।
सश्रुत्य स्माभिधावन्ति हत रामेण सयुगे ॥३७॥

३५ जो महायुद्धमें इन्द्रके सिरपर खडा होता था, उस मेघनादके सिरपर दैवके कारण कौवे बैठे है ।।१३।।

३६ हे राजन्, इसे विना जाने तुम अपने पराक्रमकी तारीफ करते थे। सीताको नही देना चाहते थे, और विषयोपर काबू नही कर पाये थे ।।१५।।

३७ (अब)वह इन्द्र निश्शक हो यज्ञोमे हवि-भक्षण कर रहा है, वायु स्वेच्छा-पूर्वक वह रहा है और सूर्य उग रहा है ।।१६।।

३८ कुबेर धनोपर अधिकार कर रहा है, यम राक्षसोका दमन कर रहा है। वरुण पाशको फैला रहा है, अब चन्द्रमा उग रहा है ।।२०।।

३९ ऋतुये शान्त हो रही है, वनवासी तपस्या कर रहे है। (अब) तेरे बन्धुओको अमर न नमस्कार करेगे, न पूजेंगे ।।२१।।

४० लकापर श्री क्रुद्ध है, समृद्धिया विरक्त है। इसे तुमने नही जाना, जिसका तेरे विना उलटा हो रहा है ।।२२।।

४१ वायु शान्तिपूर्वक चारो ओर जगत्को पवित्र कर रहे है। हे महाराज, क्या प्रशान्त हो फिर तुम नही उठोगे ।।२७।।

४२ शोक मेरे चित्तको ढाक रहा है, मेरी हिम्मत ठडी हो रही है। दुख प्रकाशको पोछ रहा है, तेरे विना मैं बलको छोड रहा हू ।।२८।।

४३ तुझ बन्धुके विना मै अपने अनाथ होनेके लिये रो रहा हू। जिस तेरे किये उपकारोकी सीमा मै नही जानता ।।३०।।

४४ तेरे विना भी क्या हम कार्योंको फैलायेगे ? जीनेकी इच्छा करेंगे ? कृतघ्ना तृष्णाको धिक्कार है ।।३२।।

४५ यदि तुम उत्तर नही देते, तो मै अपने शरीरको मार दूगा। याद आते तेरे गुण मेरे शोकको बढा रहे है ।।३३।।"

४६ युद्धमें राम द्वारा रावणके मारे जानेकी बात सुनकर अन्त पुरवाले और पुरवासी अत्यन्त दुखित हो दौड रहे थे ।।३७।।

४७ मूर्धजान् स्म विलुचन्ति क्रोशन्ति स्मातिविह्वलम्।
अधीयन्त्युपकाराणा मुहुर्मुहु प्रमन्यु च ॥३८॥

४८ रावणस्य नमन्ति स्म पौरा सास्रा रुदन्ति च।
भाषेत स्म ततो रामौ वच पौलस्त्यमाकुलम् ॥३९॥

४९ "दातु स्थातुर्द्विषा मूर्ध्नि यष्टुस्तर्पयितु पितृन्।
युद्धाभग्नाविपन्नस्य किं दशास्यस्य शोचसि ॥४०॥

५० बोभवीति न सम्मोहो व्यसने स्म भवादृशाम्।
किं न पश्यसि सर्वोऽय जनस्त्वामवलम्बते ॥४१॥

५१ त्वमर्हसि भ्रातुरनन्तराणि कर्तुं जनस्यास्य च शोकभगम्।
घुर्ये विपन्ने त्वयि राज्यभारो मज्जत्यनूढ
क्षणदाचरेन्द्र" ॥४२॥

—सर्ग १८

२८. विज्जा (विद्या ६१० ई०)

संस्कृतमें स्त्रियोने भी कविता की थी, और कुछ कविताओके देखनेसे मालूम होता है कि वह पुरुषोंसे पीछे नहीं थी। पर, उनके थोडेहीसे नमूने सुभाषित ग्रन्थोमें सुरक्षित हैं। कलकत्ता विश्वविद्यालयके डा० यतीन्द्रविमल चौधरीने "संस्कृत पोएटिसेस" (संस्कृत कवयित्रियाँ) में कितनियोकी रचनाओंको सगृहीत किया है, जिनमें विज्जा या विज्जिकाके भी पद्य हैं।

स्फुट-सग्रह.

(१) चाटुकारिता—

१ भूपाला शशि-भास्करान्वयभवा के नाम नासादिता,
भर्तार पुनरेकमेव हि भुवस्त्वा देव मन्यामहे।

४७ वे वालोको नोचते थे, अति विह्वलतामे क्रन्दन करते थे। वार-वार स्वामीके उपकारो को अत्यन्त शोकसे याद करते थे ।।३८।।

४८ अश्रुमुख पुरवासी रावणको नमस्कार करते रो रहे थे। तव व्याकुल विभीषणसे रामने यह वात कही ।।३९।।

४९ "दाता, शत्रुओके सिरपर खडे होनेवाले, पितरोकी पूजा और तर्पण करनेवाले, युद्धमें अखण्डित-अविपद्ग्रस्त रावणके लिये तुम क्यो शोक करते हो ।।४०।।

५० आप जैसोको दु खमें अधिक मोह नही करना चाहिये। क्या नही देखते, ये सव लोग तुम्हारे सहारे है ।।४१।।

५१ तुमको भाईकी अन्त्येष्टि और इन लोगोका शोकभग करना चाहिये। हे राक्षसेश्वर, धुरधर तुम्हारे विपद्युक्त होनेपर विना वहन होता राज्य का भार डूब जायेगा" ।।४२।।

—सर्ग १८

२८. बिज्जा (विद्या ६१० ई०)

डा० चौधरीने इनका समय ईसाकी सातवीं सदीके आसपास माना है। किसी-किसीका कहना है कि यह किसी राजा चन्द्रादित्यकी पत्नी विजय-भट्टारिका थीं। इनके वारेमें यह भी मशहूर है कि दण्डीने सरस्वतीको जब सर्वशुक्ला कहा, तो विद्याने उसका प्रतिवाद करते हुए कहा—"नीलकमल सी श्यामा मुझ विज्जिकाको जाने विना ही दण्डीने सरस्वतीको सर्वशुक्ला कहा", अर्थात् विद्या अपने समयकी द्वितीय सरस्वती थी।

स्फुट संग्रह

१. चापलूसी—

१ (उसने) चन्द्र-सूर्यवशी कौनसे राजा नही पाये, पर हे देव, हम समझते हैं, पृथिवीने तुम्हीको एक स्वामी पाया, जिसने कि **अगदेशको** जीत,

येनांग परिमृष्य कुन्तलमथाकृष्य व्युदस्याऽऽयत,
चोल प्राप्य च मध्य-देशमधुना काच्या कर पातित ॥१॥[१]

(२) खड्गः—

२ यश-पुत्र देव त्वदसि-लतिकाऽसूत समरे,
समीरस्तद्धूली - पटल - पट - राशि विकिरति।
शिवा गायन्त्युच्चैर्नटति च कबन्धावलिरभृद्,
अरातीना मोक्ष सपदि भव-बन्ध-व्यतिकरात् ॥२॥[२]

(३) कवि-प्रशंसा—

३ नीलोत्पल-दल-श्यामा विज्जका मामजानता।
वृथैव दण्डिना प्रोक्ता सर्व-शक्ला सरस्वती ॥३॥[३]

(४) ग्राम्या—

४ मचे रोमाचितागी रति-मृदित-तनो कर्कटी-वाटिकाया,
कान्तस्यागे प्रमोदादभय-भुज-परिष्वक्त-कण्ठे निलीना।
पादेन प्रेखयन्ती मुखरयति मुहु पामरी फेरवाणा,
रात्रावत्रास-हेतोर्वृति-शिखर-लता-लम्बिनी कम्बु-
मालाम् ॥८॥[४]

(५) विरहिणी—

५ देवेन प्रथम जितोऽसि शशभृल्लेखाभृताऽनन्तर,
वृद्धेनोद्धत-वुद्धिना स्मर तत कान्तेन पान्थेन मे।
त्यक्त्वा तान् वत हसि मामतिकृशा बालामनाथा स्त्रिय,
धिक् त्वा धिक् तव पौरुष धिगुदय धिक्कार्मुक धिक्
शरान् ॥९॥[५]

---

१ शार्दूलविक्रीडितम्। २ शिखरिणी। ३. अनुष्टुप्।
४. स्रग्धरा।

कुंतलको छान, विस्तृत चोल देशको हरा, अब मध्यदेशको लेकर काचीके ऊपर हाथ डाल रहा है ।।१।।

२. खड्गकी प्रशंसा—

२ हे देव, समरमें तुम्हारी खड्ग-लतासे यशरूपी पुत्र पैदा हुआ, वायु उसके धूलियो रूपी वस्त्रको राशिको फैलाता है । सियारिया ऊंचे गाती है, शिरहीन धड नाचते है, नसारके बन्धनसे शत्रुओं-का मोक्ष तुरत हो गया ।।२।।

३. कविकी प्रशंसा—

३ नीलकमलके पत्रोंसी श्यामा मुझ विज्जिकाको जाने विना, दण्डीने व्यर्थ ही सरस्वतीको पूरा सफेद कहा ।।३।।

४. ग्रामीण स्त्री—

४ ककडीके खेतमें मचान पर रति-मर्दित-शरीरवाली, पतिके शरीरपर निर्भय भुजासे आलिंगित-कंठवाली, रोमांचित अंगयुक्त लेटी, पैर पीटती ग्रामीणा रातको गीदडोको डरानेके लिये, घिरी शिखर-लतासे लटकती शंखोकी मालाको बार-बार बजा रही है ।।८।।

५. विरहिणी—

५ हे कामदेव, पहले देव चन्द्रशेखर द्वारा तू जीता गया, फिर विशाल बुद्धिवाले बुद्ध द्वारा, तब मेरे बटोही कान्त द्वारा । उन्हें छोडकर हाय मुझ अनाथा अतिदुर्बल वाला स्त्री को तू मार रहा है । तुझे धिक्कार, तेरे पौरुषको धिक्कार, (तेरे) उदयको धिक्कार, धनुषको धिक्कार, तेरे शरोको धिक्कार ।।६।।

(६) पथिक-कामिनी—

६ मेघैर्व्योम नवाम्बुभिर्वसुमती विद्युल्लताभिर्दिशो,
धाराभिर्गगन वनानि कुटजै पूरैर्वृता निम्नगा ।
एका घातयितु वियोग-विधुरा दीना वराकी स्त्रिय,
प्रावृट्-काल हताश, वर्णय कृत मिथ्या किमाडम्बरम् ॥१०॥[1]

(७) दृष्टिः—

७ जनयति जननाथ दृष्टिरेषा,
तव नवनीतल-सरोरुहाभिरामा ।
प्रणयिषु सुसमाश्रितेषु लक्ष्मी-
मरिषु च भगमनगमगनासु ॥१२॥[2]

(८) प्रोषित-भर्तृकोक्तिः—

८ विज्ञप्तिरेषा मम जीव-बन्धो,
तत्रैव नेया दिवसा कियन्त ।
सप्रत्ययोग्य-स्थितिरेष देश,
करा हिमाशोरपि तापयन्ति ॥१५॥[3]

(९) तडागान्योक्तिः—

९ माद्यद्दिग्गज-दान-लिप्त-करट-प्रक्षालन-क्षोभिता,
व्योम्न सीम्नि विचेरुरप्रतिहता यस्योर्मयो निर्मला ।
कष्ट भाग्य-विपर्ययेण सरस कल्पान्तर-स्थायिनस्,
तस्याप्येक-वक-प्रचार-कलुष कालेन जात जलम् ॥१८॥[4]

---

१. शार्दूलविक्रीडितम् । २ पुष्पिताग्रा । ३ उपजाति । ४ हरिणी ।

६. बटोहीकी पत्नी—

६ मेघोसे आकाश ढक गया, नये जलसे धरती, बिजलीसे दिशायें, धाराओंसे गगन, कुटजोसे वन, धाराओंसे नदिया (ढक गईं)। एक वियोग-पीड़ित दीन बेचारी स्त्रीको मारनेके लिये, हे अभागे वर्षाकाल, तूने (इतना) मिथ्या आडम्बर क्यो किया ?॥१०॥

७. चितवन—

७ हे राजन्, तुम्हारी नवीन नीलकमलसी सुन्दर यह दृष्टि, आश्रित प्रणयी जनोमें लक्ष्मीको शत्रुओमे नाशको, और स्त्रियोमे कामको उत्पन्न करती है ॥१२॥

८. परदेसीकी पत्नीका संवाद—

८ हे जीवनबन्धु, मेरी यह विनती है, कि तुम कुछ दिन (और) वहीं बिताओ। इस समय यह देश रहने योग्य नही है, क्योंकि चन्द्रमाकी किरणें भी यहा ताप दे रही है ॥१५॥

९. अन्योक्ति—

९ जिसकी निर्मल लहरे, मत्त-दिग्गजके मदसे लिप्त कपोलोके, धोनेसे क्षोभित हो, अप्रतिहत आकाशकी सीमा तक विचर रही है, कल्पान्त तक रहनेवाले उस सरोवरका भी जल, हा कष्ट, उलटे भाग्यके कारण, काल पा (आज) एक बगलेके चलनेसे मलिन होने लायक हो गया। ॥१८॥

(१०) दैवोपालम्भः—

१० प्रियसखि, विपद्-दण्ड-प्रान्त-प्रपात-परम्परा-
परिचय-चले चिन्ता-चक्रे निधाय विधि खल ।
मृदमिव बलात् पिण्डीकृत्य प्रगल्भ-कुलालवद्,
भ्रमयति मनो नो जानीम किमत्र करिष्यति ॥१९॥[१]

११ विरम विफलायासादस्माद् दुरध्यवसायतो,
विपदि महता धैर्य-भ्रश यदीक्षितुमीहसे ।
अयि जड-विधे कल्पापाय-व्यपेत-निज-क्रमा,
कुल-शिखरिणि क्षुद्रा नैते न वा जल-राशय ॥२०॥[२]

(११) उलूखल-गीतिः—

१२ विलास-मसृणोल्लसन्मुसल-लोल-दो -कन्दली-,
परस्पर-परिस्खलद्-वलय-नि स्वनोद्बन्धुरा ।
लसन्ति कल-हुङ्कृति-प्रसभ-कम्पितोर -स्थल-,
त्रुटद्-गमक-सकुला कलम-कण्डनी-गीतय ॥२१॥[३]

(१२) चम्पकः—

१३ केनापि चम्पक-तरो बत, रोपितोऽसि,
कुग्राम-पामर-जनान्तिक-वाटिकायाम् ।
यत्र प्ररूढ-नव-शाक-विवृद्ध-लोभाद्,
भो भग्न-वाट-घटनोचित-पल्लवोऽसि ॥२२॥[४]

(१३) तरु·—

१४. सच्छाय फल-भार-नम्र-शिखर सर्वार्ति-शान्ति-प्रद
त्वामालोक्य सु-भूरुह खलु वय मार्गं विहायाऽऽगता ।[५]

---

१. पृथ्वी, २. वसन्ततिलका, ३. शार्दूलविक्रीडितम्, ४. आर्या, ५. हरिणी ।

१०. दैवको उलाहना—

१०. हे प्रिय सखि, विपद्रूपी डडेके छोरके लगातार गिरनेसे परिचयसे चिन्ताके चक्करमें चचल मनको रखकर, ढीठ कुम्हार द्वारा जबर्दस्ती पिंड बनाई मिट्टीकी तरह घुमाता दुष्ट विधाता, जाने यहा क्या करनेवाला है ॥१९॥

११ विपद्में बडोके धैर्य टूटनेको जो देखना चाहता है, तो तू इस विफल परिश्रमवाली बुरी कोशिशमे रुक जा। हे जड दैव, यह प्रलयके (महा)नाशमें भी अपने स्वभावमें अविचल, कुल-पर्वत है, क्षुद्र जलराशि नही है ॥२०॥

११. ओखल-गीति—

१२ लीला-स्नेहयुक्त उठते मूसलसे चचल बाहुरूपी कदलीके द्वारा परस्पर गिरती चूडियोकी खनखनसे सुन्दर मधुर हुकारके साथ, जोरसे कपित वक्षस्थलसे टूटते, तालके सहित धान कूटनेकी गीतें शोभा दे रही है ॥२१॥

१२. चम्पक—

१३ हे चम्पा वृक्ष, हाय किसीने तुम्हें कुग्रामके पामर जनोके पास, आखिरी बारीमें रोप दिया, जहापर उगे हुये नये सागकी वृद्धिके लोभसे, टूटी बारीको ठीक करनेके लिये उपयुक्त तुम्हारा पल्लव (माना गया) है ॥२२॥

१३. तरु—

१४ अच्छे छायादार फलके भारसे झुके शिखरवाले, सबसे अधिक शातिप्रद, सुवृक्ष, तुम्हें देखकर हम रास्ता छोडकर आ गये। यदि तुम्हारा

अन्तस्ते यदि कोटरोदर-चलद्-व्यालावली-विस्फुरद्-
वक्त्रोद्वान्त-विषानलातिभयद धन्यस्तदानी भवान् ।।२३।।

(१४) सूर्योदय-वर्णनम्—

१५ उन्निद्र-कोकनद-रेणु-पिशगितागा
गायन्ति मजु मधुपा गृह-दीर्घिकासु।
एतच्चकास्ति च रवेर्नव-बन्धु-जीव-
पुष्पच्छदाभमुदयाचल-चुम्बि बिम्बम् ।।२४।।

(१५) वर्षा—

१६ सोत्साहा नव-वारि-भार-गुरवो मुचन्तु नाद घना,
वाता वान्तु कदम्ब-रेणु-शबला नृत्यन्त्वमी बर्हिण.।
मग्ना कान्त-वियोग-दु ख-जलधौ दीना विलोक्यागनां,
विद्युत् प्रस्फुरसि त्वमप्यकरुणा स्त्रीत्वेऽपि तुल्येऽसति ।।२५

१७ अस्थिरमनेक-राग गुण-रहित नित्य-वक्र-दुष्प्रापम्।
प्रावृषि सुरेन्द्र-चाप विभाव्यते युवति-चित्तमिव ।।२६।।

१८ मलिन-हुत-भुग्-धूप-श्यामैर्दिशो मलिना घनै-
रविरल-तृणै श्यामा भूमिर्नवोद्गत-कदलै:।
सुरत-सुभगो नून काल स एव समागतो,
मरण-शरणा यस्मिन्नेते भवन्ति वियोगिन ।।२७।।

(१६) वसन्त —

१९ किंशुक-कलिकान्तर्गतमिन्दु-कला-स्पर्धि केसर भाति।
रक्त-निचोलक-पिहित धनुरिव जतु-मुद्रित वितनो ।।२८।।

भीतरी रूप, कोटरके गर्भमें चलते सापोके लहलहाते मुखोंसे उगले विष-ज्वाला के कारण अति भयप्रद है, तो आप धन्य है ।।२३।

१४. सूर्योदय-वर्णन—

१५ फूले कमलकी धूलिसे पीले अगवाले भवरे घरकी दीघियोमे मधुर गान करते हैं। नवीन अड्हुल फूलके पत्र सा चमकनेवाला, उदयाचलको चूमनेवाला यह सूर्यमडल चमक रहा है ।।२४।।

१५. वर्षा—

१६ (भले ही) नवीन जलके भारसे भारी उत्साह-सहित मेघ (अपना) नाद छोडे। कदवके केसरसे लिप्त वायु वहे, मोर नाचें। हे विद्युत्, पति-वियोगरूपी दु ख-सागरमें डूबी दीन अगनाको देखकर जो तू कौंदती है, तो तू मेरे समान स्त्री होनेपर भी निष्ठुर है ।।२५।।

१७ अस्थिर नाना रगयुक्त, गुण-रहित नित्य कुटिल और ुर्लभ, (यह) वर्षाकालका इन्द्रधनुप युवतीके चित्तसा दीखता है ।।२६।।

१८ अग्निके मलिन धूयें जैसे से श्याम बादलो द्वारा दिशायें मलिन है, नये निकले कदवाले घने तृणोसे भूमि श्याम है। रस लिये सचमुच वही सुन्दर काल आ गया है, जिसमें वियोगी के लिये मरण (ही) शरण होता है ।।२७।।

१६. वसन्त—

१६ टेसूकी कलीके भीतर स्थित चन्द्रकलाके साथ होड लगानेवाला केसर शोभा देता है। मानो लाल थैलीमें छिपा लाखसे मुद्रित कामदेवका धनुप है ।।२८।।

२९. वाण (६२० ई०)

वाण वर्तमान आरा जिला (विहार) में सोन नदीके दाहिने तटपर अवस्थित प्रीतिकूटके निवासी थे। संस्कृत गद्यकाव्य इनकी कृतियोंके रूपमें अपने चरम उत्कर्षपर पहुँचा। वाण हर्षवर्धन शीलादित्य (६०७–४७ ई०)के दरवारी कवि थे। यह एक बडे समृद्ध कुलमें पैदा हुए थे, जिसके कारण चाटुकारितामें निपुण नहीं हो सकते थे। इनके व्यक्तित्वका पता "हर्ष-चरित" और "कादम्बरी"से मिलता है। शायद इनकी तरहकी प्रकृतिके और आढ्य कुलमें उत्पन्न हुए दूसरे सस्कृतके कवि क्षेमेन्द्र थे। क्षेमेन्द्रने बहुत लिखा, उनके "दशावतारकाव्य"से पता लगता है, कि उनमें टकसाली कवि बननेकी भी प्रतिभा थी। वाण अपनी "कादम्बरी"को पूरा नहीं कर सके, जिसे उनके पुत्र भूषण भट्टने समाप्त किया। उपरोक्त दो श्रेष्ठ

१. हर्ष-चरितम्

(१) प्रास्ताविकम्—

१ उच्छ्वासान्तेऽप्यखिन्नास्ते येषा वक्त्रे सरस्वती।
कथमाख्यायिकाकारा न ते वन्द्या कवीश्वरा ॥१०॥

२ कवीनामगलद् दर्पो नून वासवदत्तया।
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणा गतया कर्णगोचरम् ॥११॥

३ पदवन्धोज्ज्वलो हारी कृतवर्णक्रमस्थिति.।
भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यवन्धो नृपायते ॥१२॥

४. अविनाशिनमग्राम्यमकरोत्सातवाहन ।
विशुद्धजातिभि. कोश रत्नैरिव सुभाषितै ॥१३॥

५. कीर्ति प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला।
सागरस्य पर पार कपिसेनेव सेतुना ॥१४॥

२९. वाण (६२० ई०)

गद्यकाव्योके अतिरिक्त "चण्डीशतक", "पार्वती-परिणय", "मुकुटताडितक" तीन और ग्रन्थोका इन्हें रचयिता वतलाया जाता है। यह भी किंवदन्ती है, कि "रत्नावलि", "प्रियदर्शिका" और "नागानन्द" तीनो नाटकोके भी रचयिता वाण ही थे, जो उनके आश्रयदाता हर्षवर्धनकी कृतिके नामसे प्रसिद्ध हैं। हो सकता है, इन नाटकोको हर्षवर्धनने लिखा हो, और वाणने उनका प्रतिसस्करण किया हो। वाण प्रथम श्रेणीके घुमक्कड थे। यौवनके आरम्भ होते ही तीन दर्जनसे अधिक गुणियो और कलाकारोकी मण्डली लेकर वह कई वर्षोतक देशाटन करते रहे, देशाटन और पण्डित-मित्रतासे इन्हें वहुत लाभ भी हुआ। इनकी कृतियोमें तत्कालीन देश और समाजका जितना विस्तृत और गम्भीर, आकर्षक और अपुनरुक्त चित्रण मिलता है, वैसा और जगह मिलना दुर्लभ है।

१. हर्षचरित

१. प्रस्तावना

१ जिनके मुहपर सरस्वती (वास करती) है, वे आख्यायिकाकार, कवीश्वर क्यो न वन्दनीय हो ॥१०॥

२ निश्चय ही **वासवदत्ता**से कवियोका दर्प गलित हो गया। जैसे कर्ण (कान) के गोचर हुई शक्तिसे पाडुपुत्रो का (दर्प) ॥११॥

३ पदोके वन्धमे उज्ज्वल वर्णोके क्रमकी स्थितिसे मनोहर, भट्टार **हरिश्चन्द्र**की गद्य-रचना राजती है ॥१२॥

४ **सातवाहन**ने विशुद्ध जाति के रत्नो जैसे सुभाषितो द्वारा, अपने अमर तथा अग्राम्य **कोश**[1]को रचा ॥१३॥

५ कुमुद सी उज्ज्वल **प्रवरसेन**[2]की कीर्ति, **सेतु** द्वारा वानर-सेनाकी तरह सागरके परले पार पहुच गई ॥१४॥

---

१. गाथासप्तशती

६. सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥१५॥

७. निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मजरीष्विव जायते ॥१६॥

८. समुद्दीपितकदर्पा कृतगौरीप्रसाधना ।
हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय वृहत्कथा ॥१७॥

—उच्छ्वास १

(२) राजदूतागमनम्

९ ग्रीष्मसमये कदाचिदस्य स्वगृहावस्थितस्य भुक्तवतोऽपराह्णसमये भ्राता पारशवश्चन्द्रसेननामा प्रविश्याकथयत्–"एष खलु देवस्य चतुःसमुद्राधिपतेः सकलराजचक्रचूडामणिश्रेणीशाणकोणघषर्णनिर्मलीकृतचरणनखमणेः सर्वचक्रवर्तिनां धौरेयस्य महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीहर्षदेवस्य भ्रात्रा कृष्णनाम्ना भवतामन्तिकं प्रज्ञाततमो दीर्घाध्वगः प्रहितो द्वारमध्यास्ते" इति। सोऽब्रवीत्—"आयुष्मन्, अविलवं प्रवेशय एनम्" इति।

१०. अतिदूरगमनगुरुजडजघम्, कार्दमिकचेलचीरिकानियमितोच्चण्डचण्डातकम्, पृष्ठप्रेंखत्पटच्चरकर्पटघटितगलितग्रन्थिम्, अतिनिविडसूत्रबन्धनिम्नितान्तरालकृतव्यवच्छेदया लेखमालिकया परिकलितमूर्धानम्, प्रविशन्तं लेखहारकमद्राक्षीत्, अप्राक्षीच्च दूरादेव—"भद्र, भद्रमंगेपभुवननिष्कारणबन्धोस्तत्र भवतः कृष्णस्य" इति।

६ सूत्रधार द्वारा किये आरंभवाले, बहुत भूमिका (अभिनय) वाले (अपने) नाटकोंसे पताका-युक्त देवकुलों (छतरियों) की तरह भासने यश प्राप्त किया ।।१५।।

७ कालिदासकी निकली सूक्तियोंमें, मधुर घनी मंजरियोंमें जैसी, प्रीति किसको नहीं होगी ।।१६।।

८ कामोत्तेजक, गौरीकी आराधना किये हरकी लीला की तरह वृहत्कथा किसके लिये विस्मयकारिणी नहीं होगी ।।१७।।

—उ० १

२. राजाके दूतका आगमन—

९ ग्रीष्मकालमें एक वार घर पर रहते भोजन करनेके वाद अपराह्ल समयमें वाणके भिन्न-वर्णज भाई चन्द्रसेनने प्रवेश करके कहा—"चारों समुद्रोंके अधिपति, सारे राजाओंकी चूडामणियोंरूपी कसौटीके कोने द्वारा घिसनेसे निर्मल चरण-नखकी मणियोंवाले, सारे चक्रवर्तियोंमें धुरधर, देव महाराजाधिराज परमेश्वर श्री हर्षदेवके भाई कृष्ण का भेजा दीर्घयात्री अतिप्रसिद्ध दूत द्वारपर खडा है।" वाणने कहा—"आयुष्मान्, विना विलंबके उसे भीतर लाओ।"

१० तव वडी दूरकी यात्रासे भारी तथा जड जंघावाले, गर्द भरे वस्त्र-खंड मे वधी ऊंची जांघियावाले, पीठपर हिलते कपडेसे वंधे शिथिल ग्रंथि-वाले वहुत घने सूत्रके वंधनसे झुके, भीतरसे विलग की हुई पत्रिका द्वारा शोभित सिरवाले, पत्रवाहकको वाणने प्रवेश करते देखा और दूरसे ही पूछा—"भद्र, सारे भुवनके अकारण-वन्धु आप कृष्णका मंगल तो है?"

११ स "भद्रम्" इत्युक्त्वा प्रणम्य नातिदूरे समुपाविशत्। विश्रान्तश्चाब्रवीत्—"एष खलु स्वामिनो माननीयस्य लेख प्रहित" इति विमुच्य चार्पयत्।

१२ अथ वाण सादर गृहीत्वा स्वयमेवावाचयत्—"मेखलकात् सदिष्टमवधार्य फलप्रतिवन्धी धीमद्भिरपहरणीय. कालातिपात इत्येतावदत्रार्थजातम्। इतरद्वार्तासवादनमात्रकम्।" अवधृतलेखार्थश्च सममुत्सारितपरिजन. सदेश पृष्टवान्। मेखलकस्त्ववादीत्—"एवमाह मेधाविन स्वामी—'जानात्येव मान्य यथैकगोत्रता वा, समानजातिता वा, सम सवर्धन वा, एकदेशनिवासो वा, दर्शनाभ्यासो वा, परम्परानुरागश्रवण वा, समानशीलता वा, स्नेहस्य हेतव। त्वयि तु विना कारणेऽनादृष्टेऽपि प्रत्यासन्ने बन्धाविव बद्धपक्षपात किमपि स्निह्यति मे हृदय दूरस्थेऽपीन्दोरिव कुमुदाकरे। भवन्तमन्तेरणान्यथा चान्यथा चाय चक्रवर्ती दुर्जनैर्ग्राहित आसीत्। न च तत्तथा। न सन्त्येव ते येषा सतामपि सता न विद्यन्ते मित्रोदासीनशत्रव। शिशुचापलापराचीनचेतोवृत्तितया च भवत केनचिदसहिष्णुना यत्किचिदसदृशमुदीरितम्। इतरो लोकस्तथैव तद् गृह्णाति वक्ति च।

१३ सलिलानीव गतागतिकानि लोलानि खलु भवन्त्यविवेकिना मनासि। वहुमुखश्रवणनिश्चलीकृतनिश्चय कि करोतु पृथिवीपति। तत्त्वान्वेषिभिश्चास्माभिर्दूरस्थितोऽपि प्रत्यक्षीकृतोऽसि। विज्ञप्तश्चक्रवर्ती त्वदर्थम्—'यथा प्रायेण प्रथमे वयसि सर्वस्यैव चापलै शैशवमपराधी'ति। तथेति च प्रतिपन्न स्वामिना। अतो भवता राजकुलमकृ-

११ "मगल है" कहकर वह, प्रणाम कर समीपमें बैठ गया। फिर (थोडे) विश्रामके बाद —"यह माननीय स्वामीका भेजा हुआ पत्र है", कह खोलकर उसे प्रदान किया।

१२ तव वाणने आदरपूर्वक लेकर स्वय ही उसे वाचा—"मेखलकमे मदेशको जानकर फल-अनुरोधी वुद्धिमान् आप देर न करे, यही यहा मतलव है। और तो वातका समर्थन मात्र है।" पत्रके अभि-प्रायको जानकर परिजनोको हटा (वाणने) मेखलकसे सन्देश पूछा। मेखलकने कहा—"मेवावी आपको हमारे स्वामीने यो कहा है—'माननीय आप जानते ही है, कि स्नेहके कारण होते है एक गोत्र या एक जातिका होना, या साथ पालन-पोपण होना, या एक देशमें निवास होना, या वरावर देखते रहना, या पारस्परिक अनुरागको सुनना, या परोक्षमें उपकार करना, या एक जैसे शीलका होना। तुम्हें न देखे होनेपर भी अकारण ही सन्निकटके वन्धुकी तरह, कुमुदा-करमें दूरस्थ चन्द्रमाकी तरह, पक्षपाती हो मेरा हृदय (तुमसे) कुछ स्नेह करता है। तुम्हारी अनुपस्थितिमें दुर्जनोने इस चक्रवर्ती (हर्प) को उलटा-उलटा समझा दिया। पर वह वैसा नही है। सत्पुरुष होते भी ऐसे पुरुष (दुनियामें) नही होते, जिनके मित्र, उदासीन और शत्रु न होवें। वाल-चपलता की ओर की चित्तवृत्ति होनेके कारण किसी असहिष्णुने आपके सम्वन्धमें जो कुछ अयुक्त वात कह दी, दूसरे लोग उसे वैसे ही ग्रहण करते और कहते है।

१३ अविवेकियोके मन पानीकी तरह गतानुगतिक चचल होते है। वहुत मुखोंसे सुननेसे स्थिर-निश्चय किये पृथिवीपति क्या करें? हम तत्वान्वेपी दूर रहते भी तुम्हारा प्रत्यक्ष किये से है। तुम्हारे वारे में हमने चक्रवर्तीको अर्ज किया है। पहली आयुमे प्राय सवका ही शैशव चपलताका अपराधी होता है। स्वामीने भी 'ठीक है' माना है। इसलिये विना देर किये आप राजदरवारमें आयें। महाराजको

तकालक्षेपमागन्तव्यम्। अवकेशीवादृष्टपरमेश्वरो बन्धुमध्यमधिवसन्नासि मे बहुमत। न च सेवावैषम्यविषादिना वा परमेश्वरोपसर्पणभीरुणा भवता भवितव्यम्। यतो यद्यपि—

१४ स्वेच्छोपजातविषयोऽपि न याति वक्तु,
देहीति मार्गणशतैश्च ददाति दुःखम्।
मोहात्समाक्षिपति जीवनमप्यकाण्डे,
कष्ट मनोभव इवेश्वरदुर्विदग्ध ॥३॥

१५ "तथाप्यन्ये ते भूपतय, अन्य एवायम्। न्यक्कृतनृगनिषधनहुषाम्बरीषदशरथदिलीपनाभागभरतभगीरथययातिरमृतमय स्वामी। नास्याहकारकालकूटविषदिग्धदुष्टा दृष्टय, न गर्वगुरुगरलग्रहगदगद्गदा गिर, नातिस्मयोष्मापस्मारविस्मृतस्थैर्याणि स्थानकानि, नोद्दामदर्पदाहज्वरवेगविक्लवा विकाराश्च, नाभिमानमहासन्निपातनिर्मितागभगानि गतानि, न मदार्दितवक्रीकृतोष्ठनिष्ठ्यूतनिष्ठुराक्षराणि जल्पितानि। तथा च अस्य विमलेषु साधुषु रत्नबुद्धि, न शिलाशकलेषु। मुक्ताधवलेषु गुणेषु प्रसाधनधी, नाभरणभारेषु। दानवत्सु कर्मसु साधनश्रद्धा, न करिकीटेषु। सर्वाग्रेसरे यशसि महाप्रीति, न जीवितजरत्तृणे। गृहीतकरास्वाशासु प्रसाधनताभियोग, न निजकलत्रधर्मपुत्रिकासु। गुणवति धनुषि सहायबुद्धि, न पिण्डोपजीविनि सेवकजने। अपि च—अस्य मित्रोपकरणमात्मा, भृत्योपकरण प्रभुत्वम्, पण्डितोपकरण वैदग्ध्यम्, बान्धवोपकरण लक्ष्मी, कृपणोपकरणमैश्वर्यम्,

देखे विना निष्फल वृक्षकी तरह, वन्धुओके वीच वसते तुम मेरे वहु-मान्य हो। आप सेवाको विपमतासे खिन्न अथवा महाराजके पास आनेमें भयभीत न होवे, क्योकि यद्यपि,

१४ अहो, दुष्नडित राजा, कामदेवकी तरह स्वेच्छासे उत्पन्न विषय (देश) वाला होते भी वोला नही जा सकता, सैकडो मगतो (वाणो) द्वारा "दो" (कहना) दु ख देता है, मोह वश जीवनको भी असमय ही फेंक देता है ॥३॥

१५ तो भी वे भूपति और है, यह (हर्ष) दूसरे ही है। **नृग-नल-निषध-नहुष-अम्वरीष-दशरथ-दिलीप-नाभाग-भगीरथ-ययातिको** (इन्होने) हेठा किया है। इन स्वामी की दृष्टि अहकाररूपी कालकूट विपसे लिप्त होकर दुष्ट नही है, वाणी गर्वके भारी विपसे गलेके ग्रहणरूपी रोगमे गद्गद् नही है, स्थितिया अति आश्चर्यकी है, गर्मीकी मृगी द्वारा (इनकी) स्थिरता भुलाई जानेवाली नही है, उत्कट अभिमानके दाह-ज्वरके ज्वरसे विह्वल करने वाले विकार नही है, गतिया अभिमानरूपी महासनिपातसे वने अग-भगवाली नही है, कथन मदसे पीडित टेढे किये ओठसे निकले निष्ठुर अक्षरोवाले नही है। और भी, निर्मल यह सावुओको रत्न मानते है, शिलाखडोको नही। मोतीसे उज्ज्वल गुणोको अलकार मानते है, आभूपणके वोझोको नही। दानयुक्त कर्मों को सावन मानते, है, हाथियो और भ्रमरोको नही। सर्वश्रेष्ठ यशमें महाप्रीति रखते है, जीवनके जीर्ण होते तृणमें नही। लिये कर (शुल्क) वाली आगाओ (दिशाओ) में प्रसाधनका उपयोग करते है, निज स्त्रीरूपी चमड़ेकी पुतलियोमें नही। गुणवाले धनुषमें (इनका) मित्रताका भाव है, पिंडपर जीनेवाले सेवकजनो पर नही। और भी, इनका मित्रोका उपकरण (सावन) अपने आप है, मृत्युका सावन प्रभुता है, पडितका सावन विदग्धता, वान्धवका सावन लक्ष्मी, दरिद्रोका उपकरण ऐश्वर्य, ब्राह्मणोका उपकरण अपना सर्वस्व, सुकृतके स्मरणका उपकरण हृदय, धर्मका उपकरण आयु, साहसका

द्विजोपकरण सर्वस्वम्, सुकृतसस्मरणोपकरण हृदयम्, धर्मोपकरणमायु, साहसोपकरण शरीरम्, असिलतोपकरण पृथिवी, विनोदोपकरण राजकम्, प्रतापोपकरणं प्रतिपक्ष। नास्याल्पपुण्यैरवाप्येत सर्वातिशायिसुखरस-प्रसूति पादपल्लवच्छाया" इति।

श्रुत्वा च तमेव चन्द्रसेन समादिशत्—"कृतकशिपु विश्रान्त-सुखिनमेन कारय" इति।

—उच्छ्वास २

(३) वाणस्य यात्रा—

१६ अथान्यस्मिन्नहन्युत्थाय, प्रातरेव स्नात्वा, धृतधवलदुकूल-वासा, गृहीताक्षमाल, प्रास्थानिकानि सूक्तानि मन्त्र-पदानि च वहुश समावर्त्य, देवदेवस्य विरूपाक्षस्य क्षीरस्नपनपुरसरा सुरभिकुसुमधूपगन्धध्वजवलिविलेपन-प्रदीपकवहुला विधाय पूजाम्, परमया भक्त्या प्रथमहुत-तरलतिलत्वग्विचटनचटुलमुखरशिखाशेखर प्राज्या-ज्याहुतिप्रवर्धितदक्षिणार्चिष भगवन्तमाशुशुक्षणि हुत्वा, दत्वा द्युम्न यथाविद्यमान द्विजेभ्य, प्रदक्षिणीकृत्य प्राङ्मुखी नैचिकीम्, शुक्लागराग, शुक्लमाल्य, शुक्ल-वासा, रोचनाचित्रदूर्वाग्रपल्लवग्रथितगिरिकर्णिकाकुसुम-कृतकर्णपूर, शिखासक्तसिद्धार्थक, पितु कनीयस्या स्वस्रा मात्रेव स्नेहार्द्रहृदयया श्वेतवाससा साक्षादिव भगवत्या महाश्वेतया मालत्याख्यया कृतसकलगमन-मगल, दत्ताशीर्वाद, वान्धववृद्धाभिरभिनन्दित, परिजनजरतीभिर्वन्दितचरणैरभ्यनुज्ञात, गुरुभिरभिवादितैराघ्रात शिरसि, कुलवृद्धैर्वर्धितगमनोत्साह, शकुनै-

उपकरण शरीर, तलवारका उपकरण पृथिवी, विनोदका उपकरण राजसभा, प्रतापका उपकरण शत्रु पक्ष है। पुण्यहीनोको सबसे बढकर सुख रस पैदा करनेवाली, इनके पाद-पल्लवकी छाया आसानी के नही मिल सकती।"

(बात) सुनकर उसी चन्द्रसेनको बाणने आदेश दिया—"भोजन आदि कराकर इसे विश्राम सुख दिलवाओ।"

—उच्छ्वास २,

३. बाणकी यात्रा—

१६ तब दूसरे दिन उठकर सबेरे ही नहाकर बाणने श्वेत दुकूल वस्त्रको धारण किया, फिर रुद्राक्ष-माला लिये प्रस्थान-सम्बन्धी सूक्तो और मत्रोको बहुत बार दोहराया, दुग्ध-स्नान पूर्वक सुगधित बहुत कुसुम-धूप-गन्ध-ध्वज-बलि-विलेपन-दीपक सहित देव-देव शकरकी पूजा की, फिर, परम भक्तिसे पहले हवन किये चटचट करके तिलोके छिलकोके फूटनेसे चचल मुखर, शिखारूपी शेखरवाले घृत आहुतिसे बढे दाहिनी लौवाले भगवान् अग्निमें भक्ति-पूर्वक हवन किया, ब्राह्मणो को विद्यमानके अनुसार धन दान दिया। फिर, पूर्व-मुह बैठी, होमकी गौकी प्रदक्षिणा की। सफेद अगराग, सफेद माला, सफेद वस्त्रवाले, गोरोचन और विचित्र दूर्वाकी फुनगीके पल्लवसे गूथे पहाडी कर्णिकार पुष्पसे बनाये कर्णाभरणकोधारा, शिखामें सरसो लगाया (बाणने) माता की तरह स्नेहार्द्र हृदयवाली श्वेत वस्त्र-धारिणी साक्षात् भगवती महा-श्वेता (गौरी) सी पिताकी छोटी बहिन **मालती** द्वारा किये सारे यात्रा-मगल, और आशीर्वाद पाये। बान्धव-बूढियो द्वारा अभिनदित, सेवक-बूढियो द्वारा वदित-चरण अनुज्ञा प्राप्त, अभिवादन किये गुरुओ द्वारा सिरपर चूमे, कुलके वृद्धो द्वारा गमनके लिये प्रोत्साहित, ज्योति-षियोके मतके अनुसार शकुनो द्वारा, नक्षत्र विषयक दोहद किये,

मौहूर्तिकमतेन कृतनक्षत्रदोहद, शोभने मुहुर्ते हरितगो-
मयोपलिप्ताजिरस्थण्डिलस्थापितमसितेतरकुसुममालापरि-
क्षिप्तकण्ठ पिष्टपचागुलपाण्डुर मुखनिहितनवचूत-
पल्लव पूर्णकलशमुदीक्षमाण, प्रणम्य कुलदेवताभ्य
कुसुमफलपाणिभिरप्रतिरथ जपद्भिर्निजद्विजैरनुगम्यमान
प्रथमचलितदक्षिणचरण, प्रीतिकूटान्निरगात्।

२७ प्रथमेऽहनि घर्मकालकष्ट निरुदक निष्त्रपादपविषम
पथिकजननमस्क्रियमाणप्रवेशपादपोत्कीर्णकात्यायनीप्रति-
यातन, शुष्कमपि पल्लवितमिव तृषितश्वापदकुल-
लम्बितलोलजिह्वालतासहस्रै पुलकितमिवाच्छभल्ल-
गोलागूललिह्यमानमधुगोलचलितसरघासघाते रोमा-
चितमिव दग्धस्थलीरूढस्थूलाभीरुकन्दलशतै शनैश्च-
ण्डिकाकाननमतिक्रम्य मल्लकूटनामान ग्राममगात्।
तत्र च हृदयनिर्विशेषेण भ्रात्रा सुहृदा च जगत्पतिनाम्ना
सपादितसपर्य सुखमवसत्। अथापरेद्युरुत्तीर्य भगवती
भागीरथी यष्टिग्रहकनाम्नि वनग्रामके निशामनयत्।
अन्यस्मिन्दिवसे स्कन्धावारमुपमणितारमन्वजिरवति
कृतसनिवेशमाससाद। अतिष्ठच्च नातिदूरे राजभवनस्य।
—उ० २

(४) हर्षेणालापः—

१८ राजा तु तच्छ्रुत्वा दृष्ट्वा च त गिरिगुहागतसिंहबृहित-
गम्भीरेण स्वरेण पूरयन्निव नभोभागमपृच्छत्—"एष
स बाण ?" इति। "यथाज्ञापयति देव, सोऽयम्" इति
विज्ञापितो दौवारिकेण। "न तावदेनमकृतप्रसाद

सुदर मुहूर्तमें ताजे गोबरसे लिप्त आगनके चबूतरेपर स्थापित कठमे श्वेत कुसुमकी मालासे घिरे आटेके पाचो अगुलियोके छापसे श्वेत आम्रपल्लववाले पूर्ण कलशको देखते, कुलदेवताओंको प्रणाम करके हाथमें पुष्प-फल लिये, विजयका जप करते अपने ब्राह्मणो द्वारा अनु-गमन किये जाते पहले दाहिना चरण उठा बाण **प्रीतिकूट** नगरसे निकले।

१७ पहले दिन धीरे-धीरे **चण्डिकावन**को पार किया, जोकि ग्रीष्मकालके कष्टवाला निर्बल निष्पत्र निर्वृक्ष विषम है। नमस्कार जिसमें प्रवेश करते ही मिलनेवाले वृक्षमें पथिक जनोंके द्वारा की जाती कात्यायनी उत्कीर्ण हैं। (जो वन) सूखा होते भी प्यासे वन्य जन्तुओंकी लटकती चचल हजारो जिह्वा-लताओ द्वारा पल्लवित सा, अच्छ, भालू, वानरो द्वारा चाटे जाते छत्रोंसे भगाई मधुमक्खियोंसे रोमाचित सा, पुलकितसा, जले स्थानोमें उगे मोटे सतावरीके सैकडो कदोंसे रोमाचित सा था। फिर **मल्लकूट** नामक गावमें पहुँचे। वहा अपने अभिन्न-हृदय मित्र और भाई जगत्पतिसे सेवित हो सुखसे वास किया। दूसरे दिन भगवती **भागीरथी**को उतरकर (बाणने) **यष्टिग्रहक** (जठियाव) नामक जगली गावडे में रात बिताई। अगले दिन **अजिरवती** नदीके पास बसे हुये **उपमणितार**(मनियर) नामक स्कन्धावार (कैम्प) में पहुचे, और राजभवनसे नातिदूर ठहर गये।

—उच्छ्वास २

४. हर्षसे बातचीत—

१८ राजाने उस बातको सुनकर और उन्हें देखकर गिरि-गुहामें अव-स्थित सिहके किये गम्भीर स्वरसे आकाश मडलको भरते हुये पूछा— "यही वह **बाण** है।" "जैसी महाराज आज्ञा करते है, वही है यह"

पश्यामि" इति तिर्यङ्नीलधवलाशुकशारा तिरस्करिणी-
मिव भ्रमयन्नपागनीयमानतरलतारकस्यायामिनी चक्षुष
प्रभा परिवृत्य प्रेष्ठस्य पृष्ठतो निषण्णस्य मालवराज-
सूनोरकथयत्—"महानय भुजग" इति।

१९. तुष्णीभावेन त्वगमितनरेन्द्रवचसि तस्मिन्मूके च राजलोके
मुहुर्तमिव तूष्णी स्थित्वा वाणो व्यज्ञापयत्—"देव,
अविज्ञाततत्व इव, अश्रद्दधान इव, नेय इव, अविदित-
लोकवृत्तान्त इव च कस्मादेवमाज्ञापयसि। स्वैरिणो
विचित्राश्च लोकस्य स्वभावा प्रवादाश्च। महद्भिस्तु
यथार्थदर्शिभिर्भवितव्यम्। नार्हसि मामन्यथा सभावयितु-
मविशिष्टमिव। ब्राह्मणोऽस्मि जात सोमपायिना वशे
वात्स्यायनानाम्। यथाकालमुपनयनादय कृता सस्कारा।
सम्यक्पठित सागो वेद। श्रुतानि यथाशक्ति शास्त्राणि।
दारपरिग्रहादभ्यागारिकोऽस्मि। का मे भुजगता?
लोकद्वयाविरोधिभिस्तु चापलै. शैशवमशून्यमासीत्।
अत्रानपलापोऽस्मि। अनेनैव च गृहीतविप्रतीसारमिव
मे हृदयम्। इदानी तु सुगत इव शान्तमनसि, मनाविव
कर्तरि वर्णाश्रमव्यवस्थाना समवर्तिनीव च साक्षाद्दण्डभृति
देवे शासति सप्ताम्वुराशिरशनामशेषद्वीपमालिनी मही
क इवाविशक सर्वव्यसनवन्धोरविनयस्य मनसाप्यभिनय
कल्पयिष्यति। आसता तावन्मानुष्यकोपेता। त्वत्प्र-
भावादलयोऽपि भीता इव मधु पिवन्ति। रथागना-
मानोऽपि लज्जन्त इवाभ्यनुवृत्तिव्यसनै प्रियाणाम्।
कपयोऽपि चकिता इव चपलायन्ते। शरारवोऽपि
सानुक्रोशा इव श्वापदगणा पिशितानि भुजते। सर्वथा

द्वारपाल ने अर्ज की। "विना कृपा दिखाये इसे नही देखूगा।" यह कहकर नील-श्वेत अशुकके परदे जैसी तिरछी पलकोसे खिची जाती चचल पुतलियोकी लम्बाई वाले नेत्रकी प्रभाको फेरकर पीठकी ओर वैठे अपने अतिप्रिय मित्र **मावल-राजपुत्र**से (हर्ष) वोला—"यह महालम्पट है।"

१६ राजाके वचनके (यह) कहने पर और राजदरवारियोके मूक रहनेपर क्षणभर मौन रह वाणने अर्ज की—'देव, विना वास्तविकता जाने, विना विश्वासके, भरमाये और लोक-वृत्तातको न जाने विना क्यो ऐसा फरमाते है? लोगोके स्वभाव और किवदतिया मनमानी और विचित्र होती है। महान् पुरुषोको तो यथार्थदर्शी होना चाहिये। मुझे उलटा मामूलीसा नही समझना चाहिये। मै सोम-यज्ञ करनेवाले **वात्स्यायनो**के वशमें पैदा हुआ ब्राह्मण हू। कालानुसार मेरे यज्ञोपवीत आदि सस्कार किये गये। अगो-सहित वेदको अच्छी तरह पढा। यथाशक्ति शास्त्र सुने है। विवाह करके गृहस्थ हू, (मुझमें) क्या लम्पटता है? दोनो लोकोकी अविरोधिनी चचलताओसे मेरा वाल्य रहित नही रहा। इसका अपलाप मैं नही करता, और इसीसे खिन्न सा मेरा हृदय है। लेकिन, अव तो वुद्धकी तरह शान्त मनवाले, मनुकी तरह वर्ण-आश्रमकी व्यवस्थाओके करनेवाले, और सातो समुद्रोकी मेखलायुक्त सारी द्वीपमालाओवाली पृथिवीपर साक्षात् दण्डधर महाराजके शासन करते समय कौन ऐसा है, जो वेखौफ हो सारे व्यसनोके वधु दुराचारोका मनसे भी अभिनय करने की कल्पना करेगा। मनुष्यता रखनेवालोकी वात तो अलग, आपके प्रभावमे भवरे भी भयभीतसे मधुपान करते है, चक्रवाक भी प्रियतमाओके अनुवर्तनके व्यसनमें लज्जित से है, वानर भी

कालेन मा ज्ञास्यसि स्वामी स्वयमेव। अनपाचीनचित्त-
वृत्तिग्राहिण्यो हि भवन्ति प्रज्ञावता प्रकृतय" इत्यभिधाय
तूष्णीमभूत्।

२० भूपतिरपि "एवमस्माभि श्रुत" इत्यभिधाय तूष्णी-
मेवाभवत्। सभाषणासनदानादिना तु प्रसादेन नैनमन्व-
ग्रहीत्, केवलममृतवृष्टिभि स्नपयन्निव स्नेहगर्भेण
दृष्टिपातमात्रेणन्तर्गता प्रीतिमकथयत्, अस्ताभिलाषिणि
च लम्बमाने सवितरि विसर्जितराजलोकोऽभ्यन्तर
प्राविशत्।

—उच्छ्वास २

(५) सेना-निवेश:—

२१ स्वयमपि विसिस्मिये भूपाल। सर्वतो विक्षिप्तचक्षु-
श्चाद्राक्षीदावासस्थानसकाशात्प्रतिष्ठमान स्कन्धावार,
अधोक्षजकुक्षेरिव युगादौ निष्पतन्त जीवलोक, अम्भो-
निधिमिव कुम्भभुवो वदनात्प्लावितभुवनमुद्भवन्त,
अर्जुनबाहुदण्डसहस्रसपिण्डितोन्मुक्तमिव सहस्रधा प्रवर्त-
मान प्रवाह नर्मदाया।

२२ "प्रसर तात। भाव, किं विलम्बते ? त्वगति तुरगम।
भद्र, भग्नचरण इव सचरसि यावदमी पुरसरा सरभ-
समुपरि पतन्ति। वाहयसि किमुट्रम् ? न पश्यति
निर्दय, निगूकशिशु शयानम्। वत्स रामिल, रजसि
यथा न नश्यसि न पश्यसि, गलति शक्तुप्रसेवक।
किमेवमित्वर, त्वरसे ? सौरभेय, सरणिमपहाय हयमध्य
धावसि। धीवरि, विशसि। गन्तुकामा मातगि, मातग-

चकितसे हो चपलता करते हैं, हिंस्र जन्तु भी अनुकपाके साथ मास खाते हैं। समय पाकर मुझे स्वामी स्वय पूरी तौरसे जानेंगे। विचार कर धारणा बनाना प्रज्ञावानोका स्वभाव होता है।" यह कहकर वह (बाण) चुप हो गये।

२० राजा भी "ऐसा हमने सुना है" कहकर चुप हो गया। पर, वार्तालाप (या) आसन-प्रदान आदि कृपामे उनपर अनुग्रह नही किया। अमृतवर्षासे नहलातेमे केवल स्नेहयुक्त दृष्टिपात मात्रसे (अपनी) आन्तरिक प्रीति दिखलाई। अस्त होनेके अभिलाषी सूर्यके ढलते समय (राजा) दरबारियोको छोड़कर भीतर चला गया।

—उच्छ्वास २

५. सैनिक पड़ाव—

२१ स्वय भी भूपाल विस्मित हो गये। सर्वत्र आखें फैलाकर निवासस्थान के पासमे प्रस्थान करते (बाणने) स्कन्धावार (कैम्प) को देखा, जो कि मानो था—विष्णुकी कुक्षिसे सृष्टिके आदिमें निकलता हुआ जीवलोक, अगस्त्यके मुखसे समुद्रकी तरह बाढ-ग्रस्त पैदा होता भुवन, अर्जुनकी हजार बाहुओमे घिरा तथा उन्मुक्त हजारो धारोमें चलता **नर्मदा**का प्रवाह।

२२ "फैल जाओ तात। मित्र क्यो देर करते हो? घोडा कूद रहा है? भद्र, तुम तो टूटे पैरवालेकी तरह चल रहे हो, जब कि आगे जानेवाले जल्दीसे ऊपर दौडे जा रहे हैं। क्यो, ऊट ले जा रहे हो? निष्ठुर, लघु शिशुको लेटे नही देख रहे हो? बच्चा रामिल, मतवाले हो, जो न नष्ट होते हो न देखते हो, सत्तूका थैला फटकर गिर रहा है। इत्वर (जल्दीबाजी) क्यो इस तरह जल्दी कर रहे हो? **सोरभेय** रास्ता छोड, घोडोके बीचमें दौडते हो। धीवर, मछली मारते हो?

मार्गम्। अग, गलति तिरश्चीना चणकगोणी। गणयसि न मामारटन्तम्। अवटमतटेनावतरसि। सुखमास्व स्वैरिणि। सौवीरक, कुम्भो भग्न। मन्थरक, खादिष्यसि गत सन्निक्षुम्। उक्षाण प्रसादय। कियच्चिर चिनोषि चेट, वदराणि, दूर गन्तव्यम्। किमद्यैव विद्रासि द्रोणक, द्राघीयसी दण्डयात्रा विनेकेन निष्ठुरकेण निष्क्रेयमस्माकम्। अग्रत पन्था स्थपुटक। स्थावरक, यथा न भनक्षि फाणितस्थाली गरीयान्गण्डकतण्डुलभारको न निर्वहति दस्य। दासक, माषीणाममुतो द्राग्दात्रेण मुखयवसपूलक लुनीहि। को जानाति यवसगत गतानाम्। धव, वारय वलीवर्दान्। वाहीकरक्षित क्षेत्रमिदम्। लम्बिता शकटी शार्कर धुरधर धुरि धवल नियुक्ष्व। यक्षपालित, प्रमदा पिनक्षि। अक्षिणी किं ते स्फुटिते। हत हस्तिपक रे, दीव्यसि करिकरदण्डे। समद, समर्दकर्दमे स्खलसि। भ्रातर्भवविधुरबन्धो, उद्धर पकादनड्वाहम्। इत एहि माणवक, घनेभघटासघट्टसकटे नास्ति निस्तरणम्।

—उच्छ्वास. ७

(६) आश्रम—

२३ अथ तेषा तरूणा मध्ये नानादेशीयै स्थानस्थानेषु स्थाणूनाश्रितै शिलातलेषूपविष्टैर्लताभवनान्यावसद्भिररण्यानीनिकुञ्जेषु निलीनैर्विटपच्छायासु निषण्णैस्तरुमूलनिषेवमाणैर्वीतरागैरार्हतैर्मस्करिभि श्वेतपटै पाण्डुरिभिक्षुभिर्भागवतैर्वर्णिभि केशलुञ्चनै कापिलैर्जैनैर्लोकायतिकै काणादैरौपनिषदैरैश्वरकारणिकै

मातगी, मातगोके मार्गमें जाना चाहती हो ? मित्र, गिर रही है तिरछी हुई चनेकी गोन। मेरे चिल्लानेको नही सुन रहा है ? विना तटके वेरास्ते उतर रहे हो। स्वेच्छाविहारिणि, सुखसे रहो। काचिक (काजी) का घडा टूट गया। मथरक, चल (डेरेपर) गन्ना खाना। वैलोको शान्त करो। चेट (नौकर) कितनी देर तक वेरो को चिनता रहेगा? दूर जाना है। द्रोणक, क्या आज ही लाघ जायेगा। लम्बी दडयात्रा एक निष्ठुरकके विना पूरी करनी है, आगे रास्ता ऊचा नीचा है। स्थावरक, जिसमें गुडके वरतन न टूटें। चावलके भारी वोझ-वाला वाहन नही निभ सकता। दासक, वहा उडदोके खेतोमेंसे जल्दीसे दरातीसे मुहमें देने के लिए घासके थोडेसे पूलेको काट ले। कौन जानता है, नवतृण के पानेको। घव, वैलोको हटा, रखवाले इसे रखा रहे है। गाडी लटक गई, जुयेमें उजले वहादुर धुरधर (वैल) को जोत। यक्षपालित, प्रमदाओको पीस रहा है ? क्या तेरी आखे फूट गई है। रे अभागे हाथीवान्, हाथीके हस्तदडसे खेलता है। नशेमें चूर सम्मर्द, तू कोचडमें गिर रहा है। भाई, मित्र विधुर-वन्धु, कोचडसे वैलको उठाओ। इधर आ लौंडे, हाथियोकी घनी भाडमे से निकलनेका रास्ता नही है।"

—उच्छ्वास ७

६. आश्रम:—

२३ तव वृक्षोके वीच देखा, जगह-जगह खम्भोके सहारे, शिलातलोपर वैठे लतावनोमें वास करते, अरण्य-कुजोमें विलीन, वृक्षोकी छायामें उपविष्ट, वृक्षमूलोका सेवन करते, नाना देशीय वीतराग अर्हतो, **मस्करियो** (सन्यासियो), **श्वेताम्बरो,** लाल कापायधारी भिक्षुओ, **वैष्णवो,**, व्रह्मचारियो, **केश-लुंचको, कपिल**-मतानुयायियो, **जैनों,** चार्वाको, वैशेषिकमतावलवियो, उपनिषद्-मतावलवियो, ईश्वरको कारण माननेवालो **(नैयायिको)**, रसायन वनानेवालो, **धर्मशास्त्रियों,**

कारन्धमिभिर्धर्मशास्त्रिभि . पौराणिकै साप्ततन्तवे. शाब्दै पाचरात्रिकैरन्यैश्चस्वान्स्वान्सिद्धान्तान्शृवद्-भिरभियुक्तैश्चिन्तयद्भिश्च प्रत्युञ्चरद्भिश्च सशयानैश्च निश्चिन्वद्भिश्च व्युत्पादयद्भिश्च विवदमानैश्चाभ्य-स्यद्भिश्च व्याचक्षाणैश्च शिष्यता प्रतिपन्नैर्दूरादेवावेद्य-मानम्, अतिविनीतै कपिभिरपि चैत्यकर्म कुर्वाणै-स्त्रिशरणपरै परमोपासकै शुकैरपि शाक्यशासनकुशलै कोश समुपदिशद्भि शिक्षापदोपदेशोपशमशालिनीभि शारिकाभिरपि धर्मदेशना दर्शयन्तीभिरनवरतश्रवण-गृहीतालीकै कौशिकैरपि बोधिसत्वजातकानि जपद्-भिर्जातसौगतशीलशीतलस्वभावै शार्दूलैरप्यमासा-शिभिरुपास्यमानम्, आसनोपान्तोपविष्टविस्रब्धानेकके-सरिशावकतया मुनिपरमेश्वरम्, अकृत्रिम इव सिंहासने निषण्णम्, उपशममिव पिवद्भिर्वनहरिणैर्जिह्वालता-भिरुपलिह्यमानपादपल्लवम्, वामकरतलनिविष्टेन नीवारमश्नता पारावतपोतेव कर्णोत्पलेनेव प्रिया मैत्री प्रसादयन्तम्, इतरकरकिसलयनखमयूखलेखाभिर्ज-नितजनव्यामोहम्, उद्ग्रीव मयूर मरकतमणिकरकमिव वारिधाराभि पूरयन्तम्, इतस्तत पिपीलकश्रेणीना श्यामाकतण्डुलकणान्स्वयमेव किरन्तम्, अरुणेन चीवर-पटलेन म्रदीयसा सवीतम्, वहलवालातपानुलिप्तमिव पौरदर दिग्भागमुल्लिखितपद्मरागप्रभाप्रतिमया रक्ता-वदातया देहप्रभया पाटलीकृताना काषायग्रहणमिव दिशामप्युपदिशन्तम्, अनौद्धत्यादधोमुखेन मन्दमुकुलित-कुमुदाकरेण स्निग्धधवलप्रसन्नेन चक्षुषा जनक्षुण्णक्षुद्रजन्तु-

पौराणिकों, सप्ततंतुवादियों, **वैयाकरणों**,, **पंचरात्रानुयायियों** और अन्यों द्वारा अपने-अपने सिद्धान्तोंको सुनते, उत्तम पुरुषोंके साथ चिन्तन करते, प्रति उच्चारण करते, संशय करते, निश्चय करते, व्युत्पत्ति करते, विवाद करते, अभ्यास करते, व्याख्यान करते, शिष्यता प्राप्त होते। दूर ही से (वह ऐसा आश्रम) था (जहां)—अति विनम्र वानर भी चैत्य-पूजा कर रहे थे, त्रिशरण (**बुद्ध-धर्म-संघके**) परम उपासक बुद्ध-धर्ममें चतुर तोते भी (**अभि धर्म**) **कोश**का उपदेश कर रहे थे, शिक्षापदों (पंच शील) के उपदेशोंसे शान्तवृत्तिवाली मैनायें धर्मोपदेश दे रही थी, अतथ्योंवाले उल्लू भी बराबर सुनते बोधिसत्व-जातकोंका जप कर रहे थे, अमासभक्षी शार्दूल बौद्ध-आचारसे शीतल स्वभाव हो गये (वहां) रह रहे थे, आसनके पास निर्भय विश्वस्त अनेक सिंहबच्चे बैठे थे। वहीं अकृत्रिम सिंहासनपर मध्यमआयु वाले बैठे मुनिराज दिवाकरमित्र को देखा। जिनके पादपल्लवको वन-हरिन जिह्वा-लतासे चाटते उपशमका पान कर रहे थे। जिनके बायें हाथकी हथेली पर बैठे तिन्नीका भात खाते कबूतरके बच्चे कर्णरूपी कमलको मानो प्रिया मैत्रीमे तृप्त कर रहे थे, जिनके दूसरे कर-पल्लवके नखोंकी किरण-रेखायें लोगोंको व्यामुग्ध करती, मानो ऊपर कंठ उठाये मोर जैसे पन्ना-जटित जलपात्रको जलकी धाराओंसे भर रही थीं। वह जहां-तहां चीटियोंकी पांतियोंमें स्वयं सवांके चावलकी कनियोंको बिखेर रहे थे। अतिकोमल लाल चीवर पटलसे ढका जिनका शरीर, मानो, बालसूर्यकी प्रचुर धूप से पवित्रित पूर्व दिशा थी, चमकते लालकी प्रभाकी प्रतिमूर्ति लाल उज्ज्वल देह-प्रभासे लाल बनाई दिशाओंको काषाय वस्त्रके ग्रहणका उपदेश

जीवनार्थममृतमिव वर्षन्तम्, सर्वशास्त्राक्षरपरमाणुभिरिव निर्मित परमसौगतमप्यवलोकितेश्वरम्, अस्खलितमपि तपसि लग्नम्, आलोकमिव यथावस्थितसकलपदार्थप्रकाशकम्, दर्शनार्थिना सुगतस्याऽप्यभिगमनीयमिव, धर्मस्याप्याराधनीयमिव, प्रसादस्यापि प्रसादनीयमिव, मानस्यापि माननीयमिव, वन्द्यत्वस्यापि वन्दनीयमिव, जन्म यमस्य, नेमि नियमस्य, तत्व तमस, शरीर शौचस्य, कोश कुशलस्य, वेश्म विश्वासस्य, सद्वृत्त सदृत्तताया, सर्वस्व सर्वज्ञताया, दाक्ष्य दाक्षिण्यस्य, पार परानुकम्पाया, निर्वृतिं सुखस्य, मध्यमे वयसि वर्तमान जीवाकरमित्रमद्राक्षीत् । अतिप्रशान्तगम्भीराकारारोपितवहुमानश्च सादर दूरादेव शिरसा मनसा वचसा च ववन्दे।

—उच्छ्वास ८

२. कादम्बरी

(१) उज्जयिनी —

२४ अस्ति सकलत्रिभुवनललामभूता, प्रसवभूमिरिव कृतयुगस्यात्मनिवासोचिता भगवता महाकलाभिधानेन भुवनत्रयसर्गस्थितिसहारकारिणा प्रमथनाथेनेवापरैव पृथिवी समुत्पादिता, द्वितीयपृथिवीशकया जलनिधिनेव रसातलगभीरेण परिखावलयेन परिवृता, पशुपतिनिवासप्रीत्या गगनपरिसरोल्लेखिशिखरमालेन कैलासगिरिणेव सुधासितेन प्राकारमण्डलेन परिवृता, प्रकटशखशुक्तिमुक्ताप्रवालमरकतमणिराशिभिश्चामीकरचूर्णसिकतानिकरनिचितै -

दे रही थी, अनुच्छृंखलता-पूर्वक झुके थोड़े मुकुलित कमलाकर जैसे स्निग्ध धवल स्वच्छ नेत्रोंसे पीड़ित क्षुद्र जन्तुओंके उज्जीवनार्थ अमृत बरसा रही थी, और सारे शास्त्रोंके अक्षररूपी परमाणुओंसे मानो निर्मित थी। वह परम बौद्ध भी अवलोकितेश्वर (करुणामय) थे, अभ्रष्ट हो तपस्यामें लगे सारे पदार्थोंके यथास्थित प्रकाशसे, दर्शनार्थियोंके लिये (ज्ञानी) बुद्ध के भी दर्शनीयसे, धर्मके लिये भी पूजनीयसे, प्रसाद (कृपा) के लिये भी प्रसादकरणीय से, सम्मानके लिये भी माननीय से, वंद्यताके लिये भी वंदनीय से थे। वह संयमके जन्मस्थान, नियमकी धुरा, तपस्याके सार, पवित्रताके शरीर, भलाइयोंके कोश, विश्वासके गृह, सदाचारके भी सदाचार, सर्वज्ञताके सर्वस्व, उदारताके औदार्य, परदयाके पारगत सुखके (भी) सुख थे। (उनकी) अत्यन्त प्रशांत और गम्भीर आकृतिसे प्रेरित हो (राजाने) सम्मानसे आदरपूर्वक दूरसे ही सिर, मन और वचनसे उनकी वंदना की।

—उच्छ्वास ८

२. कादम्बरी

१. उज्जैन नगर—

२४ **अवन्ति** देशमें त्रिभुवनमें ललाम, सतयुगकी जन्मभूमि सी, **उज्जैन** नामक नगरी है, जिसे त्रिभुवन के सृष्टिस्थितिसंहारकारी भूतपति भगवान् महाकाल नामक भूतनाथ ने निज निवास के लिये दूसरी पृथिवी सा उत्पन्न किया। द्वितीय पृथिवी के भ्रमसे जो रसातल तक गहरी (समुद्र) परिखा-वलयसे घिरी सी है। जो पशुपति के निवासकी प्रसन्नता से कैलास पर्वत से, चूनेसे सफेद, गगनचुंबी शिखरमालाओं वाले प्राकारों से घिरी है। शंख-सीप-मोती-मूंगा-पन्ना मणिकी राशियोंसे सुवर्ण-चूर्णकी बालुकाओं से संचित विस्तृत, अगस्त्यके पिये सलिलवाले विस्तृत सागर-सी बड़ी बाजारकी सड़कोंसे शोभित है। जो सुर-असुर-सिद्ध-गंधर्व-

रायामिभिरगस्त्यपरिपीतसलिलै सागरैरिव महाविपणि-पथैरुपशोभिता, सुरासुरसिद्धगन्धर्व्वविद्याधरोरगाध्यासिताभिश्चित्रशालाभिरविरतोत्सवप्रमदावलोकनकुतूहला - दम्बरतलावतीर्णाभिर्दिव्यविमानपक्तिभिरेवालकृता, मथनोद्धृतदुग्धधवलितमन्दरद्युतिभि कनकमयामलकलशशिखरैरनिलदोलायितसितध्वजैरु परिपतद्भृगैरिव तुषारगिरिशिखरैरमरमन्दिरैर्विराजितशृगाटका, सुधावेदिकोपशोभितोदपानैरनवरतचलितजलघटीयन्त्रसिच्यमानहरितोपजनान्धकारै केतकीधूलिधूसरैरुपशल्यकैरुपशोभिता, मदमुखरमधुकरकुलान्धकारितनिष्कुटा, स्फुरदुपवनलताकुसुमपरिमलसुरभिसमीरणा, रणितसौभाग्यघण्टैरालोहिताशुकपताकैरावद्धरक्तचामरैर्विद्रुममयै प्रतिगृहमुच्छ्रितैर्मकराकै मदनयष्टिकेतुभि प्रकाशितमकरध्वजपूजा, सततप्रवृत्ताध्ययनध्वनिधौतकल्मषा, स्तिमितमुरजरवगम्भीरावर्जितेषु सलिलसीकरासारस्तवकरचितदुर्दिनेषु पर्यस्तरविकिरणरचितसुरचापचारुषु धारागृहेपु मत्तमयूरैर्मण्डलीकृतशिखण्डैस्ताण्डवव्यमनिभिराबध्यमानकेकाकोलाहला, विकचकुवलयकान्तैरुत्फुल्लकुमुदधवलोदरैरनिमिषदर्शनरमणीयैराखण्डललोचनैरिव सहस्रसख्यैरुद्भासिता सरोभि, अविरलकदलीवनकलिताभिरमृतफेनपुजपाण्डुराभिर्दिशि - दिशि दन्तवलभिकाभिर्धवलीकृता, यौवनमदमत्तमालवीकुचकलशलुलितसलिलया भगवतो महाकालस्य शिरसि सुरसरितमालोक्योपजातेर्ष्ययेव सततमावद्धतरगभ्रूकुटिलेखया खमिव क्षालयन्त्या सिप्रया परिक्षिप्ता।

विद्याधर-नागयुक्त चित्रशालाओ द्वारा निरतर उत्सववाली, प्रमदाओ के अवलोकनके कुतूहलसे आकाशतलसे उतरी दिव्य विमान-पातियोंसे अलकृत है। जिसके सुवर्णमय आमलक (कलश) युक्त शिखर मथनसे उठी दुग्ध सी सफेद की हुई मदर की किरणोंसे हैं। जिसकी वायुसे हिलती सफेद ध्वजायें ऊपर गिरती **आकाशगगा** सी है। जिसके चौरस्ते **हिमगिरि** जैसे शिखरोवाले देवमदिरोसे शोभित हैं। जो चूनेकी वेदिकासे शोभित प्यावो, निरतर चलते रहटसे सीचे जाते हरे उपवनोकी छायावाले केवडेके चूर्णसे धूसर उपनगरोसे शोभित हैं। जहा मदसे मुखर मधुकरोसे अधेरी अमराइयाँ उपवनकी लताको सूघकर उडते गधसे सुगन्धित वायु द्वारा सौभाग्य घटे शब्दायमान हैं। जहा लाल वस्त्रके पताको, बधे आरक्त चवरो से प्रत्येक घरमें उठे मूगेके मकर चिह्नवाली, मदनकी दडध्वजाओसे कामदेवकी पूजा होती जान पडती है। जो निरतर होते (वेद-) अध्ययन की ध्वनि द्वारा पापसे धुली है। जहा दृढ मृदग के शब्दकी गभीर गर्जनाओमें, जलके फुहारोके वेगोसे बनी बदलियोमें, गिरी सूर्य-किरणो से निर्मित इन्द्र धनुषयुक्त फौवाराघरोमे, पख गोल बनाये नृत्य-परायण मस्त मयूरो के किये जाते केकाका कोलाहल है। जो फूले कमलो से सुन्दर, उत्फुल्ल कुमुदोसे सफेद उदरवाले, अपलक देखनेमें रमणीय इन्द्रके लोचनो जैसे हजारो सरोवरोसे भासित है। जो निरतर केलेके वनोसे कलित अमृतके फेन-पुज सी पाडुवर्ण, दिशा-दिशामें हाथीदातके झरोखोसे सफेद, यौवनमदसे मस्त मालव ललनाओके स्तनकलशसे हिलते जलवाली, भगवान् महाकालके सिरपर **गगा**को देखकर ईर्ष्यायुक्त मदा तरगरूपी भृकुटिको ताने आकाशको धोती सी, **सिप्रा** नदीसे घिरी है।

२५ सकलभुवनख्यातयशसा हरजटाचन्द्रेणेव कोटिसारेण मैनाकेनेवाविदितपक्षपातेन मन्दाकिनीप्रवाहेणेव प्रकटितकनकपद्मराशिना स्मृतिशास्त्रेणेव समावसथकूपप्रपारामसुरसदनसेतुयन्त्रप्रवर्तकेन, मन्दरेणेवोद्धृतसमग्रसागररत्नसारेण सगृहीतगारुडेनापि भुजगभीरुणा, खलोपजीविनापि प्रणयिजनोपजीव्यमानविभवेन, वीरेणापि विनयवता, प्रियवदेनापि सत्यवादिनाभिरूपेणापि स्वदारसन्तुष्टेनातिथिजनाभ्यागमार्थिनापि परप्रार्थनानभिज्ञेन, कामार्थपरेणापि धर्मप्रधानेन, महासत्वेनापि परलोकभीरुणा, सकलविज्ञानविशेषविदा वदान्येन दक्षेण स्मितपूर्वाभिभापिणा परिहासपेशलेनोज्ज्वलवेषेण शिक्षिताशेषदेशभाषेण वक्रोक्तिनिपुणेनाख्यायिकाख्यानपरिचयचतुरेण सर्वलिपिज्ञेन महाभारतपुराणरामायणानुरागिणा वृहत्कथाकुशलेन द्यूतादिकलाकलापपारगेण श्रुतरागिणा सुभापितव्यसनिना प्रशान्तेन सुरभिमासमारुतेनेव सततदक्षिणेन हिमगिरिकाननेनेवान्त सरलेनेव, लक्ष्मणेनेव रामाराधननिपुणेन, शत्रुघ्नेनेवाविष्कृतभरतपरिचयेन, दिवसेनेव मित्रानुवर्तिना, बौद्धेनेव सर्वास्तिवादशूरेण साख्यागमेनेव प्रधानपुरुषोपेतेन जिनधर्मेणेव जीवानुकम्पिना, विलासिजनेनाधिष्ठिता ।

२६ सशैलेव प्रासादै, सशाखानगरेव महाभवनै, सकल्पवृक्षेव संत्पुरुपै, दर्शितनिष्ठवरूपेव चित्रभित्तिभि, सध्येव पद्मरागानुरागिणी, अमराधिपमूर्तिरिव मखगतानलधूमपूता, पशुपतिलास्यक्रीडेव सुधाधवलाट्टहासा, वृद्धेव जातरूपक्षया, गरुडमूर्तिरिवाच्युतस्थितिरमणीया,

८ जहा के विलासी निवासी है—सर्वलोकमें विख्यात यशवाले, शिवकी जटाके चन्द्र (सुवर्ण) जैसे कोटि (मूल्यवाले) पक्षपात न प्रकट किये मैनाक पर्वतने, **मंदाकिनी**की धारा जैसे सुवर्णपद्ममें प्रकट करनेवाल, स्मृतिशास्त्रकी तरह सभा-अतिथिशाला-कूप-प्याव-आराम-देवालय-सेतु-रहटके लगानेवाले, मदरकी तरह सारे सागरके रत्नसारो को खीच लेनेवाले। जो गारुडी विद्याका ज्ञाता होते भी सर्प (कुटिल) से भीरु, खल (खलिहान) के उपजीवी होते भी स्नेही जनके उपजीवक, विभववाले वीर होते भी विनययुक्त, मीठे बोलते भी सत्यवादी, सुन्दर होते भी अपनी पत्नीसे सन्तुष्ट, अथितिजनोके आगमनके इच्छुक होते भी दूसरेमे प्रार्थना करनेमे अनभिज्ञ, काम और अर्थ-परायण होते भी धर्म-प्रधान, महावली भी परलोक-भीरु, सारे विज्ञानके विशेष ज्ञाता होते भी दानपरायण, उदार मुस्कुराकर बोलनेवाले, परिहासचतुर, उज्ज्वल-वेषधारी, सारे देशोकी भाषाको सीखे हुए, व्यगनिपुण, कहानी-आख्यानके परिचयमें चतुर, सारी लिपियोके जानकार, **महाभारत-पुराण-रामायण**मे अनुरागी, **वृहत्कथा**में कुशल, जुआ आदि कलाओमे पारगत, शास्त्र-अनुरागी, सुभाषितमें आसक्त, प्रशान्त वसत मासके वायुकी तरह निरतर दक्षिण (उदार, दक्षिणी), **हिमालय**के वनकी तरह भीतर से सरल (देवदार वाले), **लक्ष्मण**की तरह रामारावन (राम या रामाकी सेवा) में निपुण, शत्रुघ्नकी तरह **भरत** (या नाट्य) परिचित, दिनकी तरह मित्र (या सूर्य) के अनुगामी, बौद्धकी तरह **सर्वास्तिवाद** (सवके अस्तित्व) में शूर, **सांख्य**-शास्त्रकी तरह प्रधान-पुरुषसे युक्त, जैन धर्मकी तरह जीवपर अनुकम्पावाले।

२६ (जो नगरी) महलो से पर्वतोवाली सी, महाभवनोसे उपनगर वाली सी, सत्पुरुषोंसे कल्पवृक्षयुक्त सी, चित्रयुक्त भीतोंसे विश्वरूप दिखाती सी, सन्ध्या सी लालके रगवाली, देवेन्द्रकी मूर्ति सी सौ यज्ञोकी आगके धूयेंमे पवित्र सी, पशुपतिकी नृत्य-क्रीडा सी, सुधा (चूने)

प्रभातवेलेव प्रबुद्धसर्वलोका, शबरवसतिरिवावलम्बित-चामरनागदन्तधवलगृहा, शेषतनुरिव सदासन्नवसुधाधरा, जलधिमथनवेलेव महाघोषपूरितदिगन्तरा, प्रस्तुताभि-षेकभूमिरिव सन्निहितकनकघटसहस्रा, गौरीव महा-सिंहासनोचितमूर्ति, अदितिरिव देवकुलसहस्रसेव्या, महा-वराहलीलेव दर्शितहिरण्याक्षपाता, कद्रुरिवानन्दितभुजग-लोका, हरिवंशकथेवानेकबालक्रीडारमणीया, प्रकटाग-नोपभोगाप्यखण्डितचरित्रा, रक्तवर्णापि सुधाधवला, अवलम्बितमुक्ताकलापापि विहारभूषणा, बहुप्रकृतिरपि स्थिरा, विजितामरलोकद्युतिरवन्तीषूज्जयिनी नाम नगरी।

—पूर्वभागत

(२) युवराजाय उपदेशः—

२७ एवं समतिक्रामत्सु दिवसेषु राजा, **चन्द्रापीडस्य** यौव-राज्याभिषेकं चिकीर्षुः प्रतीहारानुपकरणसंभारसंग्रहार्थ-मादिदेश। समुपस्थितयौवराज्याभिषेकं च तं कदाचिद्-दर्शनार्थमागतमारूढविनयमपि विनीततरमिच्छन् शुक-नासः सविस्तरमुवाच—

"तात चन्द्रापीड, विदितवेदितव्यस्याधीतसर्वशास्त्रस्य ते नाल्पमप्युपदेष्टव्यमस्ति। केवलं च निसर्गतएवाभानुभेद्य-मरत्नालोकोच्छेद्यमप्रदीपप्रभापनेयमतिगहनं तमो यौवन-प्रभवम्। अपरिणामोपशमो दारुणो लक्ष्मीमदः। कष्ट-मनञ्जनवर्तिसाध्यम्परमैश्वर्यतिमिरान्धत्वम्। अशिशिरो-पचारहार्योऽतितीव्रो दर्पदाहज्वरोष्मा। सततममूलमन्त्र-

सी सफेद अट्टहासवाली, वृद्धाकी तरह जातरूप (सुवर्ण) क्षय (गृह) वाली, गरुडकी मूर्तिनी, अच्युत (न च्युत या विष्णु) की स्थिति (या मर्यादा) भी रमणीय थी। प्रभातकी वेला से (जिसके) सारे लोग प्रबुद्ध (ज्ञाता या जगे) रहते, चवर-सहित खूटियोंके लटकनेसे सफेद घरोंवाली जो शबरोंकी वस्ती सी थी। शेषके शरीरकी तरह सदा पासमें वसुधा-धर (पर्वत या धरती धारक) थी। समुद्र मथनके तट भी महाघोषसे भरी दिशाओंवाली थी। सजाये अभिषेक स्थानकी तरह जिसके पास हजार सुवर्णघट थे। गौरीकी तरह जिसकी मूर्ति महासिंहासन लायक थी। अदितिकी तरह हजारों देवकुलों (देवों या देवालयों) से जो सेवनीय थी, महावराहकी लीला सी हिरण्याक्ष-के पतनको दिखाती, सोनेमें जूयेके पाशेके गिरनेसे युक्त थी। हरिवंशकी कथा की तरह अनेक बाल-क्रीडाओंसे रमणीय थी। अंगनाओं के प्रकट उपभोगयुक्त भी अखंडित आचरण वाली थी। रक्तवर्ण (रंग या चार वर्ण) वाली भी सुधा (चूने) सी धवल थी। मोतियोंके अव-लम्बनवाली भी विहार (बिना हार या आराम) के भूषणवाली थी, वह बहुत प्रकृति (स्वभाव या जनता) वाली भी स्थिर देवलोक के प्रकाशकी विजयिनी नगरी थी।

—पूर्वभाग

२. युवराज को उपदेश—

२७ इस प्रकार दिन बीतनेपर चन्द्रापीड़का युवराज-अभिषेक करनेके इच्छुक राजाने प्रतिहारोंको साधन-सामग्री जमा करनेके लिये आदेश दिया। युवराजाभिषेकके पास आने पर किसी समय दर्शनके लिये आये विनययुक्त (कुमार) को और भी अधिक विनम्र देखनेके इच्छुक (मन्त्री) शुकनासने विस्तारके साथ कहा—"तात चन्द्रा-पीड, जानने योग्य बातों के ज्ञाता, सर्वशास्त्र पढे हुये, तुम्हें उपदेश करनेके लिये कुछ भी नहीं है। स्वभावसे ही सूर्य जैसे अभेद्य, रत्नके आलोक जैसे अछेद्य, दीपककी प्रभासे न हटानेयोग्य, अति गहन यह यौवन-से उत्पन्न अन्धकार है। अन्तमें भी न शान्त होनेवाला दारुण है लक्ष्मीका मद। ऐश्वर्यके तिमिरका घोर अन्धापन अंजनकी बत्तीसे भी असाध्य है। अभिमानके दाह-ज्वरकी तीव्र गर्मी अति सर्दीके उपचारसे न हटनेवाली होती है। विषयके विषके रसका विषम मोह निरंतर मूलमन्त्रसे नहीं शमन किया जा सकता।

गम्यो विषमो विषयविषास्वादमोह । नित्यमस्नानशौच-
वध्यो रागमलावलेप । अजस्रमक्षपावसानप्रबोधा धीरा च
राज्यसुखसनिपातनिद्रा भवतीति विस्तरेणाभिधीयसे—
गर्भेश्वरत्वमभिनवयौजनत्वमप्रतिमरूपत्वममानुपशक्तित्व
चेति महतीय खल्वनर्थपरपरा सर्वा । अविनयानामेकैकम-
प्येषामायतनम्, किमुत समवाय ।

२८ यौवनारम्भे च प्राय शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलाऽपि कालुष्य-
मुपयाति वुद्धि । अनुज्झितधवलतापि सरागैव भवति यूना
दृष्टि । अपहरति च वात्येव शुप्कपत्र समुद्भूतरजोभ्रान्ति-
रतिदूरमात्मेच्छाया यौवनसमये पुरुष प्रकृति । इन्द्रिय-
हरिणहारिणी च सततदुरन्तेयमुपभोगमृगतृष्णिका ।
नवयौवनकषायितात्मनश्च सलिलानीव तान्येव विषय-
स्वरूपाण्यद्यमानानि मधुरतराण्यापतन्ति मनस । नाश-
यति च दिङ्मोह इवोन्मार्गप्रवर्तक पुरुषमत्यासगो विष-
येपु । भवादृशा एव भवन्ति भाजनान्युपदेशानाम् । अपगत-
मले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो वि-
शन्ति सुखेनोपदेशगुणा । गुरुवचनममलमपि सलिलमिव
महदुपजनयति श्रवणस्थित शूलमभव्यस्य । इतरस्य तु
करिण इव शखाभरणमाननशोभासमुदयमधिकतरमुपजन-
यति । हरत्यतिमलिनमन्धकारमिव दोषजात प्रदोषसमय-
निशाकर इव गुरूपदेश । प्रशमहेतुर्वय परिणाम इव पलित-
रूपेण शिरसिजजालममलीकुर्वन्गुणरूपेण तदेव परिणम-
यति । अयमेव चानास्वादितविपयरसस्य ते काल उपदेशस्य ।
कुसुमशरप्रहारजर्जरिते हि हृदि जलमिव गलत्युपदिप्टम् ।
अकारण च भवति दुष्प्रकृतेरन्वय श्रुत चाविनयस्य । चन्द-

रागरूपी मलका संसर्ग कभी स्नानकी शुद्धिसे नही जाता। राज्य-सुखरूपी सन्निपातकी निद्रा घोर और सदा रात्रिके अन्धेरेमें न जगनेकी है। इसलिये विस्तारपूर्वक तुम्हें कहता हू । जन्मसे ही ऐश्वर्य, नवीन यौवन, अद्वितीय रूप, अतिमानुप शक्ति यह सब निश्चय भारी अनर्थोंका समूह है। इनमेंसे एक-एक भी बहुतसे अविनयोंका घर है। इनके समूहके वारेमें तो कहना ही क्या ?

२८ यौवनके आरम्भमें शास्त्र-जलके प्रक्षालनसे निर्मल हुई वुद्धि भी प्राय मलिन हो जाती है। जवानोकी ृष्टि (आख) धवलताको विना छोडे भी रागयुक्त होती है। यौवनके समय उत्पन्न रज (धूल या मल) के भ्रमवाला स्वभाव अपनी इच्छासे पुरुषको सूखे पत्तेको आधीकी तरह वहुत दूर उडा ले जाता है। इन्द्रियरूपी हरिणको हरनेवाली इस उपभोग मृगतृष्णा का कभी अन्त नहीं होता । नवयौवनसे-कपाययुक्त पुरुपके मनको जलकी तरह वही आस्वादित विपय अतिमधुर लगते हैं। विपयोंमें अत्यन्त आसक्ति त्रिपथमें ले जानेवाले दिशामोहको तरह पुरुपको नष्ट करती है। आप जैसे ही (पुरुप) उपदेशोके पात्र होते हैं। स्फटिक मणिमें चन्द्रकी किरणोकी तरह, निर्मल मनमें उपदेशके गुण प्रविष्ट होते हैं। अयुक्त (पुरुप) को गुरुका वचन कानमे स्थित जलकी तरह निर्मल भी वडा शूल पैदा करता है । दूसरे (युक्त पुरुप) को तो हाथीके शख-आभूपणकी तरह वह अधिकतर शोभा देता है। अति मलिन अन्धकारको संध्याके समयके चन्द्रमाकी तरह दोपसमूहको गुरुओका उपदेश हरता है। वही (यौवन) शान्ति (इन्द्रियनिग्रह)के कारण आयुके परिणामकी तरह श्वेतिमासे केशोको मलिन न करते उसीको गुणरूपमें परिणत करता है । विपयरसको न चखे तुम्हारे लिये यही उपदेशका काल है। कामदेवके वाणके प्रहारसे जर्जरित हृदयपर उपदेश, जलकी तरह ढल जाता है। दु स्वभाववालेके लिये कुल वेकार है और शिक्षा अविनयके लिये है । क्या चन्दनसे उत्पन्न आग जलाती नहीं ? क्या प्रशात करने वाले जलके

नप्रभवो न दहति किमनल ? किं वा प्रशमहेतुनापि न प्रचण्डतरो भवति बडवानलो वारिणा ? गुरूपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमलप्रक्षालनक्षममजल स्नानम्, अनुपजात-पलितादिवैरूप्यमजर वृद्धत्वम्, अनारोपितमेदोदोष गुरू-करणम्, असुवर्णविरचनमग्राम्य कर्णाभरणम्, अतीतज्योति-रालोक, नोद्वेगकर प्रजागरः ।

२९ विशेषेण राज्ञाम्—विरला हि तेषामुपदेष्टार । प्रतिशब्दक इव राजवचनमनुगच्छति जनो भयात्। उद्दाममदाश्च पृथुस्थगितश्रवणविवराश्चोपदिश्यमानमपि ते न शृण्वन्ति । शृण्वन्तोऽपि च गजनिमीलितेनावधीरयन्त सशयन्ति हितो-पदेशदायिनो गुरून् । अहकारदाहज्वरमूर्च्छान्धकारिता विह्वला हि राजप्रकृति, अलीकाभिमानोन्मादकारीणि धनानि, राज्यविषविकारतन्द्राप्रदा राजलक्ष्मी । आलोक-यतु तावत्कल्याणाभिनिवेशि, लक्ष्मीमेव प्रथमम् ।—

३० इय हि खड्गमण्डलोत्पलवनविभ्रमभ्रमरी लक्ष्मी क्षीर-सागरात्पारिजातपल्लवेभ्यो रागम्, इन्दुशकलादेकान्तव-क्रताम्, उच्चै श्रवसश्चचलताम्, कालकूटान्मोहनशक्तिम्, मदिराया मदम्, कौस्तुभमणेर्नैष्ठुर्यम्, इत्येतानि सहवास-परिचयवशाद्विरहविनोदचिह्नानि गृहीत्वोद्गता । न ह्येवविधमपरिचितमिह जगति किंचिदस्ति यथेयमनार्या । लब्धापि खलु दुःखेन परिपाल्यते। दृढगुणसदाननिस्पन्दी-कृतापि नश्यति । उद्दामदर्पभटसहस्रोल्लासितासिलतापज-रविधृताप्यपक्रामति । मदजलदुर्दिनान्धकारगजघटितघन-घटापरिपालितापि प्रपलायते । न परिचय रक्षति । नाभि-जनमीक्षते । न रूपमालोकयते । न कुलक्रममनुवर्तते । न

साथ वडवानल अधिक प्रचण्ड नही होता? गुरुओका उपदेश पुरुषोके लिये सारे मलोको धो सकनेवाला निर्जल स्नान है, वालकी सफेदी आदि विरूपताके विना जरा-रहित वृद्धता है। चर्बीके दोपके विना गुरु (या स्थूल) होना है, विना सुवर्णका वना अ-ग्रामीण कर्णाभरण है, प्रकाश विना आलोक है, न उद्वेग करनेवाला जागरण है।

२९ खास करके राजाओके विरले ही उपदेशक होते है, लोग भयसे प्रतिध्वनिकी तरह राजाके वचनका अनुसरण करते है। प्रचण्ड दर्पवाले वह कर्णविवरको खूब मूदे उपदेश-वाक्यको नही सुनते, सुनकर भी हाथीकी तरह आख मूदे तिरस्कार करते, हितोपदेश देनेवाले गुरुओको खिन्न करते है। राजाका,स्वभाव अहकार-दाह-ज्वरकी मूर्छासे अन्धकार-युक्त और चचल होता है। धन, झूठे अभिमानसे उन्मत्त कर देता है। राजलक्ष्मी राज्यरूपी विपविकारवाली तन्द्रा देव है। हे मगल-कामी, पहले लक्ष्मीको ही देखो—

३० खड्गोके कमल वनमें रहनेवाली भ्रमरी इस लक्ष्मीने क्षीरसागरसे पारिजातके पल्लवो से रागको, चन्द्रखण्डसे पूरी कुटिलताको, उच्च.-श्रवा (अश्व) से चचलताको, कालकूट (विष) से बेहोश करनेकी शक्तिको, वारुणीसे मदको, कौस्तुभ मणिसे निष्ठुरताको (लिया)। इन सवको लेकर ही सहवासके परिचयके कारण विरहके समय मनवहलावके चिह्नकी तरह पैदा हुई। इस ससार में ऐसा अजनवी कोई नही है, जैसी कि यह नीचा (लक्ष्मी)। मिलनेपर भी कठिनाईसे रक्षित होती है। दृढ गुण (गुण या रस्सी) के सदान (दान या वधन) से निश्चल की हुई (वधी) भी नष्ट हो जाती है। प्रचण्ड दर्पवाले हजारों भटो (योद्धाओ) को उठी खड्ग-लताओके पिंजड़ेमें रक्खी भी खिसक जाती है। मद-जलसे वदली जैसे अन्धकारवाले गजो द्वारा निर्मित घटामें पाली भी पलायन करती है। न परिचयको मानती, न कुलीनताकी प्रतीक्षा करती, न रूपको देखती, न पंडि-

नप्रभवो न दहति किमनल ? किं वा प्रशमहेतुनापि न प्रचण्डतरो भवति बडवानलो वारिणा ? गुरूपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमलप्रक्षालनक्षममजल स्नानम्, अनुपजात-पलितादिवैरूप्यमजर वृद्धत्वम्, अनारोपितमेदोदोष गुरू-करणम्, असुवर्णविरचनमग्राम्य कर्णाभरणम्, अतीतज्योति-रालोक, नोद्वेगकर प्रजागर. ।

२९ विशेषेण राज्ञाम्—विरला हि तेषामुपदेष्टार । प्रतिशव्दक इव राजवचनमनुगच्छति जनो भयात्। उद्दाममदाश्च पृथुस्थगितश्रवणविवराश्चोपदिश्यमानमपि ते न शृण्वन्ति । शृण्वन्तोऽपि च गजनिमीलितेनावधीरयन्त सशयन्ति हितो-पदेशदायिनो गुरून् । अहकारदाहज्वरमूर्च्छान्धकारिता विह्वला हि राजप्रकृति, अलीकाभिमानोन्मादकारीणि धनानि, राज्यविषविकारतन्द्राप्रदा राजलक्ष्मी । आलोक-यतु तावत्कल्याणाभिनिवेशि, लक्ष्मीमेव प्रथमम् ।—

३० इय हि खड्गमण्डलोत्पलवनविभ्रमभ्रमरी लक्ष्मी क्षीर-सागरात्पारिजातपल्लवेभ्यो रागम्, इन्दुशकलादेकान्तव-क्रताम्, उच्चै श्रवसश्चचलताम्, कालकूटान्मोहनशक्तिम्, मदिराया मदम्, कौस्तुभमणेर्नैष्ठुर्यम्, इत्येतानि सहवास-परिचयवशाद्विरहविनोदचिह्नानि गृहीत्वोद्गता । न ह्येवविधमपरिचितमिह जगति किंचिदस्ति यथेयमनार्या । लव्धापि खलु दु खेन परिपाल्यते। दृढगुणसदाननिस्पन्दी-कृतापि नश्यति । उद्दामदर्पभटसहस्रोल्लासितासिलतापज-रविधृताप्यपक्रामति । मदजलदुर्दिनान्धकारगजघटितघन-घटापरिपालितापि प्रपलायते। न परिचय रक्षति। नाभि-जनमीक्षते। न रूपमालोकयते। न कुलक्रममनुवर्तते। न

साथ वडवानल अधिक प्रचण्ड नही होता? गुरुओका उपदेश पुरुपोके लिये सारे मलोको धो सकनेवाला निर्जल स्नान है, वालकी सफेदी आदि विरूपताके विना जरा-रहित वृद्धता है। चर्वीके दोपके विना गुरु (या स्थूल) होना है, विना सुवर्णका वना अ-ग्रामीण कर्णाभरण है, प्रकाश विना आलोक है, न उद्वेग करनेवाला जागरण है।

२९ खास करके राजाओके विरले ही उपदेशक होते है, लोग भयसे प्रति-ध्वनिकी तरह राजाके वचनका अनुसरण करते है। प्रचण्ड दर्पवाले वह कर्णविवरको खूब मूदे उपदेश-वाक्यको नही सुनते, सुनकर भी हाथीकी तरह आख मूदे तिरस्कार करते, हितोपदेश देनेवाले गुरुओको खिन्न करते है। राजाका स्वभाव अहकार-दाह-ज्वरकी मूर्छासे अन्धकार-युक्त और चचल होता है। धन, झूठे अभिमानसे उन्मत्त कर देता है। राजलक्ष्मी राज्यरूपी विषविकारवाली तन्द्रा देव है। हे मगल-कामी, पहले लक्ष्मीको ही देखो—

३० खड्गोके कमल वनमें रहनेवाली भ्रमरी इस लक्ष्मीने क्षीरसागरसे पारिजातके पल्लवो से रागको, चन्द्रखण्डसे पूरी कुटिलताको, उच्च-श्रवा (अश्व) से चचलताको, कालकूट (विष) से वेहोश करनेकी शक्तिको, वारुणीसे मदको, कौस्तुभ मणिसे निष्ठुरताको (लिया)। इन सवको लेकर ही सहवासके परिचयके कारण विरहके समय मनवहलावके चिह्नकी तरह पैदा हुई। इस ससार में ऐसा अजनवी कोई नही है, जैसी कि यह नीचा (लक्ष्मी)। मिलनेपर भी कठिनाईसे रक्षित होती है। दृढ गुण (गुण या रस्सी) के सदान (दान या वधन) से निश्चल की हुई (ववी) भी नष्ट हो जाती है। प्रचण्ड दर्पवाले हजारो भटो (योद्धाओ) को उठी खड्ग-लताओके पिंजडेमें रक्खी भी खिसक जाती है। मद-जलसे वदली जैसे अन्धकारवाले गजो द्वारा निर्मित घटामें पाली भी पलायन करती है। न परिचयको मानती, न कुलीनताकी प्रतीक्षा करती, न रूपको देखती, न पडि-

शील पश्यति। न वैदग्ध्य गणयति। न श्रुतमाकर्णयति। न धर्ममनुरुध्यते। न त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञता विचारयति। नाचार पालयति। न सत्यमनुबुध्यते। न लक्षण प्रमाणीकरोति। गन्धर्वनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति। अद्याप्यारूढमन्दरपरिवर्तावर्तभ्रान्तिजनितसस्कारेव परिभ्रमति। कमलिनीसचरणव्यतिकरलग्ननलिननालकण्टकेव न क्वचिदपि निर्भरमाबध्नाति पदम्। अतिप्रयत्नविधृतापि परमेश्वरगृहेषु विविधगन्धगजगण्डमधुपानमत्तेव परिस्खलति, पारुष्यमिवोपशिक्षितुमसिधारासु निवसति। विश्वरूपत्वमिव गृहीतुमाश्रिता नारायणमूर्तिम्, अप्रत्ययबहुला च दिवसान्तकमलमिव समुपचितमूलदण्डकोशमण्डलमपि मुचति भूभुजम्, लतेव विटपकाननमध्यारोहति। गगेव वसुजनन्यपि तरगबुद्बुदचचला, दिवसकरगतिरिव प्रकटितविविधसक्रान्ति, पातालगुहेव तमोबहुला, हिडिम्बेव भीमसाहसैकहार्यहृदया, प्रावृडिवाचिरद्युतिकारिणी, दुष्टपिशाचीव दर्शितानेकपुरुषोच्छ्रया स्वल्पसत्त्वमुन्मत्तीकरोति। सरस्वतीपरिगृहीतमीर्ष्ययेव नालिगति। जन गुणवन्तमपवित्रमिव न स्पृशति। उदारसत्वममगलमिव न बहु मन्यते। सुजनमनिमित्तमिव न पश्यति। अभिजातमहिमिव लंघयति। शूर कण्टकमिव परिहरति। दातार दु स्वप्नमिव न स्मरति। विनीत पातकिनमिव नोपसर्पति। मनस्विनमुन्मत्तमिवोपहसति। परस्परविरुद्ध चेन्द्रजालमिव दर्शयन्ती प्रकटयति जगति निज चरितम्।

३१ तथाहि। सततमुष्माणमुपजनयन्त्यपि जाड्यमुपजनयति। उन्नतिमादधानापि नीचस्वभावतामाविष्करोति। तोय-

ताईको गिनती, न शिक्षाको सुनती, न धर्मका अनुरोध करती, न त्यागका आदर करती, न विशेषज्ञताका विचार करती, न आचारका पालन करती, न सत्यको समझती, न लक्षणको प्रमाण मानती। यह लक्ष्मी गन्धर्व-नगरकी लेखा जैसी देखते-देखते नष्ट हो जाती है। आज भी (समुद्रमथन के समय) मदराचलके घूमनेके चक्करसे उत्पन्न मस्कारोसे युक्त हो चक्कर काट रही है। कमलिनीके भीतर चलनेके कारण कमलनालके काटे लगी सी कही भी पैरको निश्चित होकर नही रखती, स्थान नही बाधती। बहुत प्रयत्नसे महाराजाओके घरोमें पकडी गई भी नाना गन्धवाले गजोके कपोलोके मदको पीकर मतवाली सी लडखडाती है। कठोरता सिखलानेके लिये ही मानो तलवारकी धारो पर निवास करती है। बहुरूपता धारण करनेके लिये ही मानो नारायणके शरीरमें आश्रित है। न-बहु-परिचिता सन्ध्याके कमलकी तरह मूल-दण्ड-कोपोंके समृद्ध राजाको भी छोडदेती है। लताकी तरह क्षुद्र वृक्षोपर चढती है। यह लक्ष्मी गगाकी तरह वसु (धन या भीष्म) की जननी भी, तरग और बुलबुलेकी तरह चचला है, सूर्यकी गतिकी तरह नाना सक्रान्ति (सक्रान्ति या ससर्ग) को प्रकट करनेवाली, पातालकी गुहाकी तरह भारी अन्धकारवाली, हिडिम्बाकी तरह भीम (या भयकर) साहससे खिचने योग्य हृदय-वाली है। वर्षाकी तरह अचिर-प्रकाश (बिजली या कम समयके प्रकाश) करनेवाली है। दुष्ट पिशाचीकी तरह अनेक पुरुषोके उच्छ्राय (ऊचाई या वृद्धि) को देखी यह अल्प स्वत्व (साहस या हृदय) वालेको उन्मत्त बनाती है। सरस्वती द्वारा स्वीकृत पुरुष-बाहु को ईर्ष्यासे आलिगन नही करती, गुणीजनको अपवित्र सा मान नही छूती, उदारहृदयको अमगल सा जान बहुमान नहीं करती, सुजनको असगुनकी तरह नही देखती। कुलीनको सापकी तरह लाघ जाती है, शूरको काटेकी तरह छोडती है, दाताको दु स्वप्नकी तरह नही याद करती, विनम्रके पास पातकीकी तरह नहीं जाती, पडितको उन्मत्तसा (जान) उपहास करती है, और परस्पर विरुद्ध इन्द्रजालको दिखलाती भी अपने चरितको जगत्में प्रकट करती है।

३१ जैसे कि—लगातार गर्मी पैदा करती भी जाडच (जाडा या जडता) उपजाती है। उन्नतिको धारण कराती भी नीच स्वभावताको प्रकट करती है। तोयराशि (समुद्र या जलसमूह) से उत्पन्न भी तृष्णा (प्यास या लोभ) को बढाती है। ईश्वरता (ऐश्वर्य या शकरत्व),

राशिसंभवापि तृष्णां संवर्धयति। ईश्वरतां दधानाप्यशिव-
प्रकृतित्वमातनोति। बलोपचयमाहरन्त्यपि लघिमानमापा-
दयति। अमृतसहोदरापि कटुकविपाका। विग्रहवत्यप्यप्रत्यक्ष
दर्शना। पुरुषोत्तमरतापि खलजनप्रिया। रेणुमयीव स्वच्छ-
मपि कलुषीकरोति।

३२. यथा यथा चेयं चपला दीप्यते तथा तथा दीपशिखेव कज्जल-
मलिनमेव कर्म केवलमुद्वमति। तथाहि इयं संवर्धनवारि-
धारा तृष्णाविषवल्लीनाम्, व्याधगीतिरिन्द्रियमृगाणाम्,
परामर्शधूमलेखा सच्चरितचित्राणाम्, विभ्रमशय्या मोह-
दीर्घनिद्राणाम्, निवासजीर्णवलभी धनमदपिशाचिकानाम्,
तिमिरोद्गतिः शास्त्रदृष्टीनाम्, पुरःपताका सर्वाविनया-
नाम्, उत्पत्तिनिम्नगा क्रोधावेगग्राहाणाम्, आपानभूमिर्वि-
षयमधूनाम्, संगीतशाला भ्रूविकारनाट्यानाम्, आवासदरी
दोषाशीविषाणाम्, उत्सारणवेत्रलता सत्पुरुषव्यवहाराणाम्,
अकालप्रावृड् गुणकलहंसकानाम्, विसर्पणभूमिर्लोकापवाद-
विस्फोटकानाम्, प्रस्तावना कपटनाटकस्य, कदलिका काम-
करिणः, बध्यशाला साधुभावस्य, राहुजिह्वा धर्मेन्दुमण्ड-
लस्य।

३३. न हि तं पश्यामि यो ह्यपरिचितयानया न निर्भरमुपगूढः,
यो वा न विप्रलब्धः। नियतमियमालेख्यगतापि चलति,
पुस्तकमय्यपीन्द्रजालमाचरति, उत्कीर्णापि विप्रलभते,
श्रुताप्यभिसंधत्ते, चिन्तितापि वञ्चयति।

३४. एवं विधयापि चानया दुराचारया कथमपि दैववशेन परि-
गृहीता विक्लवा भवन्ति राजानः, सर्वाविनयाधिष्ठानतां च
गच्छन्ति।

को धारण करती भी अ-शिव स्वभावताको वढाती है। वलका सचयन करती भी लघुता आपादित करती है। यह लक्ष्मी अमृतकी सहोदरा भी अन्तमें कडवी, साकार भी प्रत्यक्ष न दिखाई देनेवाली, पुरुषोत्तम (श्रेष्ठ पुरुष या विष्णु) में रत भी खलजनोकी प्रिया है, धूलिमयी सो स्वच्छको भी मलिन करती है।

३२ और जैसे जैसे यह चचला दीप्त होती है, वैसे वैसे दीपशिखा की तरह केवल काजल जैसे मलिन कर्मको ही उगलती है। जैसे कि—यह लक्ष्मी तृष्णारूपी विष-लताओको वढानेवाली पानीकी धारा है, इन्द्रियरूपी मृगोके लिये शिकारीका गीत है, सच्चरित्र चित्रोको छूनेवाली धूमलेखा है, मोहरूपी लम्वी नीद ताननेवालोके लिये विलास-सेज है, धन मदके पिशाचियोके लिये घरका पुराना झरोखा है, शास्त्रकी दृष्टि रखनेवालोके लिये आखकी फूलीका पैदा होना है। (यह) सारे दुराचारोकी अग्रपताका है, क्रोधके आवेगरूपी मकरोकी उत्पत्ति नदी है, विपयरूपी शरावोकी मद्यशाला है, भौं विगाडनेवाले नाट्योकी सगीतशाला है, दोपरूपी सर्पोके रहनेकी गुहा है, सत्पुरुषके व्यवहारोको हटानेवाला वेंत है, गुणरूपी कलहसोके लिये अकाल वर्षा है, लोकनिन्दारूपी विस्फोटोका प्राप्तिस्थान है, कपट-नाटकको प्रस्तावना है, स्वेच्छाचारी गजो का केला है, साधुताकी वध्यशाला है, धर्मरूपी चन्द्रमण्डलके लिये राहुकी जीभ है।

३३ मै ऐसे (पुरुष) को नही जानता, जिसे कि इस अपरिचिता (लक्ष्मी) ने गाढ आलिगन नही दिया, अथवा जो छकाया नही गया। निश्चय हो यह चित्रलिखित भी चलती है, पुस्तकमयी (ज्ञानमयी) भी इन्द्रजाल जैसा करती है, उत्कीर्ण भी धोखा देती है, सुनी भी सशय पैदा करती है, चिन्तन की गई भी वचना करती है।

३४ भाग्यवश इस प्रकारकी इस दुराचारिणी द्वारा कैसे भी पकडे गये राजा विह्वल होते है, सारे अभिनयोके अधिष्ठान वनते है। जैसे कि—अभिपेकके समयमें ही इनका दाक्षिण्य (उदारता) मगल-

तथाहि, अभिषेकसमय एव चैतेषा मगलकलशजलैरिव प्रक्षाल्यते दाक्षिण्यम्, अग्निकार्यधूमेनेव मलिनीक्रियते हृदयम्, पुरोहितकुशाग्रसमार्जनीभिरिवापह्रियते क्षान्ति, उष्णीषपटबन्धेनेवाच्छाद्यते जरागमनस्मरणम्, आतपत्रमण्डलेनेवापसार्यते परलोकदर्शनम्, चामरपवनैरिवापह्रियते सत्यवादिता, वेत्रदण्डैरिवोत्सार्यन्ते गुणा, जयशब्दकलकलरवैरिव तिरस्क्रियन्ते साधुवादा, ध्वजपटपल्लवैरिव परामृश्यते यश ।

३५. तथाहि । केचिच्छ्रमवशशिथिलशकुनिगलपुटचटुलाभि खद्योतोन्मेषमुहुर्तमनोहराभिर्मनस्विजनगर्हिताभि सपद्भि, प्रलोभ्यमाना धनलवलाभावलेपविस्मृतजन्मानोऽनेकदोषोपचितेन दोषासृजेव रागावेशेन बाध्यमाना, विविधविषयग्रासलालसै पञ्चभिरप्यनेकसहस्रसख्यैरिवेन्द्रियैरायास्यमाना, प्रकृतिचचलतया लब्धप्रसरेणैकेनापि शतसहस्रतामिवोपगतेन मनसाकुलीक्रियमाणा विह्वलतामुपयान्ति ।

३६. ग्रहैरिव गृह्यन्ते, भूतैरिवाभिभूयन्ते, मन्त्रैरिवावेश्यन्ते, सत्वैरिवावष्टभ्यन्ते, वायुनेव विडम्ब्यन्ते, पिशाचैरिव ग्रस्यन्ते, मदनशरैर्मर्माहता इव मुखभगसहस्राणि कुर्वते, धनोष्मणा पच्यमाना इव विचेष्टन्ते, गाढप्रहाराहता इवागानि न धारयन्ति, कुलीरा इव तिर्यक् परिभ्रमन्ति, अधर्मभग्नगतय पगव इव परेण सचार्यन्ते, मृषावादविपाकसजातमुखरोगा इवातिकृच्छ्रेण जल्पन्ति, सप्तच्छदतरव इव कुसुमरजोविकारै पार्श्ववर्तिना शिर शूलमुत्पादयन्ति, आसन्नमृत्यव इव बन्धुजनमपि नाभिजानन्ति, उत्कम्पित लोचना इव तेजस्विनो नेक्षन्ते, कालदष्टा इव महामन्त्रैरपि-

कलशके जलसे मानो धुल जाता है, इनका हृदय होमके धूमसे मलिन कर दिया जाता है, उनकी क्षमा पुरोहितके कुशाग्ररूपी झाडुओसे मकेल दी जाती है, उनके मनमें बुढापेके आनेकी स्मृति सिर-पेंचके वाधनेसे ढक दी जाती है, उनकी परलोकपर लगी निगाह छत्र-मण्डल द्वारा मानो हटा दी जाती है, उनकी सत्यवादिता चवरकी हवासे दूर कर दी जाती है, उनके गुण वेंतके दण्डोसे उत्सारित कर दिये जाते हैं, उनकी ख्यातिया जयकारके कोलाहलमे मानो तिरस्कृत कर दी जाती है, उनका यश, ध्वजपटके पल्लवोंसे मानो लुप्त कर दिया जाता है।

३५ और भी—कोई-कोई (लक्ष्मीपात्र) श्रमके वश ढीले पक्षीके कण्ठकी तरह, चपल जुगनूके आभास जैसी मुहूर्त मात्र मनोहर लगनेवाली पण्डितजनोंसे निंदित सम्पत्तियो द्वारा प्रलोभित थोडे धनके लाभके अभिमानसे भूले जन्मवाले, अनेक दोषोसे वढाये, दुष्ट रक्त द्वारा मानो रागके आवेशसे वाधित हुये, नाना विषयके ग्रासकी लालसावाले पाच होते भी अनेक हजार इन्द्रियोसे पीडित होते, स्वभावत चचलता के कारण मौका पानेवाले एक होते भी लाख हुये से मन द्वारा विह्वल हो जाते हैं।

३६ वह ग्रहो द्वारा मानो पकडे गये, भूतो द्वारा मानो अभिभूत होते हैं, मन्त्रो द्वारा मानो आवेशित होते हैं। वह दुष्ट प्राणियो द्वारा मानो फासे जाते हैं, वायु द्वारा मानो तितर-वितर किये जाते हैं, पिशाचो द्वारा मानो ग्रसित होते हैं, कामवाणोसे हृदयमें आहत हुये से मानो हजारो मुख-विकार करते हैं। वह धनकी गर्मीसे जलते हुये से मानो नाना चेष्टा करते हैं, भारी प्रहार से आहत से मानो अगोको धारण नही कर सकते, मगरोकी तरह तिरछे परि-भ्रमण करते हैं, अधर्मसे भग्न आचारवाले पगुओकी तरह मानो दूसरे द्वारा सचालित होते हैं। वह मिथ्या भाषणके कारण उत्पन्न मानो मुखके रोगवाले बहुत कठिनाईसे वोलते हैं, छतिवनके वृक्षकी

न प्रतिबुध्यन्ते, जातुकाभरणानीव सोष्माण न सहन्ते, दुष्टवारणा इव महामानस्तम्भनिश्चलीकृता न गृह्णन्त्युपदेशम्। तृष्णाविषमूर्च्छिता काकमयमिव सर्व पश्यन्ति, इषव इव पानवर्धिततैक्ष्ण्या परप्रेरिता विनाशयन्ति, दूरस्थितान्यपि फलानि दण्डविक्षेपैर्महाकुलानि शातयन्ति, अकालकुसुमप्रसवा इवमनोहराकृतयोऽपिलोकविनाशहेतव, श्मशानाग्नय इवातिरौद्रभूतय, तैमिरिका इवादूरदर्शिन, उपसृष्टा इव क्षुद्राधिष्ठितभवना। श्रूयमाणा अपि प्रेतपटहा इवोद्वेजयन्ति, चिन्त्यमाना अपि महापातकाध्यवसाया इवोपद्रवमुपजनयन्ति, अनुदिवसमापूर्यमाणा पापेनेवाध्मातमूर्तयो भवन्ति, तदवस्थाश्च व्यसनशतसख्यतामुपगता वल्मीकतृणाग्रावस्थिता जलबिन्दव इव पतितमप्यात्मान नावगच्छन्ति।

३७. अपरे तुस्वार्थनिष्पादनपरैर्धनपिशितग्रासगृध्रैरास्थाननलिनीधूर्तवकैर्द्यूत विनोद इति, परदाराभिगमन वैदग्ध्यमिति, मृगया श्रम इति, पान विलास इति, प्रमत्तता शौर्यमिति, स्वदारपरित्यागमव्यसनितेति, गुरुवचनावधीरणमपरप्रणेयत्वमिति, अजितभृत्यता सुखोपसेव्यत्वमिति, नृत्यगीतवाद्यवेश्याभिसक्ति रसिकतेति, महापराधावकर्णन महानुभावतेति, पराभवसहत्व क्षमेति, स्वच्छन्दता प्रभुत्वमिति, देवावमानन महासत्त्वतेति, वन्दिजनख्याति यश इति, तरलतामुत्साह इति, अविशेषज्ञतामपक्षपातित्वमिति, दोषानपि गुणपक्षमध्यारोपयद्भिरन्त. स्वयमपि विहसद्भि प्रतारणकुशलैर्धूर्तैरमानुषलोकोचिताभि. स्तुतिभि प्रता-

तरह पुष्प-केसरके विकारोसे पडोसियोके सिरमें शूल पैदा करते हैं, आसन्न मृत्युवालोकी तरह वन्धुजनोको भी नही पहचानते, उत्कपित नेत्रवालोकी तरह तेजस्वियोको नही देखते, कालसे डसे की तरह महामन्त्रो (मत्र या उपदेश) से भी नही होशमें आते, लाहके भूषणोकी तरह तेजस्वी (अग्नि या पुरुष) को नही सह सकते। वह दुष्ट गजोकी तरह महामानरूपी स्तम्भमें स्थिर किये भी उपदेश (या आज्ञा) को नही ग्रहण करते। तृष्णारूपी विपसे मूर्छित हुये सारे (जगत्) को कनकमय देखते हैं, वाणोकी तरह पान (मद्यपान या घर्पण) से तीक्ष्णता वढाये दूसरे द्वारा प्रेरित हो विनाश करते हैं। वह दूर स्थित फलके लिये दण्ड फेंककर वडे कुलोको भी गिराते हैं, अकालके फूलके उत्पन्न होनेकी तरह मनोहर आकारवाले भी लोगोके विनाशके हेतु हैं। वह श्मशानकी आग की तरह अत्यन्त भयकर सम्पत्तिवाले होते हैं। वे राजा फूलीके अन्धोकी तरह अदूरदर्शी, वहिष्कृतकी तरह क्षुद्र लोगो से वसे भवनवाले होते हैं। वह सुने जाते भी मुर्देके वाजेकी तरह उद्विग्न करते हैं। सोचे जाते भी महापातकके मनोरथकी तरह उपद्रव करते हैं। प्रतिदिन भरे जाते पाप द्वारा मानो मोटी देहवाले होते हैं। ऐसी और ऐसी अवस्थावाले सैकडो व्यसनो की मित्रतासे युक्त वल्मीक (दीमकके टीले) के तृणके अग्रभागमें अवस्थित जलबिन्दुओकी भाति पतित हुये भी अपनेको नही समझते।

३७ दूसरे (प्रभु) तो स्वार्थ-साधन-तत्पर, धनरूपी मासके कवलके लोलुप, दरवारको कमलिनीके धूर्त। वगुलो द्वारा (प्रतारित) द्यूतको विनोद, परस्त्रीगमनको चतुराई, शिकारको व्यायाम, मद्यपानको विलास, प्रमत्तताको शूरता, निज-स्त्री-परित्यागको अव्यसनी होना, गुरुके वचनके तिरस्कारको दूसरेकी वातमें न पडना, नौकरके वशीभूत होनेको सुखसे सेवनीय होना, नृत्य-गीत-वाद्य-वेश्याकी आसक्तिको रसिकता, महान् अपराध (की वातें) सुननेको महानुभावता, तिरस्कार सहनेको क्षमा, स्वैरिताको प्रभुता, देवापमानको महासत्त्वता, वन्दीजनोमें ख्यातिको यश, चपलताको उत्साह, विशेप न जाननेको निष्पक्षपातता (समझते हैं)। वह दोपोको भी गुण-पक्षमें आरोप करते, भीतरसे स्वय भी हसते वचना करनेमें चतुर धूर्तोकी मानुष-लोकके लिये अनुचित स्तुतियो द्वारा प्रतारित होते, धनके मदसे मत्तचित्त हो चेत न करके 'वैसा ही है', यह अपने मनमें रखके झूठे अभिमानको धारण करते हैं। मरणधर्मा होते भी दैवी-अंशके

र्यमाणा वित्तमदमत्तचित्ता निश्चेतनतया तथैवेत्यात्मन्यारोपितालीकाभिमाना मर्त्यधर्माणोऽपि दिव्याशावतीर्णमिव सदैवतमिवातिमानुषमात्मानमुत्प्रेक्षमाणा. प्रारब्धदिव्योचितचेष्टानुभावा सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति ।

३८. आत्मविडम्बना चानुजीविना जनेन क्रियमाणामभिनन्दन्ति । मनसा देवताध्यारोपणविप्रतारणादसद्भूतसभावनोपहताश्चान्त प्रविष्टापरभुजद्वयमिवात्मवाहुयुगल सभावयन्ति । त्वगन्तरिततृतीयलोचन स्वललाटमाशकते । दर्शनप्रदानमप्यनुग्रह गणयन्ति । दृष्टिपातमप्युपकारपक्षे स्थापयन्ति । सभाषणमपि सविभागमध्ये कुर्वन्ति । आज्ञामपि वरप्रदान मन्यन्ते । स्पर्शमपि पावनमाकलयन्ति । मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्य, न पूजयन्ति द्विजातीन्, न मानयन्ति मान्यान्, नार्चयन्त्यर्चनीयान्, नाभिवादयन्त्यभिवादनार्हान्, नाभ्युतिष्ठन्ति गुरून्, अनर्थकायासान्तरितोपभोगसुखमित्युपहसन्ति विद्वज्जनम्, जरावैक्लव्यप्रलपितमिति पश्यन्ति वृद्धोपदेशम्, आत्मप्रज्ञापरिभव इत्यसयन्ति सचिवोपदेशाय, कुप्यन्ति हितवादिनम् ।

३९ सर्वथा तमभिनन्दन्ति, तमालपन्ति त पार्श्वे कुर्वन्ति, त सवर्धयन्ति, तेन सह सुखमवतिष्ठन्ते, तस्मै ददति, त मित्रतामुपजनयन्ति, तस्य वचन शृण्वन्ति, तत्र वर्षन्ति, त वहु मन्यन्ते, तमाप्ततामापादयन्ति, योऽहर्निशमनवरतमुपरचिताजलिरधिदैवतमिव विगतान्यकर्तव्य स्तौति, यो वा माहात्म्यमुद्भावयति । किं वा तेपा साप्रत येषामतिनृशसप्रायोपदेशनिर्घृण कौटिल्यशास्त्रं प्रमाणम्, अभिचार-

[अवतार लिये जैसे देवाधिष्ठित, अपनेको अतिमानुष लगाते देवोंके लिये उचित चेष्टा और अनुभावका आचरण करते सभी लोगोंके उपहासके पात्र होते हैं।

३८ वे अनुजीवी जनों द्वारा अपनी विडम्बना किये जानेका अभिनन्दन करते हैं। देवता (विष्णु) के आरोपकी वचनासे मनकी असत्य सम्भावना से नष्ट हो भीतर घुसी अन्य दो भुजाओंकी तरह अपने दोनों बाहोंको मानते हैं, अपने ललाटमें चमडेके भीतर छिपे तीसरे लोचनका सन्देह करते हैं। वह दर्शन देनेको भी अनुग्रह मानते हैं, दृष्टिपात करनेको भी उपकारके तौरपर धारण करते हैं, सम्भाषण-को भी पारितोषिक-दान कहते हैं, आज्ञाको भी वरदान मानते हैं, स्पर्शको भी पवित्र समझते हैं। मिथ्या माहात्म्यके गर्वसे युक्त वह न देवताओंको प्रणाम करते हैं, न द्विजोंको पूजते हैं, न माननीयोंको मानते हैं, न अर्चनियोंकी अर्चना करते हैं, न अभिवादनीयोंका अभिवादन करते हैं। न गुरुओं के आने पर उठते हैं। विद्वानोंको व्यर्थका क्लेश दे, उपभोग-सुखसे वंचित कर हंसते हैं, वृद्धोंके उपदेशको बुढा-पेकी विकलताका प्रलाप बतलाते हैं। अपनी बुद्धिका तिरस्कार है यह सोच, वह सचिवोंके उपदेशकी निन्दा करते हैं, हितवादियोंपर कोप करते हैं।

३९ वह सर्वथा उसीका अभिनन्दन करते, उसीसे आलाप करते हैं, उसीको पासमें रखते हैं, उसीको सम्वर्द्धन करते हैं, उसीके साथ सुखसे रहते हैं, उसीको देखते हैं, उसीके साथ मित्रता करते हैं, उसीका वचन सुनते हैं, उसीमें (धन) वरसाते हैं, उसीका बहुमान करते हैं, उसीको प्रामाणिक बतलाते हैं, जो कि रात-दिन बराबर हाथ जोड इष्ट-देवताकी तरह अन्य-करणीय छोड तारीफ करता है, या जो माहात्म्य उद्भावन करता है। अथवा उनके लिये युक्त क्या है, जिनके लिये अत्यन्त दयाहीन नृशंस-उपदेश **कौटिल्य**शास्त्र प्रमाण है, हत्या आदि अभिचार क्रियावाले सर्वथा क्रूर स्वभावके पुरोहित

क्रिया क्रूरैकप्रकृतय पुरोधसो गुरव, पराभिसधानपरा मन्त्रिण उपदेष्टार, नरपतिसहस्रमुक्तोज्झिताया लक्ष्म्यामासक्ति, मारणात्मकेषु शस्त्रेष्वभियोग, सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरागा भ्रातर उच्छेद्या ।

४०. तदेवप्रायेऽतिकुटिलकष्टचेष्टासहदारुणे राज्यतन्त्रेऽस्मिन्महामोहकारिणि च यौवने कुमार, तथा प्रयतेथा यथा नोपहस्यसे जनै, न निन्द्यसे साधुमि, न धिक्क्रियसे गुरुभि, नोपालभ्यसे सुहृद्भि, न शोच्यसे विद्वद्भि । यथा च न प्रकाश्यसे विटै, न प्रतार्यसे कुशलै, नास्वाद्यसे भुजगै नावलुप्यसे सेवकवृकै, न वच्यसे धूर्तै, न प्रलोभ्यसे वनिताभि, न विडम्ब्यसे लक्ष्म्या, न नर्त्यसे मदेन, नोन्मत्तीक्रियसे मदनेन, नाधिक्षिप्यसे विषयै, नावकृष्यसे रागेण, नापह्नियसे सुखेन ।

४१ काम भवान्प्रकृत्यैव धीर, पित्रा च समारोपितसस्कार, तरलहृदयमप्रतिवद्ध च मदयन्ति धनानि, तथापि भवद्गुणसतोपो मामेव मुखरीकृतवान् । इदमेव च पुन पुनरभिधीयसे—'विद्वासमपि सचेतनमपि महासत्त्वमप्यभिजातमपि धीरमपि प्रयत्नवन्तमपि पुरुषमिय दुर्विनीता खली करोति लक्ष्मीरि'ति। सर्वथा कल्याणै पित्रा क्रियामाणमनुभवतु भवान्नवयौवराज्याभिषेकमगलम्। कुलक्रमागतामुद्वह पूर्वपुरुषैरूढा धुरम्। अवनमय द्विषता शिरासि। उन्नमय स्ववन्धुवर्गम्। अभिषेकान्तर च प्रारब्धदिग्विजय. परिभ्रमन्विजितामपि तव पित्रा सप्तद्वीपभूषणा पुनर्विजयस्व वसुधराम्। अय च ते काल

जिनके गुरु हैं, दूसरोंकी हानिमें रत मंत्री जिनके उपदेष्टा हैं, हजारों राजाओं द्वारा भाग कर छोडी गई लक्ष्मीमें जिनकी आसक्ति है, मारक हथियारोंपर जिनका उत्साह है, सहज प्रेमसे स्निग्ध हृदय द्वारा अनुरक्त भाई जिनके लिये मारणीय हैं।

४० भो कुमार, अधिकतर इस प्रकार अतिकुटिल, कठिन प्रयत्नसे सहने लायक, दारुण राज्यतन्त्रमें, इस महामोह करनेवाले यौवनमें, वैसा प्रयत्न करना, जिसमें कि लोगों द्वारा उपहसित न किये जाओ, सज्जनों द्वारा निन्दे न जाओ, गुरुओं द्वारा धिक्कारे न जाओ, सुहृदों द्वारा उलाहना न दिये जाओ, विद्वानों द्वारा सोचे न जाओ। जिसमें कि अश्रद्धाचारियों द्वारा मशहूर न बनो, बुराइयों द्वारा प्रतारित न किये जाओ, भुजंगों (भडुओं) द्वारा चूसे न जाओ, सेवकरूपी भेडियों द्वारा लोपित न किये जाओ, धूर्तों द्वारा वंचित न हो, वनिताओं द्वारा प्रलोभित न हो, लक्ष्मी द्वारा विडम्बिता न किये जाओ, मदसे नचाये न जाओ, कामदेवद्वारा, उन्मत्त न किये जाओ, विषयों द्वारा प्रेरित न हो, राग द्वारा खींचे न जाओ, सुख द्वारा अपहृत न हो।

४१ ठीक है, आप स्वभावसे ही धीर हैं और पिताने (अच्छा) संस्कार तुममें पैदा किया है। धन चंचल-हृदय अबोध को (ही) मतवाला करता है। तो भी आपके गुणसे मुझे जो सन्तोष है, उसीने मुझे इतना बुलवाया। यही बार-बार तुम्हें कहना चाहता हूँ: यह दुष्टा लक्ष्मी विद्वान् को भी, सजग को भी, महासत्व को भी, कुलीन को भी, धीर कोभी, उद्योगी पुरुष को भी पथभ्रष्ट करती है। कल्याण-युक्त पिता द्वारा किये जाते नवयुवराज-अभिषेक-मंगल को अच्छी तरह अनुभव करो। पूर्व पुरुषों द्वारा उठाये कुल-परंपराके राज-धुरे को उठाओ। शत्रुओं के सिर को झुकाओ, अपने बन्धुवर्गको उठाओ और अभिषेक के बाद दिग्विजय आरम्भ कर घूमते अपने पिता द्वारा जीती हुई सातों द्वीपों की भूषण वसुन्धराको फिर विजय करो।

प्रतापमारोपयितुम्। आरूढप्रतापो राजा त्रैलोक्यदर्शीव सिद्धादेशो भवति" इत्येतावदभिधायोपशशाम।

४२ उपशान्तवचसि (कुमार) निभृष्ट इव, अभिषिक्त इव, अभिलिप्त इव, अलकृत इव, पवित्रीकृत इव, उद्-भासित इव, प्रीतहृदयो मूहुर्त स्थित्वा स्वभवनमाजगाम।

—पूर्वभागे

(३) अच्छोदसरः—

४३ आलोकमात्रेणैवापगतश्रमो दृष्ट्वा मनस्येवमकरोत्— 'अहो निष्फलमपि मे तुरगमुखमिथुनानुसरणमेतदालोक-यत सर सफलतामुपगतम्। अद्य परिसमाप्तमीक्षण-युगलस्य द्रष्टव्यदर्शनफलम्, आलोकित खलु रमणीयाना-मन्त, दृष्ट आह्लादनीयानामवधि, वीक्षिता मनोहराणा सीमान्तलेखा, प्रत्यक्षीकृता प्रीतिजनननाना परिसमाप्ति, विलो-किता दर्शनीयानामवसानभूमि। इदमुत्पाद्य सर सलिल-ममृतरसमुत्पादयता वेधसा पुनरुक्ततामिव नीता स्वसृष्टि। इदमपि खल्वमृतमिव सर्वेन्द्रियाह्लादनसमर्थमतिविमल-तया चक्षुष प्रीतिमुपजनयति, शिशिरतया स्पर्शसुख-मुपहरति, कमलसुगन्धितया घ्राणमाप्यायति, हसमुखर-तया श्रुतिमानन्दयति, स्वादुतया रसनामाहलादयति। नियत चास्यैव दर्शनतृष्णया न परित्यजति भगवान्कैलासनिवा-सव्यसनमुमापति। न खलु साप्रतमाचरति जलशयनदो-हद देवो रथागपाणिर्यदिदममृतरससुरभिसलिलमपहाय लवणरसपरुषपयस्युदन्वति स्वपिति। नून चेद न प्रथम-मासीत्सरो येन प्रलयवराहघोणाभिघातभीता भूतधात्री

वढाने का तुम्हारा यह प्रताप काल है। वढे प्रतापयुक्त राजा तीनो लोकोमें देखनेवाला सिद्ध-आदेश जैसा होता है।"

४२ **शुकनाश** के वात खतम कर लेने पर उपदेशके वचनो द्वारा प्रक्षालित से, उन्मीलित से, स्वच्छ किये से, अभिषिक्त से, चमकाये से, प्रलिप्त से, अलंकृत से, पवित्रित से, उद्भासित से हो (कुमार) प्रसन्न-मन क्षणभर ठहर कर (अपने) भवनमें आ गये।

—पूर्वभाग

३. अच्छोदसर—

४३ देखने मात्र से थकावट दूर हुए (चन्द्रापीड ने उस स्थानको) अवलोकनकर मन में ऐसा सोचा—"अहो किन्नरोके जोडे का मेरा अनुगमन निष्फल होते भी इस सरोवर को देखने से सफल रहा। आज दोनो आखो द्वारा दर्शनीय के देखनेका फल पूरा हुआ है, रमणीयोका अन्त मैंने देख लिया, आह्लादनीयो की सीमा देख ली, मनोहर वस्तुओ की सीमान्त-रेखा अवलोकित कर ली, प्रीति-उत्पादक (वस्तुओ) की चरमताको प्रत्यक्ष कर लिया, दर्शनीय (वस्तुओकी) अन्तिम भूमिका विलोकन कर लिया। इस सरोवर के अमृतरसवाले जलको उत्पन्न करके उत्पादक ब्रह्माने अपनी सृष्टि पुनरुक्त सी कर दी। यह तो अमृत की तरह सारे इन्द्रियो को आह्लादित करता है, अत्यन्त निर्मल होने से आखो में आनन्द पैदा करता है, शीतल होने से स्पर्शसुख देता है। (यह अपने) कमलकी सुगन्धिसे घ्राणको तृप्त करता है, हंसो द्वारा मुखरित होनेसे कानको आनदित करता है, स्वादु होने से जिह्वा को आह्लादित करता है। निश्चय इसीके दर्शनके लोभसे भगवान उमापति कैलास निवासकी आसक्ति नही छोडते। देव चक्रपाणि (विष्णु) ठीक नही करते, जो कि अमृतरस-सुगन्धित जल वाले इसे छोडकर खारे रसके वुरे जलवाले समुद्रमें जलशयन की इच्छा से सोते हैं। निश्चय यह सरोवर पहले नही था,

कलशयोनिपानपरिकलितसकलसलिल सागरमवतीर्णा, अन्यथा यद्यत्रागाधानेकपातालगम्भीराम्भसि ,निमग्ना भवेन्महासरसि किमेकेन महावराहसहस्रैरपि नासादिता भवेत्। नून चास्मादेव सलिललेशमादाय महाप्रलयेषु प्रलयपयोदा' प्रलयदुर्दिनान्धकारितदशदिश प्लावयन्ति भुवनान्तराणि।

४४ मन्ये च यत्सृष्टेर्वाकिसलिलमय ब्रह्माण्डरूपमादौ भुवन-मभूत्तदिद पिण्डीभूय सरोव्यपदेशेनावस्थितम्' इति विचारयन्नेव तस्य शिलाशकलकर्कशवालुकाप्रायम्, विद्या-धरोद्धृतसनालकुमुदकलापार्चितानेकचारुसैकतलिंगम्, अरुन्धतीदत्तार्घपय पर्यस्तरक्तकमलशोभितम्, उपकू-लशिलातलोपविष्टजलमानुषनिषेव्यमाणातपम्, अभ्यर्ण-तया च कैलास्य स्नानागतमातृमण्डलपदपक्तिमुद्राकितम् अवकीर्णभस्मसूचितमग्नोत्थितगणकदम्बकोद्धूलनम्, अवगा-हावतीर्णगणपतिगण्डस्थलगलितमदप्रस्रवणसिक्तम्, अति-प्रमाणपादानुमीयमान-तृषितकात्यायनी-सिंहावतरणमार्गं, दक्षिणतीरमासाद्य तुरगादवततार। अवतीर्य च व्यपनीत च व्यपनीतपर्याणमिन्द्रायुधमकरोत्।

४५ क्षितितललुठितोत्थित च गृहीतकतिपययवसग्रास सरोऽ-वतार्य पीतसलिलमिच्छया स्नात चोत्थाप्यान्यतमस्य समीपवर्तिनस्तरोर्मूलशाखायामपगतखलीन हस्तपाद-श्रृंखलया कनकमय्या चरणौ बद्ध्वा कृपाणकावलूनान्क्षि-प्त्वा चाग्रत कतिचित्सरस्तीरदूर्वाप्रवालकवलान्पुनरपि सलिलमवततार। ततश्च प्रक्षालितकरयुगलश्चातक इव

जो कि प्रलय के वराहके थूथुनके आघात से भयभीत धरती अगस्त्य द्वारा पान के इच्छित खारे जलवाले सागरमें उतरी, नही तो यदि अनेक पाताल गहरे जलवाले अथाह इस महासरोवर में निमग्न होती, तो एक क्या हजारो महावराहो के भी हाथ न आती। और निश्चय इसीसे कुछ जल लेकर महाप्रलय में प्रलय के मेघ प्रलयकी वदलीसे दशो दिशाओ में अन्धेरा फैला भुवनो को बहा देते हैं।

४४ मै समझता हू, सृष्टि से पहले भुवन शुरूमें जलमय ब्रह्माडाकार था, सोही यह सरोवर के व्याज से साकार हो अब स्थित है। इस तरह विचारते हुए ही उस (सरोवर) के पाषाण-खड से कर्कश, अधिक वालुकावाले, विद्याधरो से निकाल कर नालयुक्त कुमुदो से अनेक सुन्दर वालुका लिग अर्चित किये गये, अरुन्धती द्वारा दिये अर्घ जलके चारो और विखरे रक्तकमल द्वारा शोभित, पासके शिलातलपर वैठे जलमानुष द्वारा धूप सेये जाते और कैलास के पास रहने से स्नान के लिए आई मातृकाओकी पदपक्तियो की मुद्रासे अकित, विखरे हुए भस्म द्वारा डूबकर उठे शकर के गणोका भस्म लगाना सूचित करते, नहाने के लिए उतरे गणेश के कपोल से वहती मदधारसे सिचित, अति विशाल पैरो से दुर्गाके प्यासे सिहके उतरनेके मार्गको वतलाते, दाहिने तट पर पहुचकर **चन्द्रापीड़** घोडे से उतरे। उतरकर उन्होने **इन्द्रायुध** अश्व के ऊपरसे जीन हटा लिया।

४५ फिर धरतीपर लोटकर उठे कुछ कौर घास खाये घोडे को सरोवरमें उतारा। जल पी इच्छानुसार नहा लेने के वाद ले जाकर लगाम हटा पासके वृक्षको मूल शाखामें सोनेकी जजीरसे उसके दोनो चरणोको बाध दिया। फिर कटारसे सरोवरके तीरवाले दूवके अकुरके कवलोको काटकर (घोडेके) आगे रख कुमार जलमे उतरे। हाथ-पैर धो चातककी तरह जलमय आहार कर, चक्रवाककी तरह मृणाल-

कृत्वा जलजमयमाहारम्, चक्राह्व इवास्वाद्य मृणालशकलानि, शिशिरांशुरिव कराग्रैः स्पृष्ट्वा कुमुदानि, फणीवाभिनन्द्य जलतरंगवातान्, अनंगशरप्रहारातुर इवोरसि निधाय नलिनीदलोत्तरीयम्, अरण्यगज इव शीकरार्द्रपुष्करोपशोभितकरः सरः सलिलादुदगात्। प्रत्यग्रभग्नशिरैश्च समृणालैर्जलकणिकाञ्चितैः कमलिनीपलाशैर्लतामण्डपपरिक्षिप्ते शिलातले संस्तरमास्तीर्य निधाय शिरसि पिण्डीकृतमुत्तरीयं निषसाद।

४६ मुहूर्तं विश्रान्तश्च तस्य सरस उत्तरतीरप्रदेशे समुच्चरन्तमुन्मुक्तकवलेन निश्चलश्रवणपुटेन तन्मुखीभूतेनग्रोदीवेणेन्द्रायुधेन प्रथममाकर्णितं श्रुतिसुभगं वीणातन्त्रीझंकारमिश्रममानुषगीतशब्दमश्रृणोत्। श्रुत्वा च कुतोऽत्र विगतमर्त्यसंपाते प्रदेशे गीतध्वनेः संभूतिरिति समुपजातकौतुकः कमलिनीदलसंस्तरादुत्थाय तामेव गीतसंपातसूचितां दिशं चक्षुः प्राहिणोत्। अतिदवीयस्तया तु तस्य प्रदेशस्य प्रयत्नव्यापृतलोचनोऽपि विलोकयन्न किंचिद्ददर्श, तमेव केवलमनवरतं शब्दं शुश्राव।

४७ कुतूहलवशाच्च गीतध्वनिप्रभवजिज्ञासया कृतगमनबुद्धिर्दत्तपर्याणमिन्द्रायुधमारुह्य प्रियगीतैः प्रथमप्रस्थितैरप्रार्थितैरपि वनहरिणैरुपदिश्यमानवर्त्मा वकुलैलालवंगलवलीलतालोल-कुसुमसुरभिपरिमलयाऽलिकुलविरुतिमुखरितया तमालनीलया दिङ्नागमदवीथ्येव पश्चिमया वनलेखया निमित्तीकृत्य तं गीतध्वनिमभिप्रतस्थे।

खड्गोको खाकर, चन्द्रमाकी तरह करोसे कमलोको छूकर, सापकी तरह जलतरगकी हवाओका अभिनन्दन कर, कामवाणके प्रहारवाले रोगीकी तरह छातीपर कमलिनीके पत्तेरूपी चादरको रखकर, वनगजकी तरह फुहारोसे भीगे पुष्कर (कमल या सूड) से शोभित हाथवाले हो, सरोवरके जलसे वाहर निकल ऊपर आये। फिर तत्काल टूटे सिरवाले, मृणालयुक्त जलविन्दुओसे भीगे, कमलिनीके पत्रो के लतामडपसे घिरे एक शिलातलपर विछौना विछा सिरके नीचे चादरको गेडुरी वना कर वैठे।

४६ मुहूर्त भर विश्राम किया था, कि उस सरोवरके उत्तर तीरपर उच्चारित, कौल छोड निश्चल कानसे उसी ओर मुह कर सिर उठाये इन्द्रायुध द्वारा पहले सुने गये, श्रुतिमनोहर वीणा-वाद्यकी झकारसे मिश्रित अमानुषिक गीतके शब्दको सुना। सुनकर 'इस निर्जन प्रदेशमें गीत-ध्वनि कैसे सम्भव है?' सोच कौतुकाक्रान्त हो कमलिनी-दलके विस्तरसे उठकर (कुमारने) गीतके आनेसे सूचित दिशाकी ओर आख दौडाई। प्रयत्नसे आख लगानेपर भी, उस स्थानके अति दूर होनेके कारण, राजकुमार कुछ न देख, केवल उसी शब्दको लगातार सुनते रहे।

४७ कुतूहलवश गीतध्वनिसे उत्पन्न जिज्ञासासे प्रेरित हो वहा जानेका ख्याल करके जीन लगा इन्द्रायुधपर आरूढ हो, पहले ही पहुचे गीतप्रेमी वनहरिणो द्वारा विना पूछे भी उपदेशे मार्गसे हो, राजकुमारने मौलसरी-इलायची-लवग-लवलीकी लताओके चचल कुसुमोके सौरभकी गन्धमें, भ्रमरोकी ध्वनिसे मुखरित तमाल जैसी नीली दिग्गजोके मदकी गली जैसी पश्चिमी वनपातीवाले उस गीतध्वनिके सकेत की ओर प्रस्थान किया।

४८ क्रमेण च समुखागतै अच्छनिर्झरजलकणजालजनितजडि-
मभि जर्जरितभूर्जवल्कलै, धूर्जटिवृषरोमन्थफेनबिन्दु-
वाहिभि षण्मुखशिखण्डिशिखाचुम्बिभि, अम्बि-
काकर्णपूरपल्लवोल्लासनदुर्ललितै उत्तरकुरुकामिनी-
कर्णोत्पलप्रेखोलनदोहदिभि, आकम्पितकक्कोलै नमेरु-
कुसुमपासुपातिभि पशुपतिजटाबन्धार्तवासुकिपरिपीत-
शेषैराह्लादिभि पुण्यै कैलासमारुतैरभिनन्दमानो
गत्वा च त प्रदेश ।

४९ सर्वतो मरकतहरितै, हारिहारीतरुतिरमणीयै, भ्रम-
द्भृगराजनखरजर्जरितजरठकुड्मलै, उन्मदकोकिलकुल-
कवलीकृतसहकारकामलाग्रपल्लवै, उन्मदषट्चरण-
चक्रवालवाचालितविकचचूतकलिकै, अचकितचको-
रचुम्बितमरिचाकुरै, चम्पकपरागपुजपिजरकपिजल-
जग्धपिप्पलीफलै फलभरनिकरपीडितदाडिमनीडप्रसूत-
कलविकै, प्रक्रीडितकपिकुलकरतलताडनतरलितताडी-
पुटै, अन्योन्यकुपितकपोतपक्षपालीपालितकुसुमै, कुसमर-
जोराशिसारसारिकाश्रितशिखरै, शुकशतमुखनखशिखर-
शकलितफलस्फीतै, जलधरजललुब्धविप्रलब्धवि-
मुग्धचातकध्वानमुखरिततमालखण्डै, इभकलभको
ल्लूनपल्लववेल्लितलवलीवलयै, आलीयमाननवयौवनम-
त्तपारावतपक्षक्षेपपर्यस्तकुसुमस्तबकै तनुपवनकम्पित-
कोमलकदलीदलवीजितै, अविरलफलनिकरावनतना-
लिकेरवनै, अकठोरपत्रसपुटपूगविटपिपरिवृतै. अनिवा-
रितविहगतुण्डखण्डितखर्जूरजालकै, मदमुखरमयूरीमधुर-
रवविराजितान्तरै, आकलितकलिकाकलापदन्तुरितै,

४८ क्रमश सामनेसे आये स्वच्छ निर्झर जलके कणोंसे उत्पादित जाडे द्वारा भुर्ज वृक्षकी छालोको जर्जरित किये, शकरके वृषभकी जुगालीके फेनविन्दुओको वहन करते, कार्तिकेयके मोरकी शिखाको चूमनेवाले, पार्वतीके करणाभरणके पल्लवके उठानेकी दुश्चेष्टा करनेवाले, **उत्तरकुरु** (द्वीप) की कामिनियोके कर्णकमलके हिलानेके आकाक्षी, कक्कोल-कोशफल को थोडा कपाये, नमेरुके फूलोके रजको गिराते, शकरकी जटाके वन्धनसे पीडित, वासुकि द्वारा पीकर जूठे किये और पवित्र कैलासके वायुसे अभिनदित उस प्रदेशमें राजकुमार गये। (जो कि था)—

४९ चारो ओरसे पन्ने जैसे हरे मनोहर हारिलके स्वरसे रमणीय, घूमते भृगराजके नखसे जर्जरित पुरानी कलियोंवाला, मस्त कोकिलाओ द्वारा कवलित आम्रके कोमल अग्रपल्लवोवाला, घूमते मस्त भ्रमरो द्वारा वाचालित, फूली आमकी मजरियोवाला, न-चकित चकोर द्वारा चुम्वित मिर्चकी अकुरोवाला, चम्पाके केसरो जैसे पीले कपिजल पक्षी द्वारा खाये पीपरके कुलवाला, फलके भारोसे पीडित अनार परके घोसलोमें जन्मे कुलगोवाला, खेलते वानरोके पजे के ताडनसे ताडके पत्रोवाला, परस्पर क्रुद्ध कवूतरोके पखोसे गिरे कुसुमोवाला, पुष्प केसरकी राशिवाला, मैनासे अवलम्वित शिखरोवाला, सैकडो तोतो के मुख-नखके अग्रभाग द्वारा खडित फलोसे समृद्धिवाला मेघके लोभी वचित मुग्ध चातककी ध्वनिसे मुखरित तमाल वनोवाला, गज तरुणो द्वारा खडित पल्लवसे हिलाये लवलीके छल्लोवाला, भीतर प्रविष्ट नवयौवनमें मस्त कवूतरके पखोके फेंकनेसे तितर-वितर हुये पुष्प-गुच्छोवाला, सूक्ष्म पवन से कम्पित कोमल कदलीपत्र द्वारा व्यजन किया जाता, घने फलसमूहोसे झुके नारियलके वनोवाला, कोमल पत्र सहित सुपाडोके वृक्षोसे घिरा, अनिवारित पक्षियोकी चोचसे खडित पिड-खजूरोवाला, भीतर मदसे मुखर मयूरीके मधुर शब्दसे शब्दायमान, प्रकट हुई कलियोसे दन्तुरित, वीच-वीचमें कैलासकी

अन्तरान्तरा कैलासतरगिणीतरगितसिकतिलतलभूमिभागै, वनदेवताकरतलविवह्निभमलक्तकजलजसिक्तमिव किसलयनिकरमतिसुकुमारमुद्वहद्भि, ग्रन्थिपर्णग्रासमुदितचमरीकुलनिषेवितमूलै, कर्पूरागुरुप्रायै, इन्द्रायुधैरिव घनावस्थानै, कुमुदैरिवाद त्तदिनकरप्रवेशशिशिराभ्यन्तरै, दाशरथिबलैरिवाजननीलपरिगतप्रान्तै प्रासादैरिव सपारावतै, भवतापसैरिव सनिहितवेत्रासनै, रुद्रैरिव नागलतावद्धपरिकरै, उदधिकूलपुलिनैरिव निरन्तरोद्भिन्नप्रवाललताकुरजालकै, अभिषेकसलिलैरिव सर्वौषधिकुसुमदलकिसलयसनाथै आलेख्यगृहैरिव बहुवर्णचित्रपत्रशकुनिशतसशोभितै, कुरुभिरिव भारद्वाजद्विजोपसेवितै, महासमरमुखैरिव पुनागसमाकृष्टशिलीमुखै, महाकरिभिरिव प्रलम्बबालपल्लवस्पृष्टभूतलै, अप्रमत्तपार्थिवैरिव पर्यन्तावस्थितबहुगुल्मकै, दशितैरिव भ्रमरसघातकवचावृतकायै, प्रमाणाभिमुखैरिव वानरकरागुलिस्पृष्टगुजै, अवनिपालशयनैरिव सिहपादाकिततरुतलै, आरब्धपचतप क्रियैरिवोच्छिखशिखिमण्डलपरिवृतै, दीक्षितैरिव कृतकृष्णसारविषाणकण्डूयनै, जरद्गृहमुनिभिरिव जटालवालकमण्डलधरै, इन्द्रजालिकैरिव दृष्टिहारिभि पादपै परिवृत **चन्द्रप्रभा**नाम्नस्तस्य सरस पश्चिमे तीरे कैलासपादस्य ज्योत्स्नावदातया प्रभया धवलयतस्त प्रदेश भूतलभागसनिविष्ट भगवत शूलपाणे शून्य सिद्धायतनमपश्यत्।

नदी द्वारा तरगित वालुकामय तलयुक्त भूभागवाला, वनदेवताके करतलो जैसे अलताके जलाशसे मानो सिक्त, किसलय-समूहको अति कोमलतासे ऊपर उठाये हुये, गाठ-पत्ताके ग्राससे मुदित चमरियो द्वारा सेवित अधोभागवाला, प्राय कपूर और अगरवाला, इन्द्रायुधोकी तरह घनमें रहनेवाला, कुमुदोकी तरह सूर्यके प्रवेशको न दे भीतरसे शीतल, रामकी सेनाकी तरह अजन-नील-नल द्वारा घिरे छोरवाला, प्रासादोकी तरह पारावत (कवूतर) वाला, शिवके तपस्वियोकी तरह पासमें वेत्र (वेंत) के आसनवाला या असन-प्रिय, रुद्रोकी तरह नाग लता (या नागरूपी लता) स वावे परिकरवाला, समुद्रतटके पुलिनोकी तरह सदा प्रकट मूगेके लताकुरके जालवाला, अभिषेकके जलकी तरह सभी औषधि-कुसुम-फलसे युक्त, चित्रशालाकी तरह वहुत रगवाला, चित्र पत्र पक्षी (शतपत्र) से शोभित, कुरुओकी तरह भारद्वाज द्विज (पक्षी या कृप) से सेवित, महासमरके आरभकी तरह पुन्नाग (वृक्ष या गज) द्वारा आकृष्ट भ्रमरोवाला, महागजोकी तरह लटकते नवपल्लवो द्वारा छुये जाते भूतलवाला, सावधान राजाओकी तरह सीमान्तपर अवस्थित वहुत सी सैनिक छावनियोवाला, वर्मधारियोकी तरह भ्रमरसमूहरूपी कवचसे ढके शरीरवाला, तोलनेके लगोकी तरह वानरके हाथोकी अगुलियोसे छुई गुजावाला, राजाके शयनकी तरह सिहके पैरोसे अकित तरुतलवाला, पचाग्नि तपस्या आरम्भ कियोकी तरह उठती शिखा-वाला, शिखियो (अग्नि या मोर) के समूहसे घिरा, व्रतमें दीक्षितो को तरह हरिणकी सीगसे खुजलाहट किये, वूढे गृहमुनियोकी तरह जटा-कमण्डल (या जटा-समूह) -धारी, इन्द्रजालिको (जादूगरो) की तरह नजर खीचने (या वन्द करने) वाला, वृक्षोसे घिरा, चन्द्र-प्रभ नामक उस सरोवरके पश्चिम तीरपर कैलासके चरणकी प्रभा द्वारा सफेद किया जाता। (राजकुमारने) उस प्रदेशके भूभागमें अवस्थित भगवान् शकरके शून्य सिद्धायतन (देवालय) को देखा।

(४) महाश्वेता—

५०　तच्च पवनोद्धतैरितस्ततः समापतद्भिः केतकीगर्भधूलिभिर्धवलीक्रियमाणकायः पशुपतिदर्शनहेतोर्बलादिव प्रतिपाद्यमानो भस्मव्रतमायतनप्रवेशपुण्यैरिव परिगृह्यमाणः प्रविश्याद्राक्षीच्चतुःस्तम्भस्फटिकमण्डपिकाप्रतिष्ठितम्, अचिरोद्भूतैरार्द्रार्द्रैर्दलशिखरगलज्जलबिन्दुभिरूर्ध्वविपाटितचन्द्रबिम्बदलैरिव निजाट्टहासावयवैरिव शेषफणशकलैरिव पाञ्चजन्यसहोदरैरिव क्षीरोदहृदयाकारैरुपपादितमौक्तिकमुकुटविभ्रमैः शुचिभिर्मन्दाकिनीपुण्डरीकैः कृतार्चनम्, अमलमुक्ताशिलाघटितलिंगम्, अशेषत्रिभुवनवन्दितचरणम्, चराचरगुरुम्, चतुर्मुखम्, भगवन्तं त्र्यम्बकम्।

५१　तस्य च दक्षिणां मूर्तिमाश्रित्याभिमुखीमासीनाम्, उपरचितब्रह्मासनाम्, अतिविस्तारिसर्वदिङ्मुखप्लावकेन प्रलयविप्लुतक्षीरपयोधिपूरपाण्डुरेणातिदीर्घकालसञ्चितेन तपोराशिनेव सर्वतो विसर्पता पादपान्तैस्त्रिस्रोतोजलनिभेन पिण्डीभूय वहतेव देहप्रभावितानेन सगिरिकाननं दन्तमयमिव तं प्रदेशं, अन्यथैव धवलयन्ती कैलासगिरिम्, अन्तर्द्रष्टुरपि लोचनपथप्रविष्टेन श्वेतिमानमिव मनो नयन्तीम्, अतिधवलप्रभापरिगतदेहतया स्फटिकगृहतामिव दुग्धसलिलमग्नामिव विमलचेलांशुकान्तरितामिव आदर्शतलसंक्रान्तामिव शरदभ्रपटलतिरस्कृतामिव अपरिस्फुटविभाव्यमानावयवाम्, पञ्चमहाभूतमयमपहाय द्रव्यात्मकमंगनिष्पादनोपकरण-

. शिवपूजती महाश्वेता

हवासे उडाये इधर-उधरसे गिरते केतकीके गर्भ-केसरोंसे सफेद श्वेत शरीर बने पशुपतिके दर्शनार्थ, मानो हठात् भस्म व्रतको स्वीकृत किये, देवालय प्रवेशके पुण्योंसे मानो ग्रहण किये से हो राज-कुमारने प्रवेश करके भगवान् शकर को देखा, जो चार खम्भो की स्फटिक मडपीके तलपर प्रतिष्ठित, हाल ही में उखाडे भीगे-भीगे पत्तोके छोरसे गिरते जल-विन्दुओवाले, ऊपर फाडे चन्द्रविम्वके दलो जैसे, अपने अट्टहासके अवयवो जैसे, शेषके फणके खडो जैसे, पाचजन्य शखके सहोदरो जैसे, क्षीरसागरके हृदयके रूपवाले, मोतीके मुकुटकी शोभा किये पवित्र गगाके पुडरीको द्वारा अर्चित, निर्मल मुक्ताशिलासे गढे लिंग, सकल त्रिभुवन द्वारा वदित-चरण, चराचरके गुरु, चार मुखवाले थे।

१ और मुखलिंगकी दाहिनीवाली मूर्तिकी ओर सामने बैठी कन्या देखी, जो थी ब्रह्मासन-धारिणी, वहुत वडी सारी दिशाओको वहानेवाले [प्रलयमें फैले क्षीरसागरकी धारा जैसी पाण्डुवर्ण, अति दीर्घकालसे सचित तपकी राशि जैसी, सव ओरसे चलते वृक्षान्तरो द्वारा गगाके जल जैसी, पिण्ड हुई वहती सी देहकी प्रभाके वितान द्वारा गिरि-वन-सहित उस प्रदेशको दन्तमय सी करती, कैलासगिरिको दूसरी ही तरह सफेद करती, दर्शकके भीतर लोचन मार्ग द्वारा प्रविष्ट होनेसे मनको सफेद सी करती, अत्यत श्वेत प्रभा से व्याप्त-देह होनेसे स्फटिक-गृहमें विद्यमान सी, दुग्वजलमें डूवी सी, निर्मल वस्त्र में ढकी सी, दर्पणके तलमें लगी सी, शरदके मेव-समूहसे ढकी सी, अस्पष्ट दीखते अगोवाली थी । और थी पाचभौतिक द्रव्यरूपसे नही वल्कि अग्र निर्माणके साधनसमूह के तौर पर केवल श्वेत गुणसे उत्पन्न की गई, यज्ञकी क्रियाकी तरह, उद्धत गणोंके केश पकडनेके भयसे शकरकी सेवा करती रतिकी तरह, कामदेवकी देहके लिये शकरको

कलापधवलगुणेनेव केवलेनोत्पादिताम्, अध्वरक्रियामिवोद्धतगणकचग्रहभयोपसेवितत्र्यम्बकाम्, रतिमिव मदनदेहनिमित्त हरप्रसादनार्थमागृहीतहराराधनाम्, क्षीरोदधिदेवतामिव सहवासपरिचितहरचन्द्रलेखोत्कण्ठाम्, इन्दुमूर्तिमिव स्वर्भानुभयकृतत्रिनयनशरणगमनाम्, ऐरावतदेहच्छविमिव गजाजिनावगुण्ठनोत्कण्ठितशितिकण्ठचिन्तितोपनताम्, पशुपतिदक्षिणमुखहासच्छविमिव बहिरागत्य कृतावस्थानाम्, शरीरिणीमिव रुद्रोद्धूलनभूतिम्, आविर्भूता ज्योत्स्नामिव हरकण्ठान्धकारविघट्टनोद्यमप्राप्ताम्, गौरीमन शुद्धिमिव कृतदेहपरिग्रहाम्, कार्तिकेयकौमारव्रतक्रियामिव मूर्तिमतीम्, गिरिशवृषभदेहद्युतिमिव पृथगवस्थिताम्, आयतनतरुकुसुमसमृद्धिमिव शंकराभ्यर्चनाय स्वयमुद्यताम्, पितामहतप सिद्धिमिव महीतलमवतीर्णाम्, आदियुगप्रजापतिकीर्तिमिव सप्तलोकभ्रमणखेदविश्रान्ताम्, त्रयीमिव कलियुगध्वस्तधर्मशोकगृहीतवनवासाम्, आगामिकृतयुगबीजकलामिव प्रमदारुपेणावस्थिताम्, देहवतीमिव जनध्यानसपदम्, अमरगजवीथीमिवाभ्रगगागमवेगपतिताम्, कैलासश्रियमिव दशमुखोन्मूलनक्षोभनिपतिताम्, श्वेतद्वीपलक्ष्मीवान्यद्वीपावलोकनकुतूहलागताम् काशकुसुमविकाशकान्तिमिव शरत्समयमुदीक्षमाणाम्, शेषशरीरच्छायामिव रसातलमपहाय निर्गताम्, मुशलायुधदेहप्रभामिव मधुमदविघूर्णनायासविगलिताम्, शुक्लपक्षपरपरामिव पुजीकृताम्, सर्वहंसैरिव धवलतया कृतसविभागाम्, धर्महृदयादिव विनिर्गताम्, शखादिवोत्कीर्णाम्, मुक्ताफलादिवाकृष्टाम्,

प्रसन्न करनेके अर्थ हरकी आराधना पकडे हुई, क्षीरसागरकी अधिष्ठात्री देवताकी तरह साथ रहनेमे परिचित शकरकी चन्द्रलेखामें उत्कण्ठावाली चन्द्रकी मूर्तिसी, सूर्यके भयसे त्रिलोचनके शरणमें पहुची, ऐरावतके देहके चर्मकी तरह गज-चर्मके अवगुण्ठनसे उत्कठित शकरके चिन्तनसे पास आई, पशुपतिके दाहिने मुखके हासकी शोभाकी तरह वाहर आकर अवस्थित शकरके लगानेकी साकार विभूति सी, शकरके कठकी कालिमाके हटानेके प्रयत्नसे आई प्रकट चादनी सी, गौरीके मनकी शुद्धि मानो देह धारण किये हुई सी, कार्तिकेयके कौमार-व्रतकी मूर्तिमती क्रिया सी, गिरीशके वृषभके देहका प्रकाश मानो अलग अवस्थित सा, देवालयके चैत्यके वृक्षोके कुसुमकी समृद्धि मानो शकरकी अर्चनाके लिये स्वय उद्यत हुई सी, ब्रह्माकी तप सिद्धि मानो महीतलपर उतरी सी, सतयुगके प्रजापति (ब्रह्मा) की कीर्ति मानो सातो लोकोके भ्रमणके खेदसे विश्राम करती सी, तीनो वेद मानो कलियुग द्वारा ध्वस्त धर्मके शोकसे वनवास धारण किये मे, आनेवाले सतयुगका वीजाश मानो स्त्रीरूपमें अवस्थित सा, मानो मुनिजनो को देह ध्यानसम्पदा, देवताओके गजोकी वीथि (गली) सी आकाशगगाके आते वेगमें पडी सी, रावणके उखाडनेके क्षोभसे गिरी कैलास की शोभा सी, अन्य द्वीपोके देखनेकी कुतूहलसे आई श्वेतद्वीपकी लक्ष्मी सी, काशके फूलके प्रकाशकी शोभावाले शरदकाल को देखती सी, शेषके शरीरकी छाया सी रसातलको छोडकर निकल आई, वलरामके देहकी प्रभाकी तरह मद्यके नशे द्वारा शरीर घुमानेके खेदसे गिरी सी, शुक्लपक्षकी पाती मानो पुजीभूत सी, सफेदीसे सारे हसोकी तरह वाटती सी, धर्मके हृदयसे मानो निकली सी, शखसे मानो उत्कीर्ण सी, मोतीसे मानो आकर्पित सी, मृणालसे मानो वनाये अगोवाली सी, धाराओंसे मानो धुली सी, रूपेके रससे मानो घॅसी सी, चन्द्रमण्डलसे

मृणालैरिव विरचितावयवाम्, दन्तदलैरिव घटिताम्, इन्दुकरकूर्चकैरिवाक्षालिताम्, वर्णसुधाच्छटाभिरिवाच्छुरिताम्, अमृतफेनपिण्डैरिव पाण्डुरीकृताम्, पारदरसधाराभिरिव धौताम्, रजतद्रवेणेव निर्मृष्टाम्, चन्द्रमण्डलादिवोत्कीर्णाम्, कुटजकुन्दसिन्दुवारकुसुमच्छविभिरिवोल्लासिताम्, इयत्तामिव धवलिम्न, स्कन्धावलम्बिनीभिरुदयतटगतादर्कबिम्बादुद्धृत्य बालरश्मिप्रभाभिरिव निर्मिताभिरुन्मिषत्तडित्तरलतेजस्ताम्राभिरचिरस्नानावस्थितविरलवारिकणतया प्रणामलग्नपशुपतिचरणभस्मचूर्णाभिरिव जटाभिरुद्भासितशिरोभागाम्, जटापाशग्रथितामुत्तमागेन मणिमय नामाकमीश्वरचरणद्वयमुद्वहन्तीम् ।

५२ रविरथतुरगखुरक्षुण्णनक्षत्रक्षोदविशदेन भस्मना कृतललाटपट्टिकाम्, शिखरशिलाश्लिष्टशशाककलामिव शैलराजमेखलाम्, अतुलभक्तिप्रसाधितया लक्ष्यीकृतलिंगयापरयेव पुण्डरीकमालया दृष्ट्या सभावयन्ती भूतनाथम्, अनवरतगीतपरिस्फुरिताधरपुटवशादतिशुचिभि शुद्धहृदयमयूखैरिव गीतगुणैरिव स्वैरिव स्तुतिवर्णैरिव मूर्तिमद्भिर्मुखान्निष्पतद्भिर्दशनाशुभि पुनरपि स्नपयन्ती गौरीनाथम्, अतिविमलैश्च वेदार्थैरिव साक्षात्पितामहमुखादाकृष्टैर्गायित्रीवर्णैरिव ग्रथनस्फीततामुपगतैर्नारायणनाभिपुण्डरीकबीजैरिवोद्भूतै, सप्तर्षिभिरिव करस्पर्शपूतमात्मानमिच्छद्भिस्तारकारूपेणागतैरामलकीफस्थूलैर्मुक्ताफलैरुपचितेनाक्षवलयेनाधिष्ठितकण्ठभागाम्, परिवेषपरिगतचन्द्रमण्डलामिव पौर्णमासीनिशाम्, अधोमुखहरशिर कपालमण्डलाकारेण मोक्षद्वारनियुक्तकलशकान्तिना स्तनयुगलेनैकहसमिथुनसनाथामिव **गंगाम्**, गौरीसिंहसटामयेनेव चामररुचिराकृतिना स्तनयुगलमध्यनिवद्धग्रन्थिना कल्पतरुलतावल्कलेन कृतोत्तरीयकृत्याम् ।

मानो ऊपर खीचो सी, कुटज-कुन्द-सिन्धुवारके फूलोकी छवियोंसे मानो उल्लासित सी, धवलताकी सीमा सी, कन्धेपर लटकते उदयाचलके तटपर पहुचे सूर्यविम्वसे निकालकर वालकिरणोकी प्रभाओंसे मानो निर्मित सी, उठती विजलीके तरल तेज सी, ताम्रवर्ण वालियो द्वारा तुरन्त स्नानके लिये अवस्थित विरल जलकणोके होनेसे प्रणाममें लगे शकरके चरणके भस्मचूर्णवाली सी, जटाओंसे प्रकाशमान शिरद्वारा जटापाशमें गुंथे मणिमय नामाक वाले शकरके दोनो चरणोको वहन करती सी।

५२ और(वह)थी, सूर्यके रक्तके तुरगो के खुरोंसे चूर्ण किये तारोकी धूलि जैसे निर्मल भस्म द्वारा ललाटपट्टिका वनाईसी, शिखरकी शिलामें लगे चन्द्रकला जैसी हिमालयकी मेखलासी, अतुल भक्तिसे साधित लक्षित लिंगवालीसी, पुण्डरीकोंकी मालावाली दूसरी दृष्टिसे मानो शकरकी नभावना करती सी, निरन्तर गाये जाते गीतसे हिलते अधरोके वश अति पवित्र शुद्ध हृदयकी किरणो सी, गीतके गुणो सी, स्वरो सी, स्तुतिके अक्षरो सी, मुखसे निकलते मूर्तिमान् दातकी किरणो द्वारा गौरीनाथको फिरसे नहलाती सी और अति निर्मल वेदके अर्थो द्वारा मानो साक्षात् व्रह्माके मुखसे आकर्षित गायत्रीके अक्षरो के गूथनेसे पुष्ट हुई सी, नारायणके नाभि-कमलके वीजो द्वारा मानो उत्पादित उद्धत सी, सप्तर्षियों द्वारा मानो हाथके स्पर्शसे स्वय पवित्र हुये तारोके रूपसे आये आवलेके फलके वरावर स्थूल मोतियोंसे वने रुद्राक्षकी माला धारे कठभागवाली, मडलसे घिरे चद्रमडलवाली पूर्णिमाकी रात सी, अधोमुख शिवके सिरके कपालके मगलके आकारवाले मोक्षद्वारपर रक्खे कलशकी शोभासे युक्त दोनो स्तनो द्वारा एक हस-जोडीसे युक्त गगा सी, गौरीके सिहके केसरोंसे वनी मानो चवर के चिर आकारवाली युगल-स्तन के वीच वधी ग्रथिवाली, कल्पतरु लताके वल्कलकी उत्तरीय (चादर) वाली।

५३. अयुग्मलोचनसकाशात्प्रसादलब्धेन चूडामणिचन्द्रमयूखजालेनेव मण्डलीकृतेन ब्रह्मसूत्रेण पवित्रीकृतकायाम् आप्रपदीनेन च स्वभावसितेनापि ब्रह्मासनबन्धोत्तानचरणचलप्रभापरिष्वगाल्लोहितायमानेन दुकूलपटेन प्रावृतनितम्बाम्, यौवनेनापि स्वकालोपसर्पिणा निर्विकारेण विनीतेन शिष्येणेवोपास्यमानाम्, लावण्येनापि कृतपुण्येनेव स्वच्छात्मना परिगृहीताम्, रूपेणापि रुचिरलोचनेन विगतचापलेनायतनमृगेणेव सेविताम्, उत्सगगता च स्वसुतामिव सूक्ष्मदन्तखण्डिकागुलीयकापूरितागुलिना त्रिपुण्ड्रकावशिष्टभस्मपाण्डुरेण प्रकोष्ठबद्धशखखण्डकेन नखमयूखदन्तुरतया गृहीतदन्तकोणेनेव दन्तमयी दक्षिणकरेण वीणामास्फालयन्तीम्, प्रत्यक्षामिव गन्धर्वविद्या मणिमण्डपिकास्तम्भलग्नाभिरात्मानुरूपाभि सहचरीभिरिव सवीणाभिर्विलासवतीभि प्रतिमाभिरुपेताम्, स्नपनार्द्रलिंगसक्रान्तप्रतिबिम्बतयातिप्रबलभक्त्याराधितस्य हृदयमिव प्रविष्टा हरस्य।

५४ हारलतयेव प्राप्तकण्ठयोगया, ग्रहपक्त्येव ध्रुवप्रतिबद्धया, क्रुद्धयेव रागरक्तमुखवर्णया, मत्तयेव घूर्णितमन्द्रतारयोन्मत्तयेवानेककृततालया, मीमासयेवानेकभावनानुविद्धया, गीत्या देव विरूपाक्षमुपवर्णयन्तीम्, अतिमधुरगीतावकृष्टैर्ध्यानमिवाभ्यस्यद्भिर्निश्चलकर्णपुटैर्मृगवराहवानरवारणशरभसिंहप्रभृतिभिर्वनचरैरावद्धमण्डलैराकर्ण्यमानगीतानुविद्धविपचीनिर्घोषाम्, अमरापगामिव नभसोऽवतीर्णाम्, दीक्षितवाचमिवाप्राकृताम्, त्रिपुरारिशरशलाकामिव तपोमयीम्, पीतामृतामिव

५३ और थी त्रिलोचनके पाससे प्रसादके तौरपर मिले चूडामणिके चन्द्रके किरण-समूहो से घेरे यज्ञोपवीत द्वारा मानो पवित्रित-कायावाली सी, और पैर तक पहुचे स्वाभाविक, सफेद भी पद्मासन वाधनेसे उत्तान चरणके तलवोकी प्रभाके ससर्गसे थोड़ा लाल हुये दुकूलसे ढँके नितम्ब-वाली, अपने कालमें पास आये यौवन द्वारा भी निर्विकार विनम्र शिष्यकी तरह उपासना की जाती सी, लावण्यसे भी मानो पुण्यात्मा स्वच्छ आत्मासे स्वीकृत हुई सी, रूप द्वारा भी रुचिर लोचन-रूपी अचपल देहमृग द्वारा मानो सेवित सी। और थी गोदमें वैठी अपनी पुत्री सी सूक्ष्म हाथीदातकी टुकडियोकी अगूठियोंसे भरी अगुलियो द्वारा, त्रिपुण्डके वचे भस्मसे सफेद कलाईमें वंधे शखखडयुक्त नखकी किरणोंके उछलनेसे दन्तके कोनेको पकडे दाहिने हाथ द्वारा दन्तुमयी वीणाको वजाती, मानो, प्रत्यक्ष गन्धर्वविद्याकी मडापकाके स्तम्भमें लग्न मणिसी, अपने अनुरूप सहचरी वीणा सहित सौन्दर्ययुक्त प्रतिमाओंसे युक्त सी थी।

५४ वह थी अभिषेक द्वारा भीगे लिंगमें लग्न प्रतिविम्व होनेसे मानो अति प्रवल भक्ति द्वारा आराधित शकरके हृदयमें प्रविष्ट हुई सी। वह गीतिसे शकरको स्तुति कर रही थी, जो गीति हारलता द्वारा मानो कठ-सयोग पाई सी, ग्रहोकी पक्तियो द्वारा मानो ध्रुव (गीत का ध्रुव या ध्रुवतारा)से प्रतिवद्ध क्रुद्धा की तरह मानो राग (रक्त) से युक्त वर्णवाली, मत्ता की तरह चक्कर खाके मन्द्र-तार (स्वरो) से उन्मत्ता सी, अनेक ताल करती। **मीमांसा** (विचारणा) सी अनेक विधियो से सूत्रित। वह कन्या अति मधुर गीतसे आकर्षित ध्यान-अभ्यास करते निश्चय कानोवाले मानो मृग-वराह-वानर-गज-शरभ-सिह आदि मण्डल वाधे वनचरो द्वारा सुने जाते गीतोंसे सवद्ध वीणाका निर्घोष करती, मानो आकाशसे उतरी गगासी, यज्ञकर्ताकी अप्राकृत (न प्राकृत, दिव्य) वाणीसी, त्रिपुरारिके शरकी शलाकासी तपोमयी, अमृत पीनेसे तृष्णा (प्यास या लोभ) से रहित, शम्भुके

विगततृष्णाम्, ईशानशिर शशिकलामिवानुपजातरागाम्, अमथितोदधिजलसपदमिवान्त प्रसन्नाम्, असमस्तपदवृत्तिमिवाद्वद्वाम्, बौद्धबुद्धिमिव निरालम्बनाम्, वैदेहीमिव प्राप्तज्योति प्रवेशाम्, द्यूतकलाकुशलामिव वशीकृताक्षहृदयाम्, महीमिव जलभृतदेहाम्, हिमसमयदिनमुखलक्ष्मीमिव परिगृहीतभास्करातपाम्, आर्यामिवोपास्तयतिगणोचितमात्राम्, आलिखितामिवाचलावस्थानाम्, अशुमयीमिव तनुच्छायानुलिप्तभूतलाम्, निर्ममाम्, निरहकाराम्, निर्मत्सराम्, अमानुषाकृतिम्, दिव्यत्वादपरिज्ञायमानवय परिमाणामप्यष्टादशवर्षदेशीयामिवोप - लक्ष्यमाणाम्, प्रतिपन्नपाशुपतव्रता कन्यका ददर्श।

५५ ततोऽवतीर्य तरुशाखाया बद्ध्वा तुरगमुपसृत्य भगवते भक्त्या प्रणम्य त्रिलोचनाय तामेव दिव्ययोषितमनिमिषपक्ष्मणा निश्चलनिबद्धलक्ष्येण चक्षुषा पुनर्निरूपयामास। उदपादि चास्य रूपसपदा कान्त्या प्रशान्त्या चाविर्भूतविस्मयस्य मनसि—

५६ "अहो जगति जन्तूनामसमर्थितोपनतान्यापतन्ति वृत्तान्तान्तराणि। तथाहि। मया मृगयाया यदृच्छया निरर्थकमनुबघ्नता तुरगमुखमिथुनमयमतिमनोहरो मानवानामगम्यो दिव्यजनसचरणोचित प्रदेशो वीक्षित । अत्र च सलिलमन्वेषमाणेन हृदयहारि सिद्धजनोपसृष्टजल सरो दृष्टम् । तत्तीरलेखाविश्रान्तेन चामानुप गीतमाकर्णितम्। तच्चानुसरता मानुषदुर्लभदर्शना दिव्यकन्यकेयमालोकिता। न हि मे सशीतिरस्या दिव्यता प्रति। आकृतिरेवानुमापयत्यमानुपताम् । कुतश्च मर्त्यलोके

शिरकी चन्द्रकला सी राग (या रक्तिमा) विना, विना मथे समुद्रजल की सपदा सी भीतर स्वच्छ, समासरहित पदकी वृत्ति सी द्वन्द्व समास (या झगडा)से रहित, वौद्ध (योगाचार दर्शन) के ज्ञान सी आलवरहित, वैदेही सी ज्योति (अग्नि या ज्ञान) में प्रवेश-प्राप्त, द्यूतकलामें कुशलता सी, वशमें करे अक्ष (इन्द्रिय या पापाण) के सारोवाली, मही सी जल-वारित देहवाली, शीतकालके प्रात की शोभा सी, भास्करके आलोक (या तपको) स्वीकृत किये, आर्या (छन्द) की तरह यति और गणके अनुकूल मात्राको लिये, चित्रित सी अचल स्थितिवाली, तेजोमयी सी शरीरकी कातिसे भूतलको व्याप्त किये, ममतारहित, अहकाररहित, मत्सररहित, दिव्य आकारवाली, दिव्य होनेसे आयुका परिमाण न वतानेवाली भी अठारह वर्पकी सी दिखाई देती, पाशुपत व्रत धारिणी थी।

५५ तव राजकुमारने उतरकर घोडेको वृक्षकी शाखामें वाध कर भगवान् त्रिलोचनको भक्तिसे प्रणाम करके उसी दिव्य स्त्रीको निश्चल लक्ष्य वधे अपलक नेत्रसे फिर अवलोकन किया। और उसकी रूपशोभा, काति और प्रशातिसे चकित विस्मित कुमारके मनमें हुआ—

५६ "अहो! ससारमें प्राणियोके विना सोचे दूसरे वृत्तात आ टपकते हैं, जैसे मैंने शिकारमें यो ही व्यर्थ किन्नर जोड़ीका अनुगमन करते इस अत्यन्त मनोहर, मानवोके लिये अगम्य, दिव्य जनोके गमनागमन-वाले प्रदेशको देखा। यहा पानीकी खोज करते मनोहर सिद्धजनोसे सेवित जलवाले सरोवरको देखा, और उसके तीरके पास विश्राम करते दिव्य गीतको सुना, और उसका अनुसरण करते मनुष्योके लिये दुर्लभ-दर्शन इस दिव्य कन्याको देखा। इसके दिव्य होनेमें मुझे सन्देह नहीं। आकार ही इसके अमानुषी होनेका अनुमान कराता है। मृत्युलोकमें इस प्रकारकी विशेप संगीत ध्वनि कहां संभव है।

सभूतिरेवविधाना गान्धर्वध्वनिविशेषणाम् । तद्यदि मे सहसा दर्शनपथान्नापयाति, नारोहति वा कैलास-शिखरम्, नोत्पतति वा गगनतलम्, तत "का त्वम्, किमभिधाना वा किमर्थं वा प्रथमे वयसि प्रतिपन्ना व्रतम्," इति सर्वमेवैतदेनामुपसृत्य पृच्छामि। अतिमहान-यमवकाश आश्चर्याणाम्, इत्यवधार्य तस्यामेव स्फटि-कमण्डपिकायामन्यतम स्तम्भमाश्रित्य समुपविष्टो गीतसमाप्त्यवसर प्रतीक्षमाणस्तस्थौ ।

—पूर्वभागे

(५) प्रथमः परिचयः—

५७ 'अस्या परिभूतान्यकुसुमामोदो नन्वय परिमल' इति मनसा निश्चित्य त तपोधनयुवानमीक्षमाणाहमचिन्तयम् —"अहो रूपातिशयनिष्पादनोपकरणकोशस्याक्षीणता विधातु, यत्त्रिभुवनाद्भुतरूपसभार भगवन्त कुसुमा-युधमुत्पाद्य तदाकारातिरिक्तरूपातिशयराशिरयमपरो मुनिर्मायामयो मकरकेतुरुत्पादित । मन्ये च सकल-जगन्नयनानन्दकर शशिबिम्ब विरचयता लक्ष्मीलीला-वासभवनानि कमलानि सृजता ब्रह्मणैतदाननाकारक-रणकौशलाभ्यास एव कृत, अन्यथा किमिव हि सदृश-वस्तुविरचनाया कारणम् । अलीक चेद यथा किल सकला कला कलावतो वहुलपक्षे क्षीयमाणस्य सुषुम्णानाम्ना रश्मिना रविरापिवतीति, ता खल्वस्य गभस्तय समस्ता वपुरिदमाविशन्तीति । कुतोऽन्यथा रूपापहारिणि क्लेशवहुले तपसि वर्तमानस्येद लावण्यम्" इति चिन्तयन्तीमेव मामविचारितगुणदोषविशेषो रूपैकपक्षपाती नवयौवनसुलभ कुसुमायुध कुसुमसमयमद इव मधुकरी परवशामकरोदुच्छ्वसितं सह ।

सो यदि, यह मेरी आखोंसे यदि एकाएक दूर न जाये या कैलास शिखर पर नही चढ़,जाये, या आकाशमें न उड जाय, तो "तू कौन है, क्या नामवाली है, किसलिये तरुणाईमें व्रत धारिणी हुई" यह सब पास जाकर पूछूगा। यह आश्चर्योंका वहुत ही वडा स्थान है।" यह सोच उसी स्फटिक मडपिकामें एक स्तम्भ का सहारा ले वैठकर राजकुमार गीतकी समाप्ति की प्रतीक्षा करने लगे।

—पूर्वभाग

५. परिचय—

५७ इसकी सुगन्धि तो दूसरे फूलोंकी गन्धको तिरस्कृत करनेवाली है, यह मनमें निश्चय करके उस युवा तपस्वीको देखती मैंने सोचा— "अहो! इस तरहके अतिशय सौंदर्यवाले रूपके उत्पादनसे ब्रह्माका साधन-कोश अक्षय है, जो कि त्रिभुवनके अद्भुत रूपवाले भगवान् कामदेवको उत्पन्न करके, उसके आकारसे भिन्न अति सौंदर्य-राशि इस दूसरे मायामय कामदेव जैसे मुनिको उत्पन्न किया। मैं समझती हूं, सारे जगत्के नयनोको आनंदकर चन्द्रविम्वकी रचना करते लक्ष्मीके विलासभवनरूपी कमलोको सृजन करते, ब्रह्माने इसके मुखकी आकृति वनानेकी चतुराईका अभ्यास किया, नही तो एक समान वस्तु वनानेका क्या कारण था? कृष्णपक्षमें क्षीण होते चन्द्रमाकी सारी कलाओंको सुषुम्णा नामक रश्मि द्वारा सूर्य पीता है, यह कथन झूठा है। इसकी वह सारी किरणें इसके इस शरीरमें सम्मिलित हैं। नहीं तो सौंदर्यनाशक वहुत कष्टकरी तपस्यामें विद्यमान इसका यह सौंदर्य कैसे (टिका) है। यह सोचती गुण-दोषके विशेष विचार विना केवल सौंदर्य-पक्षपाती नव-यौवन सुलभ कामदेवने (मुझे) वसंतके मदकी तरह मधुकरीको, निःश्वासोंके साथ परवश कर दिया। थोडी आकुंचित पलकोवाले कुटिल, अधिक चचल पुतलीके काले गर्भयुक्त अपलक दाहिने नेत्र द्वारा लालसासे पीती सी मैं कुछ मागने सी लगी— 'मैं तेरे आधीन हू' यह कहती, सामने हृदयको अर्पित करती सी,

विस्मृतनिमेषेण किंचिदामुकुलितपक्ष्मणा जिह्मित-तरलतरतारशारोदरेण दक्षिणेन चक्षुषा सस्पृहमापिबन्तीव, किमपि याचमानेव, 'त्वदायत्तास्मि' इति वदन्तीव, अभिमुख हृदयमर्पयन्तीव, सर्वात्मनानुप्रविशन्तीव, तन्मयतामिव गन्तुमीहमाना, 'मनोभवाभिभूता त्रायस्व' इति शरणमिवोपयान्ती, 'देहि हृदयेऽवकाशम्' इत्यर्थितामिव दर्शयन्ती 'हाहा, किमिदमसाप्रतमतिह्रेपणमकुलकुमारीजनोचितमिद मया प्रस्तुतम्' इति जानानाप्यप्रभवन्ती करणानाम्, स्तम्भितेव, लिखितेव, उत्कीर्णेव, सयतेव, मूर्च्छितेव, केनापि विधृतेव, निस्पन्दसकलावयवा तत्कालाविर्भूतेनावष्टम्भेन, अकथितशिक्षितेनानाख्येयेन, स्वसवेद्येन केवल न विभाव्यते किं तद्रूपसपदा, किं मनसा, किं मनसिजेन, किमभिनवयौवनेन, किमनुरागेणेवोपदिश्यमान, किमन्येनैव वा केनापि प्रकारेण, अह न जानामि कथकथमिति तमतिचिर व्यलोकयम् ।

५८ उत्क्षिप्य नीयमानेव तत्समीपमिन्द्रियै, पुरस्तादाकृष्यमाणेव हृदयेन, पृष्टत प्रेर्यमाणेव पुष्पधन्वना कथमपि मुक्तप्रयत्नमात्मानमधारयम् । अनन्तर च मेऽन्तर्मदनेनावकाशमिव दातुमाहितसताना निरीयु श्वासमरुत । साभिलाष हृदयमाख्यातुकाममिव स्फुरितमुखमभूत्कुचयुगलम् । खेदलवलेखाक्षालितेवागलज्जा । मकरध्वजनिशितशरनिपातत्रस्तेवाकम्पत गात्रयष्टि । तद्रूपातिशय द्रष्टुमिव कुतूहलादालिंगनलालसेभ्योऽगेभ्यो निरगाद्रोमाचजालकम् । अशेपत स्वेदाम्भसा धौतश्चरणयुगलादिव हृदयमविशद्राग ।

सब प्रकारसे प्रवेश करती सी, तन्मयताको मानो जान पानेको 'काम देवसे पराजित मेरी रक्षा करो', यह कह शरणागत होती सी, 'हृदयमें स्थान दो' यह याचना दिखाती सी चाहने लगी। 'हा, अनुचित अति लज्जाकर कुलकुमारी जनोके लिये अभव्य इस प्रसगको क्यो प्रस्तुत किया', यह जानती भी इन्द्रियो पर अधिकार न रखती, स्तभित सी, लिखित सी, उत्कीर्ण सी, वघी सी, मूर्छित सी, किसी द्वारा पकडी गई सी, सारे अगसे निश्चेष्ट, उस समय प्रकट हुई जडता द्वारा विना कहे-सिखे अकथनीय, केवल आत्मानुभव द्वारा नही जान सकी। क्या उसकी सौंदर्य-सम्पत्तिसे, क्या मनसे, क्या मनसिजसे, क्या अभिनव यौवनसे, क्या अनुरागसे मानो उपदिष्ट होते, या अन्य ही किसी प्रकारसे अथवा नही जानती कैसे-कैसे वहुत देर तक मै उसे देखती रही।

५८ इन्द्रियोसे, उठाकर उसके पास ली जाती, हृदयसे आगे आकर्षित होती, पीछेसे कामदेव द्वारा प्रेरित होती सी, अपनेको जैसे-कैसे विना प्रयत्नके मैंने रोका। और वादमें मेरे भीतर कामदेवको अवकाश देते हुये से श्वास-वायु धारा वनकर निकले हृदयकी अभिलाषाको वतलाते हुये मानो दोनो स्तन-मुख कपित हुये। पसीनेकी रेखासे घुलकर लज्जा मानो गल गई। कामदेवके तीक्ष्ण वाणोके गिरनेसे भयभीत सा शरीर कप गया। उसके सौंदर्य आधिक्यको देखनेके लिये मानो कौतूहलसे आलिगनकी लालसावाले (मेरे) अगोमें रोमाच हो गया। पसीनेके जलसे पूरी तौरसे धुले चरणयुगलका राग मानो हृदयमें प्रविष्ट हो गया।

५९ आसीच्च मम मनसि—

"शातात्मनि दूरीकृतसुरतव्यतिकरेऽस्मिन् जने मां निक्षिपता किमिदमनार्य्येणासदृशमारब्ध मनसिजेन ? एव च नामातिमूढ हृदयमगनाजनस्य, यदनुरागविषययोग्यतामपि विचारयितु नालम्। क्वेदमतिभास्वर धाम तेजसा तपसा च, क्व च प्राकृतजनाभिनन्दितानि मन्मथपरिस्पन्दितानि ? नियतमय मामेव मकरलाछनेन विडम्ब्यमानामुपहसति ानसा। चित्र चेद यदहमेवमवगच्छन्त्यपि न शक्नोम्यात्मनो विकारमुपसहर्तुम्। अन्या अपि कन्यकास्त्रपा विहाय स्वयमुपयाता पतीन्, अन्या अप्यनेन दुर्विनीतेन मन्मथेनोन्मत्तता नीता नार्य, न पुनरहमेका यथा कथमनेन क्षणेनाकारमात्रालोकनाकुली भूतमेवमस्वतन्त्रतामुपैत्यन्तःकरणम्। कालो गुणाश्च दुर्निवारतामारोपयन्ति मदनस्य सर्वथा। यावदेव सचेतनास्मि, यावदेव च न परिस्फुटमनेन विभाव्यते मे मदनदुश्चेष्टितलाघवमेतत्, तावदेवास्मात्प्रदेशादपसर्पण श्रेय। कदाचिदनभिमतस्मरविकारदर्शनकुपितोऽय शापाभिपन्नता करोति माम्। अदूरपाको हि मुनिजनप्रकृति" इत्यवधार्यापसर्पणाभिलाषिण्यहमभवम्। अशेषजनपूजनीया चेय जातिरिति कृत्वा तद्वदनाकृप्टदृप्टिप्रसरम्, अचलितपक्ष्ममालम्, अदृप्टभूतलम्, उल्लसितकर्णपल्लवोन्मुक्तकपोलमण्डलम्, आलोलालकलतालसत्कुसुमावतसम्, असदेशदोलायितमणिकुण्डलमस्मै प्रणाममकरवम्।

५९ और मेरे मनमें हुआ—कामुकता के व्यापारको दूर छोड इस शांत-आत्मा पुरुषके ऊपर इस तरह मुझे फेंकते क्या अनार्य कामदेवने अनुचित नही किया ? अगनाजनोका हृदय ऐसा ही अति मूढ है, जो कि अनुराग पात्रकी योग्यताके बारेमें भी नही विचार सकता । कहा यह तेज और तपस्याका अति प्रकाशमान धाम और कहा साधारण जनोद्वारा अभिनदित कामदेवकी कामुक चेष्टाये ? निचश्य ही कामदेव द्वारा मुझे इस तरह विडवित होती देख यह मनसे मेरा उपहास करता होगा। आश्चर्य है, मैं यह जानती भी अपने विकारको रोक नही सकती। दूसरी भी कन्यायें लाज छोडकर स्वय पतियोंके पास गईं ? दुष्ट कामदेवने केवल अकेली मुझे ही नही दूसरी नारियोको भी उन्मत्त बनाया, जैसे कि इसी क्षण रूप मात्र देखनेसे आकुल (मेरा) हृदय परतन्त्र हो रहा है । समय और गुण सब प्रकारसे कामदेवकी दुर्निवारताको स्थापित करते हैं । जब तक मैं होश-हवासवाली हू, और जब तक मेरी काम-दुश्चेष्टा इस हलकेपनको यह स्पष्ट नही जान लेता, तब तक ही इस जगह से (मेरा) हट जाना अच्छा है । शायद अरुचिकर काम-विकारको देख कुपित होकर यह मुझे शाप दे दे। मुनि जनोका स्वभाव कोपसे दूर नही रहता। यह सोचकर मैं हटनेकी इच्छा करने लगी। यह जाति सबकी पूजनीय है, यह सोचकर उसके मुखसे आकर्षित-दृष्टि निश्चल पलकवाली, भूतल को न देखती, उल्लसित कर्ण पल्लवसे छूते कपोलवाली, चचल अलकोमें शोभायमान कुसुम-मालावाली, कन्धे पर हिलते मणिकुडलोके साथ मैंने उसे प्रणाम किया।

६०. अथ कृतप्रणामायामपि दुर्लंघ्यशासनतया मनोभुव, मदजननतया च मधुमासस्य, अतिरमणीयतया च तस्य प्रदेशस्य, अविनयबहुलतया चाभिनवयौवनस्य, चचल-प्रकृतितया चेन्द्रियाणाम् दुर्निवारतया च विषया-भिलाषाणाम्, चपलतया च मनोवृत्ते, तथाभवितव्यतया च तस्य वस्तुन, कि बहुना मम मन्दभाग्यदौरात्म्यादस्य चेदृशस्य क्लेशस्य विहितत्वात्तमपि मद्विकारापहृतधैर्यं प्रदीपमिव पवनस्तरलतामनयदनग ।

६१ तदा तस्याप्यभिनवागतमदन प्रत्युद्गच्छन्निव रोमोद्-गम प्रादुरभवत्। मत्सकाशमभिप्रस्थितस्य मनसो मार्ग-मिवोपदिशद्भि पुर प्रवृत्त श्वासै । वेपथुगृहीता व्रत-भगभीतेवाकम्पत करतलगताक्षमाला, द्वितीयेव कर्णविसक्त कुसुममजरी कपोलतलासगिनी समदृश्यत स्वेदसलिलसी-करजालिका। मद्दर्शनप्रीतिविस्तारितस्य चोत्तानतार-कस्य पुण्डरीकमयमिव तमुद्देशमुपदर्शयतो लोचनयुग-लस्य विसर्पिभिरशुसतानैर्यदृच्छयाच्छोदसलिलमपहाय विकचकुवलयवनैरिव गगनतलसमुत्पतितैररुध्यन्त दश दिश । तया तु तस्यातिप्रकटया विकृत्या द्विगुणीकृत-मदनावेशा तत्क्षणमहमवर्णनयोग्या कामप्यवस्थामन्वभवम्

६२ इद च मनस्यकरवम्—'अनेकसुरतसमागमलास्यलीलो-पदेशोपाध्यायो मकरकेतुरेव विलासानुपदिशति, अन्यथा विविवरसासगललितेष्वीदृशेषु व्यतिकरेष्वप्रदिष्ट-वुद्धेरस्य जनस्य कुत इयमनभ्यस्ताकृती रतिरसनि.-स्यन्दमिव क्षरन्ती, अमृतमिव वर्षन्ती, मदमुकुलितेव,

६० तव मेरे प्रणाम करनेके वाद ही कामदेवकी आज्ञाके दुर्लंघनीय होनेसे, चैत महीनेके मदके उत्पादनसे, और उस प्रदेशकी अति रमणीयता से, और अभिनव यौवनके वहुत दुर्विनीत होनेसे, और इन्द्रियोंकी चंचल स्वभावतासे, विषय-अभिलापाओकी दुर्निवारतासे, और मनोवृत्तियो-को चपलतासे, और तद्-तद् वस्तुकी वैसी भवितव्यता से, वहुत क्या (कहूँ) मेरे मन्दभाग्य की दुष्टताके कारण और ऐसे क्लेशके वदा होनेके कारण भी, मेरे विकारसे अधीर हुये उसे भी दीपकको पवनकी तरह कामदेवने चचल कर दिया।

६१ तव नवागत मदनकी अगवानी करते से उसको भी रोमाच प्रकट हुआ। मेरी ओर प्रस्थान करते मनको मार्ग दिखलाते से श्वास आगे चले। पकडे व्रतके भगसे भयभीत सी हाथकी रुद्राक्ष माला कपी, कपोलसे लिपटी कानमें लगी कुसुममजरी स्वेद-जल विंदुओकी दूसरी जाली सी दिखाई देने लगी। मेरे देखनेकी इच्छासे फैले और उत्तान पुतलियो-वाले उस स्थानको पुण्डरीकमय सा दिखलाते, लोचनयुगलकी फैलती किरणो द्वारा अकस्मात् स्वेच्छासे आच्छोद सरोवरके जलको छोडकर मानो आकाशतलकी ओर उडते फूले कमलोके वनोसे दशो दिशायें रुध गईं। तरुणके उस अति प्रकट विकारसे कामके दुगुने आवेश-वाली हो मैं उसी क्षण किसी अवर्णनीय अवस्थाको अनुभव करने लगी।

६२ मैंने मनमे सोचा—'अनेक सुरत-समागमोकी नृत्य-लीलाका उपदेशक गुरु कामदेव ही विलासोको सिखा रहा है, नही तो विविध रस ससर्गसे ललित ऐसे व्यापारोमें अशिक्षित ज्ञानवाले पुरुषकी यह अभ्यासरहित आकृति, कैसे रति-रसका प्रवाह सी वहाती, अमृत सी वरसाती, मदसे मुकुलित सी, खेदसे अलस सी, निद्रासे जड सी, आनन्दके भारसे मन्द चलती पुतलियोंके सचारवाली, चचल भौंहोको उल्लसित करने वाली, इस पुरुपकी यह दृष्टि कैसे है? कहासे यह अत्यन्त निपुणता

खेदालसेव, निद्राजडेव, आनन्दभरमन्थरतरत्तारस-चारिणी, अनिभृतभ्रूलतोल्लासिनी दृष्टि । कुतश्चेद-मतिनैपुण्यम्, यच्चक्षुषैवानक्षरमेवमन्तर्गतो हृदयाभिलाष. कथ्यते ।' प्राप्तावसरा चोपसृत्य त द्वितीयमस्य सहचर मुनिबालक प्रणामपूर्वकमपृच्छम्—"भगवान्किमभिधान ? कस्य वाय तपोधनस्य युवा ? किनाम्नश्च तरोरियम-वतसीकृता कुसुममजरी ? जनयति हि मे मनसि महत्कौ-तुकमस्या समुत्सर्पन्नसाधारणसौरभोयमनाघ्रातपूर्वो गन्ध" इति । स तु मामीषद्विहस्याब्रवीत्—"बाले, किमनेन पृष्टेन प्रयोजनम् ? अथ कौतुकमावेदयामि । श्रूयताम्-

—पूर्वभागे

(६) प्रेम—

६३ अस्ति त्रिभुवनप्रख्यातकीर्तिरत्युदारतया सुरासुरसिद्ध-वृन्दवन्दितचरणयुगलो महामुनिर्दिव्यलोकनिवासी श्वेतकेतुर्नाम । तस्य च भगवत सुरलोकसुन्दरीहृदया-नन्दकरम् अशेषत्रिभुवनसुन्दरम्, अतिशयितनलकूबर रूपमासीत् । स कदाचिद्देवतार्चनकमलान्युद्धर्तुमैरावतमद-जलविन्दुबद्धचन्द्रकशतखचितजलाम् हरहसितसितस्रोतस मन्दाकिनीमवततार । अवतरन्त च त कमलवनेषु सततसनिहितविकचसहस्रपत्रपुण्डरीकोपविष्टा देवी लक्ष्मी-र्ददर्श । तस्यास्तु तमवलोकयन्त्या प्रेममदमुकुलितेना-नन्दवाष्पभरतरगतरलतारेण लोचनयुगलेन रूपमास्वा-दयन्त्या जृम्भिकारम्भमन्थरमुखविन्यस्तहस्तपल्लवाया मन्मथविक्लव मन आसीत् । आलोकनमात्रेणैव समासादित-सुरतसमागमसुखायास्तस्मिन्नेवासनीकृते पुण्डरीके कृता-र्थतासीत् । तस्माच्च कुमार समुदपादि । ततस्तमुत्सग

आई, जो कि आख द्वारा ही अक्षरके विना ही भीतरके हृदय-अभिलाषको कह गया।' अवकाश पाकर और पास जा उसके दूसरे साथी मुनिवालकको प्रणाम करके मैंने पूछा —'भगवान् यह क्या नामवाले हैं? किस तपोधनके पुत्र यह तरुण हैं? कौन से नामके वृक्षकी कुसुममजरी (इनका) कर्णाभूपण वनी हुई है? फैलता हुआ असाधारण सौरभवाला कभी न सूंघा इसका यह गध मेरे मनमें भारी कौतुक पैदा कर रहा है।' वह थोडा सा हसकर मुझसे वोला— 'वालिके, यह पूछनेका क्या मतलव है? यदि कौतूहल है, तो वतलाता हू, सुनो—

—पूर्वभाग

६. प्रेम—

६३ त्रिभुवनमें प्रख्यात कीर्तिवाले, अत्यत उदारतासे सुर-असुर-सिद्ध-समूह द्वारा वदित चरणोवाले, दिव्यलोकवासी **श्वेतकेतु** नामक महामुनि है। सुरलोक की सुदरियोके हृदयोको आनन्द करनेवाले, अखिल त्रिभुवनमें सुन्दर **नलकूवर**से भी वढकर उन भगवान्का रूप था। एक समय वह देव-पूजार्थ कमलोको चुननेके लिये **ऐरावत**के मदके जलविन्दुओपर वधी चद्रिकाओ द्वारा खचित जलवाली, शकरके हास जैसी सफेद स्रोतवाली, **गंगा**में उतरे। कमलवनमें उतरते हुये उन्हें पासके फूले सहस्रदल पुडरीकपर सदा उपविष्ट लक्ष्मीदेवीने देख लिया। देखती, प्रेम-मदसे मुकुलित आनद-अश्रु-तरगसे चचल पुतलियोवाले लोचनयुगल द्वारा रूपका आस्वाद लेती, जम्हाई आनेसे मन्द मुखपर रक्खे हस्तपल्लववाली, लक्ष्मीका मन काम-विकारसे विकृत हो गया। देखने मात्रसे सुरतसमागमका सुख पा उसी आसनके पुडरीकपर उसे तृप्ति हो गई, जिससे कुमार उत्पन्न हुआ। तव उसे गोद में लेकर लक्ष्मी ने —'भगवन्, लो यह तुम्हारा वेटा है' यह कहकर **श्वेतकेतु**को दे दिया। मुनि ने भी वालकोंके लिये उचित सारे सस्कारोको करके **पुण्डरीक**से उत्पन्न होनेके कारण **पुण्डरीक**

आदाय सा 'भगवन्, गृहाण तवायमात्मज.' इत्युक्त्वा तस्मै श्वेतकेतवे ददौ। असावपि बालकजनोचिता सर्वा क्रिया कृत्वा तस्य पुण्डरीकसभवतया तदेव पुण्डरीक इति नाम चक्रे, प्रतिपादितव्रत च तमागृहीतसकलविद्याकलापमकार्षीत्। सोऽयम्। इय च सुरासुरैर्मथ्यमानात्क्षीरसागरादुद्गत पारिजातनामा पादपस्तस्य मजरी। यथा चैषा व्रतविरुद्धमस्य श्रवणससर्गमासादितवती तदपि कथयामि। अद्य चतुर्दशीति भगवन्तमम्बिकापति कैलासगतमुपासितुममरलोकान्मया सह नन्दनवनसमीपेनायमनुसरन्निर्गत्य साक्षान्मधुमासलक्ष्मीदत्तललितहस्तावलम्बया बकुलमालिकामेखलया कुसुमपल्लवग्रथिताभिराजानुलम्बिनीभि कण्ठमालिकाभिर्निरन्तराच्छादितविग्रहया नवचूताकुरकर्णपूरया पुष्पासवपानमत्तया वनदेवतया पारिजातकुसुममजरीमिमामादाय प्रणम्याभिहित —

६४　'भगवन् सकलत्रिभुवनदर्शनाभिरामायास्तवाकृतेरस्या सदृशोऽयमलकार क्रियताम्। इयमवतसविलासदुर्ललितारोप्यता श्रवणशिखरम्। व्रजतु सफलता जन्म पारिजातस्य' इत्येवमभिदधाना चायमात्मरूपस्तुतिवादत्रपावनमितलोचनस्तामनादृत्यैव गन्तु प्रवृत्त। मया तु तामनुयान्तीमालोक्य 'को दोष सखे, क्रियतामस्या प्रणयपरिग्रह,' इत्यभिधाय बलादियमनिच्छतोऽप्यस्य कर्णपूरीकृता। तदेतत्कार्त्स्न्येन योऽयम्, यस्य चायम्, या चेयम्, यथा चास्य श्रवणशिखर समारूढा, तत्सर्वमावेदितम्। इत्युक्तवति तस्मिन्स तपोधनयुवा किंचिदुपदर्शितस्मितो मामवादीत्, 'अयि कुतूहलिनि, किमनेन प्रश्नायासेन? यदि रुचितसुरभिपरिमला गृह्यतामियम्,' इत्युक्त्वा समुपसृत्यात्मीयाच्छ्रवणादपनीय कलैरलिकुल-

यही उसका नामकरण किया, और व्रती बना उसे सारी विद्याओमें पारगत करा दिया। वही है यह। और यह देवासुरो द्वारा मथे क्षीर-सागरसे निकले **पारिजात** नामक वृक्षकी मजरी है। इसने कैसे ब्रह्मचर्यव्रतके विरुद्ध इसके कानोका ससर्ग पाया, इसे भी बतलाता हू। आज चतुर्दशी है, यह सोच **कैलास**वासी भगवान् अम्बिकापतिकी उपासनाके लिये सुरलोकसे मेरे साथ यह **नदनवन**के समीपसे निकला। (तब) साक्षात् मधुमासकी लक्ष्मी द्वारा दिये ललित हस्तावलम्ब-वाली, मौलसरीकी मालाकी मेखलावाली, कुसुमपल्लवसे गुथी जानु तक लटकती कठमालिकाओ द्वारा निरतर आच्छादित शरीर-वाली, नये आम्रमजरीके कर्णपूरवाली, पुष्पके आसवके पीनेसे मत्त, वनदेवताने इस पारिजात कुसुममजरीको लेकर प्रणाम करके कहा—

६४ 'भगवन्, सकल त्रिभुवनके दर्शनके लिये अति सुन्दर तुम्हारे इस रूपके योग्य यह अलकार है, इसे धारण कीजिये, तुच्छ आभूषण-विलास को अपने कानोमें रखिये। इस प्रकार पारिजातका जन्म सफल होगा।' इस प्रकार कहती वनदेवता द्वारा यह अपने सौंदर्यकी स्तुति करनेकी लज्जासे नीची आख किये उसका अनादर करते ही चलने लगा। मैंने उसे पीछे आती देखकर 'मित्र, क्या दोप है, इसके स्नेहको स्वीकार कीजिये' कहकर इच्छा न होने पर भी जबर्दस्ती इसे इसके कानका भूषण बना दिया। सो यह पूरी तौरसे जो है और यह जिसका है, जो (मजरी) यह है, और जैसे इसके कानोमें यह आरूढ हुई, सो सब मैंने बतला दिया।' उसके यह कहनेपर उस तपस्वी तरुणने कुछ मुस्कुरा-कर मुझसे कहा—'आर्ये कुतूहलिनी, इस प्रश्नके परिश्रमसे क्या फायदा ? यदि इसकी सुगध पसन्द है, तो लीजिये', और पास आकर

क्वणितं प्रारब्धरतिसमागमप्रार्थनामिव, मदीये श्रवण-पुटे तामकरोत्। मम तु तत्करतलस्पर्शलाभेन तत्क्षण-मपरमिव पारिजातकुसुममवतसस्थानपुलकमासीत्। स च मत्कपोलस्पर्शसुखेन तरलीकृतागुलिजालकात्कर-तलादक्षमाला लज्जया सह गलितामपि नाज्ञासीत्। अथाहं तामसप्राप्तामेव भूतलमक्षमालां गृहीत्वा सलील तद्भुजपाशसदानितकण्ठग्रहसुखमिवानुभवन्ती दर्शिता-पूर्वहारलतालीला कण्ठाभरणतामनयम्।

६५ इत्थभूते च व्यतिकरे छत्रग्राहिणी मामवोचत्—'भर्तृ-दारिके, स्नाता देवी। प्रत्यासीदति गृहगमनकाल। तत्क्रियता मज्जनविधि' इति। अह तु तेन तस्या वच-नेन नवग्रहा करिणीव प्रथमाकुशपातेनानिच्छया कथ-कथमपि समाकृष्यमाणा तन्मुखाल्लावण्यामृतपकमग्नामिव कपोलपुलककण्टकजालकलग्नामिव मदनशरशलाकाकी-लितामिव सौभाग्यगुणस्यूतामिव अतिकृच्छ्रेण दृष्टि समाकृष्य स्नातुमुदचलम्। उच्चलिताया च मयि द्वि-तीयो मुनिदारकस्तथाविधस्तस्य धैर्यस्खलितमालोक्य किंचि त्प्रकटितप्रणयकोप इवावादीत्—'सखे पुण्डरीक, नैतदनु-रूपभवत। क्षुद्रजनक्षुण्ण क एष मार्ग? धैर्यधना हि साधव। किं य कश्चन प्राकृत इव विक्लवीभवन्तमात्मान न रुणत्सि? कुतस्तवापूर्वोऽयमद्येन्द्रियोपप्लव, येनास्येव कृत? क्व ते तद्धैर्यम्? कासाविन्द्रियजय? क्व तद्वशित्वम्? चेतस क्व सा प्रशान्ति? क्व तत्कुलक्रमागत ब्रह्मचर्यम्? क्व सा सर्वविषयनिरुत्सुकता? क्व ते गुरूपदेशा? क्व तानि श्रुतानि? क्व ता वैराग्यबुद्धय? क्व तदुप-

अपने कानोंसे निकालकर, भ्रमरोके मधुर गुजित द्वारा ,रतिसमागम-की याचना करती सी मेरे कानोमें उसे लगा दिया। मेरे तो शरीरमें आभूषणकी जगह उसके हाथके स्पर्श-लोभसे उसी क्षण दूसरा पारिजात कुसुमसा रोमाच हो गया। मेरे कपोलके स्पर्शके सुखसे चचल अगुलियो-वाले हाथोंसे अक्षमालाको लज्जाके साथ गिरते भी उसने नही जाना। तव उस रुद्राक्षमालाको पृथिवी तक न पहुचने दे मैंने उसके भुजपाश में वधी क ग्रहणके सुख सा अनुभव करती, अपूर्व हार-लताकी शोभा दिखलाती लीला-सहित (अपना) कठाभरण वना लिया।

६५ यह व्यापार हो जानेके वाद मेरी छत्रग्राहिणी ने मुझसे कहा—'स्वामिपुत्री, देवीने नहा लिया। घर जानेका समय नजदीक है। सो स्नान कीजिये।' मै तो उसके इस वचनद्वारा प्रथम अकुश मारनेसे नई पकडी हथिनी सी, विना इच्छाके जैसे-तैसे खिची जाती, उसके मुख-सौंदर्यरूपी अमृतके पकमें डूबी सी, कपोलके रोमाचजालमें लग्न सी, कामदेवके शरीरकी शलाका द्वारा कीलित सी, सौभाग्य सूतसे सिली सी, वडी कठिनाईसे आख हटाकर नहाने चली। मेरे वहासे चलनेपर साथीको उस प्रकार धैर्य छोडते देखकर कुछ प्रेमसहित सिखलाते दूसरे मुनिपुत्रने कहा—'मित्र पुडरीक,यह आपके लिये उचित नही है। क्षुद्रजनो द्वारा सेवित यह कौन मार्ग है? साधु जन धैर्यके धनी होते हैं। क्यो जैसे-कैसे साधारण आदमीकी तरह तू अपनेको विकल होनेसे नही रोकता? कैसे कहासे तुझे, यह अपूर्व प्रथम इन्द्रिय-शिथिलता आई, जिसने तुझे ऐसा कर दिया? कहा है वह तेरी वीरता? कहा वह इन्द्रियजय? कहा वह इन्द्रिय-वशिता? कहा चित्तकी वह प्रशान्ति? कहा वशपरपरासे आया वह ब्रह्मचर्य? कहा वह सारे विषयोमें अनिच्छा? कहा तेरे लिये वे गुरुके उपदेश? कहा वे शास्त्र? कहा वह वैराग्य-वुद्धि? कहा वह उपभोगमें विराग? कहा वह सुखसे पराङ्मुखता? कहा

भोगविद्वेषित्वम् ? क्व सा सुखपराङ्मुखता ? क्वासौ तपस्यभिनिवेश । क्व सा भोगानामुपर्यरुचि ? क्व तद्यौवनानुशासनम् ? सर्वथा निष्फला प्रज्ञा, निर्गुणो धर्मशास्त्राभ्यास , निरर्थक संस्कार , निरुपकारको गुरूपदेशविवेक , निष्प्रयोजना प्रबुद्धता, नि कारण ज्ञानम्, इदमत्र भवादृशा अपि रागाभिषङ्गै कलुषीक्रियन्ते, प्रमादैश्चाभिभूयन्ते। कथ करतलाद् गलितामपहृतामक्षमालामपि न लक्षयसि। अहो विगतचेतनत्वमपहृतानामेवम्। इदमपि तावद् ध्रियमाणमनयानार्यया निवार्यता हृदयम्' इति।

६६ एवमभिधीयमानश्च तेन किंचिदुपजातलज्ज इव प्रत्यवादीत् 'सखे कपिंजल, किं मामन्यथा संभावयसि ? नाहमेवमस्या दुर्विनीतकन्यकाया मर्षयाम्यक्षमालाग्रहणापराधमिमम्।' इत्यभिधायालीककोपकान्तेन प्रयत्नविरचितभीषणभृकुटिभूषेण चुम्बनाभिलाषस्फुरिताधरेण मुखेन्दुना मामवदत्—'चचले, प्रदेशादस्मादिमामक्षमालामदत्वा पदात्पदमपि न गन्तव्यम्' इति।

६७ तच्च श्रुत्वाहमात्मकण्ठादुन्मुच्य मकरध्वजलास्यारम्भलीलापुष्पाजलिमेकावलीम् 'भगवन् गृह्यतामक्षमाला' इति मन्मुखासक्तदृष्टे शून्यहृदयस्यास्य प्रसारिते पाणौ निधाय स्वेदसलिलस्नातापि पुन स्नातुमवातरम्। उत्थाय च कथमपि प्रयत्नेन निम्नगेव प्रतीप नीयमाना सखीजनेन बलादम्बया सह तमेव चिन्तयन्ती स्वभवनमयासिषम्।

६८ गत्वा च प्रविश्य कन्यान्त पुर तत प्रभृति तद्विरहविधुरा किमागतास्मि किं तत्रैव स्थितास्मि, किमेकाकिन्यस्मि, किं परिवृतास्मि, किं तूष्णीमस्मि, किं प्रस्तुतालापास्मि, किं जागर्मि, किं सुप्तास्मि, किं रोदिमि, किं न रोदिमि, किं दु खमिदम्, किं सातमिदम्. किमुत्कण्ठेयम्, किं व्या-

तपस्यामें वह आग्रह? कहा वह भोगोंके प्रति अरुचि? कहा वह यौवनपर अनुशासन करना? सर्वथा तेरी प्रज्ञा निष्फल है, धर्म-शास्त्रका अभ्यास वेकार है, संस्कार निरर्थक है, गुरुके उपदेश विवेक अनुपकारक है, प्रवुद्ध होना निष्प्रयोजन, ज्ञान निष्फल है, जो कि यहा तेरे जैसे भी रागके ससर्गसे मलिन वन जायें, प्रमादोंसे पराजित होवें! कैसे हाथसे गिरी और चुराई गई रुद्राक्ष-मालाको भी तूने नहीं जाना! अहो ध्वस्तोकी वेखवरी! (अपने) इस हृदय-को भी तो उस अनार्या की पकडमें आनेसे नही रोका।'

६६ 'मित्र, कपिजल, क्यो मुझे उलटा समझ रहे हो। इस दुष्ट कन्याके रुद्राक्षमाला-हरणके अपराधको इस प्रकार मैं नहीं सह सकता।' यह कहकर झूठे कोपसे सुन्दर, वहु प्रयत्नसे वनाई भयकर भृकुटिके भूषणसे युक्त, चुम्वनकी अभिलाषासे कपित ओष्ठोवाले मुखचन्द्रसे मुझे कहा—"चचले, इस अक्षमालाको विना दिये इस स्थानसे एक कदम भी नही हटना।"

६७ यह सुनकर कामदेवके नृत्यकी लीलाकी पुष्पाजलि सी एकावलीको मैंने अपने कंठ से उतार कर 'भगवान्, लीजिये अक्षमाला' कह मेरे मुहपर लगी दृष्टिवाले उस शून्यहृदय (तरुण) के फैले हाथोमें रखकर पसीनेसे नहाई भी मैं फिर नहाने उतरी। उठकर जैसे-तैसे प्रयत्न करके, उलटी ओर ढकेली जाती नदी सी पुडरीकके वारेमें सोचती सखीजनो द्वारा जवंदस्ती अम्वाके साथ अपने घरको गई।

६८ जाकर कन्या-अत पुरमें प्रवेश कर तव से उसके विरहसे व्याकुल मैंने कुछ नही जाना—क्या आई, क्या वहीं खडी हू, क्या अकेली हू, क्या लौटी हूं, क्या चुप हूं, क्या वोल रही हूं, क्या जागती हू, क्या सोई हू, क्या रोती हू, क्या नही रोती, क्या दुख है, क्या यह सुख है, क्या

धिरयम्, किं व्यसनमिदम्, किमुत्सवोऽयम्, कि दिवस एष, किं निशेयम्, कानि रम्याणि, कान्यरम्याणीति सर्वं नावागच्छम्। अविज्ञातमदनवृत्तान्ता च क्व गच्छामि, किं करोमि, किं शृणोमि, किं पश्यामि, किमालपामि, कस्य कथयामि, कोऽस्य प्रतीकार इति सर्वं च नाज्ञासिषम्।

६९ केवलमारुह्य कुमारीपुरप्रासाद विसर्ज्य च सखीजन द्वारि निवारिताशेषपरिजनप्रवेशा, सर्वव्यापारानुत्सृज्यैकाकिनी मणिजालगवाक्षनिक्षिप्तमुखी, तामेव दिश तत्सनाथतया प्रथितामिव महारत्ननिधानाधिष्ठितामिव अमृतरससारसागरपूरप्लावितामिव पूर्णचन्द्रोदयालकृतामिव दर्शन सुभगामीक्षमाणा, तस्माद्दिगन्तरादागच्छन्तमनिलमपि वनकुसुमपरिमलमपि शकुनिध्वनिमपि तद्वार्तां प्रष्टुमीहमाना तद्वल्लभतया तप क्लेशायापि स्पृहयन्ती, तत्प्रीत्येव गृहीतमौनव्रता स्मरजनितपक्षपाता च तत्परिग्रहान्मुनिवेषस्याग्राम्यता तदास्पदतया यौवनस्य चारुता तच्छ्रवणसपर्कात्पारिजातकुसुमस्य मनोहरता तन्निवासात्सुरलोकस्य रम्यता तद्रूपसपदा कुसुमायुधस्य दुर्जेयतामध्यारोपयन्ती, दूरस्थस्यापि कमलिनीव सवितु सागरवेलेव चन्द्रमस मयूरीव जलधरस्य तस्यैवाभिमुखी, तथैव ता तद्विरहातुरजीवितोद्गमरक्षावलीवाक्षावली कण्ठेनोद्वहन्ती, तथैव च तया प्रस्तुततद्रहस्यालापयेव कर्णलग्नया पारिजातमजर्या तथैव च तेन तत्करतलस्पर्शसुखजन्मना कदम्बमुकुलकर्णपूरायमाणेन रोमाचजालेन कण्टकितैककपोलफलका निष्पन्दमतिष्ठम्।

यह उत्कंठा है, क्या यह व्याधि है, क्या यह व्यसन है, क्या यह उत्सव है, क्या यह दिन है, क्या यह रात है, कौन रमणीय है, कौन अरमणीय है, मदनके व्यवहारमें अपरिचिता- मैं कहा जा रही हू, क्या कर रही हूं, क्या सुन रही हू, क्या देखती हू, क्या बोलती हू, किससे बोलती हूं, इसका प्रतिकार क्या है।

६९ सिर्फ कन्या अन्त पुरके ऊपर चढकर, सखियोको छोड सारे परिजनो का द्वार-प्रवेश रोक सारे कामोको छोडकर मणिजालोवाले झरोखे-पर मुख रक्खे अकेली (बैठी), पुंडरीकसे युक्त होनेके कारण अलंकृत सी, महारत्नकोशसे अधिष्ठित, अमृतरसके सारवाले सागरके प्रवाहसे वहाई सी, पूर्णचन्द्रके उदयसे अलकृत सी, देखनेमें सुन्दर, उसी दिशाकी ओर देखती (रही)। उस दिशासे आते वायुसे भी, वनकुसुमके गन्धसे भी, पक्षियोके शब्दसे भी पुंडरीकका समाचार पूछनेकी इच्छा करती (थी)। पुडरीक के प्रिय होनेसे तपके क्लेशकी भी इच्छा करती थी, उसकी प्रीतिसे मानो मौन व्रत धारिणी, कामदेवके प्रति पक्षपातिनी थी। उसके ग्रहण करनेसे मुनिवेषकी अग्राम्यताकी, उसका आश्रय होनेसे यौवनकी चारुताकी, उसके कानके सम्पर्कसे पारिजातकुसुम की मनोहरताकी, उसके निवासके कारण सुरलोककी रमणीयताकी, उसके सौंदर्यकी सम्पत्ति द्वारा कामदेवके दुर्जयताकी कल्पना करती थी। दूरस्थ सूर्यको कमलिनी सी, चन्द्रमाको सागरतट सी, जलधरको मयूरी सी, मैं उसीकी ओर मुख किये थी। उसके विरहसे आतुर जीवन के निकलनेकी रक्षाकवच सी रुद्राक्षमालाको उसी तरह कंठमें धारण किये, और वैसे ही उसके रहस्य-आलापमें लगी सी, व्यस्त सी, कानमें लगी पारिजातमंजरी और उसी प्रकार प्रियके हाथके स्पर्श सुखसे उत्पन्न कदम्बकलीके कर्णाभरण द्वारा एक कपोलमें रोमांचित निश्चल (बैठी) रही।

(७) **प्रियतमा-सन्देश.—**

७० अथ ताम्बूलकरकवाहिनी मदीया तरलिका नाम मयैव सहागता स्नातुमासीत्। सा च पश्चाच्चिरादिवागत्य तथाऽवस्थिता शनै शनैर्मामिवादीत्—'भर्तृदारिके, यौ तौ तापसकुमारकौ दिव्याकारावस्माभिरच्छोदसरस्तीरे दृष्टौ, तयोरेको येन भर्तृदुहितुरिय कर्णावतसीकृता सुरतरुमजरी। स तस्माद्द्वितीयादात्मनो रक्षन्दर्शनममतिनिभृतपद कुसमितलतासतानगहनान्तरेणोपसृत्य मामागच्छन्ती पृष्ठतो भर्तृदारिकामुद्दिश्याप्राक्षीत्

७१ "वालिके, केय कन्यका, कस्य वापत्यम्, किमभिधाना, क्व वा गच्छति ?" इति

७२ मयोक्तम्—"एषा खलु भगवत श्वेतभानोरशुसभूतायामप्सरसि गौर्यां समुत्पन्ना देवस्य सकलगन्धर्वमुकुटमणिशलाकाशिखरोल्लेखमसृणितचरणनखचक्रस्य प्रणयप्रसुप्तगन्धर्वकामिनीकपोलपत्रलतालाछितभुजतरुशिखरस्य पादपीठीकृतलक्ष्मीकरकमलस्य गन्धर्वाधिपतेर्हंसस्य दुहिता **महाश्वेता** नाम गन्धर्वाधिवास हेमकूटाचलमभिप्रस्थिता" इति।

किमपि चिन्तयन्मुहूर्तमिव तूष्णी स्थित्वा (स वि)गतनिमेषेण चक्षुषा चिरमभिवीक्षमाणो मा सानुनयमर्थितामिव दर्शयन्पुनराह—'वालिके, कल्याणिनी तवाविमवादिन्यचपला वालभावेऽप्याकृतिरियम्। तत्करोषि मे वचनमेकमभ्यर्थ्यमाना ?' इति।

७३ ततो मया सविनयमुपरचिताजलिपुटया दर्शितादरमभिहित—'भगवन्, कस्मादेवमभिधत्से ? काऽहम् ? महात्मान सकलत्रिभुवनपूजनीयास्त्वादृशा पुण्यैर्विना निखिलकल्मपापहारिणीमस्मद्विधेषु दृष्टिमपि न पात-

७. प्रियतम का संदेश—

७० मेरी पानदानवाहिनी **तरलिका** उस समय मेरे ही साथ नहाने के लिये गई थी। वह पीछे देरसे आई। उस स्थिति में |पा मुझसे धीरे-धीरे वोली—'स्वामिपुत्री, जो वे दोनो दिव्य आकारवाले कुमार हमने **अच्छोदसरोवर**के तीर पर देखे। उनमेंसे जिसने कल्पतरु-मजरी को स्वामिपुत्रीका कर्णभूषण वनाया, उसने दूसरेसे अपनेको छिपाते अत्यन्त चुपचाप पैर रखते, फुली हुई लताओके झुर्मुटके भीतरसे पास आकर, पीछे आती मुझसे स्वामिपुत्रीके वारेमें पूछा—

७१ 'वालिके, कौन है यह कन्या, और किसकी सतान है? क्या नामवाली है, और कहा जा रही है?'

७२ मैंने कहा—'यह भगवान् **श्वेतभानु** (गन्धर्वराज) की चन्द्रकिरणमें उत्पन्न (पुत्री) अप्सरा **गौरीमें** जनमी सारे गन्धर्वोंके मुकुटमणि-शलाकाके शिखरोके घिसनेसे चिकने चरणनखसमूहवाले, स्नेहसे सोई गन्धर्वकामिनीके कपोलोकी पत्रलता द्वारा लाछित भुजरूपी तरु-शिखरवाले, लक्ष्मीके कर-कमलको पादपीठ वनानेवाले, गन्धर्वराज हंसकी लडकी **महाश्वेता** (है, जो) गन्धर्वनिवास **हेमकूट** पर्वतकी ओर पधारी है।'

कुछ देर चुप रहकर अपलक आखोंसे अनुनयपूर्वक मुझे देखते याचना सी दिखलाते (मुनिकुमारने) फिर कहा—

"वालिके, वालपनमें अचचल तेरी यह विश्वसनीय आकृति कल्याणी है। प्रार्थना करता हूँ, मेरी एक वात करेगी?"

७३ मैंने विनयपूर्वक हाथ जोडकर आदर दिखलाते कहा—"भगवन्, क्यो ऐसा कहते हैं? मैं कौन हू? आप जैसे समस्त त्रिभुवन-पूजनीय महात्मा, पुण्यके विना सारे पापोको दूर करनेवाली अपनी दृष्टि हमारे

यन्ति, किं पुनराज्ञाम्। तद्विश्रब्धमादिश्यतां कर्तव्यम्। अनुगृह्यतामयं जनः' इति।

७४ एवमुक्तश्च मया सस्नेहया सखीमिवोपकारिणीमिव प्राणप्रदामिव दृष्ट्या मामभिनन्द्य निकटवर्तिनस्तमाल-पादपात्पल्लवमादाय नीष्पीड्य तटशिलातले तेन गन्ध-गजमदसुरभिपरिमलेन रसेनोत्तरीयवल्कलैकदेशाद् विपाट्य पट्टिकं स्वहस्तकमलकनिष्ठिकानखशिखरेणाभि-लेख्येयं पत्रिका 'त्वया तस्यै कन्यकायै प्रच्छन्नमेका-किन्यै देया' इत्यभिधायार्पितवान्। इत्युक्त्वा च सा ताम्बूलभाजनादाकृष्य तामदर्शयत्। अहं तु तेन तत्स-बन्धिनालापेन शब्दमयेनापि स्पर्शसुखमिवान्तर्जनयता श्रोत्रविषयेणापि रोमोद्गमानुमितसर्वांगानुप्रवेशेन मदना-वेशमन्त्रेणेवावेश्यमाना तस्याः करतलादादाय तां वल्कलपत्रिकां तस्यामिमामभिलिखितामार्यामपश्यम्—

७५ 'दूरं मुक्तालतया विससितया विप्रलोभ्यमानो मे।
हंस इव दर्शिताशो मानसजन्मा त्वया नीतः॥'

७६ अनया च मे दृष्ट्या दिङ्मोहभ्रान्त्येव प्रणष्टवर्त्मनः, बहुलनिशयेवान्धस्य, जिह्वोच्छित्त्येव मूकस्य, इन्द्र-जालिकपिच्छिकयेवातत्त्वदर्शिनः, ज्वरप्रलापप्रवृत्त्येवा-सबद्धभाषिणः, दुष्टनिद्रयेव विषविह्वलस्य, लोका-यतिकविद्ययेवाधर्मरुचेः, मदिरयेवोन्मत्तस्य, दुष्टावेश-क्रिययेव पिशाचग्रहस्य, दोषविकारोपचयः, सुतरामक्रियत स्मरातुरस्य मे मनसः, येनाकुलीक्रियमाणा सरिदिव पूरेण विह्वलतामभ्यगमम्। तां च द्वितीयदर्शनेन कृत-महापुण्यामिवानुभूतसुरलोकवासामिव, देवताधिष्ठिता-

जैसोके ऊपर नही डालते। फिर आज्ञाकी वात क्या? इसलिये निधडक कर्तव्यका आदेश देकर, इस जनको अनुगृहीत करें।"

७४ मेरे ऐसा कहनेपर उन्होने स्नेहयुक्त सखी सी, उपकारिणी सी, प्राण-दायिनी दृष्टिसे मुझे अभिनदित किया (और) पासके तमालवृक्षसे पल्लव को शिलातलपर निचोडकर गजके मद जैसे सुगधयुक्त रससे, (अपने) चादरके वल्कलके एक कोनेसे पट्टी फाड कर उसपर अपने हस्तकमलकी कानी अगुलीके नखके अग्रभागसे लिखकर 'एकान्तमें चुपकेसे उस कन्याको इसे देना' कहते यह पत्रिका अर्पित की। यह कहकर तरलिकाने पानलदानसे निकाल कर उसे (पत्रको) दिखलाया। पुडरीक सम्वन्धी उस आलाप द्वारा शब्दमय होते भी भीतर स्पर्श-मुखको उत्पन्न करते कानोमें पडे विषय के भी रोमाचसे सारे अगमें प्रवेशका अनुमान कराने वाले कामदेवके मन्त्रके आवेश में आई मै, मैंने उसके हाथसे उस वल्कल-पत्रिकाको लेकर उसमें लिखी इस आर्या (छन्द) को देखा—

७५ 'कमलतंतु सी सफेद मुक्तालता द्वारा प्रलोभित हसकी तरह, आशा दिखलाती सी मेरे मानसजन्मा को तू दूर ले गई।'

७६ और उस (पत्रिकाके) देखने से मार्ग भूले को दिशा भ्रम सा, अन्धे को अमावस्याकी रात सा, मूक के लिये जिह्वा काटने सा, तत्व न देखने वालेको जादूगरकी कूची सा, प्रलापीको ज्वरसे वकवक करने की प्रवृत्ति सा, विषसे विकलको दुष्ट निद्रा सा, अधर्ममें रुचिवालेको नास्तिक विद्या सा, उन्मत्तको मदिरा सा, पिशाच लगे को दुष्ट आवेश क्रिया सा, कामदेव-पीडित मेरे मनको दोष-विकारोंके आधिक्यसे युक्त किया, जिससे आकुल हो मैं वाढ से नदीकी तरह विह्वल हो गई। दूसरी वार दर्शन करके महापुण्यात्मा **तरलिका**को, देवलोक-निवासका अनुभव किये सी, देवता द्वारा अधिष्ठित सी, वरप्राप्त सी, अमृत

मिव, लब्धवरामिव, पीतामृतामिव, समासादितत्रैलोक्य-राज्याभिषेकामिव, मन्यमाना, सततसंनिहितामपि दुर्लभदर्शनामिवातिपरिचितामप्यपूर्वामिव सादरमाभाष-माणा पार्श्वावस्थितामपि सर्वलोकस्योपर्यवस्थितामिव पश्यन्ती, कपोलयोरलकलताभगेषु च सोपग्रह स्पृशन्ती, विपरीतमिव परिजनस्वामिसबन्धमुपदर्शयन्ती, 'तरलिके, कथय कथ स त्वया दृष्ट ? किमभिहितासि तेन ? कियन्त कालमवस्थितासि तत्र ? कियदनुसरन्नस्मान्सा-वागत ?' इति पुन पुन पर्यपृच्छम्। अनयैव च कथया तया सह तस्मिन्नेव प्रासादे तथैव प्रतिषिद्धाशेषपरिजन-प्रवेशा दिवसमत्यवाहयम् ।

—पूर्वभागे

(८) अकाल उपदेश —

७७ अह तु तदाकर्ण्य तदवस्थयैवाप्रतीकारविकारोऽय तथापि सुहृदा सुहृदसन्मार्गप्रवृत्तो यावच्छक्ति न सर्वात्मना निवारणीय इति मनसावधार्याब्रुवम्—'सखे पुण्डरीक, सुविदितमेतन्मम । केवलमिदमेव पृच्छामि, यदेतदारब्ध भवता किमिद गुरुभिरुपदिष्टम् ? उत धर्मशास्त्रेषु पठितम् ? उत धर्मार्जनोपायोऽयम् ? उता-परस्तपसा प्रकार ? उत स्वर्गगमनमार्गोऽयम् ? उत व्रतरहस्यमिदम् ? उत मोक्षप्राप्तियुक्तिरियम् ? आहोस्विदन्यो नियमप्रकार ? कथमेतद्युक्त भवतो मनसापि चिन्तयितुम् ? किं पुनराख्यातुमीक्षितु वा अप्रबुद्ध इवानेन मन्मथहतकेनोपहासास्पदता नीयमान-मात्मान नाववुध्यसे ? मूढा हि मदनेनायास्यन्ते ? का वा सुखाशा साधुजननिन्दितेष्वेवविधेषु प्राकृतजनबहुमतेषु विषयेषु भवत ? स खलु धर्मबुद्ध्या विषलता सिंचति,

पिये सी, तीनो लोकका राज्याभिषेक पाये सी, जानती सदा पास रहनेवाली होते भी दुर्लभ दर्शनवाली सी, अति परिचित होते भी अपूर्व सी, आदरपूर्वक वात करती, पासमें स्थित भी सारे लोकोके ऊपर अवस्थित सी देखती, दोनो कपोलोकी घुघराली अलकोंको, और स्नेहके साथ छूती, सेविका-स्वामिनीके सम्बन्धको उलटा सी दिखाती मैंने वार वार पूछा—'तरलिके, बतला कैसे तूने उसे देखा ? उसने तुझे क्या कहा ? वहा कितने काल तक तू ठहरी ? हमारा अनुगमन करते कितना दूर वह आया ?' इसी कथामें उसके साथ प्रासादमें सारे परिजनो के प्रवेशको निषिद्ध किये इसी तरह मैंने दिन विताया ।

—पूर्वभाग

८. अकाल उपदेश—

७७ उस अवस्थामें विकार नही हटा सकता, तो भी असत्-मार्गपर आरूढ मित्रको यथाशक्ति सब तरहसे रोकना चाहिये, यह समझ कर मैंने कहा—'मित्र **पुण्डरीक**, यह मुझे भली प्रकार ज्ञात है। मैं केवल यही पूछता हू, जो आपने यह कार्य आरम्भ किया है, क्या इसे गुरुओने उपदेश दिया, या धर्मशास्त्रोंमें पढा, या धर्म कमानेका यह उपाय है, या तपस्याका दूसरा ढग है, या यह स्वर्ग जानेका मार्ग है, या यह व्रतका रहस्य है, या यह मोक्ष पानेकी युक्ति है, अथवा नियमका दूसरा तरीका है ? क्या मनसे भी आपको यह सोचना उचित है ? क्या फिर कहना या देखना उचित है ? अनजाने यह दुष्ट कामदेव तुम्हें उपहासास्पद बना रहा है, क्या तुम नही जानते ? मदन द्वारा मूढ पीडित होता है। साधुजनोंसे निंदित साधारण जनो द्वारा आदरित ऐसे विषयोमें आपको क्या सुखकी आशा हो सकती है ? वह आदमी तो धर्म समझ कर विष-लताको सीचता है, कमलकी माला जान खड्गकी लताका आलिगन करता है, काले अगुरुके धूमकी

कुवलयमालेति निस्त्रिंशलतामालिंगति, कृष्णागुरुधूम-लेखेति कृष्णसर्पमवगूहति, रत्नमिति ज्वलन्तमगारमभि-स्पृशति, मृणालमिति दुष्टवारणदन्तमुसलमुन्मूलयति, मूढो विषयोपभोगेष्वनिष्टानुबन्धिषु य सुखबुद्धिमारो-पयति । अधिगतविषयतत्त्वोऽपि कस्मात्खद्योत इव ज्योतिर्निर्वार्यमिद ज्ञानमुद्वहसि, यतो न निवारयसि प्रवलरज प्रसरकलुषितानि स्रोतासीवोन्मार्गप्रस्थितानी-न्द्रियाणि ? न नियमयसि वा क्षुभित मन ? कोऽयम-नगो नाम ? धैर्यमवलम्ब्य निर्भर्त्स्यतामय दुराचार' इत्येव वदत एव मे प्रवचनमाक्षिप्य प्रतिपक्ष्मान्तराल-प्रवृत्तबाष्पवेणिक प्रमृज्य चक्षु करतलेन मामवलम्ब्या-वोचत्—

७८ "सखे, किं बहूक्तेन । सर्वथा स्वस्थोऽसि । आशीविष-विपवेगविपमाणामेतेषा कुसुमचापसायकाना पतितोऽसि न गोचरे । सुखमुपदिश्यते परस्य । यस्य चेन्द्रियाणि सन्ति, मनो वा वर्तते, य पश्यति वा, शृणोति वा, श्रुतमवधारयति वा, यो वा शुभमिद न शुभमिदमिति विवेक्तुमल स खलूपदेशमर्हति । मम तु सर्वमेवेदमति-दूरापेतम् । अवष्टम्भो ज्ञान धैर्यं प्रतिसख्यानमित्यस्त-मितैपा कथा । कथमप्येव मे यत्नविधृतास्तिष्ठन्त्यसव । दूरातीत खलूपदेशकाल । समतिक्रान्तो धैर्यावसर । गता प्रतिसख्यानवेला । अतीतो ज्ञानावष्टम्भसमय । केन वान्येनास्मिन्समये भवन्तमपहायोपदेष्टव्यम्, उन्मा-र्गप्रवृत्तिनिवारण वा करणीयम् ? कस्यान्यस्य वा वचसि मया स्थातव्यम् ? का वापरस्त्वत्समो मे जगति वन्धु ? किं करोमि, यन्न शक्नोमि निवारयितु-मात्मानम् ? इयमनेनैव क्षणेन भवता दृष्टा दुष्टावस्था । तद् गत इदानीमुपदेशकाल । यावत्प्राणिमि तावदस्य

रेखा जान कालें सर्पको छाती लगाता है, रत्न जान जलते अगारको छूता है, कमलनाल जान दुष्ट गजके दतरूपी मुसलको उखाडता है। मूढ है वह, जो अनिष्टसे सम्बन्ध रखनेवाले विषय-भोगोमें सुख समझता है। विपयके तत्वज्ञ होते भी क्यो जुगनूमें ज्योति की तरह निवारणीय इस ज्ञानको धारण करते हो, जिससे कि प्रवल रजके प्रसारसे मलिन धाराओ की भाति उलटे मार्गपर चलती इन्द्रियो को नही रोकते, या क्षुब्ध मनको नियमन नहीं करते? कौन होता है यह कामदेव? धीरज धर इस दुराचारीको धमकाओ।' मेरे ऐसा कहते समय वातको वीचमें काटकर पलकोके वीच वहती अश्रुधारा युक्त नेत्रोको पोछकर हाथसे मेरा अवलम्ब ले पुडरीक वोला—

७८ "सखे, वहुत कहनेसे (लाभ) क्या? सव तरहसे तुम स्वस्थ हो? सर्पके विषके वेगसे भी भयंकर कामदेवके इन वाणोके तुम लक्ष्य नही हुये, अत दूसरेको भले उपदेश दो। (पर ऐसे) दूसरेको, जिसको कि इन्द्रिया हैं, मन है, जो देखता है, सुनता है, सुने हुयेको समझता है, जो शुभ-अशुभ का विवेक कर सकता है, वही उपदेशके योग्य है। मेरे तो यह सव वहुत दूर भाग गये, चित्त-नियत्रण, ज्ञान, धैर्य, अध्यात्म-ज्ञान की कथा खतम हो चुकी है। जैसे-कैसे विना यत्नके पकडे मेरे प्राण ठहरे हुये हैं। उपदेशका काल दूर चला गया। धैर्य का अवसर जाता रहा। अध्यात्म-ज्ञानकी वेला गत हो चुकी। ज्ञान द्वारा नियमनका समय वीत चुका। ऐसे समय (भला) आपको छोड़ कर कौन (दूसरा) उपदेश करेगा, या उलटे मार्ग पर जानेसे निवारण करेगा? कौन है दूसरा (जिसके) वचनपर मुझे रहना चाहिये? तुम्हारे समान ससारमें और दूसरा कौन मेरा वन्धु है? क्या करू, यदि मैं अपनेको निवारण नही कर सकता। अभी आपने यह वुरी अवस्था देखी। सो अव उपदेशका काल खतम हो चुका। जव तक सास ले रहा हूं, तव तक प्रलयकालके वारह सूर्योंकी किरणोकी धूपसे (भी)

कल्पान्तोदितद्वादशदिनकरकिरणातपतीव्रस्य मदनसतापस्य प्रतिक्रिया क्रियमाणामिच्छामि । पच्यन्त इव मेऽगानि, उत्क्वथ्यत इव हृदयम्, प्लुष्यत इव दृष्टि, ज्वलतीव शरीरम् । अत्र यत्प्राप्तकाल तत्करोतु भवान्' इत्यभिधाय तूष्णीमभवत् ।

७९ एवमुक्तेऽप्यहमेन प्राबोधयम् । यदा पुन पुन शास्त्रोपदेशविशदै सनिदर्शनै सेतिहासैश्च वचोभि सानुनय सोपग्रह चाभिधीयमानोऽपि नादात्कर्ण, तदाहमचिन्तयम्—'अतिभूमिमय गत, न शक्यते निवर्तयितुम् । इदानी निरर्थका खलूपदेशा । तत्प्राणपरिरक्षणेऽपि तावदस्य यत्नमाचरामि' इति कृतमतिरुत्थाय गत्वा तस्मात्सरस सरसा मृणालिका समुद्धृत्य कमलिनीपलाशानि जललवलाञ्छितान्यादाय गर्भधूलिकषायपरिमलमनोहराणि च कुमुदकुवलयकमलानि गृहीत्वागत्य तस्मिन्नेव लतागृहशिलातले शयनमस्याकल्पयम् । तत्र च सुखनिषण्णस्य प्रत्यासन्नवर्तिना चन्दनविटपादीना मृदूनि किसलयानि निष्पीड्य तेन स्वभावसुरभिणा तुषारशिशिरेण रसेन ललाटिकामकल्पयम्, आचरणतलादगचर्चा चारचयम् । अभ्यर्णपादप्रस्फुटितवल्कलविवरशीर्णेन च करसचूर्णितेन कर्पूररेणुना स्वेदप्रतिक्रियामकरवम् । उरोनिहितचन्दनद्रवार्द्रवल्कलस्य स्वच्छसलिलसीकरनिकरस्राविणा कदलीदलेन व्यजनक्रियामन्वतिष्ठम् । एव च मुहुर्मुहुरन्यदन्यन्नलिनीदलशयनमुपकल्पयत, मुहुर्मुहुश्चन्दनचर्चामारचयत, मुहुर्मुहुश्च स्वेदप्रतिक्रिया कुर्वत, कदलीदलेन चानवरत वीजयत समुदभून्मे मनसि चिन्ता—

८० "नास्ति खल्वसाध्य नाम भगवतो मनोभुव । क्वाय हरिण इव वनवासनिरत स्वभावमुग्धो जन, क्व च विविधविलासरसराशिर्गन्धर्वराजपुत्री महाश्वेता ? सर्वथा

तीव्र इस (मेरे) मदन-सतापका प्रतिकार करो। मेरे अग पक से रहे हैं, हृदय उवल सा रहा है, नेत्र भुन से रहे हैं, शरीर जल सा रहा है। यहा जो करना चाहिये, उसे आप करें।।" यह कहकर (पुड-रीक) चुप हो गया।

७९ ऐसा कहनेपर भी (मैं) ने उसे समझाया। जव फिर-फिर शास्त्रके उपदेशसे निर्मल, उदाहरण, इतिहासयुक्त वचनो द्वारा अनुनय और आग्रहके साथ कहे जाने पर भी वह कानमें नही लाया, तो मैंने सोचा— 'वहुत दूर जा चुका यह, (अव) रोका नही जा सकता। अव उपदेश व्यर्थ है। सो इसके प्राणोकी रक्षाके लिये यत्न करना है।' यह सोच कर उठके उस सरोवरसे जाकर सरस कमलनालोको उखाड जलकण-युक्त कमलिनीके पत्तोको, भीतरके केसरके कापायगन्धसे मनोहर और श्वेत कमलोको लाकर उसी लतागृहवाले शिलातलपर उसके लिये मैंने शय्या वनाई। वहा सुखपूर्वक वैठे उसके लिये पासके चन्दनवृक्ष आदिसे कोमल पत्रोको निचोडकर स्वभावत सुगधित हिम से शीतल उस रस से मैंने ललाटकी पट्टी वनाई, और चरणके तलवे तक अग का भूषण रचा। पासके वृक्षकी फूटी छालके छेदसे गिरी और हाथसे चूर्ण की कपूरधूलिसे पसीनेका प्रतिकार किया। छातीपर रक्खे चन्दनरससे भीगे वल्कलयुक्त उसे स्वच्छ जलकी फुहार झरने-वाले केलेके पत्तेसे पखा झलने लगा। इस प्रकार वार-वार नई-नई कमलपत्रकी शय्या वनाते, वार-वार चन्दन चर्चित करते, वार-वार स्वेदकी चिकित्सा करते और केलेके पत्रसे (पखा) झलते मेरे मनमें चिन्ता पैदा हुई—

८० "भगवान् कामदेवके लिये (कोई वात) असाध्य नही है। कहा हरिन जैसा वनवासमें निरत, स्वभावत मुग्ध यह पुरुप, और कहा नाना विलास-रसोकी राशि, गन्धर्वराज-कन्या महाश्वेता? सर्वथा कामदेव के लिये ससारमें कुछ भी दुर्घट, दुष्कर, अप्राप्य या अकरणीय नही

नहि किंचिदस्य दुर्घट दुष्करमनायत्तमकर्तव्य वा जगति । दुरुपपादेष्वर्थेष्वप्ययमवज्ञया विचरति । न चाय प्रतिकलयितु शक्यते । का वा गणना सचेतनेषु, अपगतचेतनान्यपि सघट्टयितुमल यद्यस्मै रोचते । कुमुदिन्यपि दिनकरकरानुरागिणी भवति, कमलिन्यपि शशिकरद्वेषमुज्झति, निशापि वासरेण सह मिश्रतामेति, ज्योत्स्नाप्यन्धकारमनुवर्तते, छायापि प्रदीपाभिमुखमवतिष्ठते, तडिदपि जलदे स्थिरता व्रजति, जरापि यौवनेन सचारिणी भवति । कि वा तस्य दु साध्यमपरम्, एवविधो येनायमगाधगाम्भीर्यसागरस्तृणवत् लघुतामुपनीत ? क्व तत्तप, क्वेयमवस्था ? सर्वथा निष्प्रतीकारेयमापदुपस्थिता । किमिदानी कर्तव्यम् ? किंवा चेष्टितव्यम् ? क देश गन्तव्यम् ? किं शरणम् ? को वोपाय ? क सहाय ? क प्रकार ? का युक्ति ? कः समाश्रयो येनास्यासवो धार्यन्ते ? केन वा कौशलेन, कतमया वा युक्त्या, कतरेण वा प्रकारेण, केन वावष्टम्भेन, कया वा प्रज्ञया, कतमेन वा समाश्वासनेनाय जीवेत् ?' इत्येते चान्ये च मे विषण्णहृदयस्य सकल्पाः प्रादुरासन् ।

८१ (कपिंजल) पुनश्चाचिन्तयम्—'किमनया ध्यातया निष्प्रयोजनया चिन्तया । प्राणास्तावदस्य येन केनचिदुपायेन शुभेनाशुभेन वा रक्षणीया । तेषा च तत्समागममेकमपहाय नास्त्यपर सरक्षणोपाय । बालभावादप्रगल्भतया च तपोविरुद्धमनुचितमुपहासमिवात्मनो मदनव्यतिकर मन्यमानो नियतमेकोच्छ्वासावशेषजीवितोऽपि नाय तस्या स्वयमभिगमनेन पूरयति मनोरथम् । अकालान्तरक्षमश्चायमस्य मदनविकार । सततमतिगर्हितेन कृत्येनापि रक्षणीयान्मन्यन्ते सुहृदसून्साधव । तदति-

है। दुर्लभ वस्तुओके प्रति भी वह तिरस्कारके साथ विचरता है। उसे प्रतिकूल नही किया जा सकता। यदि चाहे तो चेतनोकी गिनती ही क्या, अचेतनोको भी वह मिला सकता है, (तभी तो) कुमुदिनी भी सूर्यके किरणोमे अनुरागवाली होती, कमलिनी भी चन्द्रकिरणोंके प्रति द्वेषको छोड देती, रात्रि भी दिनके साथ मिल जाती, चादनी भी अन्धकारका अनुगमन करती, छाया भी दीपकके सामने ठहरती, विजली भी मेघमें स्थिर हो जाती, जरा भी यौवनके साथ चलनेवाली होती। उसके लिये दूसरा क्या दुस्साध्य है, जिसने कि ऐसे सागरसे अगाध गम्भीरतावाले इस (पुरुप) को तृणकी तरह हलका वना दिया? कहा वह तपस्या, कहा यह अवस्था? यह बिल्कुल ही प्रतीकार-रहित आफत आ गई। अव क्या करना चाहिये? क्या प्रयास करना चाहिये? किस देशमें जाना चाहिये? कौन शरण है, कौन उपाय है, कौन सहायक है, कौन ढग है, क्या युक्ति है, कौन आश्रय है, जिससे कि इसके प्राण वचायें जायें? किस कौशलसे, कौन सी युक्तिसे, कौन से ढगसे, किस नियमसे, कौन प्रज्ञासे, या किस तरह ढारस वधानेसे यह जीवित रहेगा।' यह और (ऐसे) दूसरे सकल्प-विपाद मेरे मनमें प्रकट हुये।

८१. फिर मैंने सोचा—'इस वेकारकी मनकी चिन्तासे क्या वनना है? वुरे या भले जिस किसी उपायसे इसके प्राणोकी रक्षा करनी है। उनके रखनेका उपाय उस (कन्या) के समागम को छोडकर और दूसरा नही है। लडकपनके कारण, वेसमझीसे तपके विरुद्ध अनुचित उपहास की भाति अपने मदन-विकारको समझते निश्चय ही एक सास बचा जीवन होते भी, यह स्वयं उसके पास जा मनोरथ नही पूरा करेगा। इसका यह काम-विकार भी देर तक सह्य नही होगा। सदा अति निंदित कार्यसे भी मित्रके प्राणोकी सदा रक्षा करनेको साधु लोग (उचित) मानते हैं। सो यह अति लज्जाजनक अकरणीय (काम)

ह्लेपणमकर्तव्यमप्येतदस्माकमवश्यकर्तव्यतामापतितम् किं चान्यत्क्रियते। का चान्या गतिः। सर्वथा प्रयामि तस्याः सकाशम्। आवेदयाम्येतामवस्थाम्' इति चिन्तयित्वा कदाचिदनुचितव्यापारप्रवृत्तं मा विज्ञाय सजातलज्जो निवारयेदित्यनिवेद्यैव तस्मै तत्प्रदेशात्सव्याजमुत्थायागतोऽहम्। तदेवमवस्थिते यदत्रावसरप्राप्तम्, ईदृशस्य चानुरागस्य सदृशम्, अस्मदागमनस्य चानुरूपम्, आत्मनो वा समुचितं तत्र भवती प्रभवति' इत्यभिधाय किमियं वक्ष्यतीति मन्मुखासक्तदृष्टिस्तूष्णीमासीत्।

(९) प्राणयाञ्चा—

८२. अहं (महाश्वेता) तु तदाकर्ण्य सुखामृतमये ह्रद इव निमग्ना, रतिरसमयोदधिमिवावतीर्णा सर्वानन्दानामुपरि वर्तमाना सर्वमनोरथानामग्रमिवाधिरूढा, सर्वोत्सवानामतिभूमिमिवाधिशयाना, तत्कालोपजातया लज्जया किंचिदवनम्यमानवदनत्वादस्पृष्टकपोलोदरैः ग्रथितैरिवोपर्युपरिपतनानुबन्धदर्शितमालाक्रमैः, अप्राप्तपक्ष्मसंश्लेषतयोपजातप्रथिमभरैरमलैरानन्दबाष्पजलबिन्दुभिः स्रवद्भिरावेद्यमानप्रहर्षप्रसरा तत्क्षणमचिन्तयम्। दिष्ट्या तावदयमनङ्गो मामिव तमप्यनुबध्नाति, यत्सत्यमेतेन मे संतापयताप्यंशेन दर्शितानुकूलता। यदि च सत्यमेव तस्येदृशी दशा वर्तते, ततः किमिव नोपकृतमनेन, किं वा नोपपादितम्? कोवानेनापरः समानो बन्धुः, कथं वा कपिञ्जलस्य स्वप्नेऽपि वितथा भारती प्रशान्ताकृतेरस्माद्वदनान्निष्क्रामति। इत्थंभूते किं मयापि प्रतिपत्तव्यम्, तस्य वा पुरः किमभिधातव्यम्, इति।

८३. एवं विचारयन्त्येव प्रविश्य ससंभ्रमा प्रतीहारी मामकथयत्—'भर्तृदारिके, त्वमस्वस्थशरीरेति परिजना-

भी हमारे लिये अवश्य-करणीय हो गया। दूसरा क्या किया जाये? और दूसरा उपाय क्या है? जैसे भी हो, उस कन्या के पास जाता हूं। उसे इसकी अवस्था बतलाऊंगा। 'यह सोचकर' शायद अनुचित काम में लगा जानकर लज्जित हो मुझे रोके, यह सोच उसे बिना बतलाये ही उस जगहसे बहाना बना उठकर मैं आया हूं। सो ऐसी स्थितिमें जो कालोचित हो, ऐसे अनुरागके लिये उचित और हमारे आगमनके अनुरूप हो, या तुम्हारे लिये समुचित हो, उसे करनेकी आपही अधिकारिणी है।" यह कहकर 'यह क्या कहेगी' यह सोचता (कपिंजल) मेरे मुख पर दृष्टि लगाये चुप हो गया।

९. प्राणभिक्षा—

८२ सो सुनकर सुखके अमृत-सरोवरमें निमग्न सी, रतिरस-युक्त समुद्रमें उतरी सी, सारे आनन्दो के ऊपर स्थित सी, सारे मनोरथोके शिखरपर आरूढ सी, सारे उत्सवोकी अविरयकामें सोई सी, तत्काल उत्पन्न हुई लज्जासे किंचित् झुका मुख होनेसे कपोलोके न छूये, ऊपर गिरनेकी इच्छा दिखाते गुथी माला-क्रमोसे, पलकोके न मिलने से मोटे हो गिरते निर्मल आनन्दाश्रु-जलबिन्दुओ द्वारा हर्षके आधिक्य-को सूचित करती उस क्षण मैंने सोचा—'अहो यह अनग मेरी तरह उसे भी पीडित कर रहा है, सो सचमुच मुझे सतप्त करते इसने एक अशमें अनुकूलता दिखलाई है। यदि सचमुच ही उसकी ऐसी दशा है, तो मदन ने क्या नही उपकार किया, क्या नही पूरा कर दिया? इसके समान दूसरा कौन बन्धु है? स्वप्नमें भी प्रशान्त आकृतिवाले **कपिंजल**के मुखसे व्यर्थकी वाणी कैसे निकल सकती है? ऐसा होनेपर मुझे भी क्या करना चाहिये, उसके सामने क्या कहना चाहिये?

८३ जब मैं ऐसे विचार कर रही थी, तभी प्रतीहारीने जल्दी-जल्दी प्रवेश कर मुझसे कहा—'स्वामिपुत्री, तुम्हारा शरीर अस्वस्थ है, यह

दुपलभ्य महादेवी प्राप्ता' इति। तच्च श्रुत्वा कपिजलो महाजनसमर्दभीरु सत्वरमुत्थाय 'राजपुत्रि, महानयमुपस्थित कालातिपात। भगवाँश्च भुवनत्रयचूडामणिरस्तमुपगच्छति दिवसकर। तद् गच्छामि। सर्वथाभिमतसुहृत्प्राणरक्षादक्षिणार्थमयमुपरचितोऽजलि। एष मे परमो विभव,' इत्यभिधाय प्रतिवचनकालमप्रतीक्ष्यैव पुरोयायिनाम्बाया प्रविशता कनकवेत्रलताकरेण प्रतीहारिजनेन कचुकिलोकेनागृहीतताम्बूलकुसुमपटवासागररागेण चामरव्यग्रपाणिना कुब्जकिरातबधिरवामनवर्षवरकलमूकानुवीतेन परिजनेन सर्वत सरुद्धे द्वारदेशे कथमप्यवाप्तनिर्गम प्रययौ।

८४ अम्बा तु मत्समीपमागत्य सुचिर स्थित्वा स्वभवनमयासीत्। तया तु तत्रागत्य किं कृत किमभिहित किमाचेष्टितमिति शून्यहृदया सर्वं नालक्षयम्। गताया च तस्यामस्तमुपगते भगवति हारीतहरितवाजिनि सरोजिनीजीवितेश्वरे चक्रवाकसुहृदि सवितरि, लोहितायमाने पश्चिमाशामुखे, हरितायमानेषु कमलवनेषु, नीलायमाने पूर्वदिग्भागे, पातालपककलुषेण महाप्रलयजलधिपय पूरेणेव तिमिरेणावष्टभ्यमाने जीवलोके किंकर्तव्यतामूढा तामेव तरलिकामपृच्छम्—

८५ 'अयि तरलिके, कथ न पश्यसि दृढमाकुल मे हृदयम्। अप्रतिपत्तिविह्वलानि चेन्द्रियाणि। न स्वयमण्वपि कर्तव्यमलमस्मि ज्ञातुम्। उपदिशतु मे भवती यदत्र साप्रतमयमेव त्वत्समक्षमेवाभिधाय गत कपिजल। यदि तावदितरकन्यकेव विहाय लज्जाम्, उत्सृज्य धैर्यम्, अवमुच्य विनयम्, अचिन्तयित्वा जनापवादम् अतिक्रम्य सदाचारम्, उल्लघ्य शीलम्, अवगणय्य कुलम्, अगीकृत्यायशोरागान्ववृत्ति, अननुज्ञाता पित्रा, अननुमोदिता-

वात परिजनोसे जानकर महादेवी आई है'। यह वात सुनकर लोगोकी भीड़में भीरु कपिंजलने तुरन्त उठकर कहा—'राजपुत्री, वहुत देर हो गई। भगवान् त्रिभुवन चूडामणि सूर्य अस्त हो रहे है। सो जाता हू। प्रिय मित्रके प्राणोकी रक्षाकी भिक्षाके लिये सव तरहसे मैं यह हाथ जोड रहा हूँ। यही मेरे पास परम धन है,' और उत्तरकी प्रतीक्षा किये विना ही माके आगे-आगे चलने वाले सोनेके वेतलता हाथमें लिये प्रतीहारियो, कचुकियो ताम्बूल-पुष्प-सुगधितचूर्ण-अगराग लिये चवर डुलानेमें लगे हाथवाले कुवडे-किरात-वहिरे-वावन-नपुसक-गूगे परिजनोके प्रवेशसे चारो ओरसे रुधे दर्वाजेमे किसी तरह रास्ता पाकर चला गया।

८४ मेरे पास आ देर तक ठहरकर मा अपने भवन चली गई। उसने वहा क्या किया, क्या कहा, क्या आचरण किया, यह सव शून्य-हृदया मैंने नही जाना। उसके चले जाने पर हारिल जैसे हरे अश्व-वाले कमलिनी-प्राणेश्वर, चकवा के मित्र, भगवान् सूर्य अस्त हो गये। पातालके पक जैसे मलिन, महाप्रलयके समुद्रजलकी धारा समान अन्धकारसे ससारके ढक जाने पर किंकर्तव्यविमूढ हुई मैंने उसी तर-लिकासे पूछा—

८५ 'अयि तरलिके, मेरे अति व्याकुल हृदय को क्या तू नहीं देख रही है? अरुचिसे मेरी इन्द्रिया विह्वल है। यहा क्या करणीय है, इसे अणु मात्रभी जानने में मैं स्वय असमर्थ हू। यहा जो उचित है, उसे तू वतला, तेरे सामने ही कपिंजल ऐसा कह कर गया है। यदि और कन्याओकी तरह लज्जा छोड कर, धैर्य हटाकर, विनय त्याग कर, जन-निंदाकी पर्वाह न कर, सदाचारका अतिक्रमण कर, शीलका उल्लघन कर, कुलका तिरस्कार कर, अयशको अगीकार कर, पितासे अनुज्ञा लिये विना, माताका अनुमोदन पाये विना, राग से अन्धी हो, स्वय (प्रिय के) पास जा पाणिग्रहण कराऊ, (तो) इस प्रकार गुरुजनोकी वातका

मात्रा, स्वयमुपगम्य ग्राहयामि पाणिम्। एवं गुरुजनातिक्रमादधर्मो महान्। अथ धर्मानुरोधादितरपक्षावलम्बनद्वारेण मृत्युमगीकरोम्येवमपि प्रथम तावत्स्वयमागतस्य प्रथमप्रणयिनस्तत्र भवत कपिंजलस्य प्रणयप्रसरभग। पुनरपर यदि कदाचित्तस्य जनस्य मत्कृतादाशाभगात्प्राणविपत्तिरुपजायते, तदपि मुनिजनवधजनित महदेनो भवेत्' इत्येवमुच्चारयन्त्यामेव मयि चन्द्रोदयजन्मना विरलविरलेनालोकेन वसन्तवनराजिरिव कुसुमरजसा धूसरता वासवी दिगयासीत्

——पूर्वभागे

(१०) **कादम्बरी-स्नेहः——**

८६. आसीच्चास्य (चद्रापीडस्य) मनसि——'शेषेन्द्रियाण्यपि मे वेधसा किमिति लोचनमयान्येव न कृतानि। कि वानेन कृतमवदात कर्म चक्षुषा यदनिवारितमेना पश्यति ? अहो, चित्रमेतदुत्पादित वेधसा सर्वरमणीयानामेक धाम। कुत एते रूपातिशयपरमाणव ? यन्नूनमेनामुत्पादयतो विधे करतलपरामर्शक्लेशेन ये विगलिता लोचनयुगलादश्रुजलबिन्दवस्तेभ्य एतानि जगत्ति कुमुदकमलकुवलयसौगन्धिकवनान्युत्पन्नानि, इत्येव चिन्तयत एवास्य तस्यानयनयुगले निपपात चक्षु। तदा तस्या अपि नूनमय स केयूरकेणावेदित इति चिन्तयन्त्या रूपातिशयविलोकनविस्मयस्मेर निश्चलनिबद्धलक्ष चक्षुस्तस्मिन्सुचिर पपात।

लोचन प्रभावलितस्तु कादम्बरी दर्शनविह्वलोऽचल इव तत्क्षणमराजत **चन्द्रापीडः**। दृष्ट्वा च प्रथम रोमोद्गम, ततो भूषणरव, तदनु कादम्बरी समुतस्थौ। अथ

उल्लघन करनेसे महा अधर्म होगा। यदि धर्मके अनुरोधसे दूसरी बात स्वीकार कर मृत्यु अगीकार करता हू, तो स्वय आये आप **कपिंजल**का स्नेह पहिले भग होगा। फिर यदि कही मेरे आशाभग करनेसे उस जनका प्राण जाये, तो यह भी मुनिजनकी हत्या करने का भारी पाप होगा।' मेरे ऐसा कहते समय ही चन्द्रमाके उदयसे उत्पन्न विरल-विरल प्रकाशसे, कुसुमशर द्वारा वसन्तकी वनपक्ति की तरह पश्चिम दिशा धूसर हो गई।

—पूर्वभाग

१०. कादंबरीका स्नेह—

८६ और मेरे (**चन्द्रापीड़**के) मनमें हुआ—'ब्रह्माने मेरी बाकी इन्द्रियोको भी लोचनमय ही क्यो न बनाया। इस नेत्रने कौन सा पुण्य किया, जो कि वह बेरोकटोक **कादम्बरी** को देख रहा है? अहो विधाताने (कादम्बरी के रूप में यह) सारे रमणीय (गुणो) का एक विचित्र धाम उत्पन्न किया है! कहासे उसने इन अत्यन्त सुन्दर परमाणुओको पाया? सो अवश्य इसे बनाते विधाताके हाथके स्पर्शसे हुये दु ख के कारण दोनो नेत्रोसे जो अश्रु-कण गिरे, उनसे ससारमें कुमुद-कमल-कुवलयके सुगधित वन उत्पन्न हुये।' ऐसा सोचते ही **कादबरी** के युगल-नयनोपर उसकी दृष्टि पडी। तब उसके भी 'अब **केयूरक** ने जिसकी बात की, अवश्य यही वह (पुरुष) हैं', यह सोचती अति सुन्दर वस्तुको देख विस्मय से मदहासयुक्त निश्चल उसके नेत्र देर तक उसके ऊपर पडे रहे।

उस समय **चन्द्रापीड़** लोचनकी प्रभामे उज्ज्वल **कादंबरी**के दर्शनसे विह्वल अचल से शोभित हो रहे थे। देख कर पहले रोमाच, फिर भूषणका शब्द हुआ, उसके बाद **कादंबरी** उठ खडी हुई। तब कामदेव ही ने उसमें पसीना पैदा किया, जल्दी-जल्दी उठनेका परिश्रम तो बहाना था। उसके कपन ने ही गति रोक दी, नूपुरके

तस्या कुसुमायुध एव स्वेदमजनयत्, ससभ्रमोत्थानश्रमो व्यपदेशोऽभवत्। उरुकम्प एव गति रुरोध, नूपुररवाकृष्टहसमण्डलमपयशो लेभे। नि श्वासप्रवृत्तिरेवाशुकचल चकार, चामरानिला निमित्तता ययौ। अन्त. प्रविष्ट चन्द्रापीडस्पर्शलोभेनैव निपपात हृदये हस्त, स एव कर. स्तनावरणव्याजो बभूव। आनन्द एवाश्रुजलमपातयत्, चलितकर्णावतसकुसुमरजो व्याजमासीत्। लज्जैव वक्तु न ददौ, मुखकमलप्रकारकेतकीकण्टकक्षति. साधारणतामवाप। वेपथुरेव करतलमकम्पयत्, निवेदनोद्यतप्रतीहारीनिवारण कपटमभूत्।

८७ तदा च कादम्बरी विशतो मन्मथस्यापि मन्मथ इवाभूद् द्वितीय तया सह यो विवेश चन्द्रापीडहृदयम्। तथाहि असावपि तस्या रत्नाभरणद्युतिमपि तिरोधानममस्त हृदयप्रवेशमपि परिग्रहमगणयत्, भूषणरवमपि सभाषणममन्यत, सर्वेन्द्रियाहरणमपि प्रसादमचिन्तयत्, देहप्रभासपर्कमपि सुरतसमागमसुखमकल्पयत्।

८८ **कादम्बरी** तु कृच्छ्रादिव दत्तकतिपयपदा **महाश्वेतां** स्नेहनिर्भर चिरदर्शनजातोत्कण्ठ सोत्कण्ठ कण्ठे जग्राह। महाश्वेतापि दृढतरदत्तकण्ठग्रहा तामवादीत्—'सखि कादम्बरि, **भारतवर्षे** राजानेकवरतुरगखुरमुखोल्लेखदत्तचतु समुद्रमुद्रो रक्षितप्रजापीडस्**तारापीडो** नाम। तस्याय निजभुजशिलास्तम्भविश्रान्तविश्वविश्वभरापीडश्**चन्द्रापीडो** नाम सूनुर्दिग्विजयप्रसगेनानुगतो भूमिमिमाम्। एप च दर्शनात्प्रभृति प्रकृत्या मे निष्कारणबन्धुता गत.।

शब्दसे आकर्षित हस तो (यो ही) अपयशभागी बने। श्वासकी गतिने ही वस्त्रको चचल कर दिया, चंवरकी हवा तो निमित्त मात्र हुई। अतरमें प्रविष्ट **चन्द्रापीड़**के छूनेके लोभ से ही हृदयपर हाथ गया, जो स्तन ढाकनेका बहाना हुआ। आनदने ही आसुओंके जलको गिराया, कर्णभूपण बने हिलते फूलके केसर (का पडना तो) बहाना मात्र हुआ। लाजने ही कहने नही दिया, मुखकमलके गन्धसे आये भवरे साधन (मात्र) बने। मदनके बाणके प्रथम प्रहारकी पीडा ही ने सीत्कार कराया, कुसुमसमूहोंके केतकी (केवडे) के काटोका चुभना कारण बना। कपनने ही करतलको कपाया, निवेदनके लिये उद्यत प्रतीहारीका रोकना बहाना (भर) हुआ।

८७ तब **कादंबरी** के भीतर प्रवेश करते कामदेव का भी दूसरे कामदेव सा हुआ, जो कि कादबरी के साथ चन्द्रापीडके हृदयमें प्रविष्ट हुआ, क्योंकि चन्द्रापीड ने कादम्बरी के रत्नभूषणोंकी द्युतियो को देखनेमें बाधक माना, हृदयमें प्रवेश करनेको भी रहनेका स्थान जाना, भूषणकी आवाजको भी वार्तालाप माना, सारे इन्द्रियोके चुरानेको भी प्रसाद समझा, देह-प्रभाके सम्पर्कको भी सुरत-समागमका सुख कल्पना किया।

८८ **कादबरी**ने कठिनाईसे कुछ कदम चलकर बडे स्नेहके साथ देखने पर उत्कठित हो लालसापूर्वक **महाश्वेता**को अकवार दिया। महाश्वेताने भी बहुत दृढतासे कठग्रह देकर उससे कहा—"सखि **कादंबरी, भारतवर्ष**में अनेक श्रेष्ठ अश्वोंके खुरोंके मुखोसे खोदकर चारो समुद्रो पर मुद्रा लगानेवाले, पीडा से प्रजाके रक्षक, **तारापीड़** नामक राजा है। उनके यह पुत्र, अपने भुजरूपी पापाण-स्तम्भपर विश्राम किये सारी धरतीके आपीड (आभूषण) **चन्द्रापीड़** दिग्विजयके प्रसगसे इस भूमिमें आये। यह देखने मात्रमें स्वभावत मेरे अकारण बन्धु हो गये। विशेषत स्वभावसे सरल (अपने) गुणो द्वारा सभीका सग छोड़कर निष्ठुर हुई मेरी चित्तवृत्तिको आकर्षित करते वर्तमान हैं। (संसार

प्रधावितेन गत्वा हृदयेनानीत इव स्तनाभ्यन्तरे समदृश्यत। विकचकुवलयदामदीर्घया च दृष्ट्या निपीत इव कपोलतले समलक्ष्यत। सर्वासामेव च तदा तासा कन्यकाना तिर्यक्पश्यन्तीना त कुतूहलापागचुम्बिन्या दृष्ट्या निर्गन्तुकामा इव कर्णपूरमधुकरै सम बभ्रमुस्तरलास्तारका।

९० **कादम्बरी** तु सविभ्रमकृतप्रणामा **महाश्वेतया** सह पर्यंके निषसाद। ससभ्रम परिजनोपनीतायां च शयनशिरोभागनिवेशितायां धवलाशुकप्रच्छदपटायां हेमपादाकितायां पीठिकायां **चन्द्रापीडः** समुपाविशत्। महाश्वेतानुरोधेन च विदितकादम्बरीचित्ताभिप्रायां सवृतमुखन्यस्तहस्तदत्तशब्दनिवारणसज्ञा प्रतीहार्यो वेणुरववीणाघोषान्गीतध्वनीन्मागधीजयशब्दांश्च सर्वतो निवारयाचक्रु। त्वरितपरिजनापनीतेन च सलिलेन **कादम्बरी** स्वयमुत्थाय महाश्वेतायाश्चरणौ प्रक्षाल्योत्तरीयाशुकेनापमृज्य पुन पर्यंकमारुरोह। **चन्द्रापीडस्यापि** कादम्बर्या सखी रूपानुरूपा जीवितनिर्विशेषा सर्वविश्रम्भभूमिर्मदलेखेति नाम्ना बलादनिच्छतोऽपि प्रक्षालितवती चरणौ। महाश्वेता तु कर्णाभरणप्रभावर्षिण्यपागदेशे सप्रेम पाणिना स्पृशन्ती, मधुकरभरपर्यस्त च कर्णावतस समुत्क्षेपयन्ती, चामरपवनविधूतिपर्यस्तालकवल्लरीमनुप्रव्रजमाना कादम्बरीमनामय पप्रच्छ। सा तु सखीप्रेम्णा गृहनिवासेन कृतापराधेवानामयेनैव लज्जमाना कृच्छ्रादिव कुशलमाचचक्षे।

९१ तदा समुपजातशोकापि च महाश्वेतामुखनिरीक्षणतत्परापि मुहुर्मुहुरपागविक्षेपप्रचलिततरलतरतारसारोदर चक्षुर्मण्डलितचापेन भगवता कुसुमधन्वना वलान्नीयमान चन्द्रापीडपीडनयेव न शशाक निवारयितुम्। तेनैव क्षणेन तेनासन्नसखीकपोलसक्रान्तेनेर्ष्यया रोमाच-

दृष्टि द्वारा मानो पिये हुये कपोल तलपर रक्खे से थे। उस समय चद्रापीडको तिरछी देखती उन सभी कन्याओकी कुतूहलयुक्त नेत्र चूमनेवाली दृष्टि द्वारा निकलनेकी इच्छावाली चचल पुतलिया कर्णभूपणके मघुकरोके साथ मानो घूमने लगीं।

१० कादम्वरी विलास सहित प्रणाम करके **महाश्वेता**के साथ पलगपर वैठ गई। पलगके सिरहानेकी ओर रखी, सफेद रेशमी आवरणवाली, सोनेके पावोंसे अकित, परिजनो द्वारा जल्दीसे लाई गई पीठिका-पर चन्द्रापीड वैठे? महाश्वेताके कहनेपर कादम्वरी मनके अभि-प्रायको जान गई, मुदे मुहपर रक्खे हाथ द्वारा दिये रोकनेके सकेतको पा प्रतिहारियोने वेणुके शब्दो, वीणाके घोपो, गीतकी ध्व-नियो, मागधियो (वन्दी स्त्रियो) के जय-शब्दोको चारो ओर वन्द करा दिया। परिजनो द्वारा तुरन्त लाये जलसे कादम्वरी स्वय उठ-कर महाश्वेताके दोनो चरणोको धोकर चुनरीके कपडेसे पोछकर फिर पलग पर वैठ गई। रूपके अनुरूप प्राण-समान सारे विश्वासोकी भूमि **मदलेखा** नामक कादम्वरीकी सखीने अनिच्छुक **चन्द्रापीड़**के चरणोका जवर्दस्ती प्रक्षालन किया। महाश्वेताने कर्ण-भूपणकी प्रभा वरसानेवाले नेत्रके कोनेको प्रेम-सहित हाथसे छूती, मधुकरोके भारसे गिरे कर्णभूपको ऊपर उठाती, चवरकी हवासे कापती विखरी अलकलता को उसके स्थानपर रखती कादम्वरी से कुशल-मगल पूछा। सखीके प्रेमके कारण घरमें रहनेसे अपराध किये सी, स्वस्थ होने से ही लजाती सी, उसने कठिनाईसे कुशल-मगल वतलाया।

११ तव शोकाकुल भी, महाश्वेताके मुखके देखनेमें तत्पर भी, वार-वार नेत्रकी गालेसे चचल तरल पुतली युक्त नेत्रको, लिवाये जाते च... की पीड़ा की तरह नवाये धनुप वाले भगवान् **कामदेव** न रोक सके। उसी क्षण **कादम्बरी पासकी** ...

भिद्यमानकुचतटनश्यत्प्रतिबिम्बेन विरहव्यथास्वेदा-र्द्रवक्ष स्थलघटितशालभञ्जिकाप्रतिमेन सपत्नीरोषाग्नि-मिपता दौर्भाग्यशोकमानन्दजलतिरोहितेनान्धतादु -खमभजत सा। मुहूर्तापगमे च ताम्बूलदानोद्यता **महा-श्वेता** तामभाषत—

९२ 'सखि **कादम्बरि**, सप्रतिपन्नमेव सर्वाभिरस्माभिरयमभिनवा-गतश्चन्द्रापीड आराधनीय । तदस्मै तावद्दीयताम्' इत्युक्ता च किंचिद्विवर्तितावनमितमुखी शनैरव्यक्तमिव 'प्रिय-सखि, लज्जेऽहम् । अनुपजातपरिचयाप्रागल्भ्येनानेन गृहाण। त्वमेवास्मै प्रयच्छ' इत्युवाच सा ताम्। पुन· पुनरभिधीयमाना च तया कथमपि ग्राम्येव चिराद्दाना-भिमुख मनश्चक्रे । महाश्वेतामुखादनाकर्षितदृष्टिरेव वेपमानागयष्टि , आकुललोचना, स्थूलस्थूल नि श्व-सन्ती, निजशरप्रहारमूर्च्छिता मन्मथेन स्नपितेव स्वेद-जलविसरनिमज्जनभयेन च हस्तावलम्बनमिव याचमाना, साध्वसपरवशा पतामीति लगितुमिव कृतप्रयत्ना प्रसार-यामास ताम्बूलगर्भ हस्तपल्लवम् ।

९३ **चन्द्रापीडस्तु** जयकुजरकुम्भस्थलास्फालनसक्रान्तसिन्दूर-मिव स्वभावपाटलम्, धनुर्गुणाकर्पणकृतकिणश्यामलम्, कचग्रहाकृष्टिरुदितारिलक्ष्मीलोचनपरामर्शलग्नाजनबिंदु -मिव विसर्पन्नखकिरणतयातिरभसेन प्रधाविताभिरिव विवर्धिताभिरिव प्रहसिताभिरिवागुलीभिरुपेत, स्पर्श-लोभाच्च तत्कालकृतसनिवेशा सरागा पचापीन्द्रिय-वृत्तीरपरागुलीरुद्वहन्त प्रसारितवान् पाणिम् । तत्र च

लग्न होनेकी ईर्ष्यासे विरहकी पीडाके स्वेदसे भीगी, छाती पर लगी पुतली की प्रतिमावाले, सौतके रोष से उभडते अभाग्यके शोकको आनदजल द्वारा उस रोमाच होते स्तनतटपर लुप्त होते प्रतिविम्वसे अन्धपनके दु खको प्राप्त हुई। क्षण भर वाद पान देनेके लिये तैयार कादम्वरीमे महाश्वेताने कहा—

९२ 'सखि **कादंबरी**, हम सवने पा ही लिया है, नये आये इन **चन्द्रापीड़**की आराधना करनी चाहिये। सो इन्हें दो।' कुछ घूमे झुके मुखवाली (कादंवरीने) धीरेसे अस्पष्ट सा कहा, "प्रिय सखि, इनके साथ अधिक परिचय न होनेसे मैं लजाती हू। लौ, तुम ही इन्हें दो।" और फिर-फिर उसके कहने पर जैमे-तैसे ही ग्रामीण स्त्रीकी तरह देरसे पान देनेका मन उसने किया। महाश्वेताके मुखसे दृष्टिको विना खीचे ही कापते देह, व्याकुल लोचनवाली लवी-लवी सास लेती, कामदेव के निज वाणोके प्रहारसे मूर्छित, पसीनेके जलोसे नहाई सी, परिश्रम-के जलसमूहमें डूवनेके भयसे हाथका अवलवन मागती सी, भयसे पराधीना 'गिर रही हूँ' कह पकडनेका मानो प्रयत्न करती, कादम्वरी ने पानवाले करपल्लवको फैलाया।

९३ चन्द्रापीडने विजय-गजके सिरके थपथपानेसे सिन्दूर लगे से स्वभावत. लाल, धनुषकी ज्याके खीचनेसे पडे घट्टेसे श्यामल, केश पकड़नेके लिये खींचनेसे रोई शत्रु-लक्ष्मीके लोचनको छूनेसे लग गये काजलकी विन्दुवाले से, फैलती नख-किरणोके कारण अत्यन्त वेगसे दौडती हुई सी, वढती हुई सी, हसती हुई सी, अगुलियोसे युक्त, और छूनेके लोभसे तत्काल प्रवेशवाली रागयुक्त पाचो इन्द्रियोकी वृत्तियो वाली दूसरी अगुलियो को उठाते हाथको फैलाया। उधर कादवरी उस कालके लिये सुलभ हाव-भावके देखनेके लिये कुतूहल द्वारा

सा तत्कालसुलभविलासदर्शनकुतहलिभिरिव कुतोऽप्यागत्य सर्वरसैरधिष्ठिता, तेनानिबद्धलक्ष्यतया शून्यप्रसारितेन चन्द्रापीडहस्तान्वेपणायेव पुर प्रवर्तितनखाशुनिवहेन वेपथुचलितवलयावलीवाचालेन, सभाषणमिव कुर्वता हस्तेन स्वेदसलिलपातपूर्वकम् 'गृहचतामयं मन्मथेन दत्तो दासजन' इत्यात्मानमिव प्रतिग्राहयन्ती, 'अद्यप्रभृति भवतो हस्ते वर्तते' इति जीवितमिव स्थापयन्ती ताम्बूलमदात्। आकर्षन्ती च करकिसलय भुजलतानुसारेण स्पर्शतृष्णागतमनगशरभिन्नमध्य हृदयमिव पतितमपि रत्नवलय नाज्ञासीत्। गृहीत्वा चापर ताम्बूल महाश्वेतायै प्रायच्छत्।

—पूर्वभागे

३०. हर्ष (६०७—६४७ ई०)

हर्ष के जीवन के बारे में काफी सामग्री बाणरचित "हर्षचरित" और चीनी पर्यटक स्वेन् चाङ्ग की यात्रा से मिलती है। शासनपत्र भी उनके जीवन पर काफी प्रकाश डालते है। यह भारत के अन्तिम सबसे बडे हिन्दू सम्राट् थे। यद्यपि इनके पिता-पितामहो की राजधानी थानेश्वर थी, लेकिन अपने भगिनी-पति, अन्तिम मौखरी राजा की हत्या के बाद कान्यकुब्ज को इनके बडे भाई राज्यवर्धनने अपनी राजधानी बनाया, और भाई की हत्या के बाद हर्ष सिंहासन पर बैठे। चीनी पर्यटक के अनुसार यह बौद्ध थे, लेकिन हर्ष स्वय अपने को "परममाहेश्वर" (शैव)

रत्नावलिः

सागरिका—

१ (तत प्रविशत्यासनस्थो गृहीतवसन्तोत्सववेषो राजा विदूपकश्च)

मानो कहींसे भी आकर सारे रसो से लिप्त, लक्ष्य न बधे होनेके कारण खाली फैलाये **चन्द्रापीड़** के हाथको ढूढनेके लिये मानो सामने हिले नखोकी किरणो के कपन से चलित, वाचाल वलयो से बातचीत करते हाथ से स्वेद-जल गिरानेके साथ 'कामदेवने (इस) दासजनको (तुम्हें) प्रदान किया, इसे ग्रहण करो' यह कहकर मानो अपनेको ग्रहण करा रही, 'आजसे यह जन आपके हाथमें है' यह कहती मानो जीवनको (हाथमें)स्थापित करती पानको प्रदान किया। और करपल्लवको हटाती, भुजलताके साथ छूनेके लोभसे आये कामदेवके शरसे खडित वक्षवाली उसने हृदयकी तरह (हाथसे) गिरे रत्न-ककणको भी नही जाना। फिर दूसरा पान लेकर (उसने) महाश्वेताको दिया।

—पूर्वभाग

३०. हर्ष (६०७—६४७ ई०)

और अपने मृत भाई को "परमसौगत" कहते हैं। इनकी बहन राज्यश्री वैधव्य के बाद भिक्षुणी हो गई। वस्तुत. इनकी आस्था बुद्ध और शिव दोनो पर समान थी। इनकी कृतियां "रत्नावलि", "प्रियदर्शिका" और "नागानंद" तीनो ही नाटक हैं। और, जैसा कि पहले बतलाया, इन्हें बाण की कृति होने का सन्देह किया जाता है। इस समय अपभ्रंश भाषा प्रचलित थी। बाण के मित्र ईशान उसके प्रतिष्ठित कवि थे, पर उनकी कोई रचना हमारे पास नहीं पहुची है। अपभ्रंश के सबसे पुराने कवि सरहपाद (७५० ई०) हैं, जो हर्ष की मृत्यु के सौ वर्ष बाद आते हैं।

रत्नावलि

सागरिका—

१ (तब वसतोत्सवके भेसमें आसनपर बैठा राजा और विदूषक प्रवेश करते हैं)

राजा—(सहर्षमवलोक्य)—सखे वसन्तक।
विदूषक.—आज्ञापयतु भवान्।

२. राजा—
राज्य निर्जितशत्रु योग्यसचिवे न्यस्त. समस्तो भर,
सम्यक्पालनलालिता प्रशमिताशेषोपसर्गा प्रजा।
प्रद्योतस्य सुता वसन्तसमयस्त्व चेति नाम्ना धृति
काम काममुपैत्वय मम पुनर्मन्ये महानुत्सव ॥९॥

३ विदूषक—(सहर्षम्) भो वयस्य, एव नेदम्। अह पुन-र्जानामि न भवतो न कामदेवस्य ममैवैकस्य बटुकस्य-य मदनमहोत्सवो, येन प्रियवस्येनैव मन्त्रयते। (विलोक्य) तत्कि पुनरनेन। प्रेक्षस्व तावदेतस्य मधुमत्तकामिनीजनस्वयग्राहगृहीतशृगकजलप्रहारनृत्यन्ना-गरजनजनितकौतूहलस्य समन्तत सुवृत्तमर्दलोद्दामचर्च-रीशब्दमुखररथ्यामुखशोभिन. प्रकीर्णपटवासपिजरीकृत-दिशामुखस्य श्रिय मदनमहोत्सवस्य।

४. राजा—(सहर्ष समन्तादवलोक्य) अहो, परा कोटिमधि-रोहति प्रमोद पौराणाम्। तथाहि—
कीर्णै पिष्टातकौघै. कृतदिवसमुखै. कुकुमक्षोदगौरै-
र्हेमालकारभाभिर्भरनमितशिर शेखरै कैकिरातै।
एपा वेषाभिलक्ष्यस्वविभवविजिताशेषवित्तेशकोशा,
कौशाम्बी शातकुभद्रवखचितजनेवैकपीता विभाति ॥१०॥

५. अपि च—
धारयन्त्रविमुक्तसततपय पूरप्लुतेसर्वत,
सद्य. सान्द्रविमर्दकर्दमकृतक्रीडे क्षण प्रागणे।

राजा—(हर्षके साथ देखकर) सखे वसतक,

विदूषक—आप आज्ञा दें।

२ राजा—

राज्य विजित शत्रुवाला सारा भार योग्य सचिवके ऊपर रख दिया है। अच्छी तरह पालनसे प्रजा लालित तथा उसके सारे कष्ट मिटा दिये गये हैं। प्रद्योतकी सुता, वसतका समय और तू (पास) हैं। कामदेव पूरी तौरसे सतोषको प्राप्त करें। मेरे लिये तो समझो, यह महान् उत्सव है ॥९॥　　छन्द—शार्दूलविक्रीडित

३ विदूषक—(हर्षके साथ) हे मित्र, ऐसा यह नही। मै तो जानता हू, न आपका और न कामदेवका, वल्कि सिर्फ मुझ ब्राह्मण वटुकका यह मदन-महोत्सव है, जिसे कि प्रिय मित्र ऐसा समझ रहे है। (देखकर) फिर इससे क्या ? मदिरामें मस्त कामिनियोके आलिगनमें बधे, पिच-कारीके जलके प्रहार पर नाचते, नागरिक लोगोमें उत्पन्न कौतू-हलवाले चारो ओर गोल मादलके साथ जोरके चाचर गीतके शब्दोसे सडकके किनारोको शोभित करनेवाले विखरे चूर्णसे पीली दिशाओ-वाले, मदन-महोत्सवकी शोभा देखो।

४ राजा—(हर्षके साथ चारो ओर देखकर) अहो, पुरवासियोका प्रमोद चरम सीमाको पहुच रहा है, जैसे कि—

चूर्ण-विखेरी केसर चूर्णसे गौर, प्रात कालसे

सुवर्ण-भूपणके प्रकाशो द्वारा भारसे झुके सिरोके शेखरवाले अशोकोंसे,

वेप से लखे जाने वाले अपने विभवसे सारे कोशको जीते,

यह सारी कौशाम्बी सोनेके जलसे खचित जनोसे पीली दीख रही है ॥१०॥

५ और भी—

पिचकारियोसे छूटते निरन्तर जलके प्रवाहमे भीगे चारो ओर

तुरन्त रौंदे घने पकसे खेले गये आगनमें क्षण भर,

उद्दामप्रमदाकपोलनिपतत्सिन्दूररागारुणै,
सैन्दूरीक्रियते जनेन चरणन्यासै पुर. कुट्टिमम् ॥११॥

६ विदूषक —(विलोक्य) एतदपि सुविदग्धजनजलभरित शृगकजलप्रहारमुक्तसीत्कारमनोहर वारविलासिनी-जनविलसितमालोकयतु प्रियवयस्य ।

७ राजा—(विलोक्य) वयस्य, सम्यग् दृष्ट भवता। कुत —
अस्मिन्प्रकीर्णपटवासकृतान्धकारे,
दृष्टो मनाङ्मणिविभूषणरश्मिजालै ।
पातालमुद्यतफणाकृतिशृगकोऽय
मामद्य सस्मारयतीव भुजगलोक ॥१२॥

८ विदूषक —(विलोक्य) भो वयस्य, प्रेक्षस्व । एषा खलु **मदनिका** मदनवशविसष्ठुल वसन्ताभिनय नृत्यन्ती चूतलतिकया सहैत एवागच्छत्यवलोकयतु प्रियवयस्य—(तत प्रविशतो मदनलीला नाट्यन्त्यौ द्विपदीखण्ड गायन्त्यौ चेट्यौ ।)

९ मदनिका—गायति—
कुसुमायुधप्रियदूतको मुकुलीकृतबहुचूतक ।
शिथिलितमानग्रहणको वाति दक्षिणपवनक ॥१३॥
विकसितवकुलाशोकक उत्कण्ठितप्रियमेलक ।
प्रतिपालनासमर्थकस्ताम्यति युवतिसार्थक ॥१४॥

१० अथवा—
इह प्रथम मधुमासो जनस्य हृदयानि करोति मृदुलानि ।
पश्चाद्विध्यति कामो लब्धप्रसरै कुसुमबाणै ॥१५॥

११ राजा—(निर्वर्ण्य) अहो, मधुरोऽयमासा निर्भर क्रीडा-रस । तथाहि—

उद्दीप्त कामिनियोंके कपोलोंसे गिरते सिंदूरके रंगसे लाल,
चरण-चिह्नों द्वारा लोग नगर के चौतरोंको सिंदूरित कर रहे हैं ।।११।।

६ विदूषक—(देखकर) प्रिय मित्र, जल भरी पिचकारी द्वारा सुचतुर जनोंके जल-प्रहारसे सीसी भरती मनोहर वारागनाओं के इस विलासको भी देखें।

७ राजा—(देखकर) मित्र, आपने भले देखा। क्योंकि—
फैले चूर्णसे अन्धकारित इस (स्थान) में,
मणि-भूषणोंकी किरणों से युक्त तनिक दीखता,
उठे फणके आकारकी पिचकारियोंवाला यह भुजग* लोक।
मुझे आज मानो पातालका स्मरण दिला रहा है ।।१२।।

८ विदूषक—(देखकर) हे मित्र, देखो। यह **मदनिका** मदनसे व्याकुल हो वसंतके अभिनयका नृत्य करती **चूतलतिका**के साथ इधर ही आ रही है, देखो प्रिय मित्र—
(तब मदन-लीलाका अभिनय करती द्विपदी गीत गाती दो चेटिया प्रवेश करती हैं)

९ मदनिका—गाती है—
कामदेवका प्रिय दूत, बहुतेरे फूले आमोंवाला
मान शिथिल करनेवाला, दक्षिणी वायु बह रहा है ।।१३।।
जो फूले बकुल और अशोकयुक्त उत्कंठित प्रियोंका मिलानेवाला है,
(आज) प्रतीक्षा करनेमें असमर्थ युवतियोंका झुण्ड उदास है ।।१४।।

१० अथवा—
यह चैतका महीना पहले आदमीके हृदयोंको कोमल बनाता है।
फिर अवसर पा कामदेव (उसे) फूलके बाणोंसे वेधता है ।।१५।।

११ राजा—(अच्छी तरह देखकर) अहो, इनका क्रीडारस अत्यन्त मधुर है। जैसे कि—शिथिल अस्त-व्यस्त केश फूलोंकी रची मालाकी

---

* वेश्यालंपट, सर्प

स्रस्तं स्रग्दामशोभां त्यजति विरचितामाकुलं केशपाशं,
क्षीवाया नूपुरौ च द्विगुणतरमिमौ क्रन्दतः पादलग्नौ।
व्यस्तः कम्पानुबन्धादनवरतमुरो हन्ति हारोऽयमस्याः,
क्रीडन्त्याः पीडयेव स्तनभरविनमन्मध्यभगानपेक्षम् ॥१६॥
विदूषकः—भो वयस्य, अहमप्येतेषां वधूपरिजनानां मध्ये नृत्यन् मदनमहोत्सवं मानयिष्यामि।

१२ राजा—(सस्मितं) वयस्य एवं क्रियताम्।
विदूषकः—यद्भवानाज्ञापयति। (उत्थाय चेट्योर्मध्ये नृत्यति) भवति मदनिके, भवति चूतलतिके, मामप्येतच्चर्चरिकं शिक्षापयथ।
उभे—भो वयस्य हताश, न खलु एषा चर्चरी। द्विपदीखण्डं खलु एतत्।

१३ विदूषकः—(सहर्षं) किमेतेन खण्डेन मोदकाः क्रियते?
मदनिका—(विहस्य) नहि नहि, पठ्यते खल्वेतत्।

१४ विदूषकः—(सविषादम्) यदि पठ्यते तदलमेतेन। वरं प्रियवयस्यस्यैव सकाशं गमिष्यामि। (गन्तुमिच्छति)

१५ उभे—एहि क्रीडामः। वसन्तक, कुत्र गच्छसि? इति (बहुविधं वसन्तकमाकर्षतः, विदूषकश्च बलाद् गच्छति)
विदूषकः—(राजानमुपसृत्य) वयस्य, नर्तितोऽस्मि। नहि नहि, क्रीडित्वा पलायितोऽस्मि।

१६. राजा—साधु कृतम्।
चूतलतिका—हञ्जे मदनिके, चिरं खल्वावाभ्यां क्रीडितम्। तदेहि निवेदयावस्तावत् भट्टिन्याः सन्देशं महाराजस्य।

१७ मदनिका—एहि, त्वराव।
उभे—(उपसृत्य)। जयतु जयतु भर्ता। भर्तः, देवी आज्ञापयति (इत्यर्धोक्ते लज्जां नाट्यतः) नहि नहि, विज्ञापयति।

शोभाको छोड रहा है। खेलती मस्त कामिनीके पैरमें लगे यह नूपुर दूने जोरसे वज रहे हैं। पीडाके कारण मानो स्तनके भारसे झुकी कटिकी अपेक्षाके विना कपनके कारण हिलता इसका यह हार वरावर छातीको पीट रहा है।।१६।।

विदूषक—हे मित्र, मैं भी इन वहुओके वीचमें नाचता मदन-महोत्सव मनाऊगा।

१२ राजा—(मुस्कुराकर) मित्र, ऐसा ही करो।

विदूषक—जो आप आज्ञा देते हैं। (उठकर चेटियोके वीचमें नाचते) आप **मदनिका**, आप **चूतलतिका**, मुझे भी यह **चाचर** सिखाओ।

दोनो—हे मित्र, छी , यह चाचर नही है, यह द्विपदीखंड है।

१३ विदूषक—(हर्षके साथ) क्या इस खड (खाड) से लड्डू वनाये जाते हैं?

मदनिका—(विहसकर) नही, नही, इसे गाया जाता है।

१४ वि पूक—(विपादके साथ) यदि गाया जाता है, तो रहने दो इसे। अच्छा है, प्रिय मित्र ही के पास जाऊगा।

(जाना चाहता है।)

१५ दोनो—आओ खेलेंगे वसतक, कहा जाते हो (वहुत तरह से वसतकको घसीटती हैं, और विदूपक जवर्दस्ती भागता है)।

विदूपक—(राजाके पास जाकर) मित्र, मैंने नाच लिया, नही-नही, खेलकर, भाग आया ।

१६ राजा—अच्छा किया।

चूतलतिका—री मदनिके, हम दोनो देर तक खेलती रही, सो आ महाराजके पास स्वामिनीका मदेश अर्ज करें।

१७ मदनिका—आ, जल्दी करें।

दोनो--(पास जाकर) जय हो, जय हो स्वामी की। स्वामी, देवी आज्ञा देती हैं--(आधा कहकर लज्जाका अभिनय करती) नही-नही अर्ज करती हैं।

१८ राजा—(सहर्षं विहस्य सादरम्) नन्वाज्ञापयतीत्येव रमणीय। विशेषतोऽद्य मदनमहोत्सवे। तत्कथय किमाज्ञापयति देवी।

विदूषक—आ दास्या पुत्रि, किं देवी आज्ञापयति।

१९ चेट्यौ—एव देवी विज्ञापयति, "अद्य खलु मया मकरन्दोद्यान गत्वा रक्ताशोकपादपतलसस्थापितस्य भगवत कुसुमायुधस्य पूजा निर्वर्तयितव्या। तत्र आर्यपुत्रेण सनिहितेन भवितव्यम्।"

२० राजा—(सानन्दम्) वयस्य, ननु वक्तव्यमुत्सवादुत्सवान्तरमापतितम्।

विदूषक—भो वयस्य, तदुत्तिष्ठ तत्रैव गच्छाव, येन तत्र गतस्य ब्राह्मणबालकस्य मम स्वस्तिवाचन किमपि भविष्यतीति।

२१ राजा—मदनिके, गम्यता देव्यै निवेदयितु अयमहमागत एव मकरन्दोद्यानमिति।

चेट्यौ—यद्भर्ताऽज्ञापयति।

२२ राजा—वयस्य, आदेशय मकरन्दोद्यानस्य मार्गम्।

विदूषक—एतु एतु भर्ता।

(इति परिक्रामत)

२३ विदूषक—(अग्रतोऽवलोक्य) एतत्तन्मकरन्दोद्यान, तदेहि प्रविशाव।

(इति प्रविशत)

विदूषक—(अवलोक्य सविस्मयम्) भो महाराज, प्रेक्षस्व तावदेतत् खलु मलयमारुतान्दोलितमुकुलायमानसहकारमजरीरेणुपटलप्रतिवद्धपटवितान मत्तमधुकरमुक्तझकारमिलितकोकिलालापसगीतसुखावह तवागमनदर्शितादरमिव मकरन्दोद्यान लक्ष्यते। तत्प्रविशतु भवान्।

१८ राजा—(हर्षके साथ विहस कर आदरपूर्वक) 'आज्ञा देती हैं', यही (कहना) सुन्दर है। विशेष कर आज मदन-महोत्सवके समय। सो कहो देवी क्या आज्ञा देती हैं।
विदूषक—आह, दासीकी वेटी, क्या 'देवी आज्ञा देती हैं' कहती है!

१९ चेटियाँ—देवी इस प्रकार अर्ज करती हैं "आज मुझे मकरन्द-उद्यानमें जा लाल अशोक वृक्षके नीचे स्थापित भगवान् कामदेवकी पूजा करनी है। वहा आर्यपुत्रको साथ रहना चाहिए।"

२० राजा—(आनदके साथ) मित्र, वतलाओ, (एक) उत्सवके वाद दूसरा उत्सव आ गया।
विदूषक—मित्र, सो उठो वही चलेंगे, जिसमें वहा जानेपर मुझ ब्राह्मण वालकका कुछ स्वस्तिवाचन भी हो जायेगा।

२१ राजा—मदनिका, जाओ, देवीसे निवेदन करना, कि यह मैं मकरद-उद्यान आ पहुचा।
चेटियाँ—जो स्वामी आज्ञा देते है।

२२ राजा—वयस्क, **मकरद-उद्यानका** मार्ग वतलाओ।
विदूषक—आइये, आइये स्वामी।
(दोनो परिक्रमा करते हैं)

२३ विदूषक—(आगेकी ओर देखकर) यह मकरद-उद्यान है, आओ प्रवेश करें।
(दोनो प्रवेश करते हैं)
विदूषक—(देखकर विस्मय के साथ) भो महाराज, देखो, मलय-वायुसे चालित मुकुलित, आमकी मजरीके केसरसे वधे रेशमी वितानवाला, मस्त मधुकरकी झकारसे मिश्रित, कोयलके अलाप-मगीतका सुख देनेवाला, यह मकरद-उद्यान आपके आगमन पर आदर दिखलाता सा दीख पड रहा है। सो आप प्रवेश करें।

२४ राजा—(समन्तादवलोक्य) अहो मकरन्दोद्यानस्य परा श्री । इह हि—

उद्यद्विद्रुमकान्तिभि किसलयैस्ताम्रा त्विष बिभ्रतो,
भृगालीविरुतै कलैरविशदव्याहारलीलाभृत ।
घूर्णन्तोमलयानिलाहतिचलै शाखासमूहैर्मुहुर्,
भ्रान्ति प्राप्य मधुप्रसगमधुना मत्ता इवामी द्रुमा ॥१७॥

२५ अपि च —

मूले गण्डूषसेकासव इव बहुलैर्वास्यते पुष्पवृष्ट्या,
मध्वाताम्रे तरुण्या मुखशशिनि चिराच्चम्पकान्यद्य भाति ।
आकर्ण्याशोकपादाहतिषु च रसित शिजित नूपुराणा,
झकारस्यानुगीतैरनुकरणमिवारभ्यते भृगसार्थै ॥१८॥

२६ विदूषक —(श्रुत्वा) भो वयस्य, नैते मधुकरा नुपुरशब्दमनुहरन्त, नूपुरशब्द एवैष देव्या परिजनस्य ।

२७. राजा—वयस्य, सम्यगुपलक्षित भवता ।

(तत प्रविशति उज्ज्वलवेषा **वासवदत्ता कांचनमाला** च पूजोपकरणहस्ता **सागरिका** च)

२८ वासवदत्ता—हजे काचनमाले, आदेशय मकरन्दोद्यानस्य मार्गम् ।

काचनमाला—एतु एतु भट्टिनी ।

२९. वासवदत्ता—(परिक्रम्य) हजे काचनमाले, अथ कियद्दूरे स रक्ताशोकपादपो यत्र मया भगवत कुसुमायुधस्य पूजा निर्वर्तयितव्या ?

काचनमाला—भट्टिनि, आसन्न एव कि न प्रेक्षते भट्टिनी । इय खलु सा निरन्तरोद्भिन्नकुसुमशोभिनी भट्टिन्या परिगृहीता माधवीलता । एषाऽपरा नवमालिकालता, यस्या अकालकुसुमसमुद्गमश्रद्धालुना भर्त्रानुदिनमायास्यत आत्मा । तदेनामतिक्रम्य दृश्यत एव स रक्ताशोकपादपो यत्र देवी पूजा निर्वर्तयिष्यति ।

२४ राजा—(चारो ओर देखकर) अहो, मकरद-उद्यानकी परम शोभा। यहा तो—
उगती मूगेकी कातिवाले नवपल्लवो द्वारा लाल वर्ण धारण किये, भवरो के मधुर शब्दो द्वारा स्पष्ट कथनकी लीला करते, मलय वायुके धक्केसे चलते शाखा-समूहो द्वारा लडखडाते, मद्यपानसे चक्कर खाते यह वृक्ष क्षण भर मस्त से दीख रहे हैं ।।१७।।

२५ और भी—
वृक्षमूलमें कुल्लीके सिंचनकी मदिराकी तरह पुष्पवृष्टिसे वासित हो रहा है। मद्यसे थोडे लाल तरुणियोके मुख-चन्द्रमें चिरसे आज चपा शोभा दे रही है। अशोकके ऊपर पैर मारते नूपुरोकी आवाज सुनकर, झंकारके अनुगायनसे भ्रमर मानो अनुकरण कर रहे है ।।१८।।

२६ विदूषक—(सुनकर) हे मित्र, ये भवरे नूपुरके शब्दकी नकल नही कर रहे हैं, यह तो देवीके परिजनोके नूपुरोका शब्द है।

२७ राजा—मित्र, आपने ठीक पहिचाना।
(तव उज्ज्वल वेषमें **वासवदत्ता, कांचनमाला** और पूजाकी सामग्री हाथमें लिये **सागरिका** प्रवेश करती हैं)

२८ वासवदत्ता—री कचनमाला, मकरद-उद्यानका मार्ग वतला।
काचनमाला—आर्ये-आर्ये स्वामिनी।

२९ वासवदत्ता—(परिक्रमा करके) री कचनमाला, तो कितनी दूर है वह लाल अशोकवृक्ष, जहा मुझे भगवान् कामदेवकी पूजा करनी है ?
काचनमाला—स्वामिनि, नजदीक ही है, क्या स्वामिनी (उसे) नही देख रही हैं। यह है वह फूले फूलोसे वरावर शोभित स्वामिनी की अपनाई चमेली लता। यह दूसरी जूही लता है, जिसके अकाल में फूल फूली देखने के इच्छुक स्वामी रोज अपनेको कष्ट देते हैं। सो इसे पार करते ही दिखाई देगा वह लाल अशोक वृक्ष, जहा देवी पूजा करेंगी।

३० वासवदत्ता—तदेहि तत्रैव लघु गच्छाम ।
काचनमाला—एतु एतु भट्टिनी ।
(सर्वा परिक्रामन्ति)

३१ वासवदत्ता—अय स रक्ताशोकपादपो यत्राह पूजा निर्वर्तयिष्ये । तत्पूजानिमित्तान्युपकरणानि मे उपनय ।
सागरिका—(उपसृत्य) भट्टिनि, एतत्सर्वं सज्जम् ।

३२ वासवदत्ता—(निरूप्यात्मगत) अहो प्रमाद परिजनस्य । यस्यैव दर्शनपथात्प्रयत्नेन रक्ष्यते, तस्यैव दृष्टिगोचरे पतिता भवेत् । भवतु, एव तावद् भणिष्यामि । (प्रकाश) "हञ्जे सागरिके, कस्मात्त्वमद्य मदनमहोत्सवपराधीने परिजने सारिकामुज्झित्वेहागता । तत्तत्रैव लघु गच्छ । एतदपि सर्व पूजोपकरण **कांचनमालाया** हस्ते समर्पय ।"

३३ सागरिका—यद् भट्टिन्याज्ञापयति । (इति कतिचित् पदानि गत्वा आत्मगतम्) सारिका मया पुन **सुसंगताया** हस्ते समर्पिता । एतदप्यस्ति मे प्रेक्षितु कौतूहल, किं यथा तातस्यान्त पुरे भगवाननगोऽर्च्यते, अत्रापि तथैव किमन्यथेति । तदलक्षिता भूत्वा प्रेक्षिष्ये । (परिक्रम्यावलोक्य च) तद्यावदिह पूजासमयो भवति तावदहमपि भगवन्तमनगमेव पूजितु कुसुमान्यवचेष्यामि । (इति कुसुमावचय नाट्यति)

३४ वासवदत्ता—**कांचनमाले**, प्रतिष्ठापयाशोकमूले भगवन्त प्रद्युम्नम् ।
काचनमाला—यद् भट्टिन्याज्ञापयति । (इति तथा करोति)

३५ विदूपक —(परिक्रम्यावलोक्य च) भो वयस्य, यथा विश्रान्तो नूपुरशब्दस्तथा तर्कयाम्यागता देव्यशोकमूलमिति ।

३० वासवदत्ता—तो आ, वहीं जल्दी चलें।
काचनमाला—आवें-आवें स्वामिनी।
(सब परिक्रमा करती हैं)

३१ वासवदत्ता—यह वह लाल अशोक वृक्ष है, जहा मैं पूजा करूगी। सो पूजाकी सामग्री ला मेरे पास।
सागरिका—(पास आकर) स्वामिनी, यह सब तैयार है।

३२ वासवदत्ता—(देखकर अपने आपसे) अहो, नौकरानियोकी भूल, जिसके ही सामने आनेसे (इसे) प्रयत्नपूर्वक रोका जाता है, उसीके सामने आ पड़ी है। अच्छा, तो ऐसे कहती हू (प्रकट) "री सागरिका, क्यो तू आज परिजनोके मदन-महोत्सवमें लगे होते समय मैनाको छोडकर यहा आ गई? सो तू वही जल्दी जा। इस सारी पूजा-सामग्रीको भी कांचनमालाके हाथमें दे दे।"

३३ सागरिका—जो स्वामिनी आज्ञा देती है। (कुछ कदम जाकर अपने आपसे) मैनाको तो मैंने सुसंगताके हाथमें दे दिया है। इसे भी देखनेका मुझे कुतूहल है, क्या जैसे वापूके रनिवासमें भगवान् कामदेवकी पूजा होती है, वैसी ही यहा भी है, या दूसरी। सो छिपकर देखूगी। (परिक्रमा करके देखकर) तो जब तक यहा पूजाका समय होता है, तब तक मैं भी भगवान् अनगकी पूजा करनेके लिये फूल चुनती हू। (फूल चुननेका अभिनय करती हैं)

३४ वासवदत्ता—काचनमाला, अशोककी जडमें भगवान् कामदेवको स्थापित कर।
काचनमाला—जो स्वामिनी आज्ञा देती हैं (वैसा ही करती है)।

३५ विदूपक—(परिक्रमा करके, देखकर) हे मित्र, चूकि नूपुरका शब्द वन्द हो गया है, इससे सोचता हूं, देवी अशोककी जडमें आ गईं।

३६ राजा—वयस्य, सम्यगवधारितम्। पश्येय देवी । या किलैषा-

कुसुमसुकुमारमूर्तिर्दधती नियमेन तनुतरं मध्यम्।
आभाति मकरकेतो पार्श्वस्था चापयष्टिरिव ॥१९॥

तदेहि उपसपावं । (उपसृत्य) । प्रिये वासवदत्ते,

३७ वासवदत्ता—(विलोक्य) कथमार्यपुत्र ? जयतु जयतु आर्यपुत्र.। अलकरोत्विम देशमासनपरिग्रहेण। एतदासन, अत्रोपविशत्वार्यपुत्र ।

(राजा नाट्येनोपविशति)

काचनमाला—भट्टिनि, स्वहस्तदत्तै कुसुमकुकुमचन्दन-वासोभि शोभित रक्ताशोकपादपं गत्वाच्यंता भगवान्प्र-द्युम्न ।

३८ वासवदत्ता—उपनय मे पूजोपकरणानि।

(काचनमाला उपनयति, वासवदत्ता तथा करोति)

३९ राजा—प्रिये,

प्रत्यग्रमज्जनविशेषविविक्तकान्ति ,
कौसुम्भरागरुचिरस्फुरदशुकान्ता।
विभ्राजसे मकरकेतनमर्चयन्ती,
वालप्रवालविटपिप्रभवा लतेव ॥२०॥

४० अपि च—

स्पृष्टस्त्वयैव दयिते स्मरपूजाव्यापृतेन हस्तेन।
उद्भिन्नापरमृदुतरकिसलय इव लक्ष्यतेऽशोक.॥२१॥

४१ अपि च—

अनंगोऽयमनंगत्वमद्य निन्दिष्यति ध्रुवम्।
यदनेन न सप्राप्त पाणिस्पर्शोत्सवस्तव॥२२॥

४२ काचनमाला—भट्टिनि, अर्चितो भगवान् प्रद्युम्न.। तत्कुरु भर्तुरुचित पूजासत्कारम्।

वासवदत्ता—तेन ह्युपनय मे कुसुमानि विलेपनं च।

३६ राजा—मित्र, ठीक समझा। देखो, यह देवी है, जो कि यह—
कुसुम से सुकुमार आकृतिवाली नियमसे अति-क्षीण कटि धारण करती, जान पडती है, कामदेवके वगलके धनुषकी यष्टि है ।।१९।।
सो आओ, चलें। (पास जाकर) प्रिये वासवदत्ते,

३७ वासवदत्ता—(देखकर) क्या आर्यपुत्र है ? जय हो, जय हो आर्य-पुत्रकी। आसन ग्रहणकर इस स्थानको शोभित करें। इस आसन पर, यह आसन है, यहा आर्यपुत्र वैठें।
(राजा अभिनयपूर्वक वैठता है)
काचनमाला—स्वामिनी, पुष्प-केसर-चदन-सुगधिसे शोभित लाल अशोक वृक्षके पास जाकर भगवान् कामदेवकी पूजा अपने हाथसे करें।

३८ वासवदत्ता—ला, मेरी पूजा-सामग्री।
(काचनमाला लाती है, वासवदत्ता पूजती है)

३९ राजा—प्रिये—
तुरन्त स्नानसे विशेष तौरसे स्पष्ट कान्तिवाली, केसरिया रगके रुचिर फहराते वस्त्रसे कमनीया, कामदेवकी पूजा करती तू नवीन मूगे के अमोलेसे जनमी लता सी शोभा दे रही है ।।२०।।

४०. और भी—
हे प्यारी, तेरे ही द्वारा कामदेवकी पूजा में लगे हाथसे छुआ गया, अशोक अति मृदु उगे दूसरे नवपल्लवोंवाला सा दीख रहा है ।।२१।।

४१ और भी—
यह अनग आज निश्चय ही अपने अनगपन (देहके न होनेकी) निंदा करेगा, जो कि यह तेरे हाथके स्पर्शको नही पा सका ।।२२।।

४२ काचनमाला—स्वामिनी, भगवान् कामदेवकी पूजा (तो) कर ली, अव स्वामीका उचित पूजा-सत्कार करें।
वासवदत्ता-—तो ला, मेरे फूल और अग-लेपन।

३६ राजा—वयस्य, सम्यगवधारितम्। पश्येय देवी । या किलैषा-

कुसुमसुकुमारमूर्तिर्दधती नियमेन तनुतर मध्यम्।
आभाति मकरकेतो पार्श्वस्था चापयष्टिरिव ॥१९॥

तदेहि उपसपार्व । (उपसृत्य) । प्रिये वासवदत्ते,

३७ वासवदत्ता—(विलोक्य) कथमार्यपुत्र ? जयतु जयतु आर्यपुत्र । अलकरोत्विम देशमासनपरिग्रहेण। एतदासन, अत्रोपविशत्वार्यपुत्र. ।

(राजा नाट्येनोपविशति)

काचनमाला—भट्टिनि, स्वहस्तदत्तै कुसुमकुकुमचन्दन-वासोभि शोभित रक्ताशोकपादपं गत्वार्च्यता भगवान्प्र-द्युम्न ।

३८ वासवदत्ता—उपनय मे पूजोपकरणानि।

(काचनमाला उपनयति, वासवदत्ता तथा करोति)

३९ राजा—प्रिये,

प्रत्यग्रमज्जनविशेपविविक्तकान्ति,
कौसुम्भरागरुचिरस्फुरदशुकान्ता।
विभ्राजसे मकरकेतनमर्चयन्ती,
वालप्रवालविटपिप्रभवा लतेव ॥२०॥

४० अपि च—

स्पृष्टस्त्वयैव दयिते स्मरपूजाव्यापृतेन हस्तेन।
उद्भिन्नापरमृदुतरकिसलय इव लक्ष्यतेऽशोक ॥२१॥

४१ अपि च—

अनगोऽयमनगत्वमद्य निन्दिष्यति ध्रुवम्।
यदनेन न सप्राप्त पाणिस्पर्शोत्सवस्तव ॥२२॥

४२ काचनमाला—भट्टिनि, अर्चितो भगवान् प्रद्युम्न । तत्कुरु भर्तुरुचित पूजासत्कारम्।

वासवदत्ता—तेन ह्युपनय मे कुसुमानि विलेपनं च।

३६ राजा—मित्र, ठीक समझा। देखो, यह देवी है, जो कि यह—
कुसुम से सुकुमार आकृतिवाली नियमसे अति-क्षीण कटि धारण करती, जान पड़ती है, कामदेवके वगलके धनुषकी यष्टि है ॥१९॥
सो आओ, चलें। (पास जाकर) प्रिये वासवदत्ते,

३७ वासवदत्ता—(देखकर) क्या आर्यपुत्र हैं? जय हो, जय हो आर्य-पुत्रकी। आसन ग्रहणकर इस स्थानको शोभित करें। इस आसन पर, यह आसन है, यहा आर्यपुत्र वैठें।
(राजा अभिनयपूर्वक वैठता है)
काचनमाला—स्वामिनी, पुष्प-केसर-चदन-सुगधिसे शोभित लाल अशोक वृक्षके पास जाकर भगवान् कामदेवकी पूजा अपने हाथसे करें।

३८ वासवदत्ता—ला, मेरी पूजा-सामग्री।
(काचनमाला लाती है, वासवदत्ता पूजती है)

३९ राजा—प्रिये—
तुरन्त स्नानसे विशेष तौरसे स्पष्ट कान्तिवाली, केसरिया रंगके रुचिर फहराते वस्त्रसे कमनीया, कामदेवकी पूजा करती तू नवीन मूगे के अमोलेसे जनमी लता सी शोभा दे रही है ॥२०॥

४० और भी—
हे प्यारी, तेरे ही द्वारा कामदेवकी पूजा में लगे हाथसे छुआ गया, अशोक अति मृदु उगे दूसरे नवपल्लवोंवाला सा दीख रहा है ॥२१॥

४१ और भी—
यह अनग आज निश्चय ही अपने अनगपन (देहके न होनेकी) निंदा करेगा, जो कि यह तेरे हाथके स्पर्शको नहीं पा सका ॥२२॥

४२ काचनमाला—स्वामिनी, भगवान् कामदेवकी पूजा (तो) कर ली, अव स्वामीका उचित पूजा-सत्कार करें।
वासवदत्ता—तो ला, मेरे फूल और अग-लेपन।

३६ राजा—वयस्य, सम्यगवधारितम्। पश्येय देवी । या किलैषा-
कुसुमसुकुमारमूर्तिर्दधती नियमेन तनुतर मध्यम्।
आभाति मकरकेतो पार्श्वस्था चापयष्टिरिव ॥१९॥
तदेहि उपसपार्व । (उपसृत्य)। प्रिये वासवदत्ते,

३७ वासवदत्ता—(विलोक्य) कथमार्यपुत्र ? जयतु जयतु आर्यपुत्र । अलकरोत्विम देशमासनपरिग्रहेण। एतदासन, अत्रोपविशत्वार्यपुत्र ।

(राजा नाट्येनोपविशति)

काचनमाला—भट्टिनि, स्वहस्तदत्तै कुसुमकुकुमचन्दन-वासोभि शोभित रक्ताशोकपादपं गत्वार्च्यता भगवान्प्र-द्युम्न ।

३८ वासवदत्ता—उपनय मे पूजोपकरणानि।

(काचनमाला उपनयति, वासवदत्ता तथा करोति)

३९ राजा—प्रिये,
प्रत्यग्रमज्जनविशेषविविक्तकान्ति,
कौसुम्भरागरुचिरस्फुरदशुकान्ता।
विभ्राजसे मकरकेतनमर्चयन्ती,
वालप्रवालविटपिप्रभवा लतेव ॥२०॥

४० अपि च—
स्पृष्टस्त्वयैव दयिते स्मरपूजाव्यापृतेन हस्तेन।
उद्भिन्नापरमृदुतरकिसलय इव लक्ष्यतेऽशोक ॥२१॥

४१ अपि च—
अनगोऽयमनगत्वमद्य निन्दिष्यति ध्रुवम्।
यदनेन न सप्राप्त पाणिस्पर्शोत्सवस्तव ॥२२॥

४२ काचनमाला—भट्टिनि, अर्चितो भगवान् प्रद्युम्न । तत्कुरु भर्तुरुचित पूजासत्कारम्।
वासवदत्ता—तेन ह्युपनय मे कुसुमानि विलेपन च।

३६ राजा—मित्र, ठीक समझा। देखो, यह देवी है, जो कि यह—
कुसुम से सुकुमार आकृतिवाली नियमसे अति-क्षीण कटि धारण करती, जान पडती है, कामदेवके वगलके धनुषकी यष्टि है ।।१६।।
सो आओ, चलें। (पास जाकर) प्रिये वासवदत्ते,

३७ वासवदत्ता—(देखकर) क्या आर्यपुत्र हैं? जय हो, जय हो आर्य-पुत्रकी। आसन ग्रहणकर इस स्थानको शोभित करें। इस आसन पर, यह आसन है, यहा आर्यपुत्र बैठें।
(राजा अभिनयपूर्वक बैठता है)
काचनमाला—स्वामिनी, पुष्प-केसर-चदन-सुगधिसे शोभित लाल अशोक वृक्षके पास जाकर भगवान् कामदेवकी पूजा अपने हाथसे करें।

३८ वासवदत्ता—ला, मेरी पूजा-सामग्री।
(काचनमाला लाती है, वासवदत्ता पूजती है)

३९ राजा—प्रिये—
तुरन्त स्नानसे विशेष तौरसे स्पष्ट कान्तिवाली, केसरिया रगके रुचिर फहराते वस्त्रमे कमनीया, कामदेवकी पूजा करती तू नवीन मूगे के अमोलेसे जनमी लता सी शोभा दे रही है ।।२०।।

४० और भी—
हे प्यारी, तेरे ही द्वारा कामदेवकी पूजा में लगे हाथसे छुआ गया, अशोक अति मृदु उगे दूसरे नवपल्लवोवाला सा दीख रहा है ।।२१।।

४१ और भी—
यह अनग आज निश्चय ही अपने अनगपन (देहके न होनेकी) निंदा करेगा, जो कि यह तेरे हाथके स्पर्शको नही पा सका ।।२२।।

४२ काचनमाला—स्वामिनी, भगवान् कामदेवकी पूजा (तो) कर ली, अब स्वामीका उचित पूजा-सत्कार करें।
वासवदत्ता—तो ला, मेरे फूल और अग-लेपन।

४३. काचनमाला—भट्टिनि, एतत् सर्वं सज्जम्।
(वासवदत्ता नाट्येन राजान पूजयति)

४४ सागरिका—(गृहीतकुसुमा) हा धिक् हा धिक्। कथ कुसुमलोभोत्क्षिप्तहृदययातिचिरमेव मया कृतम्। तदनेन सिन्धुवारविटपेनापवारितशरीरा भूत्वा प्रेक्षे। (विलोक्य) कथ प्रत्यक्ष एवापूर्वं कुसुमायुध ? अस्माक तातस्यान्त पुरे चित्रगतोऽर्च्यते। इह प्रत्यक्षीकृत । तदहमप्येभि कुसुमैरिह स्थितैव भगवन्त कुसुमायुध पूजयिष्ये। (इति कुसुमानि प्रक्षिपति) नमस्ते भगवन् कुसुमायुध, शुभदर्शनो मे भविष्यसि। दृष्टं यद् द्रष्टव्यम्। अमोघदर्शनो मे भविष्यसि। (इति प्रणमति) आश्चर्यमाश्चर्यम्। दृष्टोऽपि पुन प्रेक्षितव्य । तद्यावन्न कोऽपि मा प्रेक्षते तावदेव गमिष्यामि। (इति कतिचित् पदानि गच्छति)।

४५ काचनमाला—आर्यं वसन्तक, एहि साप्रत त्वमपि स्वस्तिवाचन प्रतीच्छ।

(विदूषक उपसर्पति)

४६ वासवदत्ता—(विलेपनकुसुमाभरणदानपूर्वकम्) आर्य, स्वस्तिवाचन प्रतीच्छ। (इत्यर्पयति)

४७ विदूषक—(सहर्षं गृहीत्वा) स्वस्ति भवत्यै।

(नैपथ्ये वैतालिक पठति)

अस्तापास्तसमस्तभासि नभस पार प्रयाते रवा—
वास्थानी समये सम नृपजन सायतने सपतन्।
सम्प्रत्येप सरोरुहद्युतिमुप. पादास्तवासेवितु
प्रीत्युत्कर्पकृतो दृशामुदयनस्येन्दोरिवोद्वीक्षते ॥२३॥

४३ काचनमाला—स्वामिनी, यह सव तैयार है।
(वासवदत्ता अभिनय-पूर्वक राजाकी पूजा करती है)

४४. सागरिका—(फूल लिये) हा धिक्, फूलके लोभमें तन्मय-हृदय मैंने वड़ी देर कर दी। सो इस सिंदुवार वृक्षकी आड़में शरीर को किये देखती हू। (देखकर) क्या ? यह (तो) प्रत्यक्ष ही अपूर्व कामदेव है। हमारे वापूके रनिवासमें चित्रमें लिखे कामदेव पूजे जाते है, और यहा तो प्रत्यक्ष। सो मैं भी इन फूलोसे यही खडी भगवान् कुसुमायुधकी पूजा करती हू। (फूलोको छोडती है) नमस्ते भगवन् कुसुमायुध, तुम्हारा दर्शन मेरे लिये शुभ हो। दर्शनीय वस्तु मैंने देख ली। मेरे लिये तुम अमोघ-दर्शन होओ। (प्रणाम करती है) अचरज, अचरज, देख लेनेपर भी फिर देखना चाहिये। सो जव तक मुझे कोई नही देखे, तव तक ही यहा से मुझे चल देना है। (कुछ कदम जाती है)

४५ काचनमाला—आर्य वसंतक, आओ अव तुम भी स्वस्तिवाचन ग्रहण करो।

(विदूषक पास जाता है)

४६ वासवदत्ता—(विलेपन, पुष्प, आभूषण देकर) आर्य, स्वस्तिवाचन* स्वीकार करो। (दक्षिणा अर्पित करती है)

४७ विदूषक—(हर्षके साथ ग्रहण करके) स्वस्ति हो आपकी।

(नेपथ्यमें वैतालिक पढ रहा है)

अस्त-अपास्त हुये प्रकाशो सारे आकाशको रविके पार करते समय, अव कमलकी शोभा चुरानेवाले हे नेत्रोके उदयन, तुम्हारे चरणोकी सेवा करनेके लिये सायंकालमें यह राजा लोग दरवारमें इकट्ठा हो प्रतीक्षा कर रहे है ।।२३।।

---

* दक्षिणा

४८ सागरिका—(श्रुत्वा सहर्षं परिवृत्य राजानं दृष्ट्वा सस्पृहम्) कथमयं स राजा उदयनो यस्याहं तातेन दत्ता ? तत्परप्रेषणक्लुशमपि मे शरीरमेतस्य दर्शनेदानीं बहुमतं संवृत्तम् ।

४९ राजा—कथमुत्सवापहृतचेतोभिरस्माभिः सन्ध्याऽतिक्रमोऽपि नोपलक्षितः । देवि, पश्य—

उदयतटान्तरितमियं प्राची सूचयति दिङ् निशानाथम् ।
परिपाण्डुना मुखेन प्रियमिव हृदयस्थितं रमणी ॥२४॥

देवि, तदुत्तिष्ठाव । आवासाभ्यन्तरमेव प्रविशाव ।

(सर्वे उत्थाय परिक्रामन्ति)

५० सागरिका—कथं प्रस्थिता देवी । भवतु, त्वरितं गमिष्यामि । (राजानं सस्पृहं दृष्ट्वा निःश्वस्य) हा धिक् । मन्दभागिन्या मया प्रेक्षितुमपि चिरं न पारितोऽयं जनः ।

(इति निष्क्रान्ता)

५१. राजा—(परिक्रामन्)—

देवि त्वन्मुखपंकजेन शशिनः शोभातिरस्कारिणा,
पश्याब्जानि विनिर्जितानि सहसा गच्छन्ति विच्छाम्यताम् ।
श्रुत्वा ते परिवारवारवनितागीतानि भृंगांगना,
लीयन्ते मुकुलान्तरेषु शनकैः संजातलज्जा इव ॥२५॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

३१. मयूर (६२० ई०)

इन्हें बाण का बहनोई कहा जाता है, और संभवतः बाण की जन्मभूमि (आरा जिला) के आसपास ही कहीं इनका भी निवासस्थान था। गोरखपुर के कुछ ब्राह्मण लोग अपने को मयूर का वंशज बतलाते हैं। बाण शायद उसी वंश के थे, जिसे आजकल सर्वरिया (या पूर्वी कनौजिया) कहा जाता

४८ सागरिका—(सुनकर हर्षके साथ घूमकर राजाको देख लालसाके साथ) क्या यही वह राजा उदयन है, जिनके लिये मुझे वापूने दिया था ? तो दूसरे की सेवा में दुवला भी मेरा शरीर इनके दर्शन से अव सम्मानित हो गया ।

४९ राजा—क्यो, उत्सवमें तल्लीन हम लोगोने सध्याके वीतने को भी नही जाना । देवि, देख—
उदयाचलके तटमें छिपी यह पूर्व दिशा अपने अतिपाडु मुख द्वारा निशानाथ को (वैसे ही) सूचित कर रही है; जैसे रमणी अपने हृदयस्थित प्रियको ।।२४।।
देवि, तो हम दोनो उठें। आवासके भीतर प्रवेश करें ।
(सव उठकर परिक्रमा करते हैं)

५० सागरिका—क्यो, देवी चली गईं ? अच्छा, मैं भी जल्दी चलू ।
(राजाको लालसाके साथ देखकर उसास ले) हा धिक्, मैं मदभागिनी इन्हें देर तक देख भी नही पाई ।
(वाहर चली गई)

५१ राजा—(परिक्रमा करते)—
देवि, चन्द्रमाकी शोभाको तिरस्कार करनेवाले तेरे मुखकमलसे हराये हुए कमल, देख सहसा मलिन हो रहे हैं। तेरे परिवारकी वारागनाओके गीतोको सुनकर लज्जित सी हो भवरिया धीरे से कलियोमें विलीन हो रही हैं ।।२५।।
(सव वाहर निकल गये)

३१. मयूर (६२० ई०)

हैं। मयूर ने अपनी काव्य-प्रतिभा का उपयोग नहीं किया। उनका स्रग्धरा छंद में "सूर्यशतक" नामक एक स्तोत्र मिलता है। यद्यपि इसमें काव्य के चमत्कार को हम पूरा नहीं देख पाते, पर प्रतिभा उनमें थी, इसमें सन्देह नहीं है।

सूर्यशतकम्

१. दत्तानन्दा प्रजाना समुचितसमयाकृष्टसृष्टै पयोभि.
पूर्वाह्णे विप्रकीर्णा दिशि दिशि विरमत्यह्नि सहारभाज ।।
दीप्ताशो दीर्घदु खप्रभवभवभयोदन्वदुत्तारनावो
गावो व पावनाना परमपरिमिता प्रीतिमुत्पादयन्तु ।।९।।

२ नि शेपाशावपूरप्रवणगुरुगुणश्लाघनीयस्वरूपा
पर्याप्ति नोदयादौ दिनगमसमयोपप्लवेऽप्युन्नतैव ।।
अत्यन्त यानभिज्ञा क्षणमपि तमसा साकमेकत्र वस्तु
ब्रध्नस्येद्धारुचिर्वो रुचिरिवरुचितस्याप्तयेवस्तुनोऽस्तु।।२४।।

३ आयान्ती कि सुमेरो सरणिररुणिता पाद्मरागै परागैर्
आहोस्वित्स्वस्य माहारजनविरचिता वैजयन्ती रथस्य ।।
माजिष्ठी प्रष्ठवाहावलिविधुतशिरश्चामराली नु लोकै-
राशक्यालोकितैव सवितुरघनुदेसस्तात्प्रभातप्रभा व ।।२७।।

४ वेलावर्धिष्णु सिन्धो पय इव खमिवार्घोद्गताग्र्यग्रहोडु
स्तोकोद्भिन्नस्वचिह्नप्रसवमिव मधोरास्यमस्यन्मनासि ।।
प्रात पूष्णो शुभानि प्रशमयतु शिर शेखरीभूतमद्रे
पौरस्त्यस्योद्गभस्तिस्तिमिततमतम खण्डन मण्डल व ।।७४।।

५. यत्प्राच्या प्राक्चकास्ति प्रभवति च यत प्राच्यसावुज्जिहानाद्
इद्ध मध्ये यदह्नो भवति ततरुचा येन चोत्पाद्यतेऽह ।।
यत्पर्यायेण लोकानवति च जगता जीवित यच्च तद्वो
विश्वानुग्राहि विश्व सृजदपि च रवेर्मण्डल मुक्तयेऽस्तु ।।७७।।

सूर्यशतक

१ उचित समयमें आकृष्ट और सृष्ट पयो द्वारा लोगोके आनददायक पूर्वाह्न में दिशा-दिशामें विखरी, दिनके वीतनेपर एकत्र हुई, चिर दु खसे उत्पन्न ससार-भयरूपी सागरके उतारनेकी नौकायें सी सूर्यकी गौवें (किरणें) तुम्हारे लिए परम पवित्र अति उत्कृष्ट प्रीति उत्पन्न करें ॥६॥

२ सकल दिशाओके पूरा करनेमें निपुण, महागुणोसे प्रशसनीय रूपवाला, उदयके आरंभमें ही पर्याप्त नही, दिन वीतते समयकी वाधामें भी जो उन्नत ही रहता है, जो क्षण भर भी अन्धकारके साथ एक जगह वसनेसे अत्यत अनभिज्ञ है। वह चमकता सूर्यका तेज अभिलाषा की तरह तुम्हें प्रिय वस्तु प्राप्त कराये ॥२४॥

३ क्या सुमेरुका मार्ग लालो जैसे परागोसे लाल होता आ रहा है, या अपने रथके कुसुम से रगी ध्वजा, घोडोकी पक्तिकी कपित सिरोकी लाल चवरपक्तिया हैं। (अथवा) ऐसे लोगोने आशका करते जिसे देखा, सो सूर्यकी प्रभातकी प्रभा तुम्हारे पाप हरे ॥२७॥

४ सिन्धुके जलकी तरह किनारे तक वढनेवाला, आकाशकी तरह आधे उठे प्रधान नक्षत्रवाला, वसंतके आरभकी तरह थोडे खिले अपने चिह्नरूपी फूलोयुक्त चित्तोको हरता, पर्वतके सिरसे प्रात सूर्यको पूर्वमें उठती किरणो द्वारा अधकारको खंडन करनेवाला, सूर्य-मडल तुम्हारे पापका शमन करे ॥७४॥

५ जो पहले पूर्वमें प्रकाशता है और जिसके उगनेमे वह (दिशा) पूर्व वनती है, जो दिनके मध्यमें दीप्त होता है, जिस विस्तृत किरणों-वाले से दिन उत्पन्न होता है, जो पर्यायसे लोगोकी रक्षा करता है, और जो ससारका जीवन है। विश्वपर अनुग्रह करनेवाला विश्व-स्रष्टा वह रविमडल तुम्हारी मुक्तिके लिये हो ॥७७॥

६ तीर्थानि व्यर्थकानि ह्रदनदसरसीनिर्झराम्भोजिनीना
नोदन्वन्तो नुदन्ति प्रतिभयमशुभश्वभ्रपातानुबन्धि ।।
आपो नाकापगाया अपि कलुषमुषो मज्जता नैव यत्र
त्रातु यातेऽन्यलोकान् स दिशतु दिवसस्यैकहेतुर्हित व ।९५।

७ श्लोका लोकस्य भूत्यै शतमिति रचिता श्रीमयूरेण भक्त्या
युक्तश्चैतान्पठेद्य सकृदपि पुरुष सर्वपापैर्विमुक्त ।।
आरोग्य सत्कवित्व मतिमतुलबल कान्तिमायु प्रकर्ष
विद्यामैश्वर्यमर्थं सुतमपि लभते सोऽत्र सूर्यप्रसादात् ।१०१।

३२. अमरुक (६७० ई०)

कवि के बारे में भी हमें अधिक मालूम नहीं है। मुक्तक के कवियो में अमरुक का स्थान बहुत ऊचा है। यह शब्द के नहीं रस के कवि हैं। यद्यपि उन्होंने सौ पद्यो को ही रचा—जिनकी सख्या दूसरो की उदारता से अब

शतकम्

१ लिखन्नास्ते भूमिं वहिरवनत प्राणदयितो,
निराहारा सख्य सततरुदितोच्छूननयना ।
परित्यक्त सर्वं हसितपठित पजरशुकैस्,
तवावस्था चेय, विसृज कठिने! मानमधुना ।।७।।

२. दपत्योर्निशि जल्पतोर्गृहशुकेनाकर्णित यद्वचस्,
तत्प्रातर्गुरुसनिधौ निगदत श्रुत्वैव तार वधू ।
कर्णालम्बितपद्मरागशकल विन्यस्य चञ्चो पुरो
व्रीडार्ता प्रकरोति दाडिमफलव्याजेन वाग्बन्धनम् ।।१६।।

६ दह, नदी, सरोवर, निर्झर, कमलिनियोके तीर्थ व्यर्थ है। पापरूपी गड्ढेके गिरनेके (जिस) भयको समुद्र नही दूर करता, स्वर्ग-नदी (गगा) के पाप-नाशक जल भी स्नान करनेवालोको दूसरे लोकोमें जानेपर जहा रक्षा नही कर सकते, वह दिनका एकमात्र हेतु सूर्य तुम्हारा हित करे ॥९९॥

७ श्रीमयूरने ससारके कल्याणके लिये सौ श्लोक रचे। भक्ति-सहित इन्हें एक वार भी जो पुरुष पढे, वह सव पापोंसे मुक्त होवे। आरोग्य, सत्कवित्व, अतुल वल, सौंदर्य, दीर्घ-आयु, विद्या, ऐश्वर्य और धनको भी वह यहाँ सूर्यकी कृपासे पावे ॥१०१॥

•

३२. अमरुक (६७० ई०)

ड्योढ़ी हो गई है—तो भी इतने ही से अमरुक अमर है। बहुत संभव है, सस्कृत काव्यक्षेत्र में अपना जौहर दिखलाने वाले वह प्रथम कश्मीरी कवियोमेंसे हो।

शतक

१. प्राणप्रिय वाहर सिर झुकाये भूमि पर लकीर खीच रहा है। निरन्तर रोनेसे सखिया फूली आखोवाली तथा निराहार है। पिंजड़ेके तोतोंने सारे हसने-पढनेको छोड दिया। और तेरी यह अवस्था है, हे कठोर हृदये, अव (भी तो) मानको छोड ॥७॥

२ रातको वात करते पति-पत्नियोके वचनको जो तोतेने सुना, उसे सवेरे गुरुजनोके पास जोरसे कहते सुनकर, लज्जा-पीडिता वहू, (अपने) कानसे लटकते लालके टुकडेको चोचके सामने रख, अनारके फूलके वहाने (तोतेका) मुह वन्द करती है ॥१६॥

६ तीर्थानि व्यर्थकानि ह्रदनदसरसीनिर्झराम्भोजिनीना
नोदन्वन्तो नुदन्ति प्रतिभयमशुभश्वभ्रपातानुबन्धि ॥
आपो नाकापगाया अपि कलुषमुषो मज्जता नैव यत्र
त्रातु यातेऽन्यलोकान् स दिशतु दिवसस्यैकहेतुर्हित व ।९५।

७ श्लोका लोकस्य भूत्यै शतमिति रचिता श्रीमयूरेण भक्त्या
युक्तश्चैतान्पठेद्य सकृदपि पुरुष सर्वपापैर्विमुक्त ॥
आरोग्य सत्कवित्व मतिमतुलबल कान्तिमायु प्रकर्षं
विद्यामैश्वर्यमर्थं सुतमपि लभते सोऽत्र सूर्यप्रसादात् ।१०१।

३२. अमरुक (६७० ई०)

कवि के बारे में भी हमें अधिक मालूम नहीं है। मुक्तक के कवियो में मरुक का स्थान बहुत ऊचा है। यह शब्द के नहीं रस के कवि हैं। यद्यपि न्होंने सौ पद्यो को ही रचा—जिनकी सख्या दूसरो की उदारता से अब

शतकम्

१ लिखन्नास्ते भूमि बहिरवनत प्राणदयितो,
निराहारा सख्य सततरुदितोच्छूननयना ।
परित्यक्त सर्वं हसितपठित पजरशुकैस्,
तवावस्था चेय, विसृज कठिने [1] मानमधुना ॥७॥

२ दपत्योर्निशि जल्पतोर्गृहशुकेनाकर्णित यद्वचस्,
तत्प्रातर्गुरुसनिधौ निगदत श्रुत्वैव तार वधू ।
कर्णालम्बितपद्मरागशकल विन्यस्य चञ्चो पुरो
व्रीडार्ता प्रकरोति दाडिमफलव्याजेन वाग्वन्धनम् ॥१६॥

६ दह, नदी, सरोवर, निर्झर, कमलिनियोके तीर्थ व्यर्थ है। पापरूपी गड्ढेके गिरनेके (जिस) भयको समुद्र नही दूर करता, स्वर्ग-नदी (गगा) के पाप-नाशक जल भी स्नान करनेवालोको दूसरे लोकोमें जानेपर जहा रक्षा नही कर सकते, वह दिनका एकमात्र हेतु सूर्य तुम्हारा हित करे ।।९१।।

७ श्रीमयूरने ससारके कल्याणके लिये सौ श्लोक रचे। भक्ति-सहित इन्हें एक बार भी जो पुरुष पढे, वह सब पापोंमे मुक्त होवे। आरोग्य, सत्कवित्व, अतुल बल, सौंदर्य, दीर्घ-आयु, विद्या, ऐश्वर्य और धनको भी वह यहाँ सूर्यकी कृपासे पावे ।।१०१।।

•

३२. अमरुक (६७० ई०)

डयोढी हो गई है—तो भी इतने ही से अमरुक अमर है। बहुत संभव है, संस्कृत काव्यक्षेत्र में अपना जौहर दिखलाने वाले वह प्रथम कश्मीरी कवियोंमेंसे हो।

शतक

१. प्राणप्रिय बाहर सिर झुकाये भूमि पर लकीर खीच रहा है। निरन्तर रोनेसे सखिया फूली आखोवाली तथा निराहार हैं। पिंजडेके तोतोने सारे हसने-पढनेको छोड दिया। और तेरी यह अवस्था है, हे कठोर हृदये, अब (भी तो) मानको छोड ।।७।।

२ रातको बात करते पति-पत्नियोके वचनको जो तोतेने सुना, उसे सवेरे गुरुजनोंके पास जोरसे कहते सुनकर, लज्जा-पीडिता बहू, (अपने) कानसे लटकते लालके टुकडेको चोचके सामने रख, अनारके फूलके बहाने (तोतेका) मुह बन्द करती है ।।१६।।

३ सा बाला वयमप्रगल्भमनस सा स्त्री वय कातरा,
सा पीनोन्नतिमत्पयोधरयुग धत्ते सखेदा वयम्।
साक्रान्ता जघनस्थलेन गुरुणा गन्तु न शक्ता वय,
दोषैरन्यजनाश्रयैरपटवो जाता स्म इत्यद्भुतम् ॥३४॥

४ "सुतनु, जहिहि मौन पश्य पादानत मा,
न खलु तव कदाचित्कोप एवविधोऽभूत्।"
इति निगदति नाथे तिर्यगामीलिताक्ष्या,
नयनजलमनल्प मुक्तमुक्त न किंचित् ॥३९॥

५ बाले! नाथ! विमुच मानिनि रुष, रोषान्मया किं कृत ?
खेदोऽस्मासु नमेऽपराध्यति भवान् ? सर्वेऽपराधा मयि।
तत्कि रोदिषि गद्गदेन वचसा ? कस्याग्रतो रुद्यते ?
नन्वेतन्मम, का नवास्मि दयिता ? नास्मीत्यतो रुद्यते ।५७।

६ तदाभूदस्माक प्रथममविभक्ता तनुरिय,
ततो न त्व प्रेयान्, अहमपि हताशा प्रियतमा।
इदानी नाथस्त्व, वयमपि कलत्र किमपर,
मयाप्त प्राणाना कुलिशकठिनाना फलमिदम् ॥६९॥

७ प्रासादे सा दिशि दिशि च सा पृष्ठत सा पुर सा,
पर्यंके सा पथि पथि च सा तद्वियोगातुरस्य।
हहो चेत प्रकृतिरपरा नास्ति मे कापि सा सा
सा सा सा सा जगति सकले कोऽयमद्वैतवाद ॥१०२॥

८ गन्तव्य यदि नाम निश्चितमहो गन्तासि केय त्वरा,
द्वित्राण्येव पदानि तिष्ठतु भवान्पश्यामि यावन्मुखम्।
ससारे घटिकाप्रणालविगलद्वारा समे जीविते,
को जानाति पुनस्त्वया सह मम स्याद्वा न वा सगम ।१६३।

३ वह वाला है, (पर) अप्रौढ मन हम हैं। वह स्त्री है, (पर) कातर हम हैं। वह स्थूल उन्नत स्तन-युगल-धारिणी है, खेदयुक्त हम हैं। वह भारी नितम्बसे आक्रान्त है, पर जानेमें असमर्थ हम हैं। अन्य जनमें स्थित दोषोसे वुरे हम हो गये, यह विचित्र (वात) है ॥३४॥

४ "हे सुशरीरे, मौन छोड पैरो में पडे मेरी ओर देख। इस तरहका कोप तुझे कभी नही हुआ।" ऐसा स्वामीके कहते समय उस तिरछी अवमूदी आखोवालीने वहुतसा अश्रुजल छोड दिया (और कुछ) नहीं कहा ॥३६॥

५ वाले ? नाथ। मानिनि, रोप छोड। रोप करके मैंने क्या किया ? हमें खेद है, आपने मेरा कोई अपराध नही किया, सारे अपराध मुझमें हैं। तो क्यो गद्‌गद् वाणीसे रो रही हो ? किसके सामने रोया जाता है ? यह मेरे ही सामने तो। क्या मैं नई प्रिया हू ? प्रिया नही हू, इसीलिये तो रो रही हू ॥५७॥

६ तव, पहले हमारा यह शरीर विभक्त नही था। इसके वाद न तुम प्रियतम रहे, और मैं (हुई) अभागी प्रियतमा। अव तुम नाथ हो और हम भी पत्नी। यह क्या, जैसे कठोर प्राणोका मैंने दूसरा फल, पाया ॥६६॥

७ उसके वियोगसे आतुर मेरे लिये वह महलमें है। दिशा-दिशामें वह, पीछे वह, सामने वह, पलगपर वह, और मार्गमें वह है। अहो अचरज, मेरी प्रकृति दूसरी कोई नही, वही, वही, वही, वही है, सारे जगत्‌में यह कौन सा अद्वैतवाद है ॥१०२॥

८ यदि जाना निश्चित ही है, तो अहो जाओगे यह कौन सी जल्दी है ? दो-तीन कदम ही आप ठहरे, जव तक मैं मुख देखू। रहटकी घैलियोंसे गिरते जलके समान ससारमें जीवनके होनेसे, कौन जानता है, तुम्हारे नाथ मेरा मिलन (फिर) होगा या नही ॥१६३॥

३३. भर्तृहरि (६७० ई०)

भर्तृहरिके बारेमें अधिक पता नहीं लगता। इनका काल सातवीं शताब्दीका अन्त मालूम होता है। वैयाकरण भर्तृहरि और कवि भर्तृहरि एक ही थे, यह कहना मुश्किल है। वैयाकरण भर्तृहरि तो संभवतः वही थे, जिनका उल्लेख चीनी पर्यटक ई. चिङ ने किया है। भर्तृहरि के शतक बहुत लोकप्रिय हैं। इसका एक उत्तम संस्करण डा० कौशाम्बी ने किया है।

शतकत्रयम्

१. अज्ञ सुखमाराध्य. सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञ ।
ज्ञानलवदुर्विदग्ध ब्रह्मापि नर न रजयति ॥८॥

२ मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णास्,
त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभि प्रीणयन्त ।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्य,
निजहृदि विकसन्त सन्ति सन्त कियन्त. ॥१९॥

३ क्वचिद् भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यंकशयन,
क्वचिच्छाकाहार क्वचिदपि च शाल्योदनरुचि ।
क्वचित् कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्वरधरो,
मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दु ख न च सुखम् ॥२१॥

४ जातिर्यातु रसातल गुणगणस्तस्याप्यधो गच्छता
शील शैलतटात् पतत्वभिजन सदह्यता वह्निना ।
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु न केवल,
येनैकेन विना गुणास् तृणलवप्राया समस्ता इमे ॥२५॥

५. कुसुमस्तवकस्येव द्वयी वृत्तिर्मनस्विन ।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य शीर्यते वन एव वा ॥३४॥

३३. भर्तृहरि (६७० ई०)

इससे पता लगता है, कि भर्तृहरि की कृति में लोगो ने बड़ी उदारतापूर्वक क्षेपक किये हैं। यदि व्याकरण के प्रौढ़ ग्रंथ "वाक्पदीय" के रचयिता भी यही नहीं हैं, तो इनकी यही एक कृति है, जो नीति, शृंगार और वैराग्य के तीन भागो में विभक्त है।

शतकत्रय

१ अज्ञका आसानीसे सेवन किया जा सकता है, विशेषज्ञ का और अधिक आसानीसे, (पर) थोडे से ज्ञानसे पडित आदमीका रजन ब्रह्मा भी नही कर सकता ॥८॥

२ मन-वचन-शरीरसे पुण्यरूपी अमृतमे भरे, उपकारो द्वारा त्रिभुवनको सतुष्ट करते, दूसरेके गुणोके कणोको भी सदा पहाड बनाते, अपने हृदयके भीतर उल्लसित सन्तजन कितने हैं ॥१६॥

३ कही भूमिपर विस्तरा और कही पलगपर भी सोना। कही सागका आहार और कही वासमतीके भातका स्वाद भी। कही कथरीधारी और कही दिव्य-वस्त्रधारी भी। कार्य (पूरा करने) की चाहवाला मनस्वी पुरुष न दुखकी पर्वाह करता न सुखकी ॥२१॥

४ जाति रसातलको चली जाये, गुण उसके भी नीचे चले जायें। शील पर्वतके तटसे गिर पड़े, कुलीनताको आग लग जाये। वैरी शूरता पर तुरत वज्र गिरे, हमारा तो वस वही मतलव पूरा हो, जिस एकके विना यह सारे गुण तिनके के वरावर हैं ॥२५॥

५ फूल के गुच्छेकी तरह मनस्वियोकी दो ही गति होती है—या तो सारे लोकके सिरपर रहें या वनमें ही विखर जायें ॥३४॥

६. खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणै संतापितो मस्तके,
वाछन् देशमनातप विधिवशाद् बिल्वस्य मूल गत ।
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्न सशब्द शिर,
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस् तत्रैव यान्त्यापद ।।३९।।

७ जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धा कवीश्वरा । ।
नास्ति येषा यश काये जरामरणजन्मभी ।।५५।।

—नीतिश्लोका.

८. एताश् चलद्वलयसहतिमेखलोत्थ-
झकारनूपुररवाहृतराजहस्य ।
कुर्वन्ति कस्य न मनो विवश तरुण्यो,
वित्रस्तमुग्धहरिणीसदृशाक्षिपातै ।।८०।।

९ उपरि घन घनपटल तिर्यग् गिरयोऽपि र्नर्तितमयूराः ।
क्षितिरपि कन्दलधवला दृष्टि पथिक क्व पातयतु ।।८७।।

१० वक्त्र चन्द्रविडम्बि पकजपरीहासक्षमे लोचने,
वर्ण स्वर्णमपाकरिष्णुरलिनीजिष्णु. कचाना चय ।
वक्षोजाविभकुम्भविभ्रमहरौ गुर्वी नितम्बस्थली,
वाचा हारि च मार्दव युवतिषु स्वाभाविक मण्डनम् ।।९०।।

११ स्मित किंचिद्वक्त्र सरलतरलो दृष्टिविभव,
परिस्पन्दो वाचामभिनवविलासोक्तिसरस ।
गतीनामारम्भ किशलयितलीलापरिकर,
स्पृशन्त्यास् तारुण्य किमिव न हि रम्य मृगदृश. ।।९३।।

१२ मालती शिरसि जृम्भणोन्मुखी चन्दन वपुषि कुकुमाविलम् ।
वक्षसि प्रियतमा मदालसा स्वर्ग एष परिशिष्ट आगत.
।।११६।।

६ दिनके राजा (सूर्य) की किरणोसे शिरपर सतप्त कोई गजा, धूप-रहित स्थानकी इच्छासे भाग्यवश वेलके नीचे चला गया। वहा भी (एक) वडे से फलने आवाज के साथ गिरकर उसका सिर तोड दिया। प्राय भाग्यहीन जहा जाता है, (उसके साथ) वहा विपत्तिया (भी) जाती हैं।।३६।।

७ वे सुदर कृतियोवाले रसोमें सिद्ध कवीश्वर विजयी है, जिनके यश-रूपी शरीरमें जरा-मरणसे उत्पन्न भय नही।।५५।।

—नीति-सम्वन्धी श्लोक

८ हिलते वलयो, मेखलाओसे उत्पन्न झकारो और नूपुरके शब्दोसे राजहसियोको आकृष्ट करनेवाली यह तरुणिया; भयभीत मुग्ध हरिनियोके से दृष्टिपातोंसे किसके मनको वशमें नही कर लेती।।८०।।

९ ऊपर घने तहवाले वादल (हैं), पासमें मोर नाचते पर्वत भी हैं, पृथिवी भी कदलोसे उजली है, वेचारा, (वियोगी) पथिक कहा अपनी आखें पसारे।।८७।।

१० मुख चन्द्रमाको तिरस्कार करनेवाला, दोनो लोचन पकजका परि-हास करनेवाले, रग सोनेका प्रत्याख्यान करनेवाला, केश भवरोको जीतनेवाले, दोनो स्तन गजके कुभके सौदर्यको हरनेवाले, नितव स्थूल और भारी, वाणियोकी मृदुलता-मनोहरिता, ये हैं, युवतियोके स्वाभाविक आभूपण।।९०।।

११ थोडी सी मुस्कराहट सहित मुख, सरल और चचल नेत्रो का सौंदर्य, वचनोका नवीन ललित उक्तियो सरस व्यवहार, नवपल्लव सी लीलावाली चलने की क्रिया—तरुणाईमें प्रवेश करती मृगनयनियोका क्या नही रमणीय होता।।९३।।

१२ चमेली की कली सिर पर, केसरयुक्त चदन शरीर पर, वक्ष पर मदसे अलस प्रियतमा हो, (वस) सारा स्वर्ग (यही) आ गया।।११६।।

१३ नून हि ते कविवरा विपरीतबोधा,
ये नित्यमाहुरबला इति कामिनीनाम्।
याभिर्विलोलतरतारकदृष्टिपातै,
शक्रादयोऽपि विजिता अबला कथ ता ॥११८॥

१४ स्वपरप्रतारकोऽसौ निन्दति योऽलीकपण्डितो युवती ।
यस्मात् तपसोऽपि फल स्वर्गं स्वर्गेऽपि चाप्सरस ।१२०

१५ सति प्रदीपे सत्यग्नौ सत्सु तारामणीन्दुषु।
विना मे मृगशावाक्ष्या तमोभूतमिद जगत् ॥१३०॥

१६ मुखेन चन्द्रकान्तेन महानीलै शिरोरुहै ।
पाणिभ्या पद्मरागाभ्या रेजे रत्नमयीव सा ॥१३१॥

१७ गुरुणा स्तनभारेण मुखचन्द्रेण भास्वता।
शनैश्चराभ्या पादाभ्या रेजे ग्रहमयीव सा ॥१३२॥

—शृगारश्लोका:

१८ भ्रान्त्वा देशमनेकदुर्गविपम प्राप्त न किचित् फल,
त्यक्त्वा जातिकुलाभिमानमुचित सेवा कृता निष्फला।
भुक्त मानविवर्जित परगृहे साशकया काकवत्,
तृष्णे, जृम्भणि, पापकर्मनिरते नाद्यापि सतुष्यसि ॥१४८॥

१९ त्व राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभिमानोन्नता,
यातस् त्व विभवैर्यशासि कवयो दिक्षु प्रतन्वन्ति न.।
इत्थ मानद, नातिदूरमुभयोरप्यावयोरन्तर,
यद्यस्मासु पराङमुखोऽसि वयमप्येकान्ततो नि स्पृहा ।१६३

१३. निश्चय ही वह कविवर उल्टी समझवाले हैं,
जो नित्य कामिनियोको अवला करते हैं। (अपने) अति चंचल पुतलियो वाले दृप्टिपातोंसे जिन्होने इन्द्रादिको भी जीत लिया, वह कैसे अवला हैं? ॥११८॥

१४ जो झूटा पडित युवतियो की निन्दा करता है, वह अपने और दूसरे का वचक है, क्योंकि तपस्या का भी फल स्वर्ग है, और स्वर्ग में भी अप्सरायें है ॥१२०॥

१५ दीपके रहते, आगके रहते, ताराखपी मणियो और चद्रमाके भी होते मृगपोतकी सी आखोवाली उस (प्रिया) के विना मेरे लिये जगत् अन्धकारमय है ॥१३०॥

१६ चन्द्रमाके कमनीय मुख, घने नीले केशो, लाल जैसे दोनो हाथो से वह रत्नमयी सी शोभा देती थी ॥१३१॥

१७ भारी स्तनके भारो से चमकते मुखरूपी चन्द्रमा से, शनै चलनेवाले (शनैश्चर) दोनो पैरो से, वह ग्रहमयीसी शोभ रही थी ॥१३२॥
—श्रृंगारके श्लोक

१८ अनेक दुर्गम और विपम देशो मे भटकते (मैंने) कुछ भी फल नही पाया। जाति और कुलके उचित अभिमान को छोडकर की गई सेवा निष्फल हुई। कौवे की तरह भयभीत हो विना सम्मान के दूसरे के घर में खाया। हे वचक, पापकर्म में निरत तृष्णा, आज भी तू नहीं सतुष्ट होती ॥१४८॥

१९ तू राजा है, तो हम भी गुरु की उपासना करके विद्याके अभिमानसे उन्नत हैं। तू अपने विभव से प्रसिद्ध है, तो कवि लोग हमारे यशोको दिशाओ में फैला रहे है। हे मानदाता, इस प्रकार हम दोनो का अन्तर वहुत नही है, यदि हम से तुम पराङ्मुख हो, तो हम भी तुमसे विलकुल नि.स्पृह हैं ॥१६३॥

२० न नटा न विटा न गायना न परद्रोहनिबद्धबुद्धय ।
नृपसद्मनि नाम के वय स्तनभारानमिता न योषित ।।१६५।।

२१. भ्रात, कष्टमहो महान् स नृपति सामन्तचक्र च तत्,
पार्श्वे तस्य च सापि राजपरिषत् ताश्चन्द्रबिम्बानना ।
उद्रिक्त स च राजपुत्रनिवहस् ते बन्दिनस् ता कथाः
सर्वं यस्य वशादगात् स्मृतिपद कालाय तस्मै नम ।।१६९।।

२२ वयमिह परितुष्टा वल्कलैस् त्व च लक्ष्म्या,
सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेष ।
सतु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला,
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्र ।।१७७।।

२३ नाभ्यस्ता भुवि वादिवृन्ददमनी विद्या विनीताञ्चिता,
खड्गाग्रै करिकुम्भपीठदलनैर्नाक न नीत यश ।
कान्ताकोमलपल्लवाधररस पीतो न चन्द्रोदये,
तारुण्य गतमेव निष्फलमहो शून्यालये दीपवत् ।।१९५।।

—वैराग्यश्लोका.

३४. शीलाभट्टारिका (६७० ई०)

भट्टारिका आम तौर से रानियां या परिव्राजिकाओ को कहते थे। संभवतः शीला राजा की पत्नी थीं। इनका समय वही मालूम होता है, जो भर्तृहरि और माघ का। शीला कहां की रहने वाली थीं, इसका हमें पता नहीं।

१. नायकानुनयः—

१ विरह-विषमो वाम काम करोति तनु तनु,
दिवस-गणनादक्षश्चाय व्यपेत-घृणो यम ।
त्वमपि वशगो मान-व्याधेर्विचिन्तय नाथ हे,
किसलय-मृदुर्जीवेदेवं कथ प्रमदाजन.।।१।।

२०. न हम नट हैं, न लम्पट, न गायक हैं, न दूसरे के द्रोह में कटिबद्ध वुद्धिवाले, न स्तनके भार से झुकी कामिनिया हैं, फिर राजभवन में हम कौन होते हैं ।।१६५।।

२१. अहो कष्ट है भाई, वह महान राजा और वह सामन्तोका समूह, और उसके पास वह राजसभा और वह चन्द्रमुखिया, और वह अभिमानी राजपुत्रो का झुड, वे वदीजन, वे कथायें—यह सव जिसके कारण स्मृतिशेप रह गये, उस कालको नमस्कार है ।।१६६।।

२२ हम यहा वृक्षके छालोसे सतुष्ट और तुम लक्ष्मी से । दोनो ही को यहा एक समान विशेष सतोप है । दरिद्र तो वह होगा, जिसकी तृष्णा विशाल है । मनके सतुष्ट हो जाने पर कौन घनवान और कौन दरिद्र ।।१७७।।

२३ पृथिवीपर वादियोको दमन करनेवाली विनयपूर्वक पढ़ी विद्याका अभ्यास नही किया, खड्ग की नोकोसे गजोंके कुम्भो और पीठो को दलन करते स्वर्ग तक अपने यश नही पहुचाया । चादनीके समय काताके कोमल पल्लव सदृश अधर-रसको नही पिया । अहो शून्य-घरमें दीपक की तरह (हमारी) तरुणाई निष्फल ही गई ।।१६५।।

—वैराग्य-सम्वन्वी श्लोक

३४. शीलाभट्टारिका (६७० ई०)

उन्होने शृंगारिक कवितायें ही की है, जिससे भी किसी सामन्त की अन्तःपुरि का होने का सन्देह होता है। इनकी कवितायें सुन्दर है।

१. नायक से प्रार्थना—

विरहमें विपम प्रतिकूल कामदेव शरीरको दुवला करता है। दिन गिननेमें दक्ष यह यम दया-रहित है। तुम भी मानरूपी रोगके वश हो, हे नाथ, सोचो, नवपल्लवसी कोमल प्रमदा कैसे जिये ।।१।।

(२) वियोगी—

२ प्रिया-विरहितस्यास्य हृदि चिन्ता समागता।
इति मत्वा गता निद्रा क कृतघ्नमुपासते ॥२॥[१]

(३) दूती—

३ दूति त्व तरुणी युवा स चपल श्यामास्तमोभिर्दिश,
सन्देश स रहस्य एव विजने सकेतकावासक ।
भूयो भूय इमे वसन्त-मरुतश्चेतो नयन्त्यन्यतो
गच्छ क्षिप्र-समागमाय निपुण रक्षन्तु ते देवता ॥३॥[२]

४ श्वास कि ? त्वरितागता, पुलिकता कस्मात् ? प्रसाद कृतः,
स्रस्ता वेण्यपि ? पादयोर्निपतनात्, नीवी गमादागमात् ।
स्वेदार्द्रं मुख ?-मातपेन गमित, क्षामा किमत्युक्तिभिर्,
दूति, म्लान-सरोरुहाकृतिधरस्यौष्ठस्य किं वक्ष्यसि ॥४॥[२]

(४) असती—

५ य. कौमार-हर स एव हि वरस्ता एव चैत्र-क्षपास्,
ते चोन्मीलित-मालती-सुरभय प्रौढा. कदम्बानिला ।
सा चैवास्मि तथापि चौर्य-सुरत-व्यापार-लीला-विधौ
रेवा-रोधसि वैतसी-तरु-तले चेत समुत्कण्ठते[२] ॥५॥

(५) जरा—

६ इदमनुचितमक्रमश्च पुसा,
यदिह जरास्वपि मान्मथा विकारा ।
इदमपि न कृत नितम्बिनीना
स्तन-पतनावधि जीवितं रतं वा ॥६॥

---

१. अनुष्टुप् २. शार्दूलविक्रीडितम

२. वियोगी—

२ प्रियासे रहित इसके हृदयमें चिन्ता आ गई। यह जानकर निद्रा भाग गई। कृतघ्नके पास कौन रहना चाहेगा ॥२॥

३. दूती—

३ हे दूती, तू तरुणी है, वह चपल तरुण है। दिशायें अंधकारसे श्यामल हैं, वह सन्देश गुप्त है, संकेतस्थान निर्जन है। यह वसंतकी हवायें अधिकाधिक चित्तको बहकानेवाली हैं। जल्दी लौटनेके लिये तू अच्छी तरह जा, देवता तेरी रक्षा करें ॥३॥

४ सांस क्यों ले रही हैं? (जल्दी) जल्दी आई। रोमांचित क्यों है? (उनकी) कृपा से। वेणी खुली क्यों? पैरोंपर गिरनेसे, (और) नीवी? आने-जानेसे। पसीनेसे भींगा मुंह क्यों? धूपसे हुआ। थकी क्यों? बोलनेसे। हे दूती, तू (अपने) कुम्हलाये कमलाकार ओठके लिये क्या कहती है? ॥४॥

४. कुलटा—

५ जिसने कौमार्यका हरन किया, वही पति (अब भी) है, वही चैतकी रातें हैं, वही फूली चमेलीके सुगंधित और कदंबके प्रौढ़ वायु है। वही मैं हूं, तो भी नर्मदाके किनारे वेंतकी लताओंके नीचे चोरीसे मिलन-व्यापारकी लीलाके लिये चित्त उत्कंठित होता है ॥५॥

५. जरा—

६ यह अनुचित है, और पुरुषोंके लिये ठीक नहीं है, जो कि बुढ़ापे में भी पुरुषोंको कामविकार होते हैं। (पर) स्त्रियोंके लिये यह भी नहीं किया, क्योंकि स्तन के गिरने तक उनका जीवन-आनंद रहता है ॥६॥

३५. माघ (६७५ ई०)

माघ कवि का अपना नाम था, या भट्टि की तरह उपाधि, यह नहीं कहा जा सकता। भट्टि की तरह ही यह गुजरात के रहनेवाले थे। माघ के दादा सुप्रभदेव, राजा धर्मनाभ (वर्मलात) के मन्त्री थे। इनके पिता का नाम दत्तक था। धनी कुल में पैदा होने से इन्हें अर्थाभाव की कठिनाइयां नहीं सहनी पडी। इनका जन्म भिन्नमाल (श्रीमाल) में हुआ था। इन्हीं के नगर में और शायद कुछ ही समय पहले महान् ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त ने जन्म लिया था, जिन्होंने ६२५ ई० के आसपास "ब्रह्म सिद्धान्त" को लिखा। माघ बडे दानी थे, इनकी एक ही कृति "शिशुपालवध" मिलती है, जो कवि के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। माघ पडित थे, कवियो में

शिशुपालवधम्*

(१) नारदागमनम्—

१. श्रिय पति श्रीमति शासितु जगज्जगन्निवासो वसुदेव-
सद्मनि।
वसन् ददर्शावतरन्तमम्बराद्धिरण्यगर्भांगभुव मुनिं हरि ।१।

२. "गत तिरश्चीनमनूरुसारथे प्रसिद्धमूर्ध्वज्वलन हविर्भुज.।
पतत्यधो धाम विसारि सर्वत किमेतदि"त्याकुलमीक्षित
जनै ।।२।।

३ चयस्त्विषामित्यवधारित पुरा तत शरीरीति विभा-
विताकृतिम्।
विभुर्विभक्तावयवं पुमानिति क्रमादमु नारद इत्यबोधि
स. ।।३।।

*माघ

३५. माघ (६७५ ई०)

त्य को दिखलाने से कहीं बाज नहीं आते। यद्यपि माघ में कालि-
पमा, भारवि के अर्थगाम्भीर्य और दंडी के पद-लालित्य का एकत्र
ााना गया है, किन्तु जिसमें अधिक से अधिक पाडित्य प्रदर्शन
कोशिश की जाये, वह अच्छी कविता कैसे हो सकती है ? सारे
ाल में अच्छी कविता की कसौटी कलाबाजी को माना जाता
माघ को दोष देना अनुचित है। अपभ्रंश-काल के अन्तिम महा-
हर्ष ने तो इस कपाल-क्रिया करनेवाली कविता में हव कर
दि समय के फेर में न पड़ते, तो "माघ" का रूप और सुन्दर होता

शिशुपालवध

१. नारदागमन—

१. जगत्को शासन करनेके लिये श्री-सम्पन्न वसुदेवके घरमें बसते जगत्निवास लक्ष्मीपति हरिने आकाशसे उतरते ब्रह्माके पुत्र उन नारदमुनिको देखा ॥१॥

२ सूर्यकी गति तिरछी होती है, अग्निकी ज्वाला उर्ध्वमुखी प्रसिद्ध है। सब तरफ फैलता नीचे गिरता यह प्रकाश क्या है, यह लोगोंने व्याकुल हो देखा ॥२॥

३ पहले निश्चय किया "यह किरणोका समूह है", फिर यह "शरीर-धारी" ज्ञात आकृतियुक्त स्पष्ट अंगोवाला पुरुष, यह सोचते क्रमशः उन्होंने नारद को जाना ॥३॥

४ निवर्त्य सोऽनुव्रजत कृतानतीनतीन्द्रियज्ञाननिधिर्नभ सद ।
समासदत्सादितदैत्यसपद पद महेन्द्रालयचारु चक्रिण ।।११।।

५ पतत्पतगप्रतिमस्तपोनिधि पुरोऽस्य यावन्न भुवि व्यलीयत ।
गिरेस्तडित्वानिव तावदुच्चकैर्जवेन पीठादुदतिष्ठदच्युतः ।।१२।।

६ तमर्घ्यमर्घ्यादिकयादिपूरुष सपर्यया साधु स पर्यपूपुजत् ।
गृहानुपैतु प्रणयादभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृता मनीषिण ।।१४।।[1] —सर्ग.१

(२) **पर्वतवर्णनम्—**

७ नि श्वासधूम सह रत्नभाभिर्भित्वोत्थित भूमिमिवोरगाणाम्
नीलोत्पलस्यूतविचित्रधातुमसौ गिरिं रेवतक ददर्श[2] ।।१।।

८ गुर्वीरजस्र दृषद समन्तादुपर्युपर्यम्बुमुचा वितानै. ।
विन्ध्यायमान दिवसस्य भर्तुर्मार्गं पुना रोद्धुमिवोन्नमद्भि ।।२।।

९ सहस्रसख्यैर्गमन शिरोभि पादैर्भुव व्याप्य वितिष्ठमानम् ।
विलोचनस्थानगतोष्णरश्मिनिशाकर साधु हिरण्यगर्भम् ।४।

१०. क्वचिज्जलापायविपाण्डुराणि धौतोत्तरीयप्रतिमच्छवीनि
अभ्राणि बिभ्राणमुमागसगविभक्तभस्मानमिव स्मरारिम् ।।५।।

११ विलम्बिनीलोत्पलकर्णपूरा कपोलभित्तीरिव लोध्रगौरी ।
नवोलपालकृतसैकताभा शुचीरप शैवलिनीर्दधानम् ।८।

---

१. वशस्थ २. उपजाति (१-८)

४ अतीन्द्रिय ज्ञाननिधि नारद, अनुगमन करते नम्र देवताओको लौटाकर दैत्योकी सम्पत्तिको उच्छिन्न करनेवाले कृष्णके इन्द्रभवन जैसे सुन्दर स्थानमें पहुँचे ॥११॥

५ उनके सामने उगते सूर्य समान तपोनिधि नारद के धरती पर न विलीन होनेके साथ, पर्वतके मेघकी तरह कृष्ण वडे वेगसे अपने आसनसे उठ खडे हुये ॥१२॥

६ आदि पुरुष (कृष्ण) ने पूजनीय नारदको अर्घ्य आदि द्वारा अच्छी तरह पूजा। मनीषी लोग अपुण्यात्माओके घरोमें स्नेहसे आनेके इच्छुक नही होते ॥१४॥ —सर्ग १

२. पर्वत-वर्णन—

७ (उन्होने) भूमिको फोडकर उठे, सर्पोंके रत्नोंके किरणो सहित, श्वास के धूयें जैसे नील पाषाणमें पिरोई विचित्र धातुओ से युक्त **रैवतक** (गिरनार) गिरिको देखा ॥१॥

८ (जो) सदा भारी शिलाओके चारो ओर ऊपर-ऊपर (छाये) मेंघोके वितानो द्वारा, **विंध्य पर्वत** वन सूर्यके मार्गको फिर रोकनेके लिये सिर उठाये था ॥२॥

९ (जो) हजार संख्यावाले सिरो और पैरोमे आकाश और भूमिको व्याप्त कर अवस्थित, नेत्रके तौरपर सूर्य और चन्द्रमाको धारे ठीक हिरण्यगर्भ (विष्णु) सा था ॥४॥

१० (जो) कहीपर पानीके निकलनेसे पीले, धुली चादर समान रूपवाले वादलोको धारण करते, उमाके अंगके संसर्गसे विभक्त भस्मवाले शंकर जैसा दीखता था ॥५॥

११ (जो) लटकते नीलकमलके कर्णभूषणवाले कपोलोकी तरह लोध सी गोरी नई मूंजसे शोभित, वालूकी आभा से युक्त, सेंवारवाली शुद्ध नदियोको धारण किये हुआ ॥८॥

१२ राजीवराजीवशलोलभृङ्गमुष्णन्तमुष्णं ततिभिस्तरूणाम्।
कान्तालकान्ता ललना सुराणां रक्षोभिरक्षोभितमु-
द्वहन्तम् ॥९॥

१३ अखिद्यतासन्नमुदग्रतापं रविं दधानेऽप्यरविन्दधाने।
भृङ्गावलिर्यस्य तटे निपीतरसा नमत्तामरसा न मत्ता ॥१२॥

१४ फलद्भिरुष्णांशुकराभिमर्शात्कार्शानवं धाम पतङ्गकान्तैः।
शशंस यः पात्रगुणाद् गुणानां सङ्क्रान्तिमाक्रान्तगुणाति-
रेकाम् ॥१६॥

१५ दृष्टोऽपि शैलः स मुहुर्मुरारेरपूर्ववद्विस्मयमाततान।
क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः ॥१७॥

१६ कृत्वा पुंवत्पातमुच्चैर्भृगुभ्यो मूर्ध्नि ग्राव्णां जर्जरा निर्झ-
रौघाः।
कुर्वन्ति द्यामुत्पतन्तः स्मरार्तस्वर्लोकस्त्रीगात्रनिर्वाणमत्र[1]
॥२३॥
—सर्ग ४

(३) ऋतुवर्णनम्—

१७ अथ रिरंसुममुं युगपद् गिरौ कृतयथास्वतरुप्रसवश्रिया।
ऋतुगणेन निषेवितुमादधे भुवि पदं विपदन्तकृतं सताम्[2] ॥१॥

१८ नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम्।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्स सुरभिं सुरभिं सुमनो-
भरैः ॥२॥

१९ विलुलितालकसंहतिरामृशन् मृगदृशां श्रमवारि ललाटजम्।
तनुतरङ्गततिं सरसां दलत्कुवलयं वलयन् मरुदाववौ ॥३॥

---

१. शालिनी, २. द्रुतविलंबित

१२ (जो) कमलपंक्तियोंके वशमें चचल भृंगोवाले वृक्षोंके समूहोंसे गर्मीके आतपको चुराता, कान्ताओंकी कमनीय अलकवाली देव-ललनाओंको राक्षसोंकी तरह अचल हो उठाता ।।६।।

१३ (जो) उग्रतापवाले रविको धारण करते भी अरविन्द धारण करने वाला था। रस पिये, कमलोंको झुकाती नमत भृगोंकी पाती जिसके तटपर खिन्न थी ।।१२।।

१४ जिसने सूर्यकी किरणोंके स्पर्शसे अग्निके तेजको फलित करते सूर्य-काती द्वारा यह प्रकट किया, कि पात्रके गुणोंसे आक्रान्त गुण द्वारा अधिक सक्राति होती है ।।१६।।

१५ उस देखे हुये भी पर्वतने मुरारिको क्षणभरके लिये अपूर्वकी तरह हो अधिक विस्मित कर दिया। जो क्षण-क्षणमें नवीन हो, वही रमणीयता का रूप है ।।१७।।

१६ इस (रैवतक) के पुरुषोंकी तरह ऊचे पर्वतशिखरोंसे पत्थरोंके सिरपर गिरकर जर्जर हुये चश्मे, आकाशकी ओर उछलते, काम-पीडिता देवागनाओंके शरीरको सुख देते हैं ।।२३।।

—सर्ग ४

३. ऋतु-वर्णन

१७ तब गिरि (रैवतक) में रमण करनेके इच्छुक, सतोंके सकटनाशक (कृष्ण) को अपने-अपने, वृक्षोंकी पुष्पफल-सपत्तिसे सेवा करनेके लिये ऋतुओंने एक साथ भूमिपर पैर रक्खा ।।१।।

१८ कृष्णाने नवपल्लवयुक्त, पलाशवनवाले, परागसे स्पष्ट व्याप्त पकज-वाले, मृदुल म्लान पल्लवोंवाले, पुष्पसमूहोंसे सुगधित वसतको सामने देखा ।।२।।

१९ हिलती अलकोंवाली मृगनयनियोंके ललाटपर उत्पन्न स्वेदजलको छूता, सरोवरोंके सूक्ष्म तरगोंको दलित करता, कमलोंको हिलाता वायु वह रहा था ।।३।।

२० तुलयति स्म विलोचनतारका कुरवकस्तबकव्यतिषगिणि ।
गुणवदाश्रयलब्धगुणोदये मलिनिमालिनि माधवयोषिता ॥४॥

२१ स्फुटमिवोज्ज्वलकाचनकान्तिभिर्युतमशोकमशोभत चम्पकै ।
विरहिणा हृदयस्य भिदाभृत कपिशित पिशित मदनाग्निना ॥५॥

२२ स्मरहुताशनमुर्मुरचूर्णता दधुरिवाम्रवणस्य रज कणा ।
निपतिता परित पथिकव्रजानुपरि ते परितेपुरतो भृशम् ॥६॥

२३ रतिपतिप्रहितैव कृतक्रुध प्रियतमेषु वधूरनुनायिका ।
बकुलपुष्परसासवपेशलध्वनिरगान्निरगान्मधुपावलि ॥७॥

२४ प्रियसखीसदृश प्रतिबोधिता किमपि काम्यगिरा परपुष्टया ।
प्रियतमाय वपुर्गुरुमत्सरच्छिदुरयादुरयाचितमगना ॥८॥

२५ मधुकरैरपवादकरैरिव स्मृतिभुव पथिका हरिणा इव ।
अविनमन्नरराज वृथोच्चकैरनृतया नृतया वनपादप ॥१०॥

(४) वर्षावर्णनम्—

२६ स्फुरदधीरतडिन्नयना मुहु प्रियमिवागलितोरुपयोधरा ।
जलधरावलिरप्रतिपालितस्वसमया समयाजगतीधरम् ॥२५॥

२७ गजकदम्बकमेचकमुच्चकैर्नभसि वीक्ष्य नवाम्बुदमम्बरे ।
अभिससार न वल्लभमगना न चकमे च कमेकरस रह: ॥२६॥

२० कुरबकके गुच्छोंमें लगे गुणयुक्त अवलम्बसे गुणमें उत्कर्ष पाई भ्रमरकी कालिमा कृष्णकी स्त्रियोंके लोचनोंकी पुतलियोंके समान थी। ॥४॥

२१ (वह) उज्ज्वल, सुवर्ण कान्तिवाले, चम्पकोसे युक्त फूले अशोकको शोभित कर रहा था, घाव लगे विरहियों का हृदय,कामाग्निसे पीला पड गये मास सा ॥५॥

२२ आमके वर्गीचेके परागोंके कण, बटोहियोंके ऊपर चारों तरफ गिरे कामाग्निके भौंर हो उन्हें बहुत सतप्त करते थे ॥६॥

२३ क्रुद्ध वधुओको मनानेवाले प्रियतमोंके पास कामदेव द्वारा प्रेपित सी मौलसरीके फूलोके रसरूपी मद्यके पानसे मधुर शब्दवाले भवरे वृक्षसे मानो निकले ॥७॥

२४ भारी रोपको काटनेवाली कमनीय वाणीवाली प्रियसखी समान कोयल द्वारा कुछ उपदिष्ट हो ललनाओने प्रियतमको विना मागे अपना शरीर प्रदान किया ॥८॥

२५ फूल चुननेकी इच्छासे रागसे पास आकर प्रमदाओ द्वारा झुकाया, न झुकता व्यर्थ ऊंचा वनवृक्ष (अपनी) झूठी पुरुपतासे शोभित नही हुआ ॥१०॥

४. वर्षावर्णन—

२६ हिलते अधीर विजलीरूपी नयनोवाली क्षण भर (जलसे) न खाली विशाल पयोधरवाली मेघपंक्ति समयकी प्रतीक्षा किये विना क्षण भर मानो (अपने) प्रिय पर्वतमे मिली ॥२५॥

२७ श्रावणमें आकाशमें गजोंके समूह जैसे काले ऊचे नये मेघोंको देखकर अगनाने, एक राग-रसवाले किसी वल्लभकी एकान्तमें न कामना की, न अभिसार ॥२६॥

२८ अनुययौ विविधोपलकुण्डलद्युतिवितानकसवलिताशुकम् ।
धृतधनुर्वलयस्य पयोमुच शबलिमा बलिमानमुषो वपु.
॥२७॥

२९. द्रुतसमीरचलै क्षणलक्षितव्यवहिता विटपैरिव मजरी।
नवतमालनिभस्य नभस्तरोरचिररोचिररोचत वारिदै.
॥२८॥

३० पटलमम्बुमुचा पथिकागना सपदि जीवितसशयमेष्यती।
सनयनाम्बुसखीजनसभ्रमा विधुरबन्धुरबन्धुरमैक्षत ॥२९॥

३१ प्रवसत सुतरामुदकम्पयद्विदलकन्दलकम्पनलालित ।
नमयति स्म वनानि मनस्विनीजनमनोनमनो घनमारुतः
॥३०॥

३२ जलदपक्तिरनर्तयदुन्मद कलविलापिकलापिकदम्बकम् ।
कृतसमार्जनमर्दलमण्डलध्वनिजया निजया स्वनसपदा
॥३१॥

३३. नवकदम्बरजोरुणिताम्बरैरधिपुरध्रि शिलीन्ध्रसुगन्धिभि ।
मनसि रागवतामनुरागिता नवनवा वनवायुभिरादधे
॥३२॥

३४ शमिततापमपोढमहीरज प्रथमबिन्दुभिरम्बुमुचोऽम्भ-
साम् ।
प्रविरलैरचलागनमगना वनसुग न सुगन्धि न चक्रिरे
॥३३॥

३५ द्विरददन्तवलक्षमलक्ष्यत स्फुरितभृंगमृगच्छवि केतकम् ।
घनघनौघविघट्टनया दिव. कृशशिख शशिखण्डमिवच्युतम्
॥३४॥

२८ (इन्द्र) धनुषरूपी वलयको धारण किये मेघकी श्यामता, बलि राजा के अभिमानको हरनेवाले (कृष्ण) के, नाना पाषाणके कुडलोकी द्युतियोके बितानोंसे युक्त अशुकवाले शरीरका अनुकरण करती थी ।।२७।।

२९ शीघ्रगामी वायुसे हिलते वृक्षो द्वारा क्षण भर दीखकर लुप्त हुई मजरीकी तरह, नये तमाल सदृश आकाशरूपी वृक्षकी मजरी विजली मेघो में प्रकाशित थी ।।२८।।

३० बटोहीकी मरणोन्मुख वियोगिनी बहू ने रोती हुई सखियोके क्षोभसे, मेघ-समूहको असुदर देखा ।।२९।।

३१ फूली द्रोणपर्णीके कापनेसे लालित, मनस्वी जनोके मनोको झुकाने-वाली, बरसाती हवा वनोको झुकाती बटोहियोको अत्यत उद्विग्न कर रही थी ।।३०।।

३२ अपनी सम्पदा द्वारा ऊपर लेप किये, मादलोकी ध्वनिको जीतनेवाली, मेघपंक्ति ने सुदर-भार्यी मयूरोको मस्त करके नचाया ।।३१।।

३३ नये कदम्ब केसर जैसे लाल हुये अम्बरयुक्त कदलीकी सुगन्धिवाले वनवायुओने स्त्रियोके प्रति कामियोके मनमे नया-नया अनुराग पैदा किया ।।३२।।

३४ (जिसने) मेघोके विरल जलोके प्रथम विन्दुओ से तापशान्त हुये, धूलिरहित भूमि वाले पर्वतोको अगनाओंके लिये न सुगम नही सुगवित किया ।।३३।।

३५ हाथीके दातसे श्वेत, हिलते, भ्रमरोरूपी मृगकी छविवाले केवडा मानो, घने मेघोके टकरानेसे गिरे आकाशकी क्षीण शिखावाले चद्र-खड थे ।।३४।।

३६ दलितमौक्तिकचूर्णविपाण्डव स्फुरितनिर्झरशीकरचारव.।
कुटजपुष्पपरागकणा स्फुट विदधिरे दधिरेणुविडम्बनाम्
॥३५॥

३७ नवपय कणकोमलमालतीकुसुमसततिसततसगिभि
प्रचलितोडुनिभै परिपाण्डिमा शुभरजोभरजालिभि -
राददे ॥३६॥

३८ निजरज पटवासमिवाकिरद्धृतपटोपमवारिमुचा दिशाम्
प्रियवियुक्तबधूजनचेतसामनवनीनवनीपवनावलि ॥३७॥

३९ प्रणयकोपभृतोऽपि पराङमुखा सपदि वारिधरारवभीरव ।
प्रणयिन परिरब्धुमथागनाऽववलिरे वलिरेचितमध्यमा ॥
॥३८॥

४० विगतरागगुणोऽपि जनो न क चलति वाति पयोदनभस्वति ।
अभिहितेऽलिभिरेवमिवोच्चकैरननृते ननृते नवपल्लवै:
॥३९॥

४१ अरमयन्भवनादचिरद्युते. किल भयादपयातुमनिच्छव ।
यदुनरेन्द्रगण तरुणीगणास्तमथ मन्मथमन्थरभाषिण
॥४०॥

४२ मुदमब्दभुवामपा मयूरा सहसायन्त नदी पपाट लाभे।
अलिना रमतालिनीशिलीन्ध्र सह सायन्तनदीपपाटलाभै
॥७२॥

४३ कुटजानि वीक्ष्य शिखिभि शिखरीन्द्र समयावनौ घनमद-
भ्रमराणि ।
गगन च गीतनिनदस्य गिरोच्चै समया वनौघनमद-
भ्रमराणि ॥७३॥
—सर्ग ६

३६ पिसी मोतीके चूर्ण जैसे अति श्वेत उछलते निर्झरोंकी फुहारी जैसे सुन्दर कुटजके फूलोंके केसर-कण स्पष्ट दहीके चूर्णकी समानता धारण कर रहे थे ॥३५॥

३७ नवीन जलकण समान कोमल चमेलीके फूलसमूहो के सदा साथ रहनेवाले चचल ताराओंके समान भवरे सुदर धूलिके समूहोंसे उत्पन्न सफेदीको धारण कर रहे थे ॥२६॥

३८ प्रियेसे वियुक्त वधुओके चित्तकी न-रक्षिका नवीन नीमकी वनपक्ति ने, पट सदृश मेघोको धारण करनेवाली दिशाओपर अपने परागको चादरकी तरह फेंक दिया ॥३७॥

३९ प्रणय कोपको धारण करते पराङमुखी, त्रिवलीसे रिक्त उदर-वाली महिलायें भी मेघोंके शब्दोसे तुरन्त भयभीत हो, प्रियोको आलि-गन करने लगी ॥३८॥

४० "मेघ-वायुके वहते समय कौन रागरहित जन भी चलित नही होता", भवरोंके ऊचे स्वरसे यह सत्य कहनेपर नवपल्लव नाच उठी ॥३९॥

४१ तव विजलीके भयसे मानो प्रियतमके घरसे जानेकी अनिच्छुका कामवश मन्द-भापिणी तरुणियोने **यदुवंशी** राजाओंके साथ रमण किया ॥४०॥

४२ मेघसे उत्पन्न जलोको पा सहसा आनन्दको पा नदिया वह चली, सायकालके दीपक सी श्वेतिमावाली कदली के पुष्पमें भ्रमरके साथ भ्रमरी आनन्द करने लगी ॥७२॥

४३ पर्वतके समीपवाले प्रदेशमें वहुतसे मस्त भवरोंसे युक्त कुटज (पुष्प) के जलाधिक्यसे झुके वादलवाले गगनको देखकर मोरोने गानेके शब्दकोसी वाणीसे ऊंची आवाज की ॥७३॥

—सर्ग ६

(५) सूर्यास्तवर्णनम्—

४४ अभितापसपदमथोष्णरुचिर्निजतेजसामसहमान इव[1]।
पयसि प्रपित्सुरपराम्बुनिधेरधिरोढुमस्तगिरिमभ्यपतत्
॥१॥

४५ विरलातपच्छविरनुष्णवपु परितो विपाण्डु दधदभ्रशिर ।
अभवद् गत परिणतिं शिथिल परिमन्दसूर्यनयनो दिवस.
॥३॥

४६ अपराह्णशीतलतरेण शनैरनिलेन लोलिततलागुलये।
निलयाय शाखिन इवाह्वयते ददुराकुला खगकुलानि
गिर ॥४॥

४७ उपसध्यमास्त तनु सानुमत शिखरेषु तत्क्षणमशीतरुच ।
करजालमस्तसमयेऽपि सतामुचित खलूच्चतरमेव पदम्
॥५॥

४८ प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता।
अवलम्वनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यत करसहस्रमपि॥६॥

४९ नवकुकुमारुणपयोधरया स्वकरावसक्तरुचिराम्बरया।
अतिसक्तिमेत्य वरुणस्य दिशा भृशमन्वरज्यदतुषारकर
॥७॥

५० द्रुतशातकुम्भनिभमशुमतो वपुरर्धमग्नवपुष पयसि।
रुरुचे विरचिनखभिन्नबृहज्जगदण्डकैकतरखण्डमिव ॥९॥

५१ रुचिधाम्नि भर्तरि भृश विमला परलोकमभ्युपगते विविशु ।
ज्वलन त्विष कथमिवेतरथा सुलभोऽन्यजन्मनि स एव
पति ॥१३॥

---

१. प्रमिताक्षरा

५. सूर्यास्तवर्णन—

४४ तव सूर्य, अग्निकी किरणोके अधिक सतापको मानो न सहते, पश्चिम समुद्रके जलमें गिरनेकी इच्छासे अस्ताचलपर चढनेके लिये दौडा ।।१।।

४५ परिवर्तनको प्राप्त, विरल धूपकी छवियुक्त, अल्प-उष्ण-शरीरवाला, चारो ओर पीला सा, मेघरूपी शिरयुक्त प्रशान्त सूर्यरूपी नयनवान् दिन शिथिल हो गया ।।३।।

४६ (वह) अपराह्णमें अधिक शीतल वायु द्वारा धीरे-धीरे चालित, लतारूपी अगुलियोवाला (दिन), नीडोके लिये पक्षियोको आकुल-वाणीसे मानो वुलाता आवाज दे रहा था ।।४।।

४७ सन्ध्याके समीप सूर्यकी क्षीण किरणें पर्वत-शिखरोपर अवस्थित थीं । अस्तके समय भी उच्चतर स्थानमें सत्पुरुषोका रहना ही उचित है ।।५।।

४८ दैवके प्रतिकूल होनेपर वहुतेरे साधन भी विफल हो जाते हैं । (इसी लिए) गिरनेवाले सूर्यके लिये हजारो किरणे भी सहायक नहीं हुई ।।६।।

४९. नये केसर से अरुण पयोधरवाली, अपने करमें धरे रुचिर अम्वरवाली पश्चिम दिशाके साथ अति समीपता पा सूर्य वहुत अनुरक्त हुआ ।।७।।

५० पिघले सुवर्ण समान जलमें आधे डूवे सूर्यका देह, ब्रह्माके नखसे टूटे वृहत् ब्रह्माडके आधे खडकी तरह शोभित हो रहा था ।।९।।

५१ रुचिर प्रभावाले स्वामी (सूर्य) के परलोक जानेपर विमल किरणें आगमें प्राविष्ट हो गई, अन्यथा कैसे दूसरे जन्ममें वही पति सुलभ होता ।।१३।।

५२. पतिते पतगमृगराजि निजप्रतिबिम्बरोषित इवाम्बुनिधौ ।
अथ नागयूथमलिनानि जगत्परितस्तमासि परितस्तरिरे
॥१८॥

५३. व्यसरन्नु भूधरगुहान्तरत पटल बहिर्बहलपकरुचि ।
दिवसावसानपटुनस्तमसो बहिरेत्य चाधिकमभक्त गुहा.
॥१९॥

५४. किमलम्बताम्बरविलग्नमध किमवर्धतोर्ध्वमवनीतलत. ।
विससार तिर्यगथ दिग्भ्य इति प्रचुरीभवन्न निरधारि
तम ॥२०॥

(६) चन्द्रोदयवर्णनम्—

५५. वसुधान्तनि सृतमिवाहिपते पटल फणामणिसहस्ररुचाम् ।
स्फुरदशुजालमथ शीतरुच समलचकारननु माघवनीम् ॥२५

५६. कलया तुषारकिरणस्य पुर परिमन्दभिन्नतिमिरौघजटम् ।
क्षणमभ्यपद्यत जनैर्न मृषा गगन गणाधिपतिमूर्तिरिति॥२७॥

५७. प्रथम कलाभवदथार्धमथो हिमदीधितिर्महदभूदुदित ।
दधति ध्रुव क्रमश एव न तु द्युतिशालिनोऽपि सहसोप-
चयम् ॥२९॥

५८. रजनीमवाप्य रुचमाप शशी सपदि व्यभूषयदसावपि ताम् ।
अविलम्बितक्रममहो महतामितरेतरोपकृतिमच्च-
रितम् ॥३३॥

—सर्ग. ९

५२ सूर्यरूपी मृगराजके समुद्रमें गिरने पर अपने प्रतिविम्वसे रुष्ट हो गज-समूहो जैसे मलिन अन्धकारने चारो ओरसे जगत्को ढाक लिया ॥१८॥

५३ भारि पक सा दीखता, दिनातके भारी अन्धकारका समूह पर्वत-गुहाओ-के भीतरसे आकर फैलता वाहरी गुहाओमें खूव लिपट गया ॥१९॥

५४ वेशी होता अन्धकार क्या आकाशसे लगा नीचे लटका, अथवा पृथिवी तलसे ऊपर वढा, या दिशाओंसे तिरछे फैला, यह नही निश्चय किया जा सका ॥२०॥

६. चन्द्रोदयवर्णन—

५५ तव पृथिवीके छोरसे निकले नागराजके हजारो फण-मणियोकी किरणोंके समूह जैसे चन्द्रमाकी उछलती किरणोके जाल ने पूर्व-दिशाको अलकृत किया ॥२५॥

५६ पूर्वमें चन्द्रमाकी किरणो द्वारा थोड़ा टूटे अन्धकार-समूहकी जटावाले गगनको, लोगोने भूतनाथ शंकरकी मूर्ति है यह क्षण भर के लिये सत्य समझा ॥२७॥

५७ हिमकिरण (चद्र) पहले कला मात्र उगे फिर आधे, फिर वड़े लगे। निश्चय तेजस्वी भी एकाएक नही, वल्कि क्रमश. ही वृद्धिको प्राप्त करते हैं ॥२९॥

५८ रजनीको पा शशि शोभित हुये, उन्होने तुरन्त उसे भी अलकृत किया। अहो विना विलम्व किये परस्पर उपकार करना वड़ोका चरित्र है ॥३३॥

(७) प्रातर्वर्णनम्—

५९ द्रुततरकरदक्षाः क्षिप्तवैशाखशैलं
दधति दधनि धीरानारवान्वारिणीव ।
शशिनमिव सुरौघाः सारमुद्धर्तुमेते
कलशमुदधिगुर्वी वल्लवा लोडयन्ति[1] ॥८॥

६० परिशिथिलितकर्णग्रीवमामीलिताक्ष
क्षणमयमनुभूय स्वप्नमूर्ध्वज्ञुरेव ।
रिसियिषति न भूयः शष्पमग्रे विकीर्णं
पटुतरचपलौष्ठः प्रस्फुरत्प्रोथमध्यः ॥११॥

६१ नवकनकपिशंग वासराणां विधातु
ककुभि कुलिशपाणेर्भाति भासां वितानम् ।
जनितभुवनदाहारम्भमम्भांसि दग्ध्वा
ज्वलितमिव महाब्धेरूर्ध्वमौर्वानलार्चिः ॥४३॥

६२ विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैर्मयूखै
कलश इव गरीयान्दिग्भिराकृष्यमाणः ।
कृतचपलविहगालापकोलाहलाभिर्-
जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्यतेऽर्कः ॥४४॥

६३ पयसि सलिलराशेर्नक्तमन्तर्निमग्नः
स्फुटमनिशमतापि ज्वालया वाडवाग्नेः ।
यदयमिदमिदानीमंगमुद्यन्दधाति
ज्वलितखदिरकाष्ठांगारगौरं विवस्वान् ॥४५॥

६४ अतुहिनरुचिनासौ केवलं नोदयाद्रिः
क्षणमुपरिगतेन क्ष्माभृतः सर्व एव ।

---

१. मालिनी

७ प्रातःवर्णन—

५९ अति शीघ्र हाथ चलानेमें दक्ष, डडारूपी शैल फेंकते सुरलोक पानीकी तरह दहीमें गम्भीर ध्वनि धारण करते हैं। चन्द्रमाकी तरह सारको निकालनेके लिये समुद्र जैसे बडे घडेको यह गोपाल मथन कर रहे हैं ।।८।।

६० यह घोडा कान और गरदन झुकाये आखें मूदें, ऊपरकी ओर जाघ किये ही क्षण भर सोकर फिर चतुर चपल ओठ सहित नाक फरफराता आगे फैली घासका रस लेना चाहता है ।।११।।

६१ वज्रपाणिकी दिशा (पूर्व) में, नवीन सुवर्ण जैसे पीले दिनकर की किरणोका वितान चमक रहा है, (जो) महासमुद्रके जलको जलाता ससारका दाह करता, प्रज्ज्वलित वडवानलकी ज्योति सा दीखता है ।।४३।।

६२ चपल चचल पक्षियोके आलापके कोलाहल के साथ, फैले मोटे रस्सो जैसी आकारवाली किरणो द्वारा, मानो दिशाओंसे भारी कलशकी तरह खीचा जाता, समुद्र-जलके बीचसे यह सूर्य निकाला जा रहा है ।।४४।।

६३ यह सूर्य रातको समुद्रके जलमें डूबा भीतर वडवानलकी ज्वालासे निश्चय सतप्त हुआ। तभी तो इस समय उगता हुआ जलते खैर-काठके अगार जैसे उज्ज्वल अगको धारण कर रहा है ।।४५।।

६४ क्षणभर ऊपर आये अशीतल-किरण (सूर्य) द्वारा केवल यह उदयाचल ही नही, बल्कि यह सारे ही पहाड, नवीन किरणो द्वारा फूले

नवकरनिकरेण स्पष्टबन्धूकसून-
स्तवकरचितमेते शेखर बिभ्रतीव ।।४६।।

६५ उदयशिखरिशृगाग्रागणेष्वेष रिंगन्
सकमलमुखहास वीक्षित पद्मिनीभि ।
विततमृदुकराग्र शब्दयन्त्या वयोभि
परिपतति दिवोके हेलया बालसूर्य ।।४७।।

६६ क्षणमयमुपविष्ट क्ष्मातलन्यस्तपाद
प्रणतिपरमवेक्ष्य प्रीतमह्नाय लोकम् ।
भुवनतलमशेष प्रत्यवेक्षिष्यमाण
क्षितिधरतटपीठादुत्थित सप्तसप्ति ।।४८।।

६७ परिणतमदिराभ भास्करेणाशुबाणैस्-
तिमिरकरिघटाया सर्वदिक्षु क्षताया ।
रुधिरमिव वहन्त्यो भान्ति बालातपेन
छुरितमुभयरोधोवारित वारि नद्य ।।४९।।

—सर्ग ११

(८) शिशुपाल-कोप[1]—

६८ यदपूपुजस्त्वमिह पार्थ, मुरजितमपूजित सताम् ।
प्रेम विलसति महत्तदहो दयित जन खलु गुणीति
मन्यते ।।१४।।

६९ यदराज्ञि राजवदिहाघ्र्यमुपहितमिद मुरद्विषि ।
ग्राम्यमृग इव हविस्तदय भजते ज्वलत्सु न महीशवह्-
निषु ।।१५।।

७० अनृता गिर न गदसीति जगति पटहैर्विघुष्यसे ।
निन्द्यमथ च हरिमर्चयतस्तव कर्मणैव विकसत्यसत्यता
।।१६।।

---

१. छन्द-उद्गता

वन्धुजीवकके फूलोके गुच्छो जैसे शोभित शिखरको मानो धारण कर रहे हैं ।।४६।।

६५ यह वालसूर्य, उदयाचलके शिखर के आगनोमें रेंगता, कमलोके मुखोके हासके साथ पद्मिनियो द्वारा देखा जाता, पक्षियो से पुकारते आकाशकी गोदमें, फैले करो (हाथो) सहित लीलाके साथ गिर रहा है ।।४७।।

६६ यह सप्ताश्व (सूर्य) पृथिवीतल पर पाद (किरण) रखे, क्षण भर वैठा लोगोको प्रसन्न हो दिनके लिये प्रणाम करते देखकर, सकल भुवनतलको देखनेका इच्छुक हो पर्वत-तटके सिहासनसे उठा ।।४८।।

६७ नई धूपसे उछलती नदिया, परिपक्व मदिरा समान, दोनो प्रवाहोंसे निवारित जलको, सूर्यसे किरणरूपी वाणो द्वारा सारी दिशाओमें ताडित, तिमिररूपी गजोके रुधिर जैसा वहन करती दीखती हैं ।।४९।।

—सर्ग ११

८. शिशुपालका कोप—

६८ हे पृथापुत्र **युधिष्ठिर,** सत्पुरुषो द्वारा अपूजित मुरारिको जो तुमने यहा पूजा। सो यह वडे प्रेम विवश ही है, प्रियको लोग गुणी मानते हैं ।।१४।।

६९ यहा अ-राजा कृष्णके लिये राजाकी तरह तुमने अर्घ्य उपस्थित किया, राजारूपी अग्नियोके होते उस हविको गावके मृगकी तरह, यह (कृष्ण) नही पा सकता ।।१५।।

७० झूठ वात तुम नही वोलते, यह (तुम्हारे लिये) ससारमें नगाडोसे घोपित किया जाता है, निन्दनीय कृष्णकी अर्चना के इस तुम्हारे कामने ही इसकी असत्यता प्रकट है ।।१६।।

७९ रथ्याघोषैबृंहणैर्वारणानामैक्य गच्छन्वाजिना हेषया च।
व्योमव्यापी सतत दुन्दुभीनामव्यक्ताऽभूदीशितेव प्रणाद
॥३॥

८० रोषावेशाद् गच्छता प्रत्यमित्र दूरात्क्षिप्तस्थूलबाहु -
ध्वजानाम्।
दीर्घास्तिर्यग्वैजयन्तीसदृश्य पादाताना भ्रेजिरे खड्ग-
लेखा ॥४॥

८१. सान्द्रत्वक्कास्तल्पलाश्लिष्टकक्षा आगी शोभामाप्नुवत-
श्चतुर्थीम्।
कल्पस्यान्ते मारुतेनोपनुन्नाश्चेलुश्चण्ड गण्डशैला इवे -
भा ॥६॥

८२ सक्रीडन्ती तेजिताश्वस्य रागादुद्यम्यारामग्रकायोत्थितस्य।
रहोभाजामक्षधू स्यन्दनाना हाहाकार प्राजितु प्रत्य-
नन्दत् ॥७॥

८३ कुर्वाणाना सापरायान्तराय भूरेणूना मृत्युना मार्जनाय।
समार्जन्यो नूनमुद्धूयमाना भान्ति स्मोच्चै केतनाना
पताका ॥८॥

८४. उद्यन्नाद धन्विभिर्निष्ठुराणि स्थूलान्युच्चैर्मण्डलत्वदधन्ति।
आस्फाल्यन्ते कार्मुकाणि स्म काम हस्त्यारोहै कुजराणा
शिरासि ॥९॥

८५ ... नो डिण्डिमाना ग्रैवेयाणामारवो वृहितानि।
... गजानामुत्साहार्थं वाचमाधो-
रणस्य ॥१०॥

८ ... काचित्पाणिग्राह रहसैवापयातो।
... बाहू वाहवि व्यासृ-
जेताम् ॥१२॥

८ ... शीघ्रता दर्श-
यन्त ।

७९ निरन्तर आकाशमें व्यापते रणभेरियोके महाघोष, रथोंके घोष, हाथियोंके गर्जन, घोडोके हिनहिनानेसे एक ही ईश्वरकी तरह अव्यक्त (घोष) हो गया ।।३।।

८० रोषके आवेशसे शत्रुओकी ओर दौडते, दूरसे उठाये मोटी बाहुरूपी ध्वजाओवाले, पैदल सैनिकोकी लम्बी तिरछी तलवारें ध्वजाओके समान शोभित हो रही थी ।।४।।

८१ घने चर्मवाले कमरसे रस्सी बधे, शारीरिक प्रौढावस्थाकी शोभा युक्त प्रचड, प्रलय वायुसे प्रेरित महाशिलाओ जैसे प्रचड गज चलित हुये ।।६।।

८२ वेगवान् रथोके चक्कोकी चिल्लाती धुरी रागसे चाबुक उठाये, अगले शरीरको उठाये घोडोको उत्साहित करते सारथीके हाहाकारका प्रतिनंदन कर रही थी ।।७।।

८३ ऊचे ध्वजस्तम्भोकी पताकायें, युद्धमें बाधक मिट्टीकी धूलोंके मार्जनके लिये यमराज द्वारा चलाये जाते झाडुओ सी जान पड़ती थी ।।८।।

८४ धनुर्धर कठोर भारी ऊचे मडलो वाले धनुष को उठा घोषके साथ, चला रहे थे, गजारोही गजोके सिर पर खूब धक्के दे रहे थे ।।९।।

८५ घटोकी आवाज, नगाड़ोका गडगडाना, कठकी साकलकी आवाज, गजोका गर्जन, गजोंके उत्साहके लिये हाथीवानोकी बोली "हा"का मानो प्रत्युत्तर दे रहे थे ।।१०।।

८६ योधा, रोषके आवेशसे सामनेसे वेगसे पास आ हाथ पकडकर, शस्त्रो-को छोड पहलवानोकी तरह मुक्का मारते, हाथापाई करके लड़ने लगे ।।१२।।

८७ कही सग न पाकर दूरसे छोड़े शीघ्रता दिखलाते हुये,

अन्त सेन विद्विषामाविशन्तो युक्त चक्रु सायका वाजि-
ताया ॥१३॥

८८ वीर्योत्साहश्लाघि कृत्वावदान सग्रामाग्रे मानिना लज्जि-
तानाम् ।
अज्ञाताना शत्रुभिर्युक्तमुच्चै श्रीमन्नाम श्रावयन्ति स्म
नग्ना ॥१६॥

८९ मिश्रीभूते तत्र सैन्यद्वयेऽपि प्रायेणाय व्यक्तमासीद्विशेष ।
आत्मीयास्ते ये पराच पुरस्तादभ्यावर्ती समुखो य
परोऽसौ ॥१८॥

९० कुन्तेनोच्चै: सादिना हन्तुमिष्टान्नाजानेयो दन्तिनस्त्रस्यति
स्म ।
कर्मोदार कीर्तये कर्तुकामान्किवा जात्या स्वामिनो ह्रेप-
यन्ति ॥२३॥

९१ जेतु जैत्रा शेकिरे नारिसैन्यै पश्यन्तोऽधोलोकमस्तेषुजाला ।
नागारुढा. पार्वतानि श्रयन्तो दूर्गाणीव त्रासहीनास्त्र-
सानि ॥२४॥

—सर्ग १८

(११) कविपरिचय:—

९२ सर्वाधिकारी सुकृताधिकार श्रीवर्मलाख्यस्य वभूव राज्ञ. ।
असक्तदृष्टिर्विरजा सदैव देवोऽपर सुप्रभदेवनामा[1] ॥१॥

९३ कालेऽमित तथ्यमुदर्कपथ्य तथागतस्येव जन सचेता ।
विनानुरोधात्स्वहितेच्छयैव महीपतिर्यस्य वचश्चकार ॥२॥

९४ तस्याभवद् दत्तक इत्युदात्त क्षमी मृदुर्धर्मपरस्तनूज ।
य वीक्ष्य वैयासमजातशत्रोर्वचो गुणग्राहि जनै प्रतीय ॥३॥

---

१. उपजाति

शत्रुओकी सेनाओके भीतर प्रवेश करते, शुद्ध वाण वाजिता (पक्षवत्ता) के लिये उचित काम कर रहे थे ॥१३॥

८८ वन्दी लोग संग्राममें पराक्रम-उत्साह के प्रशसक महाकार्य करके अभिमानी लज्जित अज्ञात (पुरुषो) के श्रीयुक्त नामको शत्रुओके साथ ऊचे स्वरसे सुना रहे थे ॥१६॥

८९ वहा दोनो सेनाओके मिलने पर प्राय यह विशेष स्पष्ट (दीखता) था, (कि) जो पीछे वे आत्मीय, जो सन्मुख थे वह शत्रु ॥१८॥

९० सवार के उठाये भाले द्वारा मारनेके लिये अभिप्रेत हाथीसे उत्तम घोडा नहीं डरता था। कुलीन लोग कीर्तिके लिये महान् कर्म करनेके इच्छुक स्वामियोको क्या लजवाते हैं ॥२३॥

९१ लोगोको नीचे देखते वाणोको फेंकते निर्भय गजारूढ विजयी, चलायमान दुर्गोका आश्रय लेनेकी तरह शत्रु-सेनासे नही जीते जा सके ॥२४॥ —सर्ग १८

११. कवि परिचय

९२ **श्रीवर्मलात** नामक राजाके **सुप्रभदेव** नामक सर्वाधिकारी, पुण्याधिकारी, अनासक्त दृष्टिवाले, दूसरे देवता जैसे सदा निर्मल थे ॥१॥

९३ उस समय जिनके मित वचनका पालन राजा अनुरोधके विना अपने हितकी इच्छासे ही करता था, जैसे **तथागतकी** सत्य-हित-फलयुक्त वचनको होशमद ॥२॥

९४ उनके **दत्तक** नामक उदार, क्षमाशील, मृदु, धर्मपारायण पुत्र हुये। जिनको देखकर लोगोने **युधिष्ठरके** गुणग्राहक व्यास-कथित वचनको स्वीकार किया ॥३॥

अन्त सेन विद्विषामाविशन्तो युक्त चक्रु सायका वाजि-
ताया ॥१३॥

८८ वीर्योत्साहश्लाघि कृत्वावदान सग्रामाग्रे मानिना लज्जि-
तानाम् ।
अज्ञाताना शत्रुभिर्युक्तमुच्चै श्रीमन्नाम श्रावयन्ति स्म
नग्ना ॥१६॥

८९ मिश्रीभूते तत्र सैन्यद्वयेऽपि प्रायेणाय व्यक्तमासीद्विशेष ।
आत्मीयास्ते ये पराच पुरस्तादभ्यावर्ती समुखो य
परोऽसौ ॥१८॥

९० कुन्तेनोच्चैः सादिना हन्तुमिष्टान्नाजानेयो दन्तिनस्त्रस्यति
स्म ।
कर्मोदार कीर्तये कर्तुकामान्किवा जात्या स्वामिनो ह्रेप-
यन्ति ॥२३॥

९१ जेतु जैत्रा शेकिरे नारिसैन्यै पश्यन्तोऽधोलोकमस्तेषुजाला ।
नागारुढा पार्वतानि श्रयन्तो दूर्गाणीव त्रासहीनास्त्र-
सानि ॥२४॥

—सर्ग १८

(११) कविपरिचयः—

९२ सर्वाधिकारी सुकृताधिकार श्रीवर्मलाख्यस्य बभूव राज्ञ ।
असक्तदृष्टिर्विरजा सदैव देवोऽपर सुप्रभदेवनामा[1] ॥१॥

९३ कालेऽमित तथ्यमुदर्कपथ्य तथागतस्येव जन सचेता ।
विनानुरोधात्स्वहितेच्छयैव महीपतिर्यस्य वचश्चकार ॥२॥

९४ तस्याभवद् दत्तक इत्युदात्त क्षेमी मृदुर्धर्मपरस्तनूज ।
य वीक्ष्य वैयासमजातशत्रोर्वचो गुणग्राहि जनै प्रतीय ॥३॥

---

१. उपजाति

शत्रुओकी सेनाओके भीतर प्रवेश करते, शुद्ध वाण वाजिता (पक्षवत्ता) के लिये उचित काम कर रहे थे ।।१३।।

८८ वन्दी लोग सग्राममें पराक्रम-उत्साह के प्रशसक महाकार्य करके अभिमानी लज्जित अज्ञात (पुरुपो) के श्रीयुक्त नामको शत्रुओके साथ ऊचे स्वरसे सुना रहे थे ।।१६।।

८९ वहा दोनो सेनाओके मिलने पर प्राय यह विशेष स्पष्ट (दीखता) था, (कि) जो पीछे वे आत्मीय, जो सन्मुख थे वह शत्रु ।।१८।।

९० सवार के उठाये भाले द्वारा मारनेके लिये अभिप्रेत हाथीसे उत्तम घोडा नही डरता था। कुलीन लोग कीतिके लिये महान् कर्म करनेके इच्छुक स्वामियोको क्या लजवाते है ।।२३।।

९१ लोगोको नीचे देखते वाणोको फेंकते निर्भय गजारूढ विजयी, चलायमान दुर्गोका आश्रय लेनेकी तरह शत्रु-सेनासे नही जीते जा सके ।।२४।।　　—सर्ग १८

११. कवि परिचय

९२ **श्रीवर्मलात** नामक राजाके **सुप्रभदेव** नामक सर्वाधिकारी, पुण्याधिकारी, अनासक्त दृष्टिवाले, दूसरे देवता जैसे सदा निर्मल थे ।।१।।

९३ उस समय जिनके मित वचनका पालन राजा अनुरोधके विना अपने हितकी इच्छासे ही करता था, जैसे **तथागतकी** सत्य हित-फलयुक्त वचनको होशमद ।।२।।

९४ उनके **दत्तक** नामक उदार, क्षमाशील, मृदु, धर्मपारायण पुत्र हुये। जिनको देखकर लोगोने **युधिष्ठरके** गुणग्राहक व्यास-कथित वचनको स्वीकार किया ।।३।।

९५ सर्वेण सर्वाश्रय इत्यनिन्द्यमानन्दभाजा जनित जनेन।
यश्च द्वितीय स्वयमद्वितीयो मुख्य सता गौणमवाप नाम[1] ॥४॥

९६ श्रीशब्दरम्यकृतसर्गसमाप्तिलक्ष्म
लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारु।
तस्यात्मज सुकविकीर्तिदुराशयाद
काव्य व्यधत्त शिशुपालवधाभिधानम्[2] ॥५॥

३६. भवभूति (७०० ई०)

तीन नाटको--"मालतीमाधव", "महावीरचरित" "और "उत्तर रामचरित"--के रचयिता होने के कारण,भवभूति नाटककार के तौर पर प्रसिद्ध है। यह भी कहा जाता है, कि दार्शनिक उम्बेक और भवभूति एक ही थे। यह सभव भी हो सकता है। वाक्यपतिराज ने अपने प्राकृत काव्य "गउडवह" (गौडबध) में इनकी प्रशंसा की है। वाक्यपतिराज, कान्यकुब्ज के राजा यशोवर्मा (७५० ई०) के आश्रित थे, और भवभूति उनके गुरु थे। यशोवर्मा कौन से राज-वश के थे, यह निश्चय करना मुश्किल है। कान्यकुब्ज गुप्तो के सामन्त और पीछे स्वतन्त्र सम्राट् मौखरियों की राजधानी रही, जिनके बाद वर्धन-वंश के राज्यवर्धन और हर्ष वर्धन ने वहां से शासन किया। हर्षवर्धन की मृत्यु (६४७ ई०) के बाद से गुर्जर-प्रतिहारो की प्रभुता के आरभ होने के समय के बीच की प्राय. दो शताब्दियो का कान्यकुब्ज का इतिहास विश्रृंखलित है। इसी समय यशोवर्मा ने शासन किया था। मौखरी अपने नामों के साथ वर्मा लगाते थे, सभव है, उन्हींके यह वशज रहा हो। "गउडवह" के एक श्लोक (८२९) में जिस सूर्यग्रहण का वर्णन आया है, वह डा० याकोवी के अनुसार १४ अगस्त ७३३ ई० को पडा था। भवभूति इससे पहले हो चुके थे। भवभूतिका 'मालतीमाधव" अरोचक नाटकका का एक अच्छा

---

१. आख्यानकी, २. इन्द्रवज्रा

९५ और स्वय अकेले, सत्पुरुषोमें मुख्य जिन्होने आनदभाग। सारे लोगो से 'सर्वाश्रय' जैसा अनिद्य दूसरा नाम प्राप्त किया ।।४।।

९६ उन दत्तकके पुत्र ने सुकवियोको कीर्ति (पाने) की दुराशासे, रमणीय श्रीशब्दसे सर्ग की समाप्त किये लक्षणवाले, लक्ष्मीपतिके चरित्रके कथनमात्रसे सुन्दर, इस **शिशुपालवध** नामक काव्यको वनाया ।।५।।

—ग्रन्थके अन्तमें

३६. भवभूति

उदाहरण है, यद्यपि उसके कितने ही स्थल सुन्दर भी है। "महावीरचरित" में महावीर राम के चरित को नाटक का रूप दिया गया है। उनकी सबसे सुन्दर कृति "उत्तररामचरित" है, जिसे सस्कृत के उत्कृष्ट नाटको में रक्खा जा सकता है, और इसीसे भवभूति का लोहा मानने के लिये हम मजबूर है। अपभ्रश-काल के और कवियो के पीछे जो परम्परा लाठी लेकर पड़ी हुई थी, उसीके शिकार भवभूति भी हुये। अपभ्रंश सस्कृत से दूर और आधुनिक भाषाओं के अत्यन्त समीप तथा बीच की कड़ी थी। प्राकृत के काल तक संस्कृत के साथ उच्चारण के बदलने से समीपता थी इसलिये, अल्पज्ञ भी काव्यको कसौटी पर कसने के लिये तैयार थे, पर अपभ्रश काल में अव विशेषज्ञो का वोलवाला था, जिनके डरके मारे भी कवियो को क्लिष्ट रचना की ओर झुकना पड़ता था। भवभूति चाहे कान्यकुब्ज के दरवार में रहे हो, किन्तु उनका जन्म विदर्भ बरार) के पद्मपुर नगर में हुआ था। इनका गोत्र काश्यप था, पिता का नाम नीलकंठ, माता का नाम जतुकर्णी और दादा का नाम भट्टगोपाल था। इनका मुख्य नाम नीलकंठ था, लेकिन भवभूति के नाम से प्रसिद्ध हुये। इनके गुरु का नाम ज्ञाननिधि था।

१. मालतीमाधवम्

(१) मालती-प्रेम—

(तत. प्रविशति गृहीतचित्रफलकोपकरण कलहस.)

१. कलहस—क्वेदानी तुलितमकरध्वजावलेपरूपविभ्रमाक्षिप्तमालतीहृदयमाहात्म्य नाथ माधव पश्यामि ? (परिक्रम्य) परिश्रान्तोऽस्मि । यावदिहोद्याने मुहूर्तं विश्रम्य मकरन्दसहचर नाथ माधवं प्रेक्षिष्ये ।

(तत प्रविशति मकरन्द)

२. मकरन्द—कथितमवलोकितया मदनोद्यान गतो माधव इति । भवतु, गच्छामि । (परिक्रम्यावलोक्य च) । दिष्ट्या वयस्य इत एवाभिवर्तते । (निरूप्य) अस्य तु

गमनमलस शून्या दृष्टि शरीरमसौष्ठव,
श्वसितमधिक किं न्वेतत्स्यात्किमन्यदतोऽथवा ।
भ्रमति भुवने कन्दर्पाज्ञा विकारि च यौवन,
ललितमधुरास्ते ते भावा क्षिपन्ति च धीरताम् ॥२०॥

(तत प्रविशति यथानिर्दिष्टरूपो माधव)

३. माधव—

तामिन्दुसुन्दरमुखी सुचिर विभाव्य
चेत कथकथमपि व्यपवर्तते मे ।
लज्जा विजित्य विनय विनिवार्य धैर्य-
मुन्मथ्य मन्थर विवेकमकाण्ड एव ॥२१॥

आश्चर्यम्,
यद्विस्मयस्तिमितमस्तमितान्यभाव-
मानन्दमन्दममृतप्लवनादिवासीत् ।

१. मालतीमाधव

१. मालती प्रेम—

१ कलहंस—कामदेव के अभिमान युक्त रूप-लावण्य के समान **मालती** के हृदयके महत्त्व को दिये, स्वामी माधवको कहा देखूं ? (परिक्रमा करके) थका हुआ हूं, तब तक यहां उद्यानमें क्षण भर विश्राम कर **मकरंदके** मित्र स्वामी **माधवकी** प्रतीक्षा करूँगा।

(तब मकरंद प्रवेश करता है)

२ मकरंद—**अवलोकिताने** कहा, कि माधव **मदन**-उद्यान गये। अच्छा, जाता हूं। (परिक्रमा करके और देखकर) ओहो, मित्र यही हैं। (ध्यानसे देखकर) इसकी तो—
गति सुस्त, दृष्टि शून्य, शरीर बुरा,
स्वास अधिक है, यह क्या ? अथवा इससे दूसरा क्या हो सकता है।
भुवनमें कामदेवका हुक्म चल रहा है, और यौवन विकारवाला है।
वे-वे ललित और मधुर भाव आदमीकी धीरताको **भगा देते** हैं ॥२०॥

(तब उपरोक्त रूपमें माधव प्रवेश करता है)

३ माधव—

उस चन्द्रमुखीको बहुत देरतक देखकर मेरा मन कैसे-कैसे दूसरा सा हो रहा है। लज्जाको जीतकर विनयको हटाकर धैर्यको मथितकर अकाल हीमें मद-वृद्धि ॥२१॥
आश्चर्य,
उसके पास जो मेरा हृदय अचल हो अन्य भावोंको हटाकर आनंद

तत्सनिधौ तदधुना हृदय मदीय-
मगारचुम्बितमिव व्यथमानमास्ते ॥२२॥

४　मकरन्द —(उपसृत्य) सखे माधव　इत इत ललाटन्त-
पस्तपति घर्मांशु । तदस्मिन्नुद्याने मुहूर्तमुपविशाव ।

(उभौ परिक्रामत)

कलहस —कथ मकरन्दसहचर इदमेव बालोद्यानमल-
करोति माधव । तद् दर्शयामि मदनवेदनाखिद्यमान-
मालतीलोचनसुखावहमात्मनोऽस्य प्रतिच्छन्दकम् ।
अथवा विश्रामसौख्य तावदनुभवतु ।

५. मकरन्द —तदस्यैव तावदुच्छ्वसितकुसुमकेसरकषायशीत-
लामोदवासितोद्यानस्य काचनपादपस्याधस्तादुपविशाव ।

(उभौ तथा कुरुत)

मकरन्द —वयस्य माधव, सकलनगरागनाप्रवर्तितमहो-
त्सवाभिरामकामदेवोद्यानयात्राप्रतिनिवृत्तमन्यादृशमिव
भवन्तमवधारयामि । अपि त्वमवतीर्णोऽसि रति-
रमणवाणगोचरताम् ?

(माधव सलज्जमधोमुखस्तिष्ठति)

६　मकरन्द —(विहस्य) किमवनम्रमुग्धमुखपुण्डरीक
स्थितोऽसि, पश्य—
अन्येषु जन्तुषु च यस्तमसावृतेषु,
विश्वस्य धातरि सम परमेश्वरेऽपि ।
सोऽय प्रसिद्धविभव खलु चित्तजन्मा,
मा लज्जया तव कथचिदपन्हृ्नतिर्भूत् ॥२३॥

७　माधव —वयस्य, कि न कथयामि ? श्रूयताम् ।
गतोऽहमवलोकिताजनितकौतुक　कामदेवायतनम् ।
इतस्तत परिक्रम्य परिश्रमादुल्लसितमधुरमदिरामोद-
परिमलाकृष्टसकलमिलदलिपटलसकुलाकुलितमुकुला-

से मन्द हो मानो अमृतमें तैरता था। सो अब अगारसे छुयेकी तरह व्यथित हो रहा है ।।२२।।

४ मकरन्द—(पास आकर) सखे माधव, इधर, इधर (आओ) ललाट तपानेवाला सूर्य तप रहा है। सो इस उद्यानमें जरा देर बैठेंगे।

(दोनो परिक्रमा करके)

कलहस—क्यो, मकरदके साथ इसी बालोद्यानको माधव अलकृत कर रहे है, तो कामवेदनासे खिन्न मालतीके लोचनोके सुखद इनके निजी चित्रको दिखलाता हू। अथवा यह विश्राम-सुख अनुभव करें।

५ मकरद—तो हम खिलते फूलोके केसरके कषायसे शीतल-सुगधित इसी उद्यानके काचन वृक्षके नीचे बैठें।

(दोनो वैसा करते है)

मकरद—वयस्य माधव, सारे नगरकी स्त्रियोके महोत्सव, सुन्दर मदनोद्यानकी यात्रा से लौटे आपको मै दूसरा ही देख रहा हू। क्या तुम रति-पतिके बाणोके लक्ष्य (तो नही) हो गये?

(माधव लज्जा-सहित मुह नीचे कर लेता है)

६ मकरद—(विहसकर) क्यो झुके पुडरीक जैसे मुग्ध मुखवाले हो, देखो—

जो अन्धकारसे ढके अन्य प्राणियो और
विश्वके विधाता परमेश्वरपर भी एक समान,
प्रसिद्ध वैभववाला यह मनसिज है, उसे
लज्जासे किसी तरह भी तू छिपा नही सकता ।।२३।।

७ माधव—वयस्य, क्यो नही कहूगा, सुनो अवलोकिताके कौतूहल उत्पादित करनेके कारण मैं कामदेवके मन्दिरमें गया। इधर-उधर घूमकर मैं थका था। उल्लसित मधुर मददायक, प्रमोद-गधसे आकृष्ट, सारे इकट्ठे भ्रमरो से अस्त-व्यस्त कलियोका मनोहर आभरण

वलीमनोहराभरणस्य रमणीयागणभुवो बालबकुलस्या-
लवालपरिसरे स्थित । तस्य च यदृच्छया निरन्तरनि-
पतितानि विकसितानि कुसुमान्यादाय विदग्धरचना-
मनोहरा स्रजमभिनिर्मातुमारब्धवान् । अनन्तर च
देवस्य सचारिणी मकरकेतनस्य जगद्विजयवैजयन्तिका
निर्गत्य गर्भभवनादुज्ज्वलविदग्धमुग्धबालनेपथ्यवि-
रचनाविर्भावितकुमारीभावा महानुभावप्रकृतिरत्यु-
दारपरिजना कापि तत एवागतवती ।

सा रामणीयकनिधेरधिदेवता वा,
सौन्दर्यसारसमुदायनिकेतन वा ।
तस्या सखे नियतमिन्दुकलामृणाल-
ज्योत्स्नादि कारणमभून्मदनश्च वेधा ॥२४॥

८ अथ प्रणयिनीभिरनुचरीभि कुसुमसचयावचयलीला-
भिलापवतीभिरभ्यर्थ्यमाना तमेव बकुलपादपोद्देश-
मागतवती । तस्याश्च कस्मिश्चिदपि महाभागधेयजन्मनि
वहुदिवसोपचीयमानमिव मन्मथव्यथाविकारमुपलक्षि-
तवानस्मि । यत —

परिमृदितमृणालीम्लानमगप्रवृति ,
कथमपि परिवारप्रार्थनाभि क्रियासु ।
कलयति च हिमाशोर्निष्कलकस्य लक्ष्मी-
मभिनवकरिदन्तच्छेदकान्त कपोल ॥२५॥

सा मम दर्शनात्प्रभृत्यमृतवर्तिरिव चक्षुषोर्निरतिशयमा-
नन्दमुत्पादयन्त्ययस्कान्तमणिशलाकेव लोहधातुमन्त -
करणमुपसहृतवती । किं वहुना—

सतापसततिमहाव्यसनाय तस्या,
आसक्तमेतदनपेक्षितहेतु चेत ।
प्राय शुभ च विदधात्यशुभ च जन्तो ,
सर्वकपा भगवती भवितव्यतेव ॥२६॥

पहिने रमणीय आगनमें उत्पन्न, तरुण मौलसरी वृक्षके थालेके पास खडा था। और यो ही उसके वरावर टपकते फूलोको लेकर चतुर रचनामे एक मनोहर माला वना रहा था। फिर प्रकृति से वहुत से परिजनोके साथ, उदार समृद्ध कामदेवकी चलती-फिरती विश्व-विजययिनी पताका भी घरके भीतर आ निकली, जो (अपने) उज्ज्वल चतुर मुग्ध वालिकाके भेस की वनावटसे, कुमारीपनको प्रकट कर रही थी।

सौंदर्य-राशिकी वह अधिष्ठात्री देवता थी,
या सौंदर्य-सारके समूहका सदन थी।
सखे, निश्चय उसके निर्माण की सामग्री चद्रकला,
कमलनाल और चादनी थी और विधाता मदन था ।।२४।।

८ तव फूलके जमा करने और चुननेके खेलकी अभिलापावाली स्नेही अनुचरियोके प्रार्थना करने पर वह उसी मौलसरीके वृक्षके स्थानमें आई। फिर किसी वडे भाग्यवान्के ऊपर उसके वहुत दिनोसे जमा होते काम-व्यथाके विकार को मैने देखे। क्योकि—

मसली हुई कमलिनीकी तरह (उसका) अग कुम्हालाया था,
परिवारकी प्रार्थनाओ पर किसी तरह कार्यमें प्रवृत्त होती थी,
गजके तुरन्त कटे दातके जसा कमनीय उसका कपोल
निष्कलक चन्द्रमाकी शोभा धारण कर रहा था ।।२५।।

देखते ही वह मेरी आखोको अमृतकी वत्तीकी तरह अत्यन्त आनन्दित करती, लोहधातुको (जैसे) चुम्वककी शलाका (उसी) तरह वह मेरे हृदयको खीचने लगी। वहुत क्या—

कारणके विना ही यह (मेरा) चित्त,
सतापोके महाव्यसनके लिये (उसमें) आसक्त हो गया।
सवपर प्रभुत्व रखनेवाली भगवती भवितव्यता ही,
प्राय: प्राणियोके शुभ और अशुभ कराती है ।।२६।।

९ मकरन्द —स्नेहश्च निमित्तसव्यपेक्षश्चेति विप्रतिषिद्ध-
मेतत्। पश्य
व्यतिषजति पदार्थावान्तर कोऽपि हेतु
न खलु वहिरुपाधीन्प्रीतय सश्रयन्ते।
विकसति हि पतगस्योदये पुण्डरीक,
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्त ॥२७॥
ततस्तत ?

१० माधव —ततश्च तत्र—
सभ्रूविलासमथ सोऽयमितीव नाम,
सप्रत्यभिज्ञमिव मामवलोक्य तस्या।
अन्योन्यमेव चतुरेण सखीजनेन,
मुक्तास्तदा स्मितसुधामधुरा कटाक्षा ॥२८॥
मकरन्द —(स्वगतम्) कथ प्रत्यभिज्ञापि नाम।

११ माधव —अथ ता सलीलमुत्तालकरकमलतालिकात-
रलवलयावलीकमुत्रस्तकलहसविभ्रमाभिरामचरणसचरण
रणरणायमानमजुमजीररणितानुविद्धमेखलाकलापकि-
किणीरणरणत्कारमुखर प्रतिनिवृत्य "भर्तृदारिके,
दिष्ट्या वर्धामहे। यदत्रैव कोऽपि कस्या अपि वल्लभ-
स्तिष्ठति" इति मामगुलीदलविलासेनाख्यातवत्य।
मकरन्द —हन्त, महत प्रथमानुरागस्योद्भेद।
कलहस —(स्वगत) अनयो सरसरमणीयानुवन्धिनी
खलु स्त्रीकथा।
मकरन्द —ततस्तत।

१२ माधव —
अत्रान्तरे किमपि वाग्विभवातिवृत्त,
वैचित्र्यमुल्लसितविभ्रममायताक्ष्या।
तद्भूरिसात्विकविकारमपास्तधैर्य,
आचार्यक विजयि मान्मथमाविरासीत् ॥२९॥

९ मकरद—स्नेह, और वह (अकारण) हो, यह उलटी बात है। देखो—
पदार्थोको कोई आन्तरिक हेतु जोडता है,
प्रेम बाहरके साधनोका आश्रय नही लेता।
सूर्यके उगनेपर कमल फूलता है,
चन्द्रके उदित होनेपर चन्द्रकान्त (मणि) पिघलती है ॥२७॥
तो फिर ?

१० माधव—और तव वहा.
मुझे देखकर उसके भौहोके सकेतके साथ
"यही है वह" यह परिचय शब्द
आपसमें चतुर सखियोने (कहा),
फिर मुस्कानकी सुधा से मधुर कटाक्ष छोडे ॥२८॥
मकरद—(अपने आपसे) क्यो परिचय भी ?

११ माधव—तव, लीलापूर्वक ऊपर की कमल सी हथेलीकी चँच-लतासे चलित ककणोको कर, भयभीत कलहसकी गति से सुन्दर चरण-सचारसे रुनझुन करते, कोमल पाजेवके शब्दोमें मिश्रित कटि-मेखलाओकी किंकिणियोके झकारको मुखरित करते, लौटकर उन्होने अगुलियोके विलाससे "स्वामिपुत्री, धन्य वधाई, जो यही पर किसी का प्रिय मौजूद है" कहकर मेरे बारेमें सकेत किया।
मकरद—अहो, प्रथम अनुरागका भारी विस्फोट !
कलहस—(अपने आपसे) और स्त्री-सम्बन्धी इनकी कथा सरस रमणीय है।
मकरद—फिर-फिर।

१२ माधव—
इसी बीच वाणीसे कहनेके परे,
दीर्घनयनीका विचित्र कुछ उल्लसित
वहुत सात्विक विकार युक्त धैर्य, हारी-वर्ताव,
कामदेवके विजयी कौशलसा प्रकट हुआ ॥२९॥

१३ ततश्च—

स्तिमितविकसितानामुल्लसद्भ्रूलताना,
मसृणमुकुलिताना प्रान्तविस्तारभाजाम् ।
प्रतिनयनविपाते किंचिदाकुचिताना,
विविधमहमभूव पात्रमालोकितानाम् ॥३०॥

१४ ततश्च—

अलसवलितमुग्धस्निग्धनिष्पन्दमन्दै,
रधिकविकसदन्तर्विस्मयस्मेरतारै ।
हृदयमशरण मे पक्ष्मलाक्ष्या कटाक्षै,
रपहृतमपविद्ध पीतमुन्मूलित च ॥३१॥

अह तु तस्या सर्वाकारहृदयगमाया सभाव्यमानस्नेहरसेन सनिधिना विधेयीकृतोऽपि पारिप्लवत्वमात्मनो निह्नोतुकाम प्राक्प्रस्तुतस्य वकुलपुष्पदाम्नो यथाकथञ्चिदवशेष ग्रथितवानेव । ततो मिलितवेत्रपाणिवर्षवरप्रायपुरुषपरिवारा गजवधूमारुह्य नगरगामिन मार्गमिन्दुवदनाऽलङ्कृतवती-

यान्त्या मुहुर्वलितकधरमानन तद्,
आवृत्तवृन्तशतपत्रनिभ वहन्त्या ।
दिग्धोऽमृतेन च विषेण च पक्ष्मलाक्ष्या,
गाढ निखात इव मे हृदये कटाक्ष ॥३२॥

१५ तत प्रभृति—

परिच्छेदातीत सकलवचनानामविषय
पुनर्जन्मन्यस्मिन्ननुभवपथ यो न गतवान् ।
विवेकप्रध्वसादुपचितमहामोहगहनो
विकार कोऽप्यन्तर्जडयति च ताप च तनुते ॥३३॥

१६ अपि च—

परिच्छेदव्यक्तिर्न भवति पुरस्थेऽपि विषये
भवत्यभ्यस्तेऽपि स्मरणमतथाभावविरसम् ।

१३. और तब—

स्थिर विकसित उल्लसित भ्रू-लताओ,
स्निग्ध मुकुलित कोर तक फैली,
प्रत्येक दृष्टिपातपर किंचित आकुंचित,
दृष्टिपातोका मैं विविध प्रकारमे लक्ष्य हुआ ॥३०॥

१४ और तब—

मथर आकुचित मुग्व स्नेहयुक्त स्थिर मद,
अविक खिली आतरिक आश्चर्यमे मुस्काती पुतलियो,
घनी पलकोयुक्त आखोवाले उसके कटाक्षोने मेरे वेवस हृदयको,
लूटा, छेदा, पिया और उन्मूलित किया ॥३१॥

सव तरहसे हृदयगम उसकी मभाव्य स्नेहरस-युक्त समीपता से कृतकृत्य होते भी मैंने अपने हलकेपनको छिपानेकी इच्छासे पहलेसे शुरूकी मौलसरीके फूलकी वाकी मालाको जैसे-तैसे गूथा। तव वेंतधारी हिजडो जैसे ही अधिकतर पुरुषोवाली उस चन्द्रमुखी ने हथिनी पर चढ-कर नगरगामी मार्गको शोभित किया।

जाती घुमाये ढेंपवाले कमल-समान
मुखको क्षण-भर, तिरछे कधेके साथ धारण करती।
उस घनी पलकोवालीने अमृत और विषमे वुझे,
कटाक्षको मेरे हृदयमें दृढतासे गाड सा दिया ॥३२॥

१५ तवसे—

इस जन्ममें फिर कभी न अनुभूत, विवेकसे परे, सारी वाणी का अविपय, विवेकके नप्ट होनेसे महामोह सचयमे गहन, कोई विकार (मेरे) हृदय को जड वना ताप दे रहा है ॥३३॥

१६ और भी—

सामने अवस्थित वस्तुमे भी भेद नही व्यक्त होता,
वहुत अभ्यस्त वात सवधी स्मृति भी उलटी हो जाती है।

१३ ततश्च—

स्तिमितविकसितानामुल्लसद्भ्रूलताना,
मसृणमुकुलिताना प्रान्तविस्तारभाजाम् ।
प्रतिनयनविपाते किंचिदाकुचिताना,
विविधमहमभूव पात्रमालोकितानाम् ।।३०।।

१४ ततश्च—

अलसवलितमुग्धस्निग्धनिष्पन्दमन्दै,
रधिकविकसदन्तर्विस्मयस्मेरतारै ।
हृदयमशरण मे पक्ष्मलाक्ष्या कटाक्षै,
रपहृतमपविद्ध पीतमुन्मूलित च ।।३१।।

अह तु तस्या सर्वाकारहृदयगमाया सभाव्यमानस्नेहरसेन सनिधिना विधेयीकृतोऽपि पारिप्लवत्वमात्मनो निह्नोतुकाम प्राक्प्रस्तुतस्य वकुलपुष्पदाम्नो यथाकथचिदवशेष ग्रथितवानेव। ततो मिलितवेत्रपाणिवर्षवरप्रायपुरुषपरिवारा गजवधूमारुह्य नगरगामिन मार्गमिन्दुवदनाऽलक्तवती-

यान्त्या मुहुर्वलितकधरमानन तद्,
आवृत्तवृन्तशतपत्रनिभ वहन्त्या ।
दिग्धोऽमृतेन च विषेण च पक्ष्मलाक्ष्या,
गाढ निखात इव मे हृदये कटाक्ष ।।३२।।

१५ तत प्रभृति—

परिच्छेदातीत सकलवचनानामविषय
पुनर्जन्मन्यस्मिन्ननुभवपथ यो न गतवान् ।
विवेकप्रध्वसादुपचितमहामोहगहनो
विकार कोऽप्यन्तर्जडयति च ताप च तनुते ।।३३।।

१६ अपि च—

परिच्छेदव्यक्तिर्न भवति पुरस्थेऽपि विषये
भवत्यभ्यस्तेऽपि स्मरणमतथाभावविरसम् ।

१३ और तब—

स्थिर विकसित उल्लसित भ्रू-लताओ,
स्निग्ध मुकुलित कोर तक फैली,
प्रत्येक दृष्टिपातपर किंचित आकुचित,
दृष्टिमातोका मैं विविध प्रकारसे लक्ष्य हुआ ॥३०॥

१४ और तब—

मथर आकुचित मुग्ध स्नेहयुक्त स्थिर मद,
अधिक खिली आतरिक आश्चर्यमे मुस्काती पुतलियो,
घनी पलकोयुक्त आखोवाले उसके कटाक्षोने मेरे वेवस हृदयको,
लूटा, छेदा, पिया और उन्मूलित किया ॥३१॥
सव तरहसे हृदयगम उसकी सभाव्य स्नेहरस-युक्त समीपता से कृतकृत्य होते भी मैंने अपने हलकेपनको छिपानेकी इच्छासे पहलेसे शुरूकी मौलसरीके फूलकी वाकी मालाको जैसे-तैसे गूथा। तब वेंतधारी हिजडो जैसे ही अधिकतर पुरुषोवाली उस चन्द्रमुखी ने हथिनी पर चढ-कर नगरगामी मार्गको शोभित किया।
जाती घुमाये ढेंपवाले कमल-समान
मुखको क्षण-भर, तिरछे कधेके साथ धारण करती।
उस घनी पलकोवालीने अमृत और विषमे बुझे,
कटाक्षको मेरे हृदयमें दृढतासे गाड सा दिया ॥३२॥

१५ तबमें—

इस जन्ममें फिर कभी न अनुभूत, विवेकसे परे, सारी वाणी का अविषय, विवेकके नष्ट होनेसे महामोह सचयमे गहन, कोई विकार (मेरे) हृदय को जड़ बना ताप दे रहा है ॥३३॥

१६ और भी—

सामने अवस्थित वस्तुमें भी भेद नही व्यक्त होता,
वहुत अभ्यस्त वात सवधी स्मृति भी उलटी हो जाती है।

न सतापच्छेदो हिमसरसि वा चन्द्रमसि वा
मनो निष्ठाशून्य भ्रमति च किमप्यालिखति च ।।३४।।

१७ कलहस —दृढ कयाप्यद्यापहृत । अपि नाम मालत्येव सा भवेत् ।
मकरन्द —(स्वगतम्) अहो, अभिपग । तत्कि निषेधयामि प्रियसुहृदम् ?

अथवा—

मा मूमुहत्खलु भवन्तमनन्यजन्मा,
मा ते मलीमसविकारघना मतिर्भूत् ।
इत्यादि नन्विह निरर्थकमेव यस्मिन्-
कामश्च जृम्भितगुणो नवयौवन च ।।३५।।
(प्रकाशम्) वयस्य, अपि विदिते तदन्वयनामनी ?

१८ माधव —श्रूयताम् । अथ तस्या करेणुकाधिरोहणसमय एव तत सखीकदम्बकादन्यतमो वारयोषिद्विलम्ब्य कुसुमापचयक्रमेण नेदीयसी भूत्वा प्रणम्य कुसुमापीडव्याजेन मामेवमुक्तवती—"महाभाग, सुश्लिष्ठगुणतया रमणीय एष सनिवेश । कुतूहलिनी च नो भर्तृदारिकास्मिन्वर्तते । तस्यामभिनवो विचित्र: कुसुमेपुव्यापार । तद् भवतु कृतार्थता वैदग्ध्यस्य । फलतु निर्माणरमणीयता । समासादयतु सरस एष भर्तृदारिकाया कण्ठावलम्बनमहार्घताम्" इति ।
मकरन्द —अहो वैदग्ध्यम् ।

१९. माधव —तया मदनुयुक्तयाख्यातम्—"इयममात्यभूरिवसो प्रसूतिर्मालती नाम । अह च भर्तृदारिकाया प्रसादभूमिर्धात्रेयिका लवंगिका नाम" इति ।
कलहस —(सहर्ष) किं नाम मालतीति । दिष्ट्या विलसित भगवता देवेन कुसुमायुधेन । जितमस्माभि ।

शीतल सरोवर या चादनीमें ताप नष्ट नही होता।
मेरा मन निरतर घूमता कुछ चित्रित कर रहा है।।३४।।

१७ कलहस--किसीने वलपूर्वक आज आकृष्ट किया है। शायद वह **मालती** ही होगी।

मकरद—(अपने आपसे) अहो, आसक्ति! तो क्या प्रिय मित्रको मना करूँ? अथवा—

आपको कामदेव मोहमें न डाले,
तुम्हारी वुद्धि मलिन वहुत विकारोवाली न हो।
इत्यादि कहना (उसकेलिये) यहा निरर्थक ही है,
जिसके ऊपर कि कामदेव वाण और नवयौवन चढाये है।।३५।।
(प्रकट) वयस्य, क्या उसके कुल और नामको मालूम किया?

१८ माधव—सुनो। तव उसके हथिनी पर चढनेके समय उन सखियोमें से एक सहेली थम कर फूल चुनती-चुनती पास आ प्रणाम करके कुसुममालाके वहानेसे मुझसे वोली 'महाभाग, सुन्दर गठित गुण (सूत्र) के कारण यह रचना रमणीय है। हमारी स्वामि-पुत्रीकी इसमें दिलचस्पी है। उसमें नया और विचित्र पुष्पवाणका व्यापार है। सो आपकी चतुराई कृतार्थ, निर्माणकी रमणीयता सफल होवे। यह (माला) स्वामिपुत्रीके कठमें धारण करनेकी सरस वहुमूल्यताको प्राप्त होवे।"
मकरद—अहो चतुराई।

१९ माधव—मेरे पूछनेपर उसने वतलाया. "यह मन्त्री **भूरिवसुकी** कन्या मालती है। और मैं स्वामिपुत्रीकी कृपापात्र धाईकी लडकी **लवंगिका** हू।"

कलहस—(खुश होकर)क्या कहा मालती! धन्य, धन्य, भगवान् कामदेवने (खूव) लीला दिखलाई। हमारी जय हुई।

२० मकरन्द —(स्वगतम्) अमात्यभूरिवसोरात्मजेत्यपर्याप्तिर्बहुमानस्य। अपि तु, मालती मालतीति मोदते भगवती **कामन्दकी**। ता च राजा नन्दनाय याचत इति किंवदन्ती श्रूयते। (प्रकाशम्) तत ?

२१ माधव —तया चानुबध्यमानस्ता बकुलमालामात्मन कण्ठादवतार्य दत्तवान्। असौ पुनरभिनिविष्टया दृशा मालतीमुखावलोकनविहस्ततया विषमरचितैकभागामपि तामेव मुहुर्मुहुर्बहुमन्यमाना "महानय प्रसाद" इति प्रतिगृहीतवती। अनन्तर च यात्राभगप्रचलितस्य महत पौरनैगमजस्य सकुलेन विघटिताया तस्यामागतोऽस्मि।

२२ मकरन्द —वयस्य, मालत्या अपि स्नेहदर्शनात्सुश्लिष्टमेतत्। यो हि कपोलपाण्डुतादिचिह्न सूचित प्रागनुरागस्तस्या कामाभिपग सोऽपि त्वन्निबन्धन इति व्यक्तमेतत्। एतत्तु न ज्ञायते क्व दृष्टपूर्वस्तया वयस्य इति। न खलु तादृश्यो महाभागधेयजन्मानोऽन्यत्रासक्तचेतसो भूत्वा परत्र चक्षूरागिण्यो भवन्ति। अपि च—

अन्योन्यसभिन्नदृशा सखीना।
तस्यास्त्वयि प्रागनुरागचिह्नम्।
कस्यापि कोऽपीति निवेदित च

२३ माधव —कि चान्यत् ?

मकरन्द —

धात्रेयिकायाश्चतुर वचश्च ॥३६॥

२४ कलहस (उपसृत्य)—एतच्च। (चित्र दर्शयति)-(उभौ पश्यत)

मकरन्द —कलहंसक, केनेद **माधवस्य** रूपमभिलिखितम् ?

२५ कलहस —येनैवास्य हृदयमपहृतम्।

मकरन्द —अपि नाम मालत्या ?

२० मकरद—(अपने आपसे) मन्त्री भूरिवसुकी आत्मजा है, यह सम्मान पूर्ण नही है! पर, "मालती, मालती" कहती भगवती कामदकी प्रसन्न होती है। और इसे राजा, नंदनके लिये माग रहा है, यह किंवदन्ती सुनी जाती है। (प्रकट) तव ?

२१ माधव—उसके आग्रह करनेपर उस वकुल मालाको अपने कठसे उतार कर मैंने दे दिया। वहुत आदरयुक्त दृष्टिसे मालतीके मुखके अवलोकन के समय भूल कर एक भागमें उलटी गुथी मालाको लेकर भी वार-वार कृतज्ञता प्रकट करते "यह भारी प्रसाद है" कह कर उसने ले लिया। फिर मेले के उठनेसे चलते नागरिक जनोकी भारी भीड में उस (तरुणी) के दूर होनेपर मै चला आया।

२२ मकरद—मित्र, मालतीके स्नेहयुक्त दर्शनसे यह अच्छा हुआ, जो कि गालोका पीलापन आदि चिह्नवाला, उसकी कामासक्ति, पहलेका अनुराग दिखलाई पड़ा, सो भी तेरे ही कारण, यह स्पष्ट है। पर यह नही मालूम हुआ, कि उसने वयस्यको पहले कहा देखा ? वैसी वड-भागिनी एकमें चित्तासक्त हो दूसरे पर नेत्रोसे प्रेम करनेवाली नही होती। और भी—

एक दूसरेसे आखें मिलाती उसकी सखियोका
"किसीका कोई यह कहना"
तेरे विषयमें उसका पहलेसे प्रेम-चिह्न,

२३ माधव—और दूसरा क्या ?

मकरद—

घाईकी वेटीका चतुराई सहित वोलना ।।३६।।

२४ कलहस—(पास आकर) और यह। (चित्र दिखलाता है)

(दोनो देखते है)

मकरद—कलहसक, किसने माधवका यह चित्र चित्रित किया ?

२५ कलहस—जिसने कि इनके हृदयको चुराया।

मकरद—क्या मालतीने ?

२६ कलहंस —अथ किम् ?
माधव —वयस्य मकरन्द, प्रसन्नप्रायस्ते तर्क ।
मकरन्द —कुतोऽस्याधिगमस्ते ?

२७ कलहंस —मम तावन्मन्दारिकाहस्तात्। तस्या अपि लवंगिकासकाशात् ।
मकरन्द —कथय, किमाह मन्दारिका माधवालेख्य-प्रयोजन मालत्या ?

२८ कलहंस —उत्कण्ठाविनोदनमिति ।
मकरन्द —वयस्य, समाश्वसिहि—
या कौमुदी नयनयोर्भवत सुजन्मा,
तस्या भवानपि मनोरथवन्धवन्धु ।
तत्सगम प्रति सखे न हि सशयोऽस्ति,
यस्मिन्विधिश्च मदनश्च कृताभियोग ॥३७॥
द्रष्टव्यरूपा च भवतो विकारहेतुस्तदत्रैवालिख्यताम् ।

२९. माधव —यदभिरुचित वयस्याय। (लिखन्) सखे मकरन्द,
वारवार तिरयति दृशावुद्गतो वाष्पपूरस्,
तत्सकल्पोपहितजडिमस्तम्भमभ्येति गात्रम् ।
सद्य स्विद्यन्नयमविरतोत्कम्पलोलागुलीक ,
पाणिर्लेखाविधिषु न नितरा वर्तते किं करोमि ॥३८॥
तथाप्यवहितोऽस्मि। (चिरादभिलिख्य दर्शयति)

३०. मकरन्द —(चित्र निर्वर्ण्य) उपपन्नस्तावदत्रभवतोऽभि-पग । (सकौतुकम्) कथमचिरेणैव निर्माय लिखित. श्लोक ? (वाचयति)
जगति जयिनस्ते ते भावा नवेन्दुकलादय ,
प्रकृतिमधुरा सन्त्येवान्ये मनो मदयन्ति ये ।

२६ कलहंस—और क्या ?

माधव—मित्र **मकरंद**, तेरा तर्क ठीक ही है।

मकरंद—कहांसे तुझे यह मिला ?

२७ कलहंस—मुझे **मंदारिका**के हाथसे, उसे भी **लवंगिका**के पाससे।

मकरंद—बतला, मंदारिकाने मालती को माधवके चित्रका **क्या** प्रयोजन बतलाया ?

२८ कलहंस—उत्कंठा हटाना।

मकरंद—वयस्य निश्चित हो जाओ।

जो तुम्हारे नेत्रोंकी सुजन्मी चांदनी है,
आप ही उसके मनोरथमें बंधे बंधु हैं।
सखा, उसके मिलनमें संशय नहीं,
जिसके लिये विधाता और मदन (दोनों) कटिवद्ध हैं ॥३७॥

यही आपके मनोविकारका कारण है, सो यहां ही उस सुन्दरीको चित्रित करो।

२९ माधव—मित्र की जो मर्जी। (चित्रित करते) सखे मकरंद,

आंखोंमें निकलते आंसू बार-बार ढांक देते हैं
उसके संकल्पसे आई जडता से शरीर स्तब्ध हो रहा है।
तुरन्त पसीजता कंपनसे लगातार चंचल अंगुलियोंवाला यह,
हाथ चित्रण-कार्यमें बिल्कुल नहीं लगता, क्या करूं ॥३८॥

तो भी लगा हूं। (देरसे चित्रित करके दिखलाता है)

३०. मकरंद—(चित्रको भली प्रकार देखकर) यहां आपकी आसक्ति बिल्कुल उचित है। (कौतूहलके साथ) क्या जल्दी ही रचकर श्लोक भी लिख दिया ? (बांचता है)—

संसारमें नवीन चन्द्रकला आदि पदार्थों की जय है, किन्तु स्वभावतः
मधुर वह दूसरे ही हैं, जो कि मनको मस्त करते हैं।

मम तु यदिय याता लोके विलोचनचन्द्रिका,
नयनविषय जन्मन्येक स एव महोत्सव ॥३०॥

(प्रविश्य)

३१ मन्दारिका—कलहस कलहस, चोर चोर, पदानुसारेण लब्धोऽसि। (सलज्ज) कथ तावपि महानुभावावत्रैव ? (उपसृत्य) प्रणमामि।
उभौ—मन्दारिके, इत आगम्यताम्।

३२ मन्दारिका—कलहसक, उपनय चित्रफलकम्।
कलहस—गृहाणेदम्।

३३. मन्दारिका—केन किंनिमित्त वाऽत्र मालत्यभिलिखिता ?
कलहस—य एव यन्निमित्त मालत्या।

३४. मन्दारिका—(सहर्षम्) दिष्ट्या उपदर्शितफल विज्ञान प्रजापते।
मकरन्द—सखि मन्दारिके, यदत्र वस्तुन्येष ते वल्लभः कथयति, अपि तत्तथा ?

३५ मन्दारिका—महाभाग, तत्तथा।
मकरन्द—क्व पुनर्मालती माधव प्राग्दृष्टवती ?
मन्दारिका—लवंगिका भणति वातायनगतेति।
मकरन्द—नन्वमात्यभवनासन्नरथ्यैव बहुश संचरावहे, तदुपपन्नमेतत्।

३६. मन्दारिका—अनुमन्यता महाभाग, यावदिद भगवतो देवस्य मदनस्य सुचरित प्रियसख्यै लवंगिकायै निवेदयिष्यामि।
मकरन्द—प्राप्तावसरमेतद् भवत्या।
मकरन्द—वयस्य, मध्याह्नोऽतिवर्तते। तदेहि। सस्त्यानमेव प्रविशाव.।

(उत्थाय परिक्रामत.)

मेरे लिये तो ससारमें जो यह नेत्र-चद्रिका,
नयन गोचर हुई, इस जन्ममें (वस) वही एक महोत्सव है ।।३०।।

(प्रवेश करके)

३१ मदारिका—कलहस, चोर,चोर पैरोंके निशानसे तुझे पकड़ लिया। (लज्जित हो) क्या, वे दोनो महानुभाव भी यही है ? (पास जाकर) प्रणाम करती हू ।
दोनो—मदारिके, यहा आइये ।

३२. मदारिका—कलहसक, ला चित्र ।
कलहस—ले इसे ।

३३. मदारिका—किसलिये किसने यहा मालती चित्रित की ?
कलहस—जिसक लिये, मालतीने चित्रित किया ।

३४. मदारिका—(खुशीके साथ) धन्य, ब्रह्माके विज्ञानका फल दिखला दिया ।
मकरद—सखी मदारिके, इसके बारे में जो यह तेरा प्रियतम कहता है, क्या वह वैसा ही है ?

३५ मदारिका—महाभाग, वह वैसा ही है ।
मकरद—तो **मालतीने** कहा पहले **माधवको** देखा ?
मदारिका—**लवंगिका** कहती है, खिडकी परसे ?
मकरद—हा, अमात्यके भवनके पास वाली इस सड़कपर हम बहुधा आया जाया करते थे, सो यह ठीक है ।

३६ मदारिका—अनुमति दें महाभाग, कि भगवान् कामदेवके इस सुन्दर कामको मैं प्रियसखी **लवंगिकासे** निवेदन करूं ।
मकरद—यह आपके लिये ठीक अवसर है ।

(उठकर दोनो परिक्रमा करते हैं)

३७. माधव.—एव हि मन्ये—
घर्माम्भोविसरविवर्तनैरिदानी,
मुग्धाक्ष्या परिजनवारसुन्दरीणाम् ।
तत्प्रातर्विहितविचित्रपत्ररेखा-
वैदग्ध्यं जहति कपोलकुकुमानि ॥४०॥

३८. अपि च—
उन्मीलन्मुकुलकरालकुन्दकोश-
प्रच्योतद्घनमकरन्दगन्धबन्धो ।
तामीषत्प्रचलविलोचना नतागी-
मालिगन्पवन मम स्पृशागमगम् ॥४१॥

३९. मकरन्द —(स्वगतम्)
अभिहन्ति हन्त कथमेष माधव
सुकुमारकायमनवग्रह स्मर ।
अचिरेण वैकृतविवर्तदारुण
कलभं कठोर इव कूटपाकल ॥४२॥
तदत्र भवती कामन्दकी न. शरणम् ।

४०. माधव —(स्वगतम्)
पश्यामि तामित इत. पुरतश्च पश्चाद्
अन्तर्बहि परित एव विवर्तमानाम् ।
उद्बुद्धमुग्धकनकाब्जनिभं वहन्ती,
आसगतिर्यक्प्रवर्तितदृष्टिवक्त्रम् ॥४३॥

४१. (प्रकाशम्) वयस्य, मम हि सप्रति—
प्रसरति परिमाथी कोऽप्यय देहदाहस्,
तिरयति करणाना ग्राहकत्व प्रमोह. ।
रणरणकविवृद्धि विभ्रदावर्तमान,
ज्वलति हृदयमन्तस्तन्मयत्वं च धत्ते ॥४४॥
(इति निष्क्रान्ता सर्वे)

३७ माधव—ऐसा समझता हूं—

अब (उस) मुग्ध-नयनाकी परिजन-सुन्दरियो द्वारा,
सवेरे बनाई वह अद्भुत पत्राकन-चातुरी।
पसीनेकी बूदोके फैलनेसे,
कपोलके केसरको छोडती होगी ।।४०।।

३८ और भी,

खिली कलियोसे भयकर कुदके गर्भसे,
गिरते घने केसरकी गधके साथी हे पवन,
उस किंचित् चलित नयना, झुके अगोवालीका,
आलिगन कर तुम मेरे अग-अगका स्पर्श करो ।।४१।।

३९ मकरंद—(अपने आपसे)

हन्त क्या यह अनियंत्रित कामदेव।
सुकुमार शरीरवाले **माधव**को (वैसे ही) मार रहा है।
(जैसे) जल्दी ही दारुण परिणाम देनेवाला,
कूटपाकल (कठोर) रोग, तरुण गजको ।।४२।।
सो यहा **कामंद**की जो ही हमारी रक्षा कर सकती है।

४०. माधव—(अपने आपसे)

भीतर-बाहर चारो ओर ही घूमती,
फूले मुग्ध सुवर्णकमल समान,
तिरछी दृष्टि युक्त मुखको धारण करती,
उसे वहा-यहा, सामने और पीछे देखता हू ।।४३।।

४१ (प्रकट) वयस्य, मुझे तो इस समय—

यह कोई अति पीडक देह-दाह फैल रहा है,
भारी मोह इन्द्रियोको ग्रहण-शक्ति विना कर रहा है।
बढती उत्कठा युक्त चक्कर काटता,
हृदय भीतरसे जलता तन्मय हो रहा है ।।४४।।

(सब चले गये)

—अंक १

(२) मालती-वियोग:

४२ माधव —हा प्रियवयस्य सभावय। परिष्वजस्व माम्। प्रिया मालती प्रति तु निराश एव सवृत्तोऽस्मि।

४३ मकरन्द —एषोऽह् सभावयामि जीवितेश्वरम्। (विलोक्य सकरुणम्) कष्ट्म्। कथमाविर्भूतमत्परिष्वगोत्कण्ठ एव निश्चेतन सवृत्त। तत्कृतमिदानी जीविताशाव्यसनेन। सर्वथा नास्ति मे प्रियवयस्य इति युक्तः परिच्छेद। हा वयस्य—

४४ यत्स्नेहसज्वरवता हृदयेन नित्य
आवद्धवेपथु विनापि निमित्तयोगात्।
त्वय्यापदो गणयता भयमन्वभावि,
तत्सर्वमेकपद एव मम प्रणष्टम्॥३६॥
अथवा वर त एवातिक्रान्ता मुहुर्ता., येषु तथाविधमपि भवन्त चेतयमानमनुभूतवानस्मि। इदानी तु मम—

४५. भार. कायो जीवत वज्रकील,
काष्ठा शून्या निष्फलानीन्द्रियाणि।
कष्ट कालो मा प्रति त्वत्प्रयाणे,
शान्तालोक. सर्वतो जीवलोक॥३७॥

४६. (विचिन्त्य) तत्कि नु माधवास्तमयसाक्षिणा भवितव्यमित्यतो जीवामि? तदस्माद् गिरिशिखरात्पाटलावत्यां निपत्य माधवस्य मरणाग्रेसरो भवामि। (सकरुणं परिवृत्यावलोक्य च) कष्टम्।

४७. तदेतदसितोत्पलद्युति शरीरमस्मिन्नभूत्,
ममापि दृढपीडनैरपि न तृप्तिरालिंगनै।
यदुल्लसितविभ्रमा वत निपीतवत्य. पुरा
नवप्रणयविभ्रमाकुलितमालतीदृष्टय.॥३८॥

२. मालती का वियोग

४२ माधव—हा प्रिय मित्र, प्रेम दिखा, मुझे आलिंगन कर। प्रिया मालतीके वारेमें तो मैं निराश हो गया हू ।

४३ मकरंद—यह मैं (अपने) जीवनके स्वामी को प्यार करता हूं। (देखकर करुणाके साथ) हाय! मेरे आलिंगनकी उत्कंठा होते ही वेहोश हो गया। तो अव जीवनकी आशाके लिये हैरान होना वेकार है। मेरा प्रिय मित्र (अव) विल्कुल नहीं रहा, यही सोचना ठीक है। हा मित्र —

४४ जो कि स्नेह ज्वरयुक्त हृदयसे सदा,
विना कारण ही कापते हुये,
तेरे विषयमें आपत्तियोको गिनते मैंने भय अनुभव किया,
सो सव मेरा एक क्षणमें ही नष्ट हो गया ।।३६।।
अथवा वह वीते हुए क्षण ही अच्छे, जिनमें कि वैसे भी (कम से कम) मैंने होश-हवास रखते आपको साक्षात् तो किया था। अव तो मेरे लिये—

४५ शरीर भार है, जीवन वज्रका काटा है।
दिशायें सूनी हैं, इन्द्रियां निष्फल हैं।
मेरे लिये काल कष्टमय है, तेरे महाप्रयाण करनेपर,
चारो ओर जीवलोक वुझे-प्रकाशसा है ।।३७।।

४६ (सोचकर) तो क्या माधवके अस्त होनेका साक्षी होनेके लिये (ही) मैं जी रहा हू ? (नही), इस पर्वतशिखरसे पाटलावती नदीमें गिरकर माधवके मरणमें अग्रगामी होता हूं। (करुणाके साथ घूमकर और देखकर) हाय—

४७ सो सावले रगके शरीरके दृढ दवावके,
आलिंगनोसे मेरी तृप्ति नही हुई।

हन्त भो, एकस्या तनावेतावतो गुणसमाहारस्य सनिवेश कथमिवाभूत्? सखे माधव—

४८. आपूर्णश्च कलाभिरिन्दुरमलो यातश्च राहोर्मुख,
सजातश्च घनाघनो जलधर शीर्णश्च वायोर्जवात्।
निर्वृत्तश्च फलेग्रहिर्द्रुमवरो दग्धश्च दावाग्निना,
त्व चूडामणिता गतश्च जगत प्राप्तश्च मृत्योर्वशम्॥३९॥

४९. तत्परिष्वजे तावदेवं गतमपि प्रियवयस्यम्। अर्थितश्चानेन सप्रत्ययमेवार्थं। (परिष्वज्य) हा वयस्य, विमलकलानिधे गुणगुरो, हा मालतीस्वयग्राहजीवितेश्वर, हा कामन्दकीमकरन्दानन्दजनक **माधव**, अयमत्र ते जन्मन्यपश्चिम पश्चिमावस्थाप्रार्थितो मकरन्दबाहुपरिष्वग.। सखे, सप्रति मुहुर्तमपि मकरन्दो जीवतीति मैव मस्था। कुत—

५०. आ जन्मन सह निवासितया मयैव,
मातु पयोधरपयोऽपि सम निपीय।
त्व पुण्डरीकमुखबन्धुतया निरस्त,
एको निवापसलिल पिबसीत्ययुक्तम्॥४०॥
(सकरुण विमुच्य, परिक्रम्य) इयमधस्तात्**पाटलावती**।

भगवत्यापगे—

५१. प्रियस्य सुहृदो यत्र मम तत्रैव सभव।
भूयादमुष्य भूयोऽपि भूयासमनुसचर॥४१॥
(इति पतितुमिच्छति)

५२. सौदामिनी—(प्रविश्य सहसा वारयित्वा) वत्स, कृतं साहसेन।

मकरन्द—(विलोक्य) अम्ब, कासि? किमर्थं त्वयाह प्रतिपिद्ध?

जिसे कि अभिनव प्रेमकी लीलासे आकुलित,
उल्लसित विलासयुक्त मालतीकी नजरोने पहले पिया था ।।३८।।
हन्त हे, एक शरीरमें इतने गुणोका समागम कैसे हुआ ? सखे माधव,

४८ कलाओंसे परिपूर्ण निर्मल इन्दु राहुके मुखमें चला गया,
और घना हुआ मेघ वायुवेगसे विशीर्ण हो गया ।
फलदार श्रेष्ठ वृक्ष वनकी आगसे जल गया ।
जगत्के चूड़ामणि तुम मृत्युके वशमें चले गये ।।३९।।

४९. तो ऐसे ही प्रिय मित्र का आलिंगन करता हू । अभी इसने ऐसा चाहा भी था । (आलिंगन करके) हा मित्र, निर्मल चन्द्र गुणोमें गुरु, हा **मालती**के स्वयं बनाये जीवितेश्वर, हा **कामद**की और **मकरद**के आनददायक माधव, यहा इस जन्ममें अन्तिम अवस्थामें तेरा प्रार्थित मकरदका यह दुर्लभ बाहु-आलिंगन है । सखे, अब मुहूर्त भर भी मकरद जीयेगा, यह न समझना । क्योकि—

५० जन्मसे ही इकट्ठा मेरे साथ रहते,
माताके स्तनका दूध भी एक साथ पीते,
तुम कमलमुखके सदृश होते दूसरेके विना,
अकेले तर्पणका जल पीयो, यह अनुचित है ।।४०।।
(करुणाके साथ छोडकर परिक्रमा करके) यह नीचे **पाटलावती** वह रही है। भगवती नदी,

५१ प्रिय मित्र जहा जन्मे वही मेरा भी जन्म हो ।
मैं फिर भी इसका साथी होऊं ।।४१।।
(गिरना चाहता है)

५२ सौदामिनी—(प्रवेश करके एकाएक रोककर) वत्स, रहने दे, यह साहस ।
मकरंद—(देखकर) मा, तुम कौन हो ? किसलिये तुमने मुझे मना किया ?

५३ सौदामिनी—आयुष्मन्, किं त्वं मकरन्दः?
मकरन्द —मुच। स एवास्मि मन्दभाग्यः।

५४. सौदामिनी—वत्स, योगिन्यस्मि। मालतीप्रत्यभिज्ञानं च धारयामि। (बकुलमाला दर्शयति)।
मकरन्द —(सोच्छ्वासं सकरुणम्) अपि जीवति मालती?

५५ सौदामिनी—अथ किम्। वत्स, किमत्याहितं माधवस्य, यदनिष्टं व्यवसितोऽसीत्याकम्पितास्मि।
मकरन्द —आर्ये, तमहं प्रमुग्धमेव वैराग्यात्परित्यज्यागतः। तदेहि, तूर्णं संभावयावः।

(त्वरितं परिक्रामतः)

मकरन्दः—(विलोक्य) दिष्ट्या प्रत्यापन्नचेतनो वयस्यः।

५६ सौदामिनी—(स्वगतं) संवदत्युभयोर्मालतीनिवेदितं शरीराकारः।

५७ माधव —(आश्वस्य) अये, प्रतिबोधितवानस्मि केनापि (विचिन्त्य) नूनमस्यायं नवजलधरप्रभञ्जनस्यानवेक्षितास्मदवस्थो व्यापारः। भगवन् पौरस्त्य वायो,

भ्रमय जलदानम्भोगर्भान्प्रमोदय चातकान्,
कलय शिखिनः केकोत्कण्ठान्कठोरय केतकान्।
विरहिणि जने मूर्च्छां लब्ध्वा विनोदयति व्यथा,
अकरुण पुनः सञ्ज्ञाव्याधिं विधाय किमीहसे॥४२॥

५८ मकरन्द —सुविहितमनेनाखिलजन्तुजीवनेन मातरिश्वना। अपि च—

एते केतकसूनसौरभजुषः पौरप्रगल्भाङ्गना—
व्यालोलालकवल्लरीविलुठनव्याजोपभुक्ताननाः।

५३ सौदामिनी—आयुष्मान, क्या तू **मकरंद** है?
मकरंद—छोडो, मैं वही आभागा हू।

५४ सौदामिनी—वत्स, मैं योगिनी हू, **मालती** की खबर मेरे पास है।
(मौलसरीकी माला दिखलाती है)
मकरद—(उसास ले करुणाके साथ) क्या **मालती** जीती है?

५५ सौदामिनी—और क्या? वत्स, क्या माघवका अति-अहित हो गया, जो कि तुम अनिष्ट करने पर उतारू हो। यह सोच मैं काप रही हू।
मकरद—आर्ये, उसे मैं मूर्च्छित ही छोडकर निराश हो आ गया। सो आओ, जल्दी (उसे) सभालें।

(जल्दी-जल्दी दोनो परिक्रमा करते)

मकरंद—(देखकर) धन्य, होशमें आ गया है मित्र।

५६ सौदामिनी—(अपने आपसे) मालती की वतलाई शरीर-आकृति दोनो की मिलती है।

५७ माघव—(आश्वास लेकर) अये, किसीने मुझे जगा दिया! (सोचकर) निश्चय ही हमारी अवस्थाका ध्यान न किये नवीन मेघवाले इस वायुका यह काम है। भगवान् पूर्वी वायु—
जल लिये हुए मेघोको घुमाओ, चातको को प्रमुदित करो,
मोरोको केकाके लिये उत्कठित करो, केवड़ोको कठोर बनाओ।
मूर्च्छित हो व्यथा दूर हुये विरही जनोको,
होशका रोग लगा, हे निष्ठुर, तुम क्या चाहते हो।।४२।।

५८ मकरंद—समस्त प्राणियोके जीवन इस वायुने ठीक (ही) किया। और भी—
केवड़ेके पुष्पकी गंधवाले, नगरकी ढीठ अगनाओके
कुचित अकलकलताओपर गिरनेके बहाने मुखका उपभोग करते,

किंचोन्निद्रकदम्बकुड्मलपुटीधूलीलुठत्षट्पद—
व्यूहव्याहृतिहारिणो विरहिण कर्षन्ति वर्षानिला. ॥४३॥

५९. माधव.—देव वायो, तथापि भवन्तमेव प्रार्थये—
विकसत्कदम्बनिकुरुम्बपासुना,
सह जीवित घटय मे प्रिया यत ।
अथवा तदगपरिवासशीतल,
मयि किंचिदर्पय भवास्तु मे गति ॥४४॥
(कृताञ्जलि प्रणमति)

६०. सौदामिनी—सुसमाहित खल्वभिज्ञार्पणस्यावसर ।
(अजलौ बकुलमालामर्पयति) ।

६१. माधव —(साकूत सहर्षं सविस्मय च) कथमियमस्म-
द्विरचिता प्रियास्तनेनोन्नाहदुर्ललितमूर्तिरनगमन्दिरागणब-
कुलपादपकुसुममाला ? (सम्यङ निरूप्य) क. सदेह ?
तथा हि स एवायमस्या —

६२ मुग्धेन्दुसुन्दरतदीयमुखावलोक–
हेला विश्रृंखलकुतूहलनिह्नवाय ।
दुर्न्यस्तपुष्परचितोऽपि लवगिकायास्,
तोष ततान विषमग्रथितो विभाग ॥४५॥
(सहर्षोन्मादमुत्थाय) चण्डि मालति, इय विलोक्यसे ।
(सकोपमिव) अयि मदवस्थानभिज्ञे—

६३ प्रयान्तीव प्राणा सुतनु हृदय ध्वसत इव,
ज्वलन्तीवागानि प्रसरति समन्तादिव तम ।
त्वराप्रस्तावोऽय न खलु परिहासस्य विषयस्,
तदक्ष्णोरानन्दं वितर मयि मा भूरकरुणा ॥४६॥
(सर्वतो दृष्ट्वा सनिर्वेदम्) कुतोऽत्र मालती ? (वकुल-
माला प्रति) अये प्रियाप्रणयिनी, परमोपकारिण्यसि—

और फूले कदम्बकी कलियोके पुटकी रजमें लोटते, भवरोके शब्दोसे मनोहर (ये) वर्षा-वायु विरहियोका आकर्षण करते है ॥४३॥

५९ माधव—हे वायुदेव, तो भी आपसे यह प्रार्थना करता हू—
फूलते कदम्बकी कलियो की धूलिसे,
जहा मेरी प्रिया है, उसका सहजीवी बनाओ,
अथवा उसके अगसे वासित कुछ शीतलता,
मेरे ऊपर डालो । आप ही तो मेरे सब कुछ हैं ॥४४॥
(हाथ जोडकर प्रणाम करता है)

६० सौदामिनी—चीन्हा देनेका (यह) बहुत अच्छा अवसर मिला।
(अजलिमें मौलसरीकी माला डाल देती है)।

६१ माधव—(जिज्ञासा, हर्ष और विस्मयके साथ) क्या यह प्रियाके उच्च स्तनसे खेलनेवाली मूर्ति, कामदेव-मन्दिरके आगनमें हमारी बनाई बकुल वृक्षकी पुष्पमाला है। (अच्छी तरह देखकर) इसमें क्या सदेह, क्योकि इसमें वही है—

६२. मुग्धचन्द्र से सुन्दर उसके मुखके अवलोकन
के भाव वाले (अपने) अस्त-व्यस्त कुतूहलको छिपानेके लिये,
बिना क्रमके फूलोसे बुरा गुथा भी इसका भाग,
लवंगिका के सतोषको बढानेवाला हुआ ॥४५॥
(हर्ष और उन्मादके साथ उठकर)हे चडी मालती, यह तू दिखाई दे रही है। (कुपित सा) अरी, मेरी अवस्थासे अनभिज्ञ—

६३ हे सुशरीरे, प्राण जा से रहे हैं, हृदय ध्वस्त सा हो रहा है।
अग जल से रहे हैं, चारो ओर अधकार फैल रहा है।
यह जल्दीका प्रस्ताव है, मजाकका विषय नही है।
सो (आ) आखोको आनन्द दे, मेरे प्रति निष्ठुर मत हो ॥४६॥
(चारो ओर देखकर खेदके साथ) यहा कहा है मालती ? (बकुल मालाके प्रति) अये, प्रियाकी प्रेमिका, तू परमोपकारिणी है।

६४. निष्प्रत्यूहा प्रियसखि यदा दु सहा सबभूवुर्,
मोहोद्दामव्यसनगुरवो मन्मथोन्मादवेगा ।
तस्मिन्काले कुवलयदृशस्त्वत्समाश्लेषण वा
प्राणत्राणं प्रगुणमभवन्मत्परिष्वगकल्प ॥४७॥

(सकरुण नि श्वस्य)—

६५ आनन्दनानि मदनज्वरदीपनानि,
गाढानुरागरसवन्ति तदा तदा च।
स्नेहाकराणि मम मुग्धदृशश्च कण्ठे
कष्ट स्मरामि तव तानि गतागतानि ॥४८॥

(हृदये निधाय मूर्च्छति)—

६६. मकरन्द —(उपसृत्य) सखे, समाश्वसिहि।
माधव —(समाश्वस्य) मकरन्द, किं न पश्यसि कुतोऽपि सहसैव मालतीस्नेहस्वहस्तस्य लाभ । तत्कथ मन्यसे किमेतदिति ?

६७ मकरन्द —इयमार्या योगीश्वर्यस्य मालत्यभिज्ञानस्योपनेत्री।
माधव —(सकरुण कृतांजलि) आर्ये, प्रसीद। कथय, जीवति मे प्रिया सा ?

६८ सौदामिनी—वत्स, समाश्वसिहि। जीवति सा कल्याणी।
माधवमकरन्दौ—(समुच्छ्वस्य) आर्ये, यद्येव कथय क एष वृतान्त इति।

६९. सौदामिनी—अस्ति पुरा करालायतनेऽघोरघण्टः कृपाणपाणिर्व्यापादित ।
मावव —(सावेगम्) अये विरम ज्ञातो वृतान्त ।

७० मकरन्द—सखे, क इव ?
मावव —किमन्यत् ? सकामा कपालकुण्डला।

६४ हे प्रिय सखी, मोहके भीषण कष्टसे भारी, मन्मथके उन्मादका वेग
जब निराबाध हो दुस्सह हो उठे।
तब तुझ कमलाक्षीका आलिंगन अथवा
प्राण-रक्षा मेरे आलिंगनके समान हितकर हुआ ॥४७॥

(करुणाके साथ उसास लेकर)

६५ आनन्ददायक कामज्वरदीपक,
गाढ अनुरागके रसोंसे युक्त और तब,
मेरी मुग्धाक्षीके कंठमें स्नेहसे, आकर
तेरे उस आने जानेको हाय मैं याद करता हूं ॥४८॥

(हृदयमें रखकर मूर्च्छित हो जाता है)

६६ मकरंद—(पास आकर) सखे, धीरज धरो।
माधव—(धीरज धरकर) मकरंद, क्या तू नही देखता, कहींसे एकाएक मालतीके स्नेहका (यह) अपना चिह्न आ गया। तो क्या समझते हो, यह क्या है?

६७ मकरंद—मालतीके इस चिह्न को ले आनेवाली यह आर्या योगिश्वरी है।
माधव—(करुणाके साथ हाथ जोडकर) आर्ये, दया करो। बताओ, क्या वह मेरी प्रिया जीती है?

६८ सौदामिनी—वत्स, धीरज धरो। वह कल्याणी जीती है।
माधव और मकरंद—(सांस लेकर) आर्ये, यदि ऐसा है, तो बताओ, यह क्या बात है?

६९ सौदामिनी—पहले करालाके मन्दिरमें हाथमें तलवार लिये अघोरघंट मारा गया।
माधव—(उद्विग्न हो) अये, ठहरो, बात जान गया।

७० मकरंद—मित्र, कैसे?
माधव—और क्या, कपालकुंडलाका मनोरथ सफल हुआ।

७१. मकरन्द.—आर्ये, अप्येवम् ?
सौदामिनी—एव, यथा निवेदित वत्सेन।

७२ मकरन्द —भो , कष्टम् ।
कुमुदाकरेण शरदिन्दुचन्द्रिका,
यदि रामणीयकगुणाय सगता।
सुकृत तदस्तु कतमस्त्वय विधिर्,
यदकालमेघविततिर्व्ययूयुजत् ।।४९।।

७३ माधव —हा प्रिये मालति, कष्टमतिबीभत्समापन्नासि—
कथमपि तदाभवस्त्व कमलमुखि कपालकुण्डलाग्रस्ता।
उत्पातधूमरेखाक्रान्तेव कला शशधरस्य ।।५०।।

७४. भगवति कपालकुण्डले,
निर्माणमेव हि तदा तव लालनीय,
मा पूतनात्वमुपगा शिवतातिरेव।
नैसर्गिकी सुरभिण कुसुमस्य सिद्धा,
मूर्ध्नि स्थितिर्न मुसलैर्वत कुट्टनानि ।।५१।।

७५ सौदामिनी—वत्स, अलमावेगेन—
अकरिष्यदसौ पापमतिदुष्करुणैव सा।
नाभविष्यमह तत्र यदि तत्परिपन्थिनी ।।५२।।

७५. उभौ—(प्रणम्य) अतिप्रसन्नमार्यापादै। तत्कथय का पुनस्त्वमस्माकमेवविधो वन्धु ?

७७ सौदामिनी—ज्ञास्यथ खल्वेतत्। (उत्थाय) इयमिदानीमहं—
गुरुचर्यातपस्तन्त्रमत्रयोगाभियोगजाम्।
इमामाकर्षिणी सिद्धिमातनोमि शिवाय व. ।।५३।।

(समाधवा निष्क्रान्ता)

७१ मकरद—आर्ये, क्या ऐसा ही ?

सौदामिनी—ऐसा ही, जैसा कि वच्चेने कहा।

७२ मकरद—भो, भो, हाय।

यदि सरोवर के साथ शरत्चन्द्रकी चादनी,

रमणीयताके गुणोके लिये इकट्ठी हुई;

तो वह काम अच्छा हुआ, पर, यह कौन विधान है,

जो कि अकाल मेघकी घटा छिन्न भिन्न हो गई ।।४६।।

७३ माधव—हा प्रिये मालती, अत्यन्त भीषण अवस्थाको तू प्राप्त हुई—

उत्पातके धूयेकी रेखासे आक्रात चन्द्रमाकी कलाकी तरह,

हे कमलमुखी, तव तू कैसे कपालकुंडलासे ग्रसित हुई ? ।।५०।।

७४ हे भगवती कपालकुडला,

तव तेरा ही निर्माण स्पृहणीय था,

पूतना न वन तू मंगलमयी ही हो।

सुगन्वित फूलोकी स्वाभाविक सिद्धि है

सिरपर चढना, न कि हाय, मूसलोसे कूटा जाना ।।५१।।

७५ सौदामिनी—वत्स, मत उद्विग्न होओ। वह अत्यन्त निष्ठुर ही है।

उसने पाप किया होता,

यदि वहाँ उसमें वाधा डालनेवाली मैं न होती ।।५२।।

७६ दोनो—(प्रणाम करके) आर्याने वडी दया की। तो वतायें, तुम कौन हमारी ऐसी वन्धु हूँ ?

७७ सौदामिनी—इसे तुम जरूर जानोगे। (उठकर) अव यह मैं—

वडे तप, तन्त्र, योगके अभ्याससे उत्पन्न,

इस आकर्षणी सिद्धिको तुम्हारे कल्याणके लिये प्रयोगमें लाती हूं ।।५३।।

(माधवको ले निकल गई)

७८ मकरन्द —आश्चर्यम्—
व्यतिकर इव भीमस्तामसोवैद्युतश्च,
क्षणमुपहतचक्षुर्वृत्तिरुद्भूय शान्त ।
(विलोक्य सभयम्)
कथमिव न वयस्यस्तत्किमेतत्किमन्यत्,
(विचिन्त्य)—
प्रभवति हि महिम्ना स्वेन योगीश्वरीयम् ।।५४।।

७९ (सवितर्कम्) किमयमनर्थ इति सप्रति मूढोऽस्मि।
अपि च—
अस्तोकविस्मयमविस्तृतपूर्ववृत्त,
उद्भूतनूतनभयज्वरजर्जर न ।
एक क्षणत्रुटितसघटितप्रमोह
आनन्दशोकशबल समुपैति चेत ।।५५।।

८० तदत्र कान्तारावसाने सहास्मद्वर्गेण प्रविष्टा भगवतीमनुसृत्य वृत्तान्तमेन कथयामि।
(इति निष्क्रान्ता सर्वे)

२. उत्तररामचरितम्

(१) प्रस्तावना—

८१ इद कविभ्य पूर्वेभ्यो नमोवाक प्रशास्महे।
वन्देमहि च ता वाणीममृतामात्मन. कलाम् ।।१।।
(नान्द्यन्ते)

८२ सूत्रधार — अलमति विस्तरेण । अद्य खलु भगवत कालप्रियानाथस्य यात्रायामार्यमिश्रान्विज्ञापयामि— एवमत्र भवन्तो विदांकुर्वन्तु। अस्ति खलु तत्र भवान्काश्यप श्रीकण्ठपदलाछन पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जातुकर्णीपुत्र —

७८ मकरंद—अचरज,

अन्धकार और विजलीके किसी भीषण (उपद्रव सा),

क्षणमें आखकी चेष्टाको नष्ट कर ऊपर उठ शान्त हो गया ॥

(देखकर भयके साथ)

क्यो मित्र नही तो यह दूसरा क्या है।

(सोच कर)

यह योगेश्वरी अपनी महिमासे सब करनेमें समर्थ है ॥५४॥

७९ (तर्क-वितर्क करते) क्या यह अनर्थ है, यह सोच मैं इस समय मूढ हू, और भी—

अधिक विस्मययुक्त पूर्व वृत्तान्तको न भूल,

नये उत्पन्न भयरूपी ज्वरसे जर्जर,

एक क्षणमें टूटा जुडा भारी मोहयुक्त

हमारा चित्त आनन्द और शोक से मिश्रित बना है ॥५५॥

८० सो यहा जगलके छोरपर हमारे लोगोके साथ आई भगवती को ढूढकर यह वृत्तान्त कहता हूँ।

(सब निकल गये)

—अक ९

२. उत्तररामचरित

१. प्रस्तावना—

८१ पुराने कवियोके लिये मैं यह नमस्कार वचन कह रहा हूं।

और अमर आत्माकी उस वाणीको वदना करता हूं ॥१॥

(नादी पाठके बाद)

८२ सूत्रधार—बहुत विस्तारसे कहना छोडो। आज भगवान् महाकालके मेलेमें आर्यो से अर्ज करता हू आप सब यह जानें। काश्यप श्रीकंठ उपाधिधारी, व्याकरण-मीमासादि के ज्ञाता जातुकर्णी के पुत्र जो भवभूति नामक है—

य ब्रह्माणमिय देवी वाग्वश्यैवान्ववर्तत ।
उत्तर **रामचरितं** तत्प्रणीत प्रयोक्ष्यते ॥२॥
एषोऽस्मि कविवशादायोध्यकस्तदानीतनश्च सवृत्त. ।
(समन्तादवलोक्य)—
भो , यदा तावदत्रभवत पौलत्यकुलधूमकेतोर्महाराज-**राम**स्याय पट्टाभिषेकसमयो रात्रिदिवमसहृतनान्दीक, तत्किमिदानी विश्रान्तचारचरणानि चत्वरस्थानानि ?

(प्रविश्य)

८३. नट—भाव , प्रेषिता हि स्वगृहान्महाराजेन लका-समरसुहृदो महात्मान प्लवगमराक्षसा सभाजनोपस्थायिनश्च नानादिगन्तपावना ब्रह्मर्षयो राजर्षयश्च, यत्समाराधनायैतावतो दिवसान्प्रमोद आसीत् ।
सूत्रधार—आ , अस्त्येतन्निमित्तम् ।

८४. नट—अन्यच्च—

वसिष्ठाधिष्ठिता देव्यो गता रामस्य मातर ।
अरुन्धती पुरस्कृत्य यज्ञे जामातुराश्रमम् ॥३॥
सूत्रधार—वैदेशिकोऽस्मीति पृच्छामि । क पुनर्जामाता ?

८५. नट—

कन्यां **दशरथो** राजा शान्ता नाम व्यजीजनत् ।
अपत्यकृतिका राज्ञे रोमपादाय ता ददौ ॥४॥
विभाण्डकसुतस्तामृष्यश्रृग उपयेमे । तेन च साप्रत द्वादशवार्षिक सत्रमारब्धम् । तदनुरोधात्कठोरगर्भामपि जानकी विमुच्य गुरुजनस्तत्र यात. ।
सूत्रधार—तत्किमनेन ? एहि, राजद्वारमेव स्वजातिसमयेनोपतिष्ठाव. ।

वशमें हुई सी यह वाणीदेवी जिस ब्रह्माका अनुगमन करती है—
उसके रचे उत्तर-**रामचरित**का हम अभिनय करेंगे ।।२।।
यह मैं (अब) कविके अनुसार उस कालका **अयोध्यावासी** हो गया ।
(चारो ओर देख कर) हे, **रावण**-वशके धूमकेतू महाराज **रामजी**के अभिषेक के इस समय में रात-दिन (कभी) नादी पाठ बन्द नही हो सकता, तो क्यो इस समय चबूतरोके स्थान गुप्तचरोके चरणोंसे रिक्त हैं ?

(प्रवेश कर)

८३ नट—महानुभाव, महाराजने लका-युद्धके साथियो महात्मा वानर-भालुओ, राक्षसो, सभाजनो, सेवको और नाना दिशाओंके पवित्र ब्रह्मर्षियों और राजर्षियोको अपने अपने घर भेज दिया, उन्हींकी सेवाके लिये इतने दिनो तक आनन्द-मगल रहा ।
सूत्रधार—हा, हा, यह है (इसका) कारण ।

८४ नट—और भी—
वसिष्ठके नेतृत्वमें रामकी माता देविया, अरुधतीको (साथ) लेकर यज्ञमें जमाईके आश्रम चली गई ।।३।।
सूत्रधार—विदेशी हू, नही जानता, इसलिये पूछ रहा हू । कौन है जमाई ?

८५ नट—

राजा दशरथने (अपनी) सन्तान बनी शान्ता नामक कन्याको जन्म दिया, उसे राजा रोमपादको सतान बनाकर दे दिया ।।४।।
उसे विभाडकके पुत्र **शृगी ऋषि**ने व्याहा । उन्होंने इस समय बारह वर्षवाला यज्ञ आरभ किया है। उनके अनुरोधसे परिपक्वगर्भा जानकीको छोड कर (घरके) बडे लोग वहा चले गये ।
सूत्रधार—तो इससे क्या ? आओ राजद्वारपर ही अपने खानदानी ढगसे हम हाजिरी दें।

८६ नट —तेन हि निरूपयतु राज्ञ सुपरिशुद्धामुपस्थानस्तोत्र-पद्धित भाव ।
सूत्रधार —मारिष !
सर्वथा व्यवहर्तव्य कुतो ह्यवचनीयता ।
यथा स्त्रीणा तथा वाचा साधुत्वे दुर्जनो जन ।।५।।

८७ नट —अतिदुर्जन इति वक्तव्यम्—
देव्या अपि हि वैदेह्या सापवादो यतो जन ।
रक्षोगृहस्थितिर्मूलमग्निशुद्धौ त्वनिश्चय ।।६।।

सूत्रधार —यदि पुनरिय किंवदन्ती महाराज प्रति स्यन्देत्, तत कष्ट स्यात् ।

८८ नट —सर्वथा ऋषयो देवाश्च श्रेयो विधास्यन्ति। (परिक्रम्य) भो भो, क्वेदानी महाराज ? (आकर्ण्य) एव जना कथयन्ति—
स्नेहात्सभाजयितुमेत्य दिनान्यमूनि,
नीत्वोत्सवेन जनकोऽद्य गतो विदेहान् ।
देव्यास्ततो विमनस परिसान्त्वनाय,
धर्मासनाद्विशति वासगृह नरेन्द्र ।।७।।

(इति निष्क्रान्तौ)

(२) वनवास-चित्रम्—

८९ (तत प्रविशत्यासनोपविष्टौ राम सीता च)
राम —देवि वैदेहि, विश्वसिहि। ते हि गुरवो न शक्नुवन्ति विहातुमस्मान्—
किंत्वनुष्ठाननित्यत्व स्वातन्त्र्यमपकर्षति ।
सकटा ह्याहिताग्नीना प्रत्यवायैर्गृहस्थता ।।८।।

८६ नट—तो महानुभाव, (आप) दरवारके प्रशसकोकी सुपरिशुद्ध पद्धतिको देखें।

सूत्रधार—यार—

सर्वथा वैसा व्यवहार करना चाहिये, चाहे क्यो न वचन मारा जाये जैसे स्त्रियोकी भाति वाणियोकी साधुतामें दुर्जन जन (बाधक) होते हैं ॥५॥

८७ नट—अतिदुर्जन कहना चाहिये—

देवी वैदेही पर भी जव अपवाद लगानेवाले लोग हैं, (उनका) राक्षसके घरमें रहना पक्का है, पर अग्निमें शुद्धि पर विश्वास नही ॥६॥

सूत्रधार—अगर यह अफवाह महाराजके पास पहुची, तो बुरा होगा।

८८ नट—ऋषि और देवता सव तरह मगल करें। (परिक्रमा करके) हे-हे, इस समय महाराज कहा है? (सुनकर) लोग ऐसा कह रहे हैं —

स्नेहके साथ पूजा करनेके लिये आये दिनो को उत्सवके साथ विता आज जनक विदेह देश चले गये। तव उदास हुई देवीकी सात्वनाके लिये सिंहासनसे उठकर नरेन्द्र वासगृहमें प्रवेश कर रहे हैं ॥७॥

(दोनो वाहर चले गये)

२. वनवासका चित्र—

८९ (तव आसनपर वैठे राम और सीता प्रवेश करते हैं)

राम—देवी वैदेही, धीरज धरो, गुरुजन हमें नही छोड सकते। किंतु, स्वतंत्रताको नित्य के कर्तव्य छीन लेते हैं। अग्नि-उपासकोकी गृहस्थी विघ्नके भयसे घिरी होती है ॥८॥

९०. सीता—जानामि आर्यपुत्र, जानामि । किंतु सतापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति।
राम —एवमेतत्। एते हि हृदयमर्मच्छिद ससारभावा, येभ्यो बीभत्समाना सत्यज्य सर्वान्कामानरण्ये विश्राम्यन्ति मनीषिण ।

(प्रविश्य)

९१ कचुकी—रामभद्र, (इत्यर्धोक्ते साशकम्) 'महाराज,
राम —(सस्मितम्) आर्य, ननु रामभद्र इत्येव मा प्रत्युपचार शोभते तातपरिजनस्य, तत् यथाभ्यस्तमभिधीयताम्।

९२ कचुकी—देव, ऋष्यशृगाश्रमादष्टावक्र सप्राप्त ।
सीता—आर्य, तत किं विलम्ब्यते ?
राम.—त्वरित प्रवेशय।

(कचुकी निष्क्रान्त)

(प्रविश्य)

९३ अष्टावक्र—स्वस्ति वाम्।
राम —भगवन्, अभिवादये। इत आस्यताम्।

९४ सीता—भगवन्, नमस्ते। अपि कुशल सजामातृकस्य गुरुजनस्यार्याया शान्तायाश्च ?
राम —निर्विघ्न सोमपीथी भावुको मे भगवानृष्यशृग, आर्या च शान्ता ?

९५ सीता—अस्मानपि स्मरति ?
अष्टावक्र—(उपविश्य) अथ किम्। देवि, कुलगुरुर्भगवान्वसिष्ठस्त्वामिदमाह—
विश्वभरा भगवती भवतीमसूत,
राजा प्रजापतिसमो जनकः पिता ते।
तेपा वधूस्त्वमसि नन्दिनि, पार्थिवाना,

९० सीता—जानती हू, आर्यपुत्र, जानती हू। किन्तु वन्धुजनोका वियोग सताप दे रहा है।
राम—ऐसा ही है। संसारकी वस्तुयें हृदय मर्मको छेदनेवाली होती हैं, जिनसे ही डरकर मनीषी लोग सारे कामोको छोड़ वनमें विश्राम करते हैं।

(प्रवेश करके)

९१ कचुकी—रामभद्र, (वीचमें ही रुक कर भयके साथ) महाराज।
राम—(मुस्कुराते हुये) आर्य, मुझे 'रामभद्र' कहना ही वापूके परिजनोके लिये शोभता है, इसलिये जैसी आदत है, वैसे ही कहें।

९२ कचुकी—देव, शृंगी ऋषि के आश्रमसे अष्टावक्र आये है।
सीता—आर्य, तो क्यो देर करते हो?
राम—जल्दी ले आयें। (कचुकी वाहर चला गया)

(प्रवेश करके)

९३ अष्टावक्र—तुम दोनो की स्वस्ति।
राम—भगवन्, अभिवादन करता हू। यहा वैठिये।

९४ सीता—भगवन्, नमस्ते। जामाता-सहित गुरुजनोका, आर्या शान्ताका कुशल तो है?
राम—सोमयाजी मेरे जीजा भगवान् शृगी ऋषि और आर्या शान्ता निर्विघ्न तो है?

९५ सीता—हमें भी याद करते हैं?
अष्टावक्र—(वैठकर) और क्या। देवि, कुलगुरु भगवान् वसिष्ठने तुम्हारे लिये यह कहा है—
विश्वका भरण करनेवाली भगवती पृथिवीने तुम्हें जन्म दिया। ब्रह्मा तुल्य राजा जनक तुम्हारे पिता हैं। हे नंदिनि, उन राजाओंकी

येषा कुलेषु सविता च गुरुर्वय च ॥९॥
तत्किमन्यदाशास्महे, केवल वीरप्रसवा भूया. ।

९६ राम —अनुगृहीता स्म —
लौकिकाना हि साधूनामर्थ वागनुवर्तते ।
ऋषीणा पुनराद्याना वाचमर्थोऽनुवर्तते ॥१०॥

९७ अष्टावक्र —इद च भगवत्याऽरुन्धत्या देवीभि शान्तया च भूयो भूय सदिष्टम् "य कश्चिद् गर्भदोहृदोदयो भवत्यस्या सोऽवश्यमचिरान्मानयितव्य" इति ।
राम —क्रियते यद्येषा कथयति ।

९८ अष्टावक्र —ननान्दु पत्या च देव्या सदिष्टम्—"वत्से, कठोरगर्भेति नानीतासि । वत्सोऽपि रामभद्रस्त्वद्विनोदार्थमेव स्थापित । तत्पुत्रपूर्णोत्सगामायुष्मती द्रक्ष्याम" इति ।

राम —(सहर्षलज्जास्मितम्) तथास्तु । भगवता **वसिष्ठेन** न किंचिदादिष्टोऽस्मि ?

९९ अष्टावक्र —श्रूयताम्,—
जामातृयज्ञेन वय निरुद्धास्त्व बाल एवासि नव च राज्यम् ।
युक्त प्रजानामनुरजने स्यास्तस्माद्यशो यत्परम धन व ॥११॥

१०० राम —यथा समादिशति भगवान्**मैत्रावरुणिः** ।
स्नेह दया च सौख्य च यदि वा **जानकी**मपि ।
आराधनाय लोकस्य मुचतो नास्ति मे व्यथा ॥१२॥

१०१ सीता—अत एव राघवधुरधर आर्यपुत्र ।
राम —क कोऽत्र भो ? विश्राम्यतामष्टावक्र ।

१०२ अष्टावक्र —(उत्थाय परिक्रम्य च) अये, कुमारलक्ष्मण. प्राप्त । (इति निष्क्रान्त)

तुम उनकी वहू हो, जिनके कुलोंके सूर्य और हम गुरु हैं।
सो और क्या आशा करें, वस तुम वीरमाता होओ ॥९॥

९६ राम—(हम) अनुगृहीत हैं—
ससारी सत्पुरुषोकी वाणी अर्थके पीछे चलती है। किन्तु अर्थ, आदिम ऋषियोके वचनके पीछे चलते है॥१०॥

९७ अष्टावक्र—और भगवती अरुंधती, देवियो और शान्ताने वार-वार यह सन्देश दिया है "इनका जो कोई भी गर्भका दोहद उत्पन्न हो, उसे अवश्य और जल्दी पूरा करना।"
राम—किया जायेगा, यदि यह कहेगी।

९८ अष्टावक्र—नन्दोईने देवी सीता को सन्देश दिया है "वच्ची, पूर्णगर्भा होने से तुम्हें हम नही लाये। वच्चा रामभद्रको भी तुम्हारे मनवहलावके लिये ही वहा छोड दिया। सो (अव) पुत्रसे भरी गोदवाली आयुष्मतीको हम देखेंगे।"
राम—(हर्ष, लज्जा, मुस्कानके साथ) तथास्तु। भगवान् वसिष्ठने मुझे कुछ नही आदेश दिया?

९९ अष्टावक्र—सुनिये—
जमाईके यज्ञके कारण हम रोक लिये गये है, तुम वच्चे हो और नया राज्य है। प्रजाके अनुरजनमें तत्पर रहो, क्योकि यश ही तुम्हारा परम धन है॥११॥

१०० राम—जो आदेश देते हैं, भगवान् मित्रावरुण-पुत्र।
प्रेम, दया, सुख चाहे, जानकीको भी, लोगोकी सेवाके लिये छोडते मुझे दुःख नही है॥१२॥

१०१ सीता—अतएव आर्यपुत्र, रघुवंश-धुरधर हैं।
राम—कौन है हो यहा? अष्टावक्र विश्राम करें।

१०२ अष्टावक्र—(उठकर और परिक्रमा करके) अये, कुमार लक्ष्मण आ गये? (अष्टावक्र वाहर चले गये)।

(प्रविश्य)

१०३ लक्ष्मण—जयति जयत्यार्य। आर्य, अर्जुनेन चित्र-करेणास्मदुपदिष्टमार्यस्य चरितमस्या वीथ्यामभिलिखि-तम्। तत्पश्यत्वार्य।

१०४ राम—जानासि वत्स, दुर्मनायमाना देवी विनोदयितुम्। तत्कियानवधि ?
लक्ष्मण—यावदार्याया हुताशनशुद्धि।

१०५ राम—शान्त पापम्। (ससान्त्ववचनम्)—
उत्पत्तिपरिपूताया किमस्या पावनान्तरै ?
तीर्थोदक च वह्निश्च नान्यत शुद्धिमर्हत ॥१३॥
देवि देवयजनसभवे[1] प्रसीद। एष ते जीविताविधि प्रवाद —
क्लिष्टो जन किल जनैरनुरजनीयस्,
तन्नो यदुक्तमशुभ च न तत्क्षम ते।
नैसर्गिकी सुरभिण कुसुमस्य सिद्धा,
मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि ॥१४॥

१०६. सीता—भवत्वार्यपुत्र, भवतु। एहि, प्रेक्षामहे तावत्ते चरितम्।
लक्ष्मण—इद तदालेख्यम्।

१०७. सीता—क एते उपरिनिरन्तरस्थिता उपस्तुवन्तीवार्य-पुत्रम् ?
लक्ष्मण—देवि, एतानि तानि सरहस्यानि जृम्भका-स्त्राणि, यानि भगवतो भृशाश्वात्कौशिकमुपसक्रान्तानि। तेन च ताटकावधे प्रसादीकृतान्यार्यस्य।

१०८. राम—वन्दस्व देवि, दिव्यास्त्राणि—
ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय तप्त्वा पर सहस्र शरदा तपासि।

(प्रवेश करके)

१०३ लक्ष्मण—आर्यकी जय-जय। आर्य, अर्जुन चित्रकारने हमारे वतलाये आर्यके चरितको इस गैलरीमें चित्रित किया है। आर्य उसे देखें।

१०४ राम—वत्स, तुम उदास देवीका मन वहलाव करना जानते हो। तो कवसे लेकर कहा तक?
लक्ष्मण—जव तक कि आर्याकी अग्नि द्वारा शुद्धि हुई।

१०५ राम—शान्तं पापम्। (सान्त्वनाके वचनके साथ)—
जन्म से ही अति पवित्र इसके लिये दूसरी शुद्धियोसे क्या (लेना)?
तीर्थका जल और अग्नि दूसरेमे शुद्ध नही हुआ करते ॥१३॥
देव-यज्ञमें उत्पन्न देवि, कृपा करो, यह जीवन भरके लिये तुम्हारे सवध की अफवाह है।
क्लेश पाये जनका लोगो अनुनीय है, सो जो हमारे लिये बुरा कहा गया, वह तेरे लिये उचित नही है। सुगंवित फूलकी स्वाभाविक वात है सिरपर चढना, न कि चरणोसे ताडित होना ॥१४॥

१०६ सीता—अच्छा आर्यपुत्र, अच्छा। आओ, हम तुम्हारे चरितको देखें।
लक्ष्मण—यह है वह चित्र।

१०७ सीता—कौन हैं, यह ऊपर पास-पास खड़े आर्यपुत्र की स्तुति कर रहे?
लक्ष्मण—देवि, यह वे रहस्य-सहित जृम्भक (रोकनेवाले) अस्त्र हैं, जो भगवान् भृशाश्वसे कौशिक (विश्वामित्र) के पास आये और (जिन्हें) उन्होने ताटकाके ववके समय आर्यको भेंट किया।

१०८ राम—देवि, वंदना करो, दिव्य अस्त्रोंको—
व्रह्मा आदि पुराने गुरुजनोने हजारोंसे अधिक वर्षों तक तप

एतान्यदर्शन्गुरव पुराणा स्वान्येव तेजासि तपोमयानि
॥१५॥

सीता—नम एतेभ्य ।

१०९ राम—सर्वथेदानी त्वत्प्रसूतिमुपस्थास्यन्ति ।
सीता—अनुगृहीतास्मि ।
लक्ष्मण—एष **मिथिलावृत्तान्त** ।

११० सीता—अहो, दलन्नवनीनीलोत्पलश्यामलस्निग्धमसृण-शोभमानमासलदेहसौभाग्येन विस्मयस्तिमिततातदृश्य-मानसौम्यसुन्दरश्रीरनादरत्रुटितशकरशरासन शिखण्ड मुग्धमुखमण्डल आर्यपुत्र आलिखित ।
लक्ष्मण—आर्ये, पश्य पश्य,—
सबन्धिनो वसिष्ठादीनेष तातस्तवार्चति ।
गौतमश्च **शतानन्दो** जनकाना पुरोहित ॥१६॥

१११. राम—सुश्लिष्टमेतत्—
जनकाना रघूणा च सबन्ध कस्य न प्रिय ?
यत्र दाता ग्रहीता च स्वय **कुशिकनन्दनः**॥१७॥
सीता—एते खलु तत्कालकृतगोदानमगलाश्चत्वारो भ्रातर विवाहदीक्षिता यूयम्। अहो जानामि, तस्मिन्नेव प्रदेशे तस्मिन्नेव काले वत ।

११२ राम—

समय स वर्तत इवैष यत्र मा,
समनन्दयत्सुमुखि, गौतमार्पित ।
अयमागृहीतकमनीयककणस्,
तव मूर्तिमानिव महोत्सव कर ॥१८॥

११३ लक्ष्मण—इयमार्या । इयमप्यार्या माण्डवी । इयमपि वधू श्रुतकीर्ति ।
सीता—वत्स, इयमप्यपरा का ?

करके ब्रह्मके हितार्थ अपने ही तपोमय तेजोको इनके रूपमें देखा ॥१५॥

सीता—इनको नमस्कार।

१०९ राम—अब यह पूरी तौरसे तेरी सन्तान के पास जायेंगे।

सीता—अनुगृहीता हू।

लक्ष्मण—यह **मिथिलाका** वृत्तान्त है।

११०. सीता—अहो, दलित नवीन नीलकमल से श्यामल, स्निग्ध चिक्कन शोभते, मासल देहके सौंदर्यसे विस्मययुक्त निश्चल हो, तात द्वारा देखे जाते सौम्य सुन्दर शोभावाले, अप्रयास शकरके शर धनुप तोडने वाले शिखड-युक्त मुग्ध मुखमडलवाले आर्यपुत्र (यहा) चित्रित किये गये हैं।

लक्ष्मण—आर्ये, देखो-देखो—

वसिष्ठ आदि सम्बन्धियोको यह तुम्हारे बापू और जनकोके पुरोहित गौतम शतानंद पूज रहे हैं ॥१६॥

१११ राम—यह बिल्कुल ठीक है—

जनकों और रघुओंका सम्बन्ध किसको न प्रिय होता ? जहा दाता और आदाता स्वयं **कुशिकनंदन** थे ॥१७॥

सीता—यह तुरन्त गोदान मगल कर चुके चारो भाई हैं। तुम विवाह-दीक्षा लिये हुए थे। अहो, जानती हू, उसी प्रदेश में, उसी कालमें, ओह।

११२ राम—

हे सुमुखि, यह मानो वही समय वर्तमान है, **गौतम** द्वारा अर्पित कमनीय ककण धारण किये तेरे करने जब कि मुझे मूर्तिमान् महोत्सवकी तरह खूब आनदित किया ॥१८॥

११३ लक्ष्मण—ये आर्या हैं, यह भी आर्या **मांडवी** है, यह भी वहू **श्रुत-कीर्ति** है।

सीता—वत्स, और यह कौन है?

११४ लक्ष्मण —(सलज्जास्मितम् अपवार्य) अये, उर्मिलां पृच्छत्यार्या। भवतु, अन्यत सचारयामि। (प्रकाशम्) आर्ये, दृश्यता, द्रष्टव्यमेतत्। अय च भगवान् भार्गव ।

सीता—(ससभ्रमम्) कम्पितास्मि।

राम —ऋषे, नमस्ते।

११५ लक्ष्मण —आर्ये, पश्य । अयमार्येण (इत्यर्धोक्त) —

राम —(साक्षेपम्) अयि, बहुतर द्रष्टव्यम्। अन्यतो दर्शय।

सीता—(सस्नेहबहुमान निर्वर्ण्य) सुष्ठु शोभसे आर्यपुत्र, एतेन विनयमाहात्म्येन

११६ लक्ष्मण —एते वयमयोध्यां प्राप्ता ।

राम —(सास्रम्) स्मरामि हन्त स्मरामि।
जीवत्सु तातपादेषु नूतने दारसग्रहे।
भ्रातृभिश्चिन्त्यमानाना ते हिनो दिवसा गताः ॥१९॥

११७ इयमपि तदा जानकी—

पतनविरलै प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुड्मलैर्,
दशनकुसुमैर्मुग्धालोक शिशुर्दधती मुखम्।
ललितललितैर्ज्योत्स्नाप्रायैरकृत्रिमविभ्रमैर्,
अकृत मधुरैरगाना मे कुतूहलमगकै ॥२०॥

११८ लक्ष्मण —एप मन्थरावृत्तान्त.।

राम —(सत्वरमन्यतो दर्शयन्) देवि, वैदेहि,
इगुदीपादप सोऽय शृगवेरपुरे पुरा।
निपादपतिना यत्र स्निग्धेनासीत्समागम ॥२१॥

११९ लक्ष्मण —(विहस्य, स्वगतम्) अये, मध्यमाम्बावृत्तान्तमन्तरितमार्येण।

सीता—अहो, एप जटासयमनवृत्तान्त ।

११४ लक्ष्मण—(लज्जा-मुस्कानके साथ एकान्तमें) अये, आर्या **उर्मिला** के बारे में पूछ रही है। अच्छा, दूसरी ओर फिरता हू (प्रकट) आर्ये, देखिये, यह देखने लायक है। और यह भगवान् **भार्गव** (परशुराम) है।

सीता—(डरकर) मै काप रही हूँ।

राम—हे ऋषि, नमस्ते।

११५ लक्ष्मण—आर्ये, देखो। यह आर्यने (आधा ही कहकर)

राम—(आक्षेपके साथ) अरे, बहुत देखना है। दूसरी ओर दिखाओ।

सीता—(स्नेह और सम्मान के साथ देखकर) आर्यपुत्र, इस अति विनम्रतासे (तुम) खूब शोभते हो।

११६ लक्ष्मण—यह हम **अयोध्या** आ गये।

राम—(करुणाके साथ) याद है, याद है।

बापूके जीते रहते नवीन विवाहके समय,
भाइयोंके स्नेहवाले वे हमारे दिन चले गये ॥१९॥

११७ उस समय इसी **जानकी** ने—

छोरपर खिलते मनोहर गिरनेसे विरल कलियो जैसे दातरूपी फूलोंसे प्रकाशमान मुग्धमुख धारण करती, अतिललित बहुत चमकते अकृत्रिम सुन्दर मधुर (अपने) अगोंसे मेरे अगोको कुतूहलित किया ॥२०॥

११८ लक्ष्मण—यह **मंथरा**का वृत्तान्त है।

राम—(जल्दीसे दूसरी ओर दिखलाते) देवी **वैदेहि**—

शृंगवेरपुरमे यह वह इगुदीका वृक्ष है। जहा स्नेही निषाद-पति के साथ (हमारा) प्रथम समागम हुआ था ॥२१॥

११९ लक्ष्मण—(विहँसकर अपने आपमे) अये, मझली अम्मा (कैकेयी) के वृत्तान्तको छोड गये आर्य!

सीता—अहो, यह जटा बाधनेका वृत्तान्त है।

१२० लक्ष्मण —

पुत्रसक्रान्तलक्ष्मीकैर्यद् वृद्धेक्ष्वाकुभिर्धृतम्।
धृत बाल्ये तदार्येण पुण्यमारण्यकव्रतम् ॥२२॥

सीता—एषा प्रसन्नपुण्यसलिला भगवती **भागीरथी**।

१२१. राम —रघुकुलदेवते, नमस्ते—

तुरगविचयव्यग्रानुर्वीभिद सगराध्वरे,
कपिलमहसा रोषात्प्लुष्टान्पितुश्च पितामहान्।
अगणिततनूतापस्तप्त्वा तपासि भगीरथो,
भगवति, तव स्पृष्टानद्भिश्चिरादुदतीतरत् ॥२३॥

सा त्वमम्ब, स्नुषायामरुन्धतीव सीतायाशिवा नुध्याना भव।

१२२ लक्ष्मण —एष भरद्वाजावेदितश्चित्रकूटयायिनि वर्त्मनि वनस्पति **कालिन्दी**तटे वट श्यामो नाम।

(राम सस्पृहमवलोकयति)

सीता—स्मरति वा त प्रदेशमार्यपुत्र ?

१२३ राम —अयि, कथ विस्मर्यते ?

अलसललितमुग्धान्यध्वसपातखेदाद्,
अशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसवाहनानि।
परिमृदितमृणालीदुर्बलान्यगकानि,
त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवाप्ता ॥२४॥

लक्ष्मण —एष **विन्ध्याटवी**मुखे **विराध**सवाद।

१२४ सीता—अल तावदेतेन। पश्यामि तावदार्यपुत्रस्वहस्तधृततालवृन्तातपत्रमात्मनोऽत्याहित **दक्षिणारण्य**पथिकत्वम्।

१२५ राम —

एतानि तानि गिरिनिर्झरिणीतटेपु,
वैखानसाश्रिततरूणि तपोवनानि।

१२० लक्ष्मण—

पुत्रमें (राज-) लक्ष्मीको स्थानातरित कर वृद्ध **इक्ष्वाकु** जो व्रत धारण किया करते, उस आरण्यक व्रतको आर्यने वचपन ही में धारण किया ।।२२।।

सीता—यह स्वच्छ, पवित्र जलवाली भगवती **भागीरथी** हैं।

१२१. राम—रघुकुलकी देवता, नमस्ते—

सगरके यज्ञमें घोडेके ढूढनेमें व्यग्र पृथिवी खोद, **कपिल**के तेजरूपी रोपसे जले, पिता और पितामहोका उद्धार, अगनित शरीरतापवाली तपस्याओको करके भगीरथने, हे भगवति, तेरे जलसे छुआ कर किया ।।२३।।

सो अम्मा, तू अपनी पुत्रवधू सीताको **अरुंधती**मी मगलकाक्षिणी हो

१२२ लक्ष्मण—यह **भरद्वाज** के वतलाये चित्रकूटके मार्गपर **जमुना**के किनारे **श्याम** नामक वर्गदका वृक्ष है।

(राम लालसाके साथ देखते हैं)

सीता—आर्यपुत्र, को वह स्थान याद है ?

१२३ राम—अयि, कैसे भूला जा सकता है? मसली मृणालने दुर्बल अगको,मार्गके चलनेके खेदसे अलस,ललित मुग्ध हो जोर के आलिगनो द्वारा दवा कर जहा मेरे वक्षपर रखकर तू सोई ।।२४।।

लक्ष्मण—यह **विन्ध्या**के वनमें प्रवेश होते समय **विराध**की वार्ता है।

१२४ सीता—इसे रहने दो। आर्यपुत्रको अपने हाथमें तालके पत्तेका छत्ता पकडे दक्षिणारण्यकी अति-जहिन मुसाफिरीको देखती हू।

१२५ राम—

पर्वतीय नदियोंके तटोपर ये हैं, वे मुनियोके रहनेके वृक्षोवाले तपोवन।

येष्वातिथेयपरमा यमिनो भजन्ते,
नीवारमुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि ॥२५॥

१२६ लक्ष्मण —अयमविरलानोकहनिवहनिरन्तरस्निग्धनीलपरिसरारण्यपरिणद्धगोदावरीमुखकन्दर सततमभिष्यन्दमानमेघमेदुरितनीलिमो जनस्थानमध्यगो गिरि प्रस्रवणो नाम।

१२७ राम —

स्मरसि सुतनु, तस्मिन्पर्वते लक्ष्मणेन,
प्रतिविहितसपर्यासुस्थयोस्तान्यहानि।
स्मरसि सरसनीरा तत्र **गोदावरीं** वा
स्मरसि च तदुपान्तेष्वावयोर्वर्तनानि ? ॥२६॥

१२८ किं च,—

किमपि किमपि मन्द मन्दमासक्तियोगाद्,
अविरलितकपोल जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णोर्,
अविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरसीत् ॥२७॥

लक्ष्मण —एष **पंचवट्यां** शूर्पणखाविवाद ।

१२९ सीता—हा आर्यपुत्र, एतावत्ते दर्शनम्।
राम —अयि वियोगत्रस्ते, चित्रमेतत्।

१३० सीता—यथा तथा भवतु। दुर्जनोऽसुखमुत्पादयति।
राम —हन्त, वर्तमान इव मे **जनस्थान**वृत्तान्त प्रतिभाति।

१३१ लक्ष्मण —

अथेद रक्षोभि कनकहरिणच्छद्मविधिना,
तथा वृत्त पापैर्व्यथयति यथा क्षालितमपि।
जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितैर्,
अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ॥२८॥

जहा अतिथि-सेवा-परायण सयमी, मुट्ठी भर तिन्नी पकानेवाले गृहस्थ गृहोमे रहते हैं ॥२५॥

१२६ लक्ष्मण—यह है घने वृक्षोकी लगातार स्निग्ध नील किनारेवाली वनसे वर्षी **गोदावरी** के मुखकी कदरा वाला, निरन्तर वहते फैलते मेघछाया युक्त नीलिमावाला, **जनस्थान**के मध्यमें अवस्थित **प्रस्रवण** नाम गिरि।

१२७ राम—

हे सुतनु, उस पर्वतमें **लक्ष्मण** की सेवासे भले, वे भले दिन, सरस जलवाली वहा की **गोदावरी** याद है? याद है उसके किनारे हमारे वर्ताव तुझे?

१२८ और भी—

आसक्तिके साथ सटे कपोल, विना क्रमके कुछ-कुछ धीरे-धीरे हम दोनोके वात करते, गाढ-आलिगनमें एक-एक वाहु लगे, पहर वीते विना रात ही जाने समाप्त हो गई ॥२७॥

लक्ष्मण—यह **पंचवटी**में **शूर्पणखा**के साथ का झगडा है।

१२९ सीता—हा आर्यपुत्र, इतना ही तक तुम्हारा दर्शन वदा है।

राम—अयि, वियोग-भीरु, यह (तो) चित्र है।

१३०. सीता—जो भी हो। दुर्जन असुख पैदा करता है।

राम—हन्त, **जनस्थान**का वृत्तान्त मुझे वर्तमान जैसा जान पडता है।

१३१ लक्ष्मण—

अव यह सोनेके हरिनके छलमें पापी राक्षसोने वह किया, जो कि प्रतिशोध ले लेने पर भी दुखी करता है। शून्य जनस्थानमें विह्वल-प्राण आर्यकी चेष्टाओको देख, पत्थर भी रोता था, वज्रका हृदय भी मसला जाता था ॥२८॥

१३२ सीता—(सास्रमात्मगतम्) अहो, दिनकरकुलानन्दन एव-
मपि मम कारणात् क्लान्त आसीत्।

१३३ लक्ष्मण —(राम निर्वर्ण्य साकूतम्) आर्य, किमेतत् ?—
अय तावद्बाष्पस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरो,
विसर्पन्धाराभिर्लुठति धरणी जर्जरकण ।
निरुद्धोऽप्यावेग स्फुरदधरनासापुटतया,
परेषामुन्नेयो भवति चिरमाध्मातहृदय ॥२९॥

१३४. राम —वत्स—

तत्कालप्रियजनविप्रयोगजन्मा,
तीव्रोऽपि प्रतिकृतिवाञ्छया विसोढ ।
दु खाग्निर्मनसि पुनर्विपच्यमानो,
हृन्मर्मव्रण इव वेदना तनोति ॥३०॥

१३५ सीता—हा धिक् हा धिक्, अहमप्यतिभूमि गतेन रण-
रणकेनार्यपुत्रशून्यमिवात्मान पश्यामि ।

१३६ लक्ष्मण —(स्वगतम्) भवतु, आक्षिपामि । (चित्र
विलोक्य प्रकाशम्) अथैतन्मन्वन्तरपुराणस्य तत्र-
भवतस्तात**जटायु**षश्चरित्रविक्रमोदाहरणम् ।
सीता—हा तात , निर्व्यूढस्तेऽपत्यस्नेह ।

१३७ राम —हा तात काश्यप शकुन्तराज, क्व नु खलु पुन-
स्त्वादृशस्य महतस्तीर्थभूतस्य साधो सभव. ?

१३८ लक्ष्मण —अयमसौ जनस्थानस्य पश्चिमत **कुंजवा**-
न्नाम पर्वतो दनुकवन्धाधिष्ठितो दण्डकारण्यभाग ।
तदिदममुष्य परिसर **मातंगाश्रम** पदम्। तत्र **श्रमणी** नाम
सिद्धा शवरतापसी । तदेतत्**पम्पा**भिधानं पदमसर ।
सीता—यत्र किलार्यपुत्रेण विच्छिन्नामर्षधीरत्व प्रमुक्त-
कण्ठ प्ररुदिनमासीत् ।

१३२ सीता—(खेद सहित अपने आपसे) अहो, सूर्यवंशके आनद दायक मेरे कारण इतने दुखी हुये थे।

१३३. लक्ष्मण—(रामको देखकर चकित हो) आर्य, यह क्या—यह टूटा हुआ आसू मुक्ता-मणि की मालाकी तरह, धाराओंमें वहता जर्जर विन्दु हो धरतीपर लुढक रहा है। फर्फराते ओठो और नथुनोंसे आवेग भी रुध गया है। देरसे धौंकते हृदयवालेका दूसरे भी कठिनाईसे अनुमान कर सकते हैं।।२९।।

१३४ राम—वत्स--

उस समय प्रियजनके वियोगसे उत्पन्न तीव्र दुखकी अग्नि फिरसे मनमें जलती हृदयके मर्ममें घावकी तरह वेदना पैदा करती चित्रके ख्यालसे सही गई।।३०।।

१३५ सीता—हा धिक्, मै भी असीम उत्सुकतासे अपनेको आर्यपुत्रसे रहित जान रही हू।

१३६ लक्ष्मण—(अपने आपसे) अच्छा याद भुलवाता हूँ। (चित्रको देखकर प्रकट) सो यह युगोके बूढे **जटायुजी**के चरित्र और पराक्रमका दृष्टान्त।

सीता—हा बापू, सतानके स्नेहका निर्वाह तुमने किया।

१३७ राम—हा तात, काश्यप पक्षिराज, तुम्हारे जैसे महान् तीर्थ समान साधु कहा हो सकते है?

१३८ लक्ष्मण—यह वह जनस्थानके पश्चिमवाला **कुजवान्** नामक पर्वत दैत्य-निवास, दडकारण्यका एक भाग है। इसके पास **मातंग** ऋषिका आश्रम है। वहा **श्रवणी** नामकी सिद्ध शवर तपस्विनी है। सो यह **पंपा** नामक कमलोका सरोवर है।

सीता—जहा कि आर्यपुत्र अपनी धीरता-गम्भीरता छोडकर खुले कठसे रोये थे।

राम —देवि , पर रमणीयमेतत्सर —

एतस्मिन्मदकलमल्लिकाक्षपक्ष -
व्याधूतस्फुरदुरुदण्डपुण्डरीका ।
बाष्पाम्भ परिपतनोद्गमान्तराले,
सदृष्टा कुवलयिनो मया विभागा ॥३१॥

१३९ लक्ष्मण —अयमार्यो हनूमान् ।
सीता—एष स चिरनिर्व्यूढजीवलोकप्रत्युद्धरणगुरूप-कारी महानुभावो **मारुतिः** ।

१४० राम —

दिष्ट्या सोऽय महाबाहुरजनानन्दवर्धन ।
यस्य वीर्येण कृतिनो वय च भुवनानि च ॥३२॥

१४१ सीता—वत्स, एष स कुसुमितकदम्बकतरुताण्डवित-वर्हिण किंनामधेयो गिरि यत्रानुभावसौभाग्यमात्रपरि-शेपसुन्दरश्रीर्मूर्च्छस्त्वया प्ररुदितेनावलम्बितस्तरुतल आर्यपुत्र आलिखित ?

१४२ लक्ष्मण —

सोऽय शैल ककुभसुरभि**र्माल्यवान्नाम** यस्मिन्,
नील स्निग्ध श्रयति शिखर नूतनस्तोयवाह ॥
आर्येणास्मिन्—

१४३. राम —

विरमविरमात पर न क्षमोऽस्मि,
प्रत्यावृत्त स पुनरिव मे जानकीविप्रयोग ॥३३॥

१४४ लक्ष्मण —अत परमार्यस्य तत्रभवता कपिराक्षसानां चापरिसख्यान्युत्तरोत्तराणि कर्माश्चर्याणि । परिश्रान्ता चेयमार्या, तद्विज्ञापयामि विश्राम्यतामिति ।
सीता—आर्यपुत्र, एतेन चित्रदर्शनेन प्रत्युत्पन्नदोह-दाया मम विज्ञापनीयमस्ति ।

१३९ राम—देवि, यह सरोवर अत्यत रमणीय है,

इसमें मस्त सुन्दर हसोके पक्षोद्वारा कपित हिलते वडी नालके कमलो, उत्तम कुवलयवाले भागोको, मैंने आसूके गिरने और उठनेके वीचके समयमें देखा था ॥३१॥

१४० लक्ष्मण—यह आर्य **हनूमान्** है।

सीता—यह वह चिरकालसे जीवलोकके उद्धारक महान् उपकारी महानुभाव **मारुति** हैं।

१४१ राम—

धन्य, अजनाके आनदवर्द्धक यही वह महावाहु हैं, जिनके पराक्रमसे हम और ससार उपकृत है ॥३२॥

१४२ सीता—वत्स, यह वह फूले कदम्ब वृक्षपर नाचते मोरोवाला किस नामवाला पर्वत है, जहा प्रभाव और सौभाग्य मात्र वच रहे सुन्दर सुशोभन वृक्षका अवलम्ब लिये मूर्छा खाते रोते हुये आर्यपुत्र तुम्हारे साथ चित्रित है?

१४३ लक्ष्मण—

सो यह दिशाओमें सुगन्ध फैलाता **माल्यवान्** नामक पर्वत है, जहा चिकना नीला अभिनव मेघ शिखरका आश्रय ले रहा है।

यहा आर्यने—

ठहरो-ठहरो, इनके आगे मैं नही सह सकता। मेरे लिये जानकीका वह वियोग फिर लौट सा आया ॥३३॥

१४४ लक्ष्मण—इसके वाद आर्यके और वानर-राक्षस महानुभावोके एकके वाद एक अनल्प अद्भुत कर्म है। आर्या थक गईं, सो अर्ज करता हू, विश्राम करें।

सीता—आर्यपुत्र, इस चित्रके दर्शनसे उत्पन्न हुये दोहदके वारेमें मुझे कुछ अर्ज करना है।

१४५ राम —नन्वाज्ञापय ।
सीता—जाने पुनरपि प्रसन्नगम्भीरासु वनराजिषु विहृत्य पवित्रनिर्मलशिशिरसलिला भगवती **भागीरथीं** अवगाहिष्ये इति।

१४६ राम —वत्स लक्ष्मण ।
लक्ष्मण —एषोऽस्मि ।

१४७ राम —वत्स, अचिरादेव सपादनीयो दोहद इति सप्रत्येव गुरुभि सदिष्टम्। तदस्खलितसपात रथमुपस्थापय ।
सीता—आर्यपुत्र, युष्माभिरप्यागन्तव्यम् ।

१४८ राम —अतिकठिनहृदये, एतदपि वक्तव्यम् ?
सीता—तेन हि प्रिय मे प्रिय मे ।

१४९ लक्ष्मण —यदाज्ञापयत्यार्य । (इति निष्क्रान्त)
राम —प्रिये, वातायनोपकण्ठे सविष्टा भव ।

१५० सीता—एव भवतु । अपहृतास्मि खलु परिश्रमनिद्रया ।

१५१ राम —तेन हि निरन्तरमवलम्बस्व मामनुगमनाय—
जीवयन्निव ससाध्वसश्रमस्वेदविन्दुरधिकण्ठमर्प्यताम् ।
वाहुरैन्दवमयूखचुम्बितस्यन्दिचन्द्रमणिहारविभ्रम ॥३४॥
(तथा कारयन् सानन्दम्) प्रिये, किमेतत् ?—

१५२ विनिश्चेतु शक्यो न सुखमिति वा दु खमिति वा,
प्रमोहो निद्रा वा किमु विपविसर्प किमु मद ।
तव स्पर्शं स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो,
विकारश्चैतन्य भ्रमयति च समीलयति च ॥३५॥

१५३ सीता—थीरप्रसादा यूयमित्यत्रेदानीमाश्चर्यम् ।

१५४ राम —

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि,

१४५ राम—तो आज्ञा दो।

सीता—मन करता है, पुन स्वच्छ गम्भीर वनोमें विहार करके पवित्र निर्मल शीतल जलवाली भगवती **भागीरथीका** अवगाहन करू।

१४६ राम—वत्स लक्ष्मण,

लक्ष्मण—यह हू।

१४७ राम—वत्स, "जल्दी ही दोहद को पूरा करना", यह सन्देश अभी अभी गुरुजनोने भेजा है। सो विना देर किये रथको तैयार करो।

सीता—आर्यपुत्र, तुम्हें भी आना होगा।

१४८ राम—हे अतिकठोरहृदये, यह भी क्या कहनेको है?

सीता—तो अच्छा, मेरे लिये अच्छा।

१४९ लक्ष्मण—जो आर्य आज्ञा देते हैं। (वाहर चले गये)

राम—प्रिये, जगलेके पास बैठी हो जा।

१५० सीता—एवमस्तु, थकावट की निद्रा मुझे खीच ले गई।

१५१ राम—तो तेरे अनुगमन के लिये वरावर मेरा महारा है (इसे)ले। चन्द्रमाकी किरणो से चुवित जल वहाती चन्द्रमणि के हार जैसे सुन्दर भयके साथ पसीनेकी वूदोवाली, अपनी वाहुको जीवन देती सी मेरे कठ में डालो॥३४॥

(वैसा करते आनन्द के साथ) प्रिये, यह क्या?

१५२ नही निश्चय कर पाता सुख है या दुख, मूर्छा या निद्रा, विप फैल रहा है या नशा। तेरे एक-एक स्पर्श ने मेरी इन्द्रियां मुग्ध हो गई। मनका विचार चेतना को घुमाता ढक रहा है॥३५॥

१५३ सीता—तुम थीर प्रसन्नप्रकृति हो(सो) इस समय यह आश्चर्य है

१५४ राम—

मुरझाये जीवन रूपी पुष्पके खिलाने, सतृप्त करनेवाले, सारी इन्द्रि-

सतर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि।
एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि,
कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि॥३६॥
सीता—प्रियवद, एहि, सविशाव ।

१५५ राम —अपि सदेष्टव्यम्—
आ विवाहसमयाद् गृहे वने,
शैशवे तदनु यौवने पुन ।
स्वापहेतुरनुपाश्रितोऽन्यया,
रामबाहुरुपधानमेष ते ॥३७॥

१५६ सीता—(निद्रा नाटयन्ती) अस्त्येतत्, आर्यपुत्र, अस्त्येतत् ।

१५७. राम —कथ प्रियवचनेनैव मे वक्षसि प्रसुप्ता,
(निर्वर्ण्य)—
इय गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयोर्,
असावस्या स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरस ।
अय बाहु कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसर,
किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरह ॥३८॥

(प्रविश्य)

१५८ प्रतीहारी—देव, उपस्थित ।
राम —अयि, क ?
प्रतीहारी—आसन्नपरिचारको देवस्य दुर्मुखः।

१५९ राम —(स्वगतम्) शुद्धान्तचारी दुर्मुख, स मया पौरजानपदेष्वपसर्प प्रहित । (प्रकाशम्) आगच्छतु ।

(प्रतिहारी निष्क्रान्ता)

योको मोहित करने वाले, यह तेरे सुवचन, हे कमलाक्षि कानोंके लिये अमृत और मन के लिये रसायन हैं ॥३६॥

सीता—प्रियभार्षी, आओ बैठें।

१५५ राम—(इसे) क्या कहना होगा—

विवाह के समय से लेकर घर मे और वन में, शैशवमें, उसके बाद फिर यौवन में, सोने के लिए जिस (के बिना) दूसरेने अवलवित नही किया, वह राम का (यह) बाहु तेरा तकिया मौजूद है ॥३७॥

१५६ सीता—(निद्रा का अभिनय करती है) यह ऐसा ही है, आर्यपुत्र, यह ऐसा ही है।

१५७ राम—अरे, प्रिय वचन बोलते ही मेरे वक्ष पर सो गई ? (निहार कर) घर के लिये यह लक्ष्मी, दोनो आखो के लिये अमृत शलाका इसका यह स्पर्श शरीर के लिये बहुत चदन रस है और यह बाहू कठ में चिकनी मोती की माला है। इसका क्या अत्यन्त प्रिय नही है, पर विरह अत्यन्त असह्य है ॥३८॥

(प्रवेश करके)

१५८ प्रतीहारी—देव आ गया।

राम—अरे कौन ?

प्रतीहारी—देवका घनिष्ट सेवक दुर्मुख।

१५९ राम—(अपने आप से) अन्त पुर में (सर्वत्र) चल-फिर सकने वाला दुर्मुख उसे मैंने नगर और देहात के लोगो में गुप्तचर बनाकर भेजा था। (प्रकट) आवे।

(प्रतीहारी चली गई)

(३) **सीता परित्याग.**—

(प्रविश्य)

१६० दुर्मुख —(स्वगतम्) हा, कथमिदानी देवीमन्तरेणेदृश-मचिन्तनीय जनापवाद देवस्य कथयिष्यामि ? अथवा नियोग खलु मम मन्दभागधेयस्यैष ।

सीता—(उत्स्वप्नायते) आर्यपुत्र , कुत्रासि ?

१६१. राम —सेयमेव रणरणकदायिनी चित्रदर्शनाद्विरहभावना देव्या स्वप्नोद्योग करोति । (सस्नेहमगमस्या परामृ-शन्)—

अद्वैत सुखदु खयोरनुगत सर्वास्ववस्थासु यद्,
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रस ।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्प्रेमसारे स्थित,
भद्र तस्य सुमानुषस्य कथमप्येक हि तत्प्रार्थ्यते ।।३९।।

१६२. दुर्मुख —(उपसृत्य) जयतु देव ।

राम —ब्रूहि, यदुपलब्धम् ।

१६३ दुर्मुख —उपस्तुवन्ति देव पौरजानपदा यथा 'विस्मारिता वय महाराज दशरथ रामदेवेने' ति ।

राम —अर्थवाद एवैप । दोप तु मे कथचित्कथय येन स प्रतिविधीयते ।

१६४ दुर्मुख —(सास्रम्) शृणोतु महाराज । (कर्णे) एव-मिव ।

राम —अहह, अतितीव्रोऽय वाग्वज्र । (इति मूर्च्छति)

१६५ दुर्मुख —आश्वसितु देव ।

३. सीताका परित्याग

(प्रवेश करके)

१६० दुर्मुख—(अपने आपसे) हा, कैसे अब देवीके सवन्ध में ऐमी न सोचने की भी जन-निंदाको देवसे कहूगा ? अथवा मुझ अभागे का यह कर्तव्य जो है।

मीता—(सपना रही है) आर्यपुत्र, कहा हो ?

१६१ राम—सो यह चित्रके देखने से उत्सुकता पैदा करने वाली विरह-भावना देवीको स्वप्न दिखा रही है। स्नेहके साथ उसके अगको छूते हुए—

सुख और दु ख में, सारी अवस्थाओ में भी जो एक सा रहा, जहा हृदय को विश्राम, जिसमें जरासा भी न छीने जाने वाला रस है, व्याह से लेकर ममय पा जो परिपक्व प्रेम सार(के रूप) में स्थित है, उस दाम्पत्य का भद्र हो, जैसे भी वह एक अभिलपित (वस्तु)है ॥३६॥

१६२ दुर्मुख—(पास आकर) जय देव ।

राम—वतला, जो पता पाया।

१६३ दुर्मुख—नगर-ग्राम के लोग देवकी तारीफ करते है, राम देव ने हमें महाराज दशरथ को भुलावा दिया।

राम—यह यो ही वात है। दोप तो मुझे कोई वतला, जिसमें उसका प्रतीकार किया जाय।

१६४ दुर्मुख—(खेदके साथ) सुनें महाराज कानमें ऐमा-ऐसा ।

राम—अहह, अति तीव्र है यह वार्णी रूपी वज्र (मुर्छित होते है)

१६५ दुर्मुख—देव धैर्य धरे।

१६६ राम —(आश्वस्य)—

हा हा धिक्परगृहवासदूषणं यद्,
वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः ।
एतत्तत्पुनरपि दैवदुर्विपाकाद्,
आलर्कं विषमिव सर्वतः प्रसक्तम् ॥४०॥

१६७ तत्किमद्य मन्दभाग्यः करोमि ? (विमृश्य, सकरुणम्)
अथवा किमेतत् ?—

सतां केनापि कार्येण लोकस्याराधनं परम् ।
तत्प्रतीतं हि तातेन मां च प्राणांश्च मुञ्चता ॥४१॥

१६८ सम्प्रत्येव च भगवता **वसिष्ठेन** संदिष्टम् । अपि च,—

यत्सावित्रैर्दीपितं भूमिपालैर्-
लोकश्रेष्ठैः साधु चित्रं चरित्रम् ।
मत्संबन्धात्कश्मला किंवदन्ती,
स्याच्चेदस्मिन्हन्त धिङ्मामधन्यम् ॥४२॥

१६९ हा देवि देवयजनसंभवे ! हा स्वजन्मानुग्रहपवित्रित-वसुन्धरे ! हा मुनिजनकनन्दिनि ! हा पावकवसिष्ठारुन्धतीप्रशस्तशीलशालिनि ! हा राममयजीविते ! हा महारण्यवासप्रियसखि ! हा तातप्रिये ! हा स्तोकवादिनि ! कथमेवंविधायास्तवायमीदृशः परिणामः ?

त्वया जगन्ति पुण्यानि त्वय्यपुण्या जनोक्तयः ।
नाथवन्तस्त्वया लोकास्त्वमनाथा विपत्स्यसे ॥४३॥

१७० (दुर्मुखं प्रति) दुर्मुख, ब्रूहि—"लक्ष्मण, एष नूतनो राजा रामः समाज्ञापयति ।" (कर्णे) एवमेव इति ।
दुर्मुख —हा ! कथमग्निपरिशुद्धाया गर्भस्थितपवित्रसंतानाया देव्या दुर्जनवचनादिदं व्यवसितं देवेन ?

१७१ राम —शान्तं पापम्, शान्तं पापम् । दुर्जना नाम पौरजानपदाः —

१६६ राम—(धैर्य धरके) हा, हा धिक्कार, पर-गृह में निवास के वैदेहीके जिस दोपको अद्‌भुत उपायो से शात किया गया था, दैवके दुर्विपाक से कुत्तेके विप की तरह वह फिर मर्वत्र फैल गया ॥४०॥

१६७ तो मैं अभागा अव क्या करू ? (मोचकर, करुणा के साथ) अथवा यह क्या ? किमी भी कार्य मे लोगो को खुश करना सत्पुरुपो के को लिये सवसे वढकर (वात) है। वापूने मुझे और अपने प्राणो को छोडते हुए उमी को पूरा किया ॥४१॥

१६८ अभी ही भगवान् वसिष्ठने सन्देश भेजा, और भी—
सूर्यवशी लोकश्रेष्ठ राजाओ ने जिस विचित्र सावु-चरित्र को प्रकाशित किया, इसमें मेरे मम्वन्व की कलुपित अफवाह यदि हो तो, हन्त, मुझ अभागेको धिक्कार है ॥४२॥

१६९ हा, यज्ञमे उत्पन्न देवि, हा अपने जन्मरूपी अनुग्रह से पृथिवीको पवित्र करनेवाली, हा जनकमुनि की नदिनी, हा अग्नि वसिष्ठ अरु-वती द्वारा प्रशमित शीलवाली, हा राम मात्र जीवनवाली, हा महा अरण्यवासकी प्रियसखी, हा वापूकी प्यारी, हा अल्पभाषिणी, ऐसी तेरा कैसे ऐसा परिणाम !
तेरे द्वारा ससार पवित्र है, और तेरे विपयमें जनोका पाप कथन! तुझसे लोग नाथवाले हैं, और तू अनाथा होकर विपदमें पडेगी ॥४३॥

१७० दुर्मुख कह लक्ष्मण नवीन राजा राम यह आज्ञा देता है। (कानमें ऐसे-ऐसे)

दुर्मुख—हाय-हाय, अग्नि द्वारा परिशुद्ध, गर्भमें पवित्र सतानधारिणी देवीके वारेमें दुर्जनोके वचनमे देवने यह क्या करनेका निश्चय किया ?

१७१ राम—शान्त पापम्। मेरे नागरिक तथा ग्रामवासी लोग और वह दुर्जन—

१६६ राम —(आश्वस्य)—

हा हा धिक्परगृहवासदूषणं यद्,
वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः ।
एतत्तत्पुनरपि दैवदुर्विपाकाद्,
आलर्कं विषमिव सर्वतः प्रसक्तम् ।।४०।।

१६७ तत्किमद्य मन्दभाग्यः करोमि ? (विमृश्य, सकरुणम्) अथवा किमेतत् ?—

सता केनापि कार्येण लोकस्याराधनं परम् ।
तत्प्रतीतं हि तातेन मां च प्राणांश्च मुञ्चता ।।४१।।

१६८. सम्प्रत्येव च भगवता **वसिष्ठेन** संदिष्टम् । अपि च,—

यत्सावित्रैर्दीपितं भूमिपालैर्-
लोकश्रेष्ठैः साधु चित्रं चरित्रम् ।
मत्संबन्धात्कश्मला किंवदन्ती,
स्याच्चेदस्मिन्हन्त धिङ्मामधन्यम् ।।४२।।

१६९ हा देवि देवयजनसंभवे ! हा स्वजन्मानुग्रहपवित्रित-वसुन्धरे ! हा मुनिजनकनन्दिनि ! हा पावकवसिष्ठारुन्धतीप्रशस्तशीलशालिनि ! हा राममयजीविते ! हा महारण्यवासप्रियसखि ! हा तातप्रिये ! हा स्तोकवादिनि ! कथमेवंविधायास्तवायमीदृशः परिणामः ?

त्वया जगन्ति पुण्यानि त्वय्यपुण्या जनोक्तयः ।
नाथवन्तस्त्वया लोकास्त्वमनाथा विपत्स्यसे ।।४३।।

१७० (दुर्मुखं प्रति) दुर्मुख, ब्रूहि—"लक्ष्मण, एष नूतनो राजा रामः समाज्ञापयति ।" (कर्णे) एवमेव इति ।
दुर्मुख —हा ! कथमग्निपरिशुद्धायाः गर्भस्थितपवित्रसंतानायाः देव्या दुर्जनवचनादिदं व्यवसितं देवेन ?

१७१ राम —शान्तं पापम्, शान्तं पापम् । दुर्जना नाम पौरजानपदाः —

१६६ राम—(धैर्य धरके) हा, हा धिक्कार, पर-गृह में निवास के वैदेहीके जिस दोषको अद्भुत उपायो से शात किया गया था, दैवके दुर्विपाक से कुत्तेके विष की तरह वह फिर सर्वत्र फैल गया ।।४०।।

१६७ तो मैं अभागा अब क्या करू ? (सोचकर, करुणा के साथ) अथवा यह क्या ? किसी भी कार्य से लोगो को खुश करना सत्पुरुषो के को लिये सबसे बढकर (बात) है । बापूने मुझे और अपने प्राणो को छोडते हुए उसी को पूरा किया ।।४१।।

१६८ अभी ही भगवान् वसिष्ठने सन्देश भेजा, और भी—
सूर्यवशी लोकश्रेष्ठ राजाओ ने जिस विचित्र साधु-चरित्र को प्रकाशित किया, इसमें मेरे सम्बन्ध की कलुषित अफवाह यदि हो तो, हन्त, मुझ अभागेको धिक्कार है ।।४२।।

१६९ हा, यज्ञमें उत्पन्न देवि, हा अपने जन्मरूपी अनुग्रह से पृथिवीको पवित्र करनेवाली, हा जनकमुनि की नदिनी, हा अग्नि वसिष्ठ अरुंधती द्वारा प्रशसित शीलवाली, हा राम मात्र जीवनवाली, हा महा अरण्यवासकी प्रियसखी, हा बापूकी प्यारी, हा अल्पभाषिणी, ऐसी तेरा कैसे ऐसा परिणाम !
तेरे द्वारा ससार पवित्र है, और तेरे विषयमें जनोका पाप कथन! तुझसे लोग नाथवाले हैं, और तू अनाथा होकर विपदमें पडेगी ।।४३।।

१७० दुर्मुख कह लक्ष्मण नवीन राजा राम यह आज्ञा देता है। (कानमें ऐसे-ऐसे)

दुर्मुख—हाय-हाय, अग्नि द्वारा परिशुद्ध, गर्भमें पवित्र सतानधारिणी देवीके बारेमें दुर्जनोके वचनसे देवने यह क्या करनेका निश्चय किया ?

१७१ राम—शान्त पापम् । मेरे नागरिक तथा ग्रामवासी लोग और वह दुर्जन—

इक्ष्वाकुवशोऽभिमत प्रजाना,
जात च दैवाद्वचनीयबीजम् ।
यच्चाद्भुत कर्म विशुद्धिकाले,
प्रत्येतु कस्तद्यदि दूरवृत्तम् ॥४४॥

१७२ तद् गच्छ ।

दुर्मुख —हा देवि ! (इति निष्क्रान्त)

१७३ राम —हा कष्टम्, अतिबीभत्सकर्मा नृशसोऽस्मि सवृत्तः—

शैशवात्प्रभृति पोषिता प्रिया,
सौहृदादपृथगाश्रयामिमाम् ।
छद्मना परिददामि मृत्यवे,
सौनिके गृहशकुन्तिकामिव ॥४५॥

तत्किमस्पृश्य पातकी देवी दूपयामि । (इति सीतायाः शिर समुन्नमय्य बाहुमाकृष्य)

१७४ अपूर्वकर्मचण्डालमयि मुग्धे, विमुच माम् ।
श्रितासि चन्दनभ्रान्त्या दुर्विपाक विपद्रुमम् ॥४६॥

१७५. (उत्थाय) हन्त हन्त, सप्रति विपर्यस्तो जीवलोक । अद्यावसित जीवितप्रयोजन रामस्य । शून्यमधुना जीर्णारण्य जगत् । असार ससार । काष्ठप्राय शरीरम् । अशरणोऽस्मि । कि करोमि ? का गतिः ? अथवा,—

दु खसवेदनायैव रामे चैतन्यमागतम् ।
मर्मोपघातिभि प्राणैर्वज्रकीलायित हृदि ॥४७॥

१७६ हा अम्ब अरुन्धति ! भगवन्तौ वसिष्ठविश्वामित्रौ ! भगवन् पावक ! हा देवि भूतधात्रि ! हा तात जनक ! हा मात ! हा प्रियसखे महाराज सुग्रीव ! सौम्य हनूमन् ! महोपकारिन् लकाधिपते विभीषण ! हा सखि त्रिजटे ! परिमुषिता स्थ परिभूता स्थ रामहतकेन ।

इक्ष्वाकुओका वश प्रजाका प्रिय है। भाग्यसे वचनमारनेका उसके लिये बीज पैदा हुआ। (अग्नि) शुद्धिके समय जो अद्भुत क्रिया की गई, वह तो दूर स्थानमें हुई, फिर उसे कौन पतियाये ।।४४।।

१७२ सो जा—

दुर्मुख—हा देवि। (वाहर चला गया)

१७३ राम—हा, कष्टम्, मैं अत्यत बीभत्सकर्मा कमीना हो गया—
वचपनसे लेकर सौहार्दसे पोपित, विलग न रहनेवाली इस प्रियाको, छल से मृत्युको दे रहा हू। जैसे घरकी चिडिया वहेलियाको ।।४५।।
तो मैं पातकी अछूत देवीको छूकर क्यो दूषित कर रहा हूं।

(सीताके सिरको उठा हाथ खीचकर)—

१७४ हे मुग्वे, मुझ असाधारण कर्मचाडाल को छोड, तू चन्दनके भ्रमसे अहितकारी विपवृक्षका आश्रय ले रही है ।।४६।।

१७५ (उठकर) हन्त, हन्त, अव संसार उलट गया। आज रामके जीवन का प्रयोजन खतम हो गया। जगत् अव सूना पुराना जगल है, ससार असार है, शरीर काठ सा है। मेरा कोई शरण नही। क्या करू? मेरी क्या गति है? अथवा—

दु खके अनुभवके लिये ही रामर्में चेतना है। मर्म-पीडक (मेरे) प्राण हृदयमें वज्र कील बन गये है ।।४७।।

१७६ हा अम्मा अरुधती, भगवान् **वसिष्ठ** और **विश्वामित्र**, भगवान् अग्नि, हा देवी पृथिवी, हा तात जनक, हा माता, हा प्रिय मित्र महाराज सुग्रीव, सौम्य हनूमान्, महा उपकारी लकेश्वर विभीषण, हा सखी **त्रिजटा**, नीच रामने तुम्हें लूट लिया, तुम्हें तिरस्कृत कर दिया।

इक्ष्वाकुवंशोऽभिमतः प्रजानां,
जातं च दैवाद्वचनीयबीजम् ।
यच्चाद्भुतं कर्म विशुद्धिकाले,
प्रत्येतु कस्तद्यदि दूरवृत्तम् ॥४४॥

१७२ तद् गच्छ ।

दुर्मुख —हा देवि ! (इति निष्क्रान्तः)

१७३ राम —हा कष्टम्, अतिबीभत्सकर्मा नृशंसोऽस्मि संवृत्तः—

शैशवात्प्रभृति पोषितां प्रियां,
सौहृदादपृथगाश्रयामिमाम् ।
छद्मना परिददामि मृत्यवे,
सौनिके गृहशकुन्तिकामिव ॥४५॥

तत्किमस्पृश्यः पातकी देवीं दूषयामि । (इति सीतायाः शिरः समुन्नमय्य बाहुमाकृष्य)

१७४ अपूर्वकर्मचण्डालमयि मुग्धे, विमुंच माम् ।
श्रितासि चन्दनभ्रान्त्या दुर्विपाकं विषद्रुमम् ॥४६॥

१७५ (उत्थाय) हन्त हन्त, संप्रति विपर्यस्तो जीवलोकः । अद्यावसितं जीवितप्रयोजनं रामस्य । शून्यमधुना जीर्णारण्यं जगत् । असारः संसारः । काष्ठप्रायं शरीरम् । अशरणोऽस्मि । किं करोमि ? का गतिः ? अथवा,—

दुःखसंवेदनायैव रामे चैतन्यमागतम् ।
मर्मोपघातिभिः प्राणैर्वज्रकीलायितं हृदि ॥४७॥

१७६ हा अम्ब अरुन्धति ! भगवन्तौ वसिष्ठविश्वामित्रौ ! भगवन् पावक ! हा देवि भूतधात्रि ! हा तात जनक ! हा मातः ! हा प्रियसखे महाराज सुग्रीव ! सौम्य हनूमन् ! महोपकारिन् लंकाधिपते विभीषण ! हा सखि त्रिजटे ! परिमुषिता स्थ परिभूता स्थ रामहतकेन ।

इक्ष्वाकुओंका वंश प्रजाका प्रिय है। भाग्यसे वचनमारनेका उसके लिये बीज पैदा हुआ। (अग्नि) शुद्धिके समय जो अद्भुत क्रिया की गई, वह तो दूर स्थानमें हुई, फिर उसे कौन पतियाये ॥४४॥

१७२. सो जा—

दुर्मुख—हा देवि। (बाहर चला गया)

१७३ राम—हा, कष्टम्, मैं अत्यंत बीभत्सकर्मा कमीना हो गया—
बचपनसे लेकर सौहार्दसे पोषित, बिलग न रहनेवाली इस प्रियाको, छल से मृत्युको दे रहा हूं। जैसे घरकी चिड़िया बहेलियाको ॥४५॥
तो मैं पातकी अछूत देवीको छूकर क्यों दूषित कर रहा हूं।

(सीताके सिरको उठा हाथ खींचकर)—

१७४. हे मुग्धे, मुझ असाधारण कर्मचांडाल को छोड़, तू चन्दनके भ्रमसे अहितकारी विषवृक्षका आश्रय ले रही है ॥४६॥

१७५ (उठकर) हन्त, हन्त, अब संसार उलट गया। आज रामके जीवन का प्रयोजन खतम हो गया। जगत् अब सूना पुराना जंगल है, संसार असार है, शरीर काठ सा है। मेरा कोई शरण नहीं। क्या करूं? मेरी क्या गति है? अथवा—

दु:खके अनुभवके लिये ही राममें चेतना है। मर्म-पीडक (मेरे) प्राण हृदयमें वज्रकील बन गये है ॥४७॥

१७६ हा अम्मा अरुंधती, भगवान् वसिष्ठ और विश्वामित्र, भगवान् अग्नि, हा देवी पृथिवी, हा तात जनक, हा माता, हा प्रिय मित्र महाराज सुग्रीव, सौम्य हनूमान्, महा उपकारी लंकेश्वर विभीषण, हा सखी त्रिजटा, नीच रामने तुम्हें लूट लिया, तुम्हें तिरस्कृत कर दिया।

अथवा को नाम तेपामहमिदानीमाह्वाने ?

तेहि मन्ये महात्मान कृतघ्नेन दुरात्मना।
मया गृहीतनामान स्पृश्यन्त इव पाप्मना ॥४८॥

१७७ योऽहम्,—

विस्रम्भादुरसि निपत्य जातनिद्रा,
उन्मुच्य प्रियगृहिणी गृहस्य लक्ष्मीम्।
आतंकस्फुरितकठोरगर्भगुर्वी
क्रव्याद् भूयो बलिमिव दारुण क्षिपामि ॥४९॥

१७८. (सीताया पादौ शिरसि कृत्वा)—अय पश्चिमस्ते राम-शिरसि पादपंकजस्पर्श

(इति रोदिति)

(नेपथ्ये)

१७९. अब्रह्मण्यमब्रह्मण्यम्।

राम —ज्ञायता भो', किमेतत् ?

(पुनर्नेपथ्ये)

ऋषीणामुग्रतपसा यमुनातीरवासिनाम्।
लवणत्रासितस्तोमस्त्रातार त्वामुपस्थित. ॥५०॥

१८० राम —कथमद्यापि राक्षसत्रास ? तद्यावदस्य दुरात्मनो माथुरस्य कुम्भीनसीकुमारस्योन्मूलनाय शत्रुघ्नं प्रेपयामि (परिक्रम्य पुनर्निवृत्य) हा देवि ! कथमेवविधा गमिष्यसि ? भगवति वसुन्धरे ! सुश्लाघ्या दुहितरमवेक्षस्व जानकीम्—

जनकाना रघूणां च यत्कृत्स्नं गोत्रमंगलम्।
यां देवयजने पुण्ये पुण्यशीलामजीजन. ॥५१॥

१. (इति निष्क्रान्त:)

अथवा अब उन्हें पुकारनेवाला मैं कौन हूं?
दुरात्मा कृतघ्न राम द्वारा नाम लिये जानेपर, मैं समझता हू, वे महात्मा पापसे छुये से हो जायेंगे ॥४८॥

१७७ जो कि मैं—

विश्वास करके छातीपर पड सोई, आतकसे कपित, परिपक्व गर्भसे भारी, (गृह) लक्ष्मी प्रिय गृहिणीको छोडकर मै दारुण वलिकी तरह मासभक्षी जन्तुओके सामने फेंक रहा हू ॥४९॥

१७८ (सीताके दोनो पैरोमें सिर रखकर) यह रामके सिरसे तेरे चरण-कमलका अतिम स्पर्श है। (रोते हैं)

(नेपथ्यमें)

१७९ अब्रह्मण्यम्, अब्रह्मण्यम्, महापाप हो गया।

राम—पता लगाओ हो, यह क्या है?

(फिर नेपथ्यमें)

जमुनाके तीरके रहनेवाले उग्र तपस्यावाले ऋषि-समूह लवणासुरसे त्रासित हो रक्षक तुम्हारे पास उपस्थित हुआ है ॥५०॥

१८० राम—क्या आज भी राक्षसोका त्रास है? तो फिर इस दुरात्मा **मथुरा** वाले **कुभीनसी**-पुत्रके उन्मूलनके लिये **शत्रुघ्न** को भेजता हू। (परिक्रमा करके फिर लौटकर) हा देवि, कैसे तू ऐसी जायेगी? भगवती पृथिवी सुप्रशसनीय अपनी पुत्री **जानकी** की खबर लेना। **जनको** और **रघुओ**के गोत्रकी जो सम्पूर्ण-मगला है, जिस पुण्य-शीलाको तुमने यज्ञमें जन्म दिया ॥५१॥

१८१ (रोते हुये बाहर चले जाते हैं)

१८२ सीता—हा सौम्य आर्यपुत्र, कुत्रासि ? हा धिक् हा धिक्, दु:स्वप्नरणरणकविप्रलब्धा आर्यपुत्रशून्यमिवात्मानं पश्यामि । हा धिक् हा धिक्, एकाकिनी प्रसुप्तां मामुज्झित्वा कुत्र गतो नाथ. ? भवतु, तस्मै कोपिष्यामि यदि त प्रेक्षमाणा आत्मन. प्रभविष्यामि । कोऽत्र परिजन. ?

(प्रविश्य)

१८३ दुर्मुख.—देवि , कुमारलक्ष्मणो विज्ञापयति—"सज्जो रथ. । तदारोहतु देवी" इति ।
सीता—इयमारुढास्मि । (उत्थाय परिक्रम्य) स्फुरति मे गर्भभार । शनैर्गच्छाम. ।

१८४ दुर्मुख.—इत इतो देवी ।
सीता—नमो रघुकुलदेवताभ्याम् ।

(इति निष्क्रान्ता. सर्वे)

(४) ऋषेरातिथ्यम्—

(तत प्रविशतस्तापसौ)

१८५ एक —सौधातके , दृश्यतामद्य भूयिष्ठसन्निधापितातिथिजनस्य समधिकारम्भरमणीयता भगवतो वाल्मीकेराश्रमपदस्य । तथा हि,—

नीवारौदनमण्डमुष्णमधुरं सद्य प्रसूतप्रिया-
पीतादभ्यधिकं तपोवनमृग. पर्याप्तमाचामति ।
गन्धेन स्फुरता मनागनुसृतो भक्तस्य सर्पिष्मत
कर्कन्धूफलमिश्रशाकपचनामोद. परिस्तीर्यते ॥१॥

१८२ सीता—हा सौम्य आर्यपुत्र, कहा हो? हा धिक्। दुःस्वप्नकी उत्सुकतासे छली मैं अपनेको आर्यपुत्रके विना देख रही हू। हा धिक्, मुझे अकेली सोई छोडकर नाथ कहा गये! अच्छा, उन पर कोप करू, यदि उन्हें देख अपने पर काबू पा सकू। यहा कोई परिजन है?

(प्रवेश करके)

१८३ दुर्मुख—देवि, कुमार लक्ष्मण अर्ज करते हैं "रथ तैयार है, सो देवी पधारें।"

सीता—(लो) यह चढने आई। (उठकर परिक्रमा करके) मेरा गर्भ डोल रहा है। धीरे चलें।

१८४ दुर्मुख—इधरसे, इधरसे आइये।

सीता—रघुकुलके दोनो देवताओको नमस्कार।

(सब बाहर चले गये)

—अंक १

४. ऋषिकी पहुनाई—

(तब दो तापस प्रवेश करते हैं)

१८५ एक—सौधातकि, देखो, आज बहुतसे आगत अतिथियोवाले भगवान् वाल्मीकि के आश्रमकी अत्यधिक तैयारी कार्य-व्यस्तताकी रमणीयताको जैसे कि—

तुरत प्रसूता अपनी प्रियाके पीने से बचे तिन्नीके भातके गरम मीठे माडको तपोवनका मृग खूब पी रहा है। घीवाले भातके थोड़ा फैलते गंधका अनुगमन करती बैरके फलसे मिलाये साग पकानेकी खुशबू फैल रही है॥१॥

१८६ सौधातकि —स्वागतमनेकप्रकाराणा जीर्णकूर्चानामन - ध्यायकारणाना तपोधनानाम् ।

प्रथम —(विहस्य) अपूर्व खलु बहुमानहेतुर्गुरुपु सौधातके ।

१८७ सौधातकि —भो दण्डायन, किंनामधेय इदानीमेष महत स्त्रीसार्थस्य धुरधरोऽद्यातिथिरागत ?
दण्डायन —धिक्प्रहसनम् । नन्वयमृप्यश्रृगाश्रमादरुन्धती पुरस्कृत्य महाराजदशरथस्य दारानधिप्ठाय भगवान्वसिष्ठ. प्राप्त । तत्किमेव प्रलपसि ?

१८८ सौधातकि —हु वसिप्ठ ?
दण्डायन —अथ किम् ?

१८९. सौधातकि —मया पुनर्ज्ञात कोऽपि व्याघ्र इवैष इति ।
दण्डायन —आ, किमुक्त भवति ?

१९० सौधातकि —येन परापतितेनैव सा वराकी कपिला कल्याणी वलात्कृत्य मडमडायिता ।
दण्डायन —समासो मधुपर्क इत्याम्नाय वहुमन्यमाना: श्रोत्रियायाभ्यागताय वत्सतरी वा पचन्ति गृहमेधिन: त हि धर्म धर्मसूत्रकारा समामनन्ति ।

१९१ सौधातकि —भो निगृहीतोऽसि ।
दण्डायन —कथमिव ?

१९२. सौधातकि —येनागतेपु वसिष्ठमिश्रेप वत्सतरी विशसिता । अद्यैव प्रत्यागतस्य राजर्षेर्जनकस्य भगवता वाल्मीकिना दधिमधुभ्यामेव निर्वर्तितो मधुपर्क, वत्सतरी पुनर्विसर्जिता ।

दण्डायन —अनिवृत्तमासानामेव कल्प व्याहरन्ति केचित् । निवृत्तमासस्तु तत्र भवान् जनक ।

८६ मौधातकि—स्वागत है, अनेक प्रकारके अनध्याय (छुट्टी) के कारण, बड़ी दाढी वाले नाना मुनियोका।

पहला—(विहँस कर) **सौघातकि**, गुरुजनो के विपयमें सम्मान प्रकट करनेका तुम्हारा यह अद्‌भुत ढंग है।

८७ सौवातकि—**दंडायन**, स्त्री कारवाका मुखिया अतिथि जो आज आया है, उसका क्या नाम है ?

दडायन—धिक्कार है मजाकको, यह तो शृंगी ऋषिके आश्रमसे **अरुंधती** को लिये महाराज दशरथकी स्त्रियोको सभाले भगवान् **वसिष्ठ** आये है ।सो क्यो ऐसी वकहवास कर रहा है ?

८८ सौवातकि—हूम् वसिष्ठ ?

दडायन—और क्या ?

८९ सौवातकि—मैंने तो समझा मानो यह कोई वाघ है।

दडायन—आह, क्या कहता है !

९० सौधातकि—जिसने झपट्टा मारते उस वेचारी कल्याणी कपिलाको जर्वदस्ती मडमडा डाला।

दंडायन—"मधुपर्क, मास-सहित होना चाहिये", इस शास्त्र-वचनका सम्मान करते श्रोत्रिय अभ्यागतके लिये गृहस्थ वछिया पकाते है। इसे धर्मसूत्रके रचयिता धर्म वतलाते हैं।

९१ सौवातकि—भो, तू **निग्रहस्थान** में पकडा गया।

दडायन—कैसे ?

९२ सौधातिक—आगत वसिष्ठ आदिके लिये तो वछिया मारी गई, पर आज ही आये राजर्षि जनकके लिये भगवान् वाल्मीकिने दही-मधुसे मधुपर्क तैयार किया, और वछिया छोड दी।

दडायन—वैसा विधान मास न त्यागे हुओंके लिये कोई-कोई वतलाते है। जनकजी तो मासविरत हैं।

१८६ सौधातकि —स्वागतमनेकप्रकाराणा जीर्णकूर्चानामन -
ध्यायकारणाना तपोधनानाम् ।
प्रथम —(विहस्य) अपूर्व खलु बहुमानहेतुर्गुरुपु सौधा-
तके !

१८७ सौधातकि —भो दण्डायन, किनामधेय इदानीमेष
महत स्त्रीसार्थस्य धुरधरोऽद्यातिथिरागत ?
दण्डायन —धिक्प्रहसनम् । नन्वयमृष्यश्रृगाश्रमाद-
रुन्धती पुरस्कृत्य महाराजदशरथस्य दारानधिष्ठाय
भगवान्वसिष्ठ प्राप्त । तत्किमेव प्रलपसि ?

१८८ सौधातकि —हु वसिष्ठ ?
दण्डायन —अथ किम् ?

१८९ सौधातकि —मया पुनर्ज्ञात कोऽपि व्याघ्र इवैष इति ।
दण्डायन —आ , किमुक्त भवति ?

१९० सौधातकि —येन परापतितेनैव सा वराकी कपिला
कल्याणी बलात्कृत्य मडमडायिता ।
दण्डायन —समासो मधुपर्क इत्याम्नाय बहुमन्यमाना:
श्रोत्रियायाभ्यागताय वत्सतरी वा पचन्ति गृहमेधिन:
त हि धर्म धर्मसूत्रकारा समामनन्ति ।

१९१ सौधातकि —भो निगृहीतोऽसि ।
दण्डायन —कथमिव ?

१९२ सौधातकि —येनागतेषु वसिष्ठमिश्रेप वत्सतरी विश-
सिता । अद्यैव प्रत्यागतस्य राजर्षेर्जनकस्य भगवता
वाल्मीकिना दधिमधुभ्यामेव निर्वर्तितो मधुपर्क ,वत्सतरी
पुनर्विसर्जिता ।
दण्डायन —अनिवृत्तमासानामेव कल्प व्याहरन्ति के-
चित् । निवृत्तमासस्तु तत्र भवान् जनक ।

१८६ मौधातकि—स्वागत है, अनेक प्रकारके अनध्याय (छुट्टी) के कारण, बडी दाढी वाले नाना मुनियोका।

पहला—(विहँस कर) सौधातकि, गुरुजनो के विषयमें सम्मान प्रकट करनेका तुम्हारा यह अद्‌भुत ढग है।

१८७ मौधातकि—दडायन, स्त्री कारवाका मुखिया अतिथि जो आज आया है, उनका क्या नाम है?

दडायन—धिक्कार है मजाकको, यह तो शृंगी ऋषिके आश्रमसे अरुंधती को लिये महाराज दशरथकी स्त्रियोको सभाले भगवान् वसिष्ठ आये है। नो क्यो ऐसी वकहवास कर रहा है?

१८८ मौधातकि—हूम् वसिष्ठ?

दडायन—और क्या?

१८९ मौधातकि—मैंने तो समझा मानो यह कोई वाघ है।

दडायन—आह, क्या कहता है!

१९० मौधातकि—जिसने झपट्टा मारते उस वेचारी कल्याणी कपिलाको जवर्दस्ती मडमडा डाला।

दडायन—"मधुपर्क, माम-सहित होना चाहिये", इस शास्त्र-वचनका सम्मान करते श्रोत्रिय अभ्यागतके लिये गृहस्थ वछिया पकाते है। इसे धर्मसूत्रके रचयिता धर्म वतलाते है।

१९१ मौधातकि—भो, तू निग्रहस्थान में पकडा गया।

दडायन—कैसे?

१९२ मौधातिक—आगत वसिष्ठ आदिके लिये तो वछिया मारी गई, पर आज ही आये राजर्षि जनकके लिये भगवान् वाल्मीकिने दही-मधुसे मधुपर्क तैयार किया, और वछिया छोड दी।

दडायन—वैसा विधान मास न त्यागे हुओके लिये कोई-कोई वतलाते हैं। जनकजी तो मासविरत हैं।

१९३ सौधातकि —किंनिमित्तम् ?
दण्डायन —यद् देव्या **सीतायास्तादृश** दैवदुर्विपाकमुपश्रुत्य वैखानस संवृत्त, तस्य कतिपयसंवत्सरश्चन्द्रद्वीपतपोवने तपस्तप्यमानस्य ।

१९४ सौधातकि —तत किमित्यागत ?
दण्डायन —संप्रति च प्रियसुहृद भगवन्त प्राचेतस द्रष्टुम् ।

१९५ सौधातकि —अद्य संबन्धिनीभि सम निवृत्त दर्शनमस्य न ?
दण्डायन —संप्रत्येव भगवता वसिष्ठेन देव्या **कौसल्याया:** सकाश भगवत्य**रुन्धती** प्रहिता, यथा स्वयमुपेत्य स्नेहादय द्रष्टव्य इति ।

१९६ सौधातकि —यथैते स्थविरा परस्परमेव मिलिता, तथाऽऽवामपि वटुभि सह मिलित्वाऽनध्यायमहोत्सव खेलन्तौ मानयाव । अथ कुत्र स जनक ?

१९७ दण्डायन —तथाय प्राचेतसवसिष्ठावुपास्य संप्रत्याश्रमस्य बहिर्वृक्षमूलमधितिष्ठति । य एष —
हृदि नित्यानुषक्तेन सीताशोकेन तप्यते ।
अन्त प्रसृप्तदहनो जरन्निव वनस्पति ॥२॥
(इति निष्क्रान्तौ)

(५) **गुरुजन-समागम:–**

(तत प्रविशति जनक)

१९८ जनक —

अपत्ये यत्तादृग्दुरितमभवत्तेन महता,
विषक्तस्तीव्रेण व्रणितहृदयेन व्यथयता ।
पटुर्धारावाही नव इव चिरेणापि हि न मे,
निकृन्तन्मर्माणि क्रकच इव मन्युर्विरमति ॥३॥

१९३ सौधातकि—किसलिये।

दंडायन—देवी सीताके वैसे दैव-दुर्विपाकको सुनकर, वह मुनि हो गये, चन्द्रदीप नामक तपोवनमें तप करते उन्हें कितने ही वर्ष बीत गये।

१९४ सौधातिक—वहांसे क्यों आये ?

दंडायन—प्रियमित्र भगवान् वाल्मीकिको देखनेके लिये, इस समय (आये)।

१९५ सौधातकि—आज समधिनोके साथ इनकी भेंट हो गई ना ?

दंडायन—इसी समय भगवान् वसिष्ठने कौसल्या देवीके पास भगवती अरुंधतीको भेजा, कि स्वयं आकर स्नेहपूर्वक इनसे मिलें।

१९६ सौधातकि—जैसे यह बूढे आपसमें मिलें, तैसे हम विद्यार्थी भी एक साथ मिलकर छुट्टीके महत्वको खेलते हुये मनायें। अच्छा वह जनक कहां हैं ?

१९७ दंडायन—वाल्मीकि और वसिष्ठकी इस तरह उपासना करके इस समय आश्रमके बाहर वृक्षके नीचे जो बैठे हैं, वहीं—

हृदयमें सदा लगे सीताके शोकसे संतप्त हैं।
जैसे भीतर आग लगा वृक्ष जल रहा हो ॥२॥

(दोनों बाहर चले गये)

५. गुरुजनों का मिलन—

(तब जनक प्रवेश करते हैं)

१९८ जनक—

(सीता) जैसी संतानपर जो विपद् पडी, उस बडे,
तीव्र घायल हृदयकी पीडासे लिप्त,
चिरकालसे भी फिर नयेकी तरह प्रवाहित शोक,
मेरे मर्मको आरेकी तरह छेदता, बंद नहीं होता ॥३॥

१९९. कष्ट एव नाम जरया दु खेन च दुरासदेन भूय परा-
कसातपनप्रभृतिभिस्तपोभि शोषितान्त शरीरधातोरव-
ष्टम्भ एव महानद्यापि मम दग्धदेहो न पतति। अन्ध-
तामिस्रा ह्यसूर्या नाम ते लोका प्रेत्य तेभ्य प्रतिविधीयन्त
य आत्मघातिन इत्येवमृषयो मन्यन्ते। अनेकसवत्सराति-
क्रमेऽपि प्रतिक्षणपरिभावनास्पष्टनिर्भास प्रत्यग्र इव न म
दारुणो दु खसवेग प्रशाम्यति। अयि मात देवयजन-
सभवे सीते! ईदृशस्ते निर्माणभाग परिणत, येन
लज्जया स्वच्छन्दमप्याक्रन्दितु न शक्यते। हा पुत्रि!

२०० अनियतरुदितस्मित विराजत्,
कतिपयकोमलदन्तकुड्मलाग्रम्।
वदनकमलक शिशो स्मरामि,
स्खलदसमजसमजु जल्पित ते ॥४॥

२०१ भगवति वसुन्धरे, सत्यमतिदृढासि—
त्व वहनिर्मुनयो वसिष्ठगृहिणी गगा च यस्या विदुर्,
माहात्म्य यदि वा रघो कुलगुरुर्देव स्वय भास्कर।
विद्या वागिव यामसूत भवती शुद्धि गताया पुनस्,
तस्यास्त्वद्दुहितुस्तथा विशसन किं दारुणे मृष्यथा ॥५॥
इत इतो भगवती महादेव्यौ।

२०२. जनक —अये, गृष्टिनोपदिश्यमानमार्गा भगवत्यरुन्धती
(उत्थाय) का पुनर्महादेवीत्याह। (निरूप्य) हा हा,
कथमिय महाराजस्य दशरथस्य धर्मदारा प्रियसखी मे
कौसल्या ? क एता प्रत्येति सैवेयमिति नाम ?—

२०३ आसीदिय दशरथस्य गृहे यथा श्री,
श्रीरेव वा किमुपमानपदेन सैपा।
कष्ट वतान्यदिव दैववशेन जाता,
दु खात्मक किमपि भूतमहो विकार ॥६॥

१९९ कष्टम्, इस तरह जरा असूया और दुःखसे (पीडित) फिर पराक, मातपन (चाद्रायण) आदि तपस्याओंसे सुखाये हृदयका महा अवलव, यह मेरा जला शरीर आज भी नही गिरता। ऋषि लोग मानते हैं, कि जो आत्म-हत्यारे होते हैं, वह मर कर इस पापसे प्रकाशहीन अत्यंत तिमिरवाले लोकोंमें जाते हैं। अनेक वर्षके बीतने-पर भी अनुभव करनेमे प्रतिक्षण स्पष्ट दिखाई देता मेरा नया सा (होता), दारुण दुःख-वेग शात नही हो रहा है। अरी मैया, यज्ञसे उत्पन्न सीता, तेरा जीवन ऐसी अवस्थामें परिणत हुआ, कि लज्जाके कारण इच्छा भरकर रो भी नही सकता। हा पुत्री—

२००   अनियम-पूर्वक रोने मुस्करानेसे शोभा देते,
कुछ कोमल दंतकलियोको आगे दिखाते,
तेरे शैशवके कमल-वदनको याद करता हूं,
और तेरे तुतलाने, असवद्ध मजुल वोलनेको भी ॥४॥

२०१ भगवती वसुधरा, सचमुच ही तुम अति दृढ हो—
जिसके महात्म्यको तूने, अग्निने, मुनियोने, वसिष्ठ-पत्नीने और गगाने जना तथा रघुके कुल-गुरु स्वय सूर्यदेवने जाना।
जिसे सरस्वतीकी तरह आपने जन्म दिया, तब शुद्ध हुई उस तुम्हारी पुत्रीकी ऐसी हिंसा करना, हे कठोर तू (इसे) कैसे सहती है ॥५॥
इधर-इधर (आइये) भगवती और महादेवी।

२०२ जनक—अये, कचुकीके वतलाये मार्गसे भगवती अरुधती (उठकर) यह महादेवी कौन है। (अच्छी तरह देखकर) हा-हा, महाराज दशरथकी धर्मपत्नी मेरी प्रिय सखी, क्या यह कौसल्या है? कौन विश्वास करेगा, कि यह वही है।

२०३   यह दशरथ के घरमें लक्ष्मीकी तरह थी,
अथवा यह श्री ही थी, उपमाके पदके जोडनेसे क्या ?
सो हाय, दैववश यह दूसरी सी ही हो गई।
अहो, कोई दुःखाकार भूत है, विकार है ॥६॥

य एव मे जन पूर्वमासीन्मूर्तो महोत्सव ।
क्षते क्षारमिवासह्य जात तस्यैव दर्शनम् ॥७॥

(तत प्रविशत्यरून्धती कौसल्या कचुकी च)

२०४ अरुन्धती—ननु ब्रवीमि द्रष्टव्य स्वयमुपेत्यैव वैदेह इत्येव व कुलगुरोरादेश । अत एव चाह प्रेषिता । तत्कोऽय पदे पदे महाननध्यवसाय ?

२०५ कचुकी—देवि, सस्तभ्यात्मानमनुरुध्यस्व भगवतो **वसिष्ठस्यादेशमिति** विज्ञापयामि ।

२०६ कौसल्या—ईदृशे काले **मिथिलाधिपो** मया द्रष्टव्य इति सममेव सर्वदु खान्यवतरन्ति । तस्मान्न शक्नोम्युद्वर्तमानमूलबन्धन हृदय पर्यवस्थापयितुम् ।

२०७ अरुन्धती—अत्र क सन्देह ?—

सतानवाहीन्यपि मानुषाणा
दु खानि सबन्धिवियोगजानि ।
दृष्टे जने प्रेयसि दु सहानि
स्रोत सहस्रैरिव सप्लवन्ते ॥८॥

२०८. कौसल्या—कथ नु खलु वत्साया मे वध्वा वनगताया-स्तस्या पितु राजर्षेर्मुख दर्शयाम ?

२०९ अरुन्धती—

एष व श्लाघ्यसबन्धी जनकाना कुलोद्वह ।
याज्ञवल्क्यो मुनिर्यस्मै ब्रह्मपारायण जगौ ॥९॥

२१० कौसल्या—एष स महाराजस्य हृदयनिर्विशेषो वत्साया मे वध्वा पिता विदेहराज **सीरध्वज** । स्मारितास्मि अनिर्वेदरमणीयान्दिवसान् । हा देव, सर्वं तन्नास्ति ।

जो ही व्यक्ति पहले मेरे लिये शरीरधारी महोत्सव था।
उसका ही दर्शन अब घावमें नमककी तरह असह्य हो गया ॥७॥

(तब अरुंधती, कौसल्या और कंचुकी प्रवेश करते हैं)।

२०४ अरुंधती—हा, मैं कहती हूं, स्वयं ही पास जाकर जनकका दर्शन करो। यह तुम्हारे कुलगुरुका आदेश है। और इसीलिये मुझे भेजा है, सो यह क्यों पद-पदपर भारी हिचकिचाहट है?

२०५ कंचुकी—देवि, अर्ज करता हूं, अपनेको संभाल कर भगवान् वसिष्ठ-के आदेशका पालन करें।

२०६ कौसल्या—ऐसे समय मिथिलेशको मुझे देखना होगा, यह सोच एक साथ ही सारे दुःख एक साथ मुझपर टूट रहे हैं। इसीलिये उखड़ते वृंतवाले हृदयको शांत नहीं कर पाती।

२०७ अरुंधती—इसमें क्या संदेह है?—

संबंधियोंके वियोगसे उत्पन्न, प्रवाहसे बहते मनुष्योंके दुःख, प्रिय-जनके देखने पर सहस्र स्रोतोंसे दुस्सह होकर बहने लगते हैं ॥८॥

२०८ कौसल्या—मेरी बच्चीके वन जानेपर उसके पिता राजर्षिको कैसे मुंह दिखलावें।

२०९ अरुंधती—तुम्हारे यह प्रशंसनीय समधी जनकोंके वंशधर हैं, जिनके लिये याज्ञवल्क्य मुनिने ब्रह्मका उपदेश दिया था ॥९॥

२१० कौसल्या—यह महाराज (दशरथ) के अभिन्न-हृदय, मेरी बच्ची बहूके पिता, विदेहोंके राजा सीरध्वज हैं। उन निर्द्वन्द्व रमणीय दिनोंकी याद आ रही है। हा देव, वह सब नहीं रहा।

२११ जनक—(उपसृत्य) भगवत्यरुन्धति, वैदेह सीरध्वजोऽभिवादयते—

यया पूतमन्यो निधिरपि पवित्रस्य महस,
पतिस्ते पूर्वेषामपि खलु गुरूणा गुरुतम ।
त्रिलोकीमागल्यामवनितललीनेन शिरसा,
जगद्वन्द्या देवीमुषसमिव वन्दे भगवतीम् ॥१०॥

२१२ अरुन्धती—अक्षर ते ज्योति प्रकाश्यताम् । स त्वा पुनातु देव परो रजसा य एष तपति ।

जनक—आर्य गृष्टे, अप्यनामयमस्या प्रजापालकस्य मातु ?

२१३ कचुकी—(स्वगतम्) निरवशेषमतिनिष्ठुरमुपालब्धा: स्म । (प्रकाशम्) राजर्षे, अनेनैव मन्युना चिरपरित्यक्तरामभद्रदर्शना नार्हसि दु खयितुमतिदु खिता देवीम् । रामभद्रस्यापि दैवदुर्योग कोऽपि, यत्किल समन्तत: प्रवृत्तबीभत्सकिंवदन्तीका पौरा न चाग्निशुद्धिमनल्पका. प्रतियन्तीति दारुणमनुष्ठित देवेन ।

२१४ जनक—(सरोषम्) आ, कोऽयमग्निर्नामास्मत्प्रसूतिपरिशोधने ? कष्टमेववादिना जनेन रामभद्रपरिभूता अपि पुन परिभूयामहे ।

२१५ अरुन्धती—(नि श्वस्य) एवमेतत् । "अग्निरग्निरिति" वत्सा प्रति लघून्यक्षराणि, सीतेत्येव पर्याप्तम् । हा, वत्से—

शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा,
विशुद्धेरुत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्ति द्रढयति ।
शिशुत्व स्त्रैण वा भवतु ननु वन्द्यासि जगता,
गुणा पूजास्थान गुणिषु न च लिंग न च वय ॥११॥

२११ जनक—(पास आकर) भगवती अरुंधती, वैदेही सीरध्वज अभिवादन करता है। जिस (तुम्हारे) द्वारा पवित्र तेजकी निधि भी अपनेको पवित्र मानती है।
जिस तुम्हारे पति पूर्व-गुरुओंके भी महान् गुरु है।
उस त्रिलोक-मगला उषा देवीकी तरह,
जगद्वदनीया भगवतीको सिरसे वदना करता हू ।।१०।।

२१२ अरुंधती—अविनाशी ज्योति (ब्रह्म) तुम्हें प्रकाशित हो। वह देव तुम्हें पवित्र करें, जो यह दूर लोकोको भी प्रकाशित करते है।
जनक—आर्य गृष्टि (कचुकी), प्रजापालककी यह माता स्वस्थ तो है?

२१३ कचुकी—(अपने आपसे)हम पर पूरी तौरसे अत्यन्त निष्ठुर ताना मार गया। (प्रकट) राजर्षि, इस कोप द्वारा देरसे रामका (मुह) देखना छोडे अतिदुखिता देवीको दुखित नही करना चाहिये। रामचन्द्रको भी कोई दैवका दुर्योग है, जो कि चारो ओर फैली भीपण अफवाहोके कारण वहुतसे पुरवासी अग्नि-शुद्धिको नही पतियाये, इसलिये देव (राम) ने (वह) दारुण काम किया।

२१४ जनक—(रोप-सहित) आह, मेरी पुत्रीके शुद्ध करनेमें यह अग्नि कौन होता है? हाय, ऐसा कहनेवाला आदमी राम द्वारा अपमानित हमें फिरसे अपमानित कर रहा है।

२१५ अरुवती—(उसास लेकर) ऐसी ही है यह। "अग्नि-अग्नि" यह अक्षर बच्ची (सीता) के वारे में तुच्छ है। सीता यही पर्याप्त है। हा बच्ची—

मेरी शिशु हो या शिष्या इसे रहने दो।
शुद्धिका जो उत्कर्ष है, वह तेरे विपयमें मेरी भक्ति दृढ करता है।
शिशुता हो चाहे स्त्रीत्व, तुम जगतकी वदनीया हो।
गुणियोमें पूजनीय गुण होते है, लिंग और आयु नही ।।११।।

२१६ कौसल्या—अहो, समुन्मूलयन्तीव वेदना ।
जनक —हन्त, किमेतत् ?

२१७ अरुन्धती—राजर्षे, किमन्यत्—
स राजा तत्सौख्य स च शिशुजनस्ते च दिवसा,
स्मृतावार्विभूत त्वयि सुहृदि दृष्टे तदखिलम् ।
विपाके घोरेऽस्मिन्न खलु न विमूढा तव सखी,
पुरध्रीणा चित्त कुसुमसुकुमार हि भवति ॥१२॥

२१८ जनक —हन्त, सर्वथा नृशसोऽस्मि । यश्चिरस्य दृष्टा-
न्प्रियसुहृद प्रियदारानस्निग्ध इव पश्यामि—
स सबन्धी श्लाघ्य प्रियसुहृदसौ तच्च हृदय,
स चानन्द साक्षादपि च निखिल जीवितफलम् ।
शरीर जीवो वा यदधिकमतोऽन्यत्प्रियतर,
महाराज श्रीमान्किमपि मम नासीद् दशरथ ॥१३॥

२१९ कष्टमियमेव सा कौसल्या,—
यदस्या पत्युर्वा रहसि परमन्त्रायितमभूद्,
अभूव दम्पत्यो पृथगहमुपालम्भविषय ।
प्रसादे कोपे वा तदनु मदधीनो विधिरभूद्
अल वा तत्स्मृत्वा दहति यदवस्कन्द्य हृदयम् ॥१४॥

२२० अरुन्धती—हा कष्टम् ! अतिचिरनिरुद्धनि श्वासनि-
ष्पन्द हृदयमस्या ।

जनक —हा प्रियसखि ! (इति कमण्डलूदकेन सिंचति)

कचुकी—

सुहृदिव प्रकटय्य सुखप्रदा,
प्रथममेकरसामनुकूलताम् ।
पुनरकाण्डविवर्तनदारुण,
परिशिनष्टि विधिर्मनसो रुजम् ॥१५॥

२१६. कौसल्या—अहो, पीडा जड़ सी उखाड रही है।
जनक—हन्त, यह क्या ?

२१७ अरुधती—राजर्षि, और दूसरा क्या ?—
वह राजा, वह सुख, वह बच्चे और वे दिन,
तुम जैसे मित्रको देखने पर सब स्मृतिमें प्रकट हो गये।
इस घोर विपाकमें तेरी सखी अमूढ नही रह सकती—
स्त्रियोका चित्त कुसुम सा सुकुमार होता है ॥१२॥

२१८ जनक—हन्त, सर्वथा मैं नृशस हू, जो देर से देखे प्रिय मित्र की स्त्रियो को स्नेह विना देख रहा हू—
वह समधी श्लाघनीय है, वह प्रिय सुहृत्, और वह हृदय (भी)
वह आनन्द सारे जीवन का साक्षात् फल।
शरीर या जीव अथवा इससे अधिक दूसरा जो प्रिय है (सभी थे)
श्रीमान् महाराज दशरथ मेरे क्या नही थे ॥१३॥

२१९ ओह, यही वह कौसल्या है।
इसने या पतिने रहस्य में गुप्त जो सलाह की,
प्रसन्नता या कोप में दोनो पति-पत्नियो के उपालभका
मै अलग लक्ष्य हुआ था, उसके बाद भाग्य मेरे पक्षमें हुआ।
उसे याद करना बेकार है, जो कि हृदय को पीडित कर जलाता है ॥१४॥

२२०. अरुंधती—हा कष्टम्, बहुत देरसे श्वास-गति रुका इसका हृदय है।
जनक—हा प्रियसखि, (कमडलूका जल छिडकते हैं)
कचुकी—
मित्रकी तरह पहले सुखप्रद,
एकरस अनकूलताको प्रकट करके,
फिर एकाएक बदल कर दारुण हो,
दैव मनके रोगको बढाता है ॥१५॥

२२१ कौसल्या—(आश्वस्य) हा, वत्से जानकि ! कुत्रासि ? स्मरामि ते नवविवाहलक्ष्मीपरिग्रहैकमगल सफुल्लमुग्ध-मुखपुण्डरीकमारुहत्कौमुदीचन्द्रसुन्दरम् । एहि मे पुन-रपि जाते उदद्योतयोत्सगम् । सर्वदा महाराज एव भणति—"एषा रघुकुलमहत्तराणा वधूरस्माक तु जनक-सुता दुहितैव ।"

२२२ कचुकी—यथाह देवी,—

पचप्रसूतेरपि तस्य राज्ञ ,
प्रियो विशेषेण सुबाहुशत्रु ।
वधूचतुष्केऽपि तथैव नान्या,
प्रिया तनूजास्य यथैव सीता ॥१६॥

२२३ जनक—हा प्रियसख महाराज दशरथ, एवमसि सर्व-प्रकारहृदयगम । कथ विस्मर्यसे ?

कन्याया किल पूजयन्ति पितरो जामातुराप्त जन,
सवन्धे विपरीतमेव तदभूदाराधन ते मयि ।
त्व कालेन तथाविधोऽप्यपहृत सबन्धबीज च तद्,
घोरेऽस्मिन्मम जीवलोकनरके पापस्य धिग्जीवितम्
॥१७॥

२२४ कौसल्या—जाते जानकि ! किं करोमि ? दृढवज्रलेप-प्रतिवन्धनिश्चल हतजीवित मा मन्दभागिनी न परित्य-जति ।

अरुन्धती—आश्वसिहि राज्ञि, वाप्पविश्रामोऽप्यन्तरेषु कर्तव्य एव । अन्यच्च, किं न स्मरसि यदवोचदृष्य-शृगाश्रमे युष्माक कुलगुरुर्भवितव्य तथेत्युपजातमेव, किंतु कल्याणोदर्क भविष्यतीति ?

२२१ कौसल्या—(सास लेकर) हा, वच्ची जानकी कहा हो ? याद आता है तेरे नवविवाहकी शोभाके परिग्रहके केवल मगलवाला, उठते चन्द्रकी तरह सुन्दर फूला मुग्ध मुखकमल। पुत्री, आ फिर मेरी गोदको उज्वल कर। सदा महाराज कहते थे "यह जनक-सुता तो रघुकुल महत्तरोकी वहू, पर हमारे लिये तो वेटी ही है।

२२२ कचुकी—जो देवी कहती है, वही वात है,—

उस राजाकी पाच सतानोमें भी,
सुवाहुके शत्रु (राम) विशेषकर प्रिय थे।
उसी तरह चारो वहुओमें दूसरी उतनी,
नही प्रिय थी, जैसी कि इनकी पुत्री सीता ॥१६॥

२२३ जनक—हा प्रिय मित्र, महाराज दशरथ, इस प्रकार तुम सव प्रकार से हृदयमें समाये कैसे भूले जा सकते हो—

कन्याके पिता जमाईके पूज्य जनोको पूजते हैं।
सो मेरी आराधना करनेमें तुम्हारा सवध उलटा ही हुआ।
ऐसे तुम काल पाकर छीन लिये गये, किंतु यह सवन्ध का वीज,
इस मेरे घोर ससाररूपी नर्कमें है, मुझ पापीका जीना धिक्कार है ॥१७॥

२२४ कौसल्या—पुत्री जानकी, क्या करूँ ? मजवूत वज्रलेपसे जडा निश्चल हतभागा यह जीवन मुझ अभागिनी को नही छोड रहा है।

अरुधती—रानी, धीरज धरो। वीचमें आसुओको रोकना चाहिये। और क्या तुम्हें नही याद है,शृंगी ऋषि के आश्रम में तुम्हारे कुल-गुरु ने क्या कहा था—जैसी भवितव्यता थी, वैसा ही हुआ, किंतु इसका परिणाम मगल होगा ?

२२५ कौसल्या—कुतोऽतिक्रान्तमनोरथाया ममैतत् ?

२२६ अरुन्धती—तत्कि मन्यसे राजपत्नि ! मृषोद्य तदिति ? नहीद क्षत्रियं, मन्तव्यम्—

आविर्भूतज्योतिषा ब्राह्मणाना,
ये व्याहारास्तेषु मा सशयो भूत्।
भद्रा ह्येषा वाचि लक्ष्मीर्निषक्ता,
नैते वाच विप्लुतार्था वदन्ति ॥१८॥

(नेपथ्ये कलकल, सर्वे आकर्णयन्ति)

२२७ जनक—अये, अद्य खलु शिष्टानध्ययन इत्यस्खलित खेलता बटूना कोलाहल ।

कौसल्या—सुलभसौख्यमिदानी बालत्व भवति। (निरूप्य) अहो, एतेषा मध्ये क एष रामभद्रस्य कौमारलक्ष्मीसावष्टम्भैर्मुग्धललितैरङ्गैर्दारकोऽस्माक लोचने शीतलयति ?

२२८ अरुन्धती—(स्वगतम् सहर्षोत्कण्ठम्) इद नाम भागीरथीनिवेदित रहस्यकर्णामृतम्। न त्वेव विद्म कतरोऽयमायुष्मतो कुशलवयोरिति (प्रकाशम्)—

कुवलयदलस्निग्धश्याम शिखण्डकमण्डनो,
वटुपरिषद पुण्यश्रीक श्रियैव सभाजयन्।
पुनरपि शिशुर्भूत्वा वत्स स मे रघुनन्दनो,
झटिति कुरुते दृष्ट कोऽय दृशोरमृताजनम् ॥१९॥

२२९ कचुकी—नून क्षत्रियब्रह्मचारी दारकोऽयमिति मन्ये। जनक—एवमेतत्। अस्य हि,—

चूडाचुम्बितकङ्कपत्रमभितस्तूणीद्वय पृष्ठतो,
भस्मस्तोकपवित्रलाछनमुरो धत्ते त्वच रौरवीम्।

२२५ कौसल्या—(सभी) मनोरथोंसे वंचित मेरे लिये यह कहा संभव है ?

२२६ अरुंधती—तो क्या राजपत्नी, समझती हो वह कथन झूठा है ? हे क्षत्रियाणी, ऐसा नही समझना चाहिये—

ज्योति जिनके सामने प्रकट है, उन ब्राह्मणोंके
उन व्यवहारोंमें संशय न करो।
इनके वचनमें मंगल लक्ष्मी वसी है।
वे ऊटपटांग अर्थवाली वाणी नही बोलते ॥१८॥

(नेपथ्यमें हल्ला-गुल्ला, सब सुन रहे हैं)

२२७ जनक—अये, आज शिष्ठोके आनेका अनध्याय है, इसलिये अचूक खेलते विद्यार्थियोका (यह) कोलाहल है।
कौसल्या—इस समय बचपन सुख-सुलभ होता है। (देखकर) अहो, इनके बीचमें कौन यह बालक है, जो **रामचन्द्र**के बचपनकी शोभासे युक्त मुग्ध ललित, अपने अंगो द्वारा हमारे लोचनको शीतल कर रहा है ?

२२८ अरुंधती—(अपने आपसे हर्ष और उत्कंठाके साथ) यह तो **भागी-रथी**का बतलाया कानोका गोपनीय अमृत है। पर, यह नही जानती, कि इनमें आयुष्मान् कुश और लवमें कौन-कौन हैं। (प्रकट)—

नील कमलदलसे स्निग्ध और श्याम खोपसे मंडित,
पुण्य शोभावाला बच्चोकी सभाको शोभासे युक्त करते।
वही मेरा बच्चा रघुनंदन फिर शिशु होकर दीखता सा,
यह कौन तुरन्त नेत्रोका अमृतांजन बन रहा है ॥१९॥

२२९ कंचुकी—यह बच्चा मुझे क्षत्रिय-ब्रह्मचारी जान पड़ता हैं।
जनक—यह ऐसा ही है। इसके तो—
चारो ओर चूडामें लगे कौवेके पख और पीठकी ओर दो तूणीर है, छातीमें भस्मका थोडा सा पवित्र तिलक यह रुरुका मृगछाला धारण किये है।

गतम्) दिष्ट्या न केवलमुत्सगश्चिरान्मनोरथोऽपि मे पूरित ।

२३६ कौसल्या—जात, इतोऽपि तावदेहि। अहो न केवल दरविस्पष्टकुवलयमासलोज्ज्वलेन देहबन्धनेन कवलितारविन्दकेसरकषायकण्ठकलहसघोषघर्घरनादिना स्वरेणच रामभद्रमनुसरति। ननु कठोरकमलगर्भपक्ष्मलशरीरस्पर्शोऽपि तादृश एव। जात, पश्यामि ते मुखपुण्डरीकम्। राजर्षे, किं न पश्यसि निपुण निरूप्यमाणो वत्साया मे वध्वा मुखचन्द्रेणापि सवदत्येव ?

जनक—पश्यामि सखि, पश्यामि।

२३७ कौसल्या—अहो, उन्मत्तीभूतमिव मे हृदय कुतो मुख विलपति।

जनक—

वत्सायाश्च रघूद्वहस्य च शिशावस्मिन्नभिव्यज्यते,
सवृत्ति प्रतिबिम्बितेव निखिला सैवाकृति सा द्युति ।
सा वाणी विनय स एव सहज पुण्यानुभावोऽप्यसौ,
हा हा देवि ! किमुत्पथैर्मम मन पारिप्लव धावति ।।२२।।

२३८ कौसल्या—जात, अस्ति ते माता, स्मरसि वा तातम् ?
लव—नहि।

२३९ कौसल्या—तत कस्य त्वम् ?
लव—भगवत सुगृहीतनामधेयस्य वाल्मीके ।

२४० कौसल्या—अयि जात, कथितव्य कथय।
लव—एतावदेव जानामि।

(नेपथ्ये)

भो भो सैनिका । एप खलु कुमारश्चन्द्रकेतुराज्ञापयति "न केनचिदाश्रमाभ्यर्णभूमय आक्रमितव्या" इति।

मेरा गोद ही नही चिरकालसे पोषित मेरा मनोरथ भी पूरा हो गया।

२३६ कौसल्या—पुत्र, इधर भी जरा आ। अहो, केवल फूले स्पष्ट नील-कमलसे मासल उज्ज्वल देहके अगोंसे ही नही, बल्कि कमल-केसरके कषायको खाये कठवाले हसके घोषकी तरह घर्-घर् करनेवाले स्वरसे भी यह रामभद्रका अनुकरण कर रहा है। हा, कठोर कमल-केसरकी पलकोवाले (इसके) शरीरका स्पर्श भी वैसा ही है। पुत्र, तेरे मुख-कमलको देख रही हू। राजर्षि, क्या अच्छी तरह देखनेपर मेरी बछिया के मुख-चन्द्र सा नही दीखता?

जनक—देखता हू सखी, देखता हू।

२३७ कौसल्या—अहो, उन्मत्त हुआ मेरा हृदय कहासे मुख विलाप कर रहा है?

जनक—

बच्ची और रघुनदनकी समानता इस शिशुमें व्यक्त हो रही है।
वही आकृति, वही सारी द्युति प्रतिबिम्बित सी है।
वही वाणी है, वही विनय और वही सहज पुण्य प्रभाव भी।
हा-हा देवी, क्यो मेरा मन विपथमें बेतहासा दौड रहा है ॥२२॥

२३८ कौसल्या—पुत्र, तेरी माता है? बापको जानता है?

लव—नही।

२३९ कौसल्या—तो तू किसका है?

लव—सुन्दर नामधारी भगवान् वाल्मीकिका।

२४० कौसल्या—हे पुत्र, कहना है, सो कह।

लव—मैं इतना ही जानता हूं।

(नेपथ्यमें)

हे-हे सैनिको, यह कुमार चन्द्रकेतु आज्ञा दे रहे हैं, कि "कोई आश्रमके पासकी भूमिकी आक्रात न करे।"

२४१ अरुन्धतीजनकौ—अये, मेध्याश्वरक्षाप्रसगादुपागतो वत्स-
श्चन्द्रकेतुर्द्रष्टव्य इत्यहो सुदिवस ।

२४२ कौसल्या—वत्सलक्ष्मणस्य' पुत्रक आज्ञापयतीत्यमृत-
विन्दुसुन्दराण्यक्षराणि श्रूयन्ते।
लव—आर्य, क एष चन्द्रकेतुनामि ?

२४३ जनक—जानासि रामलक्ष्मणौ दाशरथी ?
लव—एतावेव रामायणकथापुरुषौ।

२४४ जनक—अथ किम्।
लव—तत् कथ न जानामि ?

२४५ जनक—तस्य लक्ष्मणस्यायमात्मजश्चन्द्रकेतु ।
लव—ऊर्मिलाया पुत्रस्तर्हि मैथिलस्य राजर्षेर्दौहित्र ।
अरुन्धती—आविष्कृत कथाप्रावीण्य वत्सेन।

२४६, जनक—(विचिन्त्य) यदि त्वमीदृश कथायामभिज्ञ-
स्तद् ब्रूहि तावत्पश्यामस्तेषा दशरथस्य पुत्राणा कियन्ति
किंनामधेयान्यपत्यानि केषु दारेषु प्रसूतानि ?
लव—नाय कथाविभागोऽस्माभिरन्येन वा श्रुतपूर्व ।

२४७ जनक—कि न प्रणीत कविना ?
लव—प्रणीतो न प्रकाशित । तस्यैव कोऽप्येकदेश प्रब-
न्धान्तरेण रसवानभिनेयार्थ कृत । त च स्वहस्तलिखित
मुनिर्भगवान्व्यसृजद् भगवतो भरतस्य तौर्यत्रिकसूत्रधा-
रस्य।

२४८ जनक—किमर्थम् ?
लव—स किल भगवान्भरतस्तमप्सरोभि प्रयोजयिष्य-
तीति।

२४९ जनक—सर्वमिदमाकूततरमस्माकम्।
लव—महती पुनस्तस्मिन्भगवतो वाल्मीकेरास्था, यत

२४१ अरुधती और जनक—अरे, अश्वमेधके अश्वकी रक्षाके प्रसगसे आये वच्चा **चन्द्रकेतु**को देखना है! अहो, कितना अच्छा दिन है।

२४२ कौसल्या—वच्चा लक्ष्मणका पुतवा आज्ञा दे रहा है, यह अमृतकी बूदकी तरहके सुन्दर अक्षर सुनाई दे रहे हैं।

लव—कौन है आर्य, कौन है यह चन्द्रकेतु ?

२४३ जनक—जानते हो, दशरथके पुत्र **राम-लक्ष्मण**को ?

लव—यही तो दोनो **रामायण** कथाके पुरुष है।

२४४ जनक—और क्या ?

लव—तो कैसे नही जानूगा।

२४५ जनक—उसी लक्ष्मणका यह पुत्र चन्द्रकेतु है।

लव—तो उर्मिला का पुत्र, **मैथिल** राजर्षिका नाती है।

अरुधती—वच्चेने वातमें अपनी चतुराई प्रकट कर दी।

२४६ जनक—(सोचकर) यदि तू कथासे इतना अभिज्ञ है, तो वतला, हम देखेंगे, दशरथके पुत्रोके कितने, कौन से नामवाले, किन-किन पत्नियोमें उत्पन्न सतानें है ?

लव—हमने या दूसरेने कथाका यह भाग पहले नही सुना।

२४७ जनक—क्या कविने वनाया नही ?

लव—वनाया, लेकिन प्रकाशित नही किया। उसीके किसी अंशको दूसरे प्रवन्ध द्वारा रसयुक्त अभिनयके योग्य वनाया। और उसे अपने हाथसे लिख भगवान् मुनिने भगवान् **भरत** नृत्य-गीत-वादनके आचार्यको प्रदान किया।

२४८ जनक—किसलिये ?

लव—जिसमें भगवान् भरत उसका अप्सराओंसे अभिनय करायें।

२४९ जनक—यह सव हमारे लिये अति कौतूहलजनक है।

लव—भगवान् वाल्मीकिकी उनमें वडी आस्था है, इसीलिये किन्ही ऋषियोंके हाथसे पुस्तक भरतके आश्रममें भेज दी। उनके साथ

केषाञ्चिदन्तेवासिना हस्तेन तत्पुस्तक भरताश्रम प्रति प्रेषितम्। तेषामनुयात्रिकश्चापपाणि प्रमादच्छेदनार्थमस्मद्भ्राता प्रेषित ।

२५० कौसल्या—जात, भ्रातापि तेऽस्ति ?

लव —अस्त्यार्य कुशो नाम।

२५१ कौसल्या—ज्येष्ठ इति भणित भवति।

लव —एवमेतत्। प्रसवानुक्रमेण स किल ज्यायान्।

जनक —किं यमावायुष्मन्तौ ?

लव —अथ किम्।

२५२ जनक —वत्स, कथय कथाप्रपचस्य कियान् पर्यन्त ?
लव —अलीकपौरापवादोद्विग्नेन राज्ञा निर्वासिता देवी देवयजनसभवा सीतामासन्नप्रसववेदनामेकाकिनीमरण्ये लक्ष्मण परित्यज्य प्रतिनिवृत्त इति।

२५३ कौसल्या—हा, वत्से मुग्धमुखि, क इदानी ते शरीरकुसुमस्य झटिति दैवदुर्विलासपरिणाम एकाकिन्या निपतित !

जनक —हा वत्से !

नून त्वया परिभव च वन च घोर,
ता च व्यथा प्रसवकालकृतामवाप्य।
क्रव्याद्गणेषु परित परिवारयत्सु,
सत्रस्तया शरणमित्यसकृत्स्मृतोऽहम् ।।२३।।

२५४—लव —अये कावेतौ ?

अरुन्धती—इय कौसल्या। अय जनक । (लव सबहुमानखेदकौतुक पश्यति)

२५५ जनक —अहो, निर्दयता दुरात्मना पौराणाम्। अहो, रामभद्रस्य क्षिप्रकारिता—

विघ्नको हटानेके लिये हाथमें धनुष लिये हमारे भाई- को भेजा।

२५० कौसल्या—पुत्र, तेरे भाई भी है?

लव—हैं, आर्य कुश नामक।

२५१ कौसल्या—जेठा यह कह सकते है।

लव—ऐसा ही है। जन्मके क्रमसे वह बडे है।

जनक—क्या तुम आयष्मान् जुडवा हो?

लव—और क्या?

२५२ जनक—बच्चा, बता तो कथा का विस्तार कितना समाप्त हुआ है।

लव—नागरिकोके झूठे लाछनसे उद्विग्न हो राजाने जल्दी प्रसव-वेदनावाली यज्ञसे उत्पन्न देवी सीताको निर्वासित कर दिया, और उन्हें एकाकिनी छोडकर **लक्ष्मण** लौट गये, (बस) इतना तक।

२५३ कौसल्या—हा बच्ची मुग्धमुखी, इस समय एकाकिनी तेरे शरीर-कुसुम पर दैवकी क्रूरताका परिणाम क्यो आ पडा?

जनक—हा बच्ची—

निश्चय तूने तिरस्कार, घोर वन,
और प्रसवकालकी उस व्यथाको पाकर,
चारो ओर हिंस्र जन्तुओंसे घिरी,
भयभीत हो शरणके लिये अनेक वार मुझे याद किया होगा।।२३।।

२५४ लव—आर्या, ये दोनो कौन हैं?

अरुधती—यह कौसल्या, यह जनक हैं। (लव सम्मान, खेद, कौतूहल सहित देखता है)

२५५ जनक—अहो दुष्ट पुरवासियोकी निर्दयता, अहो **रामभद्र**की जल्द-बाजी—

एतद्वैशसवज्रघोरपतन शश्वन्ममोत्पश्यत,
क्रोधस्य ज्वलितु झटित्यवसरश्चापेन शापेन वा।

२५६ कौसल्या—(सभयकम्पम्) भगवति, परित्रायताम्, प्रसादय कुपित राजर्षिम्।

लव —

एतद्धि परिभूताना प्रायश्चित्त मनस्विनाम्।

२५७ अरुन्धती—

राजन्नपत्य रामस्ते पाल्याश्च कृपणा जना ॥२४॥

जनक —

शान्त वा रघुनन्दने तदुभय यत्पुत्रभाण्ड हि मे,
भूयिष्ठद्विजबालबृद्धविकलस्त्रैणश्च पौरो जन ॥२५॥

(प्रविश्य सभ्रान्ता बटव)

२५८ कुमार, कुमार, अश्वोऽश्व इति कोऽपि भूतविशेषो जनपदेष्वनुश्रूयते, सोऽयमुधुनाऽस्माभि स्वय प्रत्यक्षीकृत।

२५९ लव —अश्वोऽश्व इति नाम पशुसमाम्नाये साग्रामिके च पठ्यते, तद्ब्रत कीदृश ?

२६० बटव —अये, श्रूयताम्,—

पश्चात्पुछ वहति विपुल तच्च धूनोत्यजस्र,
दीर्घग्रीव स भवति खुरास्तस्य चत्वार एव।
शष्पाण्यत्ति प्रकिरति शकृत्पिण्डकानाम्रमात्रान्,
किं व्याख्यानैर्व्रजति स पुनर्दूरमेह्येहि याम ॥२६॥

(इत्यजिने हस्तयोश्चाकर्षन्ति)

२६१ लव —(सकौतुकोपरोधविनयम्) आर्या, पश्यत। एभिर्नीतोऽस्मि। (इति त्वरित परिक्रामति)।
अरुन्धतीजनकौ—महत्कौतुक वत्सस्य।

मेरे देखते, यह भयकर घोर वज्रका वरावर गिरना
चाप या शापसे क्रोधके जल्दी जल उठनेका अवसर है।
तिरस्कृत मनस्वियोका यही प्रायश्चित्त है।

२५६ कौसल्या—(भयके साथ कापती) भगवती, रक्षा करें, कुपित राजर्षि को मनायें।
लव—
तिरस्कृत मनस्वियो का यही प्रायश्चित है।

२५७ अरुधती—
हे राजन, राम तेरी सन्तान है, अभागे आदमियोकी तुम्हें रक्षा करनी चाहिये ॥२४॥
जनक—
वह दोनो रघुनदनने शान्त कर दिया, क्योकि वह मेरे पुत्र-धन हैं।
अधिकाश पुरवासी जन ब्राह्मण, वाल, वृद्ध, अपग, स्त्रिया है ॥२५॥
(प्रवेश करके घवराये हुये विद्यार्थी समूह)

२५८ 'कुमार, कुमार, "घोडा-घोडा" ऐसा कोई भूत सा देशमें सुनाई दे रहा है। उसे हमने स्वय प्रत्यक्ष देखा।

२५९ लव—"घोडा-घोडा", यह नाम तो (कोशमें) पशुओंके वर्गमें और सग्रामके सम्वन्धमें पढा जाता है, सो वतलाओ कैसा है वह?

२६० वटुगण—अरे सुनिये—
पीछे विपुल पूछ को धारण करता जो वरावर हिलती रहती है।
वह लम्वी गरदनवाला है, उसके चार ही खुर है।
घास खाता है, आमके वारावरकी लेंडीवाला पाखाना विखेरता है।
वहुत व्याख्या करनेसे क्या, वह दूर जा रहा है, आओ चलें ॥२६॥
(यह कह मृगछाला और हाथो को पकड लवको खीचते हैं)

२६१ लव—(कुतूहलके अनुरोव और विनयके साथ) आर्यो, आर्यो, देखो ये मुझे ले जा रहे हैं। (जल्दी चला जाता है)
अरुधती और जनक—बच्चेको वडा कौतूहल है।

२६२. कौसल्या—अरण्यगर्भरूपालापैर्यूय तोषिता वय च। भगवति, जानामि त प्रेक्ष्यन्ती वचितेव। तस्मादितोऽन्यतो भूत्वा प्रेक्षामहे तावत्पलायमान दीर्घायुषम्।
अरुन्धती—अतिजवेन दूरमतिक्रान्त, स चपल. कथ दृश्यते।
कचुकी—(प्रविश्य) भगवान्वाल्मीकिराह "ज्ञातव्यमेतदवसरे भवद्भि" रिति।

२६३. जनक —अतिगम्भीरमेतत्किमपि। भगवत्यरुन्धति, सखि कौसल्ये, आर्य गृष्टे, स्वयमेव गत्वा भगवन्त प्राचेतसं पश्याम ।

(इति निष्क्रान्तो वृद्धवर्ग)

(प्रविश्य)

(६) लवपराक्रम·—

२६४. वटव —पश्यतु कुमारस्तावदाश्चर्यम्।
लव —दृष्टमवगत च, नूनमाश्वमेधिकोऽयमश्व.।

२६५. वटव —कथ ज्ञायते ?

लव —ननु मूर्खा , पठितमेव हि युष्माभिरपि तत्काण्डम्। किं न पश्यथ प्रत्येक शतसख्या कवचिनो दण्डिनो निषगिणश्च रक्षितार ? तत्प्रायमेवान्यदपि दृश्यते। यदि च विप्रत्ययस्तत्पृच्छथ।

२६६. वटव —भो भो, किंप्रयोजनोऽयमश्व परिवृत पर्यटति ?
लव —(सस्पृहमात्मगतम्) अश्वमेध इति नाम विश्वजयिना क्षत्रियाणामूर्जस्वल सर्वक्षत्रपरिभावी महानुत्कर्षनिकप ।

२६२. कौसल्या—अरण्यचारियो जैसे (उसके) भाषणसे तुम और हम तुष्ट हुये। भगवती, मैं जानती हू, उसे देखती मैं वञ्चित सी हू। इसलिये यहासे अन्यत्र चलकर भागते हुये दीर्घायुको देखें।

अरुधती—वडे वेगसे दूर चला गया, वह चचल कैसे दिखाई पडेगा।

कचुकी—(प्रवेश करके) भगवान् वाल्मीकि कह रहे हैं "इसे समय पर आपको जानेंगे।"

२६३ जनक—यह कोई अतिगम्भीर वात है। भगवती अरुधती, सखी कौसल्या, आर्य गृष्टि, स्वयं ही हम चलकर भगवान् वाल्मीकिको देखें।

(वृद्ध लोग चले गये)

(प्रवेश करके)

६. लवपराक्रम—

२६४ वटुगण—कुमार अचरज ! देखें।

लव—देखा और जान भी लिया। निश्चय ही यह अश्वमेध का घोडा है।

२६५ वटुगण—कैसे मालूम हुआ ?

लव—मूर्खो, तुमने भी उस काण्डको पढा ही है। देख नही रहे हो, प्रत्येकपर सौ सख्यामें कवचधारी, दडधारी, तूणीरधारी रक्षक है ? करीव उतना ही और भी दीखता है। यदि सदेह है, तो पूछ लो।

२६६ वटुगण—हे-हे, किसलिये लोगोसे घिरा यह घोडा घूम रहा है ?

लव—(लालसाके साथ अपने आपसे) अश्वमेध तो विश्व-विजयी ओजस्वी सव क्षत्रियोका तिरस्कारक, वडे वैभवकी कसौटी है।

(नेपथ्ये)

योऽयमश्व पताकेयमथवा वीरघोषणा।
सप्तलोकैकवीरस्य दशकण्ठकुलद्विप ॥२७॥

२६७ लव —(सगर्वमिति) अहो सदीपनान्यक्षराणि।
बटव —किमुच्यते ? प्राज्ञ खलु कुमार।

२६८ लव —भो भो, तत्किमक्षत्रिया पृथिवी यदेवमुद्घोष्यते ?
(नेपथ्ये) रे रे महाराज प्रति कुत क्षत्रिया ?

२६९ लव —धिग्जाल्मान्,
यदि नो सन्ति सन्त्येव केयमद्य विभीषिका ?
किमुक्तैरेभिरधुना ता पताका हरामि व ॥२८॥
हे बटव, परिवृत्य लोष्टैरभिघ्नन्तो नयतैनमश्वम्।
एष रोहिताना मध्येचरो भवतु।

(प्रविश्य सक्रोध)

२७० पुरुष —धिक्चपल, किमुक्तवानसि ? तीक्ष्णतरा ह्यायुधश्रेणय शिशोरपि दृप्ता वाच न सहन्ते। राजपुत्रश्चन्द्रकेतुर्दुर्दान्त, सोऽप्यपूर्वारण्यदर्शनाक्षिप्तहृदयो न यावदायाति, तावत् त्वरितमनेन तरुगहनेनापसर्पत।

२७१ बटव —कुमार, कृत कृतमश्वेन। तर्जयन्ति विस्फारितशरासना कुमारमायुधीयश्रेणय। दूरे चाश्रमपदमित। तदेहि, हरिणप्लुतै पलायामहे।

२७२ लव —किं नाम विस्फुरन्ति शस्त्राणि ? (इति धनुरारोपयन)—

ज्याजिह्वया वलयितोत्कटकोटिदंष्ट्रम्,
उद्भूरिघोरघनघर्घरघोपमेतत्।
ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्र-,
जृम्भाविडम्बि विकटोदरमस्तु चापम् ॥२९॥

(इति यथोचित परिक्रम्य निष्क्रान्ता सर्वे)

—अक ४

(नेपथ्यमें)

जो यह घोडा, यह पताका अथवा वीरोचित घोषणा है।
वह सातो लोकोके अद्वितीय वीर रावण-वंशके शत्रुकी है ॥२७॥

२६७ लव—(गर्वके साथ) अहो ये अक्षर उत्तेजित कर रहे है।
बटुगण—क्या कहते हैं ? कुमार निश्चय बुद्धिमान् है।

२६८ लव—हे-हे, तो क्या पृथ्वी क्षत्रिय-विहीन है, जो कि इस तरह घोषित किया जा रहा है ?

(नेपथ्यमें) रे-रे, महाराजके सामने कहा है, क्षत्रिय ?

२६९ लव—धिक् दुष्टो।
यदि नही है, तो हैं ही, आज यह भय दिखलाना क्यो ?
इनके कहनेसे क्या ? अब तुम्हारी उस पताकाको मैं हरण करता हू ॥२८॥
हे बटुओ, लौटकर डेलोसे मारते इस घोडेको ले चलो। यह मृगोके बीचमें चरेगा।

(प्रवेश करके क्रोधके साथ)

२७० पुरुष—चपल धिक्, तूने क्या कहा ? हथियारोकी अतितीक्ष्ण पाँतिया शिशुकी भी गर्वीली बातको नही सह सकती। राजपुत्र चन्द्रकेतु दुर्दान्त हैं, वह अपूर्व अरण्यदर्शनसे आकृष्ट हो जब तक नही आते, तब तक जल्दी ही इस घने वृक्षो में से होकर भाग जाओ।

२७१ बटुगण—कुमार, रहने दो, रहने दो घोडेको। शस्त्रधारियोकी पाँती धनुषको फैलाकर डरा रही है और यहासे आश्रम दूर है। सो आओ, हरिनकुदान करते भाग चलें।

२७२ लव—क्या हथियार चमक रहे हैं ? (धनुषको चढा)—
प्रत्यचारूपी जिह्वा के साथ लपेटे उत्कट छोररूपी दाढ वाला,
अतिअधिक घोर, घने घर्-घर् घोषवाला,
ग्रसनेमें लगे हसते यमके मुख-यन्त्रकी जम्हाई जैसा,।
विकट उदरवाला यह (मेरा) चाप होवे ॥२९॥

(यथोचित परिक्रमा करके सब बाहर चले गये)

—अक ४

३७. भट्ट नारायण (७३० ई०)

३७. भट्ट नारायण (७३० ई०)—किंवदन्तियोंके अनुसार भट्ट नारायण उन ब्राम्हणोंसे थे, जिन्हें आदिशूर राजा ने कान्यकुब्ज देशसे बंगालमें बुलवाया था। आदिशूर ७१५ ई० में गौड़ देशके राजा बने। आदिशूर के वंशका स्थान पीछे पाल-वंशने लिया। यह भी कहा जाता है, कि

वेणीसंहारः

(१) अश्वत्थाम्नः-कोपः—

१ (तत प्रविशत्याकृष्टखड्गै कलकलमाकर्णयन्नश्वत्थामा)

२ अश्वत्थामा—

महाप्रलयमारुतक्षुभितपुष्करावर्तक-
प्रचण्डघनगर्जितप्रतिरवानुकारी मुहु !
रव श्रवणभैरव स्थगितरोदसीकन्दर,
कुतोऽद्य समरोदधेरयमभूतपूर्व पुर ॥४॥

(विचिन्त्य) ध्रुव गाण्डीविना सात्यकिना वृकोदरेण वा यौवनदर्पादतिक्रान्तमर्यादेन परिकोपितस्तात । यत समुल्लघ्य शिष्यप्रियतामात्मप्रभावसदृशमाचेष्टते। तथा हि,—

यद्दुर्योधनपक्षपातसदृग युक्त यदस्त्रग्रहे,
रामाल्लब्धसमस्तहेतिगुरुणो वीर्यस्य यत्साप्रतम् ।
लोकेसर्वधनुष्मतामधिपतेर्यच्चानुरूप रुष,
प्रारब्ध रिपुघस्मरेण नियत तत्कर्म तातेन मे॥५॥

३ (पृष्ठतो विलोक्य) तत्कोऽत्र ? रथमुपनयतु। अथवाऽलमिदानी मम रथप्रतीक्षया। सशस्त्र एवास्मि सजलजलधरप्रभाभासुरेण सुप्रग्रहविमलकलधौतत्सरुणामुना खड्गेन। यावत्समरभुवमवतरामि। (परिक्रम्य, वामा-

३७. भट्ट नारायण (७३० ई०)

मगधके गुप्तवंशी राजा आदित्यसेन और आदिशूर एक ही हैं। भट्ट नारायणकी एक ही कृति "वेणिसहार" (नाटक) मिलती है। द्रौपदीको दुःशासन बाल खींचकर सभामें लाया था। द्रौपदीने वेणीको दुर्योधनके रक्तसे धोकर बांधनेकी प्रतिज्ञावाली बातको यहां मुख्य बनाया गया है। यह नाटक भी उन्हीं दोषोंसे दूषित है, जिनसे अपभ्रंश-कालके अन्य काव्य और नाटक।

वेणीसंहार

१. अश्वत्थामा का कोप—

१. (तब कल्-कल् सुन तलवार खीचे अश्वत्थामा प्रवेश करते हैं)

२ अश्वत्थामा—

महाप्रलयकी वायुसे क्षुब्ध मेघके प्रचड घन-गर्जनकी
प्रतिध्वनिका अनुकरण करनेवाला, क्षण भर कानके लिये भयकर
आकाश-पृथिवीकी कदराको भरता,
किस समररूपी सागरसे आज यह अभूतपूर्व शब्द सामने (उठ रहा) है ॥४॥

(सोचकर) निश्चय अर्जुन, सात्यकि या भीमने यौवनके अभिमानसे मर्यादा छोड बापूको कुपित किया, इसीलिये अपने प्रभावमें समान शिष्यकी अतिप्रियता को वह उल्लघन कर व्यवहार कर रहे हैं। जो दुर्योधनके पक्षपात के अनुकूल है, जो हथियार ग्रहण करनेमें उचित है, परशुरामसे मिले सारे हथियारोवाले गुरु के पराक्रमके जो अनुकूल है।

ससारमें सारे धनुर्धारियोके स्वामीके कोपके जो अनुरूप है,
निश्चय वह कार्य मेरे शत्रु-भक्षक बापूने आरभ किया है ॥५॥

३ (पीठकी ओर देख कर) तो यह कौन है? रथको नजदीक ले चलो। अथवा रथकी प्रतीक्षा करना मेरे लिये व्यर्थ है। जलयुक्त मेघकी प्रभा जैसे चमकते, सुन्दर रस्सीवाले, विमल सुवर्णके मियानवाले इस खड्ग के साथ मैं सशस्त्र ही हू। तो (अब) समरभूमिमें उतरता

क्षिस्पन्दन सूचयित्वा) अये ममापि नामाश्वत्थाम्न समरमहोत्सवप्रमोदनिर्भरस्य तातविक्रमदर्शनलालसस्यानिमित्तानि समरगमनविघ्नमुत्पादयन्ति। भवतु, गच्छामि। (सावष्टभ परिक्रम्याग्रतो विलोक्य) कथमवधीरितक्षात्रधर्माणामुज्झितसत्पुरुषोचितलज्जावगुण्ठनाना विस्मृतस्वामिसत्कारलघुचेतसाद्विरदतुरगमचरणचारिणामगणितकुलयश सदृशपराक्रमव्रताना रणभूमे समन्तादपक्रामतामय महान्नादो बलानाम्? (निरूप्य) हा हा धिक्कष्टम्! कथमेते महारथा कर्णादयोऽपि समरात्पराङमुखा भवन्ति? कथ नु ताताधिष्ठितानामपि बलानामियमवस्था भवेत्? भवतु, सस्तम्भयामि। भो भो कौरवसेनासमुद्रवेलापरिपालनमहामहीधरा नरपतय, कृत कृतममुना समरपरित्यागसाहसेन—

यदि समरमपास्य नास्ति मृत्योर्,
भयमिति युक्तमितोऽन्यत प्रयातुम्।
अथ मरणमवश्यमेव जन्तो,
किमिति मुधा मलिन यश कुरुध्वे॥६॥

४. अपि च

अस्त्रज्वालावलीढप्रतिबलजलधेरन्तरौर्वायमाणे,
सेनानाथे स्थितेऽस्मिन्मम पितरि गुरौ सर्वधन्वीश्वराणाम्।
कर्णाल सभ्रमेण व्रज कृप समर मुच हार्दिक्यशका,
ताते चापद्वितीये वहति रणधुर को भयस्यावकाश॥७॥

(नेपथ्ये)

कुतोऽद्यापि ते तात।

हू। (परिक्रमा करके बाई आंखका फडकना जानकर) अये, समर-महोत्सवके प्रमोदमें लीन बापूके विक्रमके दर्शनेच्छुक मुझ अश्वत्थामा केलिये असगुन समरमें जानेमें विघ्न पैदा कर रहे हैं। अस्तु, जाता हू। (दर्पपूर्वक परिक्रमा करके आगेकी ओर देखकर) क्षत्रियके धर्मको तिरस्कार किये, सत्पुरुषोके योग्य लज्जाके पर्देको छोड, स्वामीके सत्कारको भूली, क्षुद्र हृदयवाले हाथी-घोडे पर या पैदल चलनेवाली, अगणित कुलोके यशके अनुकूल पराक्रमका व्रत लेनेवाली रणभूमि में चारो ओरसे आक्रमण करती सेनाओका क्या यह महानाद है ? (अच्छी तरह देखकर) हा-हा, छि-छि सेनाकी यह अवस्था होती है। अस्तु रोकता हू। हे-हे कौरव-सेनारूपी समुद्रके तटके रक्षक महापर्वत जैसे राजाओ, समर छोडनेके इस प्रयासको छोडो-छोडो—

यदि युद्ध छोडदेनेपर मृत्युका भय नही, तो यहासे अन्यत्र प्रयाण करना, ठीक है। यदि प्राणीको मरना अवश्य है, तो यशको क्यो व्यर्थ मलिन करते हो ॥६॥

४ और भी—

अस्त्ररूपी ज्वालासे ग्रसित शत्रु-सेनारूपी सागरके भीतर बडवानल से होते, सारे धनुर्धरेश्वरोके गुरु मेरे पिताके सेनापति होते,
हे कर्ण, भय छोड, कृप, समरमें जा हृदयकी शका छोड।
धनुपके साथ रणकी धुराको बापूके धारण करते भयका अवकाश कहा ॥७॥

(नेपथ्यमें)

क्यो आज भी तुम्हारे बापू ?

अश्वत्थामा—(श्रुत्वा) किं ब्रूथ—"कुतोऽद्यापि ते तात" इति? (सरोषम्) आ क्षुद्रा भीरव, कथमेव प्रलपता व सहस्रधा न दीर्णमनया जिह्वया ?

दग्धु विश्व दहनकिरणैर्नोदिता द्वादशार्का,
वातावाता दिशि दिशि न वा सप्तधा सप्त भिन्ना ।
छन्न मेघैर्न गगनतल पुष्करावर्तकाद्यै,
पाप पापा कथयत कथ शौर्यराशे पितुर्मे ॥८॥

(प्रविश्य सभ्रान्त सप्रहार)

सूत —परित्रायता परित्रायता कुमार । (इति पादयो पतति)

अश्वत्थामा—(विलोक्य) अये, कथ तातस्य सारथिरश्वसेन ? आर्य, ननु त्रैलोक्यत्राणक्षमस्य सारथिरसि। किं मत्त परित्राणमिच्छसि ?

सूत —(सकरुणम्) कुतोऽद्यापि ते तात !

सूत —अथ किम् ?

अश्वत्थामा—हा तात ! (इति मोहमुपगत) ।

सूत —कुमार, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

अश्वत्थामा—(लब्धसज्ञ. सास्रम्) हा तात ! हा सुतवत्सल ! हा लोकत्रयैकधनुर्धर ! हा जामदग्न्यास्त्रसर्वस्वप्रतिग्रहप्रणयिन् ! क्वासि ? प्रयच्छ मे प्रतिवचनम् ।

सूत —कुमार, अलमत्यन्तशोकावेगेन । वीरपुरुषोचिता विपत्तिमुपगते पितरि त्वमपि तदनुरूपेणैव वीर्येण शोकसागरमुत्तीर्य सुखी भव ।

अश्वत्थामा—(अश्रूणि विमुच्य) आर्य, कथय कथय कथ तादृग्भुजवीर्यसागरस्तातोऽपि नामास्तमुपगत ?

५ अश्वत्थामा—(सुनकर) क्या कहते हो ? "क्या आज भी तुम्हारे वापू"। (रोपके साथ) ओ क्षुद्र डरपोको, ऐसा प्रलाप करते तुम्हारी यह जीभ हजार टुकडे क्यो न हो गई ?

दुष्टो, शौर्यकी राशि मेरे पिताकी वुराई मुहसे क्यो निकालने पर अपनी अग्नि-किरणोसे विश्वको जलानेके लिये वारह सूर्य उदित नही हो गये, उन्चास वायु दिशा-दिशामें फूट नही निकले। प्रलयके पुष्करावर्त आदि मेघो से आकाश ढक नही गया ।।८।।

(प्रवेश करके भय और प्रहार करते)

६ सूत—कुमार, रक्षा करें, रक्षा करें। (चरणो में गिर पडता है)
अश्वत्थामा—(देखकर) अये, क्या वापूका सारथी अश्वसेन है ? आर्य, तुम तो तीनो लोकोकी रक्षा करनेमें समर्थ पुरुप के सारथी हो ? क्या पागल हो (जो) रक्षा चाहते हो ?

७ सूत—(करुणाके साथ) क्या आज भी तुम्हारे वापू हैं ?
अश्वत्थामा—(आवेगके साथ) क्या वापू अस्त हो गये ?
सूत—और क्या ?
अश्वत्थामा—हा तात, (मूर्छित हो गया)
सूत—कुमार, धीरज धरो, धीरज धरो।

८ अश्वत्थामा—(होशमें आकर दु खके साथ) हा तात, हा पुत्र-वत्सल, हा तीनो लोकके सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर, हा परशुरामके सारे हथि-यारोके स्वीकृत-प्रेमी, कहा हो ? मुझे उत्तर दो।
सूत—कुमार, शोकके अत्यन्त आवेगको छोडो। पिताके वीर पुरुषो-के योग्य, गति पाने पर तुम भी उन्हीके अनुरूप पराक्रम करते शोक-सागर पार हो सुखी होओ।

९ अश्वत्थामा—(आसुओको पोछकर) आर्य, वताओ, वताओ कैसे वैसे भुज-पराक्रमके सागर वापू अस्त हुये।

किं शिष्याद् गुरुदक्षिणा गुरुगदा भीमप्रिय प्राप्तवान् ?
सूत —शान्त पापम् ।
अश्वत्थामा—
अन्तेवासिदयालुरुज्झितनयेनासादितो जिष्णुना ?
सूत —कथमेव भविष्यति ?
अश्वत्थामा—
गोविन्देन सुदर्शनस्य निशित धारापथ प्रापित ?
सूत —एतदपि नास्ति।
अश्वत्थामा—
शके नापदमन्यत खलु गुरोरेभ्यश्चतुर्थादहम् ॥९॥
सूत —कुमार,—
एतेऽपि तस्य कुपितस्य महास्त्रपाणे,
किं धूर्जटेरिव तुलामुपयान्ति सख्ये ?
शोकोपरुद्धहृदयेन यदा तु शस्त्र,
त्यक्त तदास्य विहित रिपुणातिघोरम् ॥१०॥
अश्वत्थामा—किं पुन कारण शोकस्यास्त्रपरित्यागस्य वा ?
सूत —ननु कुमार एव कारणम् ।
अश्वत्थामा—कथमहमेव नाम ?
सूत —श्रूयताम्, (अश्रूणि विमुच्य)—
अश्वत्थामा हत इति पृथासूनुना स्पष्टमुक्त्वा,
स्वैर शेषे गज इति किल व्याहृत सत्यवाचा।
तच्छ्रुत्वासौ दयिततनय प्रत्ययात्तस्य राज्ञ
शस्त्राण्याजौ नयनसलिल चापि तुल्य मुमोच ॥११॥
अश्वत्थामा—हा तात, हा सुतवत्सल, हा वृथामदर्थपरित्यक्तजीवित, हा शौर्यराशे, हा शिष्यप्रिय, हा युधिष्ठिरपक्षपातिन् । (इति रोदिति) ।
सूत —कुमार, अलमत्यन्तपरिदेवकार्पण्येन ।

क्या भीमको प्यार करनेवाले (गुरुने) शिष्यसे गुरुदक्षिणाके रूपमें भारी गदा पाई?

सूत—शान्त पाप।

अश्वत्थामा—

नीति छोड़े अर्जुनने शिष्य पर दयालुको मारा?

१० सूत—कैसे यह होगा?

अश्वत्थामा—

गोविन्दने सुदर्शनकी तीक्ष्ण धारको (उन तक) पहुंचाया?

सूत—यह भी नही है।

११ अश्वत्थामा—

इनसे भिन्न चौथेसे बापूके लिये मै आफतकी शका नही करता ॥९॥

१२ सूत—कुमार—

हाथमें महाअस्त्रोको लिये कुपित उनके सामने यह,
क्या शकरकी तरह युद्धमें समानता प्राप्त कर सकते हैं?
शोकसे रुधे हृदयवाले हो जब उन्होने हथियार छोड दिया,
तब उनके शत्रुने अति घोर कर्म किया ॥१०॥

१३ अश्वत्थामा—शोकका और हथियारके त्यागका क्या कारण था?

सूत—कुमार ही तो कारण थे।

अश्वत्थामा—कैसे, मै ही?

१४ सूत—सुनिये, (आखोंसे आसू छोडते)—

'अश्वत्थामा मारा गया', यह स्पष्ट कह, (फिर)
अन्तमें अपने मनमें "गज" यह युधिष्ठिर सत्यवादीने कहा।
सो सुनकर उस राजाके ऊपर विश्वास करके पुत्रप्रेमी उन्होने,
युद्धमें हथियारो और आसुओको एक ही साथ छोड दिया ॥११॥

१५ अश्वत्थामा—हा तात, हा पुत्रवत्सल, हा मेरे लिये व्यर्थ जीवन छोडने वाले, हा शौर्य-राशि, हा शिष्यप्रिय, हा युधिष्ठिरके पक्षपाती।

सूत—कुमार, रोनेकी अत्यन्त दीनता दिखलाना छोडें।

१६ अश्वत्थामा—

श्रुत्वा वध मम मृषा सुतवत्सलेन,
तात, त्वया सह शरैरसवो विमुक्ता ।
जीवाम्यह पुनरहो भवता विनापि,
क्रूरेऽपि तन्मयि मुधा तव पक्षपात ॥१२॥

(इति मोहमुपगत)

१७ सूत —समाश्वसितु समाश्वसितु कुमार ।

(तत प्रविशति कृप)

१८ कृप —(सोद्वेग नि श्वस्य)—

धिक्सानुज कुरुपति धिगजातशत्रु,
धिग्भूपतीन्विफलशस्त्रभृतो धिगस्मान् ।
केशग्रह खलु तदा द्रुपदात्मजाया,
द्रोणस्य चाद्य लिखितैरिव वीक्षितो यै ॥१३॥

तत्कथ नु खलु वत्समद्य द्रक्ष्याम्यश्वत्थामानम् ? अथवा हिमवत्सारगुरुचेतसि ज्ञातलोकस्थितौ तस्मिन्न खलु शोकावेगमहमाशके। किंतु पितु परिभवमसदृशमुपश्रुत्य न जाने किं व्यवस्यतीति ?

१९ अथवा—

एकस्य तावत्पाकोऽय दारुणो भुवि वर्तते ।
केशग्रहे द्वितीये स्मिन्नून नि शेषिता प्रजा ॥१४॥

(विलोक्य) तदय वत्सस्तिष्ठति। यावदुपसर्पामि । (उपसृत्य ससभ्रमम्) वत्स, समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

२० अश्वत्थामा—(सज्ञा लब्ध्वा, सास्रम्) हा तात, हा सकलभुवनैकगुरो, (आकाशे) युधिष्ठिर, युधिष्ठिर,

१६ अश्वत्थामा—

मेरे झूठे वधको सुनकर हे बापू,
सुत-वत्सल, तुमने बाणोके साथ प्राणोको भी छोड दिया।
अहो, तुम्हारे बिना भी मै जी रहा हू, फिर तो मेरे जैसे क्रूर पर
तुम्हारा पक्षपात व्यर्थ है।।१२।।

(मूर्छित हो गये)

१७ सूत—धैर्य धरें, धैर्य धरें कुमार।

(तब कृपाचार्य प्रवेश करते हैं)

१८ कृप—(उद्वेगके साथ सास ले)—

अनुज-सहित दुर्योधनको धिक्कार, युधिष्ठिरको धिक्कार,
व्यस्त भूपतियोको धिक्कार, व्यर्थ शस्त्र उठानेवाले हम लोगो को
धिक्कार। तब द्रौपदीके केशोका पकडना,
और आज द्रोणकी यह (हत्या) जिन्होने चित्र वन जैसे देखा।।१३।।

तो कैसे मैं आज वत्स अश्वत्थामाको देखूगा। अथवा हिमालयके-सार से महान् चित्तवाले, ससारकी स्थितिके जानकार उसमें शोका-वेगकी आशका मै नही करता। लेकिन, पिताके अनुचित मरणको सुनकर वह न मालूम क्या कर डालेगा?

१९ अथवा—

एक का परिणाम तो पृथिवीपर यह दारुण (युद्ध) हो रहा है।
इस दूसरे केशग्रहपर निश्चय प्रजा उच्छिन्न हो जायेगी।।१४।।
(देखकर) तो यह वत्स खडा है। पास चलू। (पास जाकर भयसे) वत्स, धैर्य धरो, धैर्य धरो।

२० अश्वत्थामा—(होशमें आकर खेदके साथ) हा तात, हा सकल भुवन के अद्वितीय गुरु। (आकाश की ओर) युधिष्ठिर, युधिष्ठिर—

आजन्मनो न वितथ भवता किलोक्तं,
न द्वेक्षि यज्जनमतस्त्वमजातशत्रु ।
ताते गुरौ द्विजवरे मम भाग्यदोषात्,
सर्वं तदेकपद एव कथ निरस्तम् ॥१५॥

सूत —कुमार, एष ते मातुल शारद्वत पार्श्वे तिष्ठति।

२१ अश्वत्थामा—(पार्श्वे विलोक्य, सबाष्पम्) मातुल,—

गतो येनाद्य त्व सह रणभुव सैन्यपतिना,
य एक शूराणा गुरुसमरकण्डूनिकषण ।
परीहासाश्चित्रा सततमभवन्येन भवत,
स्वसु श्लाघ्यो भर्ता क्व नु खलु स ते मातुल, गत ॥१६॥

२२ कृप —परिगतपरिगन्तव्य एव भवान्। तदलमत्यन्त-शोकावेगन।

अश्वत्थामा—मातुल, परित्यक्तमेव मया परिदेवितम्।
एषोऽह सुतवत्सल तातमेवानुगच्छामि।
कृप —वत्स, अनुपपन्नमीदृश व्यवसित भवद्विधानाम्।
सूत —कुमार, अलमतिसाहसेन।

२३. अश्वत्थामा—आर्य शारद्वत,—

मद्वियोगभयात्तात परलोकमितो गत ।
करोम्यविरह तस्य वत्सलस्य सदा पितु ॥१७॥

२४ कृप —वत्स, यावदय ससारस्तावत्प्रसिद्धैवेय लोकयात्रा यत्पुत्रै पितरो लोकद्वयेऽप्यनुवर्तनीया इति। पश्य,—
निवापाजलिदानेन केतनै श्राद्धकर्मभि ।
तस्योपकारे शक्तस्त्व किं जीवन्किमुतान्यथा ॥१८॥

सूत —आयुष्मन्, यथैव मातुलस्ते शारद्वत कथयति तत्तथा।

आप तो जन्मसे ही कभी झूठ नही वोले,
न द्वेष करते हो, क्योकि लोगोका मत है, कि तुम अजातशत्रु हो।
मेरे भाग्यके दोपसे तात, गुरु और ब्राह्मणश्रेष्ठके विषयमें—
वह सव (वात) एक क्षण हीमें कसे खडित हो गई ।।१५।।
सूत—कुमार, यह तुम्हारे मामा शारद्वत वगलमें खडे हैं।

२१. अश्वत्थामा—(वगलमें देखकर आसू भर कर) मामा—
जिस सेनापतिके साथ तुम आज रणभूमिमें गये,
शरोमें अद्वितीय, जो महासमरकी खुजलाहटका निवारण करनेवाला था, जिसके साथ आपके वरावर विचित्र परिहास हुआ करते थे,
हे मामा, वह तुम्हारी वहिनके श्लाघनीय पति कहा गये? ।।१६।।

२२ कृप—आप जाननेकी वातको जान गये। सो भारी शोकावेगको रहने दो।
अश्वत्थामा—मामा, मैंने रोना छोड दिया। (लो) मै पुत्र-वत्सल वापूका ही अनुगमन करता हू।
कृप—वत्स, आप जैसोका ऐसा प्रयास उचित नही है,
सूत—कुमार, अतिसाहसको वस करो।

२३ अश्वत्थामा—आर्य शारद्वत,—
मेरे वियोगके भयसे वापू यहासे परलोक गये।
उस वत्सल पिताको मैं सदा के लिये विरहहीन करता हू।।१७।।

२४. कृप—वत्स, जव तक यह ससार है, तव तक यह कहावत प्रसिद्ध ही है, कि पुत्रोको पिताओका दोनो लोकमें अनुगमन करना चाहिये। देखो—
श्राद्धकी अजलिके दान, ध्वजो और श्राद्ध-कर्मों द्वारा,
उनके लिये उपकार करनेमें तुम समर्थ हो, जीने या दूसरी तरहसे क्या (लेना) ।।१८।।
सूत—आयुष्मान, तुम्हारे मामा शारद्वत जो कहते हैं, वैसा ही है।

२५. अश्वत्थामा—आर्य, सत्यमेवेदम्। किंत्वतिदुर्वहत्वाच्छोकभारस्य न शक्नोमि तातविरहित क्षणमपि प्राणान्धारयितुम्। तद् गच्छामि तमेवोद्देश यत्र तथाविधमपि पितर द्रक्ष्यामि। (उत्तिष्ठन् खड्गमालोक्य, विचिन्त्य) कृतमद्यापि शस्त्रग्रहणविडम्बनया। भगवन् शस्त्र,—

गृहीत येनासी परिभवभयान्नोचितमपि,
प्रभावाद्यस्याभून्न खलु तव कश्चिन्नविषय।
परित्यक्त तेन त्वमसि सुतशोकान्न तु भयाद्,
विमोक्ष्ये शस्त्र त्वामहमपि यत स्वस्ति भवते ॥१९॥

(इत्युत्सृजति)

(नेपथ्ये)

२६. भो भो राजान, कथमिह भवन्त सर्वे गुरोर्भारद्वाजस्य परिभवममुना नृशसेन प्रयुक्तमुपेक्षन्ते ?

२७. अश्वत्थामा—(आकर्ण्य शनै शनै शस्त्र स्पृशन्)। किं गुरोर्भारद्वाजस्य परिभव. ?

(पुनर्नेपथ्ये)

आचार्यस्य त्रिभुवनगुरोर्न्यस्तशस्त्रस्य शोकाद्,
द्रोणस्याजौ नयनसलिलक्षालिताद्रनिनस्य।
मौलो पाणि पलितधवले न्यस्य कृत्वा नृशस,
धृष्टद्युम्न स्वशिविरमय याति सर्वे सहध्वम् ॥२०॥

२८ (सक्रोध सकम्प च कृपसूतौ दृष्ट्वा) किं नामेदम् ?
प्रत्यक्षमात्तधनुषा मनुजेश्वराणा,
प्रायोपवेशसदृश व्रतमास्थितस्य।
तातस्य मे पलितमौलिनिरस्तकाशे,
व्यापारित शिरसि शस्त्रमशस्त्रपाणे ॥२१॥

२५ अश्वत्यामा—आर्य यह सच ही है, किन्तु अत्यन्त दुस्सह शोक-भारके कारण बापूके बिना क्षण भर भी मैं प्राणोको नही धारण कर सकता। इसलिये उसी स्थानमें जा रहा हू, जहा वैसे पिता को देखूगा। (उठकर खड्गको देख सोचकर) आज भी शस्त्र-ग्रहण करनेका ढोंग, बस। हे भगवन् शस्त्र,—

अपमानके भयसे अनुचित भी जिसने तुम्हें ग्रहण किया था।
जिसके प्रभावसे तुम्हारे लिये कोई 'पहुच से बाहर' नही हुआ,
उसने भयसे नही बल्कि पुत्रके शोकसे तुम्हें छोड दिया।
इसलिये हे शस्त्र, मैं भी तुम्हें छोडूगा, तुम्हारी स्वस्ति होवे ॥१९॥

(छोड देता है)

(नेपथ्यमें)

२६ हे-हे राजाओ, क्या आप सब इस कमीने द्वारा गुरु भरद्वाज पर किये अपमानकी उपेक्षा करते हो ?

२७ अश्वत्यामा—(सुनकर धीरे-धीरे शस्त्रको छूते) क्या गुरु भरद्वाजका अपमान ?

(फिर नेपथ्यमें)

शोकसे हथियार छोडे त्रिभुवनगुरु,
आसुओ द्वारा भीगे मुखवाले आचार्य द्रोणके,
सफेद केशोवाले सिरपर हाथ रखकर आततायीपन करके,
यह धृष्टद्युम्न अपने तम्बूमें जा रहा है, तुम सब (इसे) सहो ॥२०॥

२८ (क्रोध-सहित कापते हुये, कृप और सूतको देखकर) यह क्या है ?—

धनुष लिये राजाओ के सामने,
आजीवन उपवासके समान व्रतमें स्थिर,
शस्त्र-रहित मेरे बापूके पके केश वाले
शिरपर शस्त्रका प्रयोग किया ॥२१॥

कृप —वत्स, एव किल जन कथयति।

अश्वत्थामा—किं तातस्य दुरात्मना परिमृष्टमभूच्छिर ?

सूत —(सभयम्) कुमार, आसीदय तस्य तेजोराशेर्देवस्य नव परिभवावतार ।

२९. अश्वत्थामा—हा तात, हा पुत्रप्रिय, मम मन्दभाग्यस्य कृते शस्त्रपरित्यागात्तथाविधेन क्षुद्रेणात्मा परिभावित ।

अथवा,—

परित्यक्ते देहे रणशिरसि शोकान्धमनसा,
शिर श्वा काको वा द्रुपदतनयो वा परिमृशेत् ।
असख्यातास्त्रौघद्रविणमदमत्तस्य च रिपोर्,
ममैवाय पाद शिरसि निहितस्तस्य न कर ॥२२॥

३०. आ दुरात्मन् पाचालापसद,—

तात शस्त्रग्रहणविमुख निश्चयेनोपलभ्य,
त्यक्त्वा शका खलु विदधत पाणिमस्योत्तमागे ।
अश्वत्थामा करधृतधनु पाडुपाचालसेना—
तूलोत्क्षेपप्रलयपवन किं न यात स्मृतिं ते ॥२३॥

युधिष्ठिर, युधिष्ठिर, अजातशत्रो, अमिथ्यावादिन्, धर्मपुत्र, सानुजस्य ते किमनेनापकृतम् ?

३१. अथवा किमनेनालीकप्रकृतिजिह्मचेतसा ? अर्जुन, सात्यके, वाहुशालिन्वृकोदर, माधव, युक्त नाम भवतां सुरासुरमनुजलोकैकधनुर्धरस्य द्विजन्मन परिणतवयस. सर्वाचार्यस्य विशेषतो मम पितुरमुना द्रुपदकुलकलकेन मनुजपशुना स्पृश्यमानमुत्तमागमुपेक्षितुम् ? अथ वा सर्व एवैते पापिन । किमेतै ?

कृतमनुमत दृष्ट वा यैरिद गुरुपातकं,
मनुजपशुभिर्निर्मर्यादैर्भवद्भिरुदायुधै ।

कृप—वत्स, लोग ऐसा ही कहते हैं।

अश्वत्थामा—क्या तातके सिरको दुष्टात्माने छुआ?

सूत—(भयके साथ) कुमार, उस तेजोराशि देवताका यह नया अपमान था।

२९. अश्वत्थामा—हा तात, हा पुत्रप्रिय, मुझ अभागेके लिये शस्त्र छोड़ कर वैसे क्षुद्र (आदमी) द्वारा तुम अपमानित हुये। अथवा—
युद्धभूमिमें शोकसे अधे मन हुये तुम्हारे देह छोड देनेपर,
सिरको कुत्ता, कौवा, या द्रुपदका लडका (चाहे जो) छूये!
असख्य अस्त्र-समुदायोके घनके मदसे मत्त रिपुके
सिर पर मेरा यह पैर न कि उसका हाथ पडे ॥२२॥

३० आह, दुष्ट कमीने पचालके—

वापूको पूरी तौरसे शस्त्रग्रहणसे विमुख जानकर,
शका छोडकर उनके सिरपर हाथ रखते,
पाडवों और पाचालोकी सेनारूपी कपासको उडानेवाला,
प्रलयका पवन धनुष-पाणि अश्वत्थामा क्या तुझे याद नही आया ॥२३॥
युधिष्ठिर, युधिष्ठिर, अजातशत्रु न-अमिथ्यावादी, धर्मपुत्र, भाइयो सहित तेरा वापूने क्या अपकार किया था?

३१ अथवा इस झूठे स्वभावत कुटिल-चित्तसे क्या (कहना)? अर्जुन, सात्यकि, वाहुशाली, भीम, कृष्ण, आपके लिये क्या उचित है, कि सरासर मनुज लोकोमें अद्वितीय धनुर्धर, ब्राह्मण, वृद्ध, सर्वाचार्य विशेषकर मेरे पिताके सिरपर, द्रुपद-कुल-कलक इस मनुज-पशु के हाथ लगानेकी उपेक्षा करते? अथवा ये सभी पापी हैं। इनसे क्या (लेना)—

जिनने इस महान् पातकको किया, अनुमति दी या देखा,
कृष्ण और भीम-अर्जुन सहित

नरकरिपुणासार्ध तेषा सभीमकिरीटिनाम्
अयमहमसृङ्मेदोमासै करोमि दिशा बलिम् ॥२४॥

कृप —वत्स, किं न सभाव्यते भारद्वाजतुल्ये बाहुशालिनि-दिव्यास्त्रग्रामकोविदे भवति ?

३२. अश्वत्थामा—भो भो पाण्डवमत्स्यसोमकमागधया.

क्षत्रियापसदा —
पितुर्मूर्ध्नि स्पृष्टे ज्वलदनलभास्वत्परशुना,
कृत यद्रामेण श्रुतिमुपगत तन्न भवताम् ।
किमद्याश्वत्थामा तदरिरुधिरासारविघस,
न कर्म क्रोधान्ध प्रभवति विधातु रणमुखे ॥२५॥

सूत, गच्छ त्व सर्वोपकरणै साग्रामिकै. सर्वायुधैरुपेत महाहवलक्षण नामास्मत्स्यन्दनमुपनय ।

३३ सूत —यदाज्ञापयति कुमार । (इति निष्क्रान्त)

कृप —वत्स, अवश्यप्रतिकर्तव्येऽस्मिन्दारुणे विकाराग्नौ सर्वेषामस्माक कोऽन्यस्त्वामन्तरेण शक्त प्रतिकर्तुम् ?

किंतु,—

अश्वत्थामा—किमत परम् ?

कृप —सैनापत्येऽभिषिच्य भवन्तमिच्छामि समरभुव-मवतारयितुम् ।

३४. अश्वत्थामा—मातुल, परतन्त्रमिदमकिंचित्कर च ।

कृप —वत्स, न खलु परतन्त्र नाकिंचित्कर च । पश्य,—
भवेदभीष्मद्रोण धार्तराष्ट्रबल कथम् ।
यदि तत्तुल्यकक्षोऽत्र भवान्धुरि न युज्यते ॥२६॥

कृतपरिकरस्य भवादृशस्य त्रैलोक्यमपि न क्षम परिपन्थी-भवितु किं पुनर्युधिष्ठिरबलम् ? तदेव मन्ये परिकल्पिता-

मर्यादाहीन हथियारबन्द मनुज-पशु आप जिन लोगोने।
उनके खून, चर्बी और मासोसे यह मैं दिशाओको बलि देता हूं ।।२४।।

कृप—भारद्वाजके समान बाहुशाली दिव्यास्त्रसमूहोके पडित तुमसे क्या सभव नही है ?

३२ अश्वत्थामा—हे हे पाडव, **मत्स्य**-देशियो, **सोम**को, **मगध**वाले क्षत्रिय-कलको,—

जलती अग्नि जैसे चमकते फर्सेवाले **परशुराम**ने पिताके सिरको छुआ था, यह आप लोगोके कानमें आया या नही।
उन शत्रुओके रुधिरकी सामग्री से रणागनमें क्रोधाध
अश्वत्थामा वह कर्म, क्या आज नही कर सकता ।।२५।।

सूत, जाओ सग्रामके सभी साधनो, सभी हथियारोसे युक्त **महाहव** (महायुद्ध) **लक्षण** नामक हमारे रथको ले आओ।

३३ सूत—जो कुमार आज्ञा देते हैं। (बाहर चला गया)

कृप—वत्स, इस दारुण अपमान-अग्निके अवश्य बदला लेनेमें तेरे बिना कौन है, जो यह प्रतिकार कर सकता है। किन्तु—
अश्वत्थामा—इससे आगे क्या ?

कृप—सेनापति पदपर अभिषेक करके आपको समरभूमिमें हम उतारना चाहते हैं।

३४ अश्वत्थामा—मामा, यह (पद) परतत्र और तुच्छ है।

कृप—वत्स, नही यह परतत्र है और न तुच्छ। देखो—

भीष्म और **द्रोण**के बिना **कौरवो**की सेना कैसी होगी,
यदि उनके समान आप इस धुरेमें नही जोडे जाते ।।२६।।

आप जैसेके तैयार होने पर तीनो लोक भी विरोधी नही हो सकता, **युधिष्ठिर**की सेनाकी तो बात ही क्या ? सो मैं यह समझता हूं, सारी

नरकरिपुणासार्धं तेषा सभीमकिरीटिनाम्
अयमहमसृङ्मेदोमासै करोमि दिशा बलिम् ॥२४॥

कृप —वत्स, किं न सभाव्यते भारद्वाजतुल्ये बाहुशालिनि-दिव्यास्त्रग्रामकोविदे भवति ?

३२. अश्वत्थामा—भो भो पाण्डवमत्स्यसोमकमागधया.

क्षत्रियापसदा.—

पितुर्मूर्ध्नि स्पृष्टे ज्वलदनलभास्वत्परशुना,
कृत यद्रामेण श्रुतिमुपगत तन्न भवताम्।
किमद्याश्वत्थामा तदरिरुधिरासारविघस,
न कर्म क्रोधान्ध प्रभवति विधातु रणमुखे ॥२५॥

सूत, गच्छ त्व सर्वोपकरणै साग्रामिकै सर्वायुधैरुपेत महाहवलक्षण नामास्मत्स्यन्दनमुपनय।

३३ सूत —यदाज्ञापयति कुमार । (इति निष्क्रान्त)

कृप —वत्स, अवश्यप्रतिकर्तव्येऽस्मिन्दारुणे विकाराग्नौ सर्वेषामस्माक कोऽन्यस्त्वामन्तरेण शक्त प्रतिकर्तुम् ?

किंतु,—

अश्वत्थामा—किमत परम् ?

कृप —सैनापत्येऽभिषिच्य भवन्तमिच्छामि समरभुव-मवतारयितुम्।

३४. अश्वत्थामा—मातुल, परतन्त्रमिदमकिंचित्कर च।

कृप —वत्स, न खलु परतन्त्र नाकिंचित्कर च। पश्य,—

भवेदभीष्मद्रोण धार्तराष्ट्रबल कथम्।
यदि तत्तुल्यकक्षोऽत्र भवान्धुरि न युज्यते ॥२६॥

कृतपरिकरस्य भवादृशस्य त्रैलोक्यमपि न क्षम परिपन्थी-भवितु किं पुनर्यौधिष्ठिरबलम् ? तदेव मन्ये परिकल्पिता-

मर्यादाहीन हथियारबन्द मनुज-पशु आप जिन लोगोने।
उनके खून, चर्वी और मासोसे यह मैं दिशाओको वलि देता हू ॥२४॥

कृप—भारद्वाजके समान वाहुशाली दिव्यास्त्रसमूहोके पडित तुमसे क्या सभव नही है ?

३२ अश्वत्थामा—हे हे पाडव, **मत्स्य**-देशियो, **सोम**को, **मगध**वाले क्षत्रिय-कलको,—

जलती अग्नि जैसे चमकते फर्सेवाले **परशुराम**ने पिताके सिरको छुआ था, यह आप लोगोके कानमें आया या नही।
उन शत्रुओंके रुधिरकी सामग्री से रणागनमें क्रोधाध
अश्वत्थामा वह कर्म, क्या आज नही कर सकता ॥२५॥

सूत, जाओ सग्रामके सभी साधनो, सभी हथियारोसे युक्त **महाहव** (महायुद्ध) **लक्षण** नामक हमारे रथको ले आओ।

३३ सूत—जो कुमार आज्ञा देते है। (वाहर चला गया)

कृप—वत्स, इस दारुण अपमान-अग्निके अवश्य वदला लेनेमें तेरे विना कौन है, जो यह प्रतिकार कर सकता है। किन्तु—
अश्वत्थामा—इससे आगे क्या ?

कृप—सेनापति पदपर अभिषेक करके आपको समरभूमिमें हम उतारना चाहते हैं।

३४ अश्वत्थामा—मामा, यह (पद) परतत्र और तुच्छ है।

कृप—वत्स, नही यह परतत्र है और न तुच्छ। देखो—

भीष्म और **द्रोण**के विना **कौरवो**की सेना कैसी होगी,
यदि उनके समान आप इस धुरेमें नही जोडे जाते ॥२६॥

आप जैसेके तैयार होने पर तीनो लोक भी विरोधी नही हो सकता, **युधिष्ठिर**की सेनाकी तो वात ही क्या ? सो मैं यह समझता हू, सारी

भिषेकोपकरण कौरवराजो न चिरात्त्वामेवाभ्युपेक्षमाणस्तिष्ठतीति।

३५ अश्वत्थामा—यद्येव त्वरते मे परिभवानलदह्यमानमिद चेतस्तत्प्रतीकारजलावगाहनाय। तदह गत्वा तातवधविषण्णमानस कुरुपति सैनापत्यस्वयग्रहणप्रणयसमाश्वासनया मन्दसताप करोमि।

कृप—वत्स, एवमिदम। अतस्तमेवोद्देश गच्छाव।

। (इति परिक्रामत)

(२) कर्णेन विवाद.—

३६ (तत प्रविशत कर्णदुर्योधनौ)

दुर्योधन—अगराज,—

तेजस्वी रिपुहतवन्धुदु खपार,
वाहुभ्या व्रजति धृतायुधप्लवाभ्याम्।
आचार्य सुतनिधन निशम्य सख्ये,
किं शस्त्रग्रहसमये विशस्त्र आसीत्॥२७॥

अथवा सूक्तमिदमभियुक्तै प्रकृतिर्दुस्त्यजेति। यतः शोकान्धमनसा तेन विमुच्य क्षत्रधर्मकार्कश्य द्विजातिधर्मसुलभो दैन्यपरिग्रह कृत।

३७ कर्ण—राजन्, न खल्विदमेवम्'

दुर्योधन—कथ तर्हि?

३८ कर्ण—एव किलास्याभिप्रायो यथाश्वत्थामा मया पृथिवीराज्येऽभिषेक्तव्य इति। तस्याभावाद् वृद्धस्य मे ब्राह्मणस्य वृथा शस्त्रग्रहणमिति तथा कृतवान्।

दुर्योधन—(सशिर कम्पम्) एवमिदम्।

अभिषेक-सामग्री तैयार किये दुर्योधन जल्दी ही तुम्हारी प्रतीक्षा करते खडे हैं।

३५. अश्वत्थामा—अगर ऐसा है, तो अपमानरूपी अग्निसे जलता हुआ यह मेरा चित्त उसके प्रतीकाररूपी जलमें अवगाहन करनेके लिये जल्दी कर रहा है। सो मैं जाकर वापूके वधसे विषण्ण कुरु-पत्तिको स्वय सेनापति-पद गहण के प्रेम द्वारा धैर्य वधा (उनका) सताप कम करता हू।

कृप—वत्स, ऐसा ही। अत उसी स्थानपर हम दोनो चलें।

(दोनो परिक्रमा करते हैं)

२. कर्णसे विवाद—

३६ (तव कर्ण और दुर्योधन प्रवेश करते हैं)

दुर्योधन—अगराज—

रिपुसे मारे गये वन्धुओके दु ख-सागरमें,
हथियार पकडी वाहु रूपी नौका में चलते,
तेजस्वी आचार्य युद्धमें पुत्रके मारनेकी वात सुनकर,
क्या हथियार पकडने के समय वेहथियार (हो गये) थे? ॥२७॥

अथवा नीतिज्ञो ने ठीक ही कहा है, कि स्वभावका अतिक्रमण नही किया जा सकता, जिससे कि शोकाव मन हो उन्होने क्षत्रियके कठोर धर्मको छोड ब्राह्मणोकी धर्म सुलभ दीनता को अपनाया।

३७ कर्ण—राजन्, यह ऐसा नही है।

दुर्योधन—तो कैसा है?

३८, कर्ण—उन (द्रोण) की यह मनशा थी, कि पृथिवीके राज्यपर मै अश्वत्थामाका अभिषेक करूगा। (अव) उसके अभावमें मुझ वृद्ध ब्राह्मणका शस्त्र ग्रहण करना व्यर्थ है, यह सोचकर वैसा किया।

दुर्योधन—(सिर हिलाकर) क्या ऐसा है?

३९ कर्ण —एतदर्थं च कौरवपाण्डवपक्षपातप्रवृत्तमहासंग्रामस्य राजकस्य परस्परक्षयमपेक्षमाणेन तेन प्रधानपुरुषबध उपेक्षा कृता।

दुर्योधन —उपपन्नमिदम्।

४०. कर्ण —अन्यच्च राजन्, द्रुपदेनाप्यस्य बाल्यात्प्रभृत्यभिप्रायवेदिना न स्वराष्ट्रे वासो दत्त।

दुर्योधन —साधु अंगराज, साधु। निपुणमभिहितम्।

कर्ण —न चाय ममैकस्याभिप्राय। अन्येऽभियुक्ता अपि नैवेदमन्यथा मन्यन्ते।

४१ दुर्योधन —एवमेतत्। क सन्देह ?—

दत्वा भय सोऽतिरथो बध्यमान किरीटिना।
सिन्धुराजमुपेक्षेत नैव चेत्कथमन्यथा ॥२८॥

४२ कृप —(विलोक्य) वत्स, एप दुर्योधन सूतपुत्रेण सहास्या न्यग्रोधच्छायायामुपविष्टस्तिष्ठति। तदुपसर्पाव।

(तथा कृत्वा)

उभौ—विजयता कौरवेश्वर!

४३ दुर्योधन —(दृष्ट्वा) अये, कथ कृपोऽश्वत्थामा च ? (आसनादवतीर्य कृप प्रति) गुरो, अभिवादये। (अश्वत्थामानमुद्दिश्य) आचार्यपुत्र,—

एह्यस्मदर्थहततात परिष्वजस्व,
क्लान्तैरिमैर्मम निरन्तरमगमगै।
स्पर्शस्तवैष भुजयो सदृश पितुस्ते,
शोकेऽपि नो विकृतिमेति तनूरुहेषु ॥२९॥

(अश्वत्थामा बाष्पमुत्सृजति)

३९ कर्ण—और इसीलिये कौरव और पाडवके पक्षपातसे महासंग्राममें सम्मिलित राजाओंके एक दूसरेके हाथो नाश होनेकी प्रतीक्षा करते उन्होने प्रधान पुरुषोके वधकी उपेक्षा की।

दुर्योधन—यह ठीक है ?

४० कर्ण—और भी राजन्, बचपन से ही इनकी नीयत जाननेवाले द्रुपदने भी इन्हें अपने राज्यमें नही रहने दिया।

दुर्योधन—ठीक अंगराज, ठीक। तुमने ठीक कहा।

कर्ण—यह मेरी अकेले की राय नही है, दूसरे नीतिज्ञ भी इसे अन्यथा नही, मानते।

४१. दुर्योधन—यह ऐसा ही। क्या समझे—
उस महारथीने अभय पाये अर्जुन द्वारा मारे जाते,
सिन्धुराजकी उपेक्षा की, ऐसा नही तो और कैसे (यह) होता ॥२८॥

४२ कृप—(देखकर) वत्स, यह दुर्योधन सूत-पुत्र (कर्ण) के साथ इस बरगदकी छायामें बैठा है। सो पास चलें।

(वैसा करके)

दोनो—कौरवेश्वरकी विजय हो।

४३ दुर्योधन—(देखकर) अये, कृप और अश्वत्थामा! (आसनसे उतर कर कृप से) गुरु, अभिवादन करता हू। (अश्वत्थामाकी ओर) आचार्यपुत्र,—
आओ हमारे लिये मृत पिता हुये
मेरे थके पीडित अगोसे अगका गाढालिगन करो।
तुम्हारे पिताके समान इन तुम्हारी भुजाओका यह स्पर्श,
शोकमें भी रोमोमें विकृत नही होता ॥२९॥

(आलिगन करके पास बैठाता है)

(अश्वत्थामा आसू बहाता है)

४८ दुर्योधन—आचार्यपुत्र, तस्य तथाविधस्यानन्यसाधारणस्य ते वीरभावस्य किमन्यत्सदृशम् ?

कृप—राजन्, सुमहान्खलु द्रोणपुत्रेण वोढुमध्यवसित. समरभर । तदहमेव मन्ये भवता कृतपरिकरोऽयमुच्छेत्तु लोकत्रयमपि समर्थ, किं पुनर्यौधिष्ठिरबलम् ? अतोऽभिषिच्यता सैनापत्ये ।

४९ दुर्योधन—सुष्ठु युज्यमानमभिहित युष्माभि, कितु प्राक्प्रतिपन्नोऽयमर्थोऽगराजस्य ।

कृप—राजन्, असदृशपरिभवशोकसागरे निमज्जन्तमेनमगराजस्यार्थे नैवोपेक्षितु युक्तम् । अस्यापि तदेवारिकुलमनुशासनीयम् । अत किमस्य पीडा न भविष्यति ?

५० अश्वत्थामा—राजन्, किमद्यापि युक्तायुक्तविचारणया?—
प्रयत्नपरिबोधित स्तुतिभिरद्य शेषे निशाम्,
अकेशवमपाण्डव भुवनमद्य नि सोमकम् ।
इय परिसमाप्यते रणकथाद्य दो शालिना,
अपैतु नृपकाननातिगुरुरद्य भारो भुव ॥३४॥

५१ कर्ण—(विहस्य) वक्तु सुकरमिद दुष्करमध्यवसितुम् । वहव कौरवबलेऽस्य कर्मण शक्ता ।
अश्वत्थामा—अगराज, एवमिदम् । वहव कौरवबलेऽत्र शक्ता, किंतु दु खोपहत शोकावेगवशाद् ब्रवीमि न पुनर्वीरजनाधिक्षेपेण ।

५२. कर्ण—द्रौणायनि, दु खितस्याश्रुपात कुपितस्य चायुध - द्वितीयस्य सग्रामावतरणमुचित नैवविधा प्रलापा ।

५३. अश्वत्थामा—(सक्रोधम्) अरे रे राधागर्भभारभूत, सूतापसद, ममापि नामाश्वत्थाम्नो दु खितस्याश्रुभि प्रति - क्रियामुपदिशसि न शस्त्रेण ? पश्य,—

४८ दुर्योधन—आचार्य-पुत्र तुम्हारे जैसे असाधारण वीरतावाले के लिये उचित और क्या हो सकता है ?

कृप—राजन्, द्रोण-पुत्रको समरके अतिमहान् भार उठानेके लिये तत्पर किया है। सो मैं समझता हू, आपके तैयार होने पर यह तीनो लोकको उच्छिन्न करनेमें समर्थ हैं, युधिष्ठिर-सेनाकी तो वात ही क्या ? इसलिये इनको सेनपति-पद पर अभिपिक्त करें।

४९ दुर्योधन—तुमने ठीक और उचित ही कहा, लेकिन पहले ही यह पद अगराजको मिल चुका है।

कृप—राजन्, अगराजके लिये असाधारण अपमानके शोक-सागरमें डूवते (इन्हें) उपेक्षित नही करना चाहिये। इन्हें भी उसी शत्रुकुलको दडित करना है। अत क्या इनको दु ख नही होगा ?

५० अश्वत्यामा—राजन्, आज उचित-अनुचित के विचार करनेसे क्या ?
स्तुतियोसे प्रयत्नपूर्वक जगाये तुम आज रातको सोओ।
आज ससार विना केशव, विना पांडव और विना सोमकका होगा,
आज वाहुवालोंकी यह रणकथा समाप्त हो रही है।
आज नृपोरूपी वनका अति भारी भार पृथिवी से दूर हटे ॥३४॥

५१ कर्ण—(विहँसकर) यह कहना आसान है, करना कठिन है। कौरव-सेनामें वहुतेरे यह काम करने में समर्थ है।

अश्वत्यामा—अगराज, यह ऐसा ही। कौरव-सेनामें वहुतसे इसमें समर्थ हैं, किन्तु मैं दु ख का मारा शोकावेगके कारण (यह) कह रहा हू, वीर लोगोके तिरस्कार के लिये नही।

५२ कर्ण—द्रौणायनि, दु खितका आसू वहाना कुपितका हथियार ले सग्राममें उतरना उचित है, न कि ऐसा प्रलाप करना।

५३ अश्वत्यामा—(क्रोधपूर्वक) अरे, रे, राधाके गर्भके भार, नीच सूत, मुझ दु खित अश्वत्यामाको आसुओसे प्रतिकार करनेका उपदेश देता है, शस्त्रसे नही ? देख—

निर्वीर्यं गुरुशापभाषितवशात्कि मे तवैवायुध,
सप्रत्येव भयाद्विहाय समर प्राप्तोऽस्मि किं त्व यथा ?
जातोऽह स्तुतिवशकीर्तनविदा कि सारथीना कुले,
क्षुद्रारातिकृताप्रिय प्रतिकरोम्यस्रेण नास्त्रेण यत् ॥३५॥

५४ कर्ण—(सक्रोधम्) अरे रे वाचाट, वृथाशस्त्रग्रहणदुर्विदग्ध, बटो,—

निर्वीर्यं वा सवीर्यं वा मया नोत्सृष्टमायुधम् ।
यथा पाचालभीतेन पित्रा ते बाहुशालिना ॥३६॥

अपि च,—

सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम् ।
दैवायत्त कुले जन्म मदायत्त तु पौरुषम् ॥३७॥

५५ अश्वत्थामा—(सक्रोधम्) अरे रे रथकारकुलकलक, अरे राधागर्भभारभूत, तातमप्यधिक्षिपसि ? अथवा,—

स भीरु शूरो वा प्रथितभुजसारस्त्रिभुवने,
कृत यत्तेनाजौ प्रतिदिनमिय वेत्ति वसुधा ।
परित्यक्त शस्त्र कथमिति स सत्यव्रतधर,
पृथासूनु साक्षी त्वमसि रणभीरो क्व नु तदा ॥३८॥

५६ कर्ण—(विहस्य) एव भीरुरहम् ? त्व पुनर्विक्रमैकरस स्वपितरमनुस्मृत्य न जाने कि करिष्यसीति ? महान्मे सशयो जात । अपि च रे मूढ,—

यदि शस्त्रमुज्झितमशस्त्रपाणयो,
न निवारयन्ति किमरीनुदायुधान् ।
यदनेन मौलिदलनेऽप्युदासित,
सुचिर स्त्रियेव नृपचक्रसनिधौ ॥३९॥

भारी शापके कथनके कारण क्या तेरी तरह मेरा आयुध निर्वीर्य है?
क्या तेरी तरह अभी ही मैं भय से समर छोडकर आया हूँ?
क्या मैं वशकी प्रशसा करना जाननेवाले सारथियोके कुलमें पैदा हुआ, जो कि छुद्र दुश्मनके लिये किये अप्रियका प्रतिकार मैं खून और हथियार से न करू।।३५।।

५४ कर्ण—(क्रोध-सहित) अरे-अरे बकवादी, झूठ ही शस्त्र पकडने में दुष्पडित ब्राह्मण-पुत्र—
निर्वीर्य हो या सवीर्य, मैंने हथियार नही छोडा।
जैसा कि पांचालसे डरकर बाहुशाली तेरे पिताने किया।।३६।।
और भी—

सूत या सूत-पुत्र, मैं जो कोई भी हू।
किसी कुलमें जन्मना देवके अधीन है, किन्तु पौरुष मेरे अधीन है।।३७।।

५५ अश्वत्थामा—(क्रोध-सहित) अरे रे, बढई कुलके कलक, राधाके गर्भके भार, बापूकी निन्दा करता है? अथवा—

वह भीरु थे या शूर, (पर) त्रिलोकमें अपने भुजके पराक्रमके लिये प्रसिद्ध थे। उन्होने युद्धमें प्रतिदिन जो किया, उसे यह वसुधा जानती है। कैसे उन्होने शस्त्रको छोडा, इसके यह सत्यव्रतधारी, युधिष्ठिर साक्षी हैं, हे रणसे भीरु, तब तुम कहा थे।।३८।।

५६ कर्ण—(विहसकर) इस प्रकार मैं तो भीरु हू, और पराक्रमके एकमात्र सारभूत अपने पिताका अनुसरण करते न जाने तू क्या करेगा?
मुझे और भी महासशय हो गया है, रे मूढ,

यदि हाथमें हथियार न लिये छोडे हथियार को
नही रोकते, तो हथियार लिये शत्रुओको क्या (करेंगे)?
जो कि सिर दलन करनेमें उदासीन रहे।
जैसे नृप-सेनाके समीप स्त्री देरतक (उदास रहे)।।३९।।

५७ अश्वत्थामा—(सक्रोध सकम्प च) दुरात्मन्, राजवल्लभ, प्रगल्भ, सूतापसद, असबद्धप्रलापिन्,—

कथमपि न निषिद्धो दु खिना भीरुणा वा,
द्रुपदतनयपाणिस्तेन पित्रा ममाद्य।
तव भुजबलदर्पाध्मायमानस्य वाम.,
शिरसि चरण एष न्यस्यते वारयैनम् ॥४०॥

(इति तथा कर्तुमुत्तिष्ठति)

५८ कृपदुर्योधनौ—वत्स, मर्षय मर्षय। (इति निवारयत)

(अश्वत्थामा चरणप्रहार नाटयति)

कर्ण —(सक्रोधमुत्थाय, खड्गमाकृष्य) अरे दुरात्मन्, ब्रह्मबन्धो, आत्मश्लाघ,—

जात्या काममवध्योऽसि चरण त्विदमुद्धतम् ।
अनेन लून खड्गेन पतित द्रक्ष्यसि क्षितौ ॥४१॥

५९ अश्वत्थामा—अरे मूढ, जात्या काममवध्योऽहम्, इय सा जाति परित्यक्ता (इति यज्ञोपवीत छिनत्ति) । पुनश्च सक्रोधम्—

अद्य मिथ्याप्रतिज्ञोऽसौ किरीटी क्रियते मया ।
शस्त्र गृहाण वा त्यक्त्वा मौलौ वा रचयाजलिम् ॥४२॥

(उभावपि खड्गमाकृष्यान्योन्य प्रहर्तुमुद्यतौ । कृपदुर्योधनौ निवारयत)

६० दुर्योधन —आचार्यपुत्र, शस्त्रग्रहणेनालम् ।

कृप —वत्स, सूतपुत्र, शस्त्रग्रहणेनालम् ।

६१ अश्वत्थामा—मातुल, मातुल, किं निवारयसि ? अयमपि तातनिन्दाप्रगल्भ सूतापसदो धृष्टद्युम्नपक्षपात्येव ।

कर्ण —राजन्, न खल्वह निवारयितव्य —

उपेक्षिताना मन्दाना धीरसत्त्वैरवज्ञया ।
अत्रासिताना क्रोधान्धैर्भवत्येषा विकत्थना ॥४३॥

५७ अश्वत्थामा—(क्रोधसे कापते) दुरात्मा, राजप्रिय, ढीठ, नीच सूत, वेहूदी बकवास करनेवाले—

दु खी या भीरु मेरे पिताने।
द्रुपद-पुत्रके हाथको कैसे भी न रोका हो, पर आज
भुजबलके दर्पका शोर मचाने वाले तेरे सिरके ऊपर
मै यह बाया चरण रख रहा हू, इसे रोक ॥४०॥

(वैसा करनेके लिये खडा हो जाते हैं)]

५८ कृप और दुर्योधन—वत्स रुको, रुको (दोनो निवारण करते हैं)

(अश्वत्थामा चरण प्रहार करने का अभिनय करता है)

कर्ण—(क्रोधसहित उठकर खड्ग खीच कर)
अरे दुरात्मा, ब्रह्मबन्धु, आत्मश्लाघी, जाति से चाहे तू अवध्य है,
लेकिन यह (तेरा)चरण तो उठ चुका है। (अव) इसे तू खड्गसे
कटा पृथिवी पर गिरा देखेगा ॥४१॥

५९ अश्वत्थामा—अरे मूढ जाति से मैं अवध्य हू, तो ले यह मैंने उस जाति को छोडा। (जनेऊ को तोड देता है, फिर क्रोध के साथ)—
आज उस अर्जुन को मै झूठी प्रतिज्ञावाला बनाता हू, हथियार को
उठा या उसे छोडकर सिर पर हाथ जोड ॥४२॥

(दोनो ही खड्ग खीचकर एक दूसरे पर प्रहार करने के लिए उद्यत हैं। कृप और दुर्योधन रोकते हैं)

६० दुर्योधन—आचार्य-पुत्र, शस्त्र उठाने से रुको।

कृप—वत्स, सूत-पुत्र शस्त्र उठानेसे रुको।

६१ अश्वत्थामा—मामा,मामा, क्यो रोकते हो ? बापू की निन्दा करने वाला यह ढीठ नीच सूत, धृष्टद्युम्नका पक्षपाती है।

कर्ण—राजन्, मुझे न रोकिये—धीरो द्वारा उपेक्षित मन्दोकी
अवज्ञासे क्रोधाधो द्वारा निडर की ऐसी बकवास होती है ॥४३॥

६२ अश्वत्थामा—राजन्, मुच मुचैनम् । आसादयतु मद्भुजान्तरनिष्पेषमुलभमसूनामवसादनम् । अन्यच्च, राजन्, स्नेहेन वा कार्येण वा यत्त्वमेन ताताधिक्षेपकारिण दुरात्मान मत्त परिरक्षितुमिच्छसि तदुभयमपि वृथैव ते । पश्य,-

पाप प्रियस्तव कथ गुणिन सखाय,
सूतान्वय शशधरान्वयसभवस्य ?
हन्ताकिरीटिनमह नृप, मुच कुर्या,
क्रोधादकर्णमपृथात्मजमद्य लोकम् ॥४४॥

(इति प्रहर्तुमिच्छति)

६३ कर्ण —(खड्गमुद्यम्य) अरे वाचाट, ब्राह्मणाधम, अय न भवसि ? राजन्, मुच मुच । न खल्वह वारयितव्य । (हन्तुमिच्छति) ।

(दुर्योधनकृपौ निवारयत)

६४ दुर्योधन —कर्ण, गुरुपुत्र, कोऽयमद्य युवयोर्व्यामोह ?

कृप —वत्स, अन्यदेव प्रस्तुतमन्यात्रावेग इति कोऽय व्यामोह ? स्वबलव्यसन चेदमस्मिन्काले राजकुलस्यास्य युष्मत्त एव भवतीति वाम पन्था ।

अश्वत्थामा—मातुल, न लभ्यतेऽस्य कटुप्रलापिनो रथकारकुलकलकस्य दर्प शातयितुम् ?

कृप —वत्स, अकाल खलु स्वबलप्रधानविरोधस्य ।

६५ अश्वत्थामा—मातुल, यद्येवम्,—

अय पापो यावन्न निधनमुपेयादरिशरै,
परित्यक्त तावत्प्रियमपि मयास्त्र रणमुखे ।
वलाना नाथेऽस्मिन्परिकुपितभीमार्जुनभये,
समुत्पन्ने राजा प्रियसखवल वेत्तु समरे ॥४५॥

(इति खड्गमुत्सृजति)

६२ अश्वत्थामा—राजन्, छोडें इसे। यह मेरी भुजाओ के वीच पीसा जाकर सुलभ प्राण-नाशको प्राप्त करे। और भी, राजन्, यदि तुम स्नेह या कार्यवश वापूके निन्दक इस दुरात्माकी मुझसे रक्षा करना चाहते हो, तो वह दोनो तुम्हारे लिये वृथा ही है। देखिये—
गुणी चन्द्रवशोत्पन्न तुम्हारा प्रिय सखा,

यह सूतवशी पापी कैसे (हो सकता) है। मैं आज धरतीको अर्जुन विना करूगा। राजन्, छोडो। क्रोधसे आज मै ससार को विना कर्ण और विना युधिष्ठिर का करूगा ।।४४।।

(प्रहार करना चाहता है)

६३. कर्ण—(खड्ग उठाकर) अरे वकवासी अधम व्राह्मण, यह न है तू ? राजन् छोडें, छोडें, मुझे न रोकें। (मारना चाहता है)

(दुर्योधन और कृप रोकते है)

६४ दुर्योधन—कर्ण, गुरुपुत्र, आप दोनोको आज यह क्या मूढता सूझी है ?
कृप—वत्स, दूसरे का अवसर है और दूसरे में आवेग! यह कौनसा व्यामोह है ? और इस कालमें इस राजवश की अपनी सेना पर तुमसे ही आफत आ रही है, यह उलटा रास्ता है।

अश्वत्थामा—मामा, इस कूट प्रलाप करनेवाले वढई-वशके कलक के दर्प को तोडना क्या नही मिलेगा ?

कृप—वत्स, अपनी सेनाके प्रधान के विरोध का यह काल नही।

६५ अश्वत्थामा—मामा यदि यह है, तो—

यह पापी जब तक दुश्मन के वाणो से मर नही जाता, तव तक के लिये मैंने युद्धमें प्रिय (अपने) अस्त्रको भी छोड दिया। कुपित भीम-अर्जुन का भय उत्पन्न होने पर इसके सेनापति होनेके समय युद्धमें राजा अपने प्रिय मित्र (मेरे) वलको देखें।।४५।।

(खड्ग छोड देता है)

६६ कर्ण —(विहस्य) कुलक्रमागतमेवैतद् भवादृशा यदस्त्र - परित्यागो नाम ।

अश्वत्थामा—ननु रे, अपरित्यक्तमपि भवादृशैरायुध चिरपरित्यक्तमेव निष्फलत्वात् ।

६७ कर्ण —अरे मूढ,—

घृतायुधो यावदह तावदन्यै किमायुधै ?
यद्वा न सिद्धमस्त्रेण मम तत्केन सेत्स्यति ॥४६॥

(नेपथ्ये)

६८ आ दुरात्मन्, द्रौपदीकेशाम्बराकर्षणमहापातकिन्, धार्तराष्ट्रापसद, चिरस्य खलु कालस्य मत्समुखीनमागतोऽसि। क्षुद्रपशो, क्वेदानी गम्यते ? अपि च, भो भो राधेयदुर्योधनसौबलप्रभृतय पाण्डवविद्वेषिणश्चापपाणयो मानधना , शृण्वन्तु भवन्त ,—

कृष्टा येन शिरोरुहे नृपशुना पाचालराजात्मजा,
येनास्या परिधानमप्यपहृत राज्ञा गुरूणा पुर ।
यस्योर स्थलशोणितासवमह पातु प्रतिज्ञातवान्,
सोऽय मद्भुजपजरे निपतित सरक्ष्यता कौरवा ॥४७॥

(सर्वे आकर्णयन्ति)

६९ अश्वत्थामा—(सोत्प्रासम्) अगराज, सेनापते, जामदग्न्यशिष्य, द्रोणोपहासिन्, भुजबलपरिरक्षितसकललोक, "घृतायुध" (३।४६ इति पठित्वा) इद तदासन्नतरमेव सवृत्तम् । रक्षैन साप्रत भीमाद् दु शासनम् ।

७० कर्ण —आ , का शक्तिर्वृकोदरस्य मयि जीवति दु.शासनस्य छायामप्याक्रमितुम् ? युवराज, न भेतव्य न भेतव्यम् । अयमहमागतोऽस्मि । (इति निष्क्रान्त)

६६ कर्ण—(विहस कर) अस्त्र छोडना तो आप जैसोकी कुल-परपरा चली ही आई है।

अश्वत्थामा—तो रे, आप जैसो द्वारा न छोडा हथियार भी निष्फल होनेसे चिरपरित्यक्त ही है।

६७ कर्ण—अरे मूढ—

जव तक मैं अस्त्रधारी हू, तव तक दूसरे हथियारोका क्या करना है ?
जो (काम) मेरे अस्त्रसे सिद्ध नही होगा, उसे कौन सिद्ध करेगा ॥४६॥

(नेपथ्यमें)

६८ आह दुरात्मा, द्रौपदीके केश और वस्त्रके खीचनेवाले महापातकी, नीच धृतराष्ट्र-पुत्र, तू चिरकाल वाद मेरे सम्मुख आया है। क्षुद्र पशु, अव कहा जायेगा ? और भी, हे-हे कर्ण, दुर्योधन, सुवल-पुत्र आदि पाण्डवद्वेपी धनुर्धर-अभिमानियो, आप सुनें—

जिस नरपशु पचाल राजकी पुत्रीको केशोंसे घसीटा,
राजाओ और गुरुजनोके सामने जिसने इसके वस्त्रको छीना।
जिसकी छातीके रुधिर रूपी मदिराके पीनेकी मैं प्रतिज्ञा कर चुका हू,
उस मेरे भुजारूपी पिजडेमें पडे इसकी कौरव रक्षा करें ॥४७॥

(सव सुनते हैं)

६९ अश्वत्थामा—(कुछ मुस्करा कर) परशुराम-शिष्य, द्रोणके उपहास करनेवाले, अपने भुजवलसे सकल लोकके रक्षक सेनापति, अगराज, "जव तक मै अस्त्रधारी हू" इसका (अवसर) वहुत जल्दी ही आ पहुचा। अव भीमसे इस दु.शासनकी रक्षा करो।

७०. कर्ण—आह, मेरे जीते-जीते भीमकी क्या शक्ति है, कि दु शासनकी छायाको भी लाघ सके। युवराज, न डरें, न डरें। यह मै आया।

(वाहर चला गया)

अश्वत्थामा—राजन् कौरवनाथ, अभीष्मद्रोण सप्रति कौ-रवबलमालोडयन्तौ भीमार्जुनौ राधेयेनैवविधेनान्येन वा न शक्येते निवारयितुम्। अत स्वयमेव भ्रातु प्रतीकारपरो भव।

७१ दुर्योधन —आ, शक्तिरस्ति दुरात्मन पवनतनयस्यान्यस्य वा मयि जीवति शस्त्रपाणौ वत्सस्य छायामप्याक्रमितुम् ? वत्स, न भेतव्य न भेतव्यम्। क कोऽत्र भो ? रथमुपनय।
(इति निष्क्रान्त)

(नेपथ्ये कलकल)

७२ अश्वत्थामा—(ससभ्रमम्) मातुल, कष्ट कष्टम् ! एष भ्रातु प्रतिज्ञाभगभीरु किरीटी सम दुर्योधनराधेयौ शर-वर्षैरभिद्रवति। सर्वथा पीत दु शासनशोणित भीमेन ! न खलु विषहे दुर्योधनानुजस्यैना विपत्तिमवलोकयितुम् ! अनृतमनुमत नाम मातुल, शस्त्र शस्त्रम्,—

सत्यादप्यनृत श्रेयो धिक्स्वर्गं नरकोऽस्तु मे।
भीमाद् दु शासन त्रातु त्यक्तमत्यक्तमायुधम् ॥४८॥

(इति खड्ग ग्रहीतुमिच्छति)

(नेपथ्ये)

७३ महात्मन् भारद्वाजसूनो, न खलु सत्यवचनमुल्लघयितुम-र्हसि।

कृप —वत्स, अशरीरिणी भारती भवन्तमनृतादभिरक्षति।

७४ अश्वत्थामा—कथमियममानुषी वाग्नानुमनुते सग्रामा-वतरण मम ! सर्वथा पाण्डवपक्षपातिनो देवा। भो, कष्ट कष्टम् !—

अश्वत्थामा—राजन् कौरवनाथ, कौरव सेनाको इस समय ढूढते भीम और अर्जुन को भीष्म और द्रोणके विना यह राधेय या दूसरा कोई नही रोक सकता। इसलिये स्वय ही भाईकी रक्षा के लिये तत्पर हो जाओ।

७१ दुर्योधन—आह, हाथमें हथियार लिये मेरे जीते जी दुरात्मा भीम या और किसीकी मजाल है, कि बच्चेकी छाया भी लाघ सके? वत्स, न डरो। यहा कौन है? रथ ले आ। (बाहर चला गया)

(नेपथ्यमें कोलाहल)

७२ (घबराहटमें) मामा, कष्टम्। भाईकी प्रतिज्ञाके भगसे भयभीत यह अर्जुन, तुरन्त दुर्योधन और कर्णकी ओर बाण-वर्षा करते दौड रहा है। दु शासनके रक्तको भीमने अवश्य अब पिया। दुर्योधनके छोटे भाईकी इस विपत्तिको मै देख नही सकता। चाहे प्रतिज्ञा झूठी हो, मामा, हथियार-हथियार—

सत्यसे भी झूठ बेहतर है, स्वर्गको धिक्कार, मुझे नर्क (भले) होवे। भीमसे दु शासनकी रक्षा करने के लिये त्यागे आयुधको मैंने अत्यक्त कर दिया ॥४८॥

(खड्ग पकडना चाहता है।)

(नेपथ्यमें)

७३ महात्मा भारद्वाज-पुत्र, तुम्हें शपथ उल्लघन नही करना चाहिये।
कृप—वत्स, दैवी वाणी, तुम्हारी झूठसे रक्षा कर रही है।

७४ अश्वत्थामा—क्या यह अमानुषी वाणी मेरे युद्धमें उतरनेको नही पसन्द करती! जब (तो) देवता पाडवके पूरे पक्षपाती हैं। हा कष्टम्-कष्टम्—

अश्वत्थामा—राजन् कौरवनाथ, अभीष्मद्रोण सप्रति कौ-
रवबलमालोडयन्तौ भीमार्जुनौ राधेयेनैवविधेनान्येन वा
न शक्येते निवारयितुम्। अत स्वयमेव भ्रातु प्रतीकारपरो
भव।

७१ दुर्योधन —आ, शक्तिरस्ति दुरात्मन पवनतनयस्यान्यस्य
वा मयि जीवति शस्त्रपाणौ वत्सस्य छायामप्याक्रमितुम् ?
वत्स, न भेतव्य न भेतव्यम्। क कोऽत्र भो ? रथमुपनय।
(इति निष्क्रान्त)

(नेपथ्ये कलकल)

७२ अश्वत्थामा—(ससभ्रमम्) मातुल, कष्ट कष्टम् ! एष
भ्रातु प्रतिज्ञाभगभीरु किरीटी सम दुर्योधनराधेयौ शर-
वर्षैरभिद्रवति। सर्वथा पीत दु शासनशोणित भीमेन ! न
खलु विषहे दुर्योधनानुजस्यैना विपत्तिमवलोकयितुम् !
अनृतमनुमत नाम मातुल, शस्त्र शस्त्रम्,—

सत्यादप्यनृत श्रेयो धिक्स्वर्गं नरकोऽस्तु मे।
भीमाद् दु शासन त्रातु त्यक्तमत्यक्तमायुधम् ॥४८॥

(इति खड्ग ग्रहीतुमिच्छति)

(नेपथ्ये)

७३ महात्मन् भारद्वाजसूनो, न खलु सत्यवचनमुल्लघयितुम-
र्हसि।

कृप —वत्स, अशरीरिणी भारती भवन्तमनृतादभिरक्षति।

७४ अश्वत्थामा—कथमियममानुषी वाग्नानुमनुते सग्रामा-
वतरण मम ! सर्वथा पाण्डवपक्षपातिनो देवा। भो,
कष्ट कष्टम् !—

अश्वत्थामा—राजन् कौरवनाथ, कौरव सेनाको इस समय ढूढते भीम और अर्जुन को भीष्म और द्रोणके विना यह राधेय या दूसरा कोई नही रोक सकता। इसलिये स्वय ही भाईकी रक्षा के लिये तत्पर हो जाओ।

७१ दुर्योधन—आह, हाथमें हथियार लिये मेरे जीते जी दुरात्मा भीम या और किसीकी मजाल है, कि वच्चेकी छाया भी लाघ सके? वत्स, न डरो। यहा कौन है? रथ ले आ। (वाहर चला गया)

(नेपथ्यमें कोलाहल)

७२ (घवराहटमें) मामा, कष्टम्। भाईकी प्रतिज्ञाके भगसे भयभीत यह अर्जुन, तुरन्त दुर्योधन और कर्णकी ओर वाण-वर्षा करते दौड रहा है। दु:शासनके रक्तको भीमने अवश्य अव पिया। दुर्योधनके छोटे भाईकी इस विपत्तिको मैं देख नही सकता। चाहे प्रतिज्ञा झूठी हो, मामा, हथियार-हथियार—

सत्यसे भी झूठ वेहतर है, स्वर्गको धिक्कार, मुझे नर्क (भले) होवे। भीमसे दु शासनकी रक्षा करने के लिये त्यागे आयुधको मैंने अत्यक्त कर दिया ॥४८॥

(खड्ग पकडना चाहता है।)

(नेपथ्यमें)

७३ महात्मा भारद्वाज-पुत्र, तुम्हें शपथ उल्लघन नही करना चाहिये।
कृप—वत्स, दैवी वाणी, तुम्हारी झूठसे रक्षा कर रही है।

७४ अश्वत्थामा—क्या यह अमानुषी वाणी मेरे युद्धमें उतरनेको नही पसन्द करती! जव (तो) देवता पाडवके पूरे पक्षपाती हैं। हा कष्टम्-कष्टम्—

अश्वत्थामा—राजन् कौरवनाथ, अभीष्मद्रोण सम्प्रति कौ-रवबलमालोडयन्तौ भीमार्जुनौ राधेयेनैवविधेनान्येन वा न शक्येते निवारयितुम्। अत स्वयमेव भ्रातु प्रतीकारपरो भव।

७१ दुर्योधन —आ, शक्तिरस्ति दुरात्मन पवनतनयस्यान्यस्य वा मयि जीवति शस्त्रपाणौ वत्सस्य छायामप्याक्रमितुम् ? वत्स, न भेतव्य न भेतव्यम्। क कोऽत्र भो ? रथमुपनय। (इति निष्क्रान्त)

(नेपथ्ये कलकल)

७२ अश्वत्थामा—(ससभ्रमम्) मातुल, कष्ट कष्टम् ! एष भ्रातु प्रतिज्ञाभगभीरु किरीटी सम दुर्योधनराधेयौ शर-वर्षैरभिद्रवति। सर्वथा पीत दु शासनशोणित भीमेन ! न खलु विषहे दुर्योधनानुजस्यैना विपत्तिमवलोकयितुम् ! अनृतमनुमत नाम मातुल, शस्त्र शस्त्रम्,—

सत्यादप्यनृत श्रेयो धिक्स्वर्ग नरकोऽस्तु मे।
भीमाद् दु शासन त्रातु त्यक्तमत्यक्तमायुधम् ॥४८॥

(इति खड्ग ग्रहीतुमिच्छति)

(नेपथ्ये)

७३ महात्मन् भारद्वाजसूनो, न खलु सत्यवचनमुल्लघयितुम-र्हसि।

कृप —वत्स, अशरीरिणी भारती भवन्तमनृतादभिरक्षति।

७४ अश्वत्थामा—कथमियममानुषी वाग्नानुमनुते सग्रामा-वतरण मम ! सर्वथा पाण्डवपक्षपातिनो देवा। भो, कष्ट कष्टम् !—

अश्वत्थामा—राजन् कौरवनाथ, कौरव सेनाको इस समय ढूढते भीम और अर्जुन को भीष्म और द्रोणके विना यह राधेय या दूसरा कोई नही रोक सकता। इसलिये स्वय ही भाईकी रक्षा के लिये तत्पर हो जाओ।

७१ दुर्योधन—आह, हाथमें हथियार लिये मेरे जीते जी दुरात्मा भीम या और किसीकी मजाल है, कि वच्चेकी छाया भी लाघ सके? वत्स, न डरो। यहा कौन है? रथ ले आ। (वाहर चला गया)

(नेपथ्यमें कोलाहल)

७२ (घवराहटमें) मामा, कष्टम्। भाईकी प्रतिज्ञाके भगसे भयभीत यह अर्जुन, तुरन्त दुर्योधन और कर्णकी ओर वाण-वर्षा करते दौड रहा है। दु शासनके रक्तको भीमने अवश्य अव पिया। दुर्योधनके छोटे भाईकी इस विपत्तिको मैं देख नही सकता। चाहे प्रतिज्ञा झूठी हो, मामा, हथियार-हथियार—

सत्त्यसे भी झूठ वेहतर है, स्वर्गको धिक्कार, मुझे नर्क (भले) होवे। भीमसे दु शासनकी रक्षा करने के लिये त्यागे आयुधको मैंने अत्यक्त कर दिया ॥४८॥

(खड्ग पकडना चाहता है।)

(नेपथ्यमें)

७३ महात्मा भारद्वाज-पुत्र, तुम्हें शपथ उल्लघन नही करना चाहिये। कृप—वत्स, दैवी वाणी, तुम्हारी झूठसे रक्षा कर रही है।

७४ अश्वत्यामा—क्या यह अमानुपी वाणी मेरे युद्धमें उतरनेको नही पसन्द करती! जव (तो) देवता पाडवके पूरे पक्षपाती हैं। हा कष्टम्-कष्टम्—

दुःशासनस्य रुधिरे पीयमानेऽप्युदासितम् ।
दुर्योधनस्य कर्ताऽस्मि किमन्यत्प्रियमाहवे ॥४९॥

मातुल, राधेयक्रोधवशादनार्यमस्माभिराचरितम् । अतस्त्वमपि तावदस्य राज्ञः पार्श्ववर्ती भव ।

७५ कृप—गच्छाम्यहमत्र प्रतिविधातुम् । भवानपि शिबिरसंनिवेशमेव प्रतिष्ठताम् ।

(परिक्रम्य निष्क्रान्तौ)

—अंक ३

दु शासन का खून पिये जाते समय भी मैं उदासीन हू।
तो युद्धमें मैं दुर्योधनका क्या प्रिय करुगा ।।४९।।
मामा, कर्णके ऊपर आये क्रोधके कारण हमने अनुचित वात की,
इसलिये तुम राजाके ही साथी वनो ।

७५ कृप—मैं यहा प्रतिकार करनेके लिये जा रहा हू । आप भी तम्वुओके स्थानमें रहें।

(परिक्रमा करके दोनो वाहर चले गये)

—अक ३

३८. मुरारि (८०० ई०)

३८ मुरारि (८०० ई०)—यह मुद्गल-गोत्री श्री वर्धमानक और ...तुमतीके पुत्र, तथा माहिष्मती (वर्तमान महेश्वर, इन्दौर) के राजाके ...भापडित थे। इनके जन्म देनेका सौभाग्य मालव भूमिको है। इनकी सिर्फ

अनर्घराघव

१ विमानयात्रा—

१ सीता—(हसन्ती पुष्पक प्रति) विमानराज, गगनमार्ग-चक्रमणकौतूहलोल्लसितमानसास्मि। तदुन्नम तावत्।

२ राम —(सकौतुकस्मितम्) देवि, रत्नगर्भागर्भरत्नशलाके, पश्य पश्य—

यथा यथा पर व्योम विमानमधिरोहति।
तथा तथापसर्पन्ति परत परितो दिश ॥२४॥

३ किं च—

आसन्नतपनाश्यानत्वच पुष्पकपीडिता ।
गगनार्णवयादासि स्तिम्यन्ति स्तनयन्निव ॥२५॥

४ अपि च—

अमी ते गम्भीरस्तनितरवरौद्रा नयनयोर्,
अनायुष्य पुष्यन्त्यवतमसमुच्चैर्जलमुच ।
विसर्पद्भिर्येषामुपरि परमिन्दो परिमलैर्,
असवाधज्योत्स्नातिमिरचयचित्र वियदभूत् ॥२६॥

५ सुग्रीव —(अधोऽवलोक्य सकौतुक राम प्रति) देव, दूरा-दवागवलोकय तावत्—

३८. मुरारि (८०० ई०)

एक रचना "अनर्घराघव" (नाटक) मिलता है, जो सात अंकोका है। अपभ्रंश-कालके कविताके दुर्गुण अपने चरम रूपमें इस नाटकमें प्रकट हुए हैं। यदि मुरारिने नाटककी जगह काव्य लिखा होता, तो अच्छा होता।

अनर्घराघव

१. विमानयात्रा—

१ सीता—(हसती हुई पुष्पकसे) विमानराज, आकाशमार्गकी यात्राके कौतूहलसे मेरा मन उल्लसित है, सो थोडा नीचेसे)

२ राम—(कौतुक और मुस्कानके साथ) रत्नगर्भा पृथिवीके गर्भकी उत्तम-रत्न देवि, देख-देख—

जैसे-जैसे विमान आकाशके ऊपर चढ रहा है।
वैसे-वैसे चारो ओर दिशायें दूर हट रही हैं ।।२४।।

३ और भी—

सूर्यके नजदीक सूखे चमडेवाली, गगनसागरकी विजलिया,
पुष्पकसे पीडित हो गरजती गीली सी हो रही हैं ।।२५।।

४ और भी—

ये वे गम्भीर विजलीके शब्दसे भयकर मेघ,
ऊचे पुष्ट अन्धकारको आयु-क्षीण करते हैं।
जिनके ऊपर चन्द्रसे परे फैलती गर्वोके कारण
विरल चादनीयुक्त आकाश अन्धकार-समूहसे चितकबरा हो गया ।।२६।।

५ सुग्रीव—(नीचे देखकर कौतूहल-पूर्वक राममे) जरा दूर नीचे देखें —

निह्नुतोन्नतनतप्रविभक्ति स्वस्ववर्णविनिविष्टपदार्था ।
अम्बुराशिपरिवेषवती भूश्चित्रकुट्टिममिव प्रतिभाति ॥२७॥

६ अपि च देव,—
अयमनेन महोदधिभोगिना वलयितो वसुधाफणमण्डल ।
जगदनर्घमवाप्य भवादृश किमपि रत्नमङ्कुरुतेतराम् ॥२८॥

७ सीता—(पुरो दर्शयन्ती) क एष कल्पानलज्वालाकला-पक्वथ्यमानजलनिधिलवणस्तबकनिर्मलाभ्रलिहशिखरसह-स्रमधुरो महीधर प्रलोक्यते ?

८. विभीषण —देवि,
पुर प्रालेयशैलोऽय यस्मिन्मकरकेतवे ।
मृतसजीवनी दुर्गा महौषधिरजायत ॥२९॥

९. सीता—(सकौतुकम्) अपि इहैव चन्द्रशेखरनयनानले आहुतीभूतो भगवान्मन्मथ ?

१०. विभीषण —आ देवि, आम् । इयमुत्तरेण देवदारुवन-लेखा विषमशरदुरन्तसाक्षिणी—
पुरा पुरा भेत्तुरिह त्रिनेत्रीशृगाटकेऽतुल्यरुषि स्थितेऽपि ।
धग्धाग्धगित्यज्वलदेकमन्ये तद्धूमपीडामपि नासहेताम् ॥३०॥

११ राम —किमुच्यते—
नीललोहितललाटलाछने लोचने जयति कोपपावक ।
रक्षितस्य जगदन्तहेतवे यस्य सज्वलनमात्मभूरभूत् ॥३१॥

१२. सीता—(राम प्रति) आर्यपुत्र, तथा निरनुक्रोश कथ पुन प्रतिनिवृत्तो महादेवो देव्यै ?”

ऊभड-खाभड भेदको छिपाये अपने-अपने रगोंसे युक्त पदा
सागरके घिरावेवाली पृथिवी विचित्र चौतरे-सी जान पडती है

६ और भी—

इस सागररूपी नागसे लपेटा यह वसुधारूपी फण-मडल,
जगत्में आप जैसे अनर्घ रत्नको पाकर अभिमान कर रहा है

७ सीता—(सामने देखती) प्रलयकी अग्निज्वालाओंसे उवलते
नमकके गुच्छो जैसा निर्मल, आकाशचुम्वी सहस्र शिखरोंसे
यह कौन सा पर्वत दिखाई दे रहा है ?

८ विभीपण—देवि,—

सामने यह **हिमालय** है, जिसमें कामदेवके लिये
मृतसजीवनी पार्वती जैसी महौपधि भी उत्पन्न हुई ॥२९॥

९ सीता—(कुतूहलपूर्वक) क्या यही महादेवकी नयनज्वालामें
कामदेव आहुति वने ?

१० विभीषण—हा, देवि, हा। यह उत्तरमें देवदारवनोकी रेखा
के मृत्युकी साक्षी है—

यहा पहले त्रिपुरारिके तीन नेत्रो रूपी सिगाडेके अतुल रोपयुक्त
एक धक्-धक् जल गया, वाकी दो उस धूमकी पीडा भी नही
॥३०॥

११ राम—क्या कहते हैं—

शकरके ललाटको अलकृत करनेवाले नेत्रमें (स्थित) कोपकी
की जय हो। जगत् नाशके लिये रक्खी जिसका ईंधन
हुआ ॥३१॥

१२ सीता—(रामसे) आर्यपुत्र, ऐसे निप्ठुर महादेव फिर कैसे
ओर झुके ?

१३ राम —

स्मरपरिभवनिःसहायदीर्घैरथ सुभगकरणैरिय तपोभिः ।
तदकृत यदसौ निजेऽपि देहे जयति जगत्पतिरात्मना द्वितीयः
॥३२॥

१४ विभीषण —(सपरिहासम्)—

चिरमनया तपस्सित्वा कपालविषविपधरैकचित्तस्य ।
चक्रे हरस्य मूर्ति फलमर्धं फलदमर्धं च ॥३३॥

१५ सीता—(विहस्य तं प्रति सकौतुकम्) कतरस्मिन्पुनः सनिवेशे भगवत्या सर्वमंगलाया पाणिग्रहणमंगलमासीत् ।

१६ विभीषण —इदं पुरस्तादोषधिप्रस्थं नाम नगराजनगरम् । अत्र हि—

सम्प्रदातरि महौषधीमये भूधरे सुखमुवाह पार्वतीम् ।
मूढककणफणीन्द्रनिर्भया तारकेश्वरकिशोरशेखरः ॥३४॥

१७ राम —आ देवि, इहैव—

पितरि निजतुहिनसपत्कल्पितहेमन्तविभ्रमे गौरी ।
निर्मदभुजगभूषणमभीषणं प्रियकरं भेजे ॥३५॥

१८ सीता—(सस्मितम्) आर्यपुत्र, अप्येतस्मिन्नेव मदनतनुदहनव्यतिकरनिरात्मीयं स्फुटमविश्वसन्त्या गौर्या चन्द्रचूडः संघटितो निजशरीरेण ?

१९ राम —(विहस्य) आ देवि—

एतस्या हि तुषारभूधरशिरःसीम्नि प्रियार्धेन च,
स्वेनार्धेन च तादृशे पशुपतौ वृत्तेऽर्धनारीश्वरे ।
शेषेणार्धयुगेन सप्रहसनं गौरीसखीभिस्तदा,
चक्रेदक्षिणवामयोर्विनिमयादन्योऽर्धनारीश्वरः ॥३६॥

१३ राम—

गौरीने कामदेवके पराजयपर एकाकिनी लम्बे सौभाग्यकारी तपस्याओ-
द्वारा ऐसा काम किया, जो कि अपने लोकनाथ (उनके) साथ निज
देहमें ही द्वितीय (हो) विराजते हैं ॥३२॥

१४ विभीपण—(परिहासके साथ)—
गौरीने चिरकाल तक तपस्या करके कपालमें विप और सापके एक-
मात्र चित्तवाले, शकरकी मूर्ति वन फलको आवा और फल देने
वालेको आधा कर दिया ॥३३॥

१५ सीता—(विहसंकर कौतूहलके साथ उससे) भगवती सर्वमगला
(गौरी) का विवाहमगल कौन से स्थानमें हुआ था ?

१६ विभीपण—यह सामने पर्वतराज का नगर ओषधिप्रस्त नामक
है। यही द्वितीयाके चन्द्रमाके शिरोभूपणवाले शकरने दाता
महौषधिमय पर्वतपर, मुग्ध ककणरूपी नागराजसे निर्भय पार्वतीको
सुखसे व्याहा ॥३४॥

१७ राम—हा देवि, यही—
अपने हिमकी सम्पत्तिसे कल्पित हेमन्त ऋतुकी शोभावाले पिताके
पास गौरीने, मद-रहित भुजग के भूपणवाले अ-भयकर प्रियकरको
प्राप्त किया ॥३५॥

१८ सीता—(मुस्कुरा कर) आर्यपुत्र, क्या यहीपर कामदेवके शरीरके
दहनके व्यापारसे नि शरीर शिव, साफ विश्वास न करती गौरीके
साथ अपने शरीरसे एक हो गये ?

१९ राम—(विहसकर) हा देवि—
इसी हिमालयके सिरकी सीमापर प्रियाके आवे और
अपने आधेद्वारा इस प्रकार पशुपतिके अर्वनारीश्वर वननेपर,
वाकी दोनो आवोंके साथ मजाक करते गौरीकी सखियोंने,
दाहिने और वायेंको वदलकर दूसरा अर्धनारीश्वर वनाया ॥३६॥

२० अपिच—

सभोगानतिरिच्यमानविभवो यद्विप्रलम्भो रसस्-,
तद्दिव्य मिथुन परस्परपरिस्यूत नमस्कुर्महे।
एकस्या प्रतिबिम्बसभृतविपर्यासे मुहुर्दर्पणे,
सव्यागस्थितिकौतुक शमयति स्वामी स यत्रापर ॥३७॥

२१ विभीषण —देव,

स्वच्छन्दैकस्तनश्रीरुभयमतमिलन्मौलिचन्द्र फणीन्द्र-
प्राचीनावीतवाही सुखयतु भगवानर्धनारीश्वरो व ।
यस्यार्धे विश्वदाहव्यसनविसृमर ज्योतिरर्धे कृपोद्यद्-,
वाष्प चान्योन्यवेगप्रहतिसिमसिमाकारि चक्षुस्तृतीयम्
॥३८॥

२२ अपि च—

स्वेदार्द्रवामकुचमण्डलपत्रभग -
सशोषिदक्षिणकरागुलिभस्मरेणु ।
स्त्रीपुनपुसकपदव्यतिलघनी व.
शभोस्तनु सुखयतु प्रकृतिश्चतुर्थी ॥३९॥

२३ अन्यतश्च दर्शयन्—

आधत्ते दनुसुनुसूदनभुजाकेयूरवज्राकुर-
व्यूहोल्लेखपदावलीवलिमयैरगैर्मुद मन्दर ।
आधारीकृतकूर्मपृष्ठकषणप्रक्षीणमूलोऽधुना
जानीम परत पयोधिमथनादुच्चैस्तरोऽय गिरि ॥४०॥

२४. राम —(निर्वर्ण्य सस्मितम्)—

तत्तादृक्फणिराजरज्जुकषण सरूढपक्षच्छिदा-
घातारुतुदमप्यहो कथमय मन्थाचल सोढवान् ?
एतेनैव दुरात्मना जलनिधेरुत्थाप्य पापामिमा,
लक्ष्मीमीश्वरदुर्गतव्यवहृतिव्यस्त जगन्निर्मितम् ॥४१॥

२० और भी—

सभोग से न अतिरेक विभववाला जिनका शृंगाररस है,
उस परस्पर सम्मिलित दिव्य जोडेको हम नमस्कार करते है।
दर्पणमें एकके प्रतिविम्बके जरा उलटे धारण करनेपर,
जहा वह दूसरा (स्वामी) वामागकी स्थितिके कौतूहलको शात करता है ॥३७॥

२१ विभीषण—देव,

स्वच्छन्द एक स्तनकी शोभा युक्त (गौरी), उभय सम्मतिसे मिलते नागराजके यज्ञोपवीतधारी भगवान् अर्धनारीश्वर चन्द्रशेखर, आपको सुखी करें, जिसके आधेमें विश्व जलानेकी आफत फैलानेवाली ज्योति है, और आधेमें, दयासे निकलता आसू और पारस्परिकवेगके प्रहारसे सिमसिमानेवाला तीसरा नेत्र ॥३८॥

२२ और भी—

पसीनेसे भीगे वायें कुचमण्डलके पत्राकनको,
सुखानेवाली दाहिने हाथकी अगुलीमें भस्मकी धूलवाले,
स्त्री-पुरुष-नपुसक पदोंसे परे
चौथी प्रकृति शम्भुका शरीर तुम्हें सुखी करे ॥३९॥

२३ और दूसरी ओर भी दिखाते—

यह अति उच्च पर्वत मन्दर, दानवनाशककी भुजाके केयूर वज्राकुर-समूह के विदारणके पदोकी वलिवाले अगोंसे आनदित है।
हम समझते हैं आधार-भूत कूर्मकी पीठके घर्षणसे पतली जडवाला,
समुद्र मथनसे अधिक ऊचा हुआ यह पर्वत परे दीख रहा है ॥४०॥

२४ राम—(अच्छी तरह देखकर मस्कुराते)—

वैसे नागराजरूपी रस्सीके घर्षणयुक्त, जमे पखके छेदने के आघात की चोटको अहो कैसे इस मथनेवाले पहाडने वर्दाश्त किया ?
इसी दुरात्माने जलसे इस पापिनी लक्ष्मीको उठाकर,
ईश्वरो (राजाओ) के बुरे व्यवहारोंसे ससारको दुखित वनाया ॥४१॥

२५ सीता—(सोद्वेगम्) अनेनैव मस्तुशेषीकृतदुग्धसागरेण चन्द्रमुद्धृत्य प्रोषितभर्तृकस्य स्त्रीजनस्योपरि चारहली विस्तीर्णा।

(सर्वे हसन्ति)

२६ विभीषण—(तदेव रामसूक्त भावयन्) अहह—

प्रक्षेप्तुमुदधौ लक्ष्मी भूयोऽपि चलते मन।
किं तु प्रक्षिप्त एवाय पुनरायाति चन्द्रमा ॥४२॥

२७ (विमृश्य चाकाशे)—

कस्मैचित्कपटाय कैटभरिपूर पीठदीर्घालया,
देवि, त्वामभिवाद्य कुप्यसि न चेत्तत्किंचिदाचक्ष्महे।
यत्ते मन्दिरमम्बुजन्म किमिद विद्यागृह यच्च ते
नीचान्नीचतरोपसर्पणमपामेतत्किमाचार्यकम् ॥४३॥

२८ लक्ष्मण—(सहासम्) हन्त,सुरासुरमल्लभटीतूर्यतालनर्तकी सकलराजकुलखलीकारखर्जुला साहसिकजनसहस्रान्धकार-खेलनखद्योती मधुमथनजीमूतविलासविद्युल्लता किमेव-मुपालभ्यते ? इय हि—

गुणवद्भि सह सगममुच्चै पदमाप्तुमुत्सुका लक्ष्मी।
वीरकरवालवसतिध्रुवमसिधाराव्रत चरति ॥४४॥

२९ सीता—(साभ्यसूयमिव) निजदैवदुर्विलासविचारालसो लोको लक्ष्मीदेव्या दुर्यशो वचनानि गायति। (पुरो दर्शयती) क एप दृग्यते दिवसकूटीकृतज्योत्सनाविच्छर्द-प्रतिरूपो गिरि ?

२५ सीता—(उद्वेगके साथ) इसी मट्ठेके रूपमें बचे क्षीर- सागरने चद्रमाको निकाल कर परदेशी प्रोपितपतिकाओंके ऊपर अपना पौरुप जमाया।

(सब हसते हैं)

२६ विभीषण—(रामके सुवचनका ख्याल करते)—अहह

लक्ष्मीको फिर समुद्रमें फेंकनेको मन मचलता है,

किन्तु फेंका हुआ भी यह (चद्र) लौट आता है ।।४२।।

२७ (सोचकर आकाशकी ओर)—

हे देवि, विष्णुके वक्षस्थलपर दीर्घकालसे वसने वाली तुझे अभिवादन कर, यदि क्रुद्ध न हो, तो कपटके बारेमें कुछ कहता हू।

तेरा मदिर कमल है, क्या यह तेरा विद्यागृह है ?

नीचसे नीचके पास पानीका जाना यह क्या (तेरी) निपुणता है ।।४३।।

२८ लक्ष्मण—(परिहासके साथ) हन्त, देवासुर मल्ल-भटोंके वाद्यके तालपर नाचनेवाली, सारे राजवशोके निपातनकी खुजलीवाली, हजारो साहसी जनोंके शस्त्रोंके अन्धकारमें खेलनेवाली, मुरारि रूपी मेघकी बिजलीको क्यो इस तरह ताना देते हैं ? यह—

गुणवानोंके साथ सगम और उच्च पदके पानेमें उत्सुक,

वीरोंकी तलवारपर वसनेवाली लक्ष्मी निश्चय ही असिधारा-व्रतका पालन करती है ।।४४।।

२९ सीता—(खिन्न सी) अपने भाग्यकी विडवनाका विचार न करते लोग लक्ष्मीदेवीका अपयश गाते हैं। (सामने दिखलाती) दिनका शिखर बना, प्रकाश-समूहकी यह प्रतिमूर्ति कौन सा पहाड दिखाई देता है ?

३० विभीषण —देवि,

सोऽय कैलासशैल स्फटिकमणिभुवामशुजालैर्ज्वलद्भिश्,
छाया पीतापि यत्र प्रतिकृतिभिरुपस्थाप्यते पादपानाम् ।
यत्रोपान्तोपसर्पत्तपनकरधृतस्यापि पद्मस्य मुद्रा,
उद्दामानो दिशन्ति त्रिपुरहरशिरश्चन्द्रलेखामयूखा ॥४५॥

३१ राम —हन्त, शतधा दृश्यमनोऽपि न चक्षुरकौतुक करोति ।
गिरि कैलासोऽय दशवदनकेयूरविलसन्,
मणिश्रेणी पत्राकुरमकरमुद्राकितशिल ।
अमुष्मिन्नारुह्य स्फटिकमयसर्वांगविमले,
निरीक्षन्ते यक्षा फणिपतिपुरस्यापि चरितम् ॥४६॥

३२ अपि च—

दशमुखभुजमण्डलीना दृढपरिपीडितपीतमेखलोऽयम् ।
जलगृहकवितर्दिकासुखानि स्फटिकगिरिर्गिरिशस्य निर्मि-
मीते ॥४७॥

३३ विभीषण —(सीता प्रति)देवि, दृश्यन्ताममी—

कैलासाद्रितटीषु घूर्जटिजटालकारचन्द्राकुर-
ज्योत्स्नाकन्दलिताभिरिन्दुदृषदामद्भिर्नदीमातृका ।
गौरीहस्तगुणप्रवृद्धवपुष पुष्प्यन्ति धात्रेयक-
भ्रातृस्नेहसहोढषण्मुखशिशुक्रीडासुखा शाखिन ॥४८॥

३४ अपि चास्य नित्यमधित्यकावासी परमेश्वर —
सहस्राक्षैरगैर्नमसितरि नीलोत्पलमयीम्-,
इवात्मान मालामुपनयति पत्यौ मखभुजाम् ।

३० विभीपण—देवि,

सो यह **कैलास** पर्वत है, जहा स्फटिक-मणिकी भूमियोकी घधकती किरणो द्वारा वृक्षो की छिपी हुई छाया भी प्रतिमूर्तियो से उपस्थित की जाती हैं। जहा पासमें पहुची सूर्य-किरणोसे धारित भी पद्मकी मुद्रा को, **त्रिपुरारि**के सिरके चन्द्रमाकी उद्दाम किरणें प्रकट करती हैं ॥४५॥

३१ राम—हन्त, सौ वार देखनेपर भी यह नेत्रको कौतूहलहीन नही वनाता।—

रावणके केयूरमें शोभते मणियोके पत्राकुरमें,
मकरकी मुद्रा से अकित शिलावाला यह **कैलासपर्वत** है।
इस स्फटिकमय सर्वांग-विमलके ऊपर चढकर,
यक्ष लोग नागराजके नगरकी वातोका निरीक्षण करते हैं ॥४६॥

३२ और भी—

रावणके भुज-समूहोंके द्वारा चारो ओर जोरसे दवाई पीली मेखलाओ-वाला, यह स्फटिकगिरि शकरके लिये जलगृहकी वेदीके सुखका निर्माण करता है ॥४७॥

३३ विभीपण—(सीतासे) देवि, इन्हें देखें—

कैलासपर्वतके किनारोपर शकरकी जटाके आभूपण चद्रलेखाकी,
ज्योत्स्नासे द्रवित चद्रकान्तके जलोकी नदीकी भूमिवाले,
गौरीके हाथके गुणोंसे वढे शरीरवाले,
दूधभाइके स्नेहके साथ कार्तिकेयकी वाल-क्रीडा द्वारासे (ये) वढे वृक्ष फूल रहे हैं ॥४८॥

३४ और भी, इस कैलासकी अधित्यकामें शकर नित्य रहते हैं—
जव देवेंद्र सहस्र आखो और अगोंसे नमस्कार करते
अपने को नीलकमलमयी मालाकी तरह भेंट कर रहे थे,
और कुमार क्रीडाके आग्रहसे उसे पकडनेकी इच्छा कर रह थे,

जिघृक्षौ च क्रीडारभसिनि कुमारे सह गणैर्-,
हसन्वो भद्राणि द्रढयतु मृडानीपरिवृढ ॥४९॥

३५ कि च—

यन्नाट्यभ्रमिघूर्णमानवसुधाचक्राधिरूढे भृश,
मेरौ पार्श्वनिविष्टवासरनिशाचक्रे परिभ्राम्यति।
तैजस्यस्तडितो भवन्तु शतशो दृष्टा हि जाता कथ,
तामस्योऽपि स व पुनातु जगतामन्तेष्टियज्वा विभु ॥५०॥

३६ लक्ष्मण —

जयति परिमुषितलक्ष्मा भयादनुपसर्पतेव हरिणेन।
इह केसरिकरजाकुरकुटिला हरमौलिविधुलेखा ॥५१॥

३७ सीता—(सपरिहासम्) एतस्य ददशूकनरकरोटिमुण्ड-मालामण्डनस्य श्मशानवासिनो भूषणतेव रोहिणीव-ल्लभस्य कलक ।

३८ विभीपण —(विहस्य) शके भगवानपि न मृगाकमलका-रकाम कलयति। तथा हि—

सहचरपिशाचपरिषत्प्रसत्तये कामचारतो रजनीम्।
कारयितुमिव कपाली शिरसि निशाकरमय वहति ॥५२॥

(सर्वे हसन्ति)

३९ राम —(सवहुमानम्)—

श्रीकण्ठस्य कपर्दवन्धनपरिश्रान्तोरगग्रामणी-
सदष्टा मुकुटावतसकलिका वन्दे कलामैन्दवीम्।
या विम्वप्रतिपूरणाय परितो निष्पीड्य सदशिका-
यन्त्रेणेव ललाटलोचनशिखिज्वालाभिरावर्त्यते ॥५३॥

(पुष्पक प्रति) विमानराज, मनागुन्नम्यताम्। आलोकयतु मैथिली सुमेरुशिखराणि।

उस समय गणोके साथ हसते गौरीको आलिंगन करनेवाले शकर तुम्हारा मगल करें ।।४९।।

३५ और क्या—

जिसके नाट्यके चक्करमें घूमती वसुधा मडल पर आरूढ,
पास स्थापित रात-दिनके चक्रवाले परिभ्रमण करते मेरुपर,
देखी शतश तेजोमयी बिजलिया हुई कैसे तामसी हुई,
वह ससारके अन्त्येष्टि यज्ञ करनेवाले शकर तुम्हें पवित्र करें ।।५०।।

३६ लक्ष्मण—

भयसे पास न आते हरिन द्वारा चुराये लक्षणवाली,
केसरीके नखके अकुर जैसी कुटिल शकरके सिरकी निष्कलक चन्द्रलेखा की जय हो ।।५१।।

३७ सीता—(परिहासके साथ) सर्प-नर-कपाल-मुडमालाके मडनवाले इन श्मशानवासीका ही भूषण है चन्द्रमाका कलक।

३८ विभीषण—(विहसकर) मुझे सन्देह है, कि आभूषणकी इच्छासे भगवान् चन्द्रमाको नही धारण करते, क्यो कि—

साथी पिशाच-परिषद्की प्रसन्नताके लिये स्वेच्छासे रात्रिके बनानेकेलिये मानो यह कपाली (शकर) सिरपर चन्द्रमा धारण करते है ।।५२।।

(सब हसते हैं)

३९ राम—(आदरके साथ)—

जटाके बाधनेसे दबी नागराज द्वारा डसी गई,
कली सी शकरकी मुकुट-भूषणरूपी चन्द्रकलाकी मैं वदना करता हू।
जो कि बिम्बको पूरा करनेकेलिये चारो ओरसे मडसी से
दबा कर ललाटके नेत्रकी अग्नि-ज्वालाओ द्वारा पलटाई जा रही है ।।५३।।

(पुष्पकसे) विमानराज, जरा सा ऊपर हो, जिसमें मैथिली सुमेरुके शिखरोको देख सकें,

वाली स्वाह वयमानमेनमपि यच्चक्रे कृते चक्षुषा,
पश्याम. श्रवसी कृते च शृणुमस्तद्वक्तुमल्पे वयम् ॥५८॥

४५ राम —(सबहुमानम्)—

स किं वाच्यो वाली भुजकुलिशमूलेन दशतो
दशग्रीव यस्य प्रतिजलधि सध्याविधिरभूत्।
कथं वा निर्वाच्य स च दशमुखो यस्य दमने,
मनागासीद्वालिव्ययचरितमेवोपकरणम् ॥५९॥

४६ सीता—(राम प्रति) आर्यपुत्र, किं पुनरेतद्दलितक-
र्पूरशलाकाखण्डगौर गगनागणे दृश्यते ?

४७ विभीषण —(सीता प्रति) देवि, चन्द्रलोकोपकण्ठम-
धिरूढो विमानराज । दृश्यता च भगवानयम्—

य प्राक्प्रत्यगवागुदञ्चि.ककुभा नामानि सबिभ्रत,
ज्योत्स्नाजालझलझलाभिरभितो लुम्पन्तमन्ध तम ।
प्राचीनादचलादितस्त्रिजगतामालोकबीजाद्बहिर्,
निर्यान्ति हरिणाकमकुरमिव द्रष्टु जनो जीविति ॥६०॥

४८. अपि च—

स श्रीकण्ठकिरीटकुट्टिमपरिष्कारप्रदीपाकुरो,
देव कैरवबन्धुरन्धतमसप्राग्भारकुक्षिभरि ।
संस्कर्ता निजकान्तिमौक्तिकमणिश्रेणीभिरेणीदृशा,
गीर्वाणाधिपते सुधारसवतीपौरोगव प्रोदगात् ॥६१॥

४९ अपि च—

प्राणायामोपदेष्टा सरसिरुहवने यौवनोन्मादलीला-
गोष्ठीना पीठमर्दस्त्रिभुवनवनितानेत्रयो प्रातराश ।
कामायुष्टोमयज्वा शमितकुमुदिनीमौनमुद्रानुराग,
शृगाराद्वैतवादी विभवति भगवानेष पीयूषभानु ॥६२॥

हम देखते और कानमें से सुनते हैं, पर थोडा कहनेमें भी असमर्थ हैं ।।५८।।

४५ राम—(आदरके साथ)—

उस वालीके वारेमें क्या कहना, जिसने वाहुके वज्र मूलसे दवाते रावणको इस समुद्रकी ओर फेंक कर सध्या-वदन किया।
दशमुख के वारेमें भी कैसे कहा जाय, जिसके दमनमें
वालीका मारना भी थोडा सा साधन था ।।५९।।

४६ सीता—(रामसे) आर्यपुत्र, आकाशमें चूरा किये कपूरकी शलाकाके टुकडे सा सफेद यह क्या दिखलाई दे रहा है ?

४७ विभीषण—(सीतासे) देवि, विमानराज चन्द्रलोकके पास चढ गया है। और इन भगवान्‌को देखें—

पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिणकी दिशाओको धारण करते,
प्रकाश-जालसे जगमगाते चारो ओर घोर अन्धकारको दूर करते,
तीनो लोकोंके आलोकके वीज, इस उदयाचलसे,
वाहर निकलते जिस चन्द्रको अकुरकी तरह देखते लोग जीते हैं ।।६०।।

४८ और भी—

वह शकरके किरीटके चौतरेकी सजावटके दीपककी टेम,
कमलिनीके प्रिय देव, घोर अधकार रूपी पहाडको कोखमें धारण करनेवाले, अपनी कान्तिरूपी मुक्ता-मणियो द्वारा मृगनयनियोको सजानेवाले इन्द्रके अमृत-भोजनालयका मुख्य रसोइया (चद्र) उग गये ।।६१।।

४९ और भी—

प्राणायामके उपदेष्टा, कमलवनोमें यौवनके उन्मादकी क्रीडा-गोष्ठियोंके विदूपक, तीनो लोकोकी वनिताओंके नेत्रोंके कलेवा,
कामकी आयु, यज्ञके यजमान, कुमुदिनीकी मौन मुद्राके हटाने के अनुरागी, शृगारके अद्वैतवादी यह भगवान् सुधाकर शोभ रहे हैं ।।६२।।

५० लक्ष्मण —(विलोक्य सकौतुकम्)—
कर्णोत्तंसयवाङ्कुरः करतले कृत्वा हसित्वा मिथः,
सहूतः पुरुहूतपौरयुवतीवर्गेण कौतूहलात्।
ग्रासार्तिक्षुभितोऽयमङ्कहरिणः कुर्वीत किं किं कला-
कन्थामिन्दुमयीमजस्रघटनोद्घाटश्लथावस्थिताम्।।६३।।

३९. त्रिविक्रम (९१५ ई०)

गद्य-पद्य मिश्रित काव्यको चम्पू कहा जाता है। अपभ्रंश-कालमें ही इस कविताकी शैलीका प्रचार बढा। बहुतसे चम्पू लिखे गये हैं, जिनमें सबसे उत्कृष्ट त्रिविक्रमका "नलचम्पू" है। राष्ट्रकूट-वंशके राजा द्वितीय कृष्णके पौत्र जगत्तुंगके पुत्र इन्द्रराजके दरबारी भट्ट त्रिविक्रम थे। कविके पिताका नाम देवादित्य और दादाका नाम श्रीधर था, जो शांडिल्यगोत्री

नलचम्पू[1]

(१) दक्षिणापथ—

१ अस्ति विस्तीर्णमेदिनीमण्डलमण्डनायमानो नगनगरपुर-विहारारामरमणीयः, सीतासहायसंचरितरघुपतिपाद-पद्मपवित्रारण्यः, पुण्यतरतरंगगंगागोदावरीवारिवारि-तदुरितदावानलप्रसरः, मन्दर इव बलिराजजनितपरिवर्तनः कैलास इव महेश्वरलोककृतवसतिः, मेरुरिव सुवर्णप्रकृ-तिकमनीयो, यदुवंश इव दृष्टशूरपुरुषावतारः, सोमान्वय इव बुधप्रधानो, वेदपाठ इवानेकैः सवनैरुपेतः, पर्वते पर्वते स्थाणुभिः, पुरे पुरे पुराणपुरुषैः, जले जले कमलोद्-भवैः, पदे पदे देवकुलैः, वने वने वरुणैः, स्थाने स्थाने नन्दनो-

१ काशी संस्कृत सिरीज, बनारस १९३२

५०. लक्ष्मण—(देखकर कौतूहलके साथ)—

कर्णभूषणवाले जौंके अकुरको हाथमें ले आपसमें हसकर,
इन्द्रके नगरकी युवतियो ने कुतूहलके साथ जिसे वुलाया,
भूखसे क्षुभित यह मयक निन्तर घटने-वढनेसे,
थकावटवाली इन्दुमयी किन-किन कलाओकी कथरी वनाये ॥६३॥
—अंक ७

३९. त्रिविक्रम (९१५ ई०)

ग्रानें थे। इन्द्रराजने राज्याभिषेकके समय ब्राह्मणोको सुवर्ण तुलादान दिया था, जिसका उल्लेख वरारके नौसारी ग्रामसे मिले ९१५ ई० के अभिलेखसे मिलता है। इस अभिलेख (प्रशस्ति) के लेखक त्रिविक्रम भट्ट थे। नलचम्पू उत्कृष्ट काव्य हैं। वाद के चम्पू लेखक त्रिविक्रमके पास तक नहीं पहुंच सके। अपभ्रंशके अन्तिम कालके महाकवि श्रीहर्षने भी "नव-साहसाकचरित" के नामसे एक चम्पू लिखा था, जो अब प्राप्य नहीं है।

नलचम्पू

१. दक्षिणापथ—

१ है विस्तृत पृथिवीमडलका आभूपणसा पर्वत-नगर-पुर-विहार और आरामोसे रमणीय, सीताके साथ रघुपतिके चरणकमलके चलनेसे पवित्र अरण्यवाला, पवित्र तरगोवाली गगा-गोदावरीके जलसे निवारित पापरूपी दावानलके प्रसारवाला, मन्दरकी तरह वली राजा द्वारा घुमाया, कैलासकी तरह शकरके लोगोकी वस्ती वना, मेरुकी तरह सुवर्णकी प्रकृति द्वारा कमनीय, यदुवशकी तरह शूर पुरुषोंके अवतारको देखे, सोमवशकी तरह वुध (ग्रह, विद्वानो) जैसे प्रधान पुरुपवाला, वेद-पाठकी तरह अनेक नवनो (सोम छाननो) से युक्त, पर्वत-पर्वत में स्थाणुओ (शकरकी) मूर्तियो द्वारा, पुर-पुरमें पुराण-पुरुपो (वृद्धजनो या विष्णु) द्वारा, जल-जलमें कमलोद्भवो (रम्भा या कमलोंकी उत्पत्ति) द्वारा, पद-पदपर देवालयो, वन-वनमें वरुणो,

द्यानं, अर्गलं स्वर्गस्य, तापीप्रायोऽप्यनतपापो जनस्य, विन्ध्याद्रिमुद्रिताया दिशि देशानामुत्तरोऽपि दक्षिणो देशः।

२ यत्र, शास्त्रे शस्त्रे च वेदे वैद्ये च भरते भारते च कल्पे शिल्पे च प्रधानो, धनी, धन्यो, धान्यवान्, विदग्धो वाचि, मुग्धो मुखे, स्निग्धो मनसि, वसति निरन्तरमशोको लोकः।

३ यत्र, क्रुद्धधूर्जटिललाटलोचनानलज्वालाकवलनाकुल -, त्रासादपांगावलोकनमात्रनिर्जितपरमेश्वरमनसा विलासिनीनामुच्चकुचकुम्भयोः श्रृंगारसर्वस्वम्, अधरपल्लवेषु मधु, भ्रूभंगेषु, धनु, कटाक्षेषु पुष्पबाणान्निधाय निलीनोऽगेषु जघनस्थलस्थापितरतिर्मकरकेतनः।

४ यासां तारुण्यमेव सर्वांगेषु शोभार्थमाभरणम्, उत्तुंगस्तनमण्डललावण्यमेव मुखकमलावलोकनाय दर्पणं, तारतरनयनकान्तिरेव मुखमण्डलमण्डनाय चन्दनललाटिका, भ्रूभंगा एव विभ्रमाय मृगमदपत्रभंगा, कटाक्षा एव युवजनजयाय परमास्त्राणि, बन्धूककुसुमकान्तिदन्तच्छद एव लोकलोचनमनोमोहनाय माहेन्द्रमणि, मुखकमलपरिमलागतमधुकरमधुरझंकार एव विनोदाय वीणाध्वनिः।

५. किं बहुना—

ता एव निर्वृतिस्थानमहं मन्ये मृगेक्षणाः।
मुक्तानामास्पदं येन तासामेव स्तनान्तरम् ॥२६॥

(वृक्षो या वरुण देवता), स्थान-स्थानपर नदनोद्यानो (आनददायक बगीचों या देवोद्यानो) द्वारा स्वर्गके अर्गल (कपाट) की तरह, तापी (ताप्ती या तपानेवाली) प्राय भी जनोंके लिये, तापरहित, **विंध्य पर्वत** द्वारा आनदित, दिशामें देशोमें अनुपम उत्तम (उत्तर, उत्तम) दक्षिणदेश।

२ जहा, शास्त्र, शस्त्र, वेद, वैद्य, भरत, भारत, कल्प और शिल्पमें प्रमुख धनी, धनवान्यवाले, बोलनेमें चतुर, मुखपर भोले, मनमें स्नेहयुक्त, सदा शोकरहित लोग बसते हैं।

३ जहा, (कामदेव) रहता है (जो) क्रुद्ध शकरके ललाट-लोचनकी ज्वाला-के ग्रास करनेसे व्याकुल, भयसे नेत्रो द्वारा अवलोकन मात्रसे शंकरके मनको जीतनेवाली रमणियोंके उच्च स्तनकुभोंके शृगारके सर्वस्व, अधर-ओष्ठ-पल्लवोमें मधु, तिरछी भौंओमें धनुष, कटाक्षोमें पुष्पबाणों (फूलरूपी बाण या कामदेव) को रखकर अंगोमें विलीन, जघा-स्थलमें स्थापित रतिवाला है।

४ जहा है स्त्रियोकी तरुणाई ही सारे अगोमें शोभाके लिये आभूषण, उच्च स्तनमडलका लावण्य ही मुखकमलके अवलोकनके लिये दर्पण, अधिक चचल नयनोकी कान्ति ही मुखमडलके मंडनके लिये चन्दनका ललाट-तिलक, भौंहोका तिरछा होना ही शोभन कस्तूरीके खिचे पत्र-अंकन, कटाक्ष ही तरुण जनोंके जीतनेके लिये परम अस्त्र, अँडहुलके फूलकी कान्तिवाले ओठ ही लोगोके लोचन और मनको मोहनेवाली इन्द्रमणि (लाल), मुखकमलकी गधसे पास आये भ्रमरोकी मधुर झकार ही विनोदके लिये वीणा ध्वनि।

५ अधिक क्या—

मैं समझता हू, वही मृगनयनिया सुखका स्थान है,
इसलिये उनके ही स्तनोंके बीच मोतियोका निवास-स्थान है॥२६॥

६ मन्ये च, ताभिरेव विविधकलाकुम्भीभि. कुम्भोद्भवोऽपि भगवान् प्रलोभितो भविष्यति, येनाद्यापि न मुचति दक्षिणा दिशमेव।

७ अथवा—

देशो भवेत्कस्य न वल्लभोऽसौ,
स्त्रीसकुल सुस्थितकामकोटि.।
दग्धैककाम त्रिदिव विहाय,
यस्मिन्कुमारोऽपि रति चकार ॥२७॥

(२) कुडिनपुरम्—

८ तस्यान्तर्भूत**वैदर्भ**मण्डलस्यालकारभूतमनाकुलममरपति-पुरप्रतिस्पर्धि परित परिखाप्रान्तरूढप्रौढहृद्योद्यानमाला-वलयितमदभ्रशुभ्राभ्रलिहप्रासादशिखरशिखाभोगभग्न-रविरथतुरगवेगम्, एकत्राग्निहोत्रमन्त्रपवित्राहुतिहतसमस्त समस्तदिव्यान्तरिक्षभौमोत्पातसघातै कृतमन्युभिरपि मन्युशून्यै, उक्तसूक्तैरपि **निरुक्त**परै, सन्मार्गस्थैरपि गृहस्थै, सकलत्रैरपि ब्रह्मचारिभि, अभ्यस्ततिथिभिरप्य-तिथिकुशलै, सामप्रयोगप्रधानैरपि दण्डावलम्बिभि, **शत-पथा**नुसारिभिरप्येकमार्गै, ब्राह्मणैरध्यासितम्।' एकत्र **कुरु**भिरिव द्रोणपुर सरै, प्रासादैरिव तुलाधारिभि, **नैयायिकै**रिवानुमेयानुमाननिपुणै, **वैशेषिकै**रिव द्रव्यानुगु-णकर्मविशेषपण्डितै, **वैयाकरणै**रिव रूपसिद्धिप्रधानै रुद्रैरिवानेकग्रन्थिवद्धकपर्दकै, विपणिवणिग्जनैरधिष्ठितम् एकत्र विटकौलदम्भदीक्षाभिरिव कुचरूपलोभितलोकाभि: कुकविकाव्यपद्धतिभिरिव भग्नयतिगणवृत्ताभि, निशा-चरीभिरिव रजनिरागिणीभि, सर्वतोमुखजघनचपला-भिरप्यनार्याभि, **कर्णाटचेटी**भिर्भरितम्। एकत्र वालकमिव

६. और मै समझता हू, विविध कलाओकी उन्ही कुभियो द्वारा भगवान् कुभज (अगस्त्य) भी प्रलोभित है, जो कि अभी भी (वह) दक्षिण दिशाको नही छोडते।

७ अथवा—

स्त्रीयुक्त सुन्दर स्थित काम कोटिवाला वह देश किसको नही प्रिय होगा, जहा अद्वितीय कामके जले स्थान में स्वर्गको छोडकर कार्तिकेय भी रति करते है ।।२७।।

२ कुडिनपुर—

८ उस (दक्षिण) देशके भीतर है विदर्भमडलका अलकार सा कुडिन पुर नगर, अव्याकुल (जो कि) इन्द्रपुरसे स्पर्धा करनेवाला ,चारो तरफ परिखाओंके किनारे उगे प्रौढ मनोहर उद्यानमालासे वेष्ठित, अत्यधिक शुभ्र मेघचुवी, प्रासाद-शिखरोंकी शिखाकी ऊचाईयो से सूर्यके रथके तुरगोंके वेगको भग्न किये। जहा (ऐसे ब्राह्मण वसते थे जो),एक जगह अग्निहोत्रके मन्त्र द्वारा पवित्र आहुतियोसे सारे दिव्य आकाश और भूमिके उत्पातको नष्ट करते, क्रोध किये भी क्रोध (मन्यु क्रोध या यज्ञ) से शून्य, वेदोंके सूक्तोंके वाचक भी निरुक्त (विना कहे या निरुक्तशास्त्र) में निष्णात, सन्मार्ग (धर्म या सच्चे मार्गो) पर अवस्थित भी गृहस्थ, सकलत्र (सकलरक्षक या पत्नी-सहित) भी ब्रह्मचारी, तिथिके अभ्यस्त करनेवाले भी (अतिथि, मेहमान) की सेवामें चतुर, साम (सामवेद या शान्तिकी नीति) के प्रयोगोमें प्रधान भी दड (राजनीतिक दड या सन्यासियोंके दड) के अवलम्बन लेनेवाले, शतपथ (सौ मार्ग या शतपथ ब्राह्मण) के अनुगामी भी एक मार्गवाले, एक जगह कुरुओकी तरह द्रोण (द्रोणाचार्य या नापतौल) को आगे किये, प्रासादोकी तरह तुला (तराजू) धारण करनेवाले, नैयायिकोकी तरह अनुमेय और अनुमान मे निपुण, वैशेषिकोंकी तरह द्रव्यके अनुसार गुण, कर्म, विशेषमें पडित, वैयाकरणोकी तरह रूप (रूप या प्रयोग) की सिद्धिमें प्रधान, रुद्रोकी तरह अनेक गाठोमें वधे कर्पदक (जटाजूट या कौडी) वाले, वाजारके वनिया लोगोंसे अविष्ठित। एकत्र लम्पट वाममार्गके पाखडकी दीक्षाओकी तरह स्तनो और रूपसे लोभित लोगोको लुभानेवाली, कुकवि

कुलालाकीर्णम्। एकत्र वृद्धिमिव कुजराजितम्। एकत्र चित्रविद्ययेव प्रवर्धमानसकलशिशुशोभितया विन्यस्त-स्वस्तिकया सर्वतोभद्रभूषणया भवनमालयालकृतम्। एकत्र नाटकैरिव पताकाकसधिसगतै, दुष्टकिरातैरिव दृष्टकूटकर्मभि, शस्त्रैरिव सुधारै, विचित्रैरपि सचित्रै, सतुलैरप्युतलैर्देवकुलै सकुलम्। विशालमपि शाला-सपन्नम्, चतुश्चरणसयुक्तमपि चरणरहितम्, विट्सभृ-तमपि शुचिमार्गम्, सर्वत्र चत्वराधिकमपि स्थिरप्रकृति मज्जन्**महाराष्ट्र**कुटुम्बिनीमुखमण्डलविधीयमानोत्फुल्ल-कमलशोभायास्तुगतरगरगत्तरुणार्जुनराजीवराजमान-राजहसविराजितवारे**र्वरदा**यास्तीरे रामणीयकरसकुण्ड **कुण्डिनं** नाम नगरम्।

यस्य नातिदूरे दर्शनदूरीकृतदुरितोपप्लवाऽऽप्लवनजनित-पातकमगा गगामुपहसन्ती स्वर्गमार्गाश्रियनिश्रेणी पुण्य-पया **पयोष्णी** वहति।

यस्य च पश्चिमदेशे प्रणतसुरासुरमौलिनीलमणिमरीचि-चचरीकचक्रचुम्बितचरणाम्भोजस्य **भोजकटकूपजन्मनो** जरापातितययाते प्रचण्डदण्डदाण्डिक्यदण्डनाडम्बरितगण्ड-पाषाणविदलित**वैदर्भ**मण्डलस्य भगवतो **भार्गवस्याश्रम**।

की काव्य-पद्धतियोकी तरह यति-गण-वृत्त (छन्दके या यतियोके आचार) को भग्न करनेवाली, निशाचरियोकी तरह रातमें अनुराग करनेवाली, चारो ओर जघनचपला (छन्द या पुश्चली) अनार्याओ (आर्या छन्द रहित या दुष्टा), **कर्नाटकी** दासियोंसे भरा। एक जगह वालककी तरह कुम्हारोंसे आकीर्ण। एक जगह वृद्धिकी तरह वृक्षोंसे राजित (या बुरी जरासे पराजित)। एक जगह चित्रविद्याकी तरह वढते हुये सारे शिशुओंसे शोभित। स्वस्तिक लिखित सर्वतोभद्रके भूपणवाली भवन-पक्तियोसे अलकृत। एक जगह नाटकोकी तरह पताका-अक-सन्धिसे युक्त (पताकाओके लाछन के सम्पर्क-सहित), दुष्ट **किरातो**की तरह दृष्टकूट (देखे पर्वत या कपटमें चतुर) कर्म-वाले, शस्त्रोकी तरह सुन्दर धारावाले (या चूनेवाले), विचित्र भी सचित्र, तुला-सहित भी अतुल देवालयोसे सकुल। विशाल भी शाला-ओसे युक्त, चार चरणोसे युक्त भी चरण (सचार)-रहित, विटो (लपटो) से युक्त भी पवित्र मार्गवाला, सर्वत्र वहुतेरे चौतरोवाला भी स्थिर स्वभाववाला (अधिक त्वरा), स्नान करती **महाराष्ट्री** स्त्रियोके मुखमडल द्वारा किये उत्फुल्ल कमल शोभावाली ऊची तरगोके रगसे तरुण अर्जुन (श्वेत कमल) से विराजमान, राजहसो-से विराजित पानीवाली **वरदा** नदीके किनारे रमणीय रसोके कुड-प्रवाहसा वह कुडिन नगर था।

जिससे थोडी दूरपर दर्शनसे पापोके सकट वहाती पातक भग करनेवाली गगाका उपहास करती स्वर्ग-मार्गके आश्रयके लिये सीढी सी **पुण्यजला पयोष्णी** नदी वहती है।

जिसके पश्चिम में प्रणाम करते सुर-असुरके सिरोकी शिरोमणियो-की किरणरूपी भवरो द्वारा चुवित चरणकमलवाले, **भोजकटकूप**-में उत्पन्न, जरा द्वारा गिराये ययाति वाले प्रचण्ड दण्ड द्वारा दाडिक्य राजाके दडनके आडम्वरयुक्त गड पत्वरसे चूर करनेवाले **विदर्भ-मडल**के भगवान् भार्गव (परशुराम) का आश्रम है।

११. यत्र च विपत्त्रा सन्ति साधवो न तु तरव, विजृम्भमाणकमलानि सरासि न जनमनासि, कुवलयालकारा क्रीडादीर्घिका न सीमन्तिन्य, विपदाक्रान्तानि सरित्कूलानि न कुलानि।

१२ किं बहुना—

देशाना दक्षिणो देशस्तत्र **वैदर्भ**मण्डलम्।
तत्रापि **वरदा**तीरमण्डल **कुण्डिनं पुरम्** ॥२८॥

—उच्छ्वास २

(३) **कुमारायोपदेश —**

१३ अस्ति च तस्य नरपतिसूनो समानशीलवयो विद्यालकारकान्तिकलापपरिपूर्णदेह शरीरमात्रद्वितीयोऽप्यद्वितीयहृदयमेक जीवितमपर उच्छ्वास **सालंकायन**सूनु **श्रुतशीलो** नाम मन्त्री मित्र च।

१४ एकदा तु पूर्वदिग्वधूकुकुमपकपल्लवितवदनायमाने निरुद्धान्धतमसि सौगन्धिकवन्धुनि बन्धूककुसुमारुणे वियति तरतीव तरुणतरे तरणिमण्डले, मण्डयति कुसुम्भकुसुमकेसरप्रकरायमाणे गगनागणमम्भोजमुकुलनिद्रामुपि रोचिपा चये, चलिते च विचरितुमुपवनतरुराजिकर्णोत्पले, निद्राविरामविवृतपक्षे पक्षिकुले, कृतप्राभातिककर्मण सभागणमण्डपमध्यवर्तिनो दत्तसेवावसरस्य राज्ञ प्रविष्टे, मन्त्रिणि सालकायने, प्रणामपर्यस्तकर्णोत्पलधवलितसभागणे यथासनमुपविष्टे प्रस्तुतसेवालोपरजितराजनि राजन्यचक्रे, प्रक्रान्ते शास्त्रीयविनोदे, श्रुतशीलेन सममन्यैश्च क्रीडासहायैरनुचरैरनुगम्यमानो **नल** सेवासुखमनुभवितुमागतवान्।

११ जहा विपत्र (विना पत्र या विपद) से रक्षा पानेवाले वृक्ष होते है, साधु नही, फूलते कमलोवाले (या फैलते मलवाले) सरोवर होत है, न कि लोगोके मन, कुवलय (कमल या खराव वलय) भूषणवाली क्रीडा पुष्करणिया, न कि महिलायें, पक्षियोके चरण (या विपत्ति से आक्रान्त) होते है नदियोके तट, न कि कुल।

१२ अधिक क्या—

देशोमें उत्तम है **दक्षिणदेश**, और वहा भी **विदर्भमंडल**।
वहा भी **वर्धा** नदीके तटके मडलवाला कुडिनपुर।।२८।।

—उच्छ्वास २

३. कुमार के लिए उपदेश—

१३. उस राजपुत्र का एक समान शील-आयु-विद्यारूपी अलकार कान्तिके समूहोसे परिपूर्ण देहवाला, शरीर मात्रसे दूसरा भी अद्वितीय हृदयवाला, जीवनकी दूसरी स्वाँस सा **सालंकायन-पुत्र श्रुतशील** नामक मन्त्री और मित्र था।

१४ एक वार प्रात काल (था, जवकि) आकाशके पूर्व दिशारूपी वधूका मुख केसर-पकसे पत्राकित[1] (था), मुखसे अन्धकार निरुद्ध था, सौगधिक वधुवाला था और उसमें अडहुलके फूलके समान अतितरुण अरुण सूर्यमडल तैरसा रहा था। (जो सूर्य) कुसुमके फूलकी केसर विखेरता आकाशके आगनको मडित करता, कमलकी कलियोकी निद्राकी चोर किरणोसे युक्त (था)। और जव उपवनकी तरुपक्तियोके कर्ण-कमलो जैसे, निद्रा समाप्तकर **कंपित** पख (कपाते) पक्षी विचरणके लिये चल रहे थे। (जव) प्रात कालीन कर्म समाप्त कर सभाके आगनके मडपमें वर्तमान, सेवाका अवसर देते राजा का मन्त्री **सालंकायन** प्रविष्ट हुये। (जव) प्रणामके लिये फैले करकमलोसे सफेद हुये सभाके आगनमें अपने-अपने आसनके अनुसार सेवामे राजाको प्रसन्न किये राजन्य लोग वैठ गये। (जव) शास्त्रीय विनोद शुरू हो गये। (तव) श्रुतशील और दूसरे (वाल-)क्रीडाके मित्रो, अनुचरो को पीछे लिये **नल** सेव-सुखको अनुभव करनेके लिये (वहा) आये।

---

१ चदन से खौर बनाया

१५ आगत्य च क्षितितलमिलन्मौलिमण्डल प्रणम्य पितु पादारविन्दद्वयमदूरदत्तमासन भेजे।

१६ उपविष्टे च तस्मिन्ननभिवादनादुत्पन्नमन्युरीषत्कोपकम्पितकरपरामृष्टकूर्चाग्रिमग्रन्थिरग्रणीर्मन्त्रिमण्डलस्य भ्रूभगभीषणया शोषणकोणान्तरतरत्तरलतारया दृशाऽभिमुखमस्य सालकायन प्रणयपरुषाक्षरमभाषत।

१७ कुमार, राजहसोऽपि अहसरूप इति मा स्म मोहवान्भू।
अनुभवति च मूढ शस्त्रसघात इव कोशशून्यताम्।
अविभव पुरुषो मेष इव कम्बलस्योपयोग गच्छति।

१८ प्रद्युम्नजातोऽपि वाणयुद्धव्यतिकरकारिण्या सदोषया यौवनावस्थया निरुद्धोऽनिरुद्ध इव को नाम न क्लेशमनुभवति ?

१९ तत् तात, सुविषमेघवर्त्तिनि विद्युद्विलास इवास्थिरे स्थितस्तारुण्ये मा स्म विस्मर स्मयेन विनयम्।

२० अविनीतोऽग्निरिव दहति। अजातनयश्छाग इव नाभिनन्द्यते जनेन।

किं च ब्रूम —

२१ सुसहायशून्यस्य भवतो यस्यामीमासाभियोगा राक्षसा इव, अन्याया पारदारिका इव, अयोगक्रिया लोकहारा इव, अश्रुतागमा शोकवेगा इव सहाया।

२२ न च ते दु शिक्षितनृपकलभव्याकरणमार्गेषु निपुणानर्तकीव मित्रमण्डली।

तदायुष्मन्नहितया प्रकृत्या भुजग इव भयाय लोकस्य, उग्रसेन कमानुराग जनयेत्।

१५ आकर (नल) पृथिवीतलसे शिरोमुकुटको छू पिताके दोनो चरणारविन्दोको प्रणाम कर पासमें दिये आसनपर विराजमान हुये।

१६ उनके बैठ जानेपर अभिवादन न करनेसे थोडेसे कुपितसे (हुये) कपिल हाथसे डाढीकी अगली गाठको छूते भी तिरछी करनेसे भीषण लाल कोनेवाली भीतर तिरती चचल पुतलीवाली दृष्टिसे उनके सामने मन्त्रिमडलके प्रमुख **सालकायनने** प्रेमसे कठोर अक्षरवाली (बात) कही।

१७ "कुमार, राजहस भी अहस रूप होता है, इसलिये मोहमें न पडो। मूढ (आदमी), शस्त्र समूहकी तरह कोश के खाली होने को अनुभव करता है।

विना विभववाला पुरुप मेषकी तरह कम्बल वस्त्र (या किस बलके) उपयोगको प्राप्त होता है।

१८ प्रद्युम्नसे उत्पन्न (कामवश) भी **बाण** (असुर के) युद्धके क्लेशके करनेवाली दोषयुक्त यौवनावस्थासे **अनिरुद्धकी** तरह कौन नही क्लेशको अनुभव करता?

१९ सो तात, मेघमें रहनेवाली बिजलीकी चमककी तरह अस्थिर अति विपयुक्त तरुणाईमें, स्थित (तुम) उपहास करते विनयको न भूलो।

२० अविनीत (विनयहीन), अग्निकी तरह जलता है, अजातनय (बकरी का बच्चा या विनयहीन) बकरे की तरह जनो द्वारा अभिनदित नही होता।

और क्या कहू—

२१ आप सुन्दर मित्रसे रहित हैं, जिसके **अमीमांसा** (अविचार या मीमासा में अभिलाप) से योग राक्षसोकी तरह, *अन्याय* (न्याय-रहित या अन्यस्त्रीगमन) परस्त्रीगामियोकी तरह, लोहारोकी तरह अयोग (लोहा-सम्बन्धी या योगरहित) क्रियायें, अश्रुत आगम (न सुने शास्त्र या आंसुओका आना) शोकवेगकी तरह मित्र होते ह।

२२ तुम्हारी मित्रमडली निपुण नर्तकीकी तरह ठीकसे न सीखी, हे राजकुमार, व्याकरणके मार्गोंमें निपुण नहीं है।

सो आयुष्मान्, अहित प्रकृतिके द्वारा भुजगकी तरह लोकके भयके लिये **उग्रसेन** (राजा या क्रूर सेनावाला) कसानुराग (कसका अनुराग या किसका अनुराग) पैदा करेंगे।

२७ अनयावष्टब्ध को न गुरुवारणयोग्यो भवति ? को न वाजि-पृष्ठमा रोहति ? क ककणन्नवचनत प्रकटयति ? क कण्ठे हारावमोचन न कुरुते ? को न काचनशृखलामनुभवति ? कुरग इवान्धीभूत को वागुरावचन करोति, ? क कार्मुक-निर्मुक्तशिलीमुख इव न वैलक्षमागच्छति ?

२८ कस्य न पराभूतिर्भवति ? कस्य नापूर्व यश समुच्छलति ?

२९ किमतोऽप्यस्या परमुच्यते ?

यादेव प्रिय शार्दूलमिव शूर, महत्तर भयान्नोपसर्पति । सुन-यनादेवर सिहमिव बलभद्र दृष्ट्वा प्रपलायते, न वसुदेवेऽपि चक्षु पातयति ।

३० केवलमनवरतशिक्षितवैदग्ध्यकलापराधात्मिकात्रपापरा परिहृत्य गुणिनो गुरून्परपुरुषे मायाविनि कृतकेशिवधे धृतमन्दरागे राग वध्नाति ।

३१ तदायुष्मन्नतिगम्भीरगुहा गिरीन्द्रभूरिव हृदयहरा श्रेयोऽर्थिना शरण न स्त्री श्रीर्वा ।

शृगारप्रधानास्तात, गाव इव विचारिता सरसा भवन्ति न स्त्रिय ।

३२ तदेता कन्दर्पकण्डूकषणविनोदमात्रोपकारिण्यो नात्यन्त-विश्वासयोग्या सर्वथा विश्वस्त विश्वासमिव नर कुर्वन्ति स्त्रिय ।

३३ श्रियोऽपि दानोपभोगाभ्यामुपयोग नयेत् । न लोभ कुर्यात् । वहुलाभोनुगत किरणकलापोऽपि सतापयति जनम् ।

२७ इस (स्त्री) द्वारा आश्रित कौन गुरुवरण (गुरुके द्वारा या भारी निषेध करने) योग्य नही होता? कौन नही समरभूमिमें पडता? कौन वचनासे ककण (जलकण) को नही प्रकटित करता? कौन कठमें हारवघन नही करता? कौन नही सुवर्ण-शृखलाको नही अनुभव करता? हरिन की तरह अन्धा हुआ कौन फदे (मृगतृष्णा) से वचना करता है? कौन घनुपसे छूटे वाणकी तरह नही विरुद्ध लक्ष्य को नही प्राप्त होता?

२८ किसका नही पराभव होता? किसका नही अपूर्वयश पराभव (परम वैभव) उछलता?

२९ इससे भी अधिक इसके वारेमें क्या कहा जाय?
यादवके प्रिय (अथवा सतापप्रिय) शार्दूलकी तरह महत्तरके पास भयसे नही जाती। सुनयनादेवर (सुन्दर नीतिके नादसे वर या सुनयनाके देवर) को सिहकी तरह वलभद्रको देखकर पलायन करती, वसुदेव (धन देनेवाले या कृष्ण-पिता) पर भी नजर नही डालती।

३० केवल लगातार शिक्षा-प्राप्त पाडित्य कलाके अपराधवाली लज्जा-परा हो गुणी गुरुओको छोडकर मायावी केशी-वधक मन्दराग (पर्वत या मन्द स्नेह) वालेमें राग करती है।

३१ सो आयुष्मान् भला चाहनेवालो के लिये अति गहरी गुहायुक्त महा-पर्वतकी भूमिकी तरह हृदय हरनेवाली स्त्री या श्री शरण नही है। हे तात, वाणियो, (गौओ, किरणो) की तरह विचार की गई (या चुराई गई) शृगारप्रधान स्त्रिया सरस नही होती।

३२ सो काम की खुजलाहट मिटाने (विनोद) मात्रमें उपकारिणी ये स्त्रिया अत्यन्त विश्वास-अयोग्य सव तरहसे विश्वस्त (पुरुष) को श्वास-रहित सा करती है।

३३ पुरुषो को चाहिये श्री (लक्ष्मी) को भी दान और उपभोग द्वारा उपयोगमें लाये, लोभ न करे। वहुलोभानुगत (वहुत लोभी या वहुत सूर्यमें अवस्थित) किरण-समूह भी लोगोको सतप्त करता है।

३४ अत पुत्र, प्राप्स्यसि नचिरान्निजकुलकमलराजहसी राज्यश्रियम् । अनवरत कृतयशोदानन्देहि नारायण इव त्वयि चिर रस्यते खल्विय लक्ष्मी ।

३५ पाहि प्रजा । प्रजापो ब्राह्मण इव क्षत्रियोऽपि न लिप्यते पातकै ।

मा च वृद्धि प्राप्य गुणेषु द्वेष कार्षी । व्याकरणे हि वृद्धिर्गुण बाधते, न सत्पुरुषेषु ।

३६ वत्स, मा चैव चेतसि कृथाश्छान्दसोऽयम् । छान्दसश्च गुरुर्वक्रस्वभाव एव भवति तत्किमनेनेति ? यस्माच्चतुरानन्दिपद पुण्यश्लोको भवान् । अतोऽगभाव यान्ति ते वक्रोक्तयोऽपि गुरव । सरलतया लघवोऽप्यन्तरगा भवन्ति, किंतु ते ह्यवसाने कुटिलतामपि दर्शयन्ति ।

३७ तत्कि बहुना—

तथा भव यथा तात, त्रैलोक्योदरदर्पणे ।
विशेषैर्भूषितस्तैस्तैर्नित्यमात्मानमीक्षसे ॥१७॥

३८ कि चान्यत्—

विभर्ति यो ह्यर्जुनवारि पौरुप,
करोति नम्रे च न वा रिपौ रुषम् ।
न तेन राज्ञा सहसागराजिता,
भवेन्मही किं सहसागरा जिता ॥१८॥

३९ अपि च—

किं तेन जातु जातेन मातुर्यौवनहारिणा ?
आरोहति न य स्वस्य वशस्याग्रे ध्वजो यथा" ॥१९॥

३४ इसलिये पुत्र, जल्दी ही तुम अपने कुल-कमलकी राजहसी राज्यलक्ष्मी को पाओगे, बराबर कृतयशोदानदेहि (किये यशवाले दानको दो, या यशोदाको आनन्द करनेवालेमें) नारायणकी तरह तुम्हारे साथ यह लक्ष्मी चिरकाल तक रमण करेगी।

३५ प्रजाओका पालन करो। (प्रजा पालन करनेवाला, अधिक जपनेवाला) ब्राह्मणकी तरह क्षत्रिय भी पातकसे लिप्त नही होता। और वृद्धि प्रापक गुणोसे द्वेष न करो। व्याकरणमे वृद्धि गुणको बाधा देती है, सत्पुरुषोमें नही।

३६ और वत्स, मनमें ऐसा न करो, कि यह छन्द (इच्छा) से है। छान्दस (वैदिक या छन्दशास्त्रवाला) गुरु (बृहस्पति या गुरु वर्ण),[1] वक्र-स्वभाववाला ही होता है। सो इससे क्या? क्योकि आप चार आनदी पदवाले पुण्य श्लोक (प्रशसित या शुद्ध श्लोक) हैं। इसलिये वे वक्रोक्तिवाले गुरु भी अगभाव (एकता) को प्राप्त होते हैं। सरलताके कारण लघु भी अन्तरग होते है, किन्तु वे अवसान (अन्त) में कुटिलता भी दिखलाते हैं।

३७ सो अधिक कहनेसे क्या —

हे तात, वैसा होओ कि त्रैलोक्य-उदर (रूपी) दर्पणमें,
उन-उन विशेषोंसे भूषित हो नित्य आत्मा (अपने को) देखो ॥१७॥

३८ और दूसरा क्या?—

अर्जुनको रोकनेवाला जो पौरुपको और नम्र रिपुमें रोषको वारण नही करता, उस राजाके साथ सागर-सहित जीती पृथिवी नही रहती सगर-पुत्रोके साथ जीती (हो) तो (भी) क्या ॥१८॥

३९ और भी—

माताके यौवनको अपरहण करनेवाले उस पुत्रसे क्या,
जो कि अपने वश (कुल या वास) के अग्र स्थानपर ध्वजाकी तरह नही चढता" ॥१९॥

---

१ यहाँ शास्त्रके लघु गुरुके श्लेषो का प्रयोग है।

४० एवमुक्तवा विश्रान्तवाचि वाचस्पतिसमे मंन्त्रिणि राजापि प्रेमार्द्रया दृशा नलमवलोक्य वक्तुमारभत—

४१ तात, युक्तमुक्तो हि **सालंकायनेन**। कस्यान्यस्य निर्यान्ति वदनारविन्दादेवविधा पदे पदेऽर्थसमर्था मृद्वयो मृष्टा. श्लिष्टाश्च वाच ?

—उच्छ्वास ४

(४) दमयन्ती-वार्ताहर —

४२ राजा तु तदाकार्ण्य क्षणमाग्रहोपरोधिविस्मयहर्षरसै सम-कालमाप्लावितमना, प्रथममुत्फुल्लया दृशा, ततो मुग्ध-स्मितार्ध्येण, तदनु सर्वा गीणभूषणप्रदानेन, तमभ्यर्च्य, "पान्थ, कथय केयमुत्तुगकल्लोलदोलाधिरूढानुच्चचचू-त्क्षिप्तमृदुमृणालवलयात्कूजत कलहसानक्षसूत्रिण प्रव-र्त्तितब्रह्मयशोद्गारमुखरमुखास्तीरतापसानिव दिवमा-रोपयितुमुद्वहन्ती सरित् ? तरुणतरुतलमलकुर्वाण प्रसन्न-सरस्वतीक कश्च भवान् ?" इति सप्रणयमपृच्छत्।

४३ सोऽपि ? "सभ्रमरया कूलकीचकवेणुलतया सदृशी नावातर-णयोग्या किमियमप्रसिद्धा महानदी देवस्य" इत्यभिधाय कथयितुमारब्धवान्—

भानो सुता संवरणस्य भार्या तापी सरित्सेयमघस्य हन्त्री
यस्या कुरु सूनुरभूत्स यस्य नाम्ना कुरुक्षेत्रमुदाहरन्ति ॥१५॥

४४. एतस्या सलिलावगाहसमये कुर्वन्ति नित्य नृणा,
नीरन्ध्रोन्नतकर्कशस्तनतटीसघट्टपिष्टोर्मय ।
भ्राम्यद्भृगनिभालकै क्षणमिव व्यालोलनेत्रैर्मुखैर्,
उत्फुल्लोत्पलगर्भपकजवनभ्रान्ति **महाराष्ट्रिका** ॥१६॥

४० बृहस्पति समान मन्त्रीके ऐसा कहकर चुप हो जाने पर राजाने भी प्रेमार्द्र दृष्टिसे नलको देखकर कहना शुरु किया—

४१ तात, सालकायनने तुम्हें ठीक कहा है। दूसरे किसके मुख-कमलसे इस प्रकार पद-पदपर अर्थयुक्त मधुर, चिकने, श्लेपयुक्त वचन निकल सकते हैं।

४. दमयंती का दूत—

४२ राजाने उसे सुनकरके क्षण भर आग्रहके अनुरोधसे विस्मय और हर्प-के रसोंसे एक साथ आप्लावित-मन हो पहले उत्फुल्ल दृष्टिसे, फिर मुग्ध मुस्कानके अर्घ्यसे, उसके बाद सर्वांगीन भूपण-प्रदान द्वारा उसकी अर्चना करके प्रेमपूर्वक पूछा—"वटोही, वतला यह उत्तुग लहरोंके झूले पर चढे, ऊचे चचुओंसे ऊपर मृदु मृणालोंके वलयो के फेंकनेवाले, कूजन करते अक्षशतधारी हसोकी, मुखमे ब्रह्मकी कीर्तिके उद्गारमें लगे तीर-निवासी तापसोकी सी स्वर्गमें रखने के लिये वहती कौन सी नदी है ? तरुण वृक्षतलको अलकृत करते प्रसन्न वाणीवाले आप कौन हैं ?"

४३ उसने भी—"भवर (भ्रमर)-युक्त वेग वाली, किनारेकी कीचक-वासोंकी लता सहित समान नावसे पार होने लायक क्या यह महानदी देवको ज्ञात नही है, यह कहकर वात करनी शुरु की—

सूर्यकी पुत्री सवरणकी पत्नी यही पाप-नाशिनी ताप्ती नदी है। जिसका पुत्र कुरु हुआ, जिमके नामसे कुरुक्षेत्रको पुकारते हैं ॥१५॥

४४ इसके जलमें स्नान करनेके समय,
घने उन्नत कर्कश स्तनोके तटके घर्पण से उर्मियोको पीसती मराठिनें घूमते हुये भ्रमरो जैसे अलकोंवाले चचल-नेत्रयुक्त (अपने) मुखोंसे क्षण भर, फूले नीलकमल गर्भवाले कमलवनका भ्रम पुरुषोंके, मनमें नित्य पैदा करती हैं ॥१६॥

४५ अपि च—

यद्येतस्या सकृदपि मरुन्नर्तिताम्भोजराजि-
प्रेङ्खत्पत्रव्यजनविधुत वारि नीहारहारि।
राधोभाजा पिबति कुसुमैर्वासित पादपाना,
पीयूषाय स्पृहयति तत कि क्वचिन्नाकलोक ॥१७॥

मामपि **पुष्कराक्ष**नामान वार्तिकमवगच्छतु देव ।

४६ तथाहि—

स्थित्वा त्वदागमनमार्गमुखे गवाक्षे,
वार्ताविशेषमधिगन्तुमिहायताक्ष्या ।
सप्रेषितो निषधनाथ, तयास्मि यस्या,
क्रीडागिरिस्त्वमसि मुग्धमनोमृगस्य ॥१८॥

४७ एष्यति च श्वस्तनेऽहनि मार्गश्रमक्लान्तमितो नातिदूर इवोत्तुगतरसरलसालसर्जार्जुननिचुलनिचयान्तरचलच्चटुल-चकोरमयूरहारीतहसकुलकोलाहलिनि **पयोष्णी**पुलिनपरि-सरे स्थित तया प्रहितमाप्त क्रीडाकिन्नरमिथुनम्, इय च वाच्यता तया स्वहस्तकिसलयलिखिताक्षरगर्भा भूर्ज-पत्रिका इत्यभिधाय पुरोऽस्य लेखपत्रिका व्यसृजत् ।

४८ राजापि पार्श्वपरिजनेनोत्क्षिप्यार्पिता तामतिबहल-पुलकाकुरकण्टकितप्रकोष्ठकाण्डेन पाणिना स्वयमु-न्मुच्य सादरमवाचयत्—

"नलोऽपि मा प्रत्यनलोऽसि यत्तद् भवादृशा नैषध नैष धर्म. ।
तथाबलाना बलवद् ग्रहीतु न मानस मानसमुद्र युक्तम् ।१९।

४५ और भी—

यदि वायु से नाचते कमलोकी पंक्तियोके
चचल पत्रके व्यजन द्वारा हिलता हिम-हारक,
वृक्षोके फलोसे वासित, इसकी धाराके जलको एक वार भी,
पीयें, तो क्या स्वर्गवासी (जन) कभी अमृतकी लालसा करेंगे? ॥१७॥

मुझे भी देव **पुष्कराक्ष** नामक सदेशवाहक समझें।

४६ सो—

हे **निषधराज**, तुम्हारे आनेके मार्गकी ओरके जगलेपर बैठी,
विशेष समाचार जाननेके लिये,
उस दीर्घनयनीने विशेष समाचार जाननेके लिये,
मुझे यहा भेजा, जिसके कि, मुग्ध चित्तरूपी मृगके तुम क्रीडा-
पर्वत हो ॥१८॥

४७ कलके दिन और यहा से न-अतिदर ऊचे आम-साखू-सर्ज-अर्जुन-निचुलके समूहोके भीतर, चचल मुखर चकोर-मोर-हारिल-हसोंके कोलाहलवाली **पयोष्णीके** तटके पास अवस्थित उसका भेजा मार्ग के श्रमसे थका विश्वसनीय पालतू किन्नरोका जोडा आयेगा। और उसके अपने हस्त-पल्लवसे लिखित अक्षरवाली इस चिट्ठी को भी पढिये।" यह कहकर उसने उनके सामने चिट्ठी रख दी।

४८ राजाने भी साथके परिजनोको अलग हटाकर दी गई उस पत्रिकाको अति-अधिक रोमाचित वाहुवाले हाथसे स्वय खोलकर आदरके साथ पढा—

"हे **नैषध**, तुम नल भी मेरे लिये अनल हो, जो कि आप जैसोका यह धर्म नहीं (नैष धर्म) है। अवलाओको जवर्दस्ती पकडनेके लिये मानरूपी समुद्रसे युक्त मानस का होना ठीक नहीं ॥१९॥

४९ अपि च—

निपतति किल दुर्बलेषु दैव तदवितथ ननु येन कारणेन।
बलवति न यथा तथावलाना प्रभवति कृष्टशरासनो मनो-
भू ॥२०॥

५० अपि च—

कदा किल भविष्यन्ति **कुण्डिनोद्यानभूमय** ।
उत्फुल्लस्थलपद्मा भवच्चरणभूपिता ॥२१॥" इति

५१ लेखलिखितप्रणयसुभाषितामृतरसप्लवेनाप्लावितहृदय – "विधे, विधेहि मे पक्षिण इव पक्षयुगमुड्डीय येन ता पश्यामि" इति चिन्तयन्नरपति पुरत स्थित त प्रिया-वार्तिकमाश्लिष्यन्निवोच्चरोमाचनिचयेन , पिबन्निवा-भिलापतृषितया दृशा, स्नपयन्निव मधुरस्मितामृतरसेन, पुन पुन सादरमभाषत—

५२ "पुष्कराक्ष, सा सर्वथा विजयते राजपुत्री, यस्या प्रसन्न-मुदारसत्कान्तिश्लिष्ट सुकुमारमनेकालकारभाजन वयो वचन च, सप्रश्रय प्रगल्भो विवेकवान्विदग्धबुद्धिर्भवद्विध परिजनश्च ।

५३ तत्कथय, कथनीयकीर्ति क्वास्ते ? कथमास्ते ? क विनोद-मनुतिष्ठति ? केन व्यापारेण परिणामयति वासर वाऽसौ भवत्स्वामिसुता ?" इति ।

एवमुक्त स पुन पल्लवयन्ननुरागकन्दल नलमलपत्—
"त्वद्देशागतवायसाय ददती दध्योदन पिण्डित,
त्वन्नाम्न सदृशे दृश निदधती वन्येऽपि मुग्धा नले।
त्वत्सन्देशकथार्थिनी मृगयते तान्राजहसान्पुन,
क्रीडोद्यानतरगिणीतरुतलच्छायासु वापीषु च ॥२२॥

४९ और भी—

दैव दुर्वलोके ऊपर झपटता है, सो असत्य नही है, क्योकि
खिंचे धनुषवाला कामदेव वलवान पर वैसी प्रभुता नही दिखाता,
जितनी अवलाओपर।

५० और भी—

कव कुंडिन नगरके उद्यानकी भूमिया फूले गुलाव,
समान होती आपके चरण द्वारा भूषित होगी ॥२१॥

५१. पत्रमें लिखे प्रेमके सुभाषितके अमृतरसकी धारासे आप्लावित-हृदय हो—"हे विधि, पक्षियोकी तरह मेरे दो, पख वना दे जिसमें मै उडकर उसे जा देखू।" यह सोचते राजाने सामने खडे प्रियाके उस समाचारवाहक को आलिंगन करने से ऊंचे रोमाचोसे युक्त हो अभिलापाकी प्यासी दृष्टि से पीते से, मधुर मुस्कानके अमृतरस द्वारा मानो उसे नहलाते से आदरपूर्वक वार-वार वात की—

५२ "पुष्कराक्ष, वह राजपुत्री सर्वथा विजयी है, जिसके प्रसन्न वचन और आयु-उदार-सच्ची कान्तिसे युक्त सुकुमार अनेक अलकारोका भाजन आप जैसा प्रेम-युक्त, प्रौढ-विवेकी, चतुर वुद्धिवाला परिजन है।

५३ सो वतलाओ, वह प्रशसनीय कीर्तिवाली कहा है, कैसे है, किस मनोविनोदमें लगी है किस व्यापारके द्वारा आपकी वह स्वामिपुत्री दिन विताती है।"

ऐसा कहने पर उसने अनुरागके कदको पल्लवित करते नलसे कहा—
तुम्हारे देशसे आये कौवेको पिंड वनाकर दही-भात देती,
तुम्हारे नामाराशि, जगली अनल पर भी नजर डालती वह मुग्धा,
तुम्हारे सन्देशकी कथाकी इच्छुक उन राजहसोको,
क्रीडा-उद्यानकी पुष्करणीके वृक्षोकी छायाओमें और वावडियोमें
ढूढती है॥२२॥

५४. अपि च, साप्रत तया—

त्वद्देशागतमारुतेन मृदुना सजातरोमाचया,
त्वद्रूपाचितचारुचित्रफलके निर्वापयन्त्या दृशम् ।
त्वन्नामामृतसिक्तकर्णपुटया त्वन्मार्गवातायने,
नीचै पचमगीतिगर्भितगिरा नक्तदिन स्थीयते" ॥२३॥

५५ एवमनुगुणमनुरागस्य, सदृश शृगारस्य, सहोदरमादरस्य, प्रिय प्रेमप्रपचस्य, प्रोत्साहनमनगस्य, अनुकूलमुत्कण्ठाया, समुचितमभिनिवेशस्य, कौतुकजनन जल्पति पुष्कराक्षे, श्रवणकुतूहलिनि विस्मृतान्यव्यापारे तन्मयतामिवानुभवति भूभुजि, जरठीभवत्सु पूर्वाह्लवेलालवेषु, गगनमध्यासन्नवर्तिनि व्रजति तीव्रता व्रघ्नमण्डले, स्खलयति पथि पथिकानसह्योर्मिणि घर्मजाले, जलाशयाननुसरत्सु पिपासाकुलतरलिततारकेषु श्वासिषु श्वापदेषु, पकिलकूलकर्दमविमर्दोद्यतेषु सरित्परिसरवनविहारिकरिवराहमहिपमण्डलेपु, विटपिकोटरकुटीरनीडनिलयनिलीयमानेषु सपुटितपक्षेषु पक्षिषु, कूलकुलायकोणकूणितकोकूयमानकुक्कुहेपु, गिरिसरित्सुरगागणेषु, रगत्कुरगचर्वितखर्वदूर्वानिलनीलनिम्नशाद्वलस्थलस्थितये हिण्डमानासु कारण्डवशिखण्डिमण्डलीपु, शिशिरनिवासवाछया कूजत्सु करजनिकुजपुजितकपिजलकपोतपोतकेपु, वहति मनाङ्म्लानकोमलकुसुमकाशकोष्णामन्दमकरन्दविन्दूद्गारिणि तापीतीरतरगस्पर्शसेव्ये मध्याह्नमरुति, श्रमवशविलोलमीलन्नयननीलोत्पलासु वहलतरुतलच्छायामाश्रयन्तीपु सीदत्सैनिकनितम्बिनीपु प्रस्तावपाठक पपाठ—

५४ और भी, इस वक्त वह—

तुम्हारे देशसे आये कोमल वायु द्वारा रोमाचित,
तुम्हारे रूपसे अकित सुन्दर चित्रपट से दृष्टिको सुखी करती,
तुम्हारे नाम-अमृतसे सिंचे कर्णपुटो युक्त तुम्हारे मार्गकी ओरके जगले पर, एकान्तमें पचमगीतोसे गर्भित वाणी के साथ रात-दिन रहती है ॥३२॥

५५ इस प्रकार पुष्कराक्षसे अनुरागके अनुरूप, शृगार (रस) के उपयुक्त, आदर योग्य, प्रियप्रेम कथा, अनग-प्रोत्साहक, उत्कठाके अनुकूल, आग्रह, उचित कुतूहलजनक वात करते कानको कुतूहलित करनेवाले राजा अन्य व्यापारोको छोड, (जब) तन्मयता अनुभव कर रहे थे, जब मध्याह्न वेलाके क्षण बूढे हो रहे थे, सूर्यमण्डल आकाश-मध्यके पास हो तीव्र हो रहा था, पथपर घामकी असह्य तरगें गिर रही थी, प्यासे व्याकुल चचल पुतलियो युक्त सास लेते हिंस्र जन्तु जलाशयोका अनुसरण कर रहे थे, नदीके पासके वन में विहार करने-वाले गज-सूअर-भैंसे पकवाले तटोके कीचडको भुर्ता कर रहे थे, पक्षी वृक्षोके कोटरोंके कुटीरो-नीडोके घरोमें पख वटोरे छिपे थे, तटके घोसलोके कोनेमें सिमटे कुक्कुह पक्षी कू-कू कर रहे थे, नदीके सुरगो के आगनमें कारडव और मोरोकी मडलियो चल रही थी, हरिन चर्वित छोटी दूवकी नलीके निम्न हरियालीवाले स्थलोमें रहनेके लिये घूम रहे थे, करजके कुजोमें एकत्र हो कपिजल और कबूतरके वच्चेके ठढे निवास की इच्छासे कूज रहे थे, स्पर्शो सुखद से थोडे मुर्झाये कोमल कुसुम कागके उष्ण तीव्र मकरन्द-विंदुओ के उगलनेवाला ताप्ती-तीरकी तरगके स्पर्शसे सुखद मध्याह्न वायु वह रहा था, परिश्रमके कारण चचल मुदती नयनरूपी नीलकमलोवाली घने वृक्षोके नीचेकी छायामें आश्रय ले सैनिक स्त्रिया वैठी थी, तब स्तुति-पाठकने पढा—

(५) सेनावासः—

५६ विचित्रा पत्रालीर्दलयति गलत्स्वेदसलिलैर्,
अमन्द मृद्नाति प्रमदकरिकुम्भस्तनतटी ।
प्रवन्धेनाक्राम जनजघनजघोरुयुगल,
श्रम सेनागेपु प्रसरति शनै कामुक इव ॥२४॥

५७. अपि च—

कूजत्क्रौच चटुलकुररद्वन्द्वमुन्नादिहस,
क्रीडत्क्रोड निपतितलतापुष्पकिंजल्कहारि ।
अस्या सान्द्रद्रुमवनतलश्रान्तसप्ताध्वनीन,
रोध सिन्धो स्थगयति भवत्सैनिकाना प्रयाणम् ॥२५॥"

५८ राजा तु तदाकार्ण्य "बाहुक, वहूना बहुमतो बाहुल्यादिहैव वास, तद्वद सैनिकान्—अवतरत तापीतीरतरुलताश्रयान्, आश्रयत श्रमच्छिदच्छाया, कुरुत पटकुटी, कारयत कायमानानि, मुचतामन्दमृदुशाद्वलेष्ववलान्वलीवर्दकान्, कूर्दयत कर्दमे महिषान्, खादयत वेसरीभिर्वंशकरीराकुरान्, प्रचारयत क्रमेण क्रमेलकान्, अवगाहावसाने पृष्टावकीर्णपुलिनपकपासवो विहरन्तु स्ववश वशस्तम्वेपु स्तम्वेरमा, तरुवध्नेषु वध्नीत तीव्रवेगान्वेगसरान्, अवतरन्तु तापीतीरतरगेपु तुरगा, शिशिरतरगानिलान्दोलितविविधविकचमजरीजालजटिलेपूत्फुल्ललताखण्डमण्डपेपु मध्याह्नसमयमतिवाहयन्तु किंनरमिथुनानि" इति सेनापतिमादिदेश ।

—उच्छ्वास ६

५. सेनाका पड़ाव—

५६ चूते पसीनेके जल द्वारा विचित्र पत्र-पंक्तियोको दलन करता,
मस्त गजके कुंभरूपी स्तनतटोको तीव्रताके साथ मर्दन करता,
लोगोके जघनो, जघो और दोनो उरुओपर जोरसे आक्रमण करता,
कामुक की तरह यह श्रम धीरे-धीरे सेनाओ में फैल रहा है ।।२४।।

५७ और भी—

कूजते क्रौंचो, मुखरित कुरर-जोडियो, उन्मत्त हंसो,
खेलते सूअरोवाली, गिरे लता-पुष्पोकी केसर-हारिका,
घने वृक्षो वनलतामें शान्त सात मार्गोवाली,
इस नदी की धार आपके सैनिकोके प्रयाणको स्थगित कर रही है ।।२५।।

५८ राजाने उसे सुनकर सेनापति को आदेश दिया—हे वाहुक, वहुलताके कारण वहुतोको पसद यहा ही निवास हो, सो सैनिकोको कहो, कि ताप्तीके तीर के वृक्षोके आश्रयोमे उतरो, श्रम दूर करनेवाली छायाओ का आश्रय लो, तम्बुओंको लगावो, झोपडियोको कराओ, निर्बल बैलोको हरियालियोमें छोडो, कीचडमें भैसोको कुदाओ, वेसरियोको वासके करीरोके अकुर खिलाओ, क्रमसे ऊटोको चराओ, नहानेके वाद पीठपर तटके पक-धूलियोको बिखेरते हाथी स्वतन्त्रता-पूर्वक वानके जगलो में विहार करें, तीव्र गतिवाले घोडोको पेडोमें बाध दो। ताप्तीतीरके तरगोमें तुरग उतरें। किन्नर-जोडे ठडी तरगयुक्त वायु-चालित फूली विविध मजरियोके जालोमे जटिल उत्फुल्ल लता-वनोके मडपोमें मध्याह्न काल वितावें।"

—उच्छ्वास ६

४०. क्षेमेन्द्र (१०६० ई०)

इनके पिताका नाम प्रकाशेन्द्र और दादाका नाम सिन्धु था। अभिनव गुप्त इनके साहित्य गुरु थे। यह कश्मीरके राजा अनन्त (१०२८-१०६३ ई०) और राजा कलश (१०७३-८९ ई०) के कालमें हुए। "दशावतार चरित"को इन्होंने लौकिक संवत्सर ४१ (१०६६ ई०) में समाप्त किया था। यह एक बड़े ही धनाढ्य कुलमें पैदा हुए थे, और बहुत ही उदार तथा विनोदप्रिय थे। यह सस्कृतके उन कवियोंमें हैं, जिन्होने अनेकों बड़े-बड़े ग्रथ लिखे हैं। इनके ग्रथ हैं—(१) "रामायणमजरी", (२) "भारत मजरी", (३) "वृहत्कथामंजरी", (४) "दशावतारचरित", (५)

१. सेव्यसेवकोपदेशः

(१) सेवावृत्तिः—

१ दर्पादेक परो लोभाद् द्वावन्धौ सेव्यसेवकौ ।
धनोष्मदैन्यविकृती मुखे क कस्य पश्यति ॥२॥
२ दुर्वारमोहलोभान्धो यदि न स्यादय जन ।
क क्रूरक्रोधविधुर सहेत धनिना मुखम् ॥४॥
३ य पृथ्वीमपि दर्पान्धो न पश्यति पुर स्थिताम् ।
स दैन्यलघुता यात कथ सेवकमीक्षते ॥५॥
४ अगति वाहयत्येको वधिर स्तौति चापर ।
अहो जगति हास्याय निर्लज्जौ सेव्यसेवकौ ॥६॥
५ दूर हुकारमात्रेण विसृष्टो मार्गण सदा ।
गुणभ्रष्ट क्रियाहीनो नोद्वेग याति सेवक ॥७॥
६ मन्ये सुकृतिना तेन भागीरथ्या कृत तप ।
वैराग्यभागी रथ्या य सेवासु न विगाहते ॥८॥
७ कथितक्लेशवापेन शापेनेव विपाकिना ।
सेवातापेन पच्यन्ते न ह्यदुष्कृतिनो नरा. ॥९॥

४०. क्षेमेन्द्र (१०६० ई०)

"बोधिसत्वावदानकल्पलता", (६) "कलाविलास", (७) "चतुर्वर्गसग्रह", (८) "चारुचर्या", (९) "नीतिकल्पतरू", (१०) "समयमातृका", (११) "सेव्यसेवकोपदेश", (१२) "देशोपदेश"। पहले पांचो ग्रंथ बडे-बडे है। "दशावतारचरित" काव्यकी दृष्टिसे उत्कृष्ट है। इनकी "बोधिसत्वावदानकल्पलता" का अनुवाद तिब्बती भाषामें मौजूद है, और यही एक ऐसा काव्य ग्रंथ है, जिसके संस्कृत मूलको भी वहां अनुवादके साथ सुरक्षित रक्खा गया है। इन्हींको संस्कृतका एकमात्र विनोदी कवि कहा जा सकता है। इन्होने क्लिष्ट भाषाका प्रयोग नहीं किया है।

१. सेव्य-सेवकोपदेश

१. नौकरी—

१ एक दर्पसे दूसरा लोभसे, दोनो स्वामी और सेवक अन्धे है।
किसके मुहपर धनकी गर्मी और दीनताका विकार वह नही देखता ॥२॥

२ दुर्निवार मोह और लोभसे अन्धा यदि यह जन नही होता,
तो कौन क्रूर क्रोधसे विगडे धनियोके मुहको सहता? ॥४॥

३ जो धनी दर्पसे अन्धा हो सामने अवस्थित पृथिवीको भी नही देखता,
वह गरीवीकी तुच्छताको प्राप्त सेवकको कैसे देखेगा ॥५॥

४ एक अगति को ले जाता है और दूसरा वहरेकी तारीफ करता है।
अहो, निर्लज्ज स्वामी और सेवक ससारमें हास्यके लिये है ॥६॥

५ दूरसे ही हुंकार करने मात्रसे सदा मार्गण (मगता या वाण) छोडा जाता है। गुण (या प्रत्यचा) से भ्रष्ट क्रियाहीन सेवक उद्विग्न नही होता ॥७॥

६ मै समझता हू, उस पुण्यात्माने भागीरथीके किनारे तप किया है,
जो वह वैराग्यभागी हो रथ्या (सडक) पर सेवामें नही लगता ॥८॥

७ कहनेके क्लेशसे वोये शापकी तरह विपाक देनेवाले,
निष्पाप लोग सेवारूपी सतापमें नही मरते-पचते ॥९॥

८ अदैन्यपुण्यमनसा यशस्तेषा विराजते ।
सेवापककलकाना यैर्न पात्रीकृत शिर ॥१०॥

९ प्रभुप्रणामे जठर दैन्यमूल विलोकयन् ।
प्रवेष्टु सेवक पृथ्वी विलक्ष क्षितिमीक्षते ॥११॥

१० सेवाध्वजोऽजलिर्मूर्ध्नि हृदि दैन्य मुखे स्तुति ।
आशाग्रहगृहीताना कियतीय विडम्बना ॥१२॥

११ अकालागमनक्रोधविधुरेश्वरचक्षुषा ।
क्षिप्र स्मर इवायाति सेवको दग्धमूर्तिताम् ॥१३॥

१२ पुन सेवावमानाना तेन दत्त तिलोदकम् ।
प्रविश्य वाहिनी येन खड्गपात्रीकृत वपु ॥१४॥

१३ कणवृत्तिपरिक्लिप्ट कप्ट सेवकचातक ।
घनाशानिरतो नित्यमुद्ग्रीव परिशुष्यति ॥१५॥

१४ नि सन्तोष परित्यज्य भ्रमर पुष्पित वनम् ।
सेवते दानलोभेन मातगमपि सेवक ॥१६॥

१५ जडसेवापरिक्लिप्टस्तीव्रदम्भवकव्रत ।
कृच्छ्रेण क्षणिका प्रीतिमासादयति सेवक ॥१७॥

१६ नित्यमुन्नतिकामोऽपि मानभगादधोमुख ।
यत् सत्यमुभयभ्रप्टस्त्रिशकुरिव सेवक ॥१८॥

१७ स्वमासविक्रयासक्त प्रभुवेतालघट्टित ।
नि सत्त्व प्रलय याति रात्रिसेवासु सेवक ॥१९॥

१८ भूमिशायी निराहार शीतवातातपक्षत ।
मुनिव्रतोऽपि नरकक्लेशमश्नाति सेवक ॥२०॥

८ अदरिद्रतारूपी पुण्यके मनवाले उन (पुरुषो) का यश विराजता है,
जिन्होने कि अपने सिरको सेवारूपी कीचडके कलकका पात्र नही
बनाया ॥१०॥

९ प्रभुको प्रणाम करते समय दीनताका कारण पेटको समझ,
लज्जित हो सेवक पृथिवीमें घुस जानेके लिये पृथिवीको देखता
है ॥११॥

१० सिरपर सेवारूपी पताका, जुडे हाथो हृदयपर मुखपर, दीनता, स्तुति
आशारूपी भूत से पकडे हुये लोगोकी यह कितनी विडम्बना है ॥१२॥

११ असमय आये क्रोधसे बिगडी स्वामीकी आखोसे,
सेवक तुरन्त ही कामदेवकी तरह दग्ध-शरीर हो जाता है ॥१३॥

१२ फिर से सेवारूपी अपमानोको उसने तिलाजलि देदी,
जिसने कि सेनामें प्रवेश करके अपने शरीरको तलवारका पात्र बनाया
॥१४॥

१३ दाने-दाने की जीविकासे अतिदु खित सेवकरूपी चातक कष्ट से,
घनो की आशामें नित्य निरत हो ऊपर मुह उठाये सूखता है ॥१५॥

१४ सतोप-रहित हो भवरा फूले वनको छोडकर सेवक,
मातग (गज या चाण्डाल) की भी दान (मद) के लोभसे सेवा
करता है ॥१६॥

१५ जडोकी सेवासे दु खित, तीव्र दम्भ वाला बगला भगत,
सेवक कठिनाईसे क्षण भरकी कृपा प्राप्त करता है ॥१७॥

१६ नित्य उन्नतिका इच्छुक भी मानके भगसे मुह नीचा किये,
जो सचमुच ही त्रिशकुकी तरह सेवक दोनो ओर से भ्रष्ट है ॥१८॥

१७ अपने मासके बेचनेमें लगा, प्रभुरूपी पिशाच द्वारा पिटता,
सेवक निर्जीव हो रातकी सेवकाइयोमें नष्ट होता है ॥१९॥

१८ भूमिपर सोनेवाला, भूखा, सर्दी-गर्मी और हवासे पीडित,
मुनिके व्रतवाला भी सेवक नर्कके क्लेश भोगता है ॥२०॥

१९ करोति सेवक सेवा तावदाशामिवायताम् ।
यावद् भोगरसज्ञेन यौवनेन वियुज्जते ॥२१॥

२० चक्षुर्द्वार्यजलौ पाणि स्तुतौ जिह्वा नतौ शिर ।
अहो नु सेवकै काय परोपकरणीकृत ॥२२॥

२१ हन्त, याचावमानेन सेवको लघुता गत ।
सेवापकपदे मग्नो यदन्विष्टो न लभ्यते ॥२३॥

२२ अविश्रान्त्या विरक्तस्य दीर्घोच्छ्वासेन शुष्यत ।
जरेव दुसहा जन्तो सेवा सकोचकारिणी ॥२४॥

२३ त्रुट्यति क्लिन्नतन्त्रीव मालेव म्लायति क्षणात् ।
सेवा नारच्चयत्येव दिनच्छेदेन नश्यति ॥२५॥

२४ सेवासक्षपितागाना राजरथ्यासु शुष्यताम् ।
तीव्रतृष्णाविषार्ताना शरण शमवारिद ॥२६॥

२. कलाविलास

(१) वणिक्—

२५. लोभ सदा विचिन्त्यो लुब्धेभ्य सर्वतो भय दृष्टम् ।
कार्याकार्यविचारो लोभाकृष्टस्य नास्त्येव ॥१॥

२६. मायाविनिमयविभ्रमनिह्नववैचित्र्यकूटकपटानाम् ।
सचयदुर्गपिशाच सर्वहरो मूलकारण लोभ ॥२॥

२७. सत्त्वप्रशमतपोभि सत्वधनै शास्त्रवेदिभिर्विजित ।
लोभो वटप्रविष्ट कुटिल हृदय किराटानाम् ॥३॥

२८ क्रयविक्रयकूटतुलालाघवनिक्षेपरक्षणव्याजै ।
एते हि दिवसचौरा मुष्णन्ति मुदा जन वणिज ॥४॥

१९ सेवक तव तक लम्बी आशासे सेवा करता है,
जव तक कि भोग-रसकी जानकार तरुणाईसे वह वियुक्त नही हो जाता ।।२१।।

२० आखें दरवाजेपर, हाथ अजुलियोमें, जिह्वा स्तुतिमें, सिर नमस्कारमें लगा। अहो, सेवकोने अपनी कायाको परोपकारके लिये वना दिया ।।२२।।

२१ हन्त मागनेके अपमानसे सेवक हलका वन,
सेवारूपी कीचडमें (ऐसा) डूवा है, कि खोजनेपर भी नही मिलता ।।२३।।

२२ विश्राम न लेनेसे विरक्त, लम्बी साससे सूखता,
वुढापेकी तरह प्राणियोके लिये सकोच करनेवाली सेवा दुस्सह है ।।२४।।

२३ सेवा गीली वीणाकी तरह टूटती है, क्षण भरमें मालाकी तरह मुरझा जाती है। वह जुडती नही, दिनके वीतने से नष्ट हो जाती है ।।२५।।

२४ सेवामे क्षीण अगवालो, सडक पर सूखतो,
तृष्णारूपी तीव्र विपसे पीडितोके लिये शान्तिरूपी मेघ शरण है ।।२६।।

२. कला-विलास

१. वनिया—

२५ लोभका सदा ख्याल रखना चाहिये, लोभियो ने सव तरफ से भय दीखता है। लोभमे पडेको कर्तव्य-अकर्तव्यका विचार नही होता ।।१।।

२६ मायारूपी विनिमयका भ्रम, छिपाना, विमनस्कता-कूट और कपटोका मूल कारण, सचयरूपी दुर्गका पिशाच, सवका हरणकर्त्ता लोभ है ।।२।।

२७ शान्ति और तपस्यावाले सत्वके धनी शास्त्रज्ञोने पराजित,
लोभ, कजूसोके कुटिल हृदयरूपी वरगदमें घुस गया है ।।३।।

२८ खरीद-वेंच, झूठी तराजू, चालाकी, जोगाना, रक्षण और सूद द्वारा दिनके चोर ये वनिये खुश हो लोगोको लूटते हैं ।।४।।

२९ हृत्वा धन जनाना दिनमखिल विविधकूटमायाभि ।
वितरति गृहे किराट कष्टेन वराटकत्रितयम् ॥५॥

३० आख्यायिकानुरागी व्रजति सदा पुण्यपुस्तक श्रोतुम् ।
दष्ट इव कृष्णसर्पै पलायते दानधर्मेभ्य ॥६॥

३१ द्वादश्या पितृदिवसे सक्रमणे सोमसूर्ययोर्ग्रहणे ।
सुचिर स्नान कुरुते न ददाति कपर्दिकामेकाम् ॥७॥

३२ दत्वा दिशि दिशि दृष्टि याचकचकितोऽवगुण्ठन कृत्वा ।
चौर इव कुटिलचारी पलायते विकटरथ्याभि ॥८॥

३३ न ददाति प्रतिवचन विक्रयकाले शठो वणिग् मनी ।
नि क्षेपपाणिपुरूष दृष्ट्वा सभाषण कुरुते ॥९॥

३४ उत्तिष्ठति नमति वणिक्पृच्छति कुशल ददाति च स्थानम् ।
नि क्षेपपाणि पुरुष दृष्ट्वा धर्म्यां कथा कुरुत ॥१०॥

३५ कश्चिद्वदति तमेत्य द्रविण नि क्षिप्य "हन्त, गन्तास्मि" ।
"भ्रात, पर प्रभाते विष्टिदिन किं करोम्यद्य ॥११॥

३६ तच्छ्रुत्वा विकसितदृग्वदति स मिथ्यैव नाटयन्खेदम् ।
कार्ये प्रसारिताक्ष पुन पुन पार्श्वमवलोक्य ॥१२॥

३७ "त्वदधीन स्थानमिद किं तु चिर न्यासपालन कठिनम् ।
विषमौ च देशकालौ साधोस्तव तदपि दासोऽहम् ॥१३॥

३८ भद्रा न दूषितैपा नि क्षेपक्षेमकारिणी शस्ता ।
इत्यनुभूत वहुश कार्यज्ञैस्त्व तु जानासि ॥१४॥

३९ विष्टिदिने किमपि पुरा न्यस्त केनापि मित्रेण ।
तूर्ण पुनश्च शनकैर्नीत क्षेमेण कुशलेन ॥१५॥

२९ सारे दिन नाना प्रकारकी धोखा-धडियोसे लोगोके धनको हरण कर, कजूस घरमें मुश्किलसे तीन कौडी खर्च करता है ।।५।।

३० वह कहानीके प्रेम से सदा धर्म पुस्तक सुननेके लिये जाता है, (पर) काले साप से डसे की तरह दान और धर्मसे भागता है ।।६।।

३१ वह द्वादशीको, श्राद्धके दिन, सक्रान्ति और चन्द्र-सूर्यके ग्रहणोमें, देर तक स्नान करता है, पर दान एक कौडी नही देता ।।७।।

३२ कुटिल-आचारी (वनिया) हरेक दिशा की ओर नजर डालकर याचकसे मुह छिपा चकित हो, चोरकी तरह विकट सडकसे भागता है ।।८।

३३ वेचनेके समय शठ मौन वनिया जवाव नही देता। देनेके लिये हाथ उठाये पुरुपको देखकर वह वातचीत करता है ।।९।।

३४ वनिया आदरार्थ उठता, नमस्कार करता, कुशल पूछता वैठने के लिये स्थान देता है। धरोहर सहित हाथवाले पुरुपको देखकर धार्मिक कथा कहता है ।।१०।।

३५ कोई उसके पास आकर धन धरोहर रखकर कहता है "जाऊगा"। "हे भाई, सवरे वेगारका दिन है, आज क्या करू" ।।११।।

३६ सो सुनकर प्रफुल्लित आखवाला झूठ ही खेदका अभिनय करते काममें आखोको फैलाये वार-वार वगल झाकते वनिया वोलता है। ।।१२।।

३७ "यह स्थान तुम्हारा है, लेकिन धरोहरको देर तक रखना कठिन है। हे साधु, देश और काल वुरा है, तो भी मैं तेरा दास हू" ।।१३।।

३८ यह भद्रा (नक्षत्र) दोपयुक्त नही, वल्कि धरोहरके लिये क्षेमकारिणी कही गई है। कामके जानकारोने यह वहुत वार देखा है, तुम नहीं जानते ।।१४।।

३९ पहले किसी मित्रने ही विशिष्ट दिन कुछ धरोहर रक्खी। और जल्दी फिर चुपके (उसे) क्षेम-कुशलक साथ ले गया ।।१५।।

४० इत्यादि मुग्धबुद्धेरसमजसवर्णन रह कृत्वा।
गृह्णाति कनकनिकर नृत्यस्तत्तन्मनोरथै पाप ॥१६॥

४१ तत्सचूर्णनजातै क्रयविक्रयलाभराशिभिरनन्तै ।
भाण्डप्रतिभाण्डचयैरुपहसति धनाधिनाथ स ॥१७॥

४२ पूर्णा कदर्यवणिजा नि सभोगा निधानधनकुम्भा ।
सीदन्ति कुचतटा इव दु खफला बालविधवानाम् ॥१८॥

४३ दानोपभोगविरहितहिरण्यरक्षाकृतक्षणा सततम् ।
ससारजीर्णमन्दिरविषममहामूषका वणिज ॥१९॥

—सर्ग. २

(२) कायस्थः—

४४ मोहो नाम जनाना सर्वहरो हरति बुद्धिमेवादौ।
गूढतर स च निवसति कायस्थाना मुखे च लेखे च ॥१॥

४५. चन्द्रकला इव पूर्णा निष्पन्ना सस्यसपत्ति ।
ग्रस्ता क्षणेन दृष्ट्वा नि शेषा दिविरराहुकलयैव ॥२॥

४६ ज्ञाता ससारकला योगिभिरपयातसमोहै
ज्ञाता दिविरकला न केनापि बहुप्रयत्नेन ॥३॥

४७. कूटकलाशतशिविरैर्जनधनविवरै क्षयक्षपातिमिरै ।
दिविरैरेव समस्ता ग्रस्ता जनता न कालेन ॥४॥

४८ एते हि कालपुरुषा पृथुदण्डनिपातहतलोका ।
गणनागणनपिशाचाश्चरन्ति भूर्जध्वजा लोके ॥५॥

४९ कस्तेषा विश्वास यममहिषविषाणकोटिकुटिलानाम् ।
व्रजति न यस्य विपाक्त. कण्ठे पाश कृतान्तस्य ॥६॥

४० इत्यादि मूढ वद्धिवालेसे एकान्त में असवद्ध वातें करते,
पापी वनिया नाना मनोरथोके साथ नाचता सुवर्ण-समूहको हरता है ॥१६॥

४१ उनके पीसनेसे उत्पन्न क्रय-विक्रयके लाभ की राशिसे,
और क्रेय-विक्रेय अनत वस्तु-समूहोसे वह कुवेरका भी उपहास करता है ॥१७॥

४२ कजूस वनियोक विना भोगे खजानोके धनोसे भरे घडे,
वाल-विधवाओके दु खदायक स्तन-तटोकी तरह (यो ही) पडे रहते हैं ॥१८॥

४३ 'दान और उपभोगसे रहित सुवर्णकी रक्षार्थ समय दिये,
वनिये सदा ससाररूपी पुराने मन्दिरके दुष्ट चूहे हैं ॥१९॥

२. कायस्थ—

४४ लोगोका सर्वापहारक मोह पहले वुद्धिको ही हरता है,
पर वह कायस्थोके मुह और लेखमें छिपकर रहता है ॥१॥

४५ चन्द्रमाकी कलाकी तरह पूर्ण खेती तैयार हुई, पर वह
सारी देखकर क्षण भरमें कायस्थरूपी राहुकी कलासे ग्रस ली गई ॥२॥

४६ मोह-रहित योगियोने ससारकी कलायें जान ली,
लेकिन किसीने वहुत प्रयत्न करके भी कायस्थकी कलाको नही जाना ॥३॥

४७ जालसाजीकी, सैकडो कलाके शिविरवाले, जनोके धनके गड्टे, नाशकी
रातके अधकार कायस्थोने ही सारी जनताको ग्रसा, कालने नही ॥४॥

४८ ये ही मोटे डडेसे पीट लोगोको मार डालनेवाले काल-पुरुष है,
जो हिसावी भोजपत्र (पुर्जो) की पताका लिये ये किसानोके वीच विचरते हैं ॥५॥

४९ यमराजके भैसेके सिरकी नोककी तरह कुटिल इन कायस्थोका क्या
विश्वास है, जिनके कठमें मृत्यु-देवताका फदा नही पडता ॥६॥

५० कलमाग्रनिर्गतमसीबिन्दुव्याजेन साजनाश्रुकणै ।
कायस्थलुण्ठ्यमाना रोदिति खिन्नेव राज्यश्री ॥७॥

५१ अकन्यासैर्विषमैर्मायावनितालकावलीकुटिलै ।
को नाम जगति चरितै कायस्थैर्मोहितो न जन ॥८॥

५२ मायाप्रपचसचयवचितविश्वैर्विनाशित सततम् ।
विषयग्रामग्रासै कायस्थैरिन्द्रियैर्लोक ॥९॥

५३ कुटिला लिपिविन्यासा दृश्यन्ते कालपाशसकाशा ।
कायस्थभूर्जशिखरे मण्डललीना इव व्याला ॥१०॥

५४ एते हि चित्रगुप्ताश्चित्रधियो गुप्तकारिणो दिविरा ।
रेखामात्रविनाशात्सहित कुर्वन्ति ये रहितम् ॥११॥

५५ लोके कला प्रसिद्धा स्वल्पतरा सचरन्ति दिविराणाम् ।
गूढकला किल तेपा जानाति कलि कृतान्तो वा ॥१२॥

५६ वक्रलिपिन्यासकला सकलाकनिमीलनकला च ।
सततप्रवेशसग्रहलोककला व्ययविवर्धनकला च ॥१३॥

५७ ग्राह्यपरिच्छेदकला देयधनादानकारणकला च ।
शेषस्य विवेककला सकलितराशिसर्वभक्षणकला च ॥१४॥

५८ उत्पन्नगोपनकला नष्टविशीर्णप्रदर्शनकला च ।
क्रयमाणैर्भरणकला योजनचर्यादिभि क्षयकला च ॥१५॥

५९ नि शेपभूर्जदाहादागमनाशश्च पर्यन्ते ।
येन विना धनहारी भूर्जग्रहणे निरालोक ॥१६॥

६० सकलकस्य क्षयिणो नवनवरूपस्य वृद्धिभाजश्च ।
दिविरस्य कला कुटिला पोडश दोपाकरस्यैता ॥१७॥

५० कमलके कोरसे निकली स्याहीके विंदुके वहाने अजनयुक्त (अपने) अश्रुविन्दुओंसे कायस्थो द्वारा लूटी जाती राजलक्ष्मी मानो खिन्न होकर रो रही ॥७॥

५१ मायारूपी वनिताकी अलकोकी तरह कुटिल वुरे अकोके रखनेसे, कौन आदमी जगत् में **कायस्थो**के आचरणसे मोहित नही हुआ ॥८॥

५२ माया-प्रपचसे-सचयसे ससारको वचित करनेवाले, विषय-समूहके ग्रासको, कायस्थो (शरीरस्थ इन्द्रियो) ने लोकका नाश किया ॥९॥

५३ कालके फदेके सदृश कुटिल अक्षरोका लेखन दिखाई देता है। कायस्थके पुर्जे[1] के शिखरपर मानो कुडली मारे साप वैठे हैं ॥१०॥

५४ ये दिविर (कायस्थ) गुप्तकर्मा विचित्र वुद्धिवाले **चित्रगुप्त** है, जो रेखाके मिटाने मात्रसे सहित को रहित कर देते हैं ॥११॥

५५ कायस्थोकी कलायें ससारमें अति अल्प ही प्रसिद्ध हो चालू है, उनकी गुप्त कलाओको **कलियुग** जानता है या **यमराज** ॥१२॥

५६ कुटिल लिपि लिखनेकी कला और सारे अकोके पोछनेकी कला, निरन्तर प्रवेश और सग्रहकी लोक-कला और खर्च वढानेकी कला॥१३॥

५७ ग्राह्य वस्तुके काटनेकी कला, देह-धनके लेनेकी कला, वाकीके विवेककी कला, जमा की राशिके विल्कुल खा जानेकी कला और ॥१४॥

५८ पैदाइशके छिपानेकी कला, नष्टको विखेर दिखलानेकी कला, खरीदे के भरनेकी कला, जोडनेके काम आदि मे घटानेकी कला और ॥१५॥

५९ सारी चिट्ठियो के जलानेसे अन्तमें आमदनी का नाश कर देना और जिसके विना धन हरने वाले भूर्ज (चिट्ठी) के अवेरे में लेना ॥१६॥

६० कलकयुक्त क्षीण होते नये-नये रूप की ओर वढनेवाली, चन्द्रमा की यह सोलह कुटिल कलायें कायस्थ होती है ॥१७॥

६१ कूटस्था कायस्था सर्वनकारेण सिद्धमन्त्रेण।
गुरव इव विदितमाया वृत्तिच्छेद क्षणेन कुर्वन्ति ।।१८।।
—सर्ग ६

३) गायनाः—

६२ अर्थो नाम जनाना जीवितमखिलक्रियाकलापस्य।
तमपि हरन्त्यतिधूर्ता श्लक्ष्णगला गायना लोके ।।१।।

६३ नि शेष कमलाकरकोष जग्ध्वापि कुमुदमास्व।
क्षीणा गायनभृगा मातगप्रणयता यान्ति ।।२।।

६४ घटपटशकटस्कन्धा बहुडिम्भा मुक्तकेशककलापा ।
एते योनिपिशाचा भूपभुजो गायना लोके ।।३।।

६५ तमसि वराकश्चौरो हाहाकारेण याति सत्रस्त ।
गायनचौर प्रकट हाहाकृत्वैव हरति सर्वस्वम् ।।४।।

६६ पापाधघनिनिगमसा घाधामामासमासगाधामा।
कृत्वा स्वरपदपाली गायनधूर्तश्चिरन्त्येते ।।५।।

६७ कुटिलावर्तभ्रान्तैर्वपविकारैश्च मुखविकारैश्च।
गायति गायनसघो मर्दलहस्तश्चिर मौनी ।।६।।

६८ आमन्त्रणजयशब्दै प्रतिपदहुकारघर्घरारावै ।
स्वयमुक्तसाधुवादैरन्तरयति गायनो गीतम् ।।७।।

६९ जलपतिते सक्तुकणे मत्स्यैर्भुक्तेऽस्ति कापि धर्माप्ति ।
गायनदत्तासु पर कोटिष्वपि नास्ति फललेग ।।८।।

७०. मुग्धवनाना विधिना रुद्धानामन्धकूपकोपेपु।
विहितो विवृतमहास्यो गायननामा प्रणालीघ ।।९।।

६१ जालसाज कायस्थ सर्वत्र नकार रूपी सिद्ध-मत्र से, माया जानने वाले गुरुओ की तरह क्षणमें जीविका नाश कर देते है ॥१८॥

—सर्ग ६

३. गायन उस्ताद—

६२ लोगोंके सारे क्रिया-कलापो का प्राण धन है। उसे ससार में अच्छे गलेवाले महा धूर्त गायक हर लेते है॥१॥

६३ सारे कमलाकर (कमल या लक्ष्मी समूह) कुमुद (बुरे आमोद) को खाकर भी, क्षीण हुए गायक रूपी भवरे मातगो (मतवालो) का प्रेम पाते है ॥२॥

६४ घडा-वस्त्र-गाडियो, वहुत वच्चो, खुले केश-कलापो वाले, ये जन्म से पिशाच गायक ससार में राजाओ के भक्षक हैं ॥३॥

६५ अन्वकार में वेचारा चोर हाहाकार के साथ डरता हुआ चुराने जाता है। गायक रूपी चोर खुल्लमखुल्ला हा-हा करके ही सर्वस्व हरण करता है ॥४॥

६६ पा-पा-ध-ध नी-नी ग-म-सा धा-ध मा-मा स-मा गा-धा-मा स्वर पदोकी पक्ति कहते ये धूर्त गायक विचर रहें है॥५॥

६७ कुटिल चक्कर से घूमते, भेस और मुहके विकारोंके साथ मादल हाथमें लिए मौन हो गायक-सघ देर तक गाता है॥६॥

६८ सम्वोधन में 'जय' शव्द, एक-एक पद पर हुंकार और घर्-घर् ध्वनियोसे अपने कहे साधुवादो द्वारा गीतको गायक व्यववानित करता है ॥७॥

६९ जलमें गिराये सत्तूके कनके में मछलियो के खानेसे कुछ धर्म मिल सकता है, लेकिन गायको को दिये करोडो का भी लेश मात्र फल नही है ॥८॥

७० अधेरे कूयेके खजानो में मूढो के छिपाये धनोंके लिये ब्रह्मानें खुले महामुहवाला गायक नामक भारी पनाला वना दिया ॥९॥

७१ नैतत्प्रकटितदशना गायनधूर्ता सदैव गायन्ति।
एते गतानुगतिकान्हसन्ति धूर्ता गृहीतार्थान् ॥१०॥

७२ प्रातर्गायनधूर्ता भवन्ति धीरा सहारकेयूरा ।
मध्याह्ने द्यूतजिता नग्ना भग्ना निराधारा ॥११॥

७३ स्तुतिवागुरा निबद्धैर्वचनशरै कपटकूटरचनाभि ।
गीतैर्गायनलुब्धा मुग्धमृगाणा हरन्ति सर्वस्वम् ॥१२॥

७४ नष्टस्वरपदगीतै क्षणेन लक्षाणि गायनो लब्ध्वा।
"दास्या सुतेन दत्त किमिति" वदन्दु खितो याति ॥१३॥

७५ वर्जितसाधुद्विजवरवृद्धाया सकलशोककलिताया ।
शापोऽयमेव लक्ष्म्या गायनभोज्यैव यत्सततम् ॥१४॥

७६ देव पुरा सुराणामधिनाथो नारद चिरायातम्।
पप्रच्छ लोकवृत्त महीतले भूमिपालानाम् ॥१५॥

७७ सोऽवददवनिपतीना जयिना बहुदानधर्मयज्ञानाम्।
चरता मया नृलोके सुरपतियोग्या श्रियो दृष्टा ॥१६॥

७८ ते तु त्वा स्पर्धन्ते विभवैर्वरुण धनाधिनाथ च।
शतमखसज्ञामसकृद्बहुतरयज्ञा हसन्त्येव ॥१७॥

७९ श्रुत्वा तन्मुनिवचन जातद्वेष शतक्रतु कोपात्।
हर्तुं धन पिशाचान्विससर्ज भुव नरेन्द्राणाम् ॥१८॥

८० ते गीतनाममन्त्रा सुरपतिदिष्टा पिशाचसघाता ।
हर्तुं सकलनृपाणा धनमखिल भूतल प्रययु ॥१९॥

८१ मायादास प्रथम डम्वरदासश्च वज्रदासश्च।
क्षयदासलुण्ठदासौ स्वरहरदास प्रसिद्धदासश्च ॥२०॥

७१ ये गायक दात दिखलाते सदा गाते नही है, वल्कि ये धूर्त गतानुगतिक धन देने वालो का उपहास करते है ।।१०।।

७२ धूर्त गायक सवेरे हार और केयूर के सहित धीर वने रहते हैं, दोपहर को जूये में (सव) हार नग्न-भग्न और निराधार होते है ।।११।।

७३ स्तुतिरूपी जालमें वधी वचन वाणोवाली, कपट और कूट की रचनाओ युक्त, गीतोंसे गायक-शिकारी मूढ रूपी मृगोंके सर्वस्व को हरण करते है ।।१२।।

७४ नष्ट स्वर, पदोवाली गीतोंसे क्षण भरमें लाखो पाकर "दासीके वेटेने क्या दिया" यह कहते दुखित हो वहा से जाते है ।।१३।।

७५ साधु द्विजवरो और वृद्धो को त्यागनेवाली, सारे शोकोंसे युक्त लक्ष्मी के लिये यही शाप है, जो कि वह निरन्तर गायकोंके उपभोग के लिये है ।।१४।।

७६ देवताओ के नाथ इन्द्र देवने देर से आये नारद से ससार में भूपतियोंके लोक-वृत्तान्त के वारे में पूछा ।।१५।।

७७ उन्होने कहा—"मैंने मनुष्य लोक में विचरते वहुत दान-धर्म-यज्ञवाले विजयी भूमिपतियो की इन्द्र-योग्य लक्ष्मियोको देखा ।।१६।।

७८ वे वैभव में तुम्हारी, वरुण और कुवेर की स्पर्धा करते है, शतक्रतु (इन्द्र) के नाम पर अनेक वार वहुत से यज्ञ करने वालो पर हँसते हैं" ।।१७।।

७९ मुनिके उस वचन को सुनकर द्वेष उत्पन्न कर कुपित हो इन्द्रने नरेन्द्रो के धनको हरने के लिये पृथिवी पर पिशाचोको भेज दिया ।।१८।।

८० वे (ही) गीत नामक मत्रवाले पिशाचोके समूह इन्द्रके आदेश से सारे राजाओंके सव धन को हरने के लिये भूतलपर गये ।।१९।।

८१ जिनके नाम हैं पहले मायादास और डम्वरदास और वज्रदास, क्षयदास और लठदास, स्वरहरदास और प्रसिद्धदास ।।२०।।

८२ वाडवदासश्चाष्टौ ते गत्वा मर्त्यलोकमतिभयदा ।
विवृतास्यघोरकुहरा गायनसृष्टि ससर्जुरतिविकटाम् ।२१।

८३ यैरेतैर्हृतविभवा दिशि दिशि हृतसकललोकसर्वस्वा ।
यज्ञादिषु भूपतयो जाता शिथिलोद्यमा सर्वे ॥२२॥

८४ एतेऽपि कर्णविवरै प्रविश्य गीतच्छलेन भूपानाम् ।
सहसा हरन्ति हृदय कर्णपिशाचा महाघोरा ॥२३॥

८५ तस्मादेषा राष्ट्रे न ददाति विकारिणा प्रवेश य ।
तस्य सकलार्थसपद्यज्ञवती भूमिराधीना ॥२४॥

८६ नटनर्तकचक्रचरा कुशीलवाश्चारणा विटाश्चैव ।
ऐश्वर्यशालिशलभाश्चरन्ति तेभ्य श्रिय रक्षेत् ॥२५॥

८७ गायनसघस्यैक्यादुत्तिष्ठति गीतनि स्वन सुमहान् ।
अस्थाने दत्ताया लक्ष्म्या इव सभ्रमाक्रन्द ॥२६॥

—सर्ग ७

३. देशोपदेशः

८८ देवो जयति हेरम्ब. स्वदन्तबिसखेलनै ।
यस्यौच्चैस्तत्प्रभा शुभ्रा हसन्तीव दिशो दश ॥१॥

८९. जयन्ति वेश्या व्यसनाभ्रविद्युतो,
जयन्ति कौटिल्यकला नटा विटा ।
जयत्यजस्र जनवृक्षपातिनी
प्रक्लृप्तमायातटिनी च कुट्टनी ॥२॥

९०. ये दम्भमायामयदोपलेश-
लिप्ता न मे तान्प्रति कोऽपि यत्न ।

८२ वाड़वदास—वे आठो मृत्यु-लोकमें जाकर अत्यन्त भयदायक हुये।
खुले मुहरूपी घोर गड्ढेवाले गायकोकी अति विकट सृष्टि उन्होन
वनाई ॥२१॥

८३ इनके द्वारा विभव लुटे, सारे लोकके सर्वस्वहारे हरेक दिशामें,
सभी भूपति यज्ञ आदि के करनेमें शिथिल हुये ॥२२॥

८४ गीतके वहानेसे राजाओंके कर्ण-विवरमें घुसकर,
ये महाघोर कर्ण-पिशाच तुरन्त हृदयको हर लेते हैं ॥२३॥

८५ इसलिये इन विगाड़ुओको जो राष्ट्रमें प्रविष्ट होने नही देता,
उसके अवीन सारी अर्थ-सपत्ति यज्ञवाली भूमि होती है ॥२४॥

८६ नट, नर्तक, चक्रचर, अभिनेता, वदीजन और भडये (ये)
ऐश्वर्यशाली टिड्डी विचर रही हैं, उनसे लक्ष्मीकी रक्षा करें ॥२५॥

८७ गायन-समूहोकी एकतासे गीतकी (जो) अति महान् ध्वनि उठती है,
अयुक्त स्थानमें दी गई लक्ष्मीका मानो वह भयसे क्रन्दन है ॥२६॥
—सर्ग ७

३. देशोपदेश

८८ अपने दंत रूपी भनौडके साथ खेलनेवाले खलोंके साथ गणेगदेवकी
जय है, जिसकी वह (शुभ्र) प्रभायें मानो दसो दिशाओंको अट्टहास
कर रही हैं ॥१॥

८९ व्यसनरूपी मेघकी विजलियों-वेश्याओंकी जय है।
कौटिल्यकी कलाके अभिनय करनेवाले वेश्या-लपटोकी जय है।
निरन्तर जनरूपी वृक्षोको गिरानेवाले
भारी मायारूपी नदी और कुटनीकी जय है ॥२॥

९० जो दभ मायामय दोषोंसे अत्यन्त लिप्त हैं,
उनके लिये मेरा कोई प्रयास नही है।

किन्त्वेष हासव्यपदेशयुक्तया,
देशोपदेश क्रियते मयाद्य ।।३।।

९१ उपहासेन लज्जितोऽत्यन्त न दोषेषु प्रवर्तते।
जनस्तदुपकाराय ममाय स्वयमुद्यम ।।४।।

(१) खलः—

९२ सदा खण्डनयोग्याय तुषपूर्णाशयाय च।
नमोऽस्तु बहुबीजाय खलायोलूखलाय च ।।५।।

९३ सम शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयो ।
वृत्तिच्छेदकृताभ्यास. खलो निर्वाणदीक्षित ।।६।।

९४ खल सुजनपैशुन्ये सर्वतोऽक्षिशिरोमुख
सर्वत श्रुतिमान् लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ।।९।।

९५ खलो वक्त्येव सर्वस्य दोष वक्ति खलस्य क ।
दोषो मलिनवस्त्रस्य कदा केन विचार्यते ।।१५।।

९६. खलेन धनमत्तेन नीचेन प्रभविष्णुना।
पिशुनेन पदस्थेन हा प्रजे, क्व गमिष्यसि ।।१७।।

९७ गुणान् स्तौतीत्यसम्बद्ध स्निह्यतीत्यसमजसम्।
ददातीति विरुद्धार्थं खलो हन्तीति नानृतम् ।।२१।।

—उपदेश १

(२) कदर्यः—

९८ यूत्कृतस्य जनैर्नित्य निर्निद्रस्य निशास्वपि।
उलूकस्येव लुब्धस्य न कल्याणाय दर्शनम् ।।४।।

यह व्यग कथनके वहाने,
मै आज देशके लिये उपदेश कर रहा हू ॥३॥

९१ परिहाससे अत्यत लज्जित होकर आदमी दोषमें प्रवृत्त नही होता,
उसी उपकारके लिये यह मेरा अपना परिश्रम है ॥४॥

१. खल-वर्णन—

९२ हमेशा खडनके योग्य और भूसा भरे अंतरवाले,
वहुत वीजवाले खल (या खलिहान) और ओखलको नमस्कार हो ॥५॥

९३ शत्रु और मित्रमें एक समान और वैसे ही मान-अपमानमें भी,
निराहार में अभ्यस्त खल निर्वाणकी दीक्षा ले चुका है ॥६॥

९४ सुजनोकी चुगली करनेमें सर्वत्र आख-सिर-मुखवाला सर्वत्र
कानोवाला खल लोकमें सवको व्याप्त कर स्थित है ॥१०॥

९५ खल सवके दोषको कहता है, खलका कौन कहता है?
मलिन वस्त्रवालेके दोषको कव कोई विचारता है ॥१५॥

९६ धनमत्त, नीच, प्रभावशाली, अधिकारप्राप्त
चुगलखोर खलसे भाग कर हा जनता, तू कहा जायेगी ॥१७॥

९७ गुणोकी तारीफ करता है, यह गलत है, स्नेह करता है यह हो नही सकता, देता है यह उलटी वात है। (हा) खल मारता है, यह झूठ नही है ॥२१॥

—उपदेश १

२. कंजूस—

९८ लोग सदा उन्हे थूकते हैं, रातको भी उन्हे नींद नही।
उल्लू जैसे कजूसका दर्शन मगलकारक नही होता ॥४॥

किन्त्वेष हासव्यपदेशयुक्तया,
देशोपदेश क्रियते मयाद्य ॥३॥

९१ उपहासेन लज्जितोऽत्यन्त न दोषेषु प्रवर्तते।
जनस्तदुपकाराय ममाय स्वयमुद्यम ॥४॥

(१) खलः–

९२ सदा खण्डनयोग्याय तुषपूर्णाशयाय च।
नमोऽस्तु बहुबीजाय खलायोलूखलाय च ॥५॥

९३ सम शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयो ।
वृत्तिच्छेदकृताभ्यास खलो निर्वाणदीक्षित ॥६॥

९४ खल सुजनपैशुन्ये सर्वतोऽक्षिशिरोमुख
सर्वत श्रुतिमान् लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥९॥

९५ खलो वक्त्येव सर्वस्य दोष वक्ति खलस्य क ।
दोषो मलिनवस्त्रस्य कदा केन विचार्यते ॥१५॥

९६. खलेन धनमत्तेन नीचेन प्रभविष्णुना।
पिशुनेन पदस्थेन हा प्रजे, क्व गमिष्यसि ॥१७॥

९७ गुणान् स्तौतीत्यसम्बद्ध स्निह्यतीत्यसमजसम्।
ददातीति विरुद्धार्थं खलो हन्तीति नानृतम् ॥२१॥

—उपदेश १

(२) कदर्यः–

९८. थूत्कृतस्य जनैर्नित्य निर्निद्रस्य निशास्वपि।
उलूकस्येव लुब्धस्य न कल्याणाय दर्शनम् ॥४॥

यह व्यंग कथनके बहाने,
मैं आज देशके लिये उपदेश कर रहा हूं ॥३॥

९१ परिहाससे अत्यंत लज्जित होकर आदमी दोषमें प्रवृत्त नही होता,
उसी उपकारके लिये यह मेरा अपना परिश्रम है ॥४॥

१. खल-वर्णन—

९२ हमेशा खडनके योग्य और भूसा भरे अतरवाले,
बहुत बीजवाले खल (या खलिहान) और ओखलको नमस्कार हो ॥५॥

९३ शत्रु और मित्रमें एक समान और वैसे ही मान-अपमानमें भी,
निराहार में अभ्यस्त खल निर्वाणकी दीक्षा ले चुका है ॥६॥

९४ सुजनोकी चुगली करनेमें सर्वत्र आख-सिर-मुखवाला सर्वत्र
कानोवाला खल लोकमें सबको व्याप्त कर स्थित है ॥१०॥

९५ खल सबके दोषको कहता है, खलका कौन कहता है?
मलिन वस्त्रवालेके दोषको कब कोई विचारता है ॥१५॥

९६ धनमत्त, नीच, प्रभावशाली, अविकारप्राप्त
चुगलखोर खलसे भाग कर हा जनता, तू कहा जायेगी ॥१७॥

९७ गुणोकी तारीफ करता है, यह गलत है, स्नेह करता है यह हो नही सकता, देता है यह उलटी बात है। (हा) खल मारता है, यह झूठ नही है ॥२१॥

—उपदेश १

२. कंजूस—

९८ लोग सदा उसे थूकते है, रातको भी उसे नीद नही।
उल्लू जैसे कजूसका दर्शन मगलकारक नही होता ॥४॥

किन्त्वेष हासव्यपदेशयुक्तया,
देशोपदेश क्रियते मयाद्य ॥३॥

९१ उपहासेन लज्जितोऽत्यन्त न दोषेषु प्रवर्तते।
जनस्तदुपकाराय ममायं स्वयमुद्यम ॥४॥

(१) खलः–

९२ सदा खण्डनयोग्याय तुषपूर्णाशयाय च।
नमोऽस्तु बहुबीजाय खलायोलूखलाय च ॥५॥

९३ सम शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयो ।
वृत्तिच्छेदकृताभ्यास खलो निर्वाणदीक्षित ॥६॥

९४ खल सुजनपैशुन्ये सर्वतोऽक्षिशिरोमुख
सर्वत श्रुतिमान् लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥९॥

९५ खलो वक्त्येव सर्वस्य दोष वक्ति खलस्य क ।
दोषो मलिनवस्त्रस्य कदा केन विचार्यते ॥१५॥

९६. खलेन धनमत्तेन नीचेन प्रभविष्णुना।
पिशुनेन पदस्थेन हा प्रजे, क्व गमिष्यसि ॥१७॥

९७ गुणान् स्तौतीत्यसम्बद्ध स्निह्यतीत्यसमजसम्।
ददातीति विरुद्धार्थ खलो हन्तीति नानृतम् ॥२१॥

—उपदेश १

(२) कदर्यः–

९८ यूत्कृतस्य जनैर्नित्य निर्निद्रस्य निशास्वपि।
उलूकस्येव लुब्धस्य न कल्याणाय दर्शनम् ॥४॥

९९ धन, भूमि, घर, स्त्री, जन्म भरका संचित सब कुछ
कंजूस और वृद्धका अन्तमें दूसरेके लिये ही है ॥६॥

१०० घास-भूसेके खर्चेमें हजार आंखोवाला, घरके खर्चेमें मुट्ठीवाधे,
और असन-वसनके छेदन करनेमें कंजूस इन्द्र समान है ॥७॥

१०१ नीरस कंजूसके वचनमें मधुरता कैसे हो सकती है?
लवणहीनके घरमें मुखमें लावण्य कहासे ॥८॥

१०२ कंजूस, चमडा पहननेवाला रूखा, न-नहानेसे सदा जटाधारी,
मैलसे काले कंठवाला, विना लवणके खानेसे शंकर है ॥९॥

१०३ संसारमें कंजूसके समान कौन दूसरा दाता पैदा हुआ,
जो कि याचकोंके गलेमें हाथ और घरमें अर्गला दिये विना खाना
नही खाता ॥१२॥

१०४ दादाकी खरीदी धोती और उससे भी पहले मिला शाटक,
दिव्य वस्त्रधारी कंजूसके लिये युगो तक भी क्षीण नही होता ॥१४॥

१०५ उत्सव-रहित त्योहार छोडे कंजूसकी,
आंखसे नमक न देखे पत्नीको पडोसी न्योतते हैं ॥१५॥

१०६ कंजूस घरके खर्चेके लिये अनाजको मुट्ठीसे नापके देकर भी,
मुट्ठी के लिये मरकर हुये क्लेशके मूल्यको नही पाता ॥१६॥

१०७ कंजूस अकस्मात् घरपर आये स्वजनको देखकर,
गृहिणीसे कलहके वहाने अनशन व्रत कर लेता है ॥१८॥

१०८ पीछे भोजन देनेके डरसे कंजूस ग्रामको अभ्यागतने,
न कुशल प्रश्न करता, न सुनता है ॥१९॥

१०९ जीते जी जिसके संचित धनमेंसे एक कौडी नही वाहर जाती,
मरते हुये उसीका सब एक ही वार चला जाता है ॥२२॥

९९ धन भूमिगृह दारा सर्वथा जन्मसंचितम्।
पराथंमेव पर्यन्ते कदर्यस्य जिनस्य च ॥६॥

१०० सहस्राक्षस्तृणतुषे वज्रहस्तो गृहव्यये।
अशनाच्छादनच्छेदात्कदर्य पाकशासन ॥७॥

१०१ नीरसस्य कदर्यस्य माधुर्यं वचने कथम्।
गृहे लवणहीनस्य लावण्य वदने कुत ॥८॥

१०२ कदर्यश्चर्मवसनो रुक्षोऽस्नानात्सदा जटी।
मलेन श्यामलगल शूली विलवणाशनात् ॥९॥

१०३ कोऽन्य कदर्यसदृशो दाता जगति जायते।
नाश्नात्यदत्वा योऽर्थिभ्यो गले हस्त गृहेऽर्गलम् ॥१२॥

१०४ पटी पितामहक्रीता तत्पर्वाप्तिश्च शाटक ।
दिव्यवस्त्रस्य लुब्धस्य क्षीयते न युगैरपि ॥१४॥

१०५ दिव्यवस्त्रस्य लुब्धस्य त्यक्तपुण्यदिनस्थिते ।
अदृष्टलवणा भार्या प्रातिवेश्यैर्निमन्त्र्यते ॥१५॥

१०६ मुष्टिमानेन दत्वापि लुब्धो धान्य गृहव्यये।
मृतो मुष्टि समादाय क्लेशमूल्य न गच्छति ॥१६॥

१०७ कदर्य स्वजन दृष्ट्वा यदृच्छोपनत गृहे।
करोति दारकलहव्याजेनानशनव्रतम् ॥१८॥

१०८ कदर्य कुशलप्रश्न न करोति शृणोति वा।
अभ्यागतस्य सायाह्ने पश्चाद् भोजनशकया ॥१९॥

१०९ जीवत सचिताद्यस्य न निर्याति क्रपर्दिका।
म्रियमाणस्य तस्यैव सकृत्सर्वं प्रयाति च ॥२२॥

९९ धन, भूमि, घर, स्त्री, जन्म भरका सचित सब कुछ
कजूस और वृद्धका अन्तमें दूसरेके लिये ही है ॥६॥

१००. घास-भूसेके खर्चेमें हजार आखोवाला, घरके खर्चेमें मुट्ठीवाले,
और असन-वसनके छेदन करनेमें कजूस इन्द्र समान है ॥७॥

१०१ नीरस कजूसके वचनमें मधुरता कैसे हो सकती है?
लवणहीनके घरमें मुखमें लावण्य कहासे ॥८॥

१०२ कजूस, चमडा पहननेवाला रूखा, न-नहानेसे सदा जटाधारी,
मैलसे काले कठवाला, विना लवणके खानेसे शकर है ॥९॥

१०३ ससारमें कजूसके समान कौन दूसरा दाता पैदा हुआ,
जो कि याचकोंके गलेमें हाथ और घरमें अर्गला दिये विना खाना नही खाता ॥१२॥

१०४ दादाकी खरीदी धोती और उससे भी पहले मिला शाटक,
दिव्य वस्त्रधारी कजूसके लिये युगो तक भी क्षीण नही होता ॥१४॥

१०५ उत्सव-रहित त्योहार छोडे कजूसकी,
आखसे नमक न देखे पत्नीको पडोसी न्योतते हैं ॥१५॥

१०६ कजूस घरके खर्चेके लिये अनाजको मुट्ठीसे नापके देकर भी,
मुट्ठी के लिये मरकर हुये क्लेशके मूल्यको नही पाता ॥१६॥

१०७ कजूस अकस्मात् घरपर आये स्वजनको देखकर,
गृहिणीसे कलहके बहाने अनशन व्रत कर लेता है ॥१८॥

१०८ पीछे भोजन देनेके डरसे कजूस शामको अभ्यागतसे,
न कुशल प्रश्न करता, न सुनता है ॥१९॥

१०९ जीते जी जिसके सचित धनमेंसे एक कौडी नही, बाहर जाती,
मरते हुये उसीका सब एक ही बार चला जाता है ॥२२॥

११०. नैष्ठुर्यं नैरपेक्ष्य च शाठ्य क्रौर्यमनार्जवम्।
कृतविस्मरण यच्च तत्कदर्यस्य लक्षणम् ॥२६॥

१११. अचुल्लीपाकमस्मेरमसुख निर्जनञ्च यत्।
यदुत्सवकथाहीन तत्कदर्यगृह विदु ॥२८॥

११२ नृत्यत्यवृष्टिषु पुरा ह्यतिवृष्टिषु नृत्यति।
दुर्भिक्षोपप्लवाकाक्षी कदर्यो धान्यगौरवात् ॥३४॥

११३ विरमति मतिहीनो लाभलोभेन वित्त,
जरयति यतिरूप सयमादिन्द्रियेच्छाम्।
चरति च रतिविघ्न सव्ययत्वाद् गृहिण्या,
स्वधननिधनरक्षाचार्यवर्यः कदर्य ॥३६॥

—उपदेशः २

४१. विल्हण (१०८० ई०)

यह कश्मीरके रहनेवाले थे। इनके पिताका नाम ज्येष्ठकलश, दादाका नाम राजकलश और परदादाका नाम मुक्तिकलश था। मा नागदेवी थीं। इष्टराय और आनंद इनके दो भाई थे। अपने ऐतिहासिक महाकाव्य "विक्रमाकदेवचरित" में इन्होने अपने वारेमें वहुत सी वातें लिखी हैं। विद्या-समाप्तिके वाद तरुण विल्हणने अनुकूल दरवार ढूढनेके लिए प्रस्थान किया। मथुरा, कन्नौज, प्रयाग और दूसरे स्थानोमें होते वह कल्याण नगरमें पहुचे, जहा चालुक्य-वंशके राजा छठें विक्रमादित्य (१०७६-११२७ ई०)

११० निष्ठुरता, निरपेक्षता, शठता, क्रूरता, कुटिलता,
और उपकारका विस्मरण—यह है कजूसका लक्षण ॥२६॥

१११ जहा विना पाक चूल्हा, न मुस्कुराता मुख है, और जो निर्जन है,
उत्सवकी जहा कथा नही, उसे कजूसका घर जानते है ॥२८॥

११२ वृष्टि न होने पर पहले जो नाचता, अतिवृष्टिपर जो नाचता है,
अनाजके दामके वढनेके ख्यालसे कजूस सूखे और वाढको चाहता
है ॥३४॥

११३ लाभके लोभसे वह मतिहीन धन नही भोगता, (और)
सयम के कारण यतिकी तरह इन्द्रियोकी इच्छाओको नष्ट करता है।
खर्चीलेपनके कारण गृहिणीकी रतिमें विघ्न करता है,
कजूस अपने धनके नाशकी रक्षामें वडा आचार्य है।

—उपदेश २

४१. विल्हण (१०८० ई०)

का शासन था। इन्हींके वारेमें १८ सर्गोंमें विल्हणने उक्त काव्य लिखा। इनका दूसरा ग्रंथ "विल्हण-चरित" है, जिसमें गुजरातके राजा वीरसिंहकी कन्या शशिकलासे कवि के प्रेमका वर्णन है। संभवतः कल्याणसे वह गुजरात गये, और वहीं बस गये। विल्हणने कल्पना और पौराणिक आख्यानोको छोडकर वास्तविक जीवनको चित्रित करनेका एक नया मार्ग दिखलाया, लेकिन संस्कृतके कवियोने उनका अनुसरण नहीं किया।

६ सा वर्धते शशिकला शशिन कलेव,
राज्ञो विशिष्टतनया ह्यधिकैकभाग्यां।
अल्पैर्दिनै. कतिपयैरपि राजधानी,
आगत्य वाक्यसुधया जनक तुतोष ॥७॥

७ राजीवपत्रनयना नरराजकन्या,
यल्लीलयापि वचन मधुर बभाषे।
तद्वीरसिहनृपतेरमृतोपमान,
चित्ते बभूव सुखदायि दिवा निशायाम् ॥९॥

८ श्रीराजहसनमितेन पुरोहितेन,
राज्ञे निवेद्य विजिताखिलतत्कथेन।
"काश्मीरक कविरसौ गुणिन दिदृक्षु,
त्वामागत क्षितिप, विल्हणनामधेय ॥११॥

९. मुक्तेन्दुकुन्दकुसुमस्फटिकावदाता,
सर्वामरेन्द्रभुजगेन्द्रनरेन्द्रवन्द्या।
मन्त्रार्थतन्त्रजननी जननी श्रतीना.

६. वह शशिकला शशिकी कलाकी तरह बढती,
अधिकाधिक भाग्यशालिनी राजाकी विशिष्ट कन्या,
थोडे ही दिनोंमें राजधानीमें
आकर (अपने) वचनामृतसे पिताको संतुष्ट करने लगी ॥७॥

७ कमल-पत्र जैसे नेत्रोंवाली नरराजकी कन्या,
लीलासे ही जो मधुर वचन बोलती थी।
सो वीरसिंह राजाके चित्तको अमृत-समान
दिन-रात सुखदायक होता था ॥९॥

८. श्री राजहससे नमस्कृत उसके कथनसे जीतनेवाले
पुरोहितने राजासे निवेदन किया—
"हे क्षितिपति, यह कश्मीरी विल्हण नामक कवि
गुणीके देखनेका इच्छुक (तुम्हारे पास) आया है ॥११॥

९ मुक्ता-चन्द्र-कुन्दकुसुम-स्फटिककी तरह श्वेत,
सारे अमरेन्द्रो, भुजगेन्द्रो, नरेन्द्रो द्वारा वंदनीया,
मन्त्र-अर्थतन्त्रकी उत्पादिका, श्रुतियोंकी जननी,
श्री शारदा का जो एक(मात्रा) देश है, वहासे यह आया है ॥१२॥

१० पहिले नमस्कार करके फिर कविराजसे आशीर्वाद,
वीर नृपतिने (ऐसे) ग्रहण किया,
जैसे माया-प्रपचरूपी भवसागरसे भयभीत,
धर्मपरायण आदमी सिद्धोपदेशको ग्रहण करता है ॥१३॥

११. कविको विहसकर मनोवाछित लक्ष्मी दी।
फिर राजाकी प्रसन्नतासे
पडित को खोजनेवाले श्रीवीरसिंह नृपतिने
अति मुदित हो पुत्री को पढाने के लिये दिया ॥१५॥

६ सा वर्धते शशिकला शशिन कलेव,
राज्ञो विशिष्टतनया ह्यधिकैकभाग्यां।
अल्पैर्दिनै कतिपयैरपि राजधानी,
आगत्य वाक्यसुधया जनक तुतोष ॥७॥

७ राजीवपत्रनयना नरराजकन्या,
यल्लीलयापि वचन मधुर बभाषे।
तद्वीरसिंहनृपतेरमृतोपमान,
चित्ते बभूव सुखदायि दिवा निशायाम् ॥९॥

८ श्रीराजहसनमितेन पुरोहितेन,
राज्ञे निवेद्य विजिताखिलतत्कथेन।
"काश्मीरक कविरसौ गुणिन दिदृक्षु,
त्वामागत क्षितिप, बिल्हणनामधेय ॥११॥

९ मुक्तेन्दुकुन्दकुसुमस्फटिकावदाता,
सर्वामरेन्द्रभुजगेन्द्रनरेन्द्रवन्द्या।
मन्त्रार्थतन्त्रजननी जननी श्रुतीना,
श्रीशारदास्ति विषय तत आगतोऽयम्" ॥१२॥

१०. कृत्वा नति विषयपूर्वमथाशिष ता,
जग्राह वीरनृपति कविराजतोऽपि।
मायाप्रपञ्चजगदर्णवभीतभीत,
सिद्धोपदेशमिव धर्मपरश्च लोक ॥१३॥

११ तस्मै विहस्य कविराजमथ क्षितीश,
प्रीत्या सुताध्ययनकारककोविदार्थी।
दत्त्वा निकाममुदिताय मनोरथश्री,
श्रीवीरसिंहनृपतिर्मुदमाससाद ॥१५॥

६. वह शशिकला शशिकी कलाकी तरह बढती,
अधिकाधिक भाग्यशालिनी राजाकी विशिष्ट कन्या,
थोड़े ही दिनोंमें राजधानीमें
आकर (अपने) वचनामृतसे पिताको सतुष्ट करने लगी ॥७॥

७ कमल-पत्र जैसे नेत्रोंवाली नरराजकी कन्या,
लीलासे ही जो मधुर वचन बोलती थी।
सो वीरसिंह राजाके चित्तको अमृत-समान
दिन-रात सुखदायक होता था ॥९॥

८ श्री राजहससे नमस्कृत उसके कथनसे जीतनेवाले
पुरोहितने राजासे निवेदन किया—
"हे क्षितिपति, यह कश्मीरी विल्हण नामक कवि
गुणीके देखनेका इच्छुक (तुम्हारे पास) आया है ॥११॥

९ मुक्ता-चन्द्र-कुन्दकुसम-स्फटिककी तरह श्वेत,
सारे अमरेन्द्रो, भुजगेन्द्रो, नरेन्द्रो द्वारा वंदनीया,
मन्त्र-अर्थतत्रकी उत्पादिका, श्रुतियोकी जननी,
श्री शारदा का जो एक(मात्रा) देश है, वहासे यह आया है ॥१२॥

१० पहिले नमस्कार करके फिर कविराजसे आशीर्वाद,
वीर नृपतिने (ऐसे) ग्रहण किया,
जैसे माया-प्रपचरूपी भवसागरसे भयभीत,
धर्मपरायण आदमी सिद्धोपदेशको ग्रहण करता है ॥१३॥

११. कविको विहसकर मनोवाछित लक्ष्मी दी।
फिर राजाकी प्रसन्नतासे
पडित को खोजनेवाले श्रीवीरसिंह नृपतिने
अति मुदित हो पुत्री को पढाने के लिये दिया ॥१५॥

१२. स्नानानुलेपनमनोरमभोजनानि,
दिव्यावराणि बहुमानपुर सराणि।
काश्मीरक कविवरोऽथ निशम्य रात्रौ
प्रात. पुरोहितयुतो नृपति ददर्श ॥१६॥

१३. सद्य प्रबन्धविधिना गुरुणा कवित्व,
यद्रम्यपद्यरचनामधुना कवीन्द्र ।
विद्यापगागहनवासपयोनिधित्व,
धीर तुतोष स यथा न तथान्य एव ॥१७॥

१४. एव विलोक्य लसितार्थपद कवीन्द्र-
मामन्त्र्य तत्र तनया कवये निवेद्य।
"अध्यापय प्रमुदितो भगवन्निमा त्व
कृत्वा प्रसादम"थ चन्द्रकलामुवाच ॥१८॥

१५. उन्निद्रबुद्धिकुसुम कविशेखरोऽय,
काश्मीरक शशिकले कुरु पादपूजाम्।
क्रीडा विहाय सुकसारिगता सखीना,
शास्त्र गृहाण वचन कविबिल्हणस्य" ॥१९॥

१६ राजा विमृश्य गुणिनो गुरुभावभक्ति,
व्यक्ताक्षरक्रमवतीमपि राजपुत्रीम्।
दृष्ट्वा व्यपाठयदतिप्रयत कवीन्द्र ,
स्तोकैर्दिनै शशिकला विदुषी बभूव ॥२०॥

१७ सा प्राकृतानि विमलानि च सस्कृतानि
शास्त्राण्यधीत्य किल चन्द्रकला सुशीला।
श्रीबिल्हण निजगुरु प्रणिपत्य साक्षात्,
तं हर्पया नृपतिमास सरस्वती च ॥२१॥

१२. स्नान अनुलेपन, मनोरम भोजन,
बहुमानके साथ दिव्य वस्त्र को।
कश्मीरी कविवरने रातको सुनकर,
प्रात पुरोहितके साथ नृपतिका दर्शन किया ॥१६॥

१३. तुरन्त बड़े प्रबंध की रचना कवित्व,
और रम्य-पद्य-निर्माण के द्वारा,
विद्यारूपी नदीके वहन-निवास-सागरत्वसे,
कवीन्द्रने वीर को जैसा तुष्ट किया, वैसा अन्य नही ॥१७॥

१४. इस प्रकार उल्लसित अर्थ-पदवाले कवीन्द्रको देख
अपनी पुत्रीको वहाँ बुला राजाने कविसे निवेदन किया—
"हे भगवन्, तुम खुशीसे कृपाकर इसे पढाओ"
फिर उसने शशिकलासे कहा—॥१८॥

१५. "हे शशिकला, यह फूले बुद्धि रूपी पुष्पवाले,
कश्मीरी कविश्रेष्ठ हैं, इनकी पाद-पूजा कर,
सखियोके तोते-मैनोके खेलको छोड,
कवि विल्हणके वचन-शास्त्रको ग्रहण कर" ॥१९॥

१६ राजाके साथ विचार कर गुणीके प्रति बडी भावभक्तिवाली;
अक्षर-क्रम जाननेवाली राजकन्याको,
देखकर कवीन्द्रने अत्यन्त तत्परतासे पढाया,
(और) थोडे ही दिनोमें शशिकला विदुषी हो गई ॥२०॥

१७ उस सुशीला शशिकलाने प्राकृत और
निर्मल संस्कृत शास्त्रोको पढकर।
अपने गुरु श्रीविल्हणको प्रणाम करके,
उन्हें, नृपति और सरस्वतीको (भी) हर्षित किया ॥२१॥

(२) राजकन्या-प्रेम—

१८ तस्या गृहे प्रवरकुकुमपुष्पवासि-
कर्पूरगौरसरसागरुचन्दनाढ्ये ।
शृंगारसारगहन किल कामशास्त्र-
मध्यापयत्यमलचन्द्रकला कदाचित् ॥२२॥

१९ विज्ञातमन्मथकला स्मरवाणविद्धा,
तस्यान्यजन्मरमणी नरनाथपुत्री ।
भाव्यर्थभावितमनोभवतुल्यकान्ते,
कान्ते रसान्विदधति स्म दृशोर्विकारान् ॥२३॥

२० प्रेमादरात्तरलितेन विलोचनेन,
वक्त्रेण चारुहसितेन सुधाधरेण ।
ईषद्विजृम्भितकुचद्वितयेन वाला,
विद्वासमाशु वशिन च वशीचकार ॥२४॥

२१ श्रीपद्मपत्रनयना वरपद्महस्ता,
पद्मप्रकृष्टचरणा शुचिपद्मगन्धाम् ।
ता पद्मिनीमिव सुपद्मनिकेतना च,
मेने कवि शशिकलामिव कामवल्लीम् ॥२५॥

२२ सा प्राह त कविमवेक्ष्य मनोऽनुराग,
"स्वामिन्, द्वय भवति सर्वजनानुशान्त्यै ।
तत्त्व शिवस्य शिवदायि च कामतत्व,
त्व सप्रति स्मरगुरु स्मरयोग्यमत्र" ॥२६॥

२३ इत्युक्त एव विजने स विचार्य सर्व,
गान्धर्वराजविधिना जगृहेऽस्य पाणिम् ।
कामी युवा स्मरकलाकुशला च वाला,
दैवात्तयोरघटित घटित वभूव ॥२७॥

२. राजकन्यासे प्रेम—

१८ उसके श्रेष्ठ केसर-पुष्पके गंधवाले
कपूरसे गौर सरस अगर-चंदनयुक्त घरमें,
किसी समय पर शृंगार-सारवाला गहन कामशास्त्र
निर्मल शशिकलाको पढाते ॥२२॥

१९ दूसरे जन्मकी कविकी पत्नी राजपुत्रीने,
कामकलाको जान कामवाणसे विद्धा हो,
भावी अर्थों द्वारा प्रभावित काम-तुल्य कमनीय,
प्रियतममें (अपने) नेत्रोसे रस-विकार पैदा किये ॥२३॥

२० प्रेम-आदरसे तरल नेत्रो द्वारा,
सुन्दर हास और अमृत-अधरवाले-मुख तथा
थोडे उद्‌वुद्ध दोनो स्तनो द्वारा उस वालाने,
(उस) संयमी और विद्वान्‌को जल्दी अपने वशमें कर लिया ॥२४॥

२१ लक्ष्मी के कमल-पत्र सी आँखोवाली श्रेष्ठ पद्मसे हाथोवाली,
पद्म से उत्तम चरणोवाली, पवित्र पद्म सी गंधवाली,
पद्मिनी (लक्ष्मी) की तरह ही सुन्दर पद्मके गृहवाली,
काम-लतासी शशिकलाको कविने समझा ॥२५॥

२२ उसने कविको देखकर अपने मनके अनुरागके वारे में कहा:
"हे स्वामी, सभी जनोकी शान्तिके लिये दो वातें होती हैं:
शिवका तत्वज्ञान और शिव (कल्याण)-दायक कामतत्व।
इस समय तुम यहा काम जैसे योग्य कामगुरु हैं" ॥२६॥

२३ एकान्तमें ऐसा कहनेपर उस कविने सब विचार कर,
गंधर्व विवाह-विधिसे उसका पाणिग्रहण किया।
कामी तरुण था और वाला काम-कलामें कुशल थी,
दैवसे उन दोनोके लिये अघटित (घटना) घटित हो गई ॥२७॥

३० के वा न सन्ति भुवि वारिधरावतसा,
हसावलीवलयिनो जलसनिवेशा ।
किं चातक फलमवेक्ष्य स वज्रधारा,
पौरदरी कलयते नववारिधाराम् ॥५९॥

३१ "श्रीवीरसिंह नृपवीर विपक्षवीर,
मत्तेभसिंह नरसिंह नरेन्द्रसिंह ।
वैदेशिक स्वकुललाछनता विधत्ते,
तद्वीक्ष्य किं क्षमसि किं श्रुतमेव नास्ति" ॥६१॥

३२ वशार्चितेन कथिते वचने नृवीरो
जज्वाल वह्निरिव वातविवृद्धवग ।
आनीय तद्गृहसखीश्चरित च पृष्ट्वा
ताभ्य समस्तमपि भूपतिराससाद ॥६२॥

(४) शूलारोहणदण्डः—

३३ ज्ञात्वा स्वय सकलमर्थमनर्थमूल,
प्रोवाच रोषवशग शुभमन्त्रिणस्तान् ।
"चौरस्य कि भवति" मन्त्रिभिरवमुक्त—
"शूलाधिरोहणमिति", "क्रियता च तस्य" ॥६३॥

३४. भूपाज्ञया सपदि वर्षधरैर्विगाढ,
त नीयमानमुपलक्ष्य जनस्त्ववोचत् ।—
"चौर किमेप सुकवि प्रभुरत्नहारी"
लोकोक्तिरेवमभवन्नगरे समस्ते ॥६४॥

३५ द्वारस्थितामथ निरीक्ष्य नरेन्द्रपुत्री
नेत्रच्छटा प्रदवती स उवाच कान्ताम् ।
"बालेऽधुना सुरवधूरमणाय यामि,
तन्नागमिष्यति पुन. कवि विल्हणस्त्वाम्" ॥६५॥

३० ससारमें मेघोके आभूपणवाले,
हस-पक्तिके ककणवाले, जल-शरीरयुक्त कौन नही है।
क्या चातक फलको सोचकर पुरन्दरकी
नवीन जलधारावाली वज्र धाराको ग्रहण करता है" ॥५९॥

३१ "हे वीरसिंह वीर नृपति शत्रु-वीर रूपी
मस्त गजके सिंह, हे नरसिंह, हे नरेन्द्रसिंह,
वैदेशिक विल्हण अपने कुलको लाछित कर रहा है।
उसे देखकर क्यो क्षमा करते हो ? क्या सुना ही नही" ॥६१॥

३२ कुलपूज्य पुरोहित के कहे वचनसे वीरसिंह
वायुसे प्रवल हुये अग्निकी तरह भभक उठा।
शशिकला का गृह सखियोको वुला उसके चरित्रके वारेमें पूछकर
उनसे सव वातें भूपतिने जान ली ॥६२॥

४. सूली का दंड—

३३ अनर्थकी जड सभी वातोको स्वय जानकर,
रुष्ट हो, उसने अपने भले मन्त्रियोंसे कहा—
"चोरका क्या दड होता है?" तव मन्त्रियोने कहा —
"सूलीपर चढाना", "तो कविको यह करो" ॥६३॥

३४ राजाकी आज्ञासे तुरन्त हिजडोने उसे जोरसे पकड़ लिया।
उसे ले जाये जाते देखकर लोगोने कहा—
"यह सुकवि क्या प्रभुके रत्नका हरने वाला चोर है?"
इस प्रकार सारे नगरमें लोगो में वात फैली ॥६४॥

३५ तव उस कविने द्वारपर अवस्थित नेत्र-शोभा-धारिणी
प्रिया नरेन्द्र-कन्या से कहा.
"वाले, देवागनाओके साथ रमण करनेके लिये मै जा रहा हूं।
सो कवि विल्हण अव फिर तेरे पास नही आयेगा" ॥६५॥

३६ वध्यावनीमथ निरोपितशूलरौद्रा,
नीत्वा कविं तु वधका कथयाबभूवु.—
"स्नान विधेहि परिचिन्तय देवमाद्य-
मन्ते मतिर्भवति या सुकवे गति सा" ॥७२॥

(५) **प्रियास्मरणम्—**

३७ "अद्यापि ता कनकचम्पकदामगौरी,
फुल्लारविन्दवदना नवरोमराजीम्।
सुप्तोत्थिता मदनविह्वलसालसागी,
विद्या प्रमादगलितामिव चिन्तयामि ॥७५॥

३८ अद्यापि तद्विकसिताम्बुजमध्यगौर,
गोरोचनातिलकपाण्डुरमध्यदेशम्।
ईषन्मदालसविघूर्णितदृष्टिपात,
कान्तामुख पथि मया सह गच्छती च ॥७६॥

३९ अद्यापि तद्विकचकुन्दसमानदन्त,
तिर्यग्विवर्तितविलोलविलोचनान्तम्।
तस्या मुख मयि मनागपि विस्मरामि,
चित्तात्कृतज्ञ इव हन्त कृतोपकारम् ॥८२॥

४० अद्यापि तत्सरलमजुलतुगभास,
किंचिन्स्मितोच्छ्वसितपाण्डुरगण्डभागम्।
पश्यामि पूर्णशरदिन्दुसमानकान्ति,
कान्तानन विकचपकजपत्रनेत्रम् ॥८३॥

४१. अद्यापि तन्मदनकार्मुकभगुरभ्रु,
दन्तद्युतिप्रकरकर्वुरितावरोष्ठम्।
कर्णावसक्तपुलकोज्वलदन्तपत्र,
तस्या पुन पुनरपीह मुख स्मरामि ॥८४॥

३६ सूली देनेके भयकर वध्यस्थान में,
कविको ले जाकर वधकोने कहा —
"हे सुकवि, स्नान करो, पहले देवताका ध्यान करो।
अन्तमें जो मति सो गति होती है" ॥७२॥

५. प्रिया की याद—

३७. "अब भी मैं सुवर्ण-चम्पक-माला सी गोरी,
फुल्ल कमलमुखवाली, नवीनरोमपंक्तिवाली,
सोयेसे उठी, कामसे विह्वल-अलस अगवाली,
प्रमाद से गिरी विद्याधरी की तरह मैं उसी को सोचता हू ॥७५॥

३८ अब भी उस फूले कमल के गर्भ जैसे गौर,
गोरोचनके तिलकसे पाडुवर्ण मध्यदेशवाले,
मदके-खुमारसे थोडी चकराती दृष्टिपातवाले,
कान्ता-मुख और मेरे साथ पथसे जाती उसको सोचता हू ॥७६॥

३९ आज भी उस फुल्ल कुद समान दातवाले,
तिरछे घूमे चचल नेत्रके कोरोवाले,
उसके मुहको, मेरे ऊपर किये उपकारको
हन्त चित्तसे कृतज्ञकी तरह जरा भी नही भूलता हू ॥८२॥

४०. आज भी उस सरल मजुल उच्च प्रभा-युक्त
कुछ मुस्कराते उच्छ्वमित गुलावी कपोलवाली,
पूर्ण शरद्चन्द्रमाके समान कान्तिवाली,
फुल्ल पकज-पत्र जैसे नयनवाली कान्ताके मुखको मैं देख रहा हू ॥८३॥

४१ आज भी मदन के धनुषसे कुटिल भौंहोवाले,
दातोके प्रकाशोंसे प्रतिबिंबित अधरोष्ठवाले,
कानोमें लगे पुलक उज्ज्वल खीरके दन्त-पत्रवाले
उसके मुखको, फिर-फिर यहा याद करता हू ॥८४॥

४२. अद्यापि ता मयि कृतागसि धृष्टभाव,
सभावयत्यपि मुहुर्निगृहीतवाचम् ।
अन्तर्निरुद्धगुरुकोपसबाष्पकण्ठी,
नि श्वासशुष्यदधरा रुदती स्मरामि ॥८९॥

४३. अद्यापि तामितरतश्च पुरश्च पश्चा-
दन्तर्बहि परित एव परिभ्रमन्तीम् ।
पश्यामि फुल्लकनकाम्बुजसनिभेन,
वक्त्रेण चारुपरिवर्तितलोचनेन ॥९३॥

४४. अद्यापि तानि मम चेतसि विस्फुरन्ति,
बिम्बोष्ठमृष्टपरिकीर्णशुचिस्मितानि ।
पीयूषपूरमधुराणि त्वदुत्तराणि,
वाक्यानि मन्मथभवानि मृदूनि यस्या ॥९८॥

४५. अद्यापि तामरुणयत्यरुणेन्तरिक्ष-
मापृच्छमानमपि नाम विधारयन्तीम् ।
उत्थाप्य निश्चलदृशौ मम नि श्वसन्ती
चिन्ताकुला किमपि नम्रमुखी स्मरामि ॥१०६॥

४६. अद्यापि ता विलुलिताकुलकेशपाशा
किञ्चित्समुन्मिषितघूर्णितजिह्मनेत्राम् ।
सुप्तोत्थिता विदधती मुहुरगभग,
पश्यामि चारुमधुर बहुश स्मरन्तीम् ॥११०॥

४७. अद्यापि ता सुवदना वलभीनिषण्णा,
तद्गेहसन्मुखमहो खलु दृष्टमत्र ।
मर्मोत्तर प्रियसखीषु कृतस्मितासु,
लज्जा विलक्ष्य हसिता हृदि चिन्तयामि ॥१११॥

४२ आज भी मुझ ढीठ अपराधीके प्रति,
क्षण भर वचन रोकनेवाली,
भीतर रुधे भारी कोपके कारण अश्रु-सहित कण्ठवाली,
साससे सूखते अधरोके साथ रोती उसे मै याद करता हू ॥८९॥

४३. आज भी उसे दूसरी जगह, आगे पीछे,
भीतर, बाहर चारो ओर
फुल्ल सुवर्ण कमल सदृश मुख और,
सुन्दर तिरछे लोचनोके साथ घूमती देखता हू ॥९३॥

४४. आज भी विम्बाधरसे मिश्रित विकीर्ण शुभ्र मुस्कान,
अमृतधारासे मधुर, तेरे वे उत्तर,
जिसके काम-प्रसूत मृदु वाक्य हैं,
मेरे चित्तमें उठ रहे हैं ॥९८॥

४५ आज भी उसे पूछते, आकाशके अरुणसे
लाल होते समय धारण करती,
मेरे निश्चल नेत्रोको उठा लम्बी सास लेती,
चिन्ताकुल कुछ फीके मुखवाली मैं याद करता हूँ ॥१०६॥

४६ आज भी चचल-व्याकुल केशपाशो,
कुछ खुले चकराते तिरछे नेत्रोवाली,
सोकर उठ जरा अगडाई लेती,
सुन्दर मधुर वहुत वार याद करती उसे मै देखता हू ॥११०॥

४७ आज भी अटारीपर वैठी,
यहा उसके घरके सामने अहो देखा।
मुस्कराते प्रिय सखियो को गुप्त उत्तर (दे)
लज्जा करके सुखी हसते उसे हृदयमें सोचता हू ॥१११॥

४८ अद्यापि तामुपवने परिवारयुक्ता,
मच्चिन्तयाम्युपगता च महोत्सवाय ।
मा पार्श्वसनिहितलोकभयात्सशक,
व्यावर्तितेक्षणमनुक्षणमीक्षमाणाम्" ॥११८॥

४९ "त्व विद्वन्गुरुरेव वाडवजनै पूज्य सता सर्वदा
किं कुर्म कथयाम सप्रति वय लज्जान्विताधोमुखा ।
राजाज्ञा न करोति पण्डितवराधीनो यत सेवक,
क कोप सहते पराभवपद प्राप्नोति को मानव" ॥१२६॥

५० "भवत्कृते चाजनमजुलाक्षि, शिरो मदीय यदि याति यातु।
नीतानि नाश जनकात्मजायै दशाननेनापि दशाननानि"
॥१३१॥

५१ "प्रासादे सा पथि पथि च सा पृष्ठत सा पुर सा,
पर्यंके सा दिशि विदिशि सा चोर्ध्वत सा ह्यध सा।
हृद्यन्त सा वहिरपि च सा नास्ति दृश्य द्वितीय,
सा सा सा सा त्रिभुवनगता तन्मय विश्वमेतत् ॥१३२॥

५२ मम यदि सुकृत स्यात्पूर्वजन्मार्जित चेद्,
यदि सकलसुराणामर्चन मेऽस्ति किंचित् ।
यजनहवनवेदाध्यासन यन्ममास्ति,
तदपि शशिकला मे प्राणनाप्या तदास्तु" ॥१३५॥

× × ×

५३ इत्थ विज्ञाप्य देवेभ्यस्तूष्णी तस्थौ कवीश्वर ।
अत्रान्तरे चन्द्रलेखा चिन्ता चक्रे तदोचिताम् ॥१३७॥

× × ×

५४ इत्थ विचार्य हृदये मरणाय वुद्धि,
मुक्त्वा सुहर्म्यमवरुह्य सुसप्तभूमिम् ।
वद्ध्वा दृढ नृपसुता परिधानवस्त्र,
तस्थौ मनो निजगुरोश्च निराशयन्ती ॥१४१॥

४८ वगलमें पास लोगो के भयमे शका कर
दृष्टि घुमाये मुझे क्षण-क्षण देखती,
आज महोत्सवके लिये परिवारके साथ,
उपवनमें गई उसको याद करता हू ।।११८।।

४९ "हे विद्वान्, तुम गुरु वाडवजनो सतो द्वारा सदा पूजनीय हो।
क्या करें, लज्जासे अधोमुख हो इस वक्त हम कहते है।
पडितवरके अधीन सेवक यदि राजाज्ञा नही पूरा करे,
तो कौन (राजाके) कोप को सहेगा, कौन मनुष्य पराभवके स्थानको पायेगा" ।।१२६।।

५० "हे काली कोमल आखोवाली आपके लिये यदि मेरा सिर जाता है, तो जावे। सीताके लिये दशाननने भी अपने दशो आनन नष्ट किये" ।।१३१।।

५१ प्रासाद पर वह, प्रत्येक रास्तेपर वह, पीछे वह, आगे वह,
पलगपर वह, दिशा-विदिशाओमें वह, ऊपर वह, नीचे वह,
हृदयके भीतर वह और वाहर भी वह, मेरे लिये दूसरा दृश्य नही है।
वह-वह-वह-वह त्रिभुवन (उससे) व्याप्त है, यह विश्व तन्मय है।।१३२।।

५२ यदि पूर्व जन्मका अर्जित मेरा पुण्य है,
यदि सारे देवताओकी कुछ पूजा की है,
मेरा यज्ञ, हवन, वेदपाठ है,
तो **शशिकला** मेरे प्राणोको प्राप्त हो" ।।१३५।।

५३ इस प्रकार देवताओसे प्रार्थना करके कवीश्वर चुप हो गये।
तव इसी वीच शशिकलाने उचित (उपाय) सोचा ।।१३७।।

५४ हृदयमें यह विचार, मरणका सकल्प कर,
सुन्दर सातमजिलें प्रासादको छोड-उतर
राजकन्या पहननेके वस्त्रको दृढतासे वाधकर
निज गुरुके मनको निराश करती खडी हुई ।।१४१।।

(६) मातृहृदयम्—

५५ एतस्मिन्नन्तरे नार्यस्तदा तद्भुवमागता ।
परोक्षेपेण धावन्त्यो कुर्वन्त्यश्चाश्रुपातनम् ॥१४२॥
सुताराऽन्तःपुरे ताश्च प्रविष्टा साश्रुलोचना ।
विह्वला विश्वसत्यश्च त्राहि त्राहि पुनः पुनः ॥१४३॥

५६ या नार्यः समुपागता द्विजवरं द्रष्टुं समेत्याथ ता,
शोकादात्मभुवो यथा सुवचनैः संपीडिताः सत्कवेः ।
संचिन्त्याशु गता नृवीरनृपतेरन्तःपुरं सुप्रभं,
विज्ञाता महिषी तदेव वचनं सख्या समक्षं तदा ॥१४५॥

५७ स्त्रीणां वाक्यं तदा श्रुत्वा सत्यं सख्या उदाहृतम् ।
सुतारा विह्वलाङ्गी सा मूर्च्छिता पतिता भुवि ॥१४६॥

५८ ज्ञातं देवि यदद्य शोकजननं विप्राय मा धा भृशं
भाव्यं तद् भविता सगोप्यवचनं धर्मस्तथा श्रूयताम् ।
पुत्री ब्रह्मवधे प्रणश्यति ध्रुवं लोकापवादं महज्,
ज्ञात्वेत्थं नृपवीरसिंहनृपतिं विज्ञापयाशु स्फुटम् ॥१४८॥

५९ नरवर दुहिता ते मृत्युमेष्यत्यदूरं,
कविवरनिहते सा सत्यमेतत्समक्षम् ।
द्वयमिह समुपेतं ब्रह्महत्या सुताया,
निगमजनविरुद्धं सर्वथा नैव कार्यम् ॥१४९॥

६० दुःखेन दीनवदना सुतायाश्चरितेन सा ।
मन्दं मन्दं तथोत्थाय निरुत्साह गता नृपम् ॥१५०॥

(७) [illegible]

[illegible] वचनं नृपपट्टराज्ञी,
सुनयज कलि[illegible]मपघ्नम् ।
[illegible] सहसाश्रुपूर्णा,
चरितं सुतायाः ॥१५१॥

६. माताका हृदय

५५ इसी बीच उस भूमिमें दूसरोको हटाती
अश्रुपात करती दौडती नारिया आ गई ।।१४२।।
वह सुताराके अन्त पुरमें अश्रुलोचना विह्वल,
सास लेती फिर-फिर "त्राहि-त्राहि" करती प्रविष्ट हुई ।।१४३।।

५६ जो स्त्रिया द्विजवरको देखने आई थी, वह,
सत्कविके स्व-निर्मित सुवचनोसे मानो शोकसे पीडित,
सोचकर तुरन्त **वीरसिंह** राजाके सुप्रकाशित अन्त पुरमें गई।
सखियोके सामने उस वचनको तव राजमहिषीने जाना ।।१४५।।

५७ तव स्त्रियोके सत्य वचनको सखियो से सुनकर,
रानी **सुतारा** विह्वल मूर्च्छित हो भूमिपर गिर पडी ।।१४६।।

५८ "हे देवि, आज शोक उत्पादक (वात) जानी, यदि ब्राह्मणको तुरन्त न वचाया, (तो) होनेवाला हो जायेगा, सो तुम धर्मके वैसे गुह्य वचनको सुनो—ब्राह्मणके मारे जानेपर (तुम्हारी) पुत्री अवश्य मरेगी। इस तरह भारी लोकापवादको, जानकर वीरसिंह नृपतिको तुम जल्दी साफ निवेदन करो" ।।१४८।।

५९. नरवर तुम्हारी वेटी अति दूर मृत्युको प्राप्त होगी।
कविवर के मारे जाने पर वह, यह सच सामने है।
यहा दोनो मौजूद है, ब्रह्महत्या और पुत्रीकी हत्या
जो पुरवासी जनोके विरुद्ध सर्वथा अ-करणीय है ।।१४९।।

६० दु खसे और पुत्रीके आचरणसे भी वह दीनमुखी (रानी)
धीरेसे उठकर उत्साह-रहित राजाके पास गई ।।१५०।।

७. प्रिया और प्राण मिले—

६१ राजाकी पटरानीने इस प्रकार
सुनीतियुक्त कलिके पाप-नाशक वचनको सुन,
जाकर जगत्के श्रेष्ठ राजासे एक एक आसू भर,
स्त्रियो के उस वचन और पुत्रीके आचरणको सुनाया ।।१५१।।

६२. तदामात्यादय सर्वे पुरोहितसम जना ।
श्रीनृवीर नमस्कृत्य प्रोचु प्राजलयो वच ॥१५३॥

६३ "स्त्रीहत्या ब्रह्महत्या द्वे त्याज्या सद्भि सदा प्रभो ।
गर्हित सर्वशास्त्रेषु जनाय वचन महत्" ॥१५४॥

६४. एव विचार्य बहुधा नृपवीरसिंह,
पथ्य वचस्तदनु धर्मवती च मेने ।
आदिष्टवान्वरकवेर्मरणे निषेध,
तस्थौ तदागमनमेव निरीक्षमाण ॥१५९॥

६५ त भूपति कविवर च विमोचयित्वा,
दत्वा सुतामपि वरिष्ठगुणाय तस्मै ।
देश तथा पुरशताधिकमेकरम्य,
वासासि हस्तितुरगाश्च रथाश्च पत्तीन् ॥१६०॥

६६ इत्थ भूमिपते परात्परतर लब्ध्वा प्रसाद पर,
काश्मीर कविशेखरो मुदमगाच्छ्रीविल्हण सत्कवि ॥
आदिष्टो नृपवीरसिहप्रभुणा नेष्ट निज मन्दिर,
सप्राप्तो वरपचशब्दनिनदैर्मार्गेऽतिथीन्पूजयन् ॥१६२॥

—विल्हणकाव्यम्

४२. आचार्यो गोवर्धन (११०० ई०)

वगालके अन्तिम राजा लक्ष्मणसेन (१११६ ई०) के यह दरबारी कवि थे। इनकी एक ही कृति "आर्यासप्तशती" मिलती है, जिसे उन्होने प्राकृतकी "गाथासप्तशती" से प्रेरणा पाकर लिखा था। अपभ्रश-कालके सस्कृत कवियोकी कंटीली झाडियो या रेगिस्तानोमें घसिटनेके बाद गोवर्धनके पास

६२ तव अमात्य आदि पुरोहितके साथ सभी लोगोने,
श्रीनरवीरको हाथ जोडकर नमस्कार कर वचन कहा ।।१५३।।

६३ "हे प्रभु, स्त्री-हत्या और ब्रह्म-हत्या दोनो भलोके लिये त्याज्य है।
सारे शास्त्रोमें निंदित और लोगो के लिये वडी (वुरी) वात है"
।।१५४।।

६४ इस प्रकार **वीरसिंह** राजाने वहुत तरहसे विचार कर फिर उस पथ्य वचनको धर्मयुक्त भी माना (और) कविवरके मरणके निषेधकी आज्ञा दी, और उनके आगमनकी प्रतीक्षामें वह खड़ा रहा ।।१५९।।।

६५ भूपतिने कविवरको मुक्त कर
उस श्रेष्ठ गुणीको सुता भी देकर,
सौसे अधिक गाववाले एक रमणीय प्रदेश,
वस्त्र, हाथी-घोडे, रथ और पैदल-सैनिकोको प्रदान किया ।।१६०।।

६६ इस प्रकार भूपतिकी उत्तम श्रेष्ठ कृपाको पा,
कश्मीरी कविशेखर सत्कवि श्री**विल्हण** प्रसन्न हुये।
राजा **वीरसिंह** प्रभुका आदेश पाकर रास्तेमें अतिथियोको पूजते
पाचो श्रेष्ठ वाजोके साथ वह अपने सुन्दर मन्दिरमें गये ।।१६२।।
—विल्हण काव्य

४२. आचार्य गोवर्धन (११०० ई०)

आकर वडी सान्त्वना मिलती है। इनकी एक-एक आर्या गागरमें सागर है। भाषा भी दुरूह नहीं और भाव भी हृदयग्राही हैं। प० वलदेव उपाध्यायके अनुसार यह "मानव-हृदयकी प्रवृत्तियोका सच्चा पारखी हैं।" इनकी कविताको हम विहारीकी "सतसई" से तुलना कर सकते हैं।

आर्या सप्तशती

१ व्यासगिरा निर्यासि सार विश्वस्य भारत वन्दे ।
भूपणतयैव सञ्ज्ञा यदकिता भारती वहति ॥३१॥

२ सति काकुत्स्थकुलोन्नतिकारिणि रामायणे किमन्येन ।
रोहति कुल्या गगापूरे किं वहुरसे वहति ॥३२॥

३ अतिदीर्घजीविदोपाद्व्यासेन यशो पहारित हन्त ।
कैर्नोच्च्येत गुणाढ्य स एव जन्मान्तरापन्न ॥३३॥

४ साकूतमधुरकोमलविलासिनी कण्ठकूजितप्राये ।
शिक्षासमयेऽपि मुदे रतलीला कालिदासोक्ति ॥३५॥

५ भवभूते सवन्धाद् भूधरभूरेव भारती भाति ।
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा ॥३६॥

६ जाना शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथावगच्छामि ।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तु वाणी वाणो वभूवेति ॥३७॥

७ य गणयन्ति गुरोरनु यस्यास्ते धर्मकर्म सकुचितम् ।
कविमहमुगनसमिव त तात नीलाम्वर वन्दे ॥३८॥

८ सकलकला कल्पयितु प्रभु प्रवन्धस्य कुमुदवन्धोश्च ।
सेनकुलतिलकभूपतिरेको राकाप्रदोपश्च ॥३९॥

—ग्रन्थारम्भव्रज्या

९ अयि कूलनिचुलमूलोच्छेदनदु शीलवीचिवाचाले ।
वकविघसपकसारा न चिरात्कावेरि भवितासि ॥३॥

१० अन्यमुखे दुर्वादो य प्रियवदने स एव परिहास ।
इतरेन्धनजन्मा यो धूम सोऽगुरुभवो धूप ॥१३॥

१ **व्यास**की वाणीकी गोद, विश्वके सार **भारत**की वंदना करता हूँ, जिसमें अंकित नाम को सरस्वती भूषणके तौरपर धारण करती है ।।३१।।

२ रघुवंश कुलके उन्नत करनेवाले **रामायण**के रहते औरसे क्या काम ? बहुत रसवाली **गंगा**की धाराके बहते नहरिया क्या बढायेगी ।।३२।।

३ अहो, अत्यन्त दीर्घजीवी होनेके दोषसे **व्यास**ने यश हर लिया । कौन नहीं कहेंगे, कि वही दूसरा जन्म ले **गुणाढ्य** हुये ।।३३।।

४ कौतूहलयुक्त मधुर कोमल हाव-भावोवाली, अनुरक्त लीलाकी शिक्षाके समय कठमें प्राय पूजित होती **कालिदास**की उक्तिया आनद-के लिये है ।।३५।।

५ **भवभूति**के सम्वन्वसे, भारती पहाडी भूमि भी शोभा देती, अधिक प्रौढता पानेके लिये वाणी **वाण** हो गई ।।३७।।

७ जिसको वृहस्पति सा लोग गिनते हैं, जिसका पृथिवीमें धर्म-कर्म है । कविके तेजमें शुभ्र समान उन वापू **नीलावर**की वदना करता हू ।।३८।।

८ प्रवन्ध और चन्द्रमाकी सारी कलाओके कल्पित करनेमें समर्थ, **सेन**-कुलके तिलक एक राजा (**लक्ष्मणसेन**) है, और एक पूर्णमासीकी सन्ध्या ।।३९।।

—ग्रथारभ

९ तटके वृक्षोके मूलोच्छेद करनेकी दुराचारिणी लहरोसे युक्त वकवासी हे कावेरि, अचिर ही, वगलो के भोजन रूपी पक तेरा सार होके रहेगा ।।३।।

१० दूसरेके मुहमें जो बुरी वात है, वही प्रियके मुखमें परिहास है । दूसरे इंधनसे उत्पन्न जो धुआ है, वह अगरसे उत्पन्न धूप है ।।१३।।

११ अतिपूजिततारेयं दृष्टिः श्रुतिलघनक्षमा सुतनु।
जिनसिद्धान्तस्थितिरिव सवासना कं न मोहयति ।।२१।।

१२ अवधीरितोऽपि निद्रामिषेण माहात्म्यमसृणया प्रियया।
अवबोधितोऽस्मि चपलो बाष्पस्तिमितेन तल्पेन ।।५०।।

—आकारव्रज्या

१३ आरोपिता शिलायामश्मेव त्वं स्थिरा भवेति मन्त्रेण।
मग्नापि परिणयापदि जारमुखं वीक्ष्य हसितैव ।।८०।।

१४ उल्लसितशीतदीधितिकलोपकण्ठे स्फुरन्ति तारौघाः।
कुसुमायुधविधृतधनुर्निर्गतमकरन्दबिन्दुनिभाः ।।१३६।।

१५ ऋजुना निधेहि चरणौ परिहर सखि, निखिलनागराचारम्।
इह डाकिनीति पल्लीपतिः कटाक्षेऽपि दण्डयति ।।१४०।।

१६ एकेन चूर्णकुन्तलमपरेण करेण चिबुकमुन्नमयन्।
पश्यामि वाष्पधौतश्रुति नगरद्वारि तद्वदनम् ।।१४६।।

१७ कुत इह कुरङ्गशावक केदारे कलममञ्जरीं त्यजसि।
तृणबाणस्तृणधन्वा तृणघटितः कपटपुरुषोऽयम् ।।१९२।।

१८ गृहिणीगुणेषु गणिता विनयः सेवा विधेयतेति गुणाः।
मानः प्रभुता वाम्यं विभूषणं वामनयनानाम् ।।२०३।।

१९ ग्रन्थिलतया किमिक्षोः किमपभ्रंशेन भवति गीतस्य।
किमनार्जवेन शशिनः किं दारिद्र्येण दयितस्य ।।२१५।।

२० चिरपथिकद्राघिममिलदलककलताशैवलावलिग्रथिता।
करतोयेव मृगाक्ष्या दृष्टिरिदानीं सदानीरा ।।२२४।।

११ हे सुतनु, सपूजित पुतली (तारा)-युक्त यह दृष्टि (नेत्र) श्रुति (वेद) का लघन कर सकती है। वुद्धके सिद्धान्तोकी स्थितिसी वासनायुक्त (वह) किसे नही मोहित करती ।।२१।।

१२ निद्राके वहानेसे प्रिया द्वारा तिरस्कृत, वडाई से स्नेहयुक्त मुझ, चपलको आसूसे भीगे विस्तरेने जगा दिया ।।५०।।

—आकार पगडडी

१३ "पत्थरकी तरह तू स्थिर हो" इस मत्रके साथ शिलापर पैर रखवा, विवाहरूपी आफतमें फसाई वह जारके मुखको देखकर हस पड़ी ।।८१।।

१४ उल्लास करती चन्द्रमाकी कलाओके पास, तारे जगमगाते है, जैसे कामदेवके चढाये धनुपसे निकले मधुके विन्दु ।।१३६।।

१५ हे सखि, सीधेसे कदम रख, नगरकी सारी रीति छोड दे। "डाकिनी है" कह, यहाका ग्रामपति नजर डालनेपर भी दड देता है ।।१४०।।

१६ नगरके दरवाजेपर एक हाथसे अलकको और दूसरेसे ठुड्डीको उठाते, आसूसे धुले कानोवाले उसके मुखको देखता हू ।।१४६।।

१७ हे हरिनके वच्चे, इस खेतमें धान-मजरीको तू क्यो छोडता है, यह (तो) तिनकेके वाण तिनकेके धनुषवाला तिनकेका वनाया झूठा पुतला है ।।१९२।।

१८. गृहिणीके गुणोमें नम्रता, सेवा और आज्ञाकारिता गुण गिने गये हैं। सुनयनाओके तो मान, प्रभुता और सौंदर्यको भूषण कहा गया हैं ।।२०३।।

१९ गाठवाली होनेसे ऊखका, अपभ्रंश भापा होनेमे गीतका क्या विगडता है? कुटिल होनेसे चन्द्रमाका, और दरिद्रतासे प्रेमीका क्या विगड़ता है ।।२१५।।

२० चिरकालीन पथिककी लम्वी मिलती अलकरूपी लताकी सेवारोसे गुथी करतोया नदी सी मृगनयनीकी दृष्टि इस समय सदा नीलवाली है ।।२२४।।

११ अतिपूजितताऽरेय दृष्टि श्रुतिलघनक्षमा सुतनु।
जिनसिद्धान्तस्थितिरिव सवासना क न मोहयति ॥२१॥

१२ अवधीरितोऽपि निद्रामिषेण माहात्म्यमसृणया प्रियया।
अवबोधितोऽस्मि चपलो बाष्पस्तिमितेन तल्पेन ॥५०॥

—आकारव्रज्या

१३ आरोपिता शिलायामश्मेव त्व स्थिरा भवेति मन्त्रेण।
मग्नापि परिणयापदि जारमुख वीक्ष्य हसितैव ॥८०॥

१४ उल्लसितशीतदीधितिकलोपकण्ठे स्फुरन्ति तारौघा।
कुसुमायुधविधृतधनुर्निर्गतमकरन्दबिन्दुनिभा ॥१३६॥

१५ ऋजुना निधेहि चरणौ परिहर सखि, निखिलनागराचारम्।
इह डाकिनीति पल्लीपति कटाक्षेऽपि दण्डयति ॥१४०॥

१६ एकेन चूर्णकुन्तलमपरेण करेण चिबुकमुन्नमयन्।
पश्यामि वाष्पधौतुश्रुति नगरद्वारि तद्वदनम् ॥१४६॥

१७ कुत इह कुरगशावक केदारे कलममजरी त्यजसि।
तृणवाणस्तृणधन्वा तृणघटित कपटपुरुषोऽयम् ॥१९२॥

१८ गृहिणीगुणेपु गणिता विनय सेवा विधेयतेति गुणा।
मान प्रभुता वाम्य विभूपण वामनयनानाम् ॥२०३॥

१९ ग्रन्थिलतया किमिक्षो किमप्रभ्रशेन भवति गीतस्य।
किमनार्जवेन शशिन किं दारिद्र्येण दयितस्य ॥२१५॥

२० चिरपथिकद्राघिममिलदलकलतागैवलावलिग्रथिता।
करतोयेव मृगाक्ष्या दृष्टिरिदानी सदानीरा ॥२२४॥

११ हे सुतनु, सपूजित पुतली (तारा)-युक्त यह दृष्टि (नेत्र) श्रुति (वेद) का लघन कर सकती है। वुद्धके सिद्धान्तोकी स्थितिसी वासनायुक्त (वह) किसे नही मोहित करती ।।२१।।

१२. निद्राके वहानेसे प्रिया द्वारा तिरस्कृत, वडाई से स्नेहयुक्त मुझ, चपलको आसूसे भीगे विस्तरेने जगा दिया ।।५०।।

— आकार पगडडी

१३. "पत्थरकी तरह तू स्थिर हो" इस मत्रके साथ शिलापर पैर रखवा, विवाहरूपी आफतमें फसाई वह जारके मुखको देखकर हस पडी ।।८१।।

१४ उल्लास करती चन्द्रमाकी कलाओके पास, तारे जगमगाते हैं, जैसे कामदेवके चढाये धनुषसे निकले मधुके विन्दु ।।१३६।।

१५ हे सखि, सीवेसे कदम रख, नगरकी सारी रीति छोड दे। "डाकिनी है" कह, यहाका ग्रामपति नजर डालनेपर भी दड देता है ।।१४०।।

१६ नगरके दरवाजेपर एक हाथसे अलकको और दूसरेसे ठुड्डीको उठाते, आसूसे धुले कानोवाले उसके मुखको देखता हू ।।१४६।।

१७ हे हरिनके वच्चे, इस खेतमें धान-मजरीको तू क्यो छोडता है, यह (तो) तिनकेके वाण तिनकेके धनुपवाला तिनकेका वनाया झूठा पुतला है ।।१९२।।

१८ गृहिणीके गुणोमें नम्रता, सेवा और आज्ञाकारिता गुण गिने गये हैं। सुनयनाओके तो मान, प्रभुता और सौंदर्यको भूषण कहा गया है ।।२०३।।

१९ गाठवाली होनेसे ऊखका, अपभ्रंश भाषा होनेसे गीतका क्या विगडता है? कुटिल होनेसे चन्द्रमाका, और दरिद्रतासे प्रेमीका क्या विगड़ता है ।।२१५।।

२० चिरकालीन पथिककी लम्वी मिलती अलकरूपी लताकी सेवारोसे गुथी करतोया नदी सी मृगनयनीकी दृष्टि इस समय सदा नीलवाली है ।।२२४।।

११ अतिपूजिततारेयं दृष्टि श्रुतिलघनक्षमा सुतनु ।
जिनसिद्धान्तस्थितिरिव सवासना कं न मोहयति ॥२१॥

१२ अवधीरितोऽपि निद्रामिषेण माहात्म्यमसृणया प्रियया ।
अवबोधितोऽस्मि चपलो बाष्पस्तिमितेन तल्पेन ॥५०॥

—आकारव्रज्या

१३ आरोपिता शिलायामश्मेव त्वं स्थिरा भवेति मन्त्रेण ।
मग्नापि परिणयापदि जारमुखं वीक्ष्य हसितैव ॥८०॥

१४ उल्लसितशीतदीधितिकलोपकण्ठे स्फुरन्ति तारौघा ।
कुसुमायुधविधृतधनुर्निर्गतमकरन्दबिन्दुनिभा ॥१३६॥

१५ ऋजुना निधेहि चरणौ परिहर सखि, निखिलनागराचारम् ।
इह डाकिनीति पल्लीपति कटाक्षेऽपि दण्डयति ॥१४०॥

१६ एकेन चूर्णकुन्तलमपरेण करेण चिबुकमुन्नमयन् ।
पश्यामि वाष्पधौतुश्रुति नगरद्वारि तद्वदनम् ॥१४६॥

१७ कुत इह कुरंगशावक केदारे कलममंजरी त्यजसि ।
तृणवाणस्तृणधन्वा तृणघटित कपटपुरुषोऽयम् ॥१९२॥

१८ गृहिणीगुणेषु गणिता विनय सेवा विधेयतेति गुणा ।
मान प्रभुता वाम्य विभूपण वामनयनानाम् ॥२०३॥

१९ ग्रन्थिलतया किमिक्षो किमप्रभ्रशेन भवति गीतस्य ।
किमनार्जवेन शशिन किं दारिद्र्येण दयितस्य ॥२१५॥

२० चिरपथिकद्राघिममिलदलकलताशैवलावलिग्रथिता ।
करतोयेव मृगाक्ष्या दृष्टिरिदानी सदानीरा ॥२२४॥

११ हे सुतनु, सपूजित पुतली (तारा)-युक्त यह दृष्टि (नेत्र) श्रुति (वेद) का लघन कर सकती है। बुद्धके सिद्धान्तोकी स्थितिसी वासनायुक्त (वह) किसे नही मोहित करती ॥२१॥

१२. निद्राके वहानेसे प्रिया द्वारा तिरस्कृत, वडाई से स्नेहयुक्त मुझ, चपलको आसूसे भीगे विस्तरेने जगा दिया ॥५०॥

— आकार पगडडी

१३. "पत्थरकी तरह तू स्थिर हो" इस मन्त्रके साथ शिलापर पैर रखवा, विवाहरूपी आफतमें फसाई वह जारके मुखको देखकर हस पडी ॥८१॥

१४. उल्लास करती चन्द्रमाकी कलाओके पास, तारे जगमगाते है, जैसे कामदेवके चढाये धनुपसे निकले मधुके विन्दु ॥१३६॥

१५ हे सखि, सीधेसे कदम रख, नगरकी सारी रीति छोड दे। "डाकिनी है" कह, यहाका ग्रामपति नजर डालनेपर भी दड देता है ॥१४०॥

१६ नगरके दरवाजेपर एक हाथसे अलकको और दूसरेसे ठुड्डीको उठाते, आसूसे धुले कानोवाले उसके मुखको देखता हू ॥१४६॥

१७ हे हरिनके वच्चे, इस खेतमें धान-मजरीको तू क्यो छोडता है, यह (तो) तिनकेके वाण तिनकेके धनुपवाला तिनकेका वनाया झूठा पुतला है ॥१९२॥

१८ गृहिणीके गुणोमें नम्रता, सेवा और आज्ञाकारिता गुण गिने गये है। सुनयनाओके तो मान, प्रभुता और सौंदर्यको भूषण कहा गया है ॥२०३॥

१९ गाठवाली होनेसे ऊखका, अपभ्रंश भाषा होनेसे गीतका क्या विगडता है? कुटिल होनेसे चन्द्रमाका, और दरिद्रतासे प्रेमीका क्या विगडता है ॥२१५॥

२० चिरकालीन पथिककी लम्बी मिलती अलकरूपी लताकी सेवारोसे गुथी करतोया नदी सी मृगनयनीकी दृष्टि इस समय सदा नीलवाली है ॥२२४॥

२१ जलविन्दव कतिपये नयनाद् गमनोद्यमे तव स्खलिता ।
कान्ते, मम गन्तव्या भूरेतैरेव पिच्छिलिता ॥२३५॥

२२. ज्योत्स्नागर्भितसैकतमध्यगत स्फुरितयामुन पूर ।
दुग्धनिधौ नागाधिपतल्पतले सुप्त इव कृष्ण ॥२४५॥

२३. त्वमसूर्यपश्या सखि पदमपि न विनापवारण भ्रमसि ।
छाये, किमिह विधेय मुचन्ति न मूर्तिमन्तस्त्वाम् ॥२५४॥

२४ निष्कारणापराध निष्कारणकलहरोषपरितोषम् ।
सामान्यमरणजीवनसुखदु ख जयति दापत्यम् ॥३३४॥

२५ "नाथे"ति परुषमुचित "प्रिये"ति "दासेत्य"नुग्रहो यत्र ।
तद् दापत्यमितोऽन्यन्नारी रज्जु पशु पुरुष ॥३३६॥

२६ न सवर्णो न च रूप न सस्क्रिया कापि नैव सा प्रकृति ।
वाला त्वद्विरहापदि जातापभ्रशभाषेव ॥३४२॥

२७ वौद्धस्येव क्षणिको यद्यपि वहुवल्लभस्य तव भाव ।
भग्ना भग्ना भूरिव न तु तस्या विघटते मैत्री ॥४०८॥

२८ मूलानि च निचुलाना हृदयानि च कूलवसतिकुलटानाम् ।
मुदिरमदिरा प्रमत्ता गोदावरि किं विदारयसि ॥४२९॥

२९ मग्नोऽसि नर्मदाया रसे हृतो वीचिलोचनक्षेपै ।
यद्युच्यसे तरुवर, भ्रष्टो भ्रशोऽपि ते श्लाघ्य ॥४४०॥

३० विन्ध्यमहीवरशिखरे मुदिरश्रेणीकृपाणमयमनिल ।
उद्यद्विद्युज्ज्योति पथिकवधायैव शातयति ॥५५९॥

२१ गमनके प्रयत्न करनेके समय तेरे नयनसे कुछ जलकी बूंदें गिरी, इन्हीसे हे प्यारी, मेरे जानेकी भूमि पिच्छिल हो गई ।।२३५।।

२२ चादनीके भीतरवाली वालूके वीच अवस्थित जमुनाकी धारा जगमगा रही है, मानो क्षीरसागरमें शेषशय्याके ऊपर कृष्ण सोये हैं ।।२४५।।

२३. हे छायासखि, तू कभी सूर्यको न देखनेवाली विना छत्तेके एक पद भी नही चलती। यहा क्या करना है, कि सारे मूर्ति (आकार) वाले तुझे नही छोडते ।।२५४।।

२४ अकारण अपराध, अकारण कलह-रोष और परितोषवाले, एक साथ मरण-जीवन सुख-दुखवाले दांपत्यजीवनकी जय हो ।।२२४।।

२५ "नाथ" कहना कठोर है, "प्रिय", "दास" जिसमें अनुग्रह है, वह दाम्पत्य 'ठीक' है, इससे भिन्न नारी रस्सी है और पुरुष पशु ।।३३६।।

२६ न सवर्ण है और न रूप है, न कोई कार्य है, न ही वह प्रकृति है। तेरे विरह की आफतमें पडी वह वाला अपभ्रंश भाषा सी हो गई है ।।३४२।।

२७ यद्यपि वहुत प्रियतमाओवाले तेरे भाव बौद्ध-सिद्धान्तकी तरह क्षणिक हैं। लेकिन तिरछी-तिरछी (टूटी) भौंहोकी तरह उसके साथकी मित्रता नष्ट नही होती ।।४०८।।

२८ मोददायक मदिरासे मस्त हे गोदावरि, वृक्षोकी जडोको और किनारेकी वस्तियोकी कुलटाओंके हृदयको, तू क्यो विदारित करती है ।।४२९।।

२९. हे तरुवर, नर्मदाके जलमें डूवे, तरगरूपी लोचनोके आघातसे तुम वञ्चित हो रहे हो। यदि कहते हो, कि मैं भ्रष्ट हू, तो तुम्हारा ध्वस (भ्रंश) भी श्लाघनीय है ।।४४०।।

३० विंध्याचलके शिखरपर मेघ पंक्ति रूपी कृपाणको उठाये, उगती विजलीकी ज्योतिवाला यह वायु प्रिया-वियुक्त पथिकोंके मारनेके लिये ही है ।।५५९।।

३१ सा विच्छाया निशि निशि सुतनुर्वहुतुहिनशीतले तल्पे ।
ज्वलति त्वदीयविरहादौषधिरिव हिमवत पृष्ठे ॥६३८॥

३२ सर्वं वन तृणाल्या पिहित पीता सिताशुरवितारा ॥
प्रध्वस्ता पन्थानो मलिनेनोद्गम्य मेघेन ॥६६८॥

३३ पूर्वैर्विभिन्नवृत्ता गुणाढ्यभवभूतिबाणरघुकारै. ।
वाग्देवी भजतो मम सन्त पश्यन्तु को दोष ॥६९७॥

३४ उदयनबलभद्राभ्या सप्तशती शिष्यसोदराभ्या मे ।
द्यौरिव रविचन्द्राभ्या प्रकाशिता निर्मलीकृत्य ॥७०१॥

४३. जयदेव (११०० ई०)

जयदेव भी राजा लक्ष्मणसेनके दरबारी कवि तथा गोवर्धनके सम-कालीन थे। इनका जन्म किन्दुबिल्व स्थानमें हुआ था, जिसे कुछ लोग-वंगालमें और कुछ उडीसामें वतलाते है। राधाकृष्णके रास-विलासको इन्होंने अपनी सरस गीतोमें वाधा है। इनका यही एकमात्र ग्रथ प्राप्य है। राधाकृष्णके प्रेमके नग्न वर्णन करनेमें इन्होने हमारी आजकी भाषाओके

गीतगोविन्दम्

(१) मङ्गलाचरणम्—

"मेघैर्मेदुरमवर वनभुव श्यामास्तमालद्रुमैर्,
नक्त भीरुरय त्वमेव तदिम राधे गृह प्रापय ।"
इत्थ नदननिदेशतश्चलितयो प्रत्यध्वकुजद्रुम,
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रह केलय ॥१॥

वाग्देवताचरितचित्रितचित्तसद्मा,
पद्मावतीचरणचारणचक्रवर्ती ॥

३१ वह मलिना सुतनु रात-रात अत्यन्त हिम जैसी शीतल शय्यापर,
तुम्हारे विरहमें हिमालयके पृष्ठपर औषधिकी तरह जल रही है ।।६३८।।

३२ मलिन मेघने उत्पन्न होकर सारे वनको तृणोसे ढँक दिया,
चन्द्र-सूर्य और ताराओको पी लिया, रास्तोको ध्वस्त कर दिया ।।६६८।।

३३ गुणाढ्य, भवभूति, वाण, कालिदास जैसे पहलोके नाना विभिन्न वृत्तोवाली वाणी देवीकी सेवा करते मेरा कौन दोष है, इसे सतजन देखें ।।६९७।।

३४ मेरे शिष्य और सहोदर उदयन और बलभद्रने,
सूर्य-चन्द्र द्वारा आकाशकी तरह, निर्मल करके यह सप्तशती प्रकाशित की ।।७०१।।

४३. जयदेव (११०० ई०)

कवियोके लिये मार्ग प्रशस्त किया। "गीतगोविन्द" की लोकप्रियता इसीसे मालूम होगी, कि मध्यदेशमें अनपढ़ ग्रामीण तक गीतगोविन्द सुननेके लालायित रहते हैं, चाहे वह उसे कुछ भी न समझते हो। संस्कृतमें गीतोके न रचे जानेका कारण यही था, कि गीतोके लिए लोकभाषाका लोहा माना जाता था, (पृ ९७२।१९,) और वह उसीमें लिखी और गाई जाती थीं। "गीत-गोविन्द"ने ललित गीतोके निर्माणकी परम्परा चलाई, लेकिन वह आगे नहीं बढ़ी।

गीतगोविन्द

१. मगलाचरण—

"मेघोसे आकाश ढका है, वनभूमिया तमालके वृक्षोसे श्यामल हैं।
रात है, यह कृष्ण भीरु है, सो राधे, इसे तू ही घर पहुचा।"—
इस प्रकार नन्दके आदेशसे चले मार्गके कुजके वृक्षो में,
यमुनाके तटके एकान्तमें राधा और माधवकी होती क्रीडाओ की जय।१।

वाणीदेवी के चरित्रसे चित्रित चित्तभवनवाला,
पद्मावतीके चरणके चलानेमें चक्रवर्ती,

श्रीवासुदेवरतिकेलिकथासमेत,
मेत करोति जयदेवकवि प्रबन्धम् ॥२॥

(२) वसन्तः[1]—

ललितलवगलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे ॥
मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुजकुटीरे ॥१॥
विहरति हरिरिह सरसवसते ।
नृत्यति युवतिजनेन सम सखि विरहिजनस्य दुरते ॥ध्रुव०॥
उन्मदमदनमनोरथपथिकवधूजनजनितविलापे ।
अलिकुलसकुलकुसुमसमूहनिराकुलबकुलकलापे ॥२॥
मृगमदसौरभरभसवशवदनवदलमालतमाले ॥
युवजनहृदयविदारणमनसिजनखरुचिकिशुकजाले ॥३॥
मदनमहीपतिकनकदण्डरुचिकेसरकुसुमविकासे ॥
मिलितशिलीमुखपाटलिपटलकृतस्मरतूणविलासे ॥४॥
विगलितलज्जितजगदवलोकनतरुणकरुणकृतहासे ।
विरहिनिकृन्तनकुन्तमुखाकृतिकेतकिदन्तुरिताशे ॥५॥
माधविकापरिमलललिते वनमालिकयाऽतिसुगन्धौ ।
मुनिमनसामपि मोहनकारिणि तरुणाकारणवन्धौ ॥६॥
स्फुरदतिमुक्तलतापरिरम्भणमुकुलितपुलकितचूते ॥
वृन्दावनविपिने परिसरपरिगतयमुनाजलपूते ॥७॥
श्री जयदेवभणितमिदमुदयति हरिचरणस्मृतिसारम् ॥
सरसवसन्तसमयवनवर्णनमनुगतमदनविकारम् ॥८॥

---

१ रूपक ताल, अष्टपदी

श्रीकृष्णकी रति-क्रीडाकी कथासे युक्त,
इस प्रवन्धको जयदेव कवि वनाता है ॥२॥

२ वसन्त—

ललित लवगोकी लतामें लिप्त कोमल दक्षिण पवनवाले,
भ्रमर समूहोसे दतुरित कोकिल-कूजनके कुजोके कुटीरवाले ॥१॥
इस सरस वसतमें कृष्ण यहा विहार कर रहे हैं,
हे सखि, विरही जनोके अपार गम्य वसतमें युवतियोके साथ वह नाच रहे हैं ॥ध्रुव ॥
(जिस वसन्तमें) मस्त मदनके मनोरथसे प्रोषितपतिकायें विलाप करती हैं, कुसुमो पर भ्रमरो की भीड और मौलसरीके गुच्छोपर नही भीड रहती है ॥२॥
कस्तूरीकी गधमें खूव अधीन नवपत्रोकी मालायें तमालोपर रहती हैं,
तरुणोके हृदय-विदारणके लिये कामके नख जैसे टेसू होते हैं ॥३॥
काम नृपतिके सुवर्णदडसे चमकते केसरके फूल फूलते हैं,
भवरोसे मिली पाटलियोके, काम-तूणीर वनते हैं ॥४॥
विगलित हो लज्जित ससारको देख, तरुण जव करुण हास करते हैं,
विरहियोके छेदनेके लिये भाले की नोकके आकारवाले केवडे चारो ओर फूलते हैं ॥५॥
जव वेलाकी गधसे ललित, वनमालिकासे, अत्यन्त सुगधित,
मुनियोके मनोके भी मोहक तरुणोके अकारण वन्धु ॥६॥
फूले मोतियोकी लताके आलिंगनसे आम मुकुलित और पुलकित होते हैं,
वृन्दावनके उद्यानमें, यमुनाजलसे पवित्र पास-पडोस में वसत है ॥७॥
सरस वसन्तके समयके वनका वर्णन काम-विकारसे युक्त,
श्री जयदेव द्वारा कथित यह पद हरि चरणोमें भक्ति उत्पन्न करता है।८।

—सर्ग १

(३) विरहिणी[1]—

निंदति चन्दनमिंदुकिरणमनुविंदति खेदमधीरम् ॥
व्यालनिलयमिलनेन गरलमिव कलयति मलयसमीरम् ॥
सा विरहे तव दीना ।
माधव, मनसिजविशिखभयादिव भावनया त्वयि लीना ॥ध्रु०॥
अविरलनिपतितमदनशरादिव भवदवनाय विशालम् ॥
स्वहृदयमर्मणि वर्म करोति सजलनलिनदलजालम् ॥
सा विर० ॥२॥
कुसुमविशिखशरतल्पमनल्पविलासकलाकमनीयम् ।
व्रतमिव तव परिरंभसुखाय करोति कुसुमशयनीयम् ॥
सा विर० ॥३॥
वहति च चलितविलोचनजलधरमाननकमलमुदारम् ॥
विधुमिव विकटविधुंतुददन्तदलनगलितामृतधारम् ।
सा विरहे० ॥४॥
विलिखति रहसि कुरंगमदेन भवन्तमसमशरभूतम् ॥
प्रणमति मकरमधो विनिधाय करे च शरं नवचूतम् ॥
सा विर० ॥५॥
प्रतिपदमिदमपि निगदति "माधव तव चरणे पतिताहम् ।
त्वयि विमुखे मयि सपदि सुधानिधिरपि तनुते तनुदाहम् ॥
सा विरहे० ॥६॥
ध्यानलयेन पुरः परिकल्प्य भवंतमतीव दुरापम् ॥"
विलपति हसति विषीदति रोदिति चंचति मुंचति तापम् ।
सा विरहे० ॥७॥
श्रीजयदेवभणितमिदमधिकं यदि मनसा नटनीयम् ॥
हरिविरहाकुलवल्लवयुवतिसखीवचनं पठनीयम् ॥
सा विरहे० ॥८॥ —सर्ग ४

---

१. राग कर्णाट, ताल एकताला, अष्टपदी

३. विरहिणी—

चन्दनकी निन्दा करती है, चन्द्र-किरणो से अधीर हो खेद पाती है। सर्प-भवनसे मिलने के कारण मलय (दक्षिण) पवनको गरल सी समझती है। वह राधा तुम्हारे विरह में दीना है। हे माधव कामवाणो के भय से तुम्हारी भावनासे तुममें लीन सी है ॥ ध्रु० ॥१॥
लगातार (ऊपर) गिरते कामवासना वाण से रक्षाके लिये अपने हृदय-मर्म पर आर्द्र कमलदलो का विशाल कवच वनाती है ॥२॥

शृंगार-कलाओ से बहुत सुन्दर कुसुमरूपी वाण की शर-शय्या के कुसुम पर तुम्हारे आलिंगनके सुख के लिये सोकर मानो व्रत करती है ॥३॥

चचल नेत्ररूपी मेघसे मुख-महाकमल को तिरस्कृत करने वाले, दन्तोंके काटनेसे वहती अमृतधारवाले, चन्द्रमा को वहन करती एकान्त में कस्तूरी से कामदेव समान आपको चित्रित करती है, नीचे मकरको वना हाथ में नवआम्र-पल्लव रूपी शरको रख प्रणाम करती है ॥५॥

वह क्षण-क्षण यह भी कहती है—हे माधव, मै तेरे चरणो में पडी हू। तेरे विमुख होने पर चन्द्रमा भी मेरे लिये।तुरन्त देह-दाह करता है ॥६॥

ध्यान में निमग्न होने से सामने भी आपको अत्यन्त दुर्लभ समझकर विलाप करती है, हसती है, दुखित होती है, रोती ह, पूजा करती है तृप्त होती है ॥७॥

श्रीजयदेव का यह कथन यदि मनसे अधिक अभिनय करना है, तो कृष्ण के विरह से व्याकुल सखी गोपी-युवती के वचन को पढना चाहिये ॥८॥

—सर्ग ४

(४) अभिसारिका[1]—

रतिसुखसारे गतमभिसारे मदनमनोहरवेषम् ॥
न कुरु नितम्बिनि गमनविलम्बनमनुसर त हृदयेशम् ॥
धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली ॥
गोपीपीनपयोधरमर्दनचचलकरयुगशाली ॥ध्रु०॥१॥
नामसमेत कृतसकत वादयते मृदुवेणुम् ॥
बहु मनुते तनुते तनुसगतपवनचलितमपि रेणुम् ॥धीरस०२॥
पतति पतत्रे विचलति पत्रे शकितभवदुपयानम् ॥
रचयति शयन सचकितनयन पश्यति तव पथानम् ॥
धीरसमीरे० ॥३॥
मुखरमधीर त्यज मजीर रिपुमिव केलिसु लोलुम् ॥
चल सखि कुज सतिमिरपुज शीलय नीलनिचोलम् ॥
धीरसमीरे० ॥४॥
उरसि मुरारेरुपहितहारे घन इव तरलबलाके ॥
तडिदिव पीते रतिविपरीते राजसि सुकृतविपाके ॥
धीरसमीरे० ॥५॥
विगलितवसन परिहृतरशन घटय जघनमपिधानम् ॥
किसलयशयन पकजनयन निधिमिव हर्षनिधानम् ॥
धीरसमीरे ० ॥६॥
हरिरभिमानी रजनिरिदानीमियमपि याति विरामम् ॥
कुरु मम वचन सत्वररचन पूरयमधुरिपुकामम् ॥
धीरसमीरे० ॥७॥
श्रीजयदेवे कृतहरिसेवे भणति परमरमणीयम् ॥
प्रमुदितहृदय हरिमतिसदय नमत सुकृतकमनीयम् ।
धीरसमीरे यमुना० ॥८॥

—सर्ग ५

---

१ राग गुर्जर, ताल एकताला, अष्टपदी

४. अभिसारिका—

रति-सुख के सार अभिसार में गये मदन जैसे मनोहर वेषवाले, उस हृदय को हे नितम्बिनी, अनुसरण कर, गमनमें विलम्ब न कर। मन्द समीरवाले जमुना तीर के वनमें वनमाली वसते हैं, गोपियो के पीन-पयोधर का मर्दन करने में जिनके कर युगल चचल हैं ।।१।।

(तेरे) नाम का सकेत करते मधुर वशी वजाते तनमें लगी पवन द्वारा चलित धूलिको भी वहुत वढाकर मानते हैं ।।२।।

पक्षी के गिरने, पत्रके चलने पर आपके आने की शका करते चकित दृष्टिसे सेज वनाते और तेरी वाट जोहते हैं ।।३।।

रिपुकी तरह क्रीडा के अत्यन्त लोभी अधीर, मुखर (इस) पाजेव को छोड दे। सखी, चल, अन्धकार-पुज वाले नीले निचोल-कुजका सेवन कर ।।४।।

चचल वक पक्तिवाले मेघ जैसे मुरारिके हारयुक्त विजलीसे पीले सुकर्मके भोग वाले विपरीत रति से वक्षस्थल पर तू सोयेगी ।।५।।

हे कमलनेत्रे, नव पल्लवकी सेज पर निधिकी तरह हर्षके आनन्द के निधान खसके वस्त्रवाले कटि-भूषण-रहित जघन को ढाक ले ।।६।।

कृष्ण अभिमानी है, यह रात भी वीती जारही है, मेरी वात मान, जल्दी सज जा और कृष्ण की कामना को पूरी कर ।।७।।
हरिके सेवक श्रीजयदेव के परम रमणीय (इस) कथन पर, प्रमुदित-हृदय अत्यन्त दयावान् सुकर्मसे कमनीय हरिको नमस्कार करो ।।८।।

—सर्ग ५

(५) राधामाधवलीला¹—

राधावदनविलोकनविकसितविविधविकारविभगम् ॥
जलनिधिमिव विधुमण्डलदर्शनतरलिततुगतरगम् ॥
हरिमेकरस चिरमभिलषितविलासम् ॥
सदर्श गुरुहर्षवशवदवदनमनगविकारम् ॥ध्रु०॥१॥
हारममलतरतारमुरसि दधत परिरम्य विदूरम् ॥
स्फुटतरफेनकदम्बकरबितमिव यमुनाजलपूरम् ॥
हरिमेकरस० ॥२॥
श्यामलमृदुलकलेवरमण्डलमधिगतगौरदुकूलम् ॥
नीलनलिनमिव पीतपरागपटलभरवलयितमूलम् ॥
हरिमेकरस० ॥३॥
तरलदृगचलचलनमनोहरमदनजनितमतिरागम् ॥
स्फुटकमलोदरखेलितखञ्जनयुगमिव शरदि तडागम् ॥
हरिमेकरस० ॥४॥
वदनकमलपरिशीलनमीलितमिहिरसकुण्डलशोभम् ॥
स्मितरुचिरुचिरसमुल्लसिताधरपल्लवकृतिरतिलोभम् ॥

५. राधामाधव लीला—

उसने भारी हर्षसे लिप्त मुख हो काम-विकारवाले हरिको देर तक देखा ।।ध्रु० ।।१।।

(जो कि) राधाके मुखके देखनेसे नाना भाव-भगियोवाले,
चन्द्रमण्डलके दर्शनसे चचल ऊची तरगोवाले सागर जैसे
अभिलषित शोभायुक्त (और) एक-रस (हैं)।
(जो) दूरसे आलिगन करके अति-निर्मल तारयुक्त हार धारण किये हैं ।।२।।

मानो अति स्पष्ट फेनोंसे लिप्त जमुनाजलकी धारा जैसे
श्यामल मृदुल शरीर-मडल पर श्वेत रेशम पहने हैं।
मानो पीले केसरोंसे वेष्टित जडवाला नीलकमल हो ।।३।।

चचल नेत्रकोण चलनेसे मनोहर, कामसे उत्पन्न अति रागवाले,
मानो शरद्काल में फूले कमलके उदरमें खेलते दो खजनोवाला तडाग हो ।।४।।

मुखकमलके ससर्गसे मिले मुदे सूर्य कुडल की शोभायुक्त,
मुस्कुराहटकी चमकसे समुल्लसित अधर-पल्लवके लिये अत्यत लोभ-वाले ।।५।।—

चन्द्रकिरणोंसे अकित उदरवाले, मेघ जैसे सुन्दर कुसुम केशवाले,
अन्धकारमें उगे चन्द्रमडलसे निर्मल चन्दनकी तिलक लगाये ।।६।।

भारी रोमाचोंसे दतुरित रति-क्रीड़ाकी कलामें अधीर,
मणियोंके किरणोंसे उज्ज्वल भूषणो द्वारा सुदर शरीरवाले ।।७।।

श्रीजयदेवके कथनके वैभवसे दूना भूषण धरे,
भवजलके सुकर्मोंके फलके सार, हरिको हृदयमें रखकर प्रणाम करो ।।८।।

—सर्ग ११

(५) राधामाधवलीला[1]—

राधावदनविलोकनविकसितविविधविकारविभंगम् ॥
जलनिधिमिव विधुमण्डलदर्शनतरलिततुंगतरंगम् ॥
हरिमेकरसं चिरमभिलषितविलासम् ॥
सदर्शं गुरुहर्षवशंवदवदनमनंगविकारम् ॥ध्रु०॥१॥
हारममलतरतारमुरसि दधतं परिरम्य विदूरम् ॥
स्फुटतरफेनकदम्बकरम्बितमिव यमुनाजलपूरम् ॥
हरिमेकरसं० ॥२॥
श्यामलमृदुलकलेवरमण्डलमधिगतगौरदुकूलम् ॥
नीलनलिनमिव पीतपरागपटलभरवलयितमूलम् ॥
हरिमेकरसं० ॥३॥
तरलदृगञ्चलचलनमनोहरमदनजनितमतिरागम् ॥
स्फुटकमलोदरखेलितखञ्जनयुगमिव शरदि तडागम् ॥
हरिमेकरसं० ॥४॥
वदनकमलपरिशीलनमीलितमिहिरसकुण्डलशोभम् ॥
स्मितरुचिरुचिरसमुल्लसिताधरपल्लवकृतिरतिलोभम् ॥
हरिमेकरसं० ॥५॥
शशिकिरणोच्छुरितोदरजलधरसुन्दरकुसुमसुकेशम् ।
तिमिरोदितविधुमण्डलनिर्मलमलयजतिलकनिवेशम् ॥
हरिमेकरसं० ॥६॥
विपुलपुलकभरदन्तुरितं रतिकेलिकलाभिरधीरम् ॥
मणिगणकिरणसमूहसमुज्ज्वलभूषणसुभगशरीरम् ॥
हरिमेकरसं० ॥७॥
श्रीजयदेवभणितविभवे द्विगुणीकृतभूषणभारम् ॥
प्रणमत हृदि विनिधाय हरिं भवजलसुकृतोदयसारम् ॥
हरिमेकरसं[1]० ॥८॥ —सर्ग ११

---

१. राग वराडी, एकताला, अष्टपदी

५. राधामाधव लीला—

उसने भारी हर्षसे लिप्त मुख हो काम-विकारवाले हरिको देर तक देखा ।।ध्रु० ।।१।।

(जो कि) राधाके मुखके देखनेसे नाना भाव-भगियोवाले,
चन्द्रमण्डलके दर्शनसे चचल ऊची तरगोवाले सागर जैसे
अभिलषित शोभायुक्त (और) एक-रस (हैं)।
(जो) दूरसे आलिगन करके अति-निर्मल तारयुक्त हार धारण किये हैं ।।२।।

मानो अति स्पष्ट फेनोसे लिप्त जमुनाजलकी धारा जैसे
श्यामल मृदुल शरीर-मडल पर श्वेत रेशम पहने है ।
मानो पीले केसरोंसे वेष्टित जडवाला नीलकमल हो ।।३।।

चचल नेत्रकोण चलनेसे मनोहर, कामसे उत्पन्न अति रागवाले,
मानो शरद्काल में फूले कमलके उदरमें खेलते दो खजनोवाला तडाग हो ।।४।।

मुखकमलके ससर्गसे मिले मुदे सूर्य कुडल की शोभायुक्त,
मुस्कुराहटकी चमकसे समुल्लसित अधर-पल्लवके लिये अत्यत लोभ-वाले ।।५।।—

चन्द्रकिरणोंसे अकित उदरवाले, मेघ जैसे सुन्दर कुसुम केशवाले,
अन्धकारमें उगे चन्द्रमडलसे निर्मल चन्दनकी तिलक लगाये ।।६।।

भारी रोमाचोसे दतुरित रति-क्रीडाकी कलामें अवीर,
मणियोके किरणोंसे उज्ज्वल भूषणो द्वारा सुदर शरीरवाले ।।७।।

श्रीजयदेवके कथनके वैभवसे दूना भूषण धरे,
भवजलके सुकर्मोंके फलके सार, हरिको हृदयमें रखकर प्रणाम करो ।।८।।

—सर्ग ११

४४. मंखक (११३० ई०)

कश्मीरके यह महाकवि, राजा जयसिंह (११२९-५० ई०) के सभा पंडित थे। इन्होने अपने बारेमें "श्रीकंठचरित" महाकाव्यमें काफी बातें दी हैं। इससे उस समयके कितने ही व्यक्तियों और कवियोका भी पता लगता है। कान्यकुब्जके महाराज गोविन्दचन्दके एक दरबारी पंडितका भी इन्होने उल्लेख किया है। कश्मीर जैसा प्रकृतिकी सुषमाका भण्डार देश इन्हें वर्णन करनेके लिए मिला था, लेकिन इन्हें सस्कृतके दूसरे कवियोका

श्रीकण्ठचरितम्

(१) पूर्वे कवय.—

१ मधुकणमुचो वाचो येषा विसारि रस कम-
प्युरुतरपरीपाकोद्रेका पिका इव बिभ्रति।
त इह कवयो मन्ये नान्ये पुनर्दुरतिक्रम-
क्रमकठिनतायोगाद्येषा विमुह्यति शेमुषी ॥५०॥

२ परश्लोकान् स्तोकान् प्रतिदिवसमभ्यस्य ननु ये,
चतुष्पादी कुर्युर्बहव इव ते सन्ति कवय।
अविच्छिन्नोद्गच्छज्जलधिलहरीरीतिसुहृद,
मुहृदया वैशद्य दधति किल केषाञ्चन गिर ॥५१॥

३ दिव्ये वाक्प्रसरक्रमे सुकवितु प्रत्यक्षवाचस्पते,
श्रोतृस्तोतृकथासु क खलु पटु स्याच्चर्मचक्षुर्जन।
लभ्य शेषफणी कुतोऽत्र स तु यच्चक्षु सहस्रद्वये-
नाकर्ण्यनमथ स्तुतौ वितनुयाज्जिह्वासहस्रद्वयीम् ॥५२॥

४४. मंखक (११४० ई०)

अनुकरण करते आमों और आम्र मंजरियोके वर्णनमें आनंद आता था, चाहे कश्मीरमें हिमपातके कारण आम एक साल भी न ठहर सकता हो। इनके वंशके लोग राज्यके वड़े-वड़े पदोपर रहते आये थे, इसका उल्लेख इन्होंने अपने काव्यमें किया है। इनका परिवार शिवका अनन्य भक्त था, इसी से शिवको ही लेकर "श्रीकंठचरित" काव्यको लिखा, जिसमें २५ सर्ग है। अपभ्रंश-कालके अन्य कवियोंके दोष-गुण इसमें भी देखे जाते है।

श्रीकण्ठचरित

१. पहलेके कवि—

१ दुस्तर क्रमकी दुर्वोधताके सम्वन्धसे श्रोताओकी वुद्धिको जो विरक्त करते हैं, उन्हें नही वल्कि मैं उन्हें कवि यहा समझता हू, जिनकी वाणियाँ मधुकण छोडनेवाली किसी विस्तृत रस को अधिक विशाल परिपाकके उत्कर्षवाले पिकोकी तरह धारण करती हैं ।।५०।।

२ थोडेसे दूसरोंके श्लोकोंको प्रतिदिन रट कर,
जो चौपाई वनाते हैं, ऐसे वहुतेरे कवि हैं ।
किन्तु, अविच्छिन्न उठती समुद्र-लहरियोकी रीतियुक्त सुहृद,
किन्ही-किन्हीकी (ही) सुमनोहर वाणी विशद होती है ।।५१।।

३ प्रत्यक्ष वृहस्पति जैसे सुकविकी वाणीके दिव्य प्रसारमें
श्रोता और स्तुतिकर्ताकी वातोंमें कौन चर्म-चक्षु मनुष्य निपुण हो सकता है ? यहा वह शेषोंके फण कहा मिल सकते हैं, जो कि दो हजार आखोंसे, सुनकर फिर दो हजार जिह्वाओंसे इसकी प्रशसा करेंगे ।।५२।।

४ मेण्ठे स्वर्द्विरदाधिरोहिणि वश याते सुबन्धौ विधे ,
शान्ते हन्त च भारवौ विघटिते बाणे विषादस्पृश ।
वाग्देव्या विरमन्तु मन्तुविधुरा द्राग्दृष्टयश्चेष्टते,
शिष्ट कश्चन स प्रसादयति ता यद्वाणिसद्वाणिनी ॥५३॥

५. त्रयस्त्रिंशत्कोटयो दधतु विबुधा द्वेषकलुषा,
धिय नित्य काव्ये त्रिदशचरिते के वयममी ।
भुव खण्डेऽप्यस्मिन्वत स विधिनैकोऽपि विबुधो,
न सृष्टो य काव्य धृतविमलबुद्धि कलयते ॥५४॥
—सर्ग २

(२) कश्मीरदेशः—

६. कुबेरसख्या ककुभो ललाटिका यदेति कश्मीरपदाभिधेयताम्
सतीसरोनाम तदस्ति मण्डल विचित्रसर्गावभृथ प्रजापते
॥१॥

७ विभान्ति यत्रानघदैर्घ्यसौहृदादहयुभिर्यूपपरिग्रहैर्दिश ।
कले प्रवेशानवकाशसिद्धये स्वय मुखेष्वकुरितार्गला इव
॥२॥

८ विभाव्यते सान्द्रहिमार्द्रमूर्तिभि प्रवर्तिताट्टालकमुद्रमद्रिभि
मणिव्रजैश्वर्यजितेनसूत्रितप्रदक्षिणक्षीरसरस्वतीव यत् ॥३॥

९. स्थलाविदेवी कुरुविन्दशेखरप्रभाकुरै कुकुमगर्भकेसरै ।
करोति यस्य क्षितिरक्षतायुप जगत्रयस्त्रैणविशेषकक्रियाम्
॥६॥

४ मेंठ कविके देव-गजपर आरूढ होने और सुवन्धुके विधिके वश हो जाने,
हन्त भारविके शान्त होने और वाणके विषादयुक्त होने के वाद,
शोकयुक्त सरस्वती देवीकी दृष्टिया जरा रुकें, क्योकि,
कोई शिष्ट सरस्वती की सूक्ति उसे प्रसन्न करनेकी चेष्टा कर रहा है ।।५३।।

५ तीस करोड़ देवता (जव) देव-चरित्रकाव्यमें,
सदा द्वेपसे मलिन वुद्धि रखते हैं, फिर हम कौन हैं ?
इस भूखड (कश्मीर) में आ एक भी ऐसा पडित नही पैदा हुआ,
जो विमल वुद्धि हो काव्य रचता ।।५५।।

—सर्ग २

२. कश्मीर देश—

६ कुवेर (उत्तर) को दिशाका ललाटभूपण, जो कश्मीर नामको प्राप्त है, वहा सतीसर नामक मडल (है, जो) ब्रह्माकी अद्भुत सृष्टिका अवभृत (यज्ञस्नान) सा है ।।१।।

७ जहा निष्पाप दीर्घ-मित्रतासे अहयु यूपोके धारणसे दिशायें शोभा देती हैं। मानो कलियुगके प्रवेशके लिये अवकाश न देने के लिये मुखोमें स्वय अर्गल अकुरित हैं ।।२।।

८ घने हिमसे आर्द्र अगवाले पर्वतो द्वारा जो अट्टालिका प्राकार सा दीखता है। मणियोंके ऐश्वर्यको जीतनेवाला (जो) क्षीरसरस्वती द्वारा घिरी प्रदक्षिणावाला है ।।३।।

९ स्थलकी अधिष्टात्री पृथ्वी कुमकुमके गर्भयुक्त केसरवाले कुरुविन्दके शेखरकी प्रभारूपी अंकुरो द्वारा,
तीनो लोककी स्त्रियोको तिलक लगाती, चिरजीवी क्रियाको करती

१० वितस्तया यत्र लुठत्तटद्रुमप्रसूनसौहार्दभृतोऽलिसपद ।
पुरस्क्रियन्ते हठमज्जनोत्सवभ्रमत्सुरस्त्रीकबरीसनाभय
॥७॥

११ रसायनैर्यत्र पुरध्रिविभ्रमक्रियामयैरात्तनवीनयौवन ।
पतत्तुषारच्छलतस्तप क्षणे जहाति मूर्तं पलित रतिप्रिय
॥८॥

१२ विवृण्वती कौतुकतन्तुसतति भुव यदीयामधिगम्य शारदा ।
घनै रजोभिश्चरणारविन्दजै करोति सारस्वतदृक्प्रसादनम्
॥१०॥

१३ स यत्र भर्ग कपटेश्वराख्यया निरस्तलोकत्रयकल्मषक्लम ।
दधद्वपु काष्ठमय जले स्वपित्यनुद्गमायेव दृगग्नितेजस
॥१४॥

१४ बिभर्ति मार्तण्डवपुर्यदन्तिके पद प्रभुर्ध्वान्तिगदैकभेषजम् ।
उपेत्य पौरप्रमदामुखेन्दुभि स्वकान्तिपूरैर्मसृणीकृतातप
॥१५॥

१५ गुणैर्मयूखैरिव शुद्धिमत्तरैर्निकाममुत्तसितसर्वदिङ्मुखम् ।
धृतप्रसिद्धि प्रवराख्यया पुर विगाहते यस्य किरीटरत्नताम्
॥२१॥

१६ जयन्ति ते यत्र चकोरचक्षुपा पर विलासा रतितन्त्रसूरय ।
विवृण्वते मान्मथशौर्यकत्थनप्रयासु ये तथ्यतया समर्थनाम् ॥
॥२२॥

१७ पयोनिधिप्रेमभुवोर्महासरिद्वितस्तयोर्यत्र चकास्ति सगम ।
वन घनावर्तनिभेन योजयन्नवालवालैरिव धर्मगर्मुताम् ॥२४॥

१० जहा वितस्ता के पास झरते तटके वृक्षोंके फलोंकी मित्रता धारे भवरोंके झुड स्नानोत्सवके लिये भ्रमण करती देवागनाओकी चोटियोंके समान हैं ॥७॥

११ जहा रमणियोंके विलास-क्रियारूपी रसायनो द्वारा नवीन यौवन प्राप्त कर, कामदेव तपके समय गिरते हिमके व्याजसे साकार श्वेत केश छोडता है ॥८॥

१२ जिसकी भूमिमें आकर शारदा अपने कौतूहलरूपी धागोको सुलझाती, अपने चरणारविन्दोंसे उत्पन्न घने रजो द्वारा ज्ञान-दृष्टि प्रदान करती है ॥१०॥

१३ जहा तीनो लोककी पापरूपी थकावटको निरस्त किये कपटेश्वर नामक शकर, नेत्र-अग्निके तेजको न उठाने के लिये काष्ठमय शरीर धारण कर जलमें सोते हैं ॥१४॥

१४. निज कान्तिकी धाराओवाले, नागरिक, प्रमदाओके मुखकमलो द्वारा आतप को नरम किये, मार्तण्ड अज्ञान-रोगके एक मात्र औषध जिसके पास मूर्ति धारण करते हैं ॥१५॥

१५. अति शुद्ध किरणो जैसे गुणो द्वारा सारी दिशाओको अत्यन्त अलकृत करता, प्रवरपुर (श्रीनगर) नामसे प्रसिद्ध जिसका मुकुट-मणि है ॥२१॥

१६ जहा चकोर-नयनियोके काम-तन्त्रमें निपुण सुन्दर विलास विजयी हैं, जो तथ्यताके तौरपर कामदेवके शौर्यकी श्लाघाकी प्रथाओका समर्थन करते है ॥२२॥

१७ घने (जल) भंवरो सदृश, नये आलवालोंके साथ पुण्यलताको जोडते, जहा सागरके प्रेमकी भूमि (डल) और महानदी वितस्ताका सगम शोभा देता है ॥२४॥

१० वितस्तया यत्र लुठत्तटद्रुमप्रसूनसौहार्दभृ
पुरस्क्रियन्ते हठमज्जनोत्सवभ्रमत्सुरस्त्रं

११ रसायनैर्यत्र पुरध्रिविभ्रमक्रियामयैरात्त
पतत्तुपारच्छलतस्तप क्षणे जहाति मूर्तं

१२ विवृण्वती कौतुकतन्तुसतर्तिं भुव यदीया
घनै रजोभिश्चरणारविन्दजै करोति सा

१३ स यत्र भर्ग कपटेश्वराख्यया निरस्तलोव
दधद्वपु काष्ठमय जले स्वपित्यनुद्गमा

१४ विभर्ति मार्तण्डवपुर्यदन्तिके पद प्रभुध्व
उपेत्य पौरप्रमदामुखेन्दुभि स्वकान्तिपू

१५ गुणैर्मयूखैरिव शुद्धिमत्तरैर्निकाममुत्तरि
धृतप्रसिद्धि प्रवराख्यया पुर विगाहते यर

१६ जयन्ति ते यत्र चकोरचक्षुपा पर विलास
विवृण्वते मान्मथशौर्यकत्थनप्रथासु ये तर

१७ पयोनिधिप्रेमभुवोर्महासरिद्वितस्तयोर्यत्र
वन घनावर्तनिभेन योजयन्नवालवाले र

१८　केसर-धूलिकी पंक्तिवाला, वियोगिनियोंके वध-सम्बन्धी लाल वस्त्रोंको सा इधर-उधर फेंकता, वायु जहा तिरछी भौहोवालियोंके असमय मान करने के कीर्तिनगाडेको नही सहता ।।२६।।

१९　जाडोमें जहापर स्त्रियोके घरोमें बहुत छिद्रोवाली जलती कागडिया, शकरको जीतनेके लिये कामकी अग्निमय नेत्र-पंक्तियोसी सोहती है ।।२९।।

२०　तुरत अनेक शत्रुओके प्रताप-अग्निको बराबर पीकर वमन करता सा, जिसकी सुदरियोका गिरता अचल, किसको सह्य हो सकता था ।।४९।।

३. कवि का वंश—

२१　देवके शुभ अक्षरो जैसे मस्त भ्रमरोंसे युक्त पुष्पमालाको प्रदान कर, सुस्सल राजाने जिसे धर्माधिकारी पद प्रदान किया था ।।५०।।

२२　पृथिवीन्द्र सुस्सल द्वारा स्वय बडे सन्धि-विग्रह-मन्त्रीके पदपर स्थापित किये जाने पर, जिसने अपनी यशोमयी लिपि लिखकर लेखक-वर्गके मुहको मूद दिया ।।६२।।

२३　फिर उसका छोटा सहोदर मखक हुआ, जिस शिशुको सिर पर रखी गुरुकी चरण-धूलिया सरस्वतीके वशीकरण-चूर्णकी निपुणता को प्राप्त हुई ।।६३।।

२४　कलाओमें, शास्त्रमें, न्यायालयकर्ममें एक साथ पढकर विदग्ध हुआ देख, जिस पुत्रको सरस्वतीने विशेप वात्सल्यसा मानो बहुत मुखोसे चूमा ।।६५।।

२५　पीछे सुस्सलदेवके पुत्र राजा श्रीजयसिंह ने आदरके साथ (मखकको), दुष्ट प्राणियोपर रोप करते प्रजा-पालन-कारी पुरुष बनाया ।।६६।।

१८ इतस्तत कुकुमरेणुधोरणीवियोगिनीवध्यपटानिव क्षिपन् ।
न यत्र वायु सहते नतभ्रुवामकाण्डमानग्रहकीर्तिडिण्डिमम्
॥२६॥

१९ हिमागमे यत्र गृहेषु योषिता ज्वलद्बहुच्छिद्रसखी हसन्तिका ।
विभाति जेतु मदनेन शूलिन धृता ततिर्वह्निमयीव चक्षुषाम्
॥२९॥

२० अनुक्षणानेकनिपीतशात्रवप्रतापवह्निप्रतिवर्षणादिव ।
असह्यता कस्य न नाम निष्पतज्,
जगाम यद्वामविलोचनाचलम् ॥४९॥

(३) कविवंशः—

२१ वितीर्य पुष्पस्रजमुन्मदालिभि. पुरस्कृता दैवगुभाक्षरैरिव ।
असूत्रयद्यस्य स सुस्सलक्षमापतिर्वहत्तन्त्रपतित्वकल्पनम् ।
॥५०॥

२२ निवेशिते सुस्सलभूविडौजसा स्वय गरीयस्यपि संधिविग्रहे ।
विधाय चक्रे स्वयशोमयी लिपिं
स लेखवर्गस्य विमुद्रमाननम् ॥६२॥

२३ अथोदभूतस्य कनिष्ठसोदर स मखको यस्य शिशोरतन्वत ।
गिरस्युपोढा गुरुपादरेणव सरस्वतीकार्मणचूर्णनैपुणम्
॥६३॥

२४ अधीतवैदग्ध्यविशेपमक्रमात्कलासु शास्त्रे व्यवहारकर्मसु ।
विशेपवात्सल्यवतीव य सुत मुखैरचुम्बद्बहुभि सरस्वती
॥६५॥

२५ अनन्तर सुस्सलदेवनन्दनो यमादराच्छ्रीजयसिंहभूपति ।
व्यवात्प्रजापालनकार्यपूरुप रूपं वितन्वन्नविनीतजन्तुपु ।६६।

१८ केसर-धूलिकी पक्तिवाला, वियोगिनियोंके वध-सम्बन्धी लाल वस्त्रोको सा इधर-उधर फेंकता, वायु जहा तिरछी भौहोवालियोंके असमय मान करने के कीर्तिनगाडेको नही सहता ॥२६॥

१९ जाडोमें जहापर स्त्रियोके घरोमें बहुत छिद्रोवाली जलती कागडिया, शकरको जीतनेके लिये कामकी अग्निमय नेत्र-पक्तियोसी सोहती है ॥२९॥

२० तुरत अनेक शत्रुओके प्रताप-अग्निको बराबर पीकर वमन करता सा, जिसकी सुदरियोका गिरता अचल, किसको सह्य हो सकता था ॥४९॥

३. कवि का वंश—

२१ देवके शुभ अक्षरो जैसे मस्त भ्रमरोंसे युक्त पुष्पमालाको प्रदान कर, सुस्सल राजाने जिसे धर्माधिकारी पद प्रदान किया था ॥५०॥

२२ पृथिवीन्द्र सुस्सल द्वारा स्वय बडे सन्धि-विग्रह-मत्रीके पदपर स्थापित किये जाने पर, जिसने अपनी यशोमयी लिपि लिखकर लेखक-वर्गके मुहको मूद दिया ॥६२॥

२३ फिर उसका छोटा सहोदर मखक हुआ, जिस शिशुको सिर पर रक्खी गुरुकी चरण-धूलिया सरस्वतीके वशीकरण-चूर्णकी निपुणता को प्राप्त हुई ॥६३॥

२४ कलाओमें, शास्त्रमें, न्यायालयकर्ममें एक साथ पढकर विदग्ध हुआ देख, जिस पुत्रको सरस्वतीने विशेष वात्सल्यसा मानो बहुत मुखोंसे चूमा ॥६५॥

२५ पीछे सुस्सलदेवके पुत्र राजा श्रीजयसिंह ने आदरके साथ (मखकको), दुष्ट प्राणियोपर रोष करते प्रजा-पालन-कारी पुरुष बनाया ॥६६॥

२६ लीलामुक्तमनुष्यविग्रहमयग्रन्थिग्रह शार्ङ्गिणस्,
तीर्थे सोऽथ तिथौ वहत्ववनिभृत्पुत्रीपतेरभ्यगात् ।
वामार्धध्वजराजदण्डपतितत्रस्तापरार्धस्खलत्,
केलीककणदन्दशूकबहुलोत्फालावचूले वपु ॥७०॥

२७ इत्थ याते पितरि झगिति ब्रह्मभूय य आसीद्,
अन्तस्तेषा विषमविषमाहक्रृति शोकशकु ।
चेतोभित्तेरनुपधिबृहद्बन्धुरेको विवेको,
लब्धोद्रेको निभृतनिभृत्त त शनैरुच्चखान ॥७१॥

२८ एकादश्या व्रतनियमवानेकदा तत्कनीया-
नेकाकी सन् भवनवलभी मखक सोऽधिशिश्ये ।
वागीश्वर्या वदनवसते केवल वाहहस-
व्यजन्नाण्डस्थलपरिणमच्चन्द्रबिम्बच्छलेन ॥७२॥

२९ स्वप्ने तत्र ददर्श स स्वपितर देह वहन्त मिल-
त्तापिच्छच्छदकेतकच्छविवपुष्खण्डद्वयीकल्पितम् ।
एकार्धेन वमन्तमग्रचरणद्वारेण मन्दाकिनी-
मन्यार्धेन च बिभ्रत पटुरटद्वीचि जटावर्त्मनि ॥७३॥

३० द्वैराज्यकारि सुमनोनिवहस्य कर्ण-
पूरश्रिय किमपि वाङ्मयमध्यगोष्ठा ।
तत्कि पुनासि न सुत, क्षणदाकुटुम्ब-
लेखावचूलचटुयुक्तिभिरुक्तिदेवीम् ॥७५॥

३१ पितृभारतीविवृतपौष्टिकक्रियाक्रममाण-
भक्तिसहवासि मानस ।
इति स प्रबन्धयति मखको गिर
विरचय्य शकरचरित्रकिकरीम् ॥७८॥

—सर्ग ३

२६ फिर पार्वती-पतिकी तिथि (शिवरात्रि) को
विष्णुतीर्थमें मखक ने मनुष्य-शरीरके वधनसे अप्रयास मुक्त हो,
वाये अर्धांगमें ध्वज राज दड से गिरे सत्रस्त दाहिने अर्ध भागसे गिरते
क्रीडा-ककणरूपी सर्पको उठा शरीर प्राप्त किया ॥७०॥

२७ इस प्रकार पिताके तुरन्त ब्रह्मरूप हो जानेपर, जो उनके
भीतर अति विषम अहकार शोकका काटा था,
उसे अकारण महावन्धु विवेक ने चित्त-भित्तिसे
प्रकर्षता प्राप्त कर चुपके चुपके धीरेंसे उखाड दिया ॥७१॥

२८ एकादशीको एक वार व्रत-नियम रक्खे भाइयोमें सव से छोटा, मंखक
एकाकी मकानकी अटारीपर, सरस्वतीके मुख-वसतीके केवल
वाहन हसको, कपोलके पूर्ण चन्द्रमडलके वहाने व्यक्त करता
सो गया ॥७२॥

२९ वहा स्वप्नमें उसने अपने पिताको देखा-एक आधेसे शरीरको
मिलते तापिच्छ पत्र केवडेके शोभावाले दो खडोंसे निर्मित, अगले
चरणसे वमन करते दूसरे आधेसे जटा-मार्गमें लहरोवाली घरघराती
गगाको धारण करते ॥७३॥

३० दो राज्य करनेवाले कर्ण-भूपणयुक्त श्रीसे पुष्प-समूहसे कुछ
वाङमयको तुमने पढा है। सो हे पुत्र, क्यो नही तू शकरका महात्म्य
वर्णन करनेवाली युक्तियोसे वाणीदेवीको पवित्र करता ॥७५॥

३१ पिताकी वाणीसे खुली पौष्टिक क्रियाको वढाती भक्तिसे युक्त
मनवाला, मखक शकर-चरित्रकी दासी वाणी की रचना करता
है ॥७८॥

—सर्ग ३

(४) मदनाभियानम्--

३३ तद्वपष्युपहित विरराज क्रीडया कदलिपत्रतनुत्रम् ।
नीलिमाद्वयनयान्न कथंचित्तत्र यस्य घटते परभाग ॥१॥

३४ कामिसततिहृदन्तरवासक्रान्तरागलहरीसमरीति ।
पाटलापटलमभ्युदगच्छद्धीरपट्टघटनाधिललाटम् ॥२॥

३५ माधवग्रथितया कृतरोध गोधया विकचचम्पकमय्या ।
उज्झितेऽपि वलये कृतकेलिस्वर्णकङ्कणमिवास्त भुजाग्रम्
॥३॥

३६. चापमाप करपकरुहाक पाटल दलदशोककुलेन ।
सर्वत परिणताधररागे चुम्बनादिव जगज्जयलक्ष्म्या ॥४॥

३७ तद्धनुर्गुणलताग्रनिषण्णै क्षोभयत्रिजगदप्यशिलावै ।
साजनैर्विरहिणीनयनाम्भ सीकरैरिव करालितमासीत् ॥५॥

३८ सोऽस्त्रपुष्पनिवहैर्भृतगर्भ पृष्ठवर्त्मनि ररग निषग ।
यत्र सौरभहृतभ्रमरौघे मज्जति स्म शिथिल कचभार ॥६॥

३९. अन्वरोधि दधता गुरुरह सैहलेन रथता पवनेन ।
सौरभादुपनतैरलिचक्रैर्योऽग्रसगतरथाग इवासीत् ॥७॥

४० आतपत्रपदवीमधिशिश्ये मण्डलो रजनिभर्तुरखण्ड ॥
चित्रमध्वगसरोजमुखीना योन्तरातपविशेपमपुष्यत् ॥८॥

४१ आकुलन्कलकलाननवध्नन्नग्रत परभृतोऽजनि वन्दी ।
य पृषत्कसहकारपरागैरप्यनीयत पर परितोपम् ॥९॥

४. मदनका आक्रमण

३३ वह शरीरपर केलेके पत्तेका कवच रक्खे लीलाके साथ विराज रहा था। नीलिमाके दो नयनोके कारण वहा उसमे कुछ भी भेद नही होता था ॥१॥

३४, कामी जनोके हृदयके भीतरके वस्त्रमें लगी अनुरागकी लहरीके समान, पाटला पुष्पके समूहोका वीरो-पट्ट ललाटपर बधा था ॥२॥

३५ युद्धके समय क्रीडाके सुवर्ण-ककणवारी भुजकी हथेलीकी तरह ककण छोडनेपर भी, चैत्रकी गुथी फूले चम्पकोवाली प्रत्यचा द्वारा वह आच्छादित था ॥३॥

३६ फूले अशोकोसे हस्त-पद्मयुक्त लाल धनुपको पकडे, मानो जगत्-विजयरूपी लक्ष्मीके चुम्वनसे गहरा अधर-राग सर्वत्र (लगा) ॥४॥

३७ उस धनुषकी ज्या-लताकी नोकपर वैठे भ्रमर-वच्चो द्वारा तीनो लोकको भी शोभित करते विरहिणी के अजनयुक्त नेत्रोके अश्रु-कणो द्वारा (वह) मानो प्रकाशित हो रहा था ॥५॥

३८ अस्त्ररूपी पुष्पोंसे भरा तूणीर उसकी पीठपर सोह रहा था, जहां सुगधसे आकृष्ट भवरोमें (उसका) शिथिल केश डूब रहा था ॥६॥

३९ भारी वेग-धारी सिंहलकी ओरसे आये, (दखिना) वायुको किसने रोक दिया, सुगन्धके कारण आये भ्रमरो द्वारा जो आगे लगे चक्केसा था ॥७॥

४० रजनी-पति(चद्र) के पूर्ण मण्डलने छत्रका रूप धारण किया, जिसने वटोहियोकी कमलमुखियोकी अन्तर्ज्वालाको विचित्र तौरसे विशेप वढा दिया ॥८॥

४१ व्याकुल कलरव करती कोयलें आगे आगे वन्दीजन वनी, जो कि वाणरूपी आमोंके परागो से वहुत परितुष्ट थी ॥९॥

४२ आवहन् प्रविशदुद्धतमानन्यक्कृतिं युवतिहृद्भवनेषु ।
दृप्तता दधदधिप्रतिहार पचमोऽप्युपययौ प्रथमत्वम् ॥१०॥

४३ उन्नतस्य झगिति स्वयमग्र केतनस्य तिमिरमध्यशयिष्ट ।
वाहिनीर्विरहिणीक्षणवार्भिर्य. प्रपचयति वासधियेव ॥११॥

४४ कौतुकादिति जगत्त्रयलक्ष्मीमुद्यतो रतिपति परिणेतुम् ।
सननाह दयितार्पितनेत्रप्रान्तकान्तिपुनरुक्ततनुत्र ॥१२॥

(५) रतिवारणा—

४५ "प्रिय खण्डयितु वियोगिनी कतरस्तेऽयमियान्परिश्रम ?
अबलादलनात् क्व वाद्यते वद वीरव्रतकीर्तिडिण्डिम ॥१३॥

४६ स्वयमेव कथ प्रवर्तसे त्रिजगज्जेतुमपोढरकट ।
घटते मधुनेन्दुनाथवा न तदेकेन पदातिनापि ते ॥१४॥

४७ स निहत्य बभूव राघव स्त्रियमेकामपि दुर्यशोनिधि ।
तव नाथ कथ नु कीर्तन त्रिजगत्स्त्रैणबधात्प्रवर्त्स्यति ॥१५॥

४८ शमिनामथ धैर्यलुप्तये यतसे बिभ्रदाशुग धनु ।
अधिक वद किं त्वयेप्सित स्वशरीरव्ययतोऽपि सत्फलम् ॥१६

४९ तव दुर्मदता कियत्यहो हरनेत्राग्निशिखाकुरै शितै ।
घटनादधुनापि यस्य नो भुजकण्डूरुपशान्तिमश्नुते ॥१७॥

५० विजहीहि मुधा तपोधनानवजेतु स्मर चापचापलम् ।
पुरत पुनरप्यहं सहे नहि वैधव्यविपादविक्रियाम् ॥१८॥

४२ प्रवेश करते तीव्र मानके तिरस्कारको युवतियोके हृदय-भवनमें लाते, प्रतीहारोके दर्प धारण करने में पचम (राग) भी प्रथम हो गया ॥१०॥

४३ ऊचे ध्वजके अग्रभागपर तुरत स्वय तिमि (मत्स्य) लेट गई, जो (अपने) निवासके विचार मे विरहिणियोके नेत्र-जलकी नदियां वहाता है ॥११॥

४४ तीनो लोककी लक्ष्मीको व्याहनेके लिये उद्यत प्रियाके ऊपर डाली दृष्टिके कोनोकी कान्तिके समान कवचवाला कामदेव, कौतुक-पूर्वक सन्नद्ध हुआ ॥१२॥

५. रतिका रोकना—

४५ 'हे प्रिय, वियोगिनियोके दलन के लिये तेरा यह कौन सा प्रयास है? वतला, अवलाओके दलन करनेसे वीर व्रतवालोकी कीर्तिका कहा नगाडा वजता है ॥१३॥

४६ कवचवद्ध हो तीनो लोकको जीतनेके लिये स्वय ही तुम क्यो प्रस्थान करते हो? क्या वह एक वसतसे या चन्द्रमारूपी प्यादेसे नही हो सकता ॥१४॥

४७ राम एक ही स्त्रीको मारकर अपयशके निघान वने। हे नाथ, तीनो जगत्की स्त्रियोके वध करनेसे कैसे तुम्हारा यश होगा ॥१५॥

४८ यदि यतियोके धैर्यको लुप्त करनेके लिये धनुप-वाण-धारी हो प्रयत्न करते हो, तो अपने शरीरके नाशसे भी वताओ तुमने कौनसा अधिक अच्छा फल पाया ॥१६॥

४९ अहो तुम कितने दुर्मद है, जिसकी भुजाकी खुजलाहट शकरके नेत्र-अग्निकी ज्वालाके तीक्ष्ण अकुरोके ससर्गसे आज भी शान्त नही होती ॥१७॥

५० हे काम, तपस्वियोको जीतनेके लिये धनुपकी व्यर्थ चपलताको छोडो। पहले ही से वैवव्य (पाये) दु खके विकारको फिरसे मैं नही सह सकती ॥१८॥

५१ शमिषु त्यज तर्जनोद्यम सफलानुग्रहनिग्रहा हि ते।
ननु निश्चितनिष्फलश्रमो व्यवसायोऽयमनर्थसश्रय ॥१९॥

५२ त्रिजगद्विजये स्म सभृत ललना एव तवैकसाधनम्।
कतरेण पथाथ जेष्यसि प्रथम ता यदि हस्यनागस ॥२०॥

५३ भवतोज्झित एव विग्रह सुमनोमार्गणपूरणैषिणा।
तव नाथ, तथाप्यय कथ परबाधाय मुधैव दुर्ग्रह ॥२१॥

५४ अधुनाऽप्यनुभूयते त्वया स्मर शापात्फलमब्जजन्मन।
किमय क्रियते तदप्यहो बहुमन्वन्तरशापसग्रह ॥२२॥

५५ कुसुमैर्निहता कथ व्यथामुपयान्तीति वृथैव मन्यसे।
मणिमन्त्रपथातिवर्तिना विषमेषा हि पुरोऽमृतायते" ॥२३॥

५६ सनयै सभयैश्च विस्तरैर्वचसामित्यरुणत्स्मर रति।
स तु तत्करतोऽशुकाचल द्रुतमाकृष्य मदेन निर्ययौ ॥२४॥

५७ विलोचनाम्भ सरितो व्यनक्ति सा मुखेन मीनाकपथानु-
वन्धिनी।
ह्रदेषु यासा प्रतिविम्बिताश्चिर व्रजन्ति सख्यो जलमानुपी-
लिपिम् ॥२५॥

५८ भुजग, तस्या विरहापचारित प्रवर्धमानोऽभ्यधिक मधावपि।
त्वदाप्तिसकल्पचमत्क्रियौपधैर्निशीथिनीना श्वयथुर्वि-
लुप्यते ॥२६॥

५९ ससौरभग्वासहृतैर्मधुव्रतै स्मरोप्तहालाहलवीजवन्धुभि।
निपत्य तस्या पुरतोऽश्रुसारणीभृता हलोल्लेखस्जेव
जन्यते ॥२७॥

५१ यतियोकी तर्जनाका प्रयत्न छोडो, वे अनुग्रह और निग्रह करनेमें समर्थ होते हैं। तुम्हारा यह प्रयत्न निश्चय निष्फल-श्रम अनर्थकर है ॥१९॥

५२ तीनो जगत्के विजयमें लगे तेरे पास ललना एक ही साधन है। यदि पहले उन्ही निरपराधिनियोको मारता है, तो कौन उपायसे तू जीतेगा ॥२०॥

५३ विद्वानो (फूलो) के मार्गण (मागने या वास) के पूरनेके इच्छुक हो आपने विग्रह छोडा ही है। हे नाथ, तो भी दूसरेको व्यर्थ पीडित करनेके लिये यह दुराग्रह क्यो ॥२१॥

५४ हे काम, ब्रह्माके शापका फल अब भी तू भोग रहा है। तो भी हाय, दूसरे बहुतसे मुनियोके शापोको यह क्यो जमा कर रहा है ॥२२॥

५५ 'फूलोके मारे क्या दुखी होते हैं', यह तू वृथा ही सोचता है। मणि और मत्रकी पहुचके वाहर (तेरे) इन वाणोसे विप भी अच्छा है" ॥२३॥

५६ रतिने नययुक्त भययुक्त विस्तृत वचनोसे कामको रोका, किन्तु वह उसके हाथसे वस्त्रके छोरको खीचकर मदके साथ जल्दीसे निकल गया ॥२४॥

५७ रतिने कामदेवके पथका अनुगमन करनेवाली आसूकी नदियोको अपने मुखसे प्रकट किया। जिन (नदियो) के दहोमें प्रतिविम्बित सखिया चिर कालने जलमानुपियोकी लेखा वन रही है ॥२५॥

५८ हे लम्पट, रतिके विरह द्वारा अपचारित हुआ मधुमासमें अत्यधिक वढता, तुझे पानेके सकल्पकी चमत्कारिक औपधियो द्वारा रात्रियोका वढना रुकता है ॥२६॥

५९ सुगधित साससे आकृष्ट, कामके वोये हलाहल-वीजके प्रेमी भ्रमरो द्वारा सामने गिरकर रतिके आनूकी नहर धारण करनेवाली हलकी जुदाईकी पीडा सी पैदा हुई ॥२७॥

६० कुचस्थले सा विसकाण्डतन्तुभिर्विवृण्वती हारलतापरिग्रहम्।
व्यनक्ति लब्ध मदनादवध्यता धृतोपवीतामिव देहकन्द -
लीम् ॥२७॥

६१ अनल्पसकल्पवशेन मन्यते दिशस्त्वदाकारकृतावगूहना ।
ततश्च सा तासु मुहुर्विमुग्धधीर्विमुचतीर्ष्याकलुषे विलो-
चने ॥२९॥

६२ शशाककान्तोपलकुट्टिमेषु सा विभाति सक्रान्तवपु प्रति-
क्षपम् ।
रसातले कर्तुमिवोद्यता शशिच्छविच्छटासगभयेन मज्जनम्
॥३०॥

६३ वियोगवत्या शबले कुचस्थले सकज्जलप्रोच्छलदश्रुचक्रकै
कथचनोच्छ्वासधुते विभाव्यते, निवेश्यमानाम्बुजिनीदला-।
वलि ॥३१॥

६४ व्यनक्त्युपान्ते श्रवसोर्वलत्तनु सकज्जला सा नयनाम्बु-
पद्धतिम् ।
स्वका स्वसार रविजेन निम्नगा, पुरो विसृष्टामिव दूत्य-
सिद्धये ॥३२॥

६५ स्तनाग्ररम्भादलडम्बरेषु सा पतद्भिरात्ताजनमश्रुण कणै ।
यियासता दूरमनगशासनाल्लिखत्यसूना पथि पट्टकानिव
॥३३॥

६६ तत किमन्यद्दहनाधुनापि चेदपैपि चातुर्यवगवदै पदै ।
न जायते ते तदकीर्तिकल्मषप्ररोहकल्माषनिवेशन
यश ॥३४॥

६७ निपीय दूतीवदनात्तजन्मन क्षण श्रुतिभ्यामिव वाक्य
विप्रुष ।
जवाद्युवानो दधत पदात्पद ययु प्रियाणा नयनोच्चु-
लुम्प्यताम् ॥३५॥

६० केश-स्तनस्थानमें कमलततुओ द्वारा हार धारण करनेको प्रकट करती, रति मदनसे अवध्यता पानेका यज्ञोपवीत धारण करती देह-लताको प्रकट कर रही थी ।।२८।।

६१ वहुत सकल्पोके कारण दिशाओको तेरे आकारसे ढाकनेवाली मानती, और इसलिये उनमें वार-वार विमोहित, वह ईर्ष्यालु-नेत्रा हो नजर डालती थी ।।२९।।

६२ चन्द्रकान्त-पत्थरके चवूतरोपर अपने शरीरको प्रतिविम्वित करती प्रतिरात्रि शोभा देती, वह मानो चादनीकी छटाके ससर्गके भयसे रसातलमें डूवने के लिये तैयार थी ।।३०।।

६३ उस वियोगिनीके मलिन स्तन-स्थलपर कज्जलसहित गिरते आसुओ द्वारा, रक्खी हुई कमलिनियोके पत्रोकी पक्तिया सासके कपनसे किसी तरह जान पडती थी ।।३१।।

६४ छटपटाते शरीरवाली वह कज्जलयुक्त आसुओंके रास्तेको दोनो कानोके पास प्रकट कर रही थी। मानो यमने दूती के कामकेलिए अपनी वहिन जमुना नदीको वहा छोडा हो ।।३२।।

६५ वह स्तनके ऊपरके कदलीपत्रोके ऊपर कज्जलयुक्त गिरते आसुओंके कणो द्वारा, कामदेवकी आज्ञासे दूर जानेके इच्छुक प्राणोंके लिये मार्गपत्र लिख रही थी ।।३३।।

६६ फिर अव वहुत कहनेसे क्या, जल्दी करते पैरोंसे यदि तू जारहा है, तो उस अपयशरूपी पापके उत्पादक मलस्थानीय यश मुझे नही प्राप्त होगा ।।३४।।

६७ दूतिके मुखोंमे जन्म लेनेवाले (काम) के वाणी रूपी वूदोको मानो कानोंसे क्षण भर पीकर, वेगसे पैरके वाद पैर रखते तरुण (लोग) प्रियतमाओके नयनोके पान वने ।।३५।।

६८ अभ्रलिहोल्लोलकुले कुचेषु क्षिप्र क्षिपत्यक्षतमौक्तिकाली ।
बभूव वैमानिककामिनीनामयत्नतो हारलतानिवेश ॥३६॥

६९ इन्दौ सुदूरोच्छलदूर्मिमुक्तैर्मुक्ताफलैरात्तनवावगूहे ।
दक्षस्य कन्याश्चुकुपु प्रसगमाशक्य तस्येतरता रकाभि ॥३७॥

७० तुगोर्मिभगेषु सुरर्षिलोक प्रसगतोऽप्यग्रमवाप्तवत्सु ।
आचान्तये प्रोद्धृतसीधुशेषभयेन पस्पर्श न तत्पयासि ॥३८॥

७१ छन्नेऽम्बरेऽनर्गलवीचिचक्रादुत्थाय मीनैर्मकरैरनेकै ।
मौहूर्तिकाना प्रबभूव दृष्टिर्न राशिसचारविनिश्चयेपु ॥३९॥

७२ दूरोच्छलल्लोहितकाशुजालैरालम्बमाना नवमगरागम् ।
खे सौम्यकाव्यागिरसादयोऽपिते,
न कस्य भौमभ्रममेव चक्रु ॥४०॥

—सर्ग १२

(६) **कविगणः—**

७३ बाणोपम प्रबन्धो लकक, तव पत्रलब्धदूरगति ।
विध्यति कस्य न हृदय विविधसमज्यानिवेशेन ॥४६॥

७४ एक श्रीजयसिंहपार्थिवपति काश्मीरमीनध्वज,
तस्योपासितसधिविग्रहमलकार द्वितीय स्तुम ।
भूभार प्रथमेन पन्नगपते क्ष्मा रक्षता वारितो,
नीतोऽन्येन कृतार्थता प्रवचनैर्भाष्योपदेशश्रम ॥६१॥

७५. प्रक्रमैर्हठवक्रिम्णो मुरारिमनुधावत ।
श्रीराजशेखरगिरो नीवि यस्योचितसपदाम् ॥७४॥

६८ स्तनोपर अक्षतरूपी मोतियोको जल्दी फेंकता वह मेघचुम्बी चचल स्थलोपर वैमानिक कामिनियोके लिये विना प्रयत्नके हार-लता वन गया ।।३६।।

६९ सुदूर उछलती लहरोसे छोडी मोतियो द्वारा नव-आलिंगन-प्राप्त चन्द्र पर दूसरी ताराओके संसर्गकी आशका करती दक्षकी कन्यायें कुपित हुईं ।।३७।।

७० प्रसगसे अग्रता प्राप्त उत्तुग लहरियोमें देवर्षियोने, तलछट मदिराके भयसे आचमनके लिये उसके जलको नही छुआ ।।३८।।

७१ निरावाध लहरोसे उठ अनेक मीनो और मकरो द्वारा आकाशके ढंक जानेपर, ज्योतिषियोकी दृष्टि राशियोके सचारके निश्चयमें समर्थ नहीं हुई ।।३९।।

७२ दूरसे उछलते लाल किरण-जालो द्वारा नये अगरागको लगाये आकाशमें लटकते बुध-बृहस्पति-शुक्र आदि ने भी किसीको मगलका भ्रम नही पैदा किया ।।४०।।

—सर्ग १२

८. कविगण—

७३ हे लकक, वाणके समान तेरा ग्रथ(और)पत्र द्वारा प्राप्त(तेरी)दूर गति, विविध सभाओमें (अपनी) प्रतिष्ठा द्वारा किसके हृदयको नही वेधती ।।४६।।

७४ एक श्रीजयसिह राजारूपी कश्मीरके, कामदेवको दूसरे उनके सन्धि-विग्रह-मन्त्री अलंकारकी हम स्तुति करते हैं। प्रथम (जयसिह) ने पृथिवीकी रक्षा करते शेषके भूभारको हटाया। दूसरेने अपने प्रवचनो द्वारा महाभाष्यके उपदेशके परिश्रमको कृतार्थ किया ।।६१।।

७५ अपने प्रक्रमो द्वारा वक्रोक्तिमें मुरारिका अनुकरण करते श्री राजशेखरकी वाणी जिसकी वचन-सम्पदाकी (अक्षय) निधि है ।।७४।।

७६ श्रीमद्राजपरीसंधिविग्रहस्य नियोगिनम् ।
अथानर्च वचोभिस्त जल्हण विनयाञ्चितै ॥७५॥

७७ यो रजयति सद्वर्गरससचारणोज्ज्वलै ।
न कस्य स्वप्रबन्धोक्तिवर्णै पूर्णैरिवाननम् ॥७६॥

७८ पुनानमाभिजन्येन कृत्य पाण्डित्यपद्धते ।
निसर्गोत्तमसदिग्ध श्रीगोविन्दमविन्दत ॥७७॥

७९ श्रीमानलकदत्तोऽयमनल्प काव्यशिल्पिषु ।
स्वपरश्रमसर्वस्वन्यासंसभ्यममन्यत ॥७८॥

८० तमापचस्करे येन निजवाङ्मयदर्पण ।
बिल्हणप्रौढिसक्रान्तौ यथा योग्यत्वमग्रहीत् ॥७९॥

८१ तत्ततद्बहुकथाकेलिपरिश्रमनिरकुशम् ।
त प्रश्रयप्रयत्नेन कल्याण सममीमनत् ॥८०॥

८२ व्यनक्ति पृथु सामर्थ्यमाख्याया एव योऽक्षरै ।
जयेऽभिनवगुप्तस्य प्रकट प्रथमो गुरु ॥९४॥

८३ पाणिनीयातपत्रेण पवित्र यस्य तन्मुखम् ।
सग स्वप्नेऽप्यवाप्नोति नापशब्दरज कर्णै ॥१००॥

८४ स्वस्येश्वरस्य यो व्यजन्मण्डले मन्त्रसत्क्रियाम् ।
धत्ते सदागमप्रीतिं दैशिकाना धुरि स्थितम् ॥१०१॥

८५ अन्य स सुहलस्तेन ततोऽवद्यत पण्डित ।
दूतो गोविन्दचन्द्रस्य कान्यकुब्जस्य भूभुज ॥१०२॥

—सर्गः २५

७६ श्री राजसन्धि-विग्रहके अधिकारी उस जल्हणको विनययुक्त वाणियोसे पूजा।

७७ जो सत्पुरुषोके वर्गको में रसके सचारसे उज्ज्वल, अपने ग्रथ कथित पूर्ण वर्णोसे किसके मुखको नही रजित करता ॥७४॥

७८ उत्कृष्टतासे पाडित्य-पद्धतिके कार्यको पवित्र करते, स्वभावत ही असदिग्ध गोविन्दको श्री प्राप्त हुई ॥७७॥

७९ इस श्रीमान् अलकदत्तने काव्यशिल्पियोमें, अपने पराये श्रमकी सम्पत्तिकी भारी धरोहरको माना ॥७८॥

८० जिसने विल्हण जैसी प्रौढतामें पहुचनेमें, जिसके द्वारा योग्यता पाई ॥७८॥

८१ उन-उन वहुत सी कथाओकी क्रीडामें निरकुश उसे प्रश्रय दे प्रयत्न-पूर्वक कल्याणकर माना ॥८०॥

८२ नामके ही अक्षरो द्वारा जो (अपनी) वडी सामर्थ्यको प्रकट करता है, जो अभिनवगुप्तके विजयमें प्रथम गुरु प्रकट हुआ ॥९४॥

८३ पाणिनीय (व्याकरण) के छत्रसे जिसका वह मुख पवित्र है, स्वप्नमें भी (जो) अशुद्ध शब्दरूपी मलसे लिप्त नही होता ॥१००॥

८४ जो अपने स्वामीके मडलमें मत्र-नमस्कारको व्यक्त करते, आचार्योका धुरीण होते सदा आगमो में प्रेम रखता है ॥१०१॥

८५ वह दूसरा सुहल है, तिससे कान्यकुब्जके राजा गोविन्दचन्द्रके दूत पडित ने वदना की ॥१०२॥

४५. वाग्भट्ट (११४० ई०)

यह कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्रके समकालीन जैन कवि थे, जिन्होंने १५ सर्गोंमें तीर्थंकर नेमिनाथके सम्बन्धमें "नेमिनिर्माण काव्य" लिखा है। बौद्धोंने प्राकृतके आरभिक युगमें ही सस्कृत कवितासे नाता तोड़ लिया, केवल वैयाकरण चन्द्रगोमी अपवाद थे, जिन्होंने "लोकानद" नाटक लिखा, जो अब तिब्बती अनुवादमें ही मिलता है। बौद्धों और जैनों दोनोंने मस्कृत कविताकी ओरसे दृष्टि हटाकर दर्शनकी ओर ध्यान दिया, और कविताका क्षेत्र ब्राह्मणोंके लिए छोड दिया। वाग्भट्ट जैसे कुछ और जैन कवियोंने भी

नेमिनिर्वाणम्

वसन्तः—

१ अथ विकासिकुशेशयलोचनस्तमवलोकयितु कुतुकादिव।
उपययौ मधुरर्पितकामिनीस्मरवशो रवशोभितकोकिल ॥१७॥

२ पथिकमानसकाननपावकस्मरमिव प्रतिवोधयितु दधे।
यमदिशा शिशिरात्ययत स्फुरत्कमलयामलया मलया-
निल ॥१८॥

३ कुसुमचापनृपायुधहर्म्यताप्रवहति स्म भृग कतरद्वनम्।
मिथुनपानघटी सुभगीभवत्तरुतल रुतलम्पटषट्पदम् ॥१९॥

४. अपतुषारतया विमलत्विषा हिमकरेण सहेलमनीयत।
मलयशैलभुवा मरुताभितो विचरता च रताकुलता जगत्
॥२०॥

५ अपि तरुस्तिलक पुलक दलन्मुकुलराजिमिषादपुपत्तनौ।
मृगदृशीभिरवेक्षित एव तत्किमुदितो मुदितो न युवा जन

४५. वाग्भट्ट (११४० ई०)

कविताके क्षेत्रमें हाथ बढाया, लेकिन उन्हें सफलता नहीं हुई। बौद्धोने तो शायद इसी ख्यालसे इधर प्रयास भी नहीं किया। लेकिन, इन दोनो धर्मोंने लोकभाषा साहित्यको समृद्ध करनेकी कोशिश की। बौद्धोके काव्य अपभ्रंशमें मिलते हैं।

वाग्भट्टकी कृति शब्दाडम्बरपूर्ण है, जो उस समयके दरबारी पडितोका ही अनुरंजन कर सकती थी।

नेमिनिर्वाण

वसन्त-वर्णन—

१ तब कामिनियोको कामके वशमें करनेवाले कोकिलके कलरवसे शोभित, फुल्ल-कमललोचन मधुमास मानो उन्हें देखनेके कौतूहलसे, आया ।।१७।।

२. शिशिर ऋतुकी समाप्ति पर फूलते निर्मल कमलवाला दक्षिण दिशासे मलयानिल (आ), पथिकोंके मानस-दावानलरूपी कामको मानो जगाने लगा ।।१८।।

३ कामदेव नृपकी आयुधगारताको कौनसा वन अधिक धारण करता था। गुजनमे रत भ्रमरोवाला वृक्षतल-युगल मद्य-घटकी सुदर जोडी हो रहा था ।।१९।।

४ धुधके न होनेसे निर्मल-प्रकाश चन्द्रमाने मलयपर्वतके वायुके साथ विचरते जगत्को रागसे व्याकुल कर दिया ।।२०।।

५ तिलक-वृक्ष भी खिलती कलिके बहाने शरीरमें पुलकित हुआ, मृगनैनियो द्वारा देखे जाने पर क्यो न तरुण-जन मुदित होवें ।।२१।।

६ रुचिरचन्दनराजिमृगीदृशा
कमपि लास्यविधि दिशति स्म य ।
अनिलमुज्ज्वलसौरभमाकुला
स्तमलयो मलयोत्थितमन्वयु ॥२२॥

७. मृदुसमीरणघूर्णितविग्रह किशलयारुणकान्तिमतर्कयत् ।
मदिरयेव वधूमुखदत्तया युवकुल बकुल मदविह्वलम् ॥२३

८. वहति शैत्यममन्दगतिश्च खे विरहिदेहविदारणदारुण ।
कुसुमचापनृपस्य जगज्जये विधुरितो धुरि तोमरता ययौ
॥२४॥

९. अमरघोरणिदर्शिततोरणैर्मधुमहोत्सववेश्मतुला गतै ।
प्रणयिन प्रमदासु वितेनिरे कुरवकैरवकैतवमानसा ॥२५॥

१० निजकलत्रकुचाननमण्डलस्मृतिभवस्मरसज्वरमध्वगै ।
समभवन्सरित पथि दुस्तरा सरसकोकसुकोकनदश्रिय·
॥२६॥

११. कुसुमवाणसितातपवारणाद्विचिकिलात्सुरभित्वजयश्रियम् ।
किमपि नो कुसुमेषु समाददे विदलितादलितानमनोहृत·
॥२७॥

१२. गिरिपु कन्दरकिन्नरकामिनीजनितगीतरवश्रवणादभूत् ।
हरिणधोरणिरुन्मदमानसा धृतिमिता तमितायतलोचना
॥२८॥

१३. विशदचन्द्ररुच स्फुटचम्पकप्रकरचारुदिशो मधुवासरा ।
विदधुरुन्मनस न कमुत्कटस्मरवला रवलालसकोकिला:
॥२९॥

१४. मुहुरदस्तपतद्वलयावलि प्रवसता रमणेन तनुर्भृशम् ।
अभिललाप समागममगना न सह का सहकारविलोकिनी
॥३०॥

६ रुचिर चन्दन-पंक्तियोंमें स्थित मृगनैनियोको जो किसी नृत्यका ढग सिखलाता था, उज्ज्वल सुगधवाले फैले (उस) मलयानिलका आकुल भ्रमरोने अनुगमन किया ॥२२॥

७ मृदु वायु से हिलते शरीरवाले, नवपल्लवमे अरुण कान्तिवाले बकुल-वृक्षको मद्यसे विह्वल तरुणोने वधूके मुखसे मिली मदिरा जैसा समझा ॥२३॥

८ विरहियोके देहके विदारण करनेवाला दारुण वायु तीव्र गतिसे आकाशमें सर्दी ला रहा था, काम-नृपक दिग्विजयके लिये चन्द्र निश्चय तोमर बन गया था ॥२४॥

९ मधु-महोत्सवके गृह-समान अमरोकी पुरीमें दिखाये तोरणो द्वारा निश्चल मनसे प्रेमियोने कामिनियोपर कुरवक सजाये ॥२५॥

१० अपनी पत्नीके स्तन-मुखमडलके स्मरणसे उत्पन्न कामज्वर द्वारा पीड़ित बटोहियोंके लिये, रास्तेकी सरस कोयलें और सुन्दर कमलसे शोभित नदिया दुस्तर हो गईं ॥२६॥

११ विदलित भ्रमरोंके तानसे आकृष्ट मनवालोने पुष्पोमे, कामके भीगे श्वेत छत्रसे सुगधरूपी जयश्रीको नही लिया ॥२७॥

१२ पर्वत-कन्दराओकी किन्नर-कामिनियोके गाये गीतोके शब्दोंके सुननेसे, मुद्रित विस्तृत आखोवाली मृगनैनिया उन्मत्त मानस हो सीमित धैर्यवाली हुई ॥२८॥

१३ स्वच्छ चन्द्रकी चादनीयुक्त फूले चम्पकके समूहमे सुन्दर दिशाओवाले, शब्दकी लालसावाली कोयलो जैसे उत्कट काममेनावाले मधुमासके दिन किसे नही उत्सुक करते ॥२९॥

१४ प्रवासी कान्तके कारण दुबली, ऊपर उठानेसे गिरती वलयोवाली आमको देखती कौन सी अगना समागमके लिये विलाप नहीं करती थी ॥३०॥

१५, किशलयै. कुसुमैश्च निरन्तरै प्रतिदिगन्तमशोकमहीरुह ।
परिवृत सहसा कमलेक्षणाक्रमहतो महतोरणसनिभै
॥३१॥

१६ उपहृतै स्वयमग्रिमसल्लकीकिशलयप्रमुखैरनुनिन्यिरे।
अनुनदीतटमुत्कटमन्मथैर्द्विरदनैरदनैर्निजवल्लभा ॥३२॥

१७ शशिनि कौसुमतल्पतले जलेऽप्यनुपशान्तवपुर्दवथुव्यथा ।
अरतिमिष्टतमेन वधूश्चिर विरहिता रहितारपिकीरवे
॥३३॥

१८. अनुनयैर्न हृद प्रमदामद रहयति स्म मनागपि या पुरा।
स्वयमगामि मधौ प्रियसनिधाविह तया हतया मदनेषुभि
॥३४॥

१९ मकरकेतुकलत्रमुखश्रिय यदवहत्सरसीषु सरोरुहम्।
अगमयन्मणिकुण्डलता स्त्रियस्तदलस दलसगिशिलीमुखम्
॥३५॥

२०. मधुरकूजितसूचितवल्लभागममहाय मुहुर्बलिभोजिने।
करतलेन बलिर्ददतेतमामवलया वलयावलिवर्षिणा ॥३६॥

२१ मृदुसमीरचलालकसचया रणझुणन्मणिर्किकिणिका मुहु ।
ललितकेलिमसेवत दोलया रसमये समये च न का वधू ॥३७।

२२ वहलकिशुकवीथिकया मधुस्त्रिय इवाधरपल्लवलीलया ।
तनुरनीयत खेदमनिद्रिता रुचिरया चिरयातपतेर्भृशम् ।३८।

२३ अनुवन मधुरध्वनिकोकिलाकलकले सति कर्णपथातिथौ ।
न पथिक प्रमदा कतमस्तदा स्मरति ना रतिनायकनोदित
॥३९॥

२४. उदितनिर्मलमण्डलचन्द्रम कररसायनसेकगुणादिव ।
क्षितिरुह कुसुमैर्बभुरुद्गतै शबलिता वलितात्मतनूश्रिय
॥४०॥

१५ उत्सवके तोरणके रूमान प्रत्येक दिशामे घने नव-पल्लवो और कुसुमोसे ढका अशोकवृक्ष कमलनैनियोके पैरो से सहसा पीटा गया ।।३१।।

१६ नदीके तटपर अत्यधिक कामार्त गजोने अपनी प्रियाको, लाये सल्लकी-की फुनगीके नव-पत्रो आदि द्वारा स्वय मनाया ।।३२।।

१७ कुसुम शय्यावाले जलमें चन्द्रमाके होते भी तापकी पीडा शरीरमें अन-उपशात न रुकनेवाली कोयलके शब्दो से (वसत में) विरहिणी वधुओकी इष्टतमके साथ चिर विरति (की) ।।३३।।

१८ जो पहले अनुनयो द्वारा हृदयसे प्रमदाके मानको जरा भी नही हटी वह इस मधुमासमें मदन-वाणोसे निहता स्वय प्रियके पास आई ।।३४।।

१९ सरोवरमें जो कमल रतिके मुखकी शोभा धारण करता था, वह भ्रमरोयुक्त पत्रोके साथ अलस हो स्त्रियोका मणिकुडल वना ।।३५।।

२० मधुर कूजनसे प्रियके आगमनके मित्र, वलि-भोजी कौवेको, चूडियो-की पाती हिलते करतलोसे अवलाने वलि प्रदान किया ।।३६।।

२१ मृदु वायुके चलनेसे हिलते अलको तथा रुनझुन करती मणि-किंकि-णियोवाली किस तरुणीने इस रसमय समयमें क्षणभर झूले की ललित क्रीडाका सेवन नही किया ।।३७।।

२२ मधुकी स्त्रियोकी तरह वहुत टेसुओकी वीथियो जैसी अधर-पल्लवकी रुचिर लीलाके साथ, चिरसे गये पति वाली वालाने अनिद्रित रह शरीरमें वहुत खेद पाया ।।३८।।

२३ वनोमें मधुर ध्वनिवाले कोयलोके कलकलके कानोमे आनेपर कौन सा पथिक पुरुप काम द्वारा प्रेरित हो प्रमदाको नही याद करता ।।३९।।

२४ उगे निर्मल मडलयुक्त चन्द्रमाके किरणरूपी रसायनके सीचनके गुणसे मानो, (नारिया) वृक्षोंके फूले फूलो द्वारा निज शरीर को शोभामे सयुक्त दीखने लगी ।।४०।।

२५. नवकुसुम्भकरम्बितमम्बरं समदना दधतीव निरैक्ष्यत ।
विकचकिंशुकवीथिकयोल्लसत्तरुणयारुणया वनमेदिनी
॥४१॥

२६. मधुरसातिशयं दधदुच्चकैरकृत चूततरुर्मधुपावलिम् ।
सततमात्मनि निश्चलसौहृदां भ्रमवतीमवतीर्णनवध्वनिम्
॥४२॥

२७. कृतकुशेशयकोशविकाशया समदकोकिलयाथ मधुश्रिया ।
धवलपक्षविहगतते पतत्कुमुदया मुदयाप्यत चेतस ॥४३॥

२८. धवलधामनि निर्मलमूर्तिता स्वरविकस्वरता पिकयोषित ।
कृतवता मधुना विकृतिर्दधे प्रथयताथ यतात्मसु मन्मथम्
॥४४॥

२९. तुहिनतानवमातपतीव्रतां विदधत सुतरां मधुवासरा ।
विरहिणामतिदुःसहतां गता सुगुरवो गुरवोऽपचयं क्षपा
॥४५॥

—सर्ग ६

४६. मरुला (११५० ई०)

संस्कृतकी इन महिला कवयित्रीके बहुत थोड़े ही पद्य मिलते हैं। इनके देश-कालके बारेमें कुछ नहीं ज्ञात है। धनददेव नामके एक कविने सुसीला, विज्जा और मोरिकाके साथ मारुलाकी कविताकी भी बड़ी प्रशंसा

२५ आकाश नवीन कुसुमोंसे फूले वस्त्र वाला वनभूमि मदनयुक्त सी, फूले टेसूकी वीथियोंसे उल्लसित हो तेज ललाईसे शोभित थी ॥४१॥

२६ आमका वृक्ष मधुके रसमें अधिक लिप्त भ्रमर-पंक्तियोंको ऊंचे धारण करता, अपनेमें निश्चल मित्रतावालोंकी भ्रमयुक्त नई ध्वनिको निरन्तर धारण करता था ॥४२॥

२७ कमलके कोशोंको उत्फुल्ल करती, मस्त कोकिलवाली, मधुमासकी सफेद पक्षवाले विहगोंके गिरनेकी कुमुद वाली शोभाने चित्तको मोदसे भर दिया ॥४३॥

२८ चादनीमें कोयलोंकी निर्मल-मूर्तिता और स्वरकी मधुरताको (प्रकट कर), मधुमासने यतियोंमें काम बढा विकार पैदा किया ॥४४॥

२९ चैतके दिन सर्दीकी कमी और धूपकी तीव्रताको अत्यधिक करते, विरहियोंके लिये अति दुस्सह और लवी रातें अति भारी हुईं ॥४५॥

—सर्ग ६

४६. मल्ला (११५० ई०)

की हैं। शृंगार-प्रधान कविता बतलाती है, कि इनका सम्बन्ध किसी सामन्ती दरबारसे था।

विरह —

१. गोपायन्ती विरह-जनित दु खमग्रे गुरूणा,
किं त्व मुग्धे नयन-विसृत बाष्प-पूर रुणत्सि ?
नक्त नक्त नयन-सलिलैरेष आर्द्रीकृतस्ते,
शय्योपान्त कथयति दशामातपे शोष्यमाण[1] ॥१॥

२ कृशा केनासि त्व ? प्रकृतिरियमगस्य ननु मे,
मलाधूम्रा कस्माद्? गुरु-जन-गृहे पाचकतया ।
स्मरस्यस्मान् कच्चित् ? नहि नहीत्येवमगमत्,
स्मरोत्कम्प बाला मम हृदि निपत्य प्ररुदिता[2] ॥२।

४७. श्रीहर्ष (११६० ई०)

श्रीहर्ष अन्तिम कान्यकुब्ज नृपति जयचन्द (मृत्यु ११९३ ई०) के दरबारी पडित थे। वह अभिमान के साथ अपने बारेमें कहते हैं कि "मुझे कान्यकुब्जेश्वर दो पान और आसन देते हैं।" उनका यह भी दावा है, कि मैं समाधिमें ब्रह्म-साक्षात्कार करता हूँ। इनके पिताका नाम हीर और माताका नाम मामल्ल देवी था। श्रीहर्ष कविसे अधिक दार्शनिक थे। शाकर वेदान्तपर इनका लिखा ग्रथ "खडनखडखाद्य" अब भी सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। मेरे प्रतिभाशाली दिवगत तरुण मित्र विज्ञानमार्तण्डने एक बार एक बडे पडितके सामने वाद रोप दिया था, कि खडनखडखाद्य वेदान्तक नहीं बौद्ध-दर्शनका ग्रथ है। बेचारे पडितने जब आरम्भके रामकी महिमा-वाले मगलाचरणको उद्धृत किया, तो विज्ञानमार्तण्डने कहा--उसका

१. मन्दाक्रान्ता, २. शिखरिणी।

४३. मरुला

विरह—

१ गुरुओके सामने विरहसे उत्पन्न दु:खको छिपाती, हे मुग्धे, क्यो तू आखमें फैले आसुओकी धारको रोक रही है। रात-रातको अश्रुजलसे भीगा हुआ तेरे विस्तरेका यह धूपमें सूखता छोर तेरी दशाको वतला रहा है ॥१॥

२ क्यो तू दुवली है? यही मेरे अगकी प्रकृति है। मलिन धूमिल क्यो है? गुरुजनोके घरमें रसोईदारिन होनेसे। क्या हमें याद करती है? "नही-नही" यह कहकर वाला मेरी छातीपर गिरकर कामसे कापती रोने लगी ॥२॥

४७. श्रीहर्ष (११६० ई०)

ग्रथके विषयसे सम्वन्ध नहीं है। कविके तौरपर उन्हाने लुटिया डुवो दी है। हिन्दीके महाकवि केशवदाससे ही इनकी तुलना की जा सकती है। नैपधके थोड़े ही अश हैं, जिन्हें उत्कृष्ट कविता कहा जा सकता है। लेकिन, श्रीहर्ष भी क्या करते, जव कविताकी तुला उस समय दूसरी ही मानी जाती थी। "नैषधीयचरित" इनका महाकाव्य २२ सर्गो और २८३० श्लोकोमें समाप्त हुआ है। इनके दूसरे ग्रंथ थे (२) "स्थैर्यविचारणप्रकरण", (३) "विजय-प्रशस्ति", (४) "खडनखडखाद्य", (५) "गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति", (६) "अर्णववर्णन", (७) "छन्द-प्रशस्ति", (८) "शिवशक्तिसिद्धि", (९) "नवसाहसांकचरितचम्पू"। इन नौ ग्रथोमें सिर्फ दो ही मिलते हैं। "छन्द-प्रशस्ति" और "गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति" लिखनेसे मालूम होता है कि पंडितराज जगन्नाथकी तरह इन्हें भी कई दरवारोकी खाक छाननी पड़ी थी।

नैषध

(१) हंसविलापः—

१ पतत्रिणा तद्रुचिरेण वञ्चित,
श्रिय प्रयान्त्या प्रविहाय पल्वलम् ।
चलत्पदाम्भोरुहनूपरोपमा चुकूज कूले कलहसमण्डली
॥१२७॥

२ "न वासयोग्या वसुधेयमीदृशस्
त्वमग यस्या पतिरुज्झितस्थिति" ।
इति प्रहाय क्षितिमाश्रिता नभ
खगास्तमाचुक्रुशुरारवै खलु ॥१२८॥

३ न जातरूपच्छदजातरूपता द्विजस्य दृष्टेयमिति स्तुवन्मुहु ।
अवादि तेनाथ स मानसौकसा
जनाधिनाथ करपजर-स्पृशा ॥१२९॥

४ "धिगस्तु तृष्णातरल भवन्मन
समीक्ष्य पक्षान्मम हेम जन्मन ।
तवार्णवस्यैव तुषारसीकरै
र्भवेदमीभि कमलोदय कियान् ॥१३०॥

५ न केवल प्राणिवधो वधो मम
त्वदीक्षणाद्विश्वसितान्तरात्मन ।
विगर्हित धर्मधनैर्निबर्हण
विशिष्य विश्वासजुषा द्विषा-मपि ॥१३१॥

६ पदे पदे सन्ति भटा रणोद्भटा न तेषु हिंसारस एप पूर्यते ।
धिगीदृग ते नृपते कुविक्रम कृपाश्रये य कृपणे पतत्रिणि
॥१३२॥

नैषध

१. हंसका विलाप--

१ उस रुचिर पक्षीसे वंचित, डबरेको छोडकर प्रयाण करती हंसोकी मंडली लक्ष्मीके चल चरणकमलके नूपुरसी किनारेपर कूजन करने लगी ॥१२७॥

२ "मित्र, जिस पृथिवीका तू मर्यादा-छोडा पति है, वह बसने योग्य नही" यह कहते मानो पृथिवीको छोड आकाशमें आश्रय ले पक्षियोने कलरव करते निंदा की ॥१२८॥

३ "सोनेके पक्षसे सुन्दर ऐसे पक्षीको नही देखा"--बारबार प्रशंसा करते राजाको हाथके पिंजडेमें फंसे मानसवासी (हंस) ने तब कहा ॥१२९॥

४ "मेरे सुनहले पंखोको देखकर लोभसे चंचल हुये आपके मनको धिक्कार है। हिमके फुहारोंसे समुद्रकी तरह इनसे कितनी तेरी लक्ष्मी-वृद्धि होगी ॥१३०॥

५ तुझे देखकर हृदयमें विश्वास किये मेरा वध केवल प्राणिवध नही होगा, विश्वास किये शत्रुओके हनन को खास कर धर्मधनी लोग निंदते हैं ॥१३१॥

६ स्थान-स्थानमें रणमें उद्भट योद्धा हैं, उनसे (लडनेमें) तेरी यह हिंसाकी भूख पूरी नही होती? हे नृपति, कृपापात्र बेचारे पक्षीके विषयमें तेरे ऐसे बुरे साहसको धिक्कार ॥१३२॥

७　फलेन मूलेन च वारिभूरुहा मुनेरिवेत्थ मम यस्य वृत्तय ।
त्वयाद्य तस्मिन्नपि दण्डधारिणा कथ न पत्या धरणी हृणी-
यते" ॥१३३॥

८　इतीदृशैस्त विरचय्य बाङ्मयै सचित्रवैलक्ष्यकृप नृप खग ।
दयासमुद्रे स तदाशयेऽतिथीचकार कारुण्यरसापगा गिर
॥१३४॥

९　"मदेकपुत्रा जननी जरातुरा नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी ।
गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्,
अहो विधे त्वा करुणा रुणद्धि न ॥१३५॥

१०　मुहूर्तमात्र भवनिन्दया दया दयासखाय स्रवदश्रवो मम ।
निवृत्तिमेष्यन्ति पर दुरुत्तरस्त्वयैव मात सुतशोकसागर
॥१३६॥

११　मदर्थसदेशमृणालमन्थर प्रिय कियद्दूर इति त्वयोदिते ।
विलोकयन्त्या रुदतोऽथ पक्षिण
प्रिये स कीदृग्भविता तव क्षण ॥१३७॥

१२　कथ विधातर्मयि पाणिपकजा
त्तव प्रियाशैत्यमृदुत्व- शिल्पिन ।
वियोक्ष्यते वल्लभयेति निर्गता
लिपिर्ललाटतपनिष्ठुरा क्षरा ॥१३८॥

१३　अयि स्वयूथ्यैरशनिक्षतोपम ममाद्य वृत्तान्तमिम वतोदिता ।
मुखानि लोलाक्षि दिशामसशय
दशापि शून्यानि विलोकयिष्यसि ॥१३९॥

१४　ममैव शोकेन विदीर्णवक्षसा
त्वया विचित्राशि विपद्यते यदि ।
तदास्मि दैवेन हतोऽपि हा हत
स्फुट यतस्ते शिशव परासव ॥१४०॥

७. जिस मेरी जीविका मुनिकी तरह पृथिवी और जलमें उगनेवाले फल और मूलसे है, उस पर भी आज तूने दण्ड प्रहार किया है, ऐसे स्वामीसे पृथिवी क्यो ना लज्जित हो" ॥१३३॥

८ ऐसे वचनोसे पक्षीने राजाको विचित्र लज्जा और कृपायुक्त वनाकर, उसके दया-समुद्र हृदयमें कारुण्यरसकी नदी जैसी वाणी प्रवेशित की ॥१३४॥

९ "वुढापेसे पीडित माताका मैं ही एक पुत्र हू। वेचारी मेरी तरुणहसी नई प्रसूता है। उन दोनोका यही जन अवलम्व है। उसे मारते हा दैव, तुझे करुणा नही रोकती ॥१३५॥

१० मेरे दयालु सखा आसू वहा मुहूर्तभर ससारकी निन्दा करके चुप हो जायेंगे, परन्तु हे माता, पुत्र-सम्वन्धी शोक-सागर तो तेरे ही लिये दुस्तर होगा ॥१३६॥

११ 'मेरे लिये सन्देश और कमलनाल को लाता मन्द गति (से आता) प्रिय कितनी दूर है' तेरे यह कहनेपर रोते पक्षियोको देखकर हे प्रिये, तेरा वह क्षण कैसा होगा।१३७॥

१२ प्रिय-अशीतलता-मृदुताके रचयिता हे विधाता, तेरे हस्तकमलसे 'प्रिया से वियुक्त होगा' मेरे विपयमें ललाटको तपानेवाले निष्ठुर अक्षरोकी यह लिपि कैसे निकली ॥१३८॥

१३ अरी चचल नेत्रोवाली, वज्र-प्रहारने मेरे आजके इस वृत्तान्तको अपने सायियो द्वारा कहे जानेपर दसो दिशाओके मुखोको शून्य सा तू निश्चय देखेगी ॥१३९॥।

१४ हे विचित्रअगोवाली, यदि मेरे शोकसे छाती फटकर तू मरी, तो हाय दैवका मारा मैं फिर मारा गया, क्योकि (तव) अवश्य तेरे वच्चे निष्प्राण हो जायेंगे ॥१४०॥

१५ तवापि हाहा विरहात्क्षुधाकुला
कुलायकूलेषु विलुठ्य तेषु ते।
चिरेण लब्धा बहुभिर्मनोरथै
र्गता क्षणेनास्फुटितेक्षणा मम ॥१४१॥

१६. सुता, कमाहूय चिराय चुक्रतै
र्विधाय कम्प्राणि मुखानि क प्रति ।
कथासु शिष्यध्वमि"ति प्रमील्य स
स्नुतस्य सेकाद्बुबुधे नृपाश्रुण ॥१४२॥
—सर्ग १

(२) स्वयंवरसभा—

१७. प्रियाह्रियालम्ब्य विलम्बमाविला
विलासिन कुण्डिन-मण्डनायितम् ।
समाजमाजग्मुरथो रथोत्तमास्तमा समुद्रादपरे परे नृपा
॥१॥

१८. तत स भैम्या ववृते वृते नृपैर्
विनि श्वसद्भि सदसि स्वय वर ।
चिरागतैस्तर्कितत‌द्विरागितै
स्फुरद्भिरानन्दमहार्ण वैर्नवै ॥२॥

१९. चलत्पदस्तत्पदयन्त्रणेगितस्फुटाशयामासयति स्म राजके ।
'श्रम गता यानगतावपीयमि'
त्युदीर्य धुर्य कपटाज्जनी जन ॥३॥

२०. नृपानुपक्रम्य विभूषितासनान्सनातनी सा सुषुवे सरस्वती ।
विहारमारभ्य सरस्वती सुधासर स्वतीवार्द्रतनूरनूत्थिता
॥४॥

२१. "वृणीष्व वर्णेन सुवर्णकेतकीप्रसूनवर्णादृतुपर्णमादृतम् ।
निजामयोध्यामपि पावनीमय भवन्मयो ध्यायति नाव-
नीपति ॥५॥

१५ हा-हा तेरे भी न रहनेसे वे शिशु क्षुधाकुल हो घोसलेके किनारोसे लुढककर, वहुत लालसाओके वाद देरसे मिले, न खुली आखोवाले मेरे (वच्चे) गत हो जायेंगे ॥१४१॥

१६ हे वच्चो, किसको देर तक चुचकारते वुलाते किसके लिये मुखोको कम्पित करते, तुम कथा-शेप (मत) हो जाओगे" यह कह मूर्छित हो राजाके गिरे आसुओ से भीगकर वह हम होशमें आया ॥१४२॥

२. स्वयंवरकी सभा—

१७ तव प्रियतमाकी लज्जाके कारण विलम्व करके व्याकुल-हृदय, विलासी, उत्तम रथी, समुद्रके वारपारवाले राजा कुडित नगरके श्रेष्ठ समाजमें आये ॥१॥

१८ तव देरसे आये अपनेमें उसकी विरक्तिसे उसास लेते राजाओसे घिरी, उद्वेलित नवीन आनद-सागरोसी सभामे दमयन्तीने स्वयवर चुना ॥२॥

१९ पैदल ढोनेवालोने राजसमूहमें 'यानमें स्थित भी यह थक गई है" यह कहकर, इस वहानेसे मानो पदकी चापके सकेत से भाव स्पष्ट करनेवाली दमयती को (वहा) रख दिया ॥३॥

२० वह सुधा सरोवरोमें विहार करके अत्यत भीगे शरीर हो निकली सनातन सरस्वती, आसनको भूपित करनेवाले राजाओके पास जा वोली ॥४॥

२१ "रगमें सुनहले केतकीके फूलके रगवाल, जो उस आदरणीय ऋतुपर्णको चुनो, जो यह पृथिवीपति तेरेमें तन्मय अपनी पावनी अपोध्याको भी नही याद करता ॥५॥

२२ न पीश्यिता नाम चकोरजिह्वया कथचिदेतन्मुखचन्द्र-
चन्द्रिका ।
इमा किमाचामयसे न चक्षुषी
चिर चकोरस्य भवन्मुख स्पृशी ॥६॥

२३ अपा विहारे तव हारविभ्रम करोतु नीरे पृषदुत्करस्तरन् ।
कठोरपीनोच्चकुचद्वयीतटत्रुटत्तर सारवसावोर्मिज
॥७॥

२४ अखानि सिन्धु समपूरि गगया
कुले किलास्य प्रसभ स भन्त्स्यते ।
विलध्यते चास्य यश शतैरहो सता
महत्समुखधावि पौरुषम् ॥८॥

२५ एतद्यश क्षीरधिपूरगाहि पतत्यगाधे वचन कवीनाम् ।
एतद्गुणाना गणनाकपात
प्रत्यर्थिकीर्तौ खटिका क्षिणोति ॥९॥

२६ भास्वद्वशकरीरता दधदय वीर कथ कथ्यता,
अध्युष्टापि हि कोटिरस्य समरे रोमाणि सत्वाकुरा ।
नीत सयति बन्दिभि श्रुतिपथ यन्नामवर्णावली -
मन्त्र स्तम्भयति प्रतिक्षितिभृता दोस्तम्भकुम्भीनसान्
॥१०॥

२७ तादृग्दीर्घविरिंचिवासरविधौ जानामि यत्कर्तृता,
गर्क यत्प्रतिविम्बमम्बुधिपय पूरोदरै वाडव ।
व्योमव्यापिविपक्षराजकयशस्तारा पराभावुक,
कासामस्य न स प्रतापतपन पार गिरा गाहते ॥११॥

२८, द्वेष्याकीर्तिकलिन्दशैलसुतया नद्यास्य यद्दोर्द्वयी
कीर्तिश्रेणिमयी समागममगाद् गगा रणप्रागणे ।
तत्तस्मिन्विनिमज्ज्य वाहुजभटैरारम्भि रम्भापरी-
रम्भानन्दनिकेतनन्दनवनक्रीडादराडम्वर" ॥१२॥

२२ चाहे इसके मुखचन्द्रकी चादनीको चकोर सी (अपनी) जिह्वाद्वारा न पियो, पर चिरसे तुम्हारे मुखपर लगी (इसकी) चकोर सी दोनो आखोको क्यो न पिलाओ? ।।६।।

२३ जलविहारमें पानीपर तिरता शब्द करता सरयूकी लहरोसे उत्पन्न (तेरे) कठोर स्थूल उच्च स्तनोके पास अधिक टूटता, विदुसमूह तुम्हारी हार शोभा वनै ।।७।।

२४. इसके कुलमें समुद्र खोदा जा गगा द्वारा भरा (आगे) गया, वलपूर्वक वाधा जायेगा, और इसकी सैकडो कीर्तियोसे लघित होगा। अहो सत्पुरुषोका पौरुष वडोके आगे आगे दौडता है।।८।।

२५ इसके यशरूपी क्षीरसागरके प्रवाहमें अवगाहन करनेवाले कवियोके वचन अथाहमें पड जाते हैं। इसके गुणोके गिननेके अकका लिखना दुश्मनोके यशोको घटाता है।।९।।

२६ सूर्यवशी अकुरको धारण करते इस वीरके वारेमें क्या कहा जाये, इसके करोडो रोम प्रसिद्ध युद्धमें वीरताके अकुर हैं।
सग्राममें वन्दियोसे उच्चारित जिसके नामाक्षरोकी पक्तिका मन्त्र, सुने जानेपर शत्रु-राजाओके भुजस्तम्भ रूपी सर्पोका स्तम्भन कर देता है।।१०।।

२७ वैसे लम्वे व्रह्मदिनके निर्माणमें जिसके कर्तृत्वको मै जानती शका करती हू, कि इसके प्रतिविम्वके सागर-जलके प्रवाहके उदरमें वडवानल है। शत्रु-राजाओके आकाशव्यापी यशरूपी ताराओका (यह) तिरस्कारक हैं, इसका ऐसा प्रताप-सूर्य किनको वचनातीत न होगा।।११।।

२८ इसकी दोनो भुजाओंके कीर्ति-समूहोकी गंगाने जो रणक्षेत्रमें, शत्रुके अयशरूपी कलिन्द-पर्वतकन्या (जमुना) के साथ सगम किया। उसमे डुवकी लगा क्षत्रिय योद्धाओने रम्भाके आलिगनके आनन्द-भवनवाले नन्दनवनकी क्रीडाकी मुहव्वतका आडम्वर शुरू किया" ।।१२।।

२९ इति श्रुतिस्वादिततद्गुणस्तुति
सरस्वतीवाङमयविस्मयोत्थया ।
शिरस्तिर कम्पनयैव भीमजा न त मनोरन्वयमन्वमन्यत
॥१३॥

३०. युवान्तर सा वचसामधीश्वरा
स्वरामृतन्यक्कृतमत्तकोकिला ।
शशास ससक्तकरैव तद्दिशा
निशापतिज्ञातिमुखीमिमा प्रति ॥१४॥

३१. "न पाण्ड्यभूमण्डनमैणलोचने
विलोचनेनापि नृप पिपाससि ।
शशिप्रकाशाननमेनमीक्षितु तरगयापागदिशा दृशोस्त्विष
॥१५॥

३२. भुवि भ्रमित्वानवलम्बमम्बरे विहर्तुमभ्यासपरम्परापरा ।
अहो महावगमम् समाश्रिता
सकौतुक नृत्यति कीर्तिनर्तकी ॥१६॥"

३३. इतो भिया भूपतिभिर्वन
वनादटद्भिरुच्चैरटवीत्वमीयुषी ।
निजापि सा वापि चिरात्पुन
पुरी पुन स्वमध्यासि विलासमन्दिरम् ॥१७॥

३४. आसीदासीमभूमीवलयसलयजालेपनेपथ्यकीर्ति ,
सप्ताकूपारपारीसदनजनघनोद्गीतचापप्रताप ।
वीरादस्मात्पर क पदयुगयुगपत्पातिभूपातिभूयश्,
चूडारत्नोडुपत्नीकरपरिचरणामन्दनन्दन्नखेन्दु ॥१८॥

३५. भगाकीर्तिमपीमलीमसतमप्रत्यर्थिसेनाभट -
श्रेणीतिन्दुककाननेषु विलसत्यस्य प्रतापानल ।
तस्मादुत्पतिता स्फुरन्ति जगदुत्सगे स्फुलिंगा स्फुट,
भालोद्भूतभवाक्षिभानुहुतभृग्जम्भारिदम्भोलय ॥१९॥

२९. इस प्रकार **सरस्वतीके** वचनसे विस्मय उत्पादनके साथ उसके गुणोकी प्रशसाको कानोंसे अस्वादित करनेवाली **दमयन्ती** उस **मनु**-वशजको सिरके तिरछे कपन द्वारा अस्वीकार किया ।।१३।।

३० अपनी स्वर-सुधासे मत्त कोयलको तिरस्कार करती वाणियोकी स्वामिनीने इधर हाथ कर इस चद्रमुखीके सामने दूसरे युवाकी प्रशसा की ।।१४।।

३१ "हे हरिणाक्षी, **पाड्य** देशके मडन इस राजाको नेत्रोंसे भी क्यो नही पान करना चाहती ? इस चन्द्र-प्रकाशसे मुखवालेको देखनेके लिये अपने नेत्रोके प्रकाशको तरगित कर ।।१५।।

३२ अहो ! पृथिवीपर घूमकर आकाशमें निरालम्ब विहार करनेके अभ्यासकी परपरामें उत्तम कीर्ति-नर्तकी, इस महाकुलीनके आश्रित हो खुशीके साथ नाचती है ।।१६।।

३३ इसके भयसे वन-वन भटकते भूपति लोग जगलवनी अपनी नगरी में देरसे फिर कर अपने विलास-मदिरमे वसे ।।१७।।

३४ भूमण्डलके छोर तक चन्दन-लेपके भूपण जैसी कीर्तिवाले, सात समुद्र पारके घरवाले जनो द्वारा गाया जाते अपने धनुपके प्रतापयुक्त, इस वीरसे दूसरा कौन है, जिसके चरण-युगलमे एक साथ गिरनेयुक्त राजाओंके वहुत से चूडारत्नरूपी नक्षत्रोकी किरणोकी सेवासे नख-चन्द्र अधिक हर्पित हो ।।१८।।

३५ पराजयके अपयशरूपी स्याहीमे अत्यन्त मलिन शत्रुओकी सेनाके योद्धाओकी पक्तिरूपी तिन्दुकके वनोमें इसकी प्रताप-अग्नि विलास करती है। उनमे उडती शकरके ललाटकी आखकी सूर्य-अग्नि-इन्द्र-वज्र सी ज्वालायें ससारकी गोदमें साफ चमक रही है ।।१९।।

३६ एतद्दन्तिवलैर्विलोक्य निखिलामालिगितागी भुव,
सग्रामागणसीम्नि जगमगिरिस्तोमभ्रमाधायिभि ।
पृथ्वीन्द्र पृथुरेतदुग्रसमरप्रेक्षोपनम्रामर -
श्रेणीमध्यचर पुन क्षितिधरक्षेपाय धत्ते धियम् ।।२०।।

३७. शशस दासीगितविद्विदर्भजा
"मितो ननु स्वामिनि पश्य कौतुकम् ।
यदेष सौधाग्रनटे पटाञ्चले चलेऽपि काकस्य पदार्पणग्रह"
।।२१।।

३८. ततस्तदप्रस्तुतभाषितोत्थितै
सदस्तदश्वेति हसै सद सदाम् ।
स्फुटाजनि म्लानिरतोऽस्य भूपते
सिते हि जायेत शिते सुलक्ष्यता" ।।२२।।

३९. ततो नु देव्या जगदे महेन्द्रभूपुरदर सा जगदेकवन्द्यया ।
तदार्जवावर्जिततर्जनीकया जनी कयाचित्परचित्स्वरूपया
।।२३।।

४०. "स्वयवरोद्वाहमहे वृणीष्व हे महेन्द्रशैलस्य महेन्द्रमागतम् ।
कलिगजाना स्वकुचद्वयश्रिया
कलि गजाना शृणु तत्र कुम्भयो ।।२४।।

४१. "अय किलायात" इतीरिपौरवाग्-
भयादयादस्य रिपुर्वृथा वनम् ।
श्रुतास्तदुत्स्वापगिरस्तदक्षरा
पठद्भिरत्रासि शुकैर्वनेऽपि स ।।२५।।

४२ इतस्त्रसद्विद्रुतभूभृदुज्झिता प्रियाथ दृष्टा वनमानवीजनै ।
शशस पृष्टाद्भुतमात्मदेशज
"शशित्विप शीतलशीलता किल" ।।२६।।

४३ इतोऽपि कि वीरयसे न कुर्वतो नृपान्वनुर्वाणगुणैर्वशवदान् ।
गुणेन शुद्धेन विधाय निर्भर तमेनमुर्वी वलयोर्वशी वशम्
।।२७।।

३६ युद्धक्षेत्रकी सीमामें जगम पर्वतोका भ्रम पैदा करनेवाले,
इसके गजोकी सेनाओसे सारी पृथिवीको ढँका देखकर,
इसके उग्र समरके देखनेके लिये झुके देवताओकी पक्तिके मध्यमें हो,
राजा **पृथु** फिर पर्वतको फेंकनेकी सोचते थे" ।।२०।।

३७ सकेत समझनेवाली दासीने **दमयंती**से कहा—"स्वामिनी, जरा इधर तमाशा देखें—यह महलके शिखरपर नाचते चचल ध्वजपर कौवा पैर रखनेकी कोशिश कर रहा है ।।२१।।

३८ तब उस अप्रासगिक कथनसे उत्पन्न सभासदोकी हसीसे वह सभा उज्ज्वल हो गई। इससे इस राजा पर स्पष्ट मलिनता छा गई—सफेद पर काला अच्छी तरह प्रकाशित होता है (ना) ।।२२।।

३९ इसके बाद जगत्की एक मात्र वदनीया परम-चेतन-स्वरूपा, देवी (सरस्वती) ने अपनी ऋजुतासे तर्जनी को खीच **दमयती से महेन्द्र** के राजा का बखान किया।।२३।।

४० "हे तुम, स्वयवर-व्याहके उत्सवमे आये **महेन्द्रगिरि**के महाराजको चुनो। वहा **कलिग**-कन्याओके अपने दो स्तनोकी शोभाके साथ गजोंके कुम्भोकी होडको सुनो।।२४।।

४१ "यह आ गया" इस प्रेरक नागरिक-वचनके भयसे इसका शत्रु व्ययं ही वनमें भाग गया। फिर वनमें भी स्वप्नमे उसके अक्षरोके वचनको तोतोंसे पढे जाते सुन वह भयभीत हो गया।।२५।।

४२ इस तरह भीत हो भागे राजाकी छोडी प्रियाने देखकर वन्य स्त्रियो द्वारा अपने देशकी अद्भुत वात पूछनेपर कहा "चद्रमाकी किरणें (वहा) शीतल स्वभाव की हो गई हैं" ।।२६।।

४३ धनुष, वाण और गुणो द्वारा राजाओको वशवद करते इसे भी शुद्ध गुणसे अधीन कर इसे भूमण्डलकी **उर्वशी**के अधीन कर क्या वीर नही बनोगी।।२७।।

४४ एतद्भीतारिनारी गिरिबिलविगलद्वासरा नि सरन्ती,
स्वक्रीडाहसमोहग्रहिलशिशुभृशप्रार्थितोन्निद्रचन्द्रा ।
आक्रन्दद्भूरि यत्तन्नयनजलमिलच्चन्द्रहसानुबिम्ब -
प्रत्यासत्तिप्रहृष्यत्तनयविहसितैराश्वसीन्न्यश्वसीच्च ।।२८।।

४५ अस्मिन्दिग्विजयोद्यते 'पतिरय मे स्ता'दिति ध्यायिनी
कम्प सात्विकभावमचति रिपुक्षोणीन्द्रदारा धरा ।
अस्यैवाभिमुख निपत्य समरे यास्यद्भिरूर्ध्वं निज
पन्था भास्वति दृश्यते बिलमय प्रत्यर्थिभि पार्थिवै ।।२९।।

४६ विद्राणे रणचत्वरादरिगणे त्रस्ते समस्ते पुन ,
कोपात्कोऽपि निवर्तते यदि भट कीर्त्या जगत्युद्भट ।
आगच्छन्नपि समुख विमुखतामेवाधिगच्छत्यसौ,
द्रागेतच्छुरिकारयेण ठणिति च्छिन्नापसर्पच्छिरा " ।।३०।।

४७ ततस्तदुर्वीन्द्रगुणाद्भुतादिवस्ववक्त्रपद्मेऽगुलिनालदायिनी।
विधीयतामाननमुद्रेणेति सा
जगाद वैदग्ध्यमयेगितैव ताम् ।।३१।।

४८ अनन्तर तामवदन्नृपान्तर तदध्वदृक्तारतरगरगणा ।
तृणीभवत्पुष्पशर सरस्वती स्वतीव्रतेज परिभूतभूतलम्
।।३२।।

४९. "तदेव किं न क्रियते नु का क्षतिर्यदेष तद्दूतमुखेन काक्षति
प्रसीद काचीमयमाच्छिनत्तु ते
प्रसह्य काचीपुरभूपुरदर ।।३३।।

५०. मयि स्थितिर्नम्रतयैव लभ्यते दिगेव तु स्तव्वतया विलघ्यते
इतीव चाप दधदाशुग
क्षिपन्नय नय सम्यगुपादिशद्द्विषाम् ।।३४।।

४४ इससे भयभीत गिरि-गुहामें दिन बिताकर निकलती
खिलौने हसके मोह के लिये हठीले अपने वच्चे द्वारा उगे चद्रके लेनेके लिये वहुत प्रार्थिता, शत्रुनारी वहुत रोई, जिससे उसके नयनजलसे लिप्त चन्द्र और हसके प्रतिविंव की समीपतासे खुश हुये पुत्रकी हसीसे उसने धीरज धरा और उसास लिया ॥२८॥

४५ इसके दिग्विजयके लिये उद्यत होनेपर रिपु-राजाकी स्त्री पृथिवी
'यह मेरा पति होवे' यह सोचती सात्विक भावसे कपित हुई।
इसके सामने समर में गिरकर ऊपर जानेवाले शत्रुराजा
सूर्यमें छिद्रके रूपमें अपना (गमन-) मार्ग देखते हैं ॥२९॥

४६ युद्धक्षेत्रसे सारे रिपुओंके भगे और भयभीत होनेपर,
यदि अपनी कीर्तिसे समार में उद्भट कोई योद्धा कोप करके लौटता है,
तो सन्मुख आनेपर भी उसे विमुख ही होना पडता है, (क्योकि) जल्दी ही इसके छुरेके वेगसे उसका सिर ठन-ठन करता काट फेंका जाता है" ॥३०॥

४७ तव उस पृथिवीपालके अद्भुत गुणोसे ही अपने मुखकमलमें अगुली रूपी नालको देती, दमयती चतुरतापूर्ण सकेतमे मानो सरस्वतीसे वोली "मुख वन्द करो" ॥३१॥

४८ फिर सरस्वती ने उनकी ओर आखकी पुतलीके तरगोको चलाती दमयतीसे कामदेवको तृण सा वनानेवाले, अपने तीव्र प्रतापसे भूतलको जीतनेवाले दूसरे राजाके वारेमें कहा ॥३२॥

४९ "क्या हानि, वही क्यों न करो, जो कि यह दूत द्वारा चाहता है।
कृपया यह काचीपुरीका राजा वलपूर्वक तेरी कर्धनीको तोडे ॥३३॥

५० "मेरे प्रति नम्रताने ही रहना (ठीक) होगा, धृष्टता करनेमे दिशाओ में भागना पडेगा' यही कहते मानो धनुष पकड वाण फेंकते इसने दुश्मनो को उचित नीतिका उपदेश किया ॥३४॥

५१. अद समित्समुखवीरयौवतत्रुटद्भुजाकम्बुमृणालहारिणी।
द्विषद्गणस्त्रैणदृगम्बुनिर्झरे यशोमरालावलिरस्य खेलति
॥३५॥

५२. सिन्दूरद्युतिमुग्धमूर्धनि धृतस्कन्धावधिश्यामिके,
व्योमान्तस्पृशि सिन्धुरेऽस्य समरारम्भोद्धुरे धावति।
जानीमो नु यदि प्रदोषतिमिरव्यामिश्रसध्याधिये-
वास्त यान्ति समस्तबाहुजभुजातेज सहस्राशव ॥३६॥

५३ हित्वा दैत्यरिपोरुर स्वभवन शून्यत्वदोपस्फुटा -
सीदन्मर्कटकीटकृत्रिमसितच्छत्रीभवत्कौस्तुभम्।
उज्झित्वा निजसद्मपद्म पिहि तद्युक्तावनद्धीकृत,
लूतातन्तुभिरन्तरद्य भुजयो श्रीरस्य विश्राम्यति ॥३७॥

५४ सिन्धोर्जैत्रमय पवित्रमसृजत्तत्कीर्तिपूर्तादिभुत,
यत्र स्नान्ति जगन्ति सन्ति कवय के वा न वाचयमा।
यद्बिन्दुश्रियमिन्दुरचति जल चाविश्य दृश्येतरो,
यस्यासौ जलदेवतास्फटिकभूर्जागर्ति योगेश्वर ॥३८॥

५५ अन्त सतोषबाष्पै स्थगयति न दृशस्ताभिराकर्णयिष्यन्
अगे नानस्तिरोमा रचयति पुलकश्रेणिमानन्दकन्दाम्।
न क्षोणीभगभीरु कलयति च शिर कम्पन तन्न विद्म,
शृण्वन्नेतस्य कीर्ति कथमुरगपति प्रीतिमाविष्करोति।३९।

५६ आचूडाग्रममज्जय न्नति पटुर्यच्छल्यदण्डानय,
सरम्भे रिपुराजकुजरघटाकुम्भस्थलेषु स्थिरान्।
सा सेवास्य पृथु प्रसीदति तया नास्मै कुतस्त्वत्कुच -
स्पर्धागिरिधिपु तेपु तान्धृतवते दण्डान्प्रदण्डानपि" ॥४०॥

—सर्ग १२

५१ मग्राममें सामने आये वीरोकी युवतियोकी वाहकी टूटती चूडी-रूपी मृणालको हरनेवाली इसकी यगरूपी हसावली गत्रु-स्त्रियोके नेत्र-अश्रुके निर्झरमें खेलती हैं ॥३५॥

५२ मिन्दूरके प्रकाशसे सुन्दर मिरवाले, कन्धे तक कालिमा धारण किये, आकाशके छोरको छूनेवाले, लडनेमें चतुर इसके गजोके दौडते समय हम जानते हैं, कि गोधूलिके अन्धकारमे मिश्रित सध्या-रागके ख्याल से ही, सारे क्षत्रियोकी भुजाओंके तेजरूपी सूर्य अस्त हो जाते हैं ॥३६॥

५३ शून्यतादोपसे मकडी कीडे द्वारा निर्मित स्पष्ट स्थिर श्वेत छत्रसे कौस्तुभ सहित विष्णुकी छातीरूपी मकडीके तन्तुओने माथ वधे हुये अपने निज घररूपी पद्मको भी छोडकर लक्ष्मी, आज इसकी भुजाओंके भीतर विश्राम करती है ॥३७॥

५४ इसने सागरको जीतनेवाले अपने अद्‌भुत पवित्र-कीर्ति-सरोवरको बनाया, जहा नहाते उज्ज्वल होते कौन मे कवि वाणीपर सयम करनेवाले नही होते। द्रष्टव्यने परे चन्द्रमा भी जलमें प्रवेश कर जिसकी विन्दुकी शोभा पाता हैं, जिसका स्फटिकमय जलदेवता नागेश्वर जागता है ॥३८॥

५५ इसकी कीर्तियोको सुनते शेप कैसी प्रसन्नता प्रकट करता है, (कि) उनसे सुनता आखोको भीतरी सन्तोपके आसुओसे नही ढाकता, अगमे विना रोमके आनन्द कन्दवाली रोमाच परम्परा नही रचता, पृथिवीके टूटनेके डरसे शिर कम्प नही करता, सो हम नही जानते ।३९।

५६ विजयमें चतुर इसने सग्राममें शत्रुराजाओंके गजोके कुम्भोमें,
दृढ भालाके फलोको छोर तक वसा दिया,
सो इसकी वडी सेवा है । तेरे स्तनके प्रतिस्पर्धी
उन गजकुम्भोमें दण्डो-प्रदडोको डालनेवाले इस पर क्यो नही प्रसन्न होती ॥४०॥

(३) सन्ध्या—

५७ उपास्य सान्ध्य विधिमन्तिमाशा
रागेण कान्ताधरचुबिचेता ।
अवाप्तवान्सप्तमभूमिभागे भैमीधर सौधमसौ धरेन्द्र ॥१॥

५८ प्रत्युद्व्रजन्त्या प्रियया विमुक्त पर्यंकमकस्थितसज्जशय्यम् ।
अध्यास्य तामप्यधिवास्य सोऽय
सध्यामुपश्लोकयति स्म सायम् ॥२॥

५९ "विलोकनेनानुगृहाण तावद्दिश जलानामधिपस्य दारान्
अक्षालि लाक्षापयसेव येयमपूरि पकैरिव कुकुमस्य ॥३॥

६० उच्चैस्तरादम्बरशैलमौलेश्च्युतो रविर्गैरिकगण्डशैल ।
तस्यैव पातेन विचूर्णितस्य सध्यारजोराजिरिहोज्जिहीते
॥४॥

६१ अस्ताद्रिचूडालयपक्वणालिच्छेकस्य कि कुक्कुटपेटकस्य ।
यामान्तकूजोल्लसितै शिखौघै
र्दिग्वारुणी द्रागरुणीकृतेयम् ॥५॥

६२. पश्य द्रुतास्तगतसूर्यनिर्यत्करावलीहैंगुलवेत्रयात्रम् ।
निषिध्यमानाहनि सध्ययापि रात्रिप्रतीहारपदेऽधिकारम्
॥६॥

६३ महानट कि नु सभानुरागे
सध्याग्य सध्या कुनटीभपीशाम् ।
तनोति तन्वावियतापि तारश्रेणिस्रजा साप्रतमग्रहारम्
॥७॥

६४ भूपास्यिदाम्नस्त्रुटितस्य नाटचा
त्पश्योडुकोटीकपटवहद्भि ।
दिग्मण्डल मण्डयतीह खण्डै सायनटस्तारकराट्किरीट
॥८॥

३. संध्या–

५७ सन्ध्याविधिकी उपासना कर पश्चिम दिशाके लाल होते समय प्रियाके अधरके चुम्बनके इच्छुक, राजा (नल) दमयंतीके निवास के सातवें मंजिलमें पहुचे ॥१॥

५८ सत्कारके लिये उठकर सन्मुख आती प्रियाके छोडे सज्जित सेजवाले पलगपर बैठकर, उसे भी बैठा नल शामको सन्ध्याकी प्रशसा करने लगे ॥२॥

५९ "वरुणकी स्त्री (इस) पश्चिम दिशाको देखनेकी कृपा करो,
जो यह लाक्षाके पानीसे धोई सी केसरके पकसे भरी सी है ॥३॥

६०. सूर्य अति उच्च आकाशगिरिके शिखरसे गिरा गेरूका छोटा शैलसा है, उसीके गिरनेमे चूर-चूर हुई सन्ध्याके रजकी पक्ति यहा फैल रही है ॥४॥

६१. अस्ताचल शिखरके घरकी कुटियोकी पक्ति पर बैठे पहरके अन्तवाले कुक्कुटोके कूजनसे उल्लसित शिखाओवाली यह वारुणी दिशा शीघ्र लाल बन गई ॥५॥

६२ देखो, यहा जल्दी अस्त हुये सूर्यसे निकलते किरणरूपी ईंगुरके बेंत द्वारा सन्ध्या रातके द्वारपालके पदके अधिकारको दिनमें निषेध कर रही है ॥६॥

६३ सखि, क्या महानट आकाश नभाके अनुरागमें सन्ध्या रूपी मन शिलाको सोचकर, सूक्ष्म ताराओकी माला द्वारा अङ्गहार तो नहीं बना रहा है ॥७॥

६४ मुकुटधारी तारका-पति सन्ध्यारूपी नट नृत्यसे टूटे हड्डीके माला-भूषणको कोटि-कोटि ताराओ सा धारण करते उसके खडोंसे यहा दिशाओको मंडित कर रहा है ॥८॥

६५ काल किरात स्फुटपद्मकस्य बध व्यधाद्यस्य दिनद्विपस्य।
तस्यैव सध्या रुचिरास्रधारा
ताराश्च कुम्भस्थलमौक्तिकानि ॥९॥

६६ सध्यासराग ककुभो विभाग शिवाविवाहे विभुनायमेव।
दिग्वाससा पूर्वमवैमि पुष्पसिन्दूरिकापर्वणि पर्यधायि
॥१०॥

६७ सतीमुमामुद्वहता च पुष्पसिन्दूरिकार्थं वसने सुनेत्रे।
दिशौ द्विसधीमभिरागशोभे
दिग्वाससोभे किमलम्भिषाताम् ॥११॥

६८ आदाय दण्ड सकलासु दिक्षु
योऽय परिभ्राम्यति भानुभिक्षु ।
अब्धौ निमज्जन्निव तापसोऽय
सध्याभ्रकाषायमधत्त सायम् ॥१२॥

६९ अस्ताचलेऽस्मिन्निकषोपलाभे
सध्याकषोल्लेखपरीक्षितो य ।
विक्रीय त हेलिहिरण्यपिण्ड तारावराटानियमादित द्यौ
॥१३॥

७० पचेलिम दाडिममर्कविम्बमुत्तार्य सध्या त्वगिवोज्झितास्य।
तारामय बीजभुजादसीय
कालेन निष्ठ्यूतमिवास्थियूथम् ॥१४॥

७१ ताराततिर्बीजमिवादमादमिय निरष्ठेवि यदस्थियूथम् ।
तन्निष्कुलाकृत्य रविं त्वगेपा
सध्योज्झिता पाकिमदाडिमवा ॥१५॥

७२ सध्यावशेषे धृतताण्डवस्य चण्डीपते पत्पतनाभिघातात् ।
कैलासशैलस्फटिकाश्मखण्डैरमण्डि पश्योत्पतयालुभिर्द्यौ”
॥१६॥

६५ (सन्ध्या) कालरूपी किरात ने जिस फूले पद्मवाले दिनरूपी गजका वध किया, उसीकी रुचिर रक्तधारा सन्ध्या है और कुंभस्थानके मोती तारागण है ॥९॥

६६ मैं समझता हूं, सन्ध्यासे दिशाए लाल हैं, मानो पार्वतीके व्याहमें दिगंबर प्रभुने पहले पुष्प-सिंदूरिकाके अवसरपर यही उसे पहनाया, ॥१०॥

६७ हे सुनयना, पार्वतीका व्याह करते शंकरने पुष्पसिंदूरिकाके लिये, दो सखियोंके पास रागसे शोभित दिशारूपी दोनों वस्त्रोंको प्रदान किया ॥११॥

६८ जो यह सूर्यरूपी भिक्षु, दंड ग्रहण कर सभी दिशाओंमें घूम रहा है, (सो) यह तपस्वी शामको समुद्रमें डूबता सा सन्ध्याके बादलरूपी काषायको धारण किये है ॥१२॥

६९ जो कि, कसौटीके पत्थर सदृश इस अस्ताचलमें सन्ध्याके घर्षणके चिह्नसे परीक्षा कर, उस सूर्यके सुनहरे पिंडको बेंचकर द्युलोकने तारारूपी कौडियोंको लिया ॥१३॥

७० इस पके अनाररूपी सूर्यबिम्बका निकाला चमडा सन्ध्या है। बीज खानेवाले कालने इनकी तारामय गुठलिया थूक सी दी है ॥१४॥

७१ अथवा इसने बीजको खा-खाकर जो गुठलियोंका पुंज थूका, सो यह तारासमूह है। सूर्यका बीज निकाल कर या पके अनारको छील कर (जो) चमडा छोडा यह सन्ध्या है ॥१५॥

७२ देखो, सन्ध्याके अन्तमें ताण्डव करते शंकरके गिरते पैरोंके प्रहारसे, कैलासपर्वतके ऊपर उठते स्फटिक-पाषाण-खंडों द्वारा द्युलोक भूषित है" ॥१६॥

(४) चन्द्रिका—

७३ इत्थं ह्रिया वर्णनजन्मनेव संध्यामपक्रान्तवतीं प्रतीत्य।
तारातमोदन्तुरमन्तरिक्षं निरीक्षमाणः स पुनर्बभाषे ॥१७॥

७४ "रामेषुमर्मव्रणनार्तिवेगाद्रत्नाकरः प्रागयमुत्पपात।
ग्राहौघकिर्मीरितमीनकम्बु नभो न भोः कामशरासनभ्रूः
॥१८॥

७५. मोहाय देवाप्सरसां विमुक्तास्तारा शराः पुष्पशरेण शङ्के।
पञ्चास्यवत्पञ्चशरस्य नाम्नि प्रपञ्चवाची खलु पञ्चशब्दः
॥१९॥

७६. नभोनदीकूलकुलायचक्रीकुलस्य नक्तं विरहाकुलस्य।
दृशोरपां सन्ति पृषन्ति तारा पतन्ति तत्संक्रमणानि धाराः
॥२०॥

७७. अमूनि मन्येऽमरनिर्झरिण्या यादांसि गोधा मकरः कुलीरः।
तत्पूरखेलत्सुरभीतिदूरो मग्नान्यधः स्पष्टमितः प्रतीमः
॥२१॥

७८. स्मरस्य कम्बुः किमयं चकास्ति
दिवि त्रिलोकीजयवादनीयः।
कस्यापरस्योडुमयैः प्रसूनैर्वादित्रशक्तिर्घटते भटस्य ॥२२॥

७९. किं योगिनीयं रजनी रतीश याजीविपत्पद्ममम्मूमुहच्च।
योगर्द्धिमस्या महतीमलग्नमिदं वदत्यम्बरचुम्बि कम्बु
॥२३॥

८०. प्रबोधकालेऽह्नि बाधितानि ताराखपुष्पाणि निदर्शयन्ती।
निशा हि शून्याध्वनि योगिनीयं
मृषा जगद्दृष्टमपि स्फुटाभम् ॥२४॥

४. चाँदनी—

७३ इस प्रकार वर्णनद्वारा उत्पन्न लज्जासे सख्याको हट गई जानकर, मानो ताराओ और अधकारसे मिश्रित आकाशको देखते नल ने फिर कहा ॥१७॥

७४ "मकरसमूह-सहित मत्स्य और शखवाला आकाश नही, कामदेवकी धनुपरूपी भौह है। बल्कि रामके बाणसे हृदयमें (लगे) घावके दु खके वेगसे उछलता समुद्र है ॥१८॥

७५ युद्धमें कामदेवने देवो-अप्सराओके मोहनेके लिये तारारूपी बाण छोडे, मैं समझता हू, पचमुख (सिंह) की तरह पचशर (कामदेव) के नाममें पाचका शब्द बहुतका वाचक है ॥१९॥

७६ रातको विरहाकुल आकाशगंगाके तटके घोसलेके चक्रवाकोकी दोनो आखोके जल-बिंदु उससे लग्न तारे हैं, जो धाराओके रूपमें गिरते हैं ॥२०॥

७७ मैं समझता हू, यह आकाशगगाके जल-जन्तु गोह-मगर-नाके उस आकाशगगाकी धारामें खेलते देवोको डरसे दूर नीचे टूटे यहा हम स्पष्ट देखते हैं ॥२१॥

७८ तीनो लोकोके विजयमें बजाया जानेवाला क्या यह कामदेवका शंख आकाशमे चमक रहा है ? कौनसे दूसरे योद्धाकी बाजेकी शक्ति तारामय फूलो द्वारा बनती है ॥२२॥

७९ क्या यह (वही) रात्रि योगिनी है, जिसने रति-पतिको जिलाया, और पद्मको मूर्छित किया। इसकी बडी अ-लग्न योगशक्तिको यह आकाशचुम्बी शख बतला रहा है ॥२३॥

८० प्रबोधके समय दिनमें तिरस्कृत आकाश-पुष्प तारोंके शून्यमार्गमें झूठे जगत्को यह रात्रियोगिनी भी साफ दिखलाती है ॥२४॥

(४) चन्द्रिका—

७३ इत्थ ह्रिया वर्णनजन्मनेव सध्यामपक्रान्तवती प्रतीत्य ।
तारातमोदन्तुरमन्तरिक्ष निरीक्षमाण स पुनर्बभाषे ॥१७॥

७४ "रामेषुमर्मव्रणनार्तिवेगाद्रत्नाकर प्रागयमुत्पपात ।
ग्राहौघकिर्मीरितमीनकम्बु नभो न भो कामशरासनभ्रु
॥१८॥

७५. मोहाय देवाप्सरसा विमुक्तास्तारा शरा पुष्पशरेण शके ।
पचास्यवत्पचशरस्य नाम्नि प्रपचवाची खलु पञ्चशब्द
॥१९॥

७६. नभोनदीकूलकुलायचक्रीकुलस्य नक्त विरहाकुलस्य ।
दृशोरपा सन्ति पृषन्ति तारा पतन्ति तत्सक्रमणानि धारा
॥२०॥

७७. अमूनि मन्येऽमरनिर्झरिण्या यादासि गोधा मकर कुलीर ।
तत्पूरखेलत्सुरभीतिदूरो मग्नान्यध स्पष्टमित प्रतीम
॥२१॥

७८. स्मरस्य कम्बु किमय चकास्ति
दिवि त्रिलोकीजयवादनीय ।
कस्यापरस्योडुमयै प्रसूनैर्वादित्रशक्तिर्घटते भटस्य ॥२२॥

७९ किं योगिनीय रजनी रतीश याजीविपत्पद्ममभूमुहन्च ।
योगर्द्धिमस्या महतीमलग्नमिद वदत्यम्बरचुम्बि कम्बु
॥२३॥

८० प्रबोधकालेऽह्नि बाधितानि ताराखपुष्पाणि निदर्शयन्ती ।
निशा हि शून्याध्वनि योगिनीय
मृपा जगद्दृष्टमपि स्फुटाभम् ॥२४॥

४. चाँदनी—

७३ इस प्रकार वर्णनद्वारा उत्पन्न लज्जासे सख्याको हट गई जानकर, मानो ताराओ और अधकारसे मिश्रित आकाशको देखते नल ने फिर कहा ॥१७॥

७४ "मकरसमूह-सहित मत्स्य और शखवाला आकाश नही, कामदेवकी धनुषरूपी भौह है। वल्कि रामके वाणसे हृदयमें (लगे) घावके दु खके वेगसे उछलता समुद्र है॥१८॥

७५ युद्धमें कामदेवने देवो-अप्सराओके मोहनेके लिये तारारूपी वाण छोडे, मैं समझता हू, पचमुख (सिह) की तरह पचशर (कामदेव) के नाममें पाचका शब्द वहुतका वाचक है॥१९॥

७६ रातको विरहाकुल आकाशगंगाके तटके घोसलेके चक्रवाकोकी दोनो आखोके जल-विंदु उससे लग्न तारे है, जो धाराओके रूपमें गिरते हैं॥२०॥

७७ मैं समझता हू, यह आकाशगगाके जल-जन्तु गोह-मगर-नाके उस आकाशगगाकी धारामें खेलते देवोको डरसे दूर नीचे टूटे यहा हम स्पष्ट देखते हैं॥२१॥

७८ तीनो लोकोके विजयमें वजाया जानेवाला क्या यह कामदेवका शख आकाशमें चमक रहा हैं ? कौनसे दूसरे योद्धाकी वाजेकी शक्ति तारामय फूलो द्वारा वनती है॥२२॥

७९ क्या यह (वही) रात्रि योगिनी है, जिसने रति-पतिको जिलाया, और पद्मको मूर्छित किया। इसकी वड़ी अ-लग्न योगशक्तिको यह आकाशचुम्वी शख वतला रहा है॥२३॥

८० प्रवोधके समय दिनमें तिरस्कृत आकाश-पुष्प तारोके शून्यमार्गमें झूठे जगत्को यह रात्रियोगिनी भी साफ दिखलाती है॥२४॥

८१ एण स्मरेणाकमय स पत्राकृतो भवद्भ्रूयुगधन्वना य ।
मुखे तवेन्दौ लसता स तारा पुष्पालिबाणानुगतो गतोऽयम्
॥२५॥

८२ लोकाश्रयो मण्डपमादिसृष्टिब्रह्माण्डमाभात्यनुकाष्ठमस्य ।
स्वकान्तिरेणूत्करवान्तिमन्ति घुणव्रणद्वारनिभानि भानि
॥२६॥

८३ शचीसपत्न्या दिशि पश्य भैमी शक्रेभदानद्रवनिर्झरस्य ।
पोप्लूयते वासरसेतुनाशादुच्छृखल पूर इवान्धकार ॥२७॥

८४ रामालिरोमावलिदिग्विगाहि ध्वान्तायते वाहनमन्तकस्य ।
यद्वीक्ष्य दूरादिव बिभ्यत
स्वानश्वान्गृहीत्वापसृतो विवस्वान् ॥२७॥

८५ पक्व महाकालफल किलासीत्,
प्रत्यग्गिरे सानुनि भानुबिम्वम् ।
भिन्नस्य तस्यैव दृषन्निपाता
द्बीजानि जानामितमा तमासि ॥२९॥

८६ पत्युर्गिरीणामयश सुमेरुप्रदक्षिणाद् भास्वदनादृतस्य ।
दिशस्तमश्चैत्ररथान्यनामपत्रच्छटाया मृगनाभिशोभि ॥
॥३०॥

८७ ऊर्ध्वं धृत व्योम सहस्ररश्मेर्दिवा सहस्रेण करैरिवासीत् ।
पतत्तदेवाशुमता विनेद नेदिष्ठतामेति कुतस्तमिस्रम् ॥३१

८८ ऊर्ध्वार्पितन्युजकटाहकल्पे यद् व्योम्नि दीपेन दिनाधिपेन ।
न्यधायि तद्भूममिलद्गुरुत्व
भूमौ तम कज्जलमस्खलत्किम् ॥३२॥

८९ ध्वान्तैणनाभ्या शितिनाम्बरेण
दिश शरैं सूनशरस्य तारैं ।
मन्दाक्षलक्ष्या निशि मामनिन्दौ
सेर्ष्या भवायान्त्यभिसारिकाभा ॥३३॥

८१ तेरे मुखचन्द्रमें प्रकाशमान दोनो भौहोरूपी धनुपवाले कामदेवने जो कलकमय मृग वनाया, सो (मृग) तारापुष्पोकी वाणसहित पक्ति हो गया ।।२५।।

८२ लोकाधारभूत आदि-सृष्टिकी ब्रह्माडरूपी मडपसे अपनी कान्तिरूपी धूलिसमूहके वमनरूप नक्षत्र काष्टमें घुनके काटे द्वारसे दीखते हैं ।।२६।।

८३ दमयन्ती, देखो पश्चिम दिशामें ऐरावतके वहते मदके चश्मेकी धाराकी तरह, दिनके वाधके नाशसे अधकार मुक्त-धाराकी तरह खूव वह रहा है।।२७।।

८४ रामके सेतुकी रोमावलिसा दिशाओमें फैलता अन्धकार यमराजका वाहन वन रहा है, जिसको देखकर सूर्य दूरसे ही मानो डरते हुये अपने घोडोको पकडकर भाग चला।।२८।।

८५ अस्ताचलके पादमें पके महाकालके फल सा सूर्यविम्ब था, पत्थरके गिरनेसे उसीके टूटे वीजोको मै अन्धकार समझता हू।।२९।।

८६ चैत्ररथ (वन) के दूसरे नामको पत्राकनवाली दिशाका कस्तूरीसा, काला अन्धकार, सुमेरुकी प्रदक्षिणा करते सूर्य द्वारा अनादृत गिरिपति (हिमालय) की अकीर्ति है।।३०।।

८७ काले नभको दिनमें मानो सूर्यकी हजार किरणोने ऊपर पकडा था। सूर्यके विना वही गिरता हुआ क्या अधकारसे समीपता पा रहा है।।३१।।

८८ दीपकरूपी सूर्यने ऊपर रक्खे उलटे कडाहसे आकाशमे जो काजल पारा, सो उसकी वहुतायतसे भारी वना अन्धकार क्या पृथिवीपर गिर रहा है।।३२।।

८९ अधकाररूपी कस्तूरी जैसे काले आकाशने, दिशाओको कामदेवके तारे रूपी वाणोसे युक्त किया, वे (हो) चन्द्रहीन रात्रिमें लज्जिता अभिसारिकाओंसे 'ईर्ष्यालु होओ', कह मेरे पास आते है।।३३।।

९० भास्वन्मयी मीलयतो दृश द्राङ्
मिथोमिलत्यचलमादिपुस ।
आचक्ष्महे तन्वि तमासि पक्ष्म
श्यामत्वलक्ष्मीविजितेन्दुलक्ष्म ॥३४॥

९१ विवस्वतानायिषतेव मिश्रा स्वगोसहस्रेण सम जनानाम् ॥
गावोऽपि नेत्रापरनामधेया-
स्तेनेदमान्ध्य खलु नान्धकारै ॥३५॥

९२. ध्वान्तस्य वामोरु विचारणाया वैशेषिक चारु मत मत मे ।
औलूकमाहु खलु दर्शन तत्क्षम तमस्तत्त्वनिरूपणाय ॥३६॥

९३ म्लानिस्पृश स्पर्शनिषेधभूमे सेय त्रिशकोरिव सपदस्य ।
न किंचिदन्यत्प्रति कौशिकीये दृशौ विहाय प्रियमातनोति
॥३७॥

९४ मूर्धाभिपिक्त खलु यो ग्रहाणा
तद्भासमास्कन्दत ऋक्षशोभम् ।
दिवान्धकार स्फुटलब्धरूपमालोकतालोकमुलूकलोक.
॥३८॥

९५ 'दिने मम द्वेषिणि कीदृगेषा प्रचार' इत्याकलनाय चारी ।
छाया विधाय प्रतिवस्तुलग्ना
प्रावेशयत्प्रष्टुमिवान्धकार ॥३९॥

९६ ध्वान्तस्य तेन क्रियमाणयेत्थ
द्विष शशी वर्णनयाऽथरुष्ट ।
उद्यन्नुपाश्लोकि जपारुणश्रीर्नराधिपेनानुनयेच्छयेव
॥४०॥

९७. "पश्यन्वृतोऽप्येप निमेपमद्रेरधित्यकाभूमितिरस्करिण्या ।
प्रवर्पति प्रेयसि चन्द्रिकाभिश्चकोरचचूचुलुकप्रमिन्दु
॥४१॥

९० हे कृशागी, सूर्यरूपी आखको मीचते विष्णुके, शीघ्र मिलती दोनो अचल वाली, श्यामताकी शोभासे चन्द्र-कलक जीतनेवाली, पलकको मैं अन्वकार कहता हू ॥३४॥

९१. सूर्यने अपनी हजार गौवो (किरणो) के साथ मिली नेत्र पर्यायवाची लोगोकी गायोको भी ले लिया, उससे ही यह अवता है, अधकारसे नही ॥३५॥

९२ हे सुजघे, अवकारपर विचार करते वैशेषिकका मत मेरे विचारमें सुन्दर है, तमकी वास्तविकताके निरूपणमें वह दर्शन समर्थ है, इसीलिये उसे उल्लूवाला दर्शन कहा गया ॥३६॥

९३ इस अन्वकारकी यह सम्पत्ति त्रिशंकुकी तरह कालिमायुक्त स्पर्श-हीन स्थानवाली है, इसे छोडकर उल्लूकी आखोमें और कुछ भी प्रिय नही लगता ॥३७॥

९४ नक्षत्रोका जो राजा (था), उसके प्रकाशवाली नक्षत्र-शोभाको हटाया, उल्लू लोगोने स्पष्ट दीखते रूपको दिनका अन्वकार देखा ॥३८॥

९५ 'मेरे शत्रु दिनमें, इनका कैसे प्रचार है' यह जाननेके लिये अधकारने चलती छाया को प्रतिवस्तुमें पता लगानेके लिए प्रवेश कर दिया ॥३९॥

९६ इस प्रकार उसके द्वारा की गई शत्रु-अन्वकारकी इस प्रशसासे रुष्ट हो, मनानेकी इच्छासे ही मानो नलने जपाकुसुमसे लाल शोभावाले उगते चद्रमाकी प्रशसा की ॥४०॥

९७ "हे प्रिये, देख, पहाडकी ऊपरी भूमिरूपी पर्देसे क्षण भर ढंका हुआ यह चन्द्र चकोरोके चोचोके चिल्लुओमें भर खूब अपनी चादनी बरस रहा है ॥४१॥

९८ ध्वान्ते द्रुमान्तानभिसारिकास्त्व
शकस्व सकेतनिकेतमाप्ता ।
छायाच्छलादुज्झितनीलचेला
ज्योत्स्नानुकूलैश्चरितादुकूलै ॥४२॥

९९ त्वदास्यलक्ष्मीमुकुर चकोरै स्वकौमुदीमादयमानमिन्दुम् ।
दृशा निशेन्दीवरचारुभासा पिबोरु रम्भातरुपीवरोरु
॥४३॥

१०० असशय सागरभागुदस्थात्पृथ्वीधरादेव मथ पुरायम्
अमुष्य यस्मादधुनापि सिन्धौ स्थितस्य शैलादुदय
प्रतीम ॥४४॥

१०१ निजानुजेनातिथितामुपेत प्राचीपतेर्वाहनवारणेन ।
सिन्दूरसान्द्रे किमकारि मूर्ध्नि तेनारुणश्रीरयमुज्जिहीते
॥४५॥

१०२ यत्प्रीतिमद्भिर्वदनै स्वसाम्या-
दचुम्बि नाकाधिपनायिकानाम् ।
ततस्तदीयाधरयावयोगादुदेति विम्बारुणबिम्व एष ।४६।

१०३ विलोमिताकोत्किरणाद्द्रुरूहदृगादिना दृश्यविलोचनादि ।
विधिर्विधत्ते विधुना वधूना किमानन काचनसचकेन
॥४७॥

१०४ अनेन वेधा विपरीतरूपविनिर्मिताकोत्किरणाकनेन ।
त्वदानन दृश्यदृगाद्यलक्ष्यदृगादिनेवाकृत सचकेन ॥४८॥

१०५ अस्या सुराधीशदिश पुरासीद्यदम्वर पीतमिद रजन्या ।
चन्द्राशुचूर्णव्यतिचुम्बितेन तेनाधुना नूनमलोहितायि
॥४९॥

१०६ तानीव गत्वा पितृलोकमेनमरजयन्यानि स जामदग्न्य ।
छित्त्वा शिरोस्त्राणि सहस्रवाहो-
र्विस्राणि विश्राणितवा न्पितृभ्य" ॥५०॥

९८ अन्धकारमें छायाके व्याजसे नीले वस्त्रोको छोड, चादनीके अनुकूल वस्त्रोसे युक्त अभिसारिकाओको वृक्षोके नीचे सकेत-स्थानमें पहुची तू समझ ॥४२॥

९९ हे कदलीसी मोटीजाघवाली, चकोरोसे अपनी चादनीको मस्त वनाते तेरे मुखकी शोभाके दर्पण जैसे चद्र निशाके कमलकी सुदर प्रभावाली आखसे पान कर रहे है ॥४३॥

१०० निस्सन्देह पूर्व समयमें सागरस्थ यह पर्वत ही मथानी हो उठा, क्योकि आज भी समुद्रमें स्थित पर्वतसे हम उसका उदय समझते हैं ॥४४॥

१०१ क्या अपने अनुज इन्द्रके वाहन ऐरावतने अतिथि वने (चद्र) के सिरपर सिन्दूर लगाया, जो कि वह लाल शोभायुक्त उग रहा है ॥४५॥

१०२ अपनी समानता के कारण, जो कि इन्द्रकी नायिकाओके प्रेमयुक्त वदनोंसे चूमा गया, उसीसे उनके अधर-रागसे युक्त होनेसे यह लाल विम्ववाला होकर उग रहा है ॥४६॥

१०३ क्या ब्रह्मा चन्द्रके सुनहले साचेमें, वन्धुओ के कलक उलटाये उत्तम किरणोंसे दुरूह आखो आदि द्वारा दृश्य नेत्र आदि युक्त मुखको वनाता है ॥४७॥

१०४ ब्रह्माने उलटे रूपसे निर्मित अकको किरणोके अकन द्वारा तेरे मुखको दृश्य-दृष्टि आदिसे अलक्ष्य आखो आदिवाले साचेमे वनाया ॥४८॥

१०५ इस पश्चिम दिशाका जो पहले अम्बर था, उसे रात्रिने पी लिया। चन्द्रकिरणोके चूर्णो से परस्पर चुम्बित उसके द्वारा निश्चय अब वह लाल हुआ ॥४९॥

१०६ परशुरामने सहस्रबाहुके सिरको काटकर गवयुक्त रक्तसे पितरोको तर्पित किया, वही रक्त था, जिसने पितृलोकमें जाकर इस चन्द्रको रग दिया ॥५०॥

(५) गर्वोक्ति —

१०७ श्रीहर्षं कविराजराजिमुकुटालकारहीर सुत
श्रीहीर सुषुवे जितेन्द्रियचय मामल्लदेवी च यम् ।

१०८ यथा यूनस्तद्वत्परमरमणीयापि रमणी,
कुमाराणामन्त करणहरण नैव कुरुते ।
मदुक्तिश्चेदन्तर्मदयति सुधीभूय सुधिय ,
किमस्या नाम स्यादरसपुरुषानादरभरै ॥१॥

१०९ दिशि दिशि गिरिग्रावाण स्वा वमन्तु सरस्वती,
तुलयतु मिथस्तामापातस्फुरद्ध्वनिडम्बराम् ।
स परमपर क्षीरोदन्वान्यदीयमुदीयते,
मथितुरमृत खेदच्छेदि प्रमोदनमोदनम् ॥२॥

११० ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित्क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नान्मया,
प्राज्ञमन्यमना हठेन पठिती मास्मिन्खल खेलतु ।

त्वेतत्काव्यरसोर्मिमज्जंनसुखव्यासज्जनं सज्जन ॥३॥

१११ ताम्बूलद्वयमासन च लभते य कान्यकुब्जेश्वराद्,
य साक्षात्कुरुते समाधिपु पर ब्रह्म प्रमोदार्णवम् ।
यत्काव्य मधुवर्पि धर्पितपरास्तर्केपु यस्योक्तय ,
श्री श्रीहर्षकवे कृति कृतिमुदे तस्याभ्युदीयादियम् ॥४॥

—सर्ग. २२

५. आत्म-प्रशंसा—

१०७ कविराजोंके मुकुटालकार श्रीहीरने और मामल्लदेवीने जिस इन्द्रिय-विजेता श्रीहर्ष पुत्रको जन्माया ।

१०८ परम रमणीय रमणी भी जैसे जवानको,
वैसे बच्चोके हृदयको हरण नही करती। मेरी रचना अमृत बनकर पडितोको भीतरसे जब मस्त करती है, तो अरसिक पुरुषोके अनादरसे इसको क्या ॥१॥

१०९ दिशा-दिशामें पर्वत पाषाण अपनी वाणी वमन करें,
सामान्यत निकली ध्वनिके आडवरका उससे परस्पर तुलना करें। किन्तु वह दूसरा ही क्षीरसागर है, जिससे यह मथनेवालेके खेदका नाशक प्रमोददाता अमृतरूपी भोजन उपजता है ॥२॥

११० मैने यहा कही-कही प्रयत्नके साथ ग्रथकी गाठ रख छोडी है, जिसमें झूठे पडित खल पढाकू हठसे न खुल खेंले। जिन्होने श्रद्धासे गुरुकी सेवा की, दृढ गाठोको ढीला किया, वे सज्जन इस काव्यकी रसलहरीमें डूबने के सुखमें अवस्थान करें ॥३॥

१११ जो कान्यकुब्ज-ईश्वरसे दो पान और आसन पाता है, जो समाधियोमें आनदसागर परब्रह्मका साक्षात्कार करता है, जिसका काव्य मधुवर्षी और जिसकी उक्तिया तर्कमें दूसरोको पराजित करनेवाली हैं, उस श्री श्रीहर्ष कविकी यह कृति पडितोके आनदके लिये उगे ॥४॥

—सर्ग २२

भाग ६

५. आधुनिक काल (१६०० ई०)

४८. पद्मावती (१६०० ई०)

४९. पंडितराज जगन्नाथ (६४० ई०)

५०. गौरी (१६५० ई०)

भाग ६

५. आधुनिक काल (१६०० ई०)

४८. पद्मावती (१६०० ई०)

४९. पंडितराज जगन्नाथ (६४० ई०)

५०. गौरी (१६५० ई०)

५. आधुनिक काल (१६०० ई०)

अपभ्रंश काल और भारतमें हिन्दू-शासनका अन्त एक साथ होता है। श्रीहर्ष और कान्यकुब्ज-अधिपति जयचन्द्रके बाद अब भारतमें भाषा, और संस्कृतिसे भिन्न ही नहीं, बल्कि विरोधी शासक दिल्लीको राजधानी बना कर शासन करने लगे। भारत के सबसे बड़े-बड़े सास्कृतिक केन्द्र अब उन तुर्कोंके आधीन थे, जो काफिरोकी भाषा, सस्कृति और साहित्यको कोई भी सम्मान या सरक्षण देनेके लिये तैयार नहीं थे। उनसे कोई सस्कृतका कवि अब सत्कार और सहायताकी आशा नहीं रख सकता था। जब तक हिन्दू-धर्म देशमें था, तब तक सस्कृतकी अवश्यकता थी, इसलिए सस्कृतका पठन-पाठन उन्होने नहीं छोड़ा, किन्तु उसकी उत्कृष्ट कलाकी ओर उनका ध्यान नहीं जा सकता था। मुस्लिम-प्रहारसे हिन्दू-धर्मकी धज्जिया उडने लगीं: उसके पूजा-स्थान नष्ट हो गये, उसके तीर्थ अनेक बार अपवित्र किये गये, यात्रियोपर विशेष कर (जजिया) लगाये गये। ऐसे समयमें सस्कृत कविताके उत्कर्षके लिए प्रयत्न करना कैसे सम्भव हो सकता था? इसीलिये कोई आश्चर्य नहीं, यदि मुस्लिम-शासनकी प्रथम शताब्दियोंमें सस्कृतका कोई उच्च कवि नहीं मिलता।

जर्जर होते हिन्दू-धर्ममें पुन प्राण-सचार करनेके लिये इसी आरम्भिक कालमें वैष्णव सन्त पैदा होते हैं, जिन्होने हिन्दू-धर्मको ऐसे रूपमें लोगोके सामने रखना चाहा, जिसे जन-मन सुगमतासे ग्रहण कर सके और उसपर चलनेकी कोशिश करे। ये सुधारक यद्यपि हिन्दू सामन्तोके भी श्रद्धाभाजन थे, लेकिन अब केवल उनके ही ऊपर रहना ठीक नहीं था, जन-शक्ति ही हिन्दू-धर्म और सस्कृतिका संरक्षण कर सकती थी। इसलिए सूर, तुलसी जैसे कवि पैदा हुए, जो लोक-भाषाको अपनानेके लिये मजबूर थे। हिन्दू सामन्त भी लोक-भाषामें लिखी कविताओंका ही रसास्वादन कर सकते थे, इसलिये भी लोक-भाषाके कवियोको सुभीता था।

लेकिन, इस सारे कालमें सस्कृतका साहित्य जीवित रहा। हमारे

महाकवियोकी कृतियोको वड़ी आदरसे पढ़ा जाता था। वाराणसी (वनारस) गहड़वारोके समयसे ही संस्कृतके अध्ययनका विशाल केन्द्र वन चुकी थी। शताब्दियां वीतनेके साथ तीर्थके तौरपर ही नहीं, वल्कि विद्या-केन्द्रके तौरपर भी उसकी ख्याति वढ़ी। सारे भारतके विद्वानोकी नजर उसकी तरफ लगी रहती थी। पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिणके श्रेष्ठ विद्वान् काशीमें रहना अपने सौभाग्यकी वात समझते थे। इसी कारण आन्ध्रसे आये ब्राम्हण पेद्द् भट्ट थे, जिनके यशस्वी पुत्र जगन्नाथ थे। उनके रूपमें संस्कृत कविताने फिर एक वार अपना चमत्कार दिखलाया। जगन्नाथकी जीवनीसे पता लगता है, कि उस समय उनके जैसोको कितने कष्ट उठाने पड़ते थे। वह नवाव आसफ खाको रिझाकर उन्हें कुछ सहायता मिली। फिर कामरूप (आसाम) के राजा प्राणनारायणकी तारीफमें लगे। पर उससे भी उन्हें इतनी प्राप्ति नहीं हुई, कि अपना जीवन निश्चिन्त विता सकते। अन्तमें उनका भाग्य खुला, जव शाहजहांका पुत्र दाराशिकोह संस्कृत-साहित्य और तत्वज्ञानकी तरफ झुका। वह काशीसे दिल्ली-वल्लभके दरवारमें गये और वहां सुखी जीवन विताकर अन्तमें वृन्दावन सेवन करने लगे। पडितराजके समयके आसपास दो कवित्रियां भी हैं। इन तीनोकी कवितायें अपभ्रंशकालीन कविताके दोषोंसे मुक्त हैं। उत्कृष्ट कविताकी अंतिम झलक हमें इनकी सूक्तियोमें मिलती है।

४८. पद्मावती (१६०० ई०)

पद्मावतीके समय और जन्मस्थानके बारेमें कुछ कहना मुश्किल है। इनके पद्योंसे भी देश या स्थानका कोई पता नहीं लगता। गुजराती स्त्रियोका

४८. पद्मावती

(१) राजा—

१ हरिण्यस्त्वरण्येऽग्रगण्य शरण्य,
नृपाणा यमालोक्य लोलाक्षिगोला ।
करे चारुचाप गले नीलचोल,
मृगानुव्रजन्त स्मर भावयन्ति[१] ॥१॥

(२) कृपणः—

२ कोषे निषण्णस्य च बद्धमुष्टेर्,
मलिम्लुचाकारविभीषणस्य ।
आकारत केवलमस्ति भेद
कृपाणकस्यापि धनाणकस्य[२] ॥२॥

(३) खलः—

३ स्वभावसिद्ध वक्रत्व खलस्य च हलस्य च।
मुखाक्षेप तयो सोढुमलमेकैव सा क्षमा[३] ॥३॥

(४) शरीरावयवाः—

४ किं चारुचन्दनलताकलिता भुजग्य ?
किं पत्रपद्ममधुसवलिता नु भृग्य ?
किं वाननेन्दुजितराहुरुचो विपाल्य ?
किं भान्ति गुर्जरवरप्रमदाकचाल्य[४] ॥४॥

---

१ छन्द भजगप्रयात, २ उपजाति, ३ अनुष्टप्, ४ .वसन्ततिलक

४८. पद्मावती (१६०० ई०)

विशेष पक्षपात होनेसे जान पडता है, यह गुजराती थीं। एक पद्यमें किसी राजाका वर्णन और कई नख-शिखके ललित पद्य इनका संबंध सामन्ती दरबारसे बतलाते हैं।

४८. पद्मावती

(१) राजा—

१ राजाओमे से जिसे अग्रगण्य शरण जानकर चचल नेत्रोवाली हरिनिया जगलमें गई, वह हाथमें सुन्दर चाप, गलेमें नीले चोगे, मृगके पीछे जाते (उसे) कामदेव समझती है ॥१॥

(२) कँजूस—

२ मलिन आकारके कारण भयकर, मुट्ठी बाधे खजानेमें बैठे, कजूस और पैसेके आनेमें केवल आकार का ही भेद है ॥२॥

(३) खल—

३ खल और हलका टेटापन स्वभावसिद्ध है। उन दोनोके मुखके आक्षेपको एकही क्षमा (पृथिवी) सह सकती है ॥३॥

(४) नख-शिख—

४ क्या (वह) सुन्दर चन्दनलतामें लिपटी नागिनें है? क्या पद्मके मधुमें लिपटी भ्रमरिया हैं? अथवा मुखचन्द्र को हरानेवाले राहु की विपपक्तिया हैं। अथवा गुजरातकी वर महिलाओंकी चोटिया है ॥४॥

५ तव रुचिरमुखेन्दो कान्तिपीयूषधारा,
चतुरतरचकोरीचक्रमास्वाद्य सद्य ।
अनुगतवहुमाध्वीचञ्चुजाड्यापनुत्यै,
कलयति शशिविम्वे काजिकभ्रान्तिमेतत् ॥५॥

६ दन्तालिदाडिमीवीजभक्षणोत्कण्ठितात्मन ।
मन्ये मारशुकस्येय नासाचञ्चुर्विजायते[१] ॥६॥

७ कस्तूरीतिलक तस्या जनयति शोभा भ्रुवोरन्त ।
कोदण्डमध्यलग्न फलमिव पचेषुवाणस्य ॥७॥

८ न भाति कण्ठ किमु काम-भूपतेर्,
विभाति जैत्र किल कम्बुरेव ।
अद्यापि सभाति यतस्तदीया
रेखामिषादगुलियन्त्रणेयम्[२] ॥८॥

९. कि शृगारसमुद्रकल्पलतिके किं वा मृणालीलते
किं वक्षोजमहीध्रचन्दनलते किं मारपाशीलते ।
किं लावण्यसुधाब्धिविद्रुमलते पत्रागुलीसयुते
भात किं कलगुर्जरीसुललिते वाहूलते मन्मते[३] ॥९॥

(५) सिंहः—

१० मान्योऽसि मानमजुल सिंह मृगेन्द्र प्रचण्डभुजदण्ड ।
य प्रौढदिग्गजोद्भवपललरतो हसि नो हरिणान्[४] ॥१०॥

(६) अश्वः—

११ वारित प्रस्फुरत्येव समुदञ्चितकेसर ।
अत्यन्त भ्रमरीकीर्णो वाजी राजीवसन्निभ[५] ॥११॥

---

१ मालिनी, २. उपगीति ३ शार्दूलविक्रीडित, ४ आर्या, अनुष्टुप,
५. वसन्ततिलक ।

५ तेरे रुचिर मुखचन्द्रकी शोभाकी अमृतधाराको अति चतुर चकोरिया आस्वादन कर वहुत मिठाई पाये चोचकी जडताको तुरन्त हटानेके लिये वह चन्द्रमडलमें काजीका भ्रम करती हैं ।।५।।

६ दत-पक्तियोरूपी अनार-दानेके भक्षणके लिये उत्कठित, मै समझती हू, कामदेवरूपी तोते का यह नासाचचु है ।।६।।

७ उसको दोनो भौहोके वीचमें कस्तूरीका तिलक ऐसी शोभा पैदा करता है, मानो चापके वीचमें लगा कामदेवके वाणका फल है ।।७।।

८ क्या काम-नृपतिका कठ नही शोभता, राजाका विजय-शख शोभा दे रहा है, आज भी जो कि उसकी रेखाके वहाने, अगुलीकी दाव यह दिखाई देती है ।।८।।

९ क्या शृगार-समुद्रकी दो कल्पलतायें, अथवा मृणालियोकी लतायें हैं? क्या स्तनगिरि की चन्दनलता या कामपाशरूपी लता है? क्या लावण्यामृत-सागरकी मूगेकी लता-पत्ररूपी अगुलियोंसे युक्त है? मेरी रायसे तो सुन्दर गुजरातिनोकी दो ललित वाहुलतायें शोभ रही हैं ।।९।।

५. सिह—

१० हे मानमें मजुल, प्रचण्ड भुजदण्डवाले मृगेन्द्रसिह, तुम माननीय हो, जो कि प्रौढ दिग्गजोके मासके प्रेमी वन हरिनोको नही मारते ।।१०।।

६. अश्व—

११ भवरियोंसे आकीर्ण कमल जैसा अश्व, गेदनेपर अयाल उठाये अत्यत चंचल हो उठता है ।।११।।

(७) अन्योक्ति —

१२ मा काक कोकिलशतानुगत प्रसर्पद्-
दर्पाविमत्य खगराजमितो व्रजेथा ।
ज्ञास्यन्ति चेत् करटक तु भवन्तमेते,
हास्यन्ति कर्करवदुज्ज्वलरत्नसघात्[१] ॥१२॥

(८) प्रभात—

१३ प्रभातवेला स्मरराजपुत्री,
नीराजनाभाजनमर्कबिम्बम् ।
आयाति नीराजितुमब्धिपुत्री
पाणौ गृहीत्वाऽङ्कुरिताशुभालम्[२] ॥१४॥

(९) तारा-गण.—

१४ त्रिलोकीजयप्रस्थितस्यात्मयोने -
र्लसत्कुकुमारात्रिपात्र दधाना ।
स्फुरत्कान्तितारांक्षतान् भावयन्ती
पुरन्ध्री निशा याति तन्मगलाय[१] ॥१५॥

(१०) ग्रीष्मः—

१५ तुषाराकराक्लेशितामुष्णरोचि ,
समाज्ञाय जाया प्रिया पद्मिनी च ।
सखाय निज ग्रीष्मकाल विधाय ,
ज्वलज्ज्योतिरुद्द्योतते तज्जयैषी ॥१६॥

१६ धूली-कर्करिण प्रचण्ड-तपन-ज्वालालि-माला-धरा ,
स्पर्शादेव सरिज्जल तरु-दल सशोषयन्त क्षणात् ।
पीतोन्मुक्त– फणीश-फूत्कृति-विष -ज्वालालि-युक्ता इव
स्वच्छन्द परितो भ्रमन्ति बहुशो ग्रीष्मस्य वाता अमी[३] ॥१७॥

---

१ उपजाति, २ भुजगप्रयात, ३. मन्दाक्रान्ता ।

७. अन्योक्ति—

१२ सैकडो कोयलोको पीछे लिये चलते, हे कौवे, दर्पसे तिरस्कार करके यहासे पक्षिराजके पास मत जा। यदि ये आपको कौआ जानेंगे, तो उज्ज्वल रत्नोमेसे ककडीकी तरह तुझे निकाल फेकेंगे ॥१२॥

८. प्रातः—

१३ प्रभात वेला कामराजा की पुत्री, अकुरित-किरण मालावाले सूर्य-विम्वके आरती-पात्रको हाथमें लेकर, सागर-पुत्री (लक्ष्मी) की आरती उतारने आ रही है॥१४॥

९. तारागण—

१४ तीनो लोकोके जय के लिये प्रस्थान करते कामदेवके लिये, सोहते कुमकुमका आरती-पात्र लिये, झिलमिलाती कान्तिवाले ताराख्पी अक्षतोकी भावना करती, निशारूपी महिला उसके मगलाचारके लिये जा रही है ॥१५॥

१०. ग्रीष्म—

१५ प्रिया-पत्नी पद्मिनीको चन्द्र द्वारा क्लेशित जानकर उष्ण-किरणवाला सूर्य, ग्रीष्मकालको अपना मित्र बना, उसकी जयकी इच्छासे जलती ज्योतिवाला हो प्रकाशता है॥१६॥

१६ धूलि से कर्कराते प्रचण्ड सूर्यकी ज्वालाओकी माला धारे, स्पर्शसे ही नदीके जल, वृक्षके पत्रको क्षणमें सुखानेवाले पीकर छोडे नागराजके फुफकार-युक्त विषकी ज्वालाओमे युक्त, ग्रीष्मकी ये हवायें चारो ओर स्वच्छन्द घूम रही हैं॥१७॥

(११) वर्षा—

१७. नाय गर्ज, किमुत? मदन-प्रौढ-निसाण-शब्दो
नैते मेघा, किमुत? मदनस्योद्धुरा सिन्धुरास्ते।
नैषा विद्युत्, किमुत? जयिनी तत्-करे कापि शुक्तिर्,
नैन्द्रश्चाप, किमुत? जगता मोहनास्त्र स्मरस्य ॥१८॥

४९. पण्डितराज जगन्नाथ (१६४० ई०)

यह आन्ध्रसे वनारसमें आकर वसे पेरम भट्टके पुत्र और अपने समयके प्रकाण्ड पडित थे। साहित्य, व्याकरण और दर्शनपर इनका अनद्भुत अधिकार था। कविता करनेमें इन्होने अपभ्रशकालीन जटिल शब्दोकी परम्पराको नही, बल्कि कालिदासको अपना गुरु बनाया। शाहजहाके पुत्र दाराशिकोहको सस्कृत पढनेका बहुत शौक था। उसीको पढानेके लिए यह काशीसे दिल्ली आये। इस समय यह तरुण थे, इसीलिए लिखा है "दिल्ली-वल्लभपाणिपल्लवतले नीत नवीन वय"। यह सस्कृतके महान् पडित होते भी कूपमडुकतासे बिल्कुल मुक्त थे। मुगल-दरबारमें एक मुसलमान तरुणीसे प्रेम हो गया, और उसे इन्होंने पत्नीके तौरपर स्वीकार कर लिया। चारो ओरसे उन्हें हिन्दू धर्मसे भगानेकी कोशिश की गई, लेकिन जगन्नाथ अपने स्थानपर अडिग रहे। परवर्ती लोगोको जगन्नाथके पूर्ण धर्मात्मा होनेपर पूरा विश्वास था। वह कहते है, "गंगालहरी" को इन्होने अन्तिम समयमें अपनी धर्मनिष्ठताको सिद्ध करनेके लिए बनाया। अपनी मुसलमान पत्नीके साथ काशीमें गगाकी सीढ़ियोंपर जा बैठे, और लहरीके एक-एक

११. वर्षा—

१७ यह गरज नहीं है, तो क्या? मदनके जबर्दस्त नगाडोंके शब्द हैं। यह मेघ नहीं है, तो क्या? मदनके धुरोवाले घोडे हाथी हैं। यह बिजली नहीं है, तो क्या? उसके हाथ में कोई विजयिनी शक्ति है। यह चाप नहीं है, तो क्या? जगत्के लिये कामदेवका मोहनास्त्र है ॥१८॥

४९. जगन्नाथ (१६४०) ई०

पद्यके गानेके साथ गंगा एक-एक सीढी ऊपर चढ़ती आई, और लहरोंके समाप्त होनेके साथ दोनोंको गंगा अपनी गोदमें लेकर चली गई। बादशाहने इन्हें "पंडितराज" की उपाधि दी थी।

दिल्ली जानेसे पहले इन्हें और दरबारोंमें भी भटकना पड़ा था। असम (कामरूप) के राजा प्राणनारायणके दरबारमें जाकर इन्होंने "प्राणाभरण" काव्य लिखा था। मुगल सामन्त नवाब आसफ खांकी प्रशंसामें "आसफविलास" (गद्यकाव्य) और दाराशिकोहकी प्रशंसामें "जगदा-भरण" लिखा। इन्होंने प्रौढ़ मीमांसक अप्पयदीक्षितके ग्रंथ "चित्रमीमांसा" का खंडन "चित्रमीमांसाखंडन" द्वारा किया। अपने समयके महान् वैयाकरण भट्टोजिदीक्षितकी "मनोरमा" का खंडन "मनोरमाकुचमर्दन" द्वारा किया। "रसगंगाधर" इनका अलंकारका बहुत प्रौढ़ ग्रंथ है, जो दुर्भाग्यसे अपूर्ण ही रह गया। इनकी पांच लहरियां—(१) "करुणा लहरी", (२) "गंगा लहरी", (३) "अमृतलहरी", (४) "लक्ष्मीलहरी" और (५) "सुधा लहरी" प्रसिद्ध हैं। पिछले सात सौ वर्षोंमें इतनी सर्वतोमुखीन प्रतिभावाला महान् और विचारोंसे अति उदार पंडित भारतमें नहीं हुआ।

१. लक्ष्मीलहरी

लक्ष्मीस्तुति·—

१. समुन्मीलत्वन्त करणकरुणोद्गारचतुर ,
करिप्राणत्राणप्रणयिनि द्वगन्तस्तव मयि।
यमासाद्योन्माद्यद्द्विपनियुतगण्डस्थलगलन्,
मदक्लिन्नद्वारो भवति सुखसारो नरपति ॥७॥

२ समीपे सगीतस्वरमधुरभगी मृगदृशा
विदूरे दानान्धद्विरदकलभोद्दामनिनद ।
बहिर्द्वार तेषा भवति हयहेषाकलकलो
दृगेषा ते येषामुपरि कमला देवि सदया ॥४॥

३ प्रभातप्रोन्मीलत्कमलवनसचारसमये,
शिखा किजल्काना विदधति रुज यत्र मृदुला ।
तदेतन्मातस्ते चरणमरुणश्लाघ्यकरुण
कठोरा मद्वाणी कथमियमिदानी प्रविशतु ॥८॥

—काव्यमाला २

२. अमृतलहरी

यमुनास्तुतिः—

४ दानान्धीकृतगन्धसिन्धुरघटागण्डप्रणालीमिलद् -
भृङ्गालीमुखरीकृताय नृपतिद्वाराय बद्धोऽजलि ।
त्वत्कूले फलमूलशालिनि मम श्लाघ्यामुरीकुर्वतो
वृन्त्ति हन्त मुने प्रयान्तु यमुने वीतज्वरा वासरा ॥३॥

५ अन्तर्मौक्तिकपुजमजिम बहि स्निग्धेन्द्रनीलप्रभ ,
मातर्मे मुदमनातनोतु करुणावत्या भवत्या पय ।

१. लक्ष्मीलहरी

लक्ष्मीकी स्तुति—

१ हे गज-प्राणरक्षक (विष्णु) की प्रेमिके, हृदयसे करुणाके उद्गारमें निपुण तेरा नयनकोर मेरे ऊपर खुले। जिसे पाकर राजा, मस्त दसों हजार गजोंके कपोलोंके मदसे भीगे द्वार और सुखसारवाला होता है ॥२॥

२ हे कमलादेवि, उनके समीपमें मृगनैनियोंके सगीतस्वरकी मधुर लहर, दूर मदसे अन्धे तरुणगजोंकी उद्दीप्त चिघाड, वाहर द्वारपर घोडेके हिनहिनानेका कल-कल होता है, जिनके ऊपर तेरी यह दयायुक्त दृष्टि पडती है ॥४॥

३ सवेरेके खिलते कमलवनोंमें घूमनेके समय, किंजल्कोंकी मृदुल शिखा जब (तुझे) व्यथा करती है, तो हे माता, इस अरुण और प्रशसनीय करुणावाले तेरे चरणमें, यह मेरी कठोर वाणी कैसे प्रवेश पायेगी ॥८॥

—काव्यमाला, गुच्छ २

२. अमृतलहरी

यमुनाकी महिमा—

४ दानसे अन्धे वने गधगजोंके कपोलोंमें लगे, भवरोंसे मुखरित राजाके द्वारको मैंने हाथ जोड लिया। हे यमुने, फल-मूलवाले तेरे तटपर श्लाघनीय मुनिवृत्तिको स्वीकार कर, अहो मेरे दु ख-रहित दिन वीतें ॥३॥

५ हे माता, भीतर मुक्ता-पुजसे सुन्दर स्निग्ध इन्द्रनील-मणिकी प्रभावाला करुणावती आपका जल मुझे आनद प्रदान करे। दो रूपोंके धारण

यद्रूपद्वयधारणादिव नृणामाचूडमामज्जता ,
तत्काल तनुतेतरा हरिहराकारामुदारा तनुम् ।।४।।

६. मातर्वारिणि पापहारिणि तव प्राणप्रयाणोत्सव,
सप्राप्तेन कृता नरेण सहतेऽवज्ञा कृतान्तोऽपि यत् ।
यद्वा मण्डलभेदनादुदयिनीश्चण्डद्युतिर्वेदना ,
श्चित्र तत्र किमप्रमेयमहिमा प्रेमा यदौत्पत्तिक ।।९।।

३. सुधालहरी

सूर्यस्तुतिः—

७. उल्लास फुल्लपकेरुहपटलपतन्मत्तपुष्पधयाना,
निस्तार शोकदावानलविकलहृदा कोकसीमन्तिनीनाम् । ।
उत्पातस्तामसानामुपहतमहसा चक्षुषा पक्षपात ,
सघात कोऽपि धाम्नामयमुदयगिरिप्रान्तत प्रादुरासीत् ।।१

८ निर्भिद्य क्ष्मारुहाणामतिघनमुदर येपु गोत्रा गतेषु,
द्राघिष्ठस्वर्णदण्डभ्रमभृतमनस सनिधित्सन्ति पादान् ।
यैः सभिन्मे दलाग्रप्रचलहिमकणे दाडिमीवीजबुद्ध्या
चचूचाचिल्यमचन्ति च शुकशिशवस्,
तेऽशव पान्तु भानो ।।५।।

९ शीते शोक, शशाके कृशतमरुचितामाशुनाश निशाया
धिक्कार ध्वान्तवर्गे , कुमुदपरिषदि प्रोद्गम दीनताया ।
पाण्डित्य पुण्डरीकेष्वनुदिनमधिका कान्तिमाशासु तन्वन्,
नन्वचत्यन्वह द्यामुषसि करुणया विश्ववन्द्यो विवस्वान्
।।११।।

करनेसे वह मानो सिरसे डुबकी लगाये आदमियोको तत्काल हरि और हरके उत्तम शरीरको प्रदान करता है ॥४॥

६ हे मा, तेरे पापहारी जलमें (मेरे) प्राण प्रयाण-उत्सव पायें, नर द्वारा की गई अवज्ञाको जब कि यमराज भी नही सहन करता । अथवा सूर्यमण्डलके भेदनसे उत्पन्न चडप्रकाशवाली वेदनायें है, जिससे उत्पन्न होता वहा कोई अद्‌भुत अचित्य महिमा प्रेम ॥९॥

—काव्यमाला १

३. सुधालहरी

सूर्यकी महिमा—

७ फूले कमल-पत्रोपर पडे मस्त भ्रमरोका उल्लास है, शोकरूपी दावानलसे विकल हृदयवाली चक्रवाक-पत्नियोका निस्तार है। अन्धकारोके लिये उत्पात, नष्ट तेजवाले नेत्रोका पक्षपात है, यह कोई प्रकाशका समूह उदयाचलके किनारेसे प्रकट हो रहा है ॥१॥

८ वृक्षोके अति घने उदरको भेदकर जिनके पृथिवीपर आनेपर, अति लम्बे सुवर्णदण्डके भ्रमसे धारण किये मतवाले, किरणोको जोडनेकी इच्छा करती हैं, जिनसे खिले पत्रके अग्रभागपर चचल ओस-कणोमें अनारका बीज समझकर, तोतोंके बच्चे चोचोकी चचलता दिखाते है, वे भानुकी किरणें रक्षा करे ॥५॥

९ सर्दी पर शोक, चन्द्रमामें क्षीण रोशनी, रातमें तुरन्त नाश, अन्धकारोमें धिक्कार, कमल-समूहोमें दीनता पैदा करते, पुडरीकोमें प्रतिदिन निपुणता, दिशाओमें अधिक कान्तिको विस्तारित करते, विश्ववद्य सूर्य प्रतिदिन आकाश और उषाको करुणासे भरते हैं ॥१॥

—काव्यमाला १

४. प्राणाभरणम्

कामरूपनृपस्तुति —

१० "विद्राणैव गुणज्ञता समुदितो भूयानसूयाभर,
कालोऽय कलिराजगाम जगतीलावण्यकुक्षिभरि"।
एव भावनया मदीयकविते मौन किमालम्बसे,
जागर्तु क्षितिमण्डले चिरमिह श्रीकामरूपेश्वर" ॥२॥

११ कि ब्रूमस्तव वीरता वयममी यस्मिन्धराखण्डल -
क्रीडाकुण्डलितभ्रु शोणनयन दोर्मण्डल पश्यति।
माणिक्यावलिकान्तिदन्तुरतरैर्भूपासहस्रोत्करैर्,
विन्ध्यारण्यगुहागृहावनिरुहास्तत्कालमुल्लासिता ॥४॥

१२ माहात्म्यस्य परोऽवधिर्निजगृह गम्भीरताया पिता,
रत्नानामहमेक एव भुवने को वापरो मादृश.।
इत्येव परिचिन्त्य मा स्म सहसा गर्वान्धकार गमो,
दुग्धाब्धे भवता समो विजयते श्रीप्राणनारायण ॥५॥

१३ आस्वादेन रसो, रसेन कविता, काव्येन वाणी तया,
लोकान्त करणानुरागरसिक सभ्य, सभा चामुना।
दरिद्र्यानलदह्यमानजगतीपीयूषधाराधर,-
क्षोणीनाथ तथा भवाश्च भवता भूमण्डल भासते ॥११॥

१४ सृष्ट सृष्टिभुवा पुरा किल परित्रातु जगन्मण्डल,
त्व चण्डातपनिर्दय तपसि यज्ज्वालाजटाले करै।
सरम्भारुणलोचनो रणभुवि प्रस्थातुकामोऽधुना,
जानीमो भवता न हन्त विदित श्रीकामरूपेश्वर ॥१५॥

१५ मयि त्वदुपमाविधौ वसुमतीश वाचयमे,
"न वर्णयति मामय कवि"रिति क्रुध मा कृथा।
चराचरमिद जगज्जनयतो विधेर्मानसे,
पद न विदधेतरा तव समो द्वितीयो नर ॥१९॥

४. प्राणाभरण

असम-राजाकी प्रशंसा—

१० "मानो गुणज्ञता भाग गई, ईर्ष्याका अधिक भार जमा हो गया। ससारके सौंदर्यको खा जानेवाला यह कलि आ गया" यह सोचकर हे मेरी कविता, तू क्यो मौन धारण कर रही है। यहा पृथिवीमण्डलपर श्रीकामरूपेश्वर जाग जो रहे हैं ॥२॥

११ हम तेरी वीरताके बारे में क्या कहें, जिस पृथिवीचन्द्रकी क्रीडासे तिरछी भौहों, लाल नयनो, भुजमण्डलको देखते, मणियोकी कान्तिसे उछलते हजारो भूपणोसे विध्य पर्वतके गुहागृहोवाले वृक्ष तत्काल उल्लसित हो गये ॥४॥

१२ जो बडप्पनकी अन्तिम सीमा, गम्भीरताका निजगृह है, "भुवनमें रत्नोका मैं ही एक रक्षक हू, मेरे समान दूसरा कौन है" इस प्रकार सोचते, हे क्षीरसागर, एकाएक गर्वके अन्धकारमें मत पड, (राजा) आपके समान श्रीप्राणकी विजय है ॥५॥

१३ (जैसे) आस्वादसे रस, रससे कविता, कवितासे वाणी, उससे लोगोके मनके अनुरागका रसिक सभ्य, और उससे सभा, दरिद्रतारूपी अग्निसे जलते ससारके लिये अमृत मेघ है, वैसे ही हे पृथिवीनाथ, आप उस सभासे और आपसे भूमडल प्रकाशित है ॥११॥

१४ हे सूर्य, पुराने समयमें ब्रह्माने ससारमडलकी रक्षाके लिये तुम्हें बनाया। तुम ज्वालाकी जटाओवाली किरणोंसे प्रचड धूपसे निष्ठुर तप रहे हो। मैं समझता हू, रणभूमिमें क्रोधमे लाल आखोवाले प्रस्थानके इच्छुक, तुम्हें हन्त! श्रीकामरूपेश्वरका ज्ञान नही है ॥१५॥

१५ हे पृथिवीश्वर, तुम्हारी उपमा देनेमें जबानपर सकोच करते देख "यह कवि मेरी प्रशसा नही करता" यह कह मेरे ऊपर क्रोध मत करो। इस चराचर जगत्के उत्पन्न करनेवाले ब्रह्माके मनमें, तेरे समान दूसरे नरने पद (स्थान) नही पाया ॥१९॥

१६ भुजभ्रमितपट्टिशोद्दलितदृप्तदन्तावल ,
भवन्तमरिमण्डलक्रथन पश्यत सगरे।
करालकुलिशाहतिस्फुटविभिन्नविन्ध्याचल ,
न कस्य हृदय झटित्यधिरुरोह जम्भाहित ॥२०॥

१७ प्राचीसध्यासमुद्यन्महिमदिनमणेर्मानमाणिक्यकान्तिर् ,—
ज्वालामाला-कराला-कवलितजगत क्रोधकालानलस्य ।
आशाकान्तापदाम्भोरुहतलविगलन्मजुलाक्षारसाभा,
सा भाति क्षोणिशोभाकरण तव दृशो सगरे शोणिमश्री.
॥२५॥

१८ स तु वर्षतु वारि वारिदस्त्वमुदाराशय रत्नवर्षण ।
स कुहूरजनीमलीमसस्त्वमिहान्तर्बहिरेव निर्मल ॥३१॥

१९ तैलगान्वयमगलालयमहालक्ष्मीदयालालित ,
श्रीमत्पेरमभट्टसूनुरनिश विद्वल्ललाटतप ।
सतुष्ट कमताधिपस्य कवितामाकर्ण्य तद्वर्णन,
श्रीमत्पण्डितराजपण्डितजगन्नाथो व्यधासीदिदम् ॥५२॥

५. भामिनीविलास

(१) अन्योक्तय.—

२० तावत्कोकिल विरसान् यामय दिवसान् वनान्तरे निवसन् ।
यावन्मिलदलिमाल कोऽपि रसाल समुल्लसति ॥७॥

२१ कमलिनि मलिनीकरोपि चेत ,
किमिति बकैरवहेलिताऽनभिज्ञै ॥
परिणतकरदमार्मिकास्ते,
जगति भवतु चिरायुषो मिलिदा ॥८॥

२२ नितरा नीचोऽस्मीति त्व खेद कूप मा कदापि कृथा ।
अत्यन्तसरसहृदयो यत परेषा गुणगृहीतासि ॥९॥

१६ हे शत्रुमडलके नाशक, युद्धमें आपके मस्त गजोको भुजके पट्टिशसे दलित किये देख, दाढमें स्थित कराल वज्र के प्रहारसे फूटा विंध्याचल, किसके हृदयमें जल्दी नही आरूढ होगा ।।२०।।

१७ हे पृथिवीके शोभा करनेवाले, युद्धमें तुम्हारी आखोकी लाल शोभा, पूर्वमें उषाकालमें उगते महिमावाले सूर्यकी मणिकी कान्तिवाले, जगत्को कवलित करनेवाले क्रोधरूपी कालाग्निकी कराल ज्वालायें- दिशारूपी कान्ताके चरण-कमल, तलसे गिरते मजु महावरके रसमें प्रकाशमान हैं ।।२५।।

१८ वह मेघ तो जल वरसाता है, उदार हृदयवाले तुम रत्न वरसानेवाले हो। मेघ अमावस्याकी रातकी तरह काला है, और यहा तुम भीतर और वाहरसे निर्मल हो ।।३१।।

१९ तेलंग-वशके मगल भवनकी महालक्ष्मीकी दयासे लालित, विद्वानोके ललाटको रात-दिन तपानेवाले श्रीमान् पेरमभट्टके पुत्रने, काम- रूपाधीशकी प्रशसावाली कविता सुनकर सतुष्ट हो इसे रचा ।।५२।।

—काव्यमाला १

५. भामिनीविलास

१ अन्योक्ति—

२० हे कोयल, तव तक वनातरोमें रहती नीरस दिनोको विताओ, जव तक भवरोकी मालावाला कोई आम नही उल्लमित होता ।।७।।

२१ हे कमलिनि, अनभिज्ञ वगलो द्वारा तिरस्कृत हो क्यो चित्तको खिन्न करती हो? परिपक्व केसरके मर्मज्ञ मसारमें वे भ्रमर दीर्घ- जीवी होवें ।।८।।

२२ हे कूयें, "मैं अत्यत नीच हू" ऐसा खेद तुम कभी मत करो, क्योकि तम दूसरोके गुण(रस्सी)के ग्राहक अत्यत सरस हृदयवाले हो ।।९।।

२३ नीरक्षीरविवेके हसालस्य त्वमेव तनुपे चेत् ।
विश्वस्मिन्नधुनान्य कुलव्रत पालयिष्यति क ॥१३।

२४ गाहितमखिल गहन परितो दृष्टाश्च विटपिन सर्वे ।
सहकार, न प्रपेदे मधुपेन भवत्सम जगति ॥२१॥

२५ दवदहनजटालज्वालजालाहताना,
परिगलितलताना म्लायता भूरुहाणाम् ॥
अपि जलधर, शैलश्रेणिशृङ्गेपु तोय,
वितरसि वहु कोय श्रीमदस्तावकीन ॥३६॥

२६ शृण्वन् पुर परुपगर्जितमस्य हत,
रे पाथ, विस्मितमना न मनागपि स्या ॥
विश्वार्तिवारणसमर्पितजीवितोऽय,
नार्काणत किमु सखे भवताऽम्वुवाह ॥३७॥

२७ लून मत्तमतगजै कियदपि च्छिन्न तुपारार्दितै ,
शिष्ट ग्रीष्मजभानुतीक्ष्णकिरणैर्भस्मीकृत काननम् ॥
एषा कोणगता मुहु परिमलैरामोदयन्ती दिशो ,
हा कष्ट ललिता लवगलतिका दावाग्निना दह्यते ॥५६।

२८ युक्त सभाया खलु मर्कटाना शाखास्तरूणा मृदुलाऽऽसनानि।
सुभाषित चीत्कृतिरातिथेयी दतैर्नखाग्रैश्च विपाटनानि ॥८५

—विलास १

(२) शृङ्गारः—

२९ न मनागपि राहुरोधशका न कलकानुगमो न पाण्डुभाव ॥
उपचीयत एव कापि शोभा
परितो भामिनि ते मुखस्य नित्यम् ॥१॥

३० तन्मजुमदहसित श्वसितानि तानि
सा वै कलकविधुरा मधुराननश्री ॥
अद्यापि मे हृदयमुन्मुदयन्ति हत
सायतनाम्बुजसहोदरलोचनाया ॥५॥

२३ हे हस, दूध-पानी के भेद करनेमें यदि तुम ही आलस्य करोगे, तो आज ससारमें अन्य कौन कुलके व्रतका पालन करेगा ॥१३॥

२४ हे आम, भवरेने सारे वनोको ढूढ डाला, चारो ओर सारे वृक्ष देख डाले, पर तुम्हारे समान जगत्में किसीको उसने नही पाया ॥२१॥

२५ हे मेघ, वनकी अग्निकी भारी लपटोसे आहृत, गलित लताओवाले मुरझाते वृक्षोके (और) पर्वतश्रेणियोके शिखरोपर बहुत जल बाट रहे हो कौन सा है जो कि तुम्हारा यह लक्ष्मीरूपी मद है ॥३६॥

२६ हे पथिक, सामने इसके परुप गर्जनको सुनते, हन्त, तुम जरा भी चकित न हो । मित्र, ससारकी पीडाओके निवारणके लिये जीवन समर्पित किये, इस मेघके बारेमें क्या तुमने नही सुना ॥३७॥

२७ मस्त हाथियोने (उसे) कितना ही नोचा, पालेसे पीडित हो वह कितना छिन्न-भिन्न, गर्मीके सूर्यकी तेज किरणोसे भस्म करके छोडा (यह) कानन है । जहा कोनेमें स्थित क्षण भर सुगधिसे दिशाओको यह खुशबूदार करती, हाय, सुदर लवगकी लता वनकी आगसे जल रही है ॥५६॥

२८ वानरोकी सभामें वृक्षोकी शाखाका कोमल-आसन होना उचित है। चिल्लाना उनका सुभाषित है और दातो और नखोसे खरोचना अतिथि-सत्कार ॥८५॥

—विलास १

२. शृंगार—

२९ राहुके ग्रसनेकी जरा भी शका नही है, न कलकका सम्पर्क और न पीलेपन का। हे भामिनि, तेरे मुहके चारो ओर सदा ही कोई शोभा बढती जा रही है ॥१॥

३० सायकालीन कमल जैसे नेत्रोवालीकी वह कोमल मन्द हास, वह उसास और वह कलकरहित मधुर मुखशोभा आज भी हन्त, मेरे हृदयको पागल बनाते रहें ॥५॥

३१ कथय कथमिवाशा जायतां जीविते मे
मलयभुजगवान्ता वाति वाताः कृतान्ताः ॥
अयमपि खलु गुंजन्मंजु माकंदमौली
चुलुकयति मदीयां चेतनां चंचरीकः ॥२८॥

३२ उपनिषदः परिपीता गीतापि च हंत मतिपथं नीता ॥
तदपि न हा विधुवदना मानससदनाद्बहिर्याति ॥३९॥

३३ प्राणापहरणेनासि तुल्यो हालाहलेन मे ॥
शशांक केन मुग्धेन सुधांशुरिति भाषितः ॥४३॥

३४ प्रादुर्भवति पयोदे कज्जलमलिनं (यदा) बभूव नभः ।
रक्तं च पथिकहृदयं कपोलपाली मृगीदृशः पांडुः ॥८६॥

३५ श्यामं सितं च सुदृशो न दृशोः स्वरूपं,
किं तु स्फुटं गरलमेतदथामृतं च ॥
नो चेत्कथं निपतनादनयोस्तदैव,
मोहं मुदं च नितरां दधते युवानः ॥९२॥

३६. स्तनाभोगे पतन् भाति कपोलात्कुटिलोऽलकः ॥
शशांकबिम्बतो मेरौ लंबमान इवोरगः ॥१०६॥

३७ मीनवती नयनाभ्यां करचरणाभ्यां प्रफुल्लकमलवती ॥
शैवालिनी च केशैः सुरसेयं सुन्दरी सरसी ॥१११॥

—विलास २

(३) **करुणो रसः—**

३८ चिता शशाम सकलाऽपि सरोरुहाणा-
मिंदोश्च बिंबमसमां सुषमामयासीत् ॥
अभ्युद्गतं कलकलं किल कोकिलानां
प्राणप्रिये यदवधि त्वमितो गताऽसि ॥७॥

—विलास ३

३१ वता, कैसे मुझे जीवनकी आशा हो? मलयाचलके सापोके वमन किये यमराज जैसे वायु चल रहे हैं। आमके शिखरपर मधुर गूजता यह भवर भी मेरी चेतनाको पी रहा है ॥२८॥

३२ उपनिपद् सव पी डाली, हन्त गीताको भी समझ लिया। तो भी हाय, चन्द्रमुखी (मेरे) हृदय-मदिरसे वाहर नही जाती ॥३९॥

३३ हे चन्द्र, प्राण के कारण अपहरण मेरे लिये तुम हलाहलके तुल्य हो, फिर किस मूढने तुम्हे अमृत-किरण कहा ॥४३॥

३४ मेघके प्रकट होनेपर आकाश काजल सा मलिन पथिकका हृदय लाल और मृगनयनीका कपोल पीला हो गया ॥८६॥

३५ सुनैनी की आखोका रूप श्याम और श्वेत नही, वल्कि स्पष्ट यह गरल अथवा अमृत है, नही तो इनके पडनेसे उसी समय क्यो तरुण अत्यत मोह और आनदको प्राप्त होते हैं ॥९२॥

३६ कपोलसे वक्षस्थलपर गिरता कुचित अलक, चन्द्रविम्वसे मेरुपर लटकते साप सा मालूम होता है॥१०६॥

३७ दोनो नयनोसे मछलीवाली, हाथो-पैरोसे फूले कमलवाली, और केशोसे सेवारवाली यह सुन्दरी सुरस पुष्करिणी है ॥१११॥

—विलास २

३. करुणा रस—

३८ हे प्राणप्रिय, जवसे तुम यहासे गये, और चन्द्रविम्व भी अद्वितीय सुपमाको प्राप्त हुआ, (तवसे) कमलोकी सारी चिन्ता शान्त हो गई, कोयलोका कलकल उठ गया है ॥७॥

—विलास ३

(४) शान्तो रस.—

३९ मद्वाणि मा कुरु विषादमनादरेण
मात्सर्यमग्नमनसा सहसा खलानाम् ॥
काव्यारविंदमकरन्दमधुव्रताना
मास्येषु धास्यतितमा कियतो विलासान् ॥४३॥

४० धुर्यैरपि माधुर्यैर्द्राक्षाक्षीरेक्षुमाक्षिकादीनाम् ॥
वद्यैव माधुरीय पण्डितराजस्य कविताया ॥४४॥

४१ शास्त्राण्याकलितानि नित्यविधय सर्वेऽपि सभाविता,
दिल्लीवल्लभपाणिपल्लवतले नीत नवीन वय ॥
सप्रत्युज्झितवासन मधुपुरीमध्ये हरि सेव्यते,
सर्व पण्डितराजराजितिलकेनाकारि लोकाधिकम् ॥४५॥

४२ दुर्वृत्ता जारजन्मानो हरिष्यतीति शकया ॥
मदीयपद्यरत्नाना मजूषैषा मया कृता ॥४६॥
—विलास ४

५०. गौरी (१६४० ई०)

अन्य स्त्री कवयित्रियोकी तरह गौरीके भी काल और देशके बारेमें मालूम नहीं है। यह किसी राजाकी प्रशसा करती है, जिससे जान पडता

(१) शिवः—

१ उत्फुल्लगल्लपरिफुल्लमुखारविन्द -
सौगन्ध्यलुब्धमधुपाकुलया रताते,
अत्युग्रपीनकुचचूचकयाऽतिगाढ -
मालिंगितो गिरिजया गिरिश पुनातु[1] ॥१॥

---

१. छन्द वसन्ततिलक

पालन किये, दिल्लीके स्वामीके पाणिपल्लवके नीचे जवानी विताई, अव वासनाओंको छोडकर मथुरामें हरिका सेवन कर रहे हैं। पंडित-राजोके-तिलकने सब काम लोकोत्तर किया ॥४५॥

:. दुराचारी जार-पुत्र चुरायेंगे, इस शंकासे मैंने अपने पद्यरत्नोंकी यह पिटारी वनाई ॥४६॥

५०. गौरी (१६४० ई०)

कि इनका दरबारसे सम्बन्ध था। संस्कृतमें शायद पहलेपहल इन्होंने ...ूक (भुशुंडी) की तारीफ की है। गौरीकी कविता बहुत सरस और ...ल है।

. शंकर—

१ उत्फुल्ल गलेवाले फूले मुखारविन्दकी सुगंधिको पा लुब्ध भ्रमरोंसे आकुल, अत्युच्च पीन स्तनके चूचुकवाली पार्वती द्वारा रतिके अन्तमें अतिगाढालिंगित शंकर तुम्हें पवित्र करें ॥१॥

(४) शान्तो रसः—

३९ मद्वाणि मा कुरु विषादमनादरेण
मात्सर्यमग्नमनसा सहसा खलानाम् ॥
काव्यारविंदमकरन्दमधुव्रताना
मास्येषु धास्यतितमा कियतो विलासान् ॥४२॥

४० धुर्यैरपि माधुर्यैर्द्राक्षाक्षीरेक्षुमाक्षिकादीनाम् ॥
वद्यैव माधुरीय पण्डितराजस्य कवितायाः ॥४४॥

४१ शास्त्राण्याकलितानि नित्यविधय सर्वेऽपि सभाविता,
दिल्लीवल्लभपाणिपल्लवतले नीत नवीन वय ॥
सप्रत्युज्झितवासन मधुपुरीमध्ये हरि सेव्यते,
सर्वं पण्डितराजराजितिलकेनाकारि लोकाधिकम् ॥४५॥

४२ दुर्वृत्ता जारजन्मानो हरिष्यतीति शकया ॥
मदीयपद्यरत्नाना मजूषैषा मया कृता ॥४६॥

—विलास ४

५०. गौरी (१६४० ई०)

अन्य स्त्री कवयित्रियोकी तरह गौरीके भी काल और देशके बारेमें मालूम नहीं है। यह किसी राजाकी प्रशसा करती है, जिससे जान पड़ता

(१) शिवः—

१ उत्फुल्लगल्लपरिफुल्लमुखारविन्द -
सौगन्ध्यलुब्धमधुपाकुलया रताते,
अत्युग्रपीनकुचचूचकयाऽतिगाढ -
मालिंगितो गिरिजया गिरिश पुनातु[1] ॥१॥

---

१. छन्द वसन्ततिलक

४. शान्त रस—

३९ हे मेरी वाणी, ईर्ष्या-मग्न मनवाले खलोके तुरत अनादरसे विषाद मत कर, काव्यरूपी कमल-मधुके भ्रमरोके मुखोमें (जा) तू कितना भारी आनन्द पायेगी ॥४२॥

४० पडितराजकी कविताकी मधुरता, अगूर, क्षीर, ईख, मधु आदिकी श्रेष्ठ मधुरताओसे भी बढकर है॥४४॥

४१ पडितराजोके तिलक (जगन्नाथ) ने शास्त्रोको पढ़ा, सारे नित्य नियम पालन किये, दिल्लीके स्वामीके पाणिपल्लवके नीचे जवानी बिताई, अब वासनाओको छोडकर मथुरामें हरिका सेवन कर रहे हैं। पडित-राजोके-तिलकने सब काम लोकोत्तर किया॥४५॥

४२. दुराचारी जार-पुत्र चुरायेंगे, इस शकासे मैंने अपने पद्मरत्नोकी यह पिटारी बनाई॥४६॥

५०. गौरी (१६४० ई०)

है, कि इनका दरबारसे सम्बन्ध था। संस्कृतमें शायद पहलेपहल इन्होंने बन्दूक (भुशुंडी) की तारीफ की है। गौरीकी कविता बहुत सरस और सरल है।

१. शंकर—

१ उत्फुल्ल गलेवाले फूले मुखारविन्दकी सुगधिको पा लुब्ध भ्रमरोसे आकुल, अत्युच्च पीन स्तनके चूचुकवाली पार्वती द्वारा रतिके अन्तमें अतिगाढालिगित शकर तुम्हें पवित्र करें॥१॥

(२) द्विषदकीर्तिः—

२. कालिन्दीयति कज्जलीयति कलानाथाकमालीयति,
व्यालीयत्यहिमण्डलीयति मुहु. श्रीकण्ठकण्ठीयति ।
शैवालीयति कोकिलीयति महानीलाभ्रजालीयति,
ब्रह्माण्डे रिपुदुर्यशस्तव नृपालंकारचूडामणे[1] ॥३॥

(३) भुशुण्डी—

३. महाचण्डीव सभाति भुशुण्डी भवत करे।
प्रतापज्वरसभ्रातगोलिका जीवहारिणी[2] ॥४॥

४. वह्निचूर्णपरिपूर्णनिजान्तर्-
र्गोलिका गरलवक्त्रविकाशा ।
वाहुभीषणभुजगधृतेय
भाति दुष्टभुजगीव भुशुण्डी[3] ॥५॥

(४) प्रताप.—

६ नो चापाकलन न पत्रिधरण नो ज्यासमाकर्षण,
नो बाहुस्फुरण न वाणगमन सन्दृश्यते ते रणे।
किन्तु प्रौढकरीन्द्रकुम्भविगलन्मुक्तागणप्रस्फुरत्-
प्रत्यर्थिक्षितिपालमौलिमणिभिर्विद्योतते भूरियम्[4] ॥६॥

(५) अरि-नार्य.—

७. चन्द्रानना चन्द्रकचारुगात्री ,
सा कोपवित्रस्तचकोरनेत्रा ।
शैलेयभूभि. स्मरभाववद्भि
संसेव्यतेऽद्रावरिभामिनी ते[5] ॥७॥

---

१. शार्दूलविक्रीडित; २. अनुष्टुप्; ३. स्वागता ४. शार्दूलविक्रीडित,
५ इन्द्रवज्रा,

२. शत्रुका अपयश—

२ हे नृप-भूषण-चूडामणि, ब्रह्माडमें तुम्हारे शत्रुओका अपयश जमुना वन रहा है, कज्जल वन रहा है, चन्द्रमाकी कलकमाला वन रहा है, व्याल वन सर्पकुण्डली वन रहा है, वार-वार शिवका कठ वन रहा है। सेवार-कोयल-महानील मेघजाल सा वन रहा है॥२॥

३. वन्दूक—

३ प्रतापरूपी ज्वरसे घूमती गोलीवाली, और प्राणहारिणी वन्दूक आपके हाथमें महाचडी सी दीख पडती है॥४॥

४ वारूदसे अपने भीतर भरी गोलीवाली, विष-मुखका विकास करनेवाली यह वन्दूक वाहुरूपी भीषण सापसे पकडी दुष्ट सर्पिणी सी जान पडती है॥५॥

४. प्रताप—

६ तुम्हारा रण में न धनुष चढ़ाना, न वाण पकड़ना, न प्रत्यचा खीचना, न वाहुका हिलना, न वाणका जाना दीखता है। लेकिन, यह भूमि प्रौढ गजराजके कुभस्थलसे गिरती मोतियोसी चमचमाती शत्रु-राजाओकी शिखामणियोसे प्रकाशित हो रही है॥६॥

५. शत्रुकी नारियाँ—

७ चन्द्रमुखी, मोर जैसी सुन्दर गात्रवाली, कोपसे डरे चकोर जैसे नेत्रो-वाली, तुम्हारे शत्रुकी स्त्रीकी कामभावाविष्ट मधुमक्खिया पहाडमें सेवा कर रही है॥७॥

(६) जल-क्रीडा—

९ विनि सरन्ती रतिजित्वरागी,
नीरात् सरागाम्बुजलोचनश्री ।
आलोकि लोकै स्वरुचा स्फुरन्ती
जलाधिदेवीव जलेशवन्द्या[१] ॥९॥

९ वेधाश्चकोरखजनमीनमृगाणा च गजनात्तुप्ट ।
अर्पितवान् भूमिपतो मारकत छत्रयुग्मक सुदृशो ॥१०

(७) शरीरम्—

१० मुखे शृङ्गाररसरसि लावण्यामृतपूरिते ।
कामक्रीडाहित भाति नयन शफरी-युगम् ॥११॥

११ अपागस्तव तन्वगि विचित्रोऽय भुजगम ।
दृष्टमात्र सुमनसामपि मूर्छाविधायक ॥१२॥

१२ सुधाविद्रुमसत्सारैर्धात्राऽस्यारचितोऽधर ,
यतोऽनगभुजगेन दप्ट जीवयति क्षणात् ॥१३॥

१३ विद्रुम विद्रुम कमल कमल पुन ।
इति सचिन्त्य विधिना कुकुमारुणितौ पदौ ॥१४॥

१४. विभाति बाला चरणागुलीना
नखावलीरागविमिश्रितश्री ।
शृङ्गारकल्पद्रुमकोरकाणा
दलान्तरे पक्तिरिव प्रसन्ना[२] ॥१५॥

(८) वायुः—

१५ परिमलबहुला सुपल्लवागी ,
कुसुमयुता परिरभ्य हेमवल्लीम् ।
विरचितसरसीसु मज्जनोऽसौ,
रसिक इवैति शनै शनै समीर[३] ॥१६॥

॥ इति ॥

---

१. उपजाति, २ गीति, ३. अनुष्टप्, पुष्पिताग्रा ।

६. जल-विहार—

८ रति जीतनेवाले अगोवाली, लाल कमल जैसी लोचनशोभावली, अपनी आभासे चमकती, जलसे (बाहर) निकलती, लोगोंको वह (सुदरी) वरुणसे-वदनीय जलकी-देवी सी दीख पडी ।।९।।

९ विधाताने चकोर-खजन-मीन और मृगोको पराजित करनेसे तुष्ट होकर (उस) सुनयनीको भौहोके वहानेसे पन्नेके दो छत्र प्रदान किये ।।१०।।

७. नखशिख—

१ लावण्यरूपी अमृतसे भरे शृगारके सरोवर मुखमें, काम-क्रीड़ाके लिये नयनरूपी दो मछलिया शोभित हो रही हैं ।।११।।

११ हे पतली शरीरवाली, यह तेरी दृष्टि विचित्र सर्प है, जो कि देखने मात्रसे देवताओको भी मूर्छित कर देती है ।।१२।।

१२ अमृत और मूगेके अच्छे सारोसे विधाताने उसके अधरको रचा, जो कि वह काम-भुजगसे डसेको क्षणभरमें पुनरुज्जीवित कर देती है ।।१३।।

१३ चूकि मूगासे मूगा, फिर कमलसे कमल है, यह सोचकर विधाताने उसके पैरोको कुमकुमसे लाल कर दिया ।।१४।।

१४ चरणकी अगुलियोकी नख-पक्तिके रगसे मिश्रित शोभावाली वाला, शृगारके कल्पवृक्षकी कलियोकी पखुडियोके भीतर स्वच्छ पाती की तरह शोभित है ।।१५।।

८. वायु—

१५ वहुत सुगन्धित सुन्दर पल्लवसे युक्त अगोवाली, फूली सुवर्ण-लताका आलिगन कर, सरोवरोमें स्नान किये यह, वायु रसिककी तरह धीरे-धीरे आ रहा है ।।१६।।

।। समाप्त ।।

परिशिष्ट

१. नामानुक्रमणी

२. विशेषशब्दानुक्रमणी